TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180810

UNIVERSAL
LIBRARY

UP—390– 29-4-72—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H891.21 Accession No. PG 41163

Author H21H

Title हमारी नई भारत : राष्ट्रीय

This book should be returned on or before the date last marked below

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना ख़र्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
एक सौ नब्बे अध्याय	
सत्य को स्वर्ग और झूठ को नरक बतलाना तथा सुख और दुःख का निरूपण करना	३६०५
एक सौ इक्यानबे अध्याय	
चारों आश्रमों के धर्मों का वर्णन	३६०६
एक सौ बानबे अध्याय	
वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के लक्षण कहना तथा हिमालय के उत्तर में परलोक बतलाना ...	३६०७
एक सौ तिरानबे अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से सदाचार का निरूपण करना	३६०९
एक सौ चौरानबे अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को अध्यात्म-योग बतलाना	३६११
एक सौ पञ्चानबे अध्याय	
ध्यान-योग का वर्णन	३६१४
एक सौ छानबे अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को जप का फल बतलाना	३६१५
एक सौ सत्तानबे अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को जापक का उपाख्यान सुनाना ...	३६१६
एक सौ अट्ठानबे अध्याय	
जापक का उपाख्यान ...	३६१७
एक सौ निन्नानबे अध्याय	
जापक के उपाख्यान में काल, मृत्यु, यम और ब्राह्मण का संवाद	३६१८
दो सौ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से जप का फल कहते हुए जापक का उपाख्यान समाप्त करना	३६२५
दो सौ एक अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर के पूछने पर ज्ञानयोग आदि का फल और परमात्म-ज्ञान-विषयक मनु और बृहस्पति का संवाद कहना ...	३६२७
दो सौ दो अध्याय	
मनु और बृहस्पति का संवाद...	३६२९
दो सौ तीन अध्याय	
मनु और बृहस्पति का संवाद ...	३६३०
दो सौ चार अध्याय	
मनु और बृहस्पति का संवाद ...	३६३२
दो सौ पाँच अध्याय	
मनु और बृहस्पति का संवाद ...	३६३३
दो सौ छः अध्याय	
मनु और बृहस्पति का संवाद ...	३६३४
दो सौ सात अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को संसार की सृष्टि का प्रकार बतलाना ...	३६३६

विषय	पृष्ठ
दो सौ आठ अध्याय मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों के वंश का और प्रत्येक दिशा में निवास करनेवाले महर्षियों का वर्णन ...	३६३८
दो सौ नव अध्याय वराह भगवान् के अवतार का वर्णन	३६३९
दो सौ दस अध्याय भीष्म का युधिष्ठिर से गुरु-शिष्य-संवाद-रूप योग का वर्णन करना	३६४१
दो सौ ग्यारह अध्याय योग का वर्णन	३६४३
दो सौ बारह अध्याय योग का वर्णन	३६४४
दो सौ तेरह अध्याय योग का वर्णन	३६४६
दो सौ चौदह अध्याय भीष्म का युधिष्ठिर से ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए योग का विवेचन करना	३६४७
दो सौ पन्द्रह अध्याय योग का वर्णन	३६४९
दो सौ सोलह अध्याय योग का वर्णन	३६५०
दो सौ सत्रह अध्याय योग का वर्णन	३६५१
दो सौ अठारह अध्याय भीष्म का युधिष्ठिर से महर्षि पञ्चशिख और मिथिला-नरेश का संवाद कहना	३६५३
दो सौ उन्नीस अध्याय पञ्चशिख और जनदेव का संवाद	३६५७
दो सौ बीस अध्याय भीष्म का युधिष्ठिर से दम गुण की प्रशंसा करना	३६६०
दो सौ इक्कीस अध्याय उपवास और तप का वर्णन ...	३६६१
दो सौ बाईस अध्याय इन्द्र और प्रह्लाद का संवाद। इन्द्र के पूछने पर प्रह्लाद द्वारा ज्ञान का उपाय बतलाया जाना .	३६६२
दो सौ तेईस अध्याय भीष्म का युधिष्ठिर से इन्द्र और बलि का संवाद कहना। इन्द्र द्वारा अपमानित बलि का गर्व की निन्दा करना	३६६४
दो सौ चौबीस अध्याय इन्द्र और बलि का संवाद। काल को ही भले-बुरे सब कामों का कर्ता बतलाना	३६६६
दो सौ पच्चीस अध्याय बलि को त्याग कर लक्ष्मी का इन्द्र के पास चला जाना ...	३६६८
दो सौ छब्बीस अध्याय इन्द्र और नमुचि का संवाद। इन्द्र के पूछने पर नमुचि का सोच की निरर्थकता बतलाना ...	३६७०
दो सौ सत्ताईस अध्याय इन्द्र और बलि का संवाद। बलि द्वारा काल की महिमा का वर्णन	३६७२

विषय	पृष्ठ
दो सौ अट्ठाईस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को भावी उन्नति और अवनति के लक्षण बतलाते हुए इन्द्र और लक्ष्मी का संवाद कहना	३६७७
दो सौ उन्तीस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को वैराग्य का माहात्म्य बतलाते हुए जैगीषव्य और देवल का संवाद कहना ...	३६८१
दो सौ तीस अध्याय	
उग्रसेन के पूछने पर श्रीकृष्ण द्वारा नारद के माहात्म्य का वर्णन ...	३६८२
दो सौ इकतीस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से शुकदेव के प्रति वेदव्यास के उपदेश का वर्णन करना	३६८३
दो सौ बत्तीस अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव को सृष्टि की उत्पत्ति बतलाना	३६८४
दो सौ तेंतीस अध्याय	
संसार के प्रलय का वर्णन ...	३६८६
दो सौ चौंतीस अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव को ब्राह्मणों का धर्म बतलाना	३६८७
दो सौ पैंतीस अध्याय	
ब्राह्मण का धर्म बतलाते हुए ज्ञान की प्रशंसा करना	३६८६
दो सौ छत्तीस अध्याय	
ज्ञान के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति बतलाना	३६९०

विषय	पृष्ठ
दो सौ सैंतीस अध्याय	
प्राणियों में न्यूनता-अधिकता दिखाते हुए आत्म-ज्ञान की प्रशंसा करना	३६९३
दो सौ अड़तीस अध्याय	
युग-भेद से धर्म का भेद और धर्म के विषय में मनुष्यों का मतभेद बतलाना	३६९४
दो सौ उन्तालीस अध्याय	
ब्रह्मज्ञान और उसके साधन बतलाना	३६९५
दो सौ चालीस अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव को योग की विधि बतलाना	३६९७
दो सौ इकतालीस अध्याय	
कर्म और ज्ञान का स्वरूप बतलाना	३६९९
दो सौ बयालीस अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव से ब्रह्मचर्य-धर्म का वर्णन करना ...	३७००
दो सौ तेंतालीस अध्याय	
गृहस्थ-धर्म का वर्णन ...	३७०१
दो सौ चवालीस अध्याय	
वानप्रस्थ-धर्म का वर्णन ...	३७०३
दो सौ पैंतालीस अध्याय	
संन्यास-धर्म का वर्णन ...	३७०४
दो सौ छियालीस अध्याय	
संन्यास-धर्म का वर्णन ...	३७०६
दो सौ सैंतालीस अध्याय	
शुकदेव के पूछने पर व्यासजी का अध्यात्म विषय कहना ...	३७०७

विषय	पृष्ठ
दो सौ अड़तालीस अध्याय	
ज्ञान के साधन बतलाना ..	३७०८
दो सौ उनचास अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव से ज्ञान की प्रशंसा करना	३७१०
दो सौ पचास अध्याय	
ज्ञान के उपाय बतलाना ..	३७१०
दो सौ इक्यावन अध्याय	
आत्म-ज्ञान के साधन और उसके उपाय बतलाना ...	३७१२
दो सौ बावन अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव से आकाश आदि महाभूतों के गुणों का वर्णन करना	३७१३
दो सौ तिरपन अध्याय	
योगियों की प्रशंसा और उनके प्रभाव का वर्णन	३७१३
दो सौ चौवन अध्याय	
काम आदि दोषों की शक्ति बतलाना	३७१४
दो सौ पचपन अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से पृथिवी आदि महाभूतों के गुणों का फिर वर्णन करना	३७१५
दो सौ छप्पन अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से नारद और अकम्पन का संवाद तथा नारद का अकम्पन से ब्रह्मा और महादेव का संवाद कहना	३७१६

विषय	पृष्ठ
दो सौ सत्तावन अध्याय	
ब्रह्मा और महादेव का संवाद। मृत्यु को उत्पन्न करके प्राणियों के संहार की आज्ञा देना ...	३७१७
दो सौ अट्ठावन अध्याय	
मृत्यु और ब्रह्मा का संवाद सुना कर नारद का अकम्पन के पुत्र-शोक को दूर करना	३७१८
दो सौ उनसठ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को धर्म के लक्षण बतलाना . ..	३७२०
दो सौ साठ अध्याय	
धर्म की प्रामाणिकता पर युधिष्ठिर का आक्षेप	३७२१
दो सौ इकसठ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को जाजलि और तुलाधार का संवाद सुनाना	३७२२
दो सौ बासठ अध्याय	
तुलाधार का जाजलि को उपदेश	३७२५
दो सौ तिरसठ अध्याय	
तुलाधार का जाजलि को उपदेश	३७२८
दो सौ चौंसठ अध्याय	
तुलाधार का जाजलि को उपदेश	३७३१
दो सौ पैंसठ अध्याय	
राजा विचख्युकी वक्तृता; अहिंसा-धर्म की प्रशंसा . ..	३७३२
दो सौ छाछठ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से चिरकारी का उपाख्यान कहना ...	३७३३

विषय	पृष्ठ
दो सौ सड़सठ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से प्रजा का पालन करने के विषय में द्युमत्सेन और सत्यवान् का संवाद कहना	३७३७
दो सौ अड़सठ अध्याय	
फल की इच्छा न करके यज्ञ आदि कर्म करने के विषय में गो-कपिल-संवाद	३७३९
दो सौ उनहत्तर अध्याय	
गाय के शरीर में प्रविष्ट स्यूमरश्मि और कपिल का संवाद ...	३७४१
दो सौ सत्तर अध्याय	
स्यूमरश्मि और कपिल का संवाद	३७४५
दो सौ इकहत्तर अध्याय	
भीष्म का अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म को श्रेष्ठ बतलाते हुए कुण्डधार की कथा कहना ...	३७४७
दो सौ बहत्तर अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से अहिंसात्मक यज्ञ का माहात्म्य कहना ..	३७५०
दो सौ तिहत्तर अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को धर्म की श्रेष्ठता बतलाना	३७५२
दो सौ चौहत्तर अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष का उपाय बतलाना	३७५३
दो सौ पचहत्तर अध्याय	
पृथिवी आदि महाभूतों की उत्पत्ति और विनाश के विषय में नारद और देवल का संवाद ...	३७५४
दो सौ छिहत्तर अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को जनक और माण्डव्य के संवाद में तृष्णा का त्याग बतलाना	३७५६
दो सौ सतहत्तर अध्याय	
आयु शीघ्र नष्ट हो जाती है, इसलिए करने योग्य काम को जल्दी करना चाहिए, इस विषय में पिता और पुत्र का संवाद ...	३७५६
दो सौ अठहत्तर अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष के साधन बतलाना ...	३७५९
दो सौ उन्नासी अध्याय	
भीष्म का धर्म के विषय में शुक्राचार्य और वृत्रासुर का संवाद कहना	३७६०
दो सौ अस्सी अध्याय	
भीष्म का सनत्कुमार द्वारा वर्णित विष्णु का माहात्म्य कहना	३७६२
दो सौ इक्यासी अध्याय	
भीष्म का इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन करना ...	३७६५
दो सौ बयासी अध्याय	
इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का मारा जाना और इन्द्र की ब्रह्महत्या का अग्नि आदि में बांटा जाना ...	३७६७
दो सौ तिरासी अध्याय	
दक्ष के यज्ञ में अंश न पाने से शङ्कर का रुष्ट होना; उनके पसीने से अग्नि-रूप ज्वर की उत्पत्ति ...	३७७०

चित्र-सूची

विषय	पृष्ठ
१—ब्राह्मण को जप में एकाग्रचित्त देखकर सावित्री बहुत प्रसन्न हुई और ब्राह्मण की प्रशंसा करने लगीं। कुछ देर बाद जब जप समाप्त हुआ तब उठकर ब्राह्मण ने देवी के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—भगवती, मेरा बड़ा भाग्य है जो आज आपने मुझे दर्शन दिये।	३६१८
२—उसी कमल से लोक-पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए।	३६३६
३—वह नक्षत्रों के समान चमकीले आभूषण पहने, मोतियों की माला धारण किये, साक्षात् लक्ष्मी का मनोहर वेष रक्खे—अप्सराओं के आगे आगे—अग्नि की शिखा के समान, उनकी ओर आने लगी। ...	३६७७
४—पुष्करधारिणी नाम की शुद्ध स्वभाववाली उसकी पत्नी थी। वह इतने व्रत उपवास आदि किया करती थी कि उसकी देह दुबली हो गई थी। ...	३७५०
५—इन्द्र के चले जाने पर दानवराज वृत्र के शरीर से मुण्डमाला-धारिणी ब्रह्महत्या निकली। उसका रङ्ग काला, बाल बिखरे हुए, और आँखें डरावनी थीं, बड़े-बड़े दाँत होने से वह भयावनी थी। वह बल्कल पहने हुए थी। वृत्र के शरीर से निकलकर ब्रह्महत्या वज्रधारी इन्द्र को ढूँढ़ने लगी।	३७६८

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
दो सौ चौरासी अध्याय	
वीरभद्र द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस और दक्ष की स्तुति से प्रसन्न शंकर का दक्ष को वरदान	३७७३
दो सौ पचासी अध्याय	
दक्ष का एक हज़ार आठ नामों से महादेव की स्तुति करना ...	३७७६
दो सौ छियासी अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से अध्यात्म-विद्या का वर्णन करना ...	३७८२
दो सौ सत्तासी अध्याय	
नारद और समङ्ग का संवाद। ज्ञान से दुःख की निवृत्ति बतलाना	३७८४
दो सौ अट्ठासी अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को कल्याण के साधन बतलाना ...	३७८५
दो सौ नवासी अध्याय	
मोक्ष के विषय में अरिष्टनेमि और सगर का संवाद	३७८८
दो सौ नब्बे अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से शुक्राचार्य का चरित्र कहना	३७९०
दो सौ इक्यानबे अध्याय	
महर्षि पराशर का जनक को धर्मोपदेश	३७९१
दो सौ बानबे अध्याय	
पराशर का उपदेश	३७९२
दो सौ तिरानबे अध्याय	
पराशर का राजा जनक को उपदेश	३७९४

विषय	पृष्ठ
दो सौ चौरानबे अध्याय	
पराशर का ब्राह्मण आदि वर्णों के धर्म का वर्णन करना ...	३७९५
दो सौ पञ्चानबे अध्याय	
पराशर का जनक को उपदेश। वर्ण-धर्म का वर्णन ...	३७९६
दो सौ छियानबे अध्याय	
पराशर का जनक से तपस्या की प्रशंसा करना	३७९७
दो सौ सत्तानबे अध्याय	
पराशर का जनक से अनेक धर्मों का वर्णन करना	३७९९
दो सौ अट्ठानबे अध्याय	
पराशर का जनक से अनेक धर्मों का वर्णन करना	३८०१
दो सौ निन्नानबे अध्याय	
पराशर का जनक को धर्मोपदेश	३८०३
तीन सौ अध्याय	
मोक्ष के विषय में हंस-रूपी ब्रह्मा और साध्यगण की बातचीत ...	३८०५
तीन सौ एक अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से योग का निरूपण करना	३८०८
तीन सौ दो अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से सांख्य-शास्त्र का मत कहना	३८१०
तीन सौ तीन अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से क्षर और अक्षर का विषय बतलाते हुए जनक और वसिष्ठ का संवाद कहना	३८१५

विषय	पृष्ठ
तीन सौ चार अध्याय	
वसिष्ठ और राजा कराल का संवाद। जीवों की अज्ञता का वर्णन	३८१६
तीन सौ पाँच अध्याय	
राजा कराल और महर्षि वसिष्ठ का संवाद	३८१८
तीन सौ छः अध्याय	
वसिष्ठ का राजा कराल से जीव और शरीर आदि का सम्बन्ध कहना	३८१९
तीन सौ सात अध्याय	
सांख्य और योग का मत ...	३८२१
तीन सौ आठ अध्याय	
विद्या और अविद्या का वर्णन ...	३८२३
तीन सौ नव अध्याय	
वसिष्ठ और राजा कराल का संवाद। बुद्ध और अबुद्ध का वर्णन	३८२५
तीन सौ दस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से धर्म के विषय में एक महर्षि और वसुमान का संवाद कहना	३८२७
तीन सौ ग्यारह अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद कहना ...	३८२८
तीन सौ बारह अध्याय	
याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद। अण्ड आदि सृष्टि का वर्णन	३८२९
तीन सौ तेरह अध्याय	
प्रलय का संक्षिप्त वर्णन ...	३८३०
तीन सौ चौदह अध्याय	
इन्द्रियों का विषय और उनके अभिमानी जीवात्मा तथा सत्त्व आदि गुणों का वर्णन ...	३८३१
तीन सौ पन्द्रह अध्याय	
याज्ञवल्क्य का जनक को सत्त्व आदि गुणों का तारतम्य बतलाना और जनक का मोक्ष-धर्म के विषय में प्रश्न करना ...	३८३२
तीन सौ सोलह अध्याय	
याज्ञवल्क्य का जनक से सांख्य-शास्त्र का मत कहना ...	३८३३
तीन सौ सत्रह अध्याय	
योग-शास्त्र का वर्णन ...	३८३३
तीन सौ अठारह अध्याय	
शरीर के स्थान-भेद से निकलने पर जीवात्मा की गति और मरणा-सन्न मनुष्य के लक्षण बतलाना	३८३५
तीन सौ उन्नीस अध्याय	
याज्ञवल्क्य का जनक से मोक्ष-धर्म का वर्णन करना	३८३६
तीन सौ बीस अध्याय	
पञ्चशिख और जनक का संवाद। बुढ़ापे और मौत को जीतने का एकमात्र उपाय योग ...	३८४०
तीन सौ इक्कीस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से सुलभा और जनक का संवाद कहना ...	३८४१
तीन सौ बाईस अध्याय	
व्यासजी का शुकदेव को उपदेश	३८४९
तीन सौ तेईस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से सर्वथा धर्म की कर्त्तव्यता बतलाना ...	३८५४

विषय	पृष्ठ
तीन सौ चौबीस अध्याय	
पुत्र के लिए व्यासदेव की तपस्या और शुकदेव के जन्म का वृत्तान्त	३८५५
तीन सौ पचीस अध्याय	
शुकदेव के जन्म का वृत्तान्त ...	३८५६
तीन सौ छब्बीस अध्याय	
शुकदेव का, व्यासदेव की आज्ञा से, मोक्ष-धर्म का उपदेश लेने के लिए जनक के पास जाना ...	३८५७
तीन सौ सत्ताईस अध्याय	
शुकदेव से जनक का मोक्ष-धर्म का वर्णन करना	३८५९
तीन सौ अट्ठाईस अध्याय	
शुकदेव का जनक के पास से लौटकर व्यासजी के पास जाना और उनसे सब वृत्तान्त कहना। वैशम्पायन आदि शिष्यों के साथ व्यासजी की बातचीत	३८६१
तीन सौ उनतीस अध्याय	
शिष्यों के चले जाने पर व्यासजी का उदास होना और उनके पास नारदजी का आना ...	३८६३
तीन सौ तीस अध्याय	
नारदजी का शुकदेव को उपदेश	३८६६
तीन सौ इकतीस अध्याय	
नारदजी का शुकदेवजी को उपदेश	३८६८
तीन सौ बत्तीस अध्याय	
नारदजी का उपदेश सुनकर योगाभ्यास करने के लिए शुकदेवजी का कैलास पर्वत पर जाना ...	३८७०
तीन सौ तैंतीस अध्याय	
शुकदेवजी का कैलास पर्वत से आकाश-मार्ग को जाना ...	३८७३
तीन सौ चौंतीस अध्याय	
शुकदेव के वियोग में व्यासजी को शोक होना और उन्हें महादेवजी का आश्वासन दिलाना ...	३८७४
तीन सौ पतीस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से, देवताओं और पितरों के कर्मों के विषय में, नारायण और नारद का संवाद कहना	३८७६
तीन सौ छत्तीस अध्याय	
नर-नारायण की आज्ञा लेकर नारदजी का श्वेतद्वीप को जाना...	३८७८
तीन सौ सैंतीस अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से उपरिचर वसु का चरित कहना। उपरिचर के यज्ञ में परोक्ष भाव से अपना भाग ग्रहण करने पर विष्णु के ऊपर बृहस्पति का क्रोध करना और एकत आदि ऋषियों का श्वेतद्वीप का वर्णन करके विष्णु का माहात्म्य बतलाना ...	३८८१
तीन सौ अड़तीस अध्याय	
उपरिचर वसु को शाप और उससे मुक्त होने का वृत्तान्त ...	३८८३
तीन सौ उनतालीस अध्याय	
श्वेतद्वीप में पहुँच कर नारदजी का वहाँ के पुरुषों को देखना और नारायण के दर्शन करने की इच्छा से भगवान् की स्तुति करना	३८८५
तीन सौ चालीस अध्याय	
नारदजी को नारायण के दर्शन होना और उनका नारदजी से	

विषय	पृष्ठ
अपना माहात्म्य और अपने अनेक अवतारों की कथा कहना ...	३८८७
तीन सौ इकतालीस अध्याय	
देवताओं और महर्षियों समेत ब्रह्माजी का नारायण की तपस्या करना और प्रसन्न होकर नारायण का उन सबके भाग निर्दिष्ट करना	३८९२
तीन सौ बयालीस अध्याय	
वैशम्पायन का जनमेजय को श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन से कहे हुए नामों के अर्थ बतलाना ...	३८९६
तीन सौ तैंतालीस अध्याय	
सृष्टि का प्रकार और ब्राह्मणों की महिमा का वर्णन	३८९९
तीन सौ चवालीस अध्याय	
श्वेतद्वीप से लौटकर नारदजी का बदरिकाश्रम में आना और वहाँ नर-नारायण से बातचीत करना	३९०८
तीन सौ पैंतालीस अध्याय	
नर-नारायण का नारदजी से भगवान् की महिमा का वर्णन करना और बदरिकाश्रम में बहुत दिनों तक नारदजी का तप करना	३९११
तीन सौ छियालीस अध्याय	
नर-नारायण का नारदजी से पितृ-कर्म का वर्णन करना ...	३९१२
तीन सौ सैंतालीस अध्याय	
नर-नारायण की आज्ञा से नारदजी का अपने आश्रम को जाना ...	३९१३
तीन सौ अड़तालीस अध्याय	
नारायण द्वारा ब्रह्मा और मधु-कैटभ की उत्पत्ति तथा मधु-कैटभ का वध	३९१४
तीन सौ उनचास अध्याय	
वैशम्पायन का जनमेजय से एकान्त-धर्म और उसके प्रचार का वर्णन करना	३९१७
तीन सौ पचास अध्याय	
वैशम्पायन का जनमेजय से व्यास-देव की उत्पत्ति का वर्णन करना	३९२१
तीन सौ इक्यावन अध्याय	
ब्रह्मा और रुद्र का संवाद ...	३९२३
तीन सौ बावन अध्याय	
ब्रह्माजी का रुद्र से नारायण की महिमा का वर्णन करना ...	३९२४
तीन सौ तिरपन अध्याय	
युधिष्ठिर का भीष्म से आश्रम-वासियों के धर्म पूछना ...	३९२५
तीन सौ चौवन अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से धर्मारण्य नामक ब्राह्मण का इतिहास कहना	३९२६
तीन सौ पचपन अध्याय	
अतिथि से धर्मारण्य ब्राह्मण की बातचीत	३९२६
तीन सौ छप्पन अध्याय	
अतिथि का धर्मारण्य को नैमिषा-रण्य में नागराज के पास जाने की सलाह देना	३९२७
तीन सौ सत्तावन अध्याय	
नागराज पद्मनाभ के पास जाने के लिए धर्मारण्य का घर से प्रस्थान	३९२७
तीन सौ अट्ठावन अध्याय	
धर्मारण्य का पद्मनाभ के घर पहुँचना और नाग की स्त्री से बातचीत करना	३९२८

विषय	पृष्ठ
तीन सौ उनसठ अध्याय	
ब्राह्मण का पद्मनाभ की प्रतीक्षा में गोमती-किनारे निराहार ठहरना	३९२९
तीन सौ साठ अध्याय	
घर आने पर नागराज पद्मनाभ को ब्राह्मण के आने का समाचार मिलना	३९२९
तीन सौ इकसठ अध्याय	
पद्मनाभ का अपनी स्त्री से आगन्तुक ब्राह्मण के विषय में प्रश्न	३९३०
तीन सौ बासठ अध्याय	
नागराज का गोमती के किनारे ब्राह्मण के पास जाकर बातचीत करना	३९३१

विषय	पृष्ठ
तीन सौ तिरसठ अध्याय	
नागराज का धर्मारण्य से उञ्छवृत्ति-धर्मावलम्बी एक महात्मा के सूर्य-मण्डल में प्रविष्ट होने का वृत्तान्त कहना	३९३२
तीन सौ चौंसठ अध्याय	
नागराज का धर्मारण्य ब्राह्मण से उञ्छवृत्ति का माहात्म्य कहना ...	३९३३
तीन सौ पैंसठ अध्याय	
उञ्छवृत्ति का माहात्म्य सुनकर धर्मारण्य का नागराज से विदा माँगना	३९३३
तीन सौ छाछठ अध्याय	
धर्मारण्य ब्राह्मण का महर्षि च्यवन के पास जाना और उनसे दीक्षा लेकर उञ्छवृत्ति का अवलम्बन करना	३९३४

शान्तिपर्व समाप्त

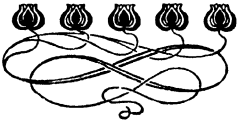

रंगीन चित्रों की सूची

विषय	पृष्ठ
१—भगवान् शङ्कर के समान महा-पराक्रमी शूरवीर मूर्तिमान क्रोध-स्वरूप वीरभद्र	३७७४
२—महादेवजी ने शुक्राचार्य्य को वहाँ देखकर पिनाक की तरह शूल के अग्रभाग को झुका दिया।	३७९०
३—देवी पार्वती ने शङ्कर को कुपित देखकर कहा.....यह मेरा पुत्र हो गया है। अब इसका वध करना आपको उचित नहीं है।	३७९१
४—हंस को देखकर साध्यगण बोले—हम लोग.....आपसे मोक्ष-धर्म और अन्य विषय पूछेंगे।	३८०५
५—उसी समय सुलभा नाम की एक संन्यासिनी.....भीख माँगने के बहाने राजा के पास पहुँची	३८४२

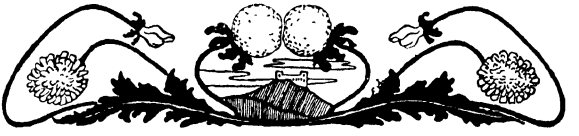

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

अनुशासनपर्व

(आनुशासनिकपर्व)

पहला अध्याय

भीष्म का प्राणियों को कर्मों के अधीन बतलाकर गौतमी और व्याध का संवाद सुनाना ... ३१३५

दूसरा अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गृहस्थाश्रम में अतिथि-सत्कार की प्रशंसा करते हुए सुदर्शन का उपाख्यान कहना ३१४०

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर का भीष्म से विश्वामित्र के ब्राह्मण होने का कारण पूछना ३१४४

चौथा अध्याय

विश्वामित्र की उत्पत्ति और उनको ब्राह्मणत्व की प्राप्ति ... ३१४४

पाँचवाँ अध्याय

भीष्म का अनृशंसता की ... प्रशंसा करते हुए दृष्टान्त-स्वरूप इन्द्र और तोते का संवाद कहना ३१४७

छठा अध्याय

भाग्य की अपेक्षा उद्योग की श्रेष्ठता का वर्णन ३१४८

विषय पृष्ठ

सातवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से शुभाशुभ कर्म का फल कहना ३१५१

आठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से ब्राह्मणों की प्रशंसा करना ... ३१५२

नवाँ अध्याय

ब्राह्मण को धन देने का वादा करके फिर न देने के विषय में गीदड़ और वानर की कथा ... ३१५३

दसवाँ अध्याय

शूद्र को उपदेश देने से जो अनर्थ होता है उसके दृष्टान्त में एक मुनि और शूद्र की कथा ३१५४

ग्यारहवाँ अध्याय

लक्ष्मी का रुक्मिणी को अपने निवास-स्थान बतलाना ... ३१५७

बारहवाँ अध्याय

सम्भोग में स्त्री को ही अधिक सुख मिलने के सम्बन्ध में भङ्गास्वन का उपाख्यान ... ३१५८

तेरहवाँ अध्याय

मन-वचन-शरीर से दुष्कर्मों के त्याग को ही श्रेष्ठ बतलाना ... ३१६२

चौदहवाँ अध्याय

भीष्म की आज्ञा से श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से महादेव का माहात्म्य कहना ३१६२

विषय	पृष्ठ
पन्द्रहवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण का महादेव-पार्वती से वर पाना	३९७८
सोलहवाँ अध्याय	
उपमन्यु और श्रीकृष्ण की बात-चीत। महात्मा तण्डि द्वारा की गई महादेवजी की स्तुति	३९७८
सत्रहवाँ अध्याय	
उपमन्यु का श्रीकृष्ण से महादेवजी के एक हज़ार आठ नामों का वर्णन करना	३९८१
अठारहवाँ अध्याय	
वेदव्यास आदि अन्य महर्षियों का युधिष्ठिर से महादेवजी का माहात्म्य कहना ...	३९८७
उन्नीसवाँ अध्याय	
भीष्म का स्त्रियों का स्वभाव बतलाते हुए अष्टावक्र की कथा कहना	३९९१
बीसवाँ अध्याय	
अष्टावक्र और बुढ़िया की बात-चीत	३९९५
इक्कीसवाँ अध्याय	
वृद्धारूपी उत्तर दिशा का स्त्रियों की चपलता दिखाकर अष्टावक्र को उपदेश देना। फिर अष्टावक्र का वहाँ से वापस आकर वदान्य की कन्या के साथ विवाह करना	३९९७
बाईसवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को दान के पात्र ब्राह्मणों के लक्षण बतलाना	३९९८
तेईसवाँ अध्याय	
श्राद्ध में निमन्त्रण देने योग्य ब्राह्मणों के लक्षण ...	४००१
चौबीसवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को, हिंसा न करने पर भी, ब्रह्महत्या के कारण-स्वरूप कर्मों का वर्णन सुनाना	४००४
पच्चीसवाँ अध्याय	
तीर्थों के नाम और उनका माहात्म्य	४००५
छब्बीसवाँ अध्याय	
महर्षि सिद्ध और शिलवृत्ति का संवाद-स्वरूप गङ्गा-माहात्म्य	४००८
सत्ताईसवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मणत्व की दुर्लभता बतलाते हुए मतङ्ग का उपाख्यान कहना ...	४०१२
अट्ठाईसवाँ अध्याय	
मतङ्ग का ब्राह्मण होने के लिए तप करना। इन्द्र का फिर आकर ब्राह्मणत्व की दुर्लभता बतलाना	४०१३

विषय पृष्ठ

उनतीसवाँ अध्याय

इन्द्र के निराश करने पर भी मतङ्ग का तप करते रहना। इन्द्र का फिर आकर उसे वर देना ... ४०१४

तीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से वीतहव्य के ब्राह्मण होने का वृत्तान्त कहना ४०१५

इकतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और नारदजी का संवाद, गुणवान् ब्राह्मणों को पूज्य बतलाना ४०१८

बत्तीसवाँ अध्याय

भीष्म का शरणागत की रक्षा का माहात्म्य कहते हुए बाज़, कबूतर और शिवि की कथा कहना ४०२०

तेंतीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मणों की महिमा बतलाना ... ४०२१

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणों का माहात्म्य बतलाते हुए पृथिवी और श्रीकृष्ण का संवाद कहना ४०२३

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणों का माहात्म्य बतलाना ४०२४

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणों की महिमा बतलाते हुए इन्द्र और शम्बर का संवाद कहना ४०२५

विषय पृष्ठ

सैंतीसवाँ अध्याय

सुपात्र ब्राह्मणों के लक्षण बतलाना ४०२६

अड़तीसवाँ अध्याय

भीष्म का स्त्रियों का स्वभाव बतलाते हुए नारद और पंचचूड़ा का संवाद कहना ... ४०२७

उन्तालीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से स्त्रियों के दुश्चरित्र का वर्णन करना ... ४०२८

चालीसवाँ अध्याय

दुश्चरित्राओं की रक्षा करने की कठिनता के विषय में महात्मा विपुल का उपाख्यान ... ४०२९

इकतालीसवाँ अध्याय

गुरुपत्नी के शरीर में योग-बल से महात्मा विपुल के प्रविष्ट हो जाने पर इन्द्र का आना, विपुल के डाँटने पर इन्द्र का भाग जाना और गुरु के आने पर सब हाल कह कर विपुल का तप के लिए चला जाना ... ४०३१

बयालीसवाँ अध्याय

विपुल का गुरु की आज्ञा से दिव्य पुष्पों के लिए वन को जाने पर, दो व्यक्तियों द्वारा अपनी दुर्गति का हाल सुनकर, अपने दुष्कर्म का स्मरण करना ४०३३

विषय	पृष्ठ
तैंतालीसवाँ अध्याय	
गुरु का विपुल के दुष्कर्म का स्मरण दिलाना और अपने प्रिय शिष्य विपुल तथा अपनी स्त्री समेत स्वर्ग को जाना ...	४०३५
चवालीसवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से कन्या-दान का विषय पूछना ...	४०३६
पैंतालीसवाँ अध्याय	
विवाह के नियम और दायभाग का वर्णन ...	४०३६
छियालीसवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से स्त्रियों की प्रशंसा करना	४०४१
सैंतालीसवाँ अध्याय	
ब्राह्मण आदि वर्णों के दायभाग की विधि	४०४१
अड़तालीसवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को सङ्कर जातियों की उत्पत्ति बतलाना	४०४४
उनचासवाँ अध्याय	
औरस आदि पुत्रों का निरूपण	४०४७
पचासवाँ अध्याय	
महर्षि च्यवन का जल में निवास करना और धीवरों द्वारा मछलियों के साथ जाल में फँसाकर जल के बाहर लाया जाना ...	४०४६
इक्यावनवाँ अध्याय	
महर्षि की आज्ञा से नहुष का मछुओं को मछलियों समेत महर्षि का मूल्य देना और महर्षि की कृपा से मछलियों के साथ मछुओं का स्वर्ग को जाना	४०५०
बावनवाँ अध्याय	
कुशिक और च्यवन का उपाख्यान	४०५३
तिरपनवाँ अध्याय	
कुशिक का वंश नष्ट कर देने की इच्छा से च्यवन का अनेक उपायों से उन्हें कुपित करने का उद्योग करना	४०५४
चौवनवाँ अध्याय	
कुशिक का कोई दोष न पाने पर महर्षि का प्रसन्न होना; योग के प्रभाव से कुशिक को स्वर्ग के दर्शन कराना और वर मांगने को कहना	४०५८
पचपनवाँ अध्याय	
कुशिक के पूछने पर महर्षि का उनके घर आने का प्रयोजन बतलाना। कुशिक की ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की इच्छा जानकर उनके पौत्र आदि को ब्राह्मणत्व प्राप्त होने का वर देना ...	४०५६

विषय	पृष्ठ
छप्पनवाँ अध्याय	
महर्षि ऋचीक की कृपा से विश्वामित्र और परशुराम के जन्म होने का वृत्तान्त कुशिक को बतलाया जाना	४०६१
सत्तावनवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के शुभ कर्मों के फल बतलाना	४०६२
अट्ठावनवाँ अध्याय	
जलाशय बनवाने और वृक्ष लगाने की फल-श्रुति ...	४०६४
उनसठवाँ अध्याय	
भीष्म का ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए उनकी आराधना करने की विधि बतलाना ...	४०६६
साठवाँ अध्याय	
भीष्म का ब्राह्मणों की प्रशंसा करना	४०६७
इकसठवाँ अध्याय	
ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए प्रजा और ब्राह्मणों की रक्षा करने को राजा का कर्तव्य बतलाना	४०६८
बासठवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से भूमिदान का माहात्म्य कहना ...	४०७०
तिरसठवाँ अध्याय	
अन्नदान की प्रशंसा और उसका फल	४०७४
चौंसठवाँ अध्याय	
देवकी और नारदजी के संवाद-स्वरूप अश्विनी आदि नक्षत्रों में अन्नदान का माहात्म्य ...	४०७६
पैंसठवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर को जल आदि दान करने का फल बतलाना	४०७८
छाछठवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से जल, तिल, भूमि, अन्न और गाय के दान आदि का फल कहना ...	४०७९
सड़सठवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से जलदान का माहात्म्य कहना ...	४०८१
अड़सठवाँ अध्याय	
भीष्म का तिल जल दीप आदि के दान की प्रशंसा करते हुए यम और ब्राह्मण का संवाद कहना	४०८२
उनहत्तरवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से गोदान, भूमिदान और विद्यादान की प्रशंसा करना	४०८४

विषय	पृष्ठ
सत्तरवाँ अध्याय	
ब्राह्मण का धन हर लेने से होनेवाले अनिष्ट के सम्बन्ध में नृग का उपाख्यान ...	४०८५
इकहत्तरवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से गोदान का फल कहते हुए नाचिकेत का उपाख्यान कहना ...	४०८६
बहत्तरवाँ अध्याय	
भीष्म का युधिष्ठिर से गोलोक का वर्णन करना ...	४०९०
तिहत्तरवाँ अध्याय	
ब्रह्माजी का इन्द्र को गोदान का फल बतलाना ...	४०९०

रंगीन चित्रों की सूची

विषय	पृष्ठ
१—ब्राह्मण ने कहा—हे सुन्दरी ! .....यदि गृहस्थाश्रम में तुम्हें विश्वास है तो मेरे साथ .....मुझे प्रसन्न करो ...	३९४१
२—एक बार कामदेव की माता रुक्मिणी ने असाधारण रूप-लावण्यवती लक्ष्मी को नारायण की गोद में बैठी हुई देख कर प्रसन्नता से उनसे पूछा	३९५७
३—अनसूया की भक्ति देखकर शङ्करजी बहुत प्रसन्न हुए और उनके पास आकर मुसकुराते हुए बोले	३९६६
४—पृथिवी ने कहा—केशव, मैंने नारदजी के मुँह से सुना है कि इस लोक में ब्राह्मण की सेवा करना परम पवित्र और श्रेष्ठ धर्म है	४०२३
५—अङ्गराज की स्त्री ने उन फूलों को देखकर रुचि से कहा—बहन ! तुम अपने आश्रम में जाकर मेरे लिए इसी तरह के फूल भेज देना, भूल न जाना	४०३३
६—वहाँ सुन्दर शय्या पर लेटकर महर्षि ने राजा से कहा—देखो, मैं सोता हूँ। मुझे जगाना मत और रात भर जागते रहकर मेरे पैर दबाते रहना	४०५४

एक सौ नब्बे अध्याय

सत्य को स्वर्ग और झूठ को नरक बतलाना तथा सुख और दुःख का निरूपण करना

भृगु कहते हैं—हे तपोधन, सत्य ही ब्रह्म और तप है तथा सत्य ही प्रजा की सृष्टि और प्रजा का पालन करता है। सत्य से ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। झूठ अन्धकार-स्वरूप है। इसी अन्धकार की बदौलत मनुष्यों का अधःपात होता है। मनुष्य इस अन्धकार से ढक जाने पर सत्य-रूप प्रकाश को नहीं देख सकता। सत्य-रूपी प्रकाश स्वर्ग और अन्धकार-रूपी झूठ नरक है। कर्मों के फल से मनुष्य को स्वर्ग और नरक मिलते हैं। सत्य में धर्म, प्रकाश और सुख तथा झूठ में अधर्म, अन्धकार और दुःख रहता है। जो सत्य है वही धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सुख है। असत्य ही अधर्म है; जो अधर्म है वही अन्धकार है और जो अन्धकार है वही दुःख है। संसार में शारीरिक और मानसिक दुःख तथा दुःख का परिणाम स्वरूप सुख मनुष्यों को होता रहता है, यह समझकर बुद्धिमान् लोग कभी मोह में नहीं फँसते। विवेकी मनुष्य को दुःख से बचने के लिए हमेशा यत्न करते रहना चाहिए। सांसारिक और पारलौकिक सुख अनित्य है। जैसे राहुग्रस्त होने पर चन्द्रमा की चाँदनी छिप जाती है वैसे ही अविवेकी मनुष्यों का सुख ढका रहता है। सुख दो प्रकार का है—शारीरिक और मानसिक। सुख के लिए मनुष्य अनेक उपाय करते हैं। सुख से बढ़कर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का और कोई फल नहीं है। सुख पाने की इच्छा सभी करते हैं। सुख आत्मा का विशेष गुण है। धर्म और अर्थ ही सुख का मूल है। सुख के लिए ही धर्म और अर्थ का आरम्भ किया जाता है।

भरद्वाज ने कहा—हे तपोधन, आपने जो सुख को श्रेष्ठ कहा है उसका तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया। देखिए, महर्षि लोग आत्मा के गुण-विशेष सुख की कुछ परवा न करके ध्यान में मन लगाते हैं। सुना जाता है कि ब्रह्माजी ने सुख की इच्छा न करके ब्रह्मचर्य रखकर तप किया था। उमापति ने काम को देखकर जला डाला। इन दृष्टान्तों से जान पड़ता है कि महात्मा लोग सुख की इच्छा नहीं करते थे। इसलिए सुख आत्मा का विशेष गुण नहीं कहा जा सकता। आपने जो कहा है कि सुख से बढ़कर और कुछ नहीं है, इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता। यह भी प्रवाद है कि पुण्य से सुख और पाप से दुःख की उत्पत्ति होती है। १०

भृगु ने कहा—भरद्वाज! झूठ से अज्ञान उत्पन्न होता है और अज्ञान से क्रोध, लोभ और हिंसा का भाव पैदा होता है। झूठ की ही बदौलत मनुष्य धर्म को छोड़कर अधर्म करने लगता है और उसे हमेशा अनेक प्रकार की व्याधि, रोग, चिन्ताएँ, वध, बन्धन, भूख, प्यास, आँधी-पानी, गरमी-सरदी, बन्धुओं का वियोग और धन का नाश आदि दुःख सताते रहते हैं। इसलिए झूठ बोलनेवाले को सुख कैसे मिल सकता है? जिस मनुष्य को इस प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख नहीं हैं वही सुख का अनुभव कर सकता है। ये सब दुःख स्वर्ग-

लोक में नहीं होते। स्वर्ग में हमेशा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन चलता रहता है तथा वहाँ भूख, प्यास, श्रम, बुढ़ापा और पाप नहीं है। सारांश यह कि स्वर्गलोक में सुख ही सुख और नरक में हमेशा दुःख ही रहता है। संसार में सुख और दुःख दोनों हैं, इसलिए सुख ही सबसे बढ़कर है। स्त्री-जाति सब प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाली पृथिवी-स्वरूप है, पुरुष प्रजापति-स्वरूप और शुक्र तेज-स्वरूप है। ब्रह्माजी ने स्त्री-पुरुष के सहयोग और शुक्र के प्रभाव से संसार की सृष्टि का नियम बना दिया है। मनुष्य उसी नियम के अनुसार काम करता हुआ, अपने-अपने
१६ कर्म के अनुसार, सुख-दुःख भोगता है।

एक सौ इक्यानबे अध्याय

चारों आश्रमों के धर्मों का वर्णन

भरद्वाज ने पूछा—महात्मन्! दान, धर्म, आचार, तप, वेदाध्ययन और होम करने का क्या फल है?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्! होम करने से पाप शान्त हो जाता है, वेद पढ़ने से शान्ति मिलती है, दान से भोग और तप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। दान दो प्रकार का है—सांसारिक और पारलौकिक। जो दान सत्पात्र को दिया जाता है वह पारलौकिक सुख और जो असत्पात्र को दिया जाता है वह सांसारिक सुख देता है। जो जैसा दान करता है वह वैसा फल भोगता है।

भरद्वाज ने पूछा—महर्षि! कौन धर्म किसका है, धर्म के क्या लक्षण हैं और धर्म कितने प्रकार का है?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, जो बुद्धिमान् मनुष्य अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं वे स्वर्ग का सुख पा सकते हैं और जो इसके विरुद्ध करते हैं वे मूढ़ हैं।

भरद्वाज ने कहा—महात्मन्, प्राचीन महर्षियों ने चार आश्रमों के जो धर्म बतलाये हैं और उन्होंने स्वयं जिन धर्मों का आचरण किया है उनका आप वर्णन कीजिए।

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, पहले ब्रह्माजी ने प्रजा के हित और धर्म की रक्षा के लिए चार आश्रम बनाये। चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य सबसे श्रेष्ठ है। इस आश्रम में रहनेवाले पवित्रता, संस्कार, विनय, नियम और व्रत का पालन करते हुए प्रातःकाल सूर्य और सायङ्काल अग्नि की उपासना करें; निद्रा और आलस्य छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और उनकी सेवा, प्रार्थना किया करें तथा वेद का पढ़ना और सुनना, तीन बार स्नान, अग्नि की रक्षा और नित्य भिक्षा-वृत्ति आदि करना उनका कर्तव्य है। इस प्रकार वे अपने आत्मा को पवित्र करते रहें। शास्त्र का वचन है कि जो ब्रह्मचारी गुरु की सेवा करके वेद पढ़ता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उसके मनोरथ सिद्ध होते हैं। गार्हस्थ्य दूसरा आश्रम है। इस आश्रम के धर्म और

लक्षण सुनो। ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त करके सदाचार और धर्म का आचरण करता हुआ जो फल पाने की इच्छा करता है उसी के लिए गृहस्थाश्रम का विधान है। इस आश्रम में धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है। सोने आदि की खान से अथवा वेदाध्ययन के प्रभाव से या यज्ञ-होम आदि कर्मों के फल-स्वरूप देवता के प्रसाद से जो धन प्राप्त हो उसी से गृहस्थ मनुष्य अपना निर्वाह करें। यही आश्रम सब आश्रमों का मूल है। गुरुकुल में रहनेवाले, परिव्राजक और अन्यान्य व्रत-नियमों का पालन करनेवाले, सभी गृहस्थ के आश्रित हैं। वानप्रस्थ १०
आश्रम में रहनेवालों के लिए धन का संग्रह करना निषिद्ध है। वे लोग सदा वेद का पाठ, तीर्थ-यात्रा और देशों के देखने के लिए पृथिवी-पर्यटन करते रहते हैं। उनको देखकर खड़े हो जाना, प्रणाम करना और खुले दिल से मीठी बातें करके उन्हें आसन, शय्या और भोजन देना तथा सब तरह से उनका सत्कार करना गृहस्थों का धर्म है। शास्त्र का वचन है कि जो गृहस्थ यथासाध्य अतिथि-सत्कार नहीं करता उसके घर से हताश होकर लौटते समय अतिथि अपना सञ्चित पाप उसे देकर उसका उपार्जित सब पुण्य ले लेता है। गृहस्थाश्रम में यज्ञ करने से देवता, श्राद्ध और तर्पण करने से पितर, वेद आदि के पढ़ने, सुनने और मनन करने से ऋषि और पुत्र उत्पन्न करने से ब्रह्माजी सन्तुष्ट होते हैं। सब प्राणियों से प्रेम रखना और सबसे मीठी बातें करना चाहिए। निन्दा, कठोर वचन, अवज्ञा, अहङ्कार और दम्भ से गृहस्थों को बचना चाहिए। सत्य बोलना और हिंसा तथा क्रोध न करना सभी आश्रमवासियों के लिए तप-स्वरूप है। गृहस्थ आश्रम में माला, गहने और कपड़े पहनना, तेल और उबटन लगाना, नाच देखना, गाना-बजाना और खाने-पीने आदि की अनेक वस्तुओं के स्वाद लेना, ये सब अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) तथा सत्त्व, रज और तमोगुण का उपयोग करता है वह इस लोक में सुख पाकर अन्त को सद्गति पाता है। जो गृहस्थ इच्छाओं को त्यागकर उञ्छवृत्ति से निर्वाह करता हुआ अपने धर्म का पालन करता है उसके लिए स्वर्ग की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। १८

एक सौ बानवे अध्याय

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के लक्षण कहना तथा हिमालय के उत्तर में परलोक बतलाना

भृगु कहते हैं—हे भरद्वाज! वानप्रस्थी लोग अपने धर्म के अनुसार तीर्थ, नदी और झरने आदि अनेक स्थानों में घूमते तथा मृग, भैंसे, वराह, सिंह और जङ्गली हाथियों से भरे हुए वन में तप करते हैं। ग्राम्य वस्त्र, भोजन और उपभोग उन्हें पसन्द नहीं आते। वे लोग वन के फल, मूल, पत्ते और ओषधि का परिमित आहार करते; पृथिवी, पत्थर, बालू, कँकरीली

ज़मीन और भस्म के ऊपर सोते; कुश, काश, चमड़ा और वल्कल पहिनते; सिर के बाल, दाढ़ी, नख और रोएँ रखते तथा नियमित समय पर स्नान और नियमानुसार बलि तथा होम करते हैं। वे लोग होम के लिए लकड़ी, कुश और फूल आदि पूजा की सामग्री इकट्ठा किये बिना विश्राम नहीं करते। हमेशा गरमी-सरदी और आँधी-पानी को सहते हैं। अनेक प्रकार के नियम और संयम करते रहने के कारण उनकी खाल सिकुड़ जाती तथा मांस और रक्त सूख जाता है। उनके शरीर में केवल हड्डी और खाल रह जाती है। वे लोग बड़े धैर्यवान् होते हैं। ब्रह्मर्षियों के बतलाये हुए नियमों का जो इस प्रकार पालन करता है वह, अग्नि के समान, दोषों को जलाकर दुर्जय लोक प्राप्त करता है।

अब संन्यासियों के आचरण सुनो। संन्यासी लोग अग्नि, धन, स्त्री और अन्यान्य भोग्य वस्तुओं का त्याग करके स्नेह के बन्धन से छूटकर विचरते रहते हैं। वे महात्मा लोग मिट्टी और सोने को बराबर समझते हैं। धर्म, अर्थ और काम में वे आसक्त नहीं होते। वे शत्रु, मित्र और उदासीन, सभी को समान भाव से देखते हैं और मन-वचन-शरीर से किसी का अपकार नहीं करते। उनके रहने का कोई स्थान निश्चित नहीं रहता। वे पहाड़ों पर, नदियों के किनारे, पेड़ों के नीचे और मन्दिरों में घूमा करते हैं। वे किसी नगर में लगातार पाँच दिन और किसी गाँव में एक दिन से अधिक नहीं ठहरते। वे जब कभी गाँव या नगर में जाते हैं तब किसी सदाचारी ब्राह्मण के यहाँ ठहरते हैं। वे कभी किसी से कुछ माँगते नहीं; जो कुछ मिल जाता है उसी में सन्तुष्ट रहते हैं। वे कभी न तो काम, क्रोध, लोभ और मोह के वश होते हैं और न अहंकार, दूसरों की निन्दा या हिंसा करते हैं। शास्त्र का वचन है कि जिससे किसी प्राणी को भय नहीं होता उसे भी किसी का भय नहीं रहता। जो अपने शरीर में स्थित अग्नि में अग्निहोत्र करके उस अग्नि के उद्देश्य से अपने मुँह में, भिक्षा से प्राप्त, अन्न का हवन करता है वह अग्निहोत्र करनेवालों के लोक को प्राप्त करता है। जो वासनाहीन होकर शुद्ध चित्त से शास्त्र के अनुसार मोक्ष आश्रम का आश्रय लेता है वह, बिना ईंधन की आग के समान, शान्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है।

भरद्वाज ने कहा—ब्रह्मन्, सुना जाता है कि इस लोक से परे कोई दूसरा लोक भी है किन्तु उस लोक को किसी ने कभी नहीं देखा। तो वह लोक किस प्रकार का है?

भृगु ने कहा—तपोधन, उत्तर दिशा में हिमालय के पास सर्वगुणसम्पन्न परम पवित्र मंगलजनक पापहीन एक लोक है। वही परलोक कहलाता है। लोभ-मोह से रहित शुद्ध-चित्त पुण्यात्मा मनुष्य उस लोक में शान्ति से रहते हैं। वहाँ अकालमृत्यु और रोग नाम के
१० लिए भी नहीं है। इन सब गुणों के होने से ही वह देश स्वर्ग के समान है। उस स्थान में रहनेवाले मनुष्य अपनी-अपनी स्त्रियों में अनुराग रखते हैं; वे दूसरे की स्त्री का लोभ नहीं

करते। एक-दूसरे को कभी नहीं सताते और कभी विस्मय नहीं करते। उनमें अधर्म नहीं होता। किसी को किसी विषय में सन्देह नहीं होता और वहाँ सब कर्मों का फल प्रत्यक्ष हो जाता है। उस लोक में कोई तो महलों में निवास करके सोने के गहनों से भूषित होकर श्रेष्ठ वस्तुओं को खाता-पीता हुआ अपनी सब इच्छाएँ पूर्ण करता है और कोई भोग की इच्छाओं को त्यागकर परमात्मा का ध्यान करता है। कोई कठिन परिश्रम करके योगबल प्राप्त कर लेता है। इस लोक की अपेक्षा वह लोक सर्वथा उत्तम है। इस लोक में कोई धर्मात्मा, कोई निठुर, कोई सुखी, कोई दुखी, कोई धनवान् और कोई निर्धन रहता है। मूर्ख लोग हमेशा श्रम, भय, मोह, भूख और धन के लोभ में फँसे रहते हैं। इस लोक में धर्म और अधर्म की चर्चा होती रहती है। जो बुद्धिमान् मनुष्य इन दोनों को भली भाँति जानता है वह पाप में लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य दम्भ, चोरी, दूसरों की निन्दा, ईर्ष्या, हिंसा और दुष्टता करता, झूठ बोलता और दूसरों को सताता है उसकी तपस्या नष्ट हो जाती है। जो विवेकी मनुष्य इन दोषों से बचा रहता है उसकी तपस्या बढ़ती है। इस लोक में धर्म-अधर्म का विचार और कर्म अनेक प्रकार के हैं। इस लोक का नाम कर्मभूमि है। मनुष्य इस लोक में शुभ और अशुभ कर्म करते हैं। जो शुभ कर्म करता है उसे शुभ फल और जो अशुभ कर्म करता है उसे अशुभ फल मिलता है। प्रजापति ब्रह्मा, देवताओं और ऋषियों ने तप के प्रभाव से पवित्र होकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति की है। २०
जो लोग इस लोक में शुभ कर्म और योग का अभ्यास करते हैं उन पुण्यात्माओं को उत्तर दिशा का पूर्वोक्त लोक प्राप्त होता है और जो अशुभ कर्म करते हैं उनकी आयु क्षीण हो जाती है। वे मरने पर तिर्यग्योनि में जन्म पाते हैं। एक-दूसरे को सतानेवाले लोभी और मोहान्ध लोग उत्तर दिशा में स्थित परलोक को प्राप्त नहीं कर सकते। वे बार-बार इस लोक में जन्म लेते हैं। जो ब्रह्मचारी नियम का पालन करते हुए गुरु की सेवा करते हैं वे बुद्धिमान् लोग सब लोकों के मार्ग को समझ सकते हैं। ब्रह्मन्, मैंने यह वेदोक्त धर्म संक्षेप में बतला दिया। जो मनुष्य संसार में कर्तव्य और अकर्तव्य को अच्छी तरह समझ सकता है वही बुद्धिमान् है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, महर्षि भृगु के इन वचनों को सुनकर प्रतापी धर्मात्मा भरद्वाज को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने भृगु की यथोचित पूजा की। मैंने यह सृष्टि की उत्पत्ति का विषय बतला दिया। अब तुम्हें और क्या पूछना है? २७

एक सौ तिरानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सदाचार का निरूपण करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मेरी राय में आप बड़े बहुदर्शी हैं। मैं आपके मुँह से सदाचार का वर्णन सुनना चाहता हूँ।

भीष्म ने कहा—बेटा ! दुराचारी, दुश्चेष्ट, दुर्बुद्धि और बेसमझे-बूझे काम कर डालने-वाले मनुष्य दुर्जन और सदाचारी मनुष्य सज्जन कहलाते हैं। सज्जन बड़ी सड़कों पर, अन्न में और गायों के रहने की जगहों में कभी मल-मूत्र नहीं त्यागते। आवश्यक शुद्धि के बाद स्नान करे और स्नान करके देवताओं का तर्पण करे। सूर्य की उपासना नित्य करनी चाहिए। सूर्य के उदय होने पर सोना उचित नहीं। प्रातःकाल पूर्व की ओर और सायङ्काल पश्चिम की ओर मुँह करके गायत्री का जप करे। हाथ-पैर और मुँह धोकर पूर्वमुख बैठकर चुपचाप भोजन करना चाहिए। भोजन की निन्दा न करे। स्वादिष्ठ भोजन करे, पानी पीकर उठे और गीले पैरों रात में न सोवे। ये आचरण के लक्षण देवर्षि नारद ने बतलाये हैं। यज्ञ आदि के स्थान, बैल, देव-मन्दिर, चौराहे, धार्मिक ब्राह्मण और चैत्यवृक्ष की प्रतिदिन प्रदक्षिणा करनी चाहिए। अतिथि, नौकर-चाकर और अपने परिवार के लोगों को एक ही तरह का भोजन कराना चाहिए। प्रातःकाल और सन्ध्या के समय मनुष्यों को भोजन करना उचित है। अन्य समय भोजन न करे। सबेरे और शाम को भोजन करने से उपवास का फल मिलता है। होम करने के समय होम करने और परस्त्री का संसर्ग न करके अपनी स्त्री के साथ ऋतुकाल में सहवास करने से ब्रह्मचर्य रखने का फल मिलता है। ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों के भोजन करने से बचे हुए अन्न को माता के हृदय के समान हितकर बतलाया है। जो ब्राह्मणों के भोजन कर चुकने पर भोजन करता है वह सत्पुरुष सत्यलोक को जाता है। व्यर्थ ढेला तोड़नेवाले, तिनका तोड़नेवाले, दाँतों से नाखून काटनेवाले, हमेशा कुछ न कुछ खाते रहनेवाले और लोभी कामी मनुष्य की आयु कम हो जाती है। जिसने मांस खाना छोड़ दिया हो वह यजुर्वेद के जानने-वाले ब्राह्मण द्वारा संस्कार किया हुआ मांस भी न खाय। बिना संस्कार किया हुआ मांस तथा श्राद्ध से बचा हुआ मांस तो खाना ही न चाहिए। देश में हो या विदेश में, अतिथि को भूखा न रक्खे। भीख में जो कुछ अन्न आदि मिले उसे माता-पिता प्रभृति को दे दे। बड़े-बूढ़ों को बैठने के लिए आसन देना और उनको प्रणाम करना चाहिए। बड़े-बूढ़ों का आदर करने से आयु, कीर्ति और धन की वृद्धि होती है। उदय होते हुए सूर्य और नङ्गी परस्त्री को न देखे। ऋतुकाल में स्त्री-संसर्ग करे, किन्तु एकान्त में। सब तीर्थों में गुरु और सब पवित्र वस्तुओं में अग्नि श्रेष्ठ है। गाय की पूँछ का स्पर्श आदि जिन कामों को सज्जन करते हैं वे काम प्रशंसनीय हैं। किसी के मिलने पर उससे क्षेम-कुशल पूछना चाहिए। सबेरे और शाम को, ब्राह्मणों को प्रणाम अवश्य किया करे। देवमन्दिर, गायों के रहने के स्थान, ब्राह्मणों के धर्म-कर्म, वेदाध्ययन और भोजन में दाहिने हाथ से काम लेना चाहिए। प्रातः और सन्ध्या समय ब्राह्मणों की पूजा करने का फल प्रत्यक्ष मिल जाता है; यही सबसे बढ़कर व्यापार और खेती है। ब्राह्मणों की पूजा करने से सुन्दरी स्त्री और अन्न-वस्त्र आदि की कमी नहीं रहती। ब्राह्मणों

को भोजन कराते समय 'सम्पन्नं', पानी देते समय 'तर्पणं' और खीर, खिचड़ी तथा तिलोदन देते समय 'शृतं' कहना चाहिए। रोगी मनुष्य क्षौरकर्म करने, छींकने, स्नान और भोजन करने पर ब्राह्मणों को प्रणाम करे। ऐसा करने से रोगी की उम्र बढ़ती है। न तो सूर्य की ओर मुँह करके पेशाब करे और न कभी अपने मल को देखे। स्त्री के साथ भोजन और शयन न करे। अपने से श्रेष्ठ लोगों को 'तुम' कहना और उनका नाम लेकर पुकारना ठीक नहीं। बराबरवालों को और अपने से छोटों को 'तुम' कहने में कोई दोष नहीं है। पापियों के मुँह और उनकी आँखों का विकार देखने से उनके मन का भाव मालूम हो जाता है। मूर्ख लोग जान-बूझकर पाप करके फिर उसे छिपाना चाहते हैं, किन्तु अन्त को उस छिपे पाप के कारण उनका नाश हो जाता है। पाप मनुष्यों से भले ही छिपा लिया जा सके, किन्तु देवता तो उसे देख ही लेते हैं। छिपाने से पाप बढ़ता है और धर्म को गुप्त रक्खा जाय तो उसकी वृद्धि होती है। मूढ़ मनुष्य पाप करके उसकी कुछ चिन्ता भी नहीं करता, किन्तु जैसे समय आने पर राहु चन्द्रमा के पास पहुँच जाता है वैसे ही पाप-कर्म भी यथासमय उस पाप करनेवाले के पास आ जाता है। किसी आशा से द्रव्य का सञ्चय करके उसका भोग करना बहुत कठिन है, क्योंकि मृत्यु किसी बात की प्रतीक्षा नहीं करती। इसी से समझदार लोग इस प्रकार के सञ्चय की निन्दा करते हैं। ३०
विद्वानों का मत है कि मनुष्यों का मन ही धर्म उपार्जन करने का मूल है, इसलिए हमेशा मन से दूसरों का भला मनाते रहना सज्जनों का काम है। धर्म करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं, धर्म-कार्य अकेले ही करना चाहिए। धर्म करने से ही मनुष्यत्व और देवत्व प्राप्त होता है। धर्म के प्रभाव से मनुष्यों का सम्मान होता और परलोक में परम सुख मिलता है। ३३

एक सौ चौरानवे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को अध्यात्म-योग बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, शास्त्र में मनुष्यों के लिए जो अध्यात्म (योग-धर्म) बतलाया गया है वह किस प्रकार का है? वह किससे उत्पन्न हुआ है और प्रलयकाल में वह किसमें लीन हो जायगा?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, तुमने जिस धर्म को मुझसे पूछा है उस श्रेयस्कर सुख-स्वरूप धर्म के तत्त्व का मैं वर्णन करता हूँ। आचार्यों ने सृष्टि और प्रलय का विषय विशेष रूप से कहा है। जो मनुष्य उस विषय को भली भाँति समझता है उसे प्रीति और सुख प्राप्त होता है। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, इन पाँच महाभूतों से सब प्राणी उत्पन्न और नष्ट होते हैं। ये सब महाभूत समुद्र की तरङ्गों के समान बार-बार जिससे उत्पन्न होते हैं उसी में लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को बार-बार फैलाता और सिकोड़ता है वैसे ही

सृष्टिकर्ता बार-बार संसार की सृष्टि और प्रलय करता रहता है। परमात्मा ने प्राणियों के शरीर में पञ्चमहाभूतों को स्थापित कर दिया है, किन्तु देहाभिमानी जीव उनके वैषम्य को नहीं समझ सकता अर्थात् यह नहीं जान सकता कि शरीर का कौन भाग पृथिवी का अंश और कौन जल आदि का है। शब्द, श्रोत्र और सम्पूर्ण छिद्र आकाश के गुण हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा, ये तीन वायु के; रूप, नेत्र और परिपाक तेज के; रस, क्लेद और जिह्वा जल के तथा गन्ध, नासिका और शरीर पृथिवी के गुण हैं। इस प्रकार ये पाँच महाभूत और छठा मन
११ जीवात्मा को सब विषयों का ज्ञान कराते हैं। इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण करती हैं, मन उस विषय में सन्देह उत्पन्न करता है और बुद्धि उस विषय का ठीक-ठीक निर्णय करती है। जीवात्मा शरीर में साक्षी के समान रहकर सिर से पैर तक देखता रहता है। वह शरीर के सब अङ्गों में व्याप्त रहता है। सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण इन्द्रियों का आश्रय करके शरीर में रहते हैं। इसलिए मनुष्यों को इन्द्रियों की परीक्षा भली भाँति करते रहना चाहिए। बुद्धि के प्रभाव से उत्पत्ति और प्रलय का स्थान मालूम हो जाने पर मनुष्यों को शान्ति मिलती है। तम आदि तीनों गुण बुद्धि को वश में रखते हैं, बुद्धि पाँचों इन्द्रियों को और मन को विषयों में आसक्त रखती है, अतएव बुद्धि के अभाव में तीनों गुण और इन्द्रिय आदि कोई भी काम नहीं कर सकते। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी बुद्धिसम्पन्न होने से ही उत्पन्न और बुद्धिहीन होने से नष्ट हो जाते हैं। इसी से प्राणियों को बुद्धिमय कहा है। बुद्धि के प्रभाव से ही आँखों से देखा जाता, कानों से सुना जाता, नाक से सूँघा जाता, जिह्वा से स्वाद और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान
२० होता है तथा मन से सोच-विचार किया जाता है। आँख, कान आदि इन्द्रियाँ बुद्धि को विषयों का ज्ञान कराने के लिए केवल द्वार-स्वरूप हैं। जीवात्मा इन इन्द्रियों को अपने-अपने काम में लगाता है। बुद्धि प्राणियों की देह में आश्रय करके कभी प्रसन्नता और कभी सन्ताप उत्पन्न करती है। जैसे बड़ी तरङ्गोंवाला समुद्र अपनी सीमा से बाहर नहीं जाता वैसे ही बुद्धि सुख, दुःख और मोह इन तीन भावों को नहीं लाँघ सकती। बुद्धि कभी-कभी सुख-दुःख आदि भावों का त्याग तो कर देती है, किन्तु उस समय उसे मन में ठहर जाना पड़ता है और रजोगुण के प्रभाव से फिर उन्हीं सुख-दुःख आदि भावों में आना पड़ता है। बुद्धि रजोगुण से युक्त होकर इन्द्रियों का ज्ञान, सत्त्वगुण से युक्त होने पर यथार्थ ज्ञान और तमोगुण से युक्त होने पर मोह आदि उत्पन्न करती है। शम, दम, काम, क्रोध, भय और विषाद आदि सब इन्हीं तीन गुणों में विद्यमान रहते हैं। मैंने विस्तार के साथ यह बुद्धि के विषय का वर्णन किया।

बुद्धिमान् मनुष्य को सब इन्द्रियाँ अपने अधीन रखनी चाहिएँ। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण हमेशा प्राणियों का आश्रय करते हैं। सभी प्राणियों में सात्त्विकी, राजसी और तामसी, यह तीन प्रकार की बुद्धि देखी जाती है। सत्त्वगुण के प्रभाव से सुख और रजोगुण के

प्रभाव से दुःख उत्पन्न होता है। तमोगुण के प्रभाव से सुख और दुःख तो नहीं होता; किन्तु उससे मोह उत्पन्न होता है। मनुष्यों के शरीर और मन में जो प्रीतियुक्त भाव उत्पन्न होता है ३०
वह सात्त्विक भाव, जो अप्रीति और दुःखयुक्त भाव पैदा होता है वह राजस भाव और जो मोहयुक्त भाव उत्पन्न होकर मूढ़ बना देता है वह तामस-भाव कहलाता है। राजस भाव उत्पन्न होने पर उसे दूर करने का उद्योग करना चाहिए। उससे डरकर दुखी और चिन्तित न हो। सत्त्वगुण से हर्ष, प्रीति, आनन्द और शान्त भाव उत्पन्न होता है। रजोगुण से असन्तोष, सन्ताप, शोक, लोभ और असहनशीलता तथा तमोगुण से अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य पैदा होता है। जिसका मन दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति और विविध विषयों के विचार में लगा रहता है तथा जो दीन भाव और नियमित वृत्ति से रहता है वह दोनों लोकों में सुख पाता है।

अब बुद्धि और आत्मा का भेद सुनो। बुद्धि से अहङ्कार आदि गुणों की उत्पत्ति होती है, किन्तु आत्मा इन बातों से अलग रहता है। जैसे गूलर के फल और उनके भीतर रहनेवाले पतङ्गे तथा पानी से अलग न रहनेवाली मछली और पानी, ये भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं वैसे ही बुद्धि और आत्मा सदा एक साथ रहने पर भी स्वभावतः अलग-अलग हैं। अहङ्कार आदि गुण आत्मा ४०
को नहीं जानते किन्तु आत्मा इन गुणों को जानता रहता है। आत्मा अहङ्कार आदि गुणों का द्रष्टा होकर उन्हें अपने से उत्पन्न हुआ मानता है। जैसे घड़े में रक्खा हुआ दीपक, घड़े के छेदों से, अपना तेज प्रकाशित करके वस्तुओं का ज्ञान कराता है वैसे ही परमात्मा—चेष्टाशून्य आत्मज्ञान-रहित—बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा समस्त अर्थ प्रकाशित करता है। बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है और आत्मा उनको देखता है। आत्मा और बुद्धि का यह सम्बन्ध अनादि है। बुद्धि और आत्मा का और कोई आश्रय नहीं है। बुद्धि मन को प्रकाशित करती है किन्तु अहङ्कार आदि गुणों का प्रकाश नहीं कर सकती। जब आत्मा बुद्धि के द्वार-स्वरूप सब इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है तब, घड़े के भीतर रक्खे हुए प्रज्वलित दीपक की शिखा के समान, स्वयं प्रकाशित होता है। मनुष्य संन्यास-धर्म का अवलम्बन करके आत्मनिष्ठ और ध्यान-निरत होकर ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करके निस्सन्देह उत्तम गति प्राप्त कर सकता है। जैसे हंस जल में रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता वैसे ही विवेकी मनुष्य संसार में रहता हुआ सांसारिक कामों में लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य संसार में लिप्त न होकर अपनी बुद्धि से शोक, हर्ष और मात्सर्य को त्यागकर ब्रह्मनिष्ठ और जीवन्मुक्त हो सकता है वह—जैसे मकड़ी जाला पैदा करती है वैसे ही—सब गुणों की उत्पत्ति कर सकता है। कोई तो कहते हैं कि जीवन्मुक्त मनुष्य के सब गुण एकबारगी नष्ट नहीं हो जाते और किसी की सम्मति में ये सब एक साथ नष्ट हो जाते हैं। जो जीवन्मुक्त मनुष्यों के सब गुणों का विनाश नहीं मानते वे कहते हैं कि वेद में इनके विनाश हो जाने का कोई प्रमाण नहीं है, केवल स्मृतियों में प्रमाण है।

अतएव जीवन्मुक्त मनुष्यों के गुणों का विनाश स्वीकार करना ठीक नहीं। विवेकी मनुष्य अपनी
५१ बुद्धि से इन दोनों मतों को अच्छी तरह समझकर काम करे। बुद्धि को भ्रम में डालनेवाले सन्देहों को दूर करके सुख से रहे। कभी शोक से व्याकुल न हो। मलिन हृदयवाला मनुष्य बुद्धि-रूपी नदी में ग़ोता लगाने से शुद्ध हो जाता है। बुद्धि से बढ़कर पवित्र और कुछ नहीं है। नदियों का पार देख लेने से कुछ फल नहीं होता, नाव आदि द्वारा उसके पार जाने पर ही मनुष्य कृतकार्य हो सकता है; किन्तु बुद्धि-रूपी नदी को जान लेने से ही सिद्धि हो जाती है; उसके पार जाने के लिए नाव आदि किसी आधार की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिसे निर्विषयक अध्यात्म-ज्ञान उत्पन्न होता है वही श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य प्राणियों की उत्पत्ति और उनके विनाश पर विशेष रूप से विचार करता रहता है वह अनन्त सुख प्राप्त करता है। जो मनुष्य धर्म, अर्थ और काम को नश्वर समझकर उनका त्याग कर देता है वही ध्यानशील और तत्त्वदर्शी होकर आत्मा का दर्शन करता हुआ तृप्त रहता है। रूप-रस आदि विषयों में आसक्त दुर्निवार इन्द्रियों को संयत किये बिना आत्मदर्शन होना असम्भव है। आत्मज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान नहीं है। मनस्वी मनुष्य आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके अपने को कृतार्थ मानता है। अविवेकी मनुष्यों को जिससे भय बना रहता है उससे ज्ञानी मनुष्यों को रत्ती भर भी डर नहीं रहता। मुक्ति सभी की एक सी है। जो सगुण हैं उनके गुणों की तुलना होती
६० है; किन्तु जो निर्गुण हैं उनकी—किसी प्रकार की—तुलना नहीं की जा सकती। जो निष्काम होकर कर्म करता है उसके पूर्वकृत कर्मों के सब दोषों का संशोधन हो जाता है और उसके पुराने या नये कर्म उसके लिए बन्धन का कारण नहीं होते। कर्म के द्वारा मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होना असम्भव है। विवेकी मनुष्य काम क्रोध आदि व्यसनों में आसक्त मनुष्यों को धिक्कारते हैं। निन्दित कामों के करनेवाले मनुष्य अपने जीवन-काल में सबके निन्दापात्र रहते और मरने पर पशु आदि नीच योनियों में जन्म पाते हैं। पापी लोग स्त्री-पुत्र आदि के मरने पर दुखी होते हैं; किन्तु ज्ञानी मनुष्य स्त्री-पुत्र आदि का नाश होने पर भी शोक नहीं करता। इन विषयों पर
६३ शान्त चित्त से विचार करना चाहिए।

एक सौ पञ्चानबे अध्याय

ध्यान-योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! अब मैं चार प्रकार के उस ध्यान का वर्णन करता हूँ, जिसे भली भाँति जानकर महर्षियों ने सिद्धि प्राप्त की है। मोक्ष के चाहनेवाले ज्ञानवान् महर्षि लोग वही काम करते हैं जिससे निर्विघ्न ध्यान हो सके और राग-द्वेष आदि से बचकर परमात्मा में मन लगाते हैं। उन्हें फिर संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। काम-क्रोध-लोभ आदि को

त्यागकर, आत्मनिष्ठ होकर, सरदी-गरमी आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए सत्त्वगुणावलम्बी और प्रतिग्रहशून्य होकर, ऐसे स्थान में स्थिर भाव से बैठकर परमात्मा में मन लगावे जहाँ स्त्री आदि का संसर्ग और ध्यानविरोधी वस्तुएँ न हों। ध्यान में इस तरह मग्न रहे कि उस समय कानों से शब्द, त्वचा से स्पर्श, आँखों से रूप, जीभ से रस और नाक से गन्ध का ज्ञान न हो। उस समय ध्यान के प्रभाव से इन्द्रियों के सब काम रुके रहें। जो शब्द आदि विषय कान आदि पाँच इन्द्रियों को व्याकुल किये रहते हैं उनमें फिर उसकी इच्छा न रहे।

विवेकी मनुष्य इन्द्रियों को मन के साथ मिलाकर फिर चञ्चल मन को स्थिर करे। मन कभी स्थिर नहीं रहता, वह इन्द्रियों को हमेशा विषयों में प्रेरित करता रहता है। पाँच इन्द्रियाँ उसके पाँच द्वार हैं। अतएव ध्यान-मार्ग में सबसे पहले मन का साधन करना चाहिए। पाँच इन्द्रियों से युक्त आत्मा के छठे अङ्ग मन को इस प्रकार रोकने पर भी, बादलों में बिजली के प्रकाश की तरह, वह बार-बार विषयों को ग्रहण करने के लिए चलायमान हुआ करता है। जैसे पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद हिलती-डुलती रहती है वैसे ही ध्यान-मार्ग में स्थित जीवात्मा का मन चञ्चल बना रहता है। यदि किसी क्षण ध्यान में मन स्थिर किया भी जाता है तो वह नाड़ी-मार्ग में प्रवेश करके फिर अति चञ्चल हो उठता है। उस समय ध्यान-योग के मर्मज्ञ लोग, आलस्य छोड़कर, ध्यान के प्रभाव से फिर मन को स्थिर करें। योगी लोग योग का आरम्भ करने के पहले विचार, विवेक और वितर्क नाम के ध्यान करते हैं। चञ्चल मन को एकाग्र करके अपना भला करना चाहिए। योगी पुरुष योग के विषय में कभी ऊबे नहीं। जैसे धूलि, राख और सूखे गोबर के चूर्ण पर पानी छिड़कने से वह जल्दी गीला नहीं हो सकता, देर तक छिड़कते रहने पर ही गीला होता है वैसे ही मन धीरे-धीरे वश में किया जाता है। ध्यान-मार्ग में स्थित जो मनुष्य मन और इन्द्रियों को क्रमशः वश में कर सकता है वह अन्त को मन और इन्द्रियों समेत आत्मा को शान्त कर लेता है। अभ्यास करते-करते मन और इन्द्रियों को शान्त कर लेने पर योगी स्वयं शान्त भाव को प्राप्त होता है। योगी लोग योग के प्रभाव से जैसा सुख प्राप्त कर सकते हैं वैसा सुख दूसरे लोग भाग्य या उद्योग के द्वारा कभी नहीं पा सकते। हे धर्मराज, योगी लोग ध्यान के प्रभाव से आनन्दपूर्वक मोक्ष पद प्राप्त करते हैं।

एक सौ छानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जप का फल बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आपने चारों आश्रमों के धर्म, राज-धर्म, अनेक इतिहास और अनेक प्रकार की कथाओं का वर्णन किया और उन सबको मैंने अच्छी तरह सुना। अब मुझे एक और प्रश्न करना है। जापक लोगों को कौन सा फल मिलता है और मरने पर

वे किस लोक को जाते हैं ? जप करने की क्या विधि है ? जप करनेवालों को सांख्य का मत माननेवाले, योगी या यज्ञ करनेवाले, क्या समझना चाहिए ?

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज ! इस विषय में एक ब्राह्मण, यम, काल और मृत्यु का प्राचीन इतिहास सुनो। मोक्ष-धर्म के जानकार मुनि लोग सांख्य और योग-धर्म का जो वर्णन कर गये हैं उसमें, सांख्य के मत से, जप न करना ही बतलाया गया है। इस मत में तो अपने मन में ही ब्रह्म की उपासना का विधान है। सांख्य और योग का मत है कि जब तक आत्मा का साक्षात्कार न हो जाय तब तक प्रणव का जप करने से लाभ होता है; किन्तु आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर जप करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जो मनुष्य स्वर्ग आदि प्राप्त करने की इच्छा से जप करे उसे चित्त-संयम, इन्द्रिय-निग्रह, सत्य व्यवहार, अग्नि की उपासना, एकान्त-वास, ध्यान, तप और परिमित भोजन करना चाहिए; वह काम-क्रोध और ईर्ष्या आदि का त्याग
११ करके क्षमावान् और शान्त रहे। जो मनुष्य निष्काम होकर जप करे उसे सब कर्मों का त्याग करके केवल कुशों पर बैठना, कुशों को धारण करना, कुशों से शिखा बाँधना, कुशों को ओढ़ना और सब विषयों का त्याग करके मन को आत्मा में लगाना चाहिए। वह इच्छाओं का त्याग करके गायत्री आदि का जप करते-करते समाधि लगावे और अन्त को जप करना भी छोड़ दे। गायत्री आदि का जप करने से समाधि का ज्ञान उत्पन्न होता है। शुद्धचित्त, जितेन्द्रिय, काम-द्वेष-हीन, राग, मोह और द्वन्द्व से रहित मनुष्य न किसी विषय में आसक्त होता है और न कभी सोच करता है। ऐसे मनुष्य न तो कोई कर्म करते हैं और न उन्हें किसी कर्म का फल भोगना पड़ता है। वे अहङ्कार के वश होकर किसी विषय में मन नहीं लगाते। न तो वे धन प्राप्त करने की इच्छा करते हैं और न किसी का अनादर तथा अकार्य करते हैं। लगातार ध्यान में मग्न रहकर चित्त को एकाग्र
२० करके फिर क्रमशः उसका भी त्याग कर देते हैं। जो सब वासनाओं को छोड़कर इस अवस्था में शरीर का त्याग करता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। यदि वह ब्रह्म में लीन होना पसन्द नहीं करता तो ब्रह्मलोक को जाता है; उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो आत्मा का साक्षा-
२३ त्कार कर लेता है वह रजोगुण से हीन, जरा-मरण-रहित विशुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है।

एक सौ सत्तानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जापक का उपाख्यान सुनाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, आपने जप करनेवालों की जो गति बतलाई है उसके सिवा उनकी और भी कोई गति होती है या नहीं ?

भीष्म ने कहा—बेटा, जप करनेवाले जिस तरह नरकगामी होते हैं सो ध्यान देकर सुनो। जो व्यक्ति श्रद्धा, भक्ति तथा हर्ष-सहित विधिपूर्वक जप नहीं करता और जो अभिमान

में आकर दूसरों का अनादर करता है उसे नरक में गिरना पड़ता है। किसी फल के लिए जप करनेवाला भी नरक में गिरता है। जो जप करनेवाला ऐश्वर्य के लिए लालायित रहता है वह ऐश्वर्य-लाभ-रूप नरक से कभी छुटकारा नहीं पाता। जप करनेवाले की जिन विषयों में प्रीति होती है वे सब उसे मिलते हैं। जो जापक दुर्बुद्धि, ज्ञानहीन और चञ्चल स्वभाव का होता है उसे चञ्चल गति मिलती है या नरक भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति बालकस्वभाव, अविवेकी और मोह के वश रहकर जप करता है और जो दृढ़प्रतिज्ञ होने पर भी पूर्ण रूप से जप नहीं कर सकता उसे नरकगामी होकर पछताना पड़ता है। ११

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जप करवाले भी तो स्वाभाविक अव्यक्त ब्रह्मभाव को प्राप्त करते हैं तो फिर उन्हें क्यों इस लोक में जन्म लेना पड़ता है?

भीष्म ने कहा—बेटा, जप की क्रियाएँ बहुत कठिन हैं। जो बुद्धिहीन मनुष्य उपर्युक्त दोषों का त्याग किये बिना जप करता है उसे नरक प्राप्त होता है। १३

एक सौ अट्ठानबे अध्याय

जापक का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, विधिपूर्वक जप न करनेवाले किस नरक को जाते हैं? यह सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम धर्म के अंश से उत्पन्न और स्वभावतः धार्मिक हो। अतएव सावधान होकर मेरे धर्ममूलक वचन सुनो। दिव्यदेहधारी महामति चारों लोकपाल, शुक्राचार्य, बृहस्पति, अश्विनीकुमार, मरुत्, विश्वेदेवा, साध्य, रुद्र, आदित्य, वसु और अन्यान्य देवताओं के दिव्य इच्छाचारी विमान, सभा, विविध क्रीड़ास्थान और सुवर्णमय कमलों से शोभित जो सरोवर हैं वे सब परमात्मा-रूप स्थान से अत्यन्त निकृष्ट और नरक-स्वरूप हैं। परमात्मा-रूप स्थान इन सबसे अलग है। वहाँ मृत्यु का भय नहीं है। वह स्थान स्वभावतः क्लेशहीन, राग-द्वेष आदि से रहित, प्रिय-अप्रिय-विहीन, पञ्चभूत इन्द्रिय मन बुद्धि वासना कर्म वायु और अविद्या से शून्य, हेतुवर्जित, ज्ञेय ज्ञान और ज्ञातृभाव से हीन, दर्शन श्रवण मनन और विज्ञान इन चार प्रकार के लक्षणों से रहित, रूप आदि चतुर्विध कारणों से शून्य और हर्ष, आनन्द तथा रोग-शोक से रहित है। परमात्मा काल से परे है। वह काल और स्वर्ग दोनों का अधीश्वर है। जो व्यक्ति आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा के परमस्थान को जाता है उसे कभी सन्ताप नहीं होता। हे धर्मराज, मैंने तुमसे सब नरकों का वर्णन कर दिया। ये सब स्थान ब्रह्मपद की अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट हैं और नरक कहलाते हैं। ११

एक सौ निन्नानबे अध्याय

जापक के उपाख्यान में काल, मृत्यु, यम और ब्राह्मण का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आपने जो पहले काल, मृत्यु, यम, इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का इतिहास कहने को कहा था उसे विस्तार से कहिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! इक्ष्वाकु, यम, ब्राह्मण, काल और मृत्यु का संवाद-स्वरूप जो आख्यान प्रसिद्ध है उसे सुनो। हिमालय के पास परम धार्मिक महायशस्वी, पीपल का दण्ड धारण करनेवाला एक जप-परायण ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण साङ्गोपाङ्ग वेद का विद्वान् था। वह गायत्री आदि का जप करता हुआ ब्रह्म की आराधना-स्वरूप कठोर तप कर रहा था। हज़ार वर्ष बीतने पर भगवती सावित्री ने उसके सामने आकर कहा—बेटा, मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। वेदमाता का दर्शन करके और उनके वचन सुनकर भी ब्राह्मण ने उन्हें कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप जप करता रहा। ब्राह्मण को जप में एकाग्रचित्त देखकर सावित्री बहुत प्रसन्न हुईं और ब्राह्मण की प्रशंसा करने लगीं। कुछ देर बाद जब जप समाप्त हुआ तब उठकर ब्राह्मण ने देवी के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—भगवती, मेरा बड़ा भाग्य है जो आज आपने मुझे दर्शन दिये। यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए
१० कि मेरा मन सदा जप में लगा रहे।

सावित्री ने कहा—हे ब्राह्मण! बतलाओ, मैं तुम्हारा क्या हित करूँ। तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होंगे। सावित्री के यों कहने पर ब्राह्मण ने कहा—देवि, मेरी जप करने की इच्छा और मेरे मन की एकाग्रता दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहे। तब सावित्री ने मधुर वाणी से 'ऐसा ही हो' कहकर ब्राह्मण के हित के लिए फिर कहा—ब्रह्मन्, विधिहीन जप करनेवाले ब्राह्मण जिन लोकों को जाते हैं उनमें तुम्हें न जाना पड़ेगा। तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को जाओगे। तुमने मुझसे जो कुछ माँगा है वह सब तुम्हें मिलेगा। तुम एकाग्रचित्त होकर जप करो। धर्म, काल, मृत्यु और यम तुम्हारे पास आकर तुमसे विवाद करेंगे।

बस, सावित्री देवी अपने स्थान को चली गईं। सत्यप्रतिज्ञ, राग-द्वेष-हीन ब्राह्मण मन लगाकर जप करने लगा। देवताओं के सौ वर्ष बीतने पर धर्मराज प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण के पास आये। उन्होंने ब्राह्मण से कहा—ब्रह्मन्, मैं धर्म हूँ। तुम्हें देखने आया हूँ। जप करने
२० का जो फल तुमको मिला है वह बतलाता हूँ। तुमने जप के प्रभाव से मनुष्यों के और देवताओं के लोकों को जीत लिया है। अतएव अब इस शरीर को छोड़कर अपने अभीष्ट लोक को जाओ। ब्राह्मण ने कहा—महात्मन्, मैं किसी लोक को नहीं जाना चाहता। आप सुख-पूर्वक अपने स्थान को जाइए। अनेक दुःख-सुख भोगनेवाले इस शरीर को छोड़कर मैं फिर जन्म नहीं लेना चाहता। मैं तो इसी शरीर से मुक्त होना चाहता हूँ।

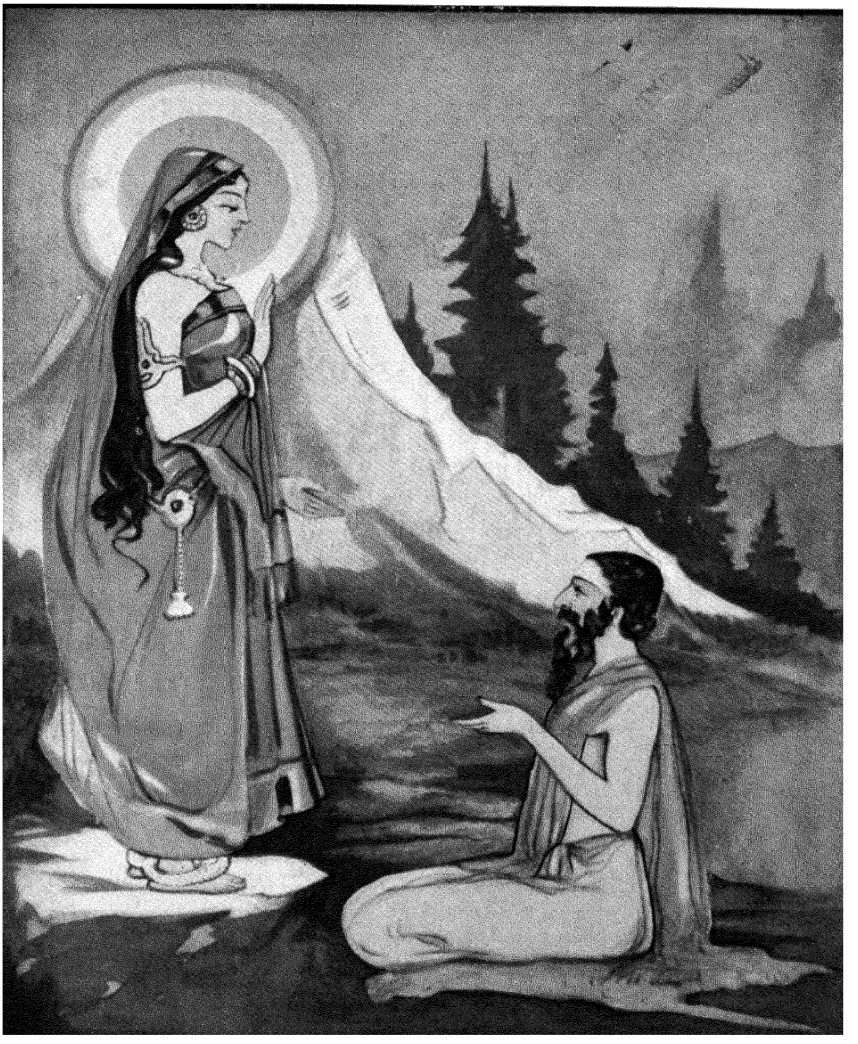

ब्राह्मण को जप में एकाग्रचित्त देखकर सावित्री बहुत प्रसन्न हुईं और ब्राह्मण की प्रशंसा करने लगीं। कुछ देर बाद जब जप समाप्त हुआ तब उठकर ब्राह्मण ने देवी के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—भगवती, मेरा बड़ा भाग्य है जो आज आपने मुझे दर्शन दिये। —पृ०३६१८

धर्म ने कहा—ब्रह्मन्, तुमको शरीर तो अवश्य त्यागना चाहिए। अतएव तुम इस शरीर को छोड़कर स्वर्गलोक या और किसी अभीष्ट लोक को जाओ।

ब्राह्मण ने कहा—महात्मन्, इस शरीर के बिना मैं स्वर्गवास करना नहीं चाहता। आप अपने स्थान को जाइए।

धर्म ने कहा—ब्रह्मन्, तुम इस शरीर के न त्यागने का हठ छोड़ दो। तुम इस देह का त्याग करके रजोगुण से हीन स्वर्गलोक में जाकर सुख से रहो। वहाँ तुमको किसी प्रकार का शोक न होगा।

ब्राह्मण ने कहा—महाभाग, मैं जप करने में परम सन्तुष्ट हूँ। मुझे सनातन लोक प्राप्त करने का क्या प्रयोजन है? मैं तो जप छोड़कर इस शरीर से भी स्वर्ग जाना पसन्द नहीं करता।

धर्म ने कहा—महात्मन्! तुम तो यह शरीर छोड़ना नहीं चाहते हो किन्तु यह देखो, यम, काल और मृत्यु तुम्हारे पास आ गये हैं।

भीष्म कहते हैं कि धर्म के यों कहते ही यम, काल और मृत्यु, ये तीनों ब्राह्मण के पास आ गये। यम ने कहा—ब्रह्मन्, मैं यम हूँ। मैं यह कहने आया हूँ कि तुमने तपस्या और सच्चरित्रता का महान् फल पाया है। काल ने कहा—ब्रह्मन्, मैं काल हूँ। मैं बतलाता हूँ कि ३०
तुमने जप के प्रभाव से उत्तम फल प्राप्त किया है। शीघ्र स्वर्गलोक को जाओ। यह तुम्हारे स्वर्गलोक जाने का समय है। मृत्यु ने कहा—हे ब्राह्मण, मैं मृत्यु हूँ। आज मैं काल के कहने से तुमको इस लोक से ले जाने के लिए शरीर धारण करके आई हूँ। यम, काल और मृत्यु के यों कहने पर ब्राह्मण ने उन सबसे कुशल-प्रश्न करके अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें अर्घ्य-पाद्य देकर उनसे कहा—महाशयो, अब मुझे क्या आज्ञा है?

धर्म आदि देवताओं के आ जाने पर तीर्थयात्रा करते हुए महाराज इक्ष्वाकु भी वहाँ आ गये। धर्म आदि को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। सबको प्रणाम करके उन्होंने सबसे कुशल-प्रश्न किया। इसके बाद ब्राह्मण ने इक्ष्वाकु को पाद्य, अर्घ्य और आसन देकर कुशल पूछकर कहा—महाराज, मेरे लिए क्या आज्ञा है? मैं यथाशक्ति उसका पालन करूँगा।

इक्ष्वाकु ने कहा—ब्रह्मन्, मैं राजा हूँ और आप अध्ययन-अध्यापन आदि षट्कर्म करने-वाले ब्राह्मण हैं। अतएव बतलाइए कि मैं आपको कितना धन दूँ।

ब्राह्मण ने कहा कि महाराज, ब्राह्मण दो प्रकार के होते हैं—एक तो कर्म करनेवाले (प्रवृत्ति-मार्ग) और दूसरे कर्मत्यागी (निवृत्ति-मार्ग)। धर्म भी दो प्रकार का है—प्रवृत्त और निवृत्त। मैंने अब दान लेना छोड़ दिया है। जो ब्राह्मण दान लेते हों उन लोगों को ४०
आप जाकर दान दीजिए। मैं दान नहीं लूँगा। अब आप और क्या चाहते हैं? मैं तपोबल से आपकी इच्छा पूरी करूँगा।

राजा ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं क्षत्रिय हूँ, मैं हाथ पसारना जानता ही नहीं। माँगने के नाम मैं तो युद्ध ही माँगा करता हूँ।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आप अपने धर्म का पालन करते हुए सन्तुष्ट रहते हैं और मैं अपना धर्म पालन करता हुआ प्रसन्न रहता हूँ। हम लोगों को किसी से कुछ माँगना नहीं है, तो भी आपकी कुछ इच्छा हो तो कहिए।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, आप पहले अपनी शक्ति के अनुसार मेरा काम करना स्वीकार कर चुके हैं, इससे मैं आपकी आज्ञा के अनुसार यह वर माँगता हूँ कि आप मुझे अपने जप का फल दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आपने अभी कहा है कि युद्ध के सिवा आप और कुछ नहीं माँगते। जब मेरे साथ आपको युद्ध करना है नहीं, तब फिर आप मुझसे क्यों माँगते हैं ?

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, क्षत्रिय लोग बाहुबल से युद्ध करते हैं। ब्राह्मण तो ऐसा करते नहीं। वे तो वाग्युद्ध करते हैं। इसलिए मैं आपके साथ घोर वाग्युद्ध करने को उद्यत हुआ हूँ।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैंने जो प्रतिज्ञा की है उस पर मैं दृढ़ हूँ। बतलाइए, मैं अपनी शक्ति के अनुसार आपको क्या दूँ।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप मेरा मनोरथ पूरा करना चाहते हैं तो आपने जो देवताओं के सौ वर्ष तक जप किया है, उसका सब फल मुझे दे दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैंने जप करके जो फल सञ्चय किया है उसका आधा भाग
५० आप ले लीजिए या आप पूरा फल ही लेना चाहते हों तो सब ले जाइए।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, आपके जप का सम्पूर्ण फल मैं नहीं लेना चाहता। मैंने जिस फल के लिए आपसे प्रार्थना की है वह फल क्या है ?

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैं अपने जप का फल पाने के विषय में कुछ नहीं जानता। किन्तु जो कुछ जप मैंने किया है वह आपको दिया। धर्म, काल, यम और मृत्यु ये सब उसे भली भाँति जानते हैं।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप अपने जप का फल नहीं बतला सकते तो मैं उस अज्ञात फल को लेकर क्या करूँगा! आप उस फल को अपने पास रखिए; अब मैं चला।

ब्राह्मण ने कहा—राजन्, मुझे और कुछ कहना नहीं है। आपने मेरे जप का फल माँगा था सो मैंने दे दिया। यहाँ तक आपकी और मेरी, दोनों की, बात प्रामाणिक रही। मैंने आरम्भ से लेकर अभी तक फल पाने की इच्छा से जप नहीं किया है, तो भला किस तरह उस जप का फल जान सकूँ। आपने मुझसे मेरे जप करने का फल माँगा और मैंने उसे देना स्वीकार किया। अब अपने वचन को मैं कैसे तोड़ सकता हूँ? अतएव आप अपने मन को स्थिर करके सत्य का पालन कीजिए। यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो निस्सन्देह आपको असत्य का पाप लगेगा। हम दोनों को अपनी-अपनी बात पर दृढ़ रहना चाहिए। अतएव यदि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं तो आपने जो मुझसे माँगा था और मैंने जो आपको दिया था उसे अब ले लीजिए। मिथ्यावादी होने से न तो इस लोक में आपका कल्याण होगा और न परलोक में ही और अपने पूर्वजों का उद्धार करने की योग्यता भी आपमें न रह जायगी। सत्य बोलने से इस लोक में और परलोक में जैसा कल्याण होता है वैसा यज्ञ, दान और नियम करने से नहीं हो सकता। हज़ारों वर्ष की तपस्या भी सत्य की बराबरी नहीं कर सकती। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म, अक्षय तपस्या, अक्षय यज्ञ और अक्षय वेद-स्वरूप है। वेदों में सत्य की ही महिमा है। सत्य के प्रभाव से श्रेष्ठ फल मिलता है। तपस्या, धर्म, दम, यज्ञ, तन्त्र, मन्त्र, सरस्वती, स्वर्ग, वेद, वेदाङ्ग, विद्या, विधि, व्रतचर्या, ओङ्कार और प्राणियों का जन्म तथा सन्तान आदि सब कुछ सत्य के प्रभाव से प्राप्त हो सकता है। सत्य के प्रभाव से हवा चलती, सूर्य तपते और आग जलती है। सत्य और धर्म को तराज़ू में तोलने पर सत्य का ही पलड़ा भारी होगा। धर्म सत्य का अनुगामी है। सत्य के बल से सब प्रकार की उन्नति हो सकती है। तो फिर आप क्यों असत्य काम करने का इरादा करते हैं? सत्य में अपने मन को स्थिर कीजिए। मुझसे जप का फल माँगकर अब उसका लेना आप क्यों अस्वीकार करते हैं? यदि आप मेरा दिया हुआ जप का फल नहीं लेंगे तो निस्सन्देह आपको धर्म-भ्रष्ट होकर संसार में भटकना पड़ेगा। जो मनुष्य देने को कहकर फिर नहीं देता और जो मनुष्य पहले तो माँगता है और मिलने पर उसे नहीं लेता, वे दोनों मिथ्यावादी हैं। आपको मिथ्यावादी होना उचित नहीं।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! क्षत्रिय लोगों का धर्म युद्ध करना, दान देना और प्रजा की रक्षा करना है। तो भला मैं किस तरह आपसे दान ले सकता हूँ?

ब्राह्मण ने कहा—महाराज! लेने के लिए मैंने आपको मनाया नहीं था, और न मैं देने के लिए आपके घर ही गया था। आपने स्वयं मेरे यहाँ आकर माँगा है। अब आप लेने से इन्कार क्यों कर रहे हैं?

ब्राह्मण और इक्ष्वाकु का इस प्रकार वाग्युद्ध होने पर धर्म ने कहा—आप लोग व्यर्थ झगड़ा न करें। मैं स्वयं धर्म यहाँ उपस्थित हूँ। ब्राह्मण तो दान के फल के और राजा सत्य के फल के भागी हैं।

उसी समय स्वर्ग भी शरीर धारण करके वहाँ आ गया और कहने लगा—हे धर्मात्माओ! यह देखो, मैं स्वर्ग हूँ और तुम लोगों के पास सदेह आया हूँ। अब तुम लोग झगड़ो मत। तुम दोनों ही तुल्य-फल के भागी हो। तब राजा ने कहा—स्वर्ग, मैंने तुमको नहीं बुलाया। तुम अपने स्थान को जाओ। यदि ब्राह्मण ने तुमको बुलाया हो तो ये, मेरे किये हुए पुण्य को भी लेकर, तुमको प्राप्त करें।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज! मैंने बालकपन में अज्ञान से चाहे किसी से कुछ माँगा हो, किन्तु अब मैं बहुत दिनों से सब कामों से निवृत्त होकर गायत्री का जप करता हुआ धर्म की उपासना करता हूँ। अतएव आप मुझे स्वर्ग मिलने का लोभ क्यों दिखाते हैं? मैं स्वयं अपना काम कर लूँगा। मैं तपस्वी और स्वाध्यायशील हूँ। दान लेना मैं छोड़ चुका हूँ। आपके किये हुए पुण्य का फल मैं नहीं लेना चाहता।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप अपने जप का फल मुझे अवश्य ही देना चाहते हैं तो उसका आधा फल मुझे दीजिए और मेरे किये हुए धर्म का आधा फल आप ले लीजिए। इससे हम दोनों तुल्यफलभागी होंगे। ब्राह्मण लोग दान लेते और क्षत्रिय दान देते हैं। यदि आप यह धर्म जानते हैं तो मेरे धर्म का आधा फल लेकर आप मेरे समान-फल-भागी हो जायँ। यदि आप मेरे समान-फल पाने की इच्छा नहीं रखते तो मेरे धर्म का पूरा फल ले लीजिए। यदि मुझ पर आपकी दया है तो मेरे किये हुए पुण्य का फल आप ले लें।

भीष्म कहते हैं—राजा और ब्राह्मण का इस प्रकार विवाद हो रहा था कि इतने में कराल-रूपधारी दो पुरुष, एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए, वहाँ आ गये। उन दोनों में एक का नाम विरूप और दूसरे का विकत था। विकत ने विरूप से कहा—भाई, तुम मेरे

ऋणी नहीं हो। विरूप ने कहा—नहीं, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। तब विकृत ने कहा—इस समय यहाँ प्रजा पर शासन करनेवाले राजा मौजूद हैं। मैं इनके सामने सत्य कहता हूँ, तुम मेरे ऋणी नहीं हो। विरूप ने कहा—तुम झूठ कहते हो, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। इस तरह वे दोनों झगड़ते हुए कुपित होकर राजा से कहने लगे—महाराज, आप ऐसा उपाय बतलाइए जिसमें हम दोनों को पाप से दूषित न होना पड़े। तब विरूप ने कहा—महाराज, मैं विकृत से गोदान का फल लेकर उनका ऋणी हो गया हूँ। अब मैं वह ऋण चुका देना चाहता हूँ, किन्तु ये उसे लेना नहीं चाहते। विकृत ने कहा—महाराज, यह विरूप मेरा ऋणी नहीं है। इस समय यह आपके सामने झूठ बोल रहा है। तब राजा ने विरूप से पूछा—विरूप, तुम किस तरह विकृत के ऋणी हो? ठीक-ठीक बतलाओ। मैं तुम्हारी बातें सुनकर उपाय बताऊँगा। ९०

विरूप ने कहा—महाराज, मैं जिस तरह विकृत का ऋणी हूँ उसका पूरा-पूरा हाल सुनिए। इन विकृत ने पहले, धर्म-उपार्जन करने के लिए, किसी तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण को अच्छे लक्षणोंवाली एक गाय दी थी। मैंने इनसे उस गोदान का फल माँगा और इन्होंने शुद्ध हृदय से वह फल मुझे दे दिया। उसके बाद मैंने अपने आत्मा को शुद्ध करने के लिए पुण्य-कार्य किये; दूध देती हुई, बछड़ों समेत, दो कपिला गायें मोल लेकर विधि के अनुसार श्रद्धा के साथ उञ्छवृत्ति करनेवाले एक ब्राह्मण को दान कर दीं। पहले मैंने विकृत से जो फल उधार लिया था उसका दूना अब इन्हें देना चाहता हूँ। हम दोनों में कौन दोषी है और कौन निर्दोष, यह विवाद करते-करते हम लोग आपके पास आये हैं। आप फ़ैसला कर दीजिए। विकृत ने पहले जो ऋण मुझे दिया है उसे अब ये लेना नहीं चाहते। अतएव आप हम दोनों को धर्म-मार्ग पर लगा दीजिए।

राजा ने कहा—विकृत, विरूप ने तुमसे जो ऋण लिया था उसे तुम लेते क्यों नहीं? तुमने इनको जितना दिया है, वह इनसे ले लो।

विकृत ने कहा—महाराज! 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ' यह कहकर विरूप वह ऋण चुकाना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में ये मेरे ऋणी नहीं हैं। इसलिए अब ये जहाँ चाहें, जा सकते हैं। १००

राजा ने कहा—विकृत, विरूप तुम्हारा ऋण चुका देना चाहते हैं; किन्तु तुम उसे लेते नहीं हो। यह बात मुझे बिलकुल उलटी समझ पड़ती है। मेरी राय से तुम्हें दण्ड मिलना चाहिए।

विकृत ने कहा—महाराज, मैं एक बार जो दे चुका हूँ उसे फिर कैसे वापस ले सकता हूँ? अतएव इसमें मेरा जैसा अपराध हो वैसा दण्ड मुझे आप दीजिए।

विरूप ने कहा—विकृत, मैंने तुमसे जो ऋण लिया था उसे चुकाता हूँ, किन्तु तुम उसे लेना नहीं चाहते। अब धर्म के रक्षक ये राजा तुमको इसका दण्ड अवश्य देंगे।

विकृत ने कहा—विरूप! तुम्हारे माँगने पर मैंने गोदान का फल तुम्हें दिया था, भला अब उसे कैसे वापस ले लूँ? अतएव तुम मेरी आज्ञा मानकर चाहे जहाँ चले जाओ।

अब ब्राह्मण ने राजा से कहा—राजन्, इन दोनों की बातें आपने सुन लीं। मैंने आपको देने के लिए जो कह दिया है उसे आप ले लीजिए। तब राजा सोचने लगे कि इन दोनों मनुष्यों की तरह इस ब्राह्मण की बात भी बहुत कठिन है। यदि मैं इसके आग्रह को नहीं मानता हूँ अर्थात् इसके पुण्य का फल नहीं लेता हूँ तो निस्सन्देह मुझे घोर पाप लगेगा।

इसके बाद धर्मात्मा राजा ने विकृत और विरूप से कहा—तुम्हारा काम हो गया, अब अपने घर जाओ। मुझे राजा समझकर तुम लोग मेरे पास आये हो और मुझे अपने राजधर्म को निष्फल करना उचित नहीं। शास्त्र की आज्ञा है कि राजा को राजधर्म का पालन करना चाहिए। किन्तु ब्राह्मण का धर्म बहुत कठिन है, मैं उसे रत्ती भर भी नहीं जानता और इस समय वह धर्म मुझे पीड़ित कर रहा है।

तब जापक ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आपके माँगने पर जो मैंने आपको देने की प्रतिज्ञा
१० की है उसे आप ले लीजिए। आप न लेंगे तो मैं आपको शाप दे दूँगा।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, जिस धर्म के अनुसार इस प्रकार के कामों का निश्चय किया जाता है उस राजधर्म को धिक्कार है। जो हो, अब मैं आपका समान-फल-भागी हूँगा, इसी शर्त पर आपके जप का फल ले सकता हूँ। मैंने आज तक कभी कुछ लेने के लिए हाथ नहीं फैलाया, इस समय आपकी आज्ञा से ऐसा काम कर रहा हूँ। आप पर जो कुछ मेरा ऋण हो वह दे दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैंने गायत्री का जप करके जितना पुण्य सञ्चय किया है वह सब आप ले लीजिए।

राजा ने कहा—भगवन्, मैं भी हाथ में जल लिये हूँ। आप भी मेरा दान लीजिए, जिससे मैं और आप दोनों तुल्यफल-भागी हो जावें।

इतने में विरूप बोल उठा—महाराज, हम दोनों काम और क्रोध हैं। हमीं ने आपको जापक से उनके जप का फल माँगने के लिए प्रेरित किया है। अब आप दोनों महानुभाव, आपके कहने के अनुसार, समान लोक प्राप्त करें। विकृत मेरा ऋणी नहीं है, आपको बोध कराने के लिए ही हम लोग अर्थी और प्रत्यर्थी बनकर यहाँ आये हैं। काल, धर्म, मृत्यु और हम दोनों आपकी परीक्षा लेने आये हैं। अब आप, अपने कर्म के फल से प्राप्त, उस लोक को जाइए जहाँ जाने की आपकी इच्छा हो।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जप करनेवालों को जो फल मिलता है वह मैंने तुमको बता दिया। वे लोग ब्रह्मलोक और अन्य जिन लोकों को प्राप्त कर सकते हैं वह सब तो तुमने समझ ही लिया होगा। गायत्री का जप करनेवाले महात्मा लोग परमेष्ठी ब्रह्मा के, अग्नि के अथवा सूर्य के लोक को प्राप्त करते हैं। यदि वे इन लोकों में अनुराग रखकर विहार करते हैं तो इनमें
१२० मोहित होकर इन सब लोकों के गुण प्राप्त करते हैं। राग मनुष्यों के पार्थिव शरीर के समान

चन्द्र, वायु और आकाशात्मक शरीर में होने पर सब गुणों को प्राप्त कराता है। यदि जापक लोग अन्य किसी लोक में जाने की इच्छा न करके केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिए यत्न करें तो उनकी इच्छा पूरी हो। रागहीन जापक मनुष्य उद्योग करने पर परमेष्ठी भाव को, उससे कैवल्य और अन्त को दुःख तथा बुढ़ापे से हीन अक्षय ब्रह्मलोक को प्राप्त करके क्षुधा, तृष्णा, शोक और मोह आदि से रहित ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जो जापक राग के वशीभूत होकर ब्रह्म में लीन होना नहीं चाहते और अन्य लोकों को जाने की इच्छा करते हैं उनको वे लोक मिलते हैं। जो सब लोकों को नरक समझते हैं और जो किसी विषय की इच्छा नहीं करते वे संसार से मुक्त होकर निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाते और परम सुख पाते हैं। महाराज, जप करनेवालों को जो गति मिलती है वह मैंने विस्तार से कह दी। अब क्या सुनना चाहते हो? १२८

दो सौ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से जप का फल कहते हुए जापक का उपाख्यान समाप्त करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, इसके बाद राजा और ब्राह्मण ने विरूप को क्या उत्तर दिया और विरूप की बात मानकर वे दोनों महानुभाव किस लोक को गये? उन लोगों में फिर क्या बातचीत हुई?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज! उसके बाद जापक ब्राह्मण ने धर्म, यम, काल, मृत्यु, स्वर्ग और आये हुए ब्राह्मणों की पूजा करके राजा से कहा—महाराज, आप मेरे जप का फल लेकर श्रेष्ठता प्राप्त करें और मुझे फिर जप करने की आज्ञा दें। सावित्री देवी ने मुझे वर दिया है कि 'जप में तुम्हारी श्रद्धा बनी रहेगी'।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, जब आपको जप करने में ऐसी श्रद्धा है तब अपने जप का फल मुझे दे देने से आपकी कुछ हानि भी न होगी बल्कि दान देने से उसकी वृद्धि होगी। आइए, हम दोनों एक-समान फल भोगें।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आप इन महात्माओं के सामने बार-बार अपने समान फल-भागी होने का मुझसे अनुरोध करते हैं अतएव मैं आपकी बात स्वीकार करता हूँ। अब मेरी और आपकी समान गति हो। ब्राह्मण के यों कहने पर देवराज इन्द्र, ब्राह्मण और राजा का अभिप्राय जानकर, लोकपालों और देवताओं के साथ वहाँ आये। उसी समय देवी सरस्वती, ९
नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, सपरिवार चित्रसेन, सिद्धगण, ब्रह्मा, सहस्रशिरा, विष्णु, साध्य, विश्वेदेवा, मरुत्, नदी, पर्वत, समुद्र, तीर्थ, तपस्या, वेदान्त, वेद, स्तोत्र और मुनि लोग वहाँ आ गये। आकाश में नगाड़े और तुरही आदि बाजे बजने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। तब स्वर्ग शरीर धारण करके ब्राह्मण से बोला—हे महानुभावो, तुम दोनों पुरुष सिद्ध हो।

इसके बाद जापक ब्राह्मण और राजा ने एक साथ सब विषयों से अपने मन को हटा लिया। पहले (मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी को उठाकर) प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, इन पाँचों वायुओं को हृदय (अनाहत चक्र) में रोककर प्राण और अपान के साथ मन को मिलाया। फिर प्राण और अपान को रोककर नासिका के अग्रभाग को देखते हुए मन के साथ प्राण और अपान को भौंहों के बीच (आज्ञाचक्र) में ले गये। इस तरह मन को जीत लेने पर उनका मन मस्तक में स्थिर हुआ। तब महात्मा ब्राह्मण के ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर एक अति प्रकाशमान ज्योति स्वर्ग को चली गई। उस समय सब दिशाओं में कोलाहल मच गया। सब लोग उस ज्योति की स्तुति करने लगे। वह ज्योति लोकपितामह ब्रह्मा के पास पहुँची। ब्रह्माजी ने उसका स्वागत किया। उसी समय प्रादेश* भर का एक पुरुष वहाँ आया। उसने कहा कि जप करनेवालों को योगियों के समान फल मिलता है। निरे योगियों को समाधि के समय ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है किन्तु जप करनेवालों का, ब्रह्म में लीन होने के लिए, पहले ही ब्रह्म के साथ ऐक्य हो जाता है। यह कहकर उस प्रादेश भर के पुरुष ने ब्रह्म के साथ ब्राह्मण की एकात्मता करा दी। तब ब्राह्मण ब्रह्म के मुँह में समा गया। राजा ने भी, ब्राह्मण की तरह, लोकपितामह के मुँह में प्रवेश किया।

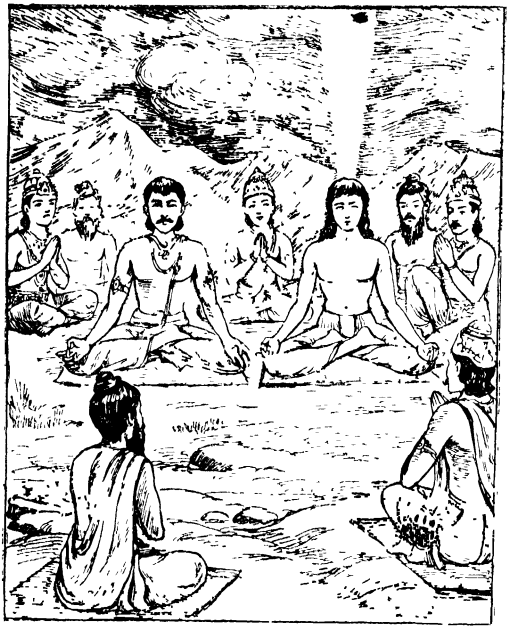

२०

अब देवताओं ने भगवान् स्वयम्भ को प्रणाम करके कहा—भगवन्, आपने जप करनेवालों के लिए बड़ी उत्तम गति निर्धारित की है। हम लोग इस जापक ब्राह्मण की सद्गति देखने आये हैं। आपने राजा और ब्राह्मण को एक सा फल दिया है। योग और जप करने का फल आज हम लोगों ने देख लिया। वे लोग सब लोकों को लाँघकर मनमाने लोक को जा सकते हैं। तब ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ, जो लोग महास्मृति और अनुस्मृति आदि पढ़ते हैं या

* प्रादेश = अँगूठा और उसके पास की उँगली को फैलाकर नापने का नाम।

जो लोग योग करते हैं वे मरने के बाद निस्सन्देह मेरे लोक को प्राप्त करते हैं। अब तुम लोग अपने स्थान को जाओ। ३१

बस, ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। देवता भी अपने-अपने स्थान को चले गये। अन्य महात्मा लोग, धर्म की पूजा करके, प्रसन्नता से धर्म के अनुसार चलने लगे। हे धर्मराज, जप करनेवालों का जो फल मैंने सुना था वह तुमको सुना दिया। अब क्या सुनना चाहते हो? ३४

दो सौ एक अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर के पूछने पर ज्ञानयोग आदि का फल और परमात्म-ज्ञान-विषयक मनु और बृहस्पति का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! ज्ञानयोग का, नियम का और सब वेदों का क्या फल है और जीवात्मा किस तरह जाना जाता है?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इस विषय में प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पति का संवाद सुनो। प्राचीन समय में, देवर्षियों में श्रेष्ठ महात्मा बृहस्पति ने अपने गुरु प्रजापति मनु को प्रणाम करके पूछा—भगवन्, जगत् का कारण क्या है? कर्मकाण्ड की उत्पत्ति किस लिए हुई? ज्ञान का क्या फल है? वेद-वाक्यों से भी कौन सा विषय प्रकट नहीं होता? त्रिवर्ग शास्त्र के जाननेवाले, वेदमन्त्रज्ञ, मनुष्य गोदान और अनेक यज्ञ आदि करके जो सुख पाते हैं वह किस प्रकार का है, किस तरह प्राप्त होता है और वह आत्मा में ही रहता है या उससे अलग? पृथिवी, वायु, आकाश, स्वर्ग, देवता, स्थावर-जङ्गम जीव, जल और जलचर का उत्पादक कौन है? मनुष्य को जिस विषय का ज्ञान होता है उसी विषय में प्रवृत्ति होती है। मुझे पुराण-पुरुष के विषय में रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है, तो भला उधर मेरी प्रवृत्ति कैसे होगी? मैंने ऋक्, साम, यजु, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, कल्प और शिक्षा का अध्ययन किया है; तो भी आकाश आदि महाभूतों के उत्पादक का मुझे ज्ञान नहीं है। अब आप इन सब विषयों का और जिस तरह आत्मा एक शरीर का त्याग करके दूसरे शरीर में जाता है उसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

मनु ने कहा—महर्षि, जो विषय जिसे प्रिय होता है वह उसे सुख देनेवाला और जो अप्रिय होता है वह दुःख देनेवाला है। 'इससे मेरा हित होगा, अहित न होगा' यह विचारकर मनुष्य १० काम करता है। जिसे ज्ञान हो जाता है वह हित और अहित कुछ भी नहीं चाहता। वेद में कर्म-योग को कामात्मक कहा है। ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य उस कर्मयोग से छुटकारा पाकर ब्रह्मपद प्राप्त करता है। जो मनुष्य सुख की इच्छा से कर्म करता है उसे स्वर्ग या नरकगामी होना पड़ता है।

बृहस्पति ने कहा—भगवन्, दुःख को हटाकर सुख प्राप्त करना सभी चाहते हैं। सुख की प्राप्ति कर्मों से ही होती है। इसलिए कर्म ही मनुष्यों का कर्तव्य जान पड़ता है।

मनु ने कहा—महर्षि, मनुष्य पहले यज्ञ आदि कर्म करके फिर ब्रह्मज्ञान की इच्छा से कर्मों का त्याग करे और फिर परम पदार्थ प्राप्त करे। इसी लिए कर्म की सृष्टि हुई है। जो बहुत दिनों तक इच्छा के वशीभूत रहकर कर्म करता है उसे स्वर्ग आदि की प्राप्ति होती है और जो मुक्त होने की इच्छा से कर्मों का त्याग करके आत्मज्ञान प्राप्त करता है उसे ब्रह्मपद मिलता है। मन और कर्म मनुष्यों की उत्पत्ति के कारण हैं और ये ही दोनों उन्हें ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग-स्वरूप हैं। कर्म के प्रभाव से मनुष्यों को मोक्ष और सामान्य फल दोनों मिल सकते हैं। सारांश यह कि कर्म का फल त्याग करके मोक्ष प्राप्त करने में मन लगावे। जैसे आँखें रात बीतने पर प्रातःकाल अपने तेज से काँटे आदि देख सकती हैं वैसे ही बुद्धि, विवेक-गुण-सम्पन्न होने पर, अशुभ कामों को समझ सकती है। मनुष्य साँप, कुश-कण्टक और कुएँ को देखने पर ही उन सबसे बच सकता है; किन्तु इनके न जानने पर उनमें गिर पड़ता है। अतएव विचार करो कि अज्ञान की अपेक्षा ज्ञान कितना श्रेष्ठ है। विधिपूर्वक मन्त्रों का उच्चारण, यज्ञ का अनुष्ठान, दान-दक्षिणा, अन्न का दान और मन की समाधि, ये पाँच प्रकार के कर्म फल देनेवाले हैं। शास्त्र के अनुसार कर्म सत्त्व आदि तीन गुणों से युक्त हैं। इसी से कर्ममूल मन्त्र भी तीन प्रकार के और विधि भी तीन प्रकार की है। जो मनुष्य जिस गुण का अनुयायी होकर कर्म करता है उसे उसी गुण के अनुरूप फल मिलता है। कर्म-फल स्वर्गलोक में मिलता है और ज्ञान का फल
२० जीवित दशा में ही मिल जाता है, इसलिए कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है। मनुष्य इस शरीर से जैसे कर्म करता है वैसे ही फल दूसरे शरीर में भोगता है। शरीर ही सुख-दुःख भोगने का साधन है। मन और वाणी से किये हुए कर्मों के द्वारा मन-वाणी से अगोचर ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो मनुष्य जिस गुण का अवलम्बन करके कर्म करता है उसे उसी गुण के अनुरूप शुभ और अशुभ फल भोगना पड़ता है। जैसे पानी का बहाव मछली को बहा ले जाता है वैसे ही पूर्व-जन्म के शुभाशुभ कर्मों का फल मनुष्य को मिलता ही है। मनुष्यों को पूर्व-जन्म में किये हुए पुण्य के अनुसार सुख और पाप के अनुसार दुःख मिलता है। अब जो सृष्टि-कर्ता हैं और जो मन्त्र तथा शब्द से परे हैं उनका वर्णन सुनो। वे रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श से पृथक् रहकर भी प्रजा के लिए इन सबकी उत्पत्ति करते हैं। वे अव्यक्त, वर्णहीन और गुणातीत हैं। उन्हें स्त्री, पुरुष या नपुंसक अथवा परमाणु, शून्य और मायामय नहीं कहा जा सकता। कभी उनका विनाश नहीं होता। मन को जीत लेनेवाला ज्ञानी महात्मा ही
२७ उस अक्षय पदार्थ को प्राप्त कर सकता है।

दो सौ दो अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—हे महर्षि ! उसी अविनाशी पुरुष से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से यह पृथिवी और पृथिवी से यहां के सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। पृथिवी पर पार्थिव शरीर धारण करनेवाले जितने प्राणी हैं वे इस शरीर का त्याग करके पहले जल में, जल से अग्नि में, अग्नि से वायु में और वायु से आकाश में जाते हैं। उनमें जो आकाश को भी पार करके परमात्मा में लीन हो जाता है उसी को मोक्ष मिलता है। उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। परमात्मा उष्ण, शीत, मृदु या तीक्ष्ण नहीं है। वह अम्ल, कषाय, मधुर और तिक्त आदि सब रसों से शून्य और शब्द, गन्ध तथा रूप आदि गुणों से रहित है। पर-ब्रह्म स्वभाव (प्रमाता, प्रमेय आदि त्रिपुटी) से हीन है। त्वचा से स्पर्श, जीभ से रस, नाक से गन्ध, कान से शब्द और आँख से रूप का ज्ञान होता है। जो मनुष्य आत्मविद्या नहीं जानता वह त्वचा आदि इन्द्रियों के द्वारा स्पर्श आदि गुणों के सिवा और कुछ (ब्रह्म का) अनुभव नहीं कर सकता। जो मनुष्य रस से रसना को, गन्ध से नाक को, शब्द से कानों को, स्पर्श से त्वचा को और रूप से आँखों को निवृत्त कर सकता है वह आत्मस्वरूप को समझ सकता है। महर्षियों ने कहा है कि जो कर्ता, कर्म, करण, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति और अनुराग आदि का कारण है उसी को स्वभाव कहते हैं। स्वभाव (आत्मस्वरूप) ही व्याप्य नाम का जीव और व्यापक नाम का ईश्वर है। मन्त्रों में इसके प्रमाण मिलते हैं। अकेला स्वभाव ही सब काम करता है। वही कारण है, उसके सिवा और सब कार्य हैं। जैसे पुण्य और पाप परस्पर विरुद्ध होने पर भी मनुष्य के शरीर में इकट्ठा रहते हैं वैसे ही ज्ञान जड़ न होने पर भी जड़ शरीर में बँधा रहता है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर अन्य विषयों का बोध करा देता है वैसे ही ज्ञान मनुष्यों को इन्द्रियों के विषय का बोध कराता है। जैसे मन्त्री लोग राजा को सब बातें जताते रहते हैं वैसे ही इन्द्रियाँ ज्ञान को सब विषयों का बोध कराती हैं। राजा के समान, ज्ञान इन्द्रियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। जैसे अग्नि की शिखा, वायु का वेग, सूर्य की किरणें और नदी का पानी, ये सब चलते रहते हैं वैसे ही प्राणियों के शरीर बार-बार नष्ट होते और फिर उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे लकड़ी को कुल्हाड़ी से काटकर कोई उसके भीतर धुआँ या आग नहीं देख सकता (यद्यपि अग्नि उसमें व्याप्त है) वैसे ही मनुष्य का पेट चीरकर या उसके हाथ-पैर काटकर उसमें ज्ञानमय आत्मा नहीं देखा जा सकता। किन्तु जैसे लकड़ियों को रगड़ने से धुआँ और आग दोनों उसमें दिखाई देते हैं वैसे ही जीवात्मा, ज्ञान के बल से, बुद्धि और परमात्मा दोनों को देख सकता है। जैसे मनुष्य स्वप्न में अपने शरीर को आत्मा से अलग और पृथिवी में पड़ा हुआ देखता है पर जागने पर शरीर से अपने को अलग नहीं पाता वैसे ही

मन और बुद्धि के साथ कान आदि दस इन्द्रियों तथा प्राण आदि पञ्च वायु से युक्त जीवात्मा शरीर त्यागने पर फिर दूसरे शरीर में चला जाता है। सुख-दुःख देनेवाले कर्म के प्रभाव से परमात्मा की न तो उत्पत्ति होती है न वृद्धि, न क्षय और न मृत्यु ही। परमात्मा में रूप आदि कोई गुण नहीं हैं। आँख आदि इन्द्रियों से उसका ज्ञान नहीं हो सकता, किन्तु वह सब कुछ देखता रहता है। जैसे जलती हुई किसी वस्तु में आग का रूप देखा जाता है वैसे ही जड़ शरीर में परमात्मा का चेतन-स्वरूप देख पड़ता है। आत्मा एक शरीर को छोड़कर, अदृश्य भाव से, दूसरे शरीर में प्रवेश करके अपने को उस शरीर के गुणों से गुणवान् समझता है। प्राणी की मृत्यु होने पर उसका शरीर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में मिल जाता है और कान आदि सब इन्द्रियाँ अपने-अपने तत्त्व में जा मिलती हैं। कान आकाश के गुण शब्द को, नाक पृथ्वी के गुण गन्ध को, आँख तेज के गुण रूप को, रसना जल के गुण रस को और
२० त्वचा वायु के गुण स्पर्श को धारण करती है। पाँच इन्द्रियों के शब्द आदि पाँच गुण आकाश आदि पञ्चभूत के और आकाश आदि पञ्चभूत कान आदि पाँच इन्द्रियों के आश्रित रहते हैं। इसके सिवा शब्द आदि पाँच गुण, आकाश आदि पञ्चभूत और कान आदि पाँच इन्द्रियाँ मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि स्वभाव के अनुगत है। मनुष्य अपने कर्मों द्वारा उपार्जित नये शरीर में पूर्व-जन्म के किये हुए पाप-पुण्य को भोगता है और जैसे जोंक अनुकूल स्रोत को जाती है वैसे ही मन बुद्धि का अनुसरण करता है। जैसे नाव आदि पर चढ़कर चलते समय नदी-किनारे के वृक्ष चलते हुए जान पड़ते हैं, किन्तु नाव के ठहरने पर वह भ्रम दूर हो जाता है वैसे ही ज्ञानवान् मनुष्य की बुद्धि स्थिर होने पर उसे ईश्वर का ठीक-ठीक स्वरूप ज्ञात हो जाता है। जैसे ऐनक लगाने से छोटे अक्षर बड़े मालूम होते हैं और अपना मुँह अपने से अदृश्य होने पर भी दर्पण में देखा जा सकता है वैसे ही परमात्मा अति सूक्ष्म और अदृश्य होने पर
२३ भी बुद्धि के द्वारा देखा जाता है और महान् जान पड़ता है।

दो सौ तीन अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—ब्रह्मन्, जीव इन्द्रियों द्वारा अनुभव की हुई बातों को बहुत दिनों बाद भी स्मरण कर सकता है और इन्द्रियों के विलीन हो जाने पर बुद्धि-रूप परम स्वभाव (आत्मा) उन बातों का अनुभव करता है। यही स्वभाव अनेक समय इस जन्म और परजन्म में देखे-सुने आदि इन्द्रियों के विषयों को, धारण किये हुए के समान, प्रकट कर देता है और स्वभाव ही परस्पर विभिन्न भूत, भविष्य आदि तीनों अवस्थाओं में साक्षी-रूप से चलता रहता है। आत्मा केवल परस्पर विरुद्ध सत्त्व, रज और तमोगुण से उत्पन्न सुख-दुःख आदि का ज्ञान रखता

है, उसे उनका भोग नहीं करना पड़ता। जैसे वायु ईंधन में स्थित अग्नि में प्रवेश करता है वैसे ही आत्मा सब इन्द्रियों में प्रविष्ट रहता है। न तो परमात्मा आँखों से देखा जा सकता है और न स्पर्श-इन्द्रिय उसका स्पर्श कर सकती है। उसको आँख आदि इन्द्रियों से देखने और स्पर्श करने का उद्योग करना व्यर्थ है। आँख-कान आदि इन्द्रियाँ जब आत्मा को ही देख-सुन नहीं सकतीं तो परमात्मा के विषय में क्या कहना है, किन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा हमेशा उन सबको देखता रहता है। जैसे हिमालय के पार्श्व को और चन्द्रमा के पृष्ठ को किसी के न देखने पर भी उसकी सत्ता अबाधित है वैसे ही सूक्ष्म ज्ञान-स्वरूप परमात्मा की सत्ता विद्यमान रहने पर भी इन्द्रियों द्वारा कोई उसका अनुभव नहीं कर सकता। जैसे चन्द्रमा के मण्डल में संसार का सूक्ष्म रूप देखकर भी कोई उसका ज्ञान नहीं कर सकता वैसे ही मनुष्य को आत्म-ज्ञान होने पर भी परमात्मा का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मज्ञान अपने से ही उत्पन्न होता है, उसके लिए दूसरे किसी विषय का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं। पण्डित लोग जिस तरह रूपवान् वृक्ष को, आदि से अन्त तक मिट्टी-रूप होने के कारण, अपनी बुद्धि द्वारा रूपहीन अर्थात् मिट्टीमय देखते हैं और सूर्य की गति प्रत्यक्ष न देखी जाने पर भी वे उसे अपने बुद्धि-बल से प्रत्यक्ष के समान देखते हैं उसी तरह आत्मा अति दुर्लक्ष्य होने पर भी बुद्धि-दीप के प्रकाश द्वारा देखा जा सकता है। विवेकी मनुष्य प्रत्यक्ष देखी जानेवाली पास की वस्तुओं को ज्ञेय परमात्मा में विलीन करने की इच्छा करते हैं। उपाय के बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता। १०
जैसे मछुवे जाल डालकर मछलियाँ पकड़ते हैं; मृग के द्वारा मृग, पक्षी से पक्षी और हाथी के द्वारा हाथी पकड़ा जाता है वैसे ही ज्ञेय पदार्थ ज्ञान द्वारा जाना जाता है। सुना जाता है कि जैसे साँप ही साँप के पैर देख सकता है वैसे ही ज्ञान से, शरीर में ज्ञेय, सूक्ष्म पदार्थ प्रत्यक्ष होता है। जैसे इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियाँ नहीं जानी जा सकतीं वैसे ही स्थूल शरीर में स्थित ज्ञेय आत्मा को बुद्धि नहीं देख सकती। जैसे चन्द्रमा अमावास्या को, विद्यमान रहने पर भी, देख नहीं पड़ता वैसे ही आत्मा को, मनुष्यों के शरीर में मौजूद रहने पर भी, कोई देख नहीं सकता। जैसे चन्द्रमा अमावास्या को, स्थूल स्वरूप के बिना, प्रकाशित नहीं होता वैसे ही आत्मा—मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाने पर भी—प्रकाशित नहीं होता। जैसे चन्द्रमा फिर स्थूल शरीर धारण करके प्रकाशित होता है वैसे ही आत्मा दूसरा शरीर प्राप्त करने पर प्रकट हो जाता है। चन्द्रमा का जन्म, वृद्धि और नाश प्रत्यक्ष देख पड़ता है, चन्द्रमा के स्थूल शरीर के ये ही गुण हैं; ये सब गुण मनुष्य के स्थूल शरीर में ही आरोपित किये जा सकते हैं, आत्मा में नहीं। जैसे चन्द्रमा अमावास्या के बाद क्रमशः बढ़ते रहने पर भी चन्द्रमा ही कहलाता है वैसे ही शरीर का जन्म-मरण होते रहने पर भी आत्मा के स्वरूप में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। जैसे राहु चन्द्रमा को किस तरह ग्रसता और कैसे छोड़ता है, यह कोई नहीं जान सकता वैसे ही आत्मा

२० किस प्रकार शरीर में प्रविष्ट होता और कैसे निकलता है, यह किसी को नहीं मालूम होता। चन्द्रमा और सूर्य पर आक्रमण करने पर ही जैसे राहु जाना जाता है वैसे ही शरीर में प्रविष्ट होने पर ही आत्मा का अनुमान किया जाता है। राहु जैसे चन्द्रमा और सूर्य का त्याग करने पर दिखाई नहीं देता वैसे ही आत्मा शरीर को छोड़ने पर अनुमान में नहीं आता। जैसे अमावास्या में अदृश्य रहने पर भी चन्द्रमा को नक्षत्र नहीं त्यागते वैसे ही आत्मा, शरीर से
२३ निकलने पर भी, कर्मफल से नहीं छूट सकता।

दो सौ चार अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—महात्मन्, जैसे स्वप्नावस्था में मनुष्य का स्थूल शरीर शय्या पर पड़ा रहता है और सूक्ष्म शरीर उससे निकलकर सुख-दुःख का भोग करता है वैसे ही कर्मशील मनुष्य के मरने पर उसका स्थूल शरीर तो नष्ट हो जाता है और सूक्ष्म शरीर पाप-पुण्य का फल भोगता है। और, जैसे स्वप्नावस्था में ज्ञान सूक्ष्म शरीर से अलग होता है वैसे ही कर्मत्यागी मनुष्य के मरने पर उसका ज्ञान सूक्ष्म शरीर से निकलकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। जैसे साफ़ पानी में परछाईं देख पड़ती है वैसे ही इन्द्रियों के प्रसन्न होने पर ज्ञान द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है। किन्तु जैसे गँदले पानी में प्रतिबिम्ब नहीं देख पड़ता वैसे ही इन्द्रियों के चञ्चल रहने पर आत्मज्ञान होना सम्भव नहीं। अज्ञान से अबुद्धि उत्पन्न होती, अबुद्धि से मन दूषित होता और मन दूषित होने पर पाँचों कर्मेन्द्रियाँ दूषित हो जाती हैं। अज्ञानी मनुष्य को विषयों से किसी प्रकार तृप्ति नहीं हो सकती। पाप-पुण्य के कारण जीव विषय-वासनाओं में फँसे रहने से बार-बार जन्म लेते हैं। तृष्णा के रहने पर कभी विषय-वासना की शान्ति नहीं हो सकती। जब तृष्णा का नाश हो जाता है तब विषय-वासना भी नष्ट हो जाती है। विषयों में लगे रहने से तृष्णा बढ़ती ही जाती है, मोक्ष कभी नहीं मिल सकता। पाप का नाश होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। तब जैसे निर्मल दर्पण में मुँह देख पड़ता है वैसे ही अपनी बुद्धि में आत्मा का दर्शन होता है। इन्द्रियों के विषय-वासना में फँसे रहने से दुःख, और इन्द्रियों का दमन होने पर सुख मिलता है। अतएव इन्द्रियों का दमन करना आवश्यक
१० है। इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से जीवात्मा और जीवात्मा से परमात्मा श्रेष्ठ है। परमात्मा से जीवात्मा, जीवात्मा से बुद्धि और बुद्धि से मन उत्पन्न होता है। कान आदि इन्द्रियों से संयुक्त रहकर मन शब्द आदि विषयों में लिप्त रहता है। जो मनुष्य शब्द आदि विषयों और स्थूल कारणों का त्याग कर सकता है वही अमृत के रस का स्वाद पा सकता है। जैसे सूर्यदेव उदय होकर अपनी किरणें फैलाते और फिर उन सबको समेटकर अस्त हो जाते

हैं वैसे ही अन्तरात्मा इन्द्रियों का काम करता है और फिर उन्हें समेटकर शरीर से निकल जाता है। मनुष्य बार-बार अपने कर्मों के अनुसार गति पाकर सुख-दुःख भोगता रहता है। विषय-भोग का त्याग कर देने पर विषय-वासना दूर हो जाती है और जब आत्मा के साथ साक्षात्कार हो जाता है तब वासनाओं का रस भी जाता रहता है। विषयों का त्याग करके बुद्धि जब मन के साथ मिलती है तब मनुष्य को ब्रह्मज्ञान होता है। कान, नाक आदि इन्द्रियों से और अनुमान से ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। केवल बुद्धि ही उस श्रेष्ठ पदार्थ में प्रवेश कर सकती है। जैसे मन से कल्पित घट आदि स्थूल पदार्थ मन में ही लीन हो जाते हैं वैसे ही मन बुद्धि में, बुद्धि जीवात्मा में और जीवात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि, इनमें से कोई भी अपने कारण को नहीं समझ पाता; किन्तु सूक्ष्म-स्वरूप ज्ञानमय आत्मा इन सबको देखता रहता है। २०

दो सौ पाँच अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—हे महर्षि, शारीरिक या मानसिक दुःखों के बने रहने पर योगाभ्यास नहीं होता। इसलिए दुःख की चिन्ता न करना परम आवश्यक है। चिन्ता का त्याग करना ही दुःख के दूर करने की औषधि है। चिन्ता करने से दुःख नहीं मिट सकता बल्कि बढ़ता ही जाता है। बुद्धि से मानसिक और औषधि से शारीरिक दुःख दूर करना चाहिए। बच्चों की तरह दुःख में व्याकुल हो उठना ठीक नहीं। आत्मज्ञानी लोग कभी रूप, यौवन, जीवन, धन-दौलत, आरोग्य और प्रिय जनों के सहवास आदि अनित्य विषयों की वासना न करें। विपत्ति के समय दुखी होना उचित नहीं, बल्कि शोक न करके उसके हटाने का उपाय करना चाहिए। जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है। जो मनुष्य इन्द्रियों के वश होकर काम करता है उसे निस्सन्देह दुःख सहने पड़ते हैं और जो सुख-दुःख दोनों का त्याग कर देता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है, इसलिए ज्ञानी लोग दुःख में शोक नहीं करते। अर्थ (धन) से महान् अनर्थ होते हैं। एक तो धन का उपार्जन करने में ही बड़ा क्लेश मिलता है, दूसरे उसकी रक्षा करने में भी बड़े दुःख मिलते हैं, इसलिए धन का नाश हो जाने पर चिन्ता करना कदापि उचित नहीं। ज्ञान आत्मा से उत्पन्न होता है। ज्ञान मन का धर्म है। मन ज्ञान-इन्द्रिय से मिलकर विषयों का ज्ञान कराता है। वही ज्ञान शुद्ध होने पर जब मन के साथ मिलता है तब योग-समाधि के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जैसे पानी पर्वत की चोटी से निकलकर बहता है वैसे १०
ही इन्द्रिय-ज्ञान-सम्पन्न बुद्धि अज्ञानरूपी अन्धकार से निकलकर रूप आदि विषयों की ओर दौड़ती है। जब वह बुद्धि इन विषयों से अलग हो जाती है तब जैसे कसौटी पर कसे हुए सोने

में सन्देह नहीं रह जाता वैसे ही उस समय बुद्धि निस्सन्देह ब्रह्म को प्राप्त करती है। मन केवल इन्द्रियों के गुण —रूप-रस आदि—का बोधक है; इसके द्वारा रूप-रस आदि गुणों से हीन ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इन्द्रियों को रोककर उन्हें संकल्पात्मक मन में और मन को बुद्धि में एकाग्र करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जैसे शब्द तन्मात्रा आदि तत्त्वों के लुप्त होने पर पञ्च-महाभूत लुप्त हो जाते हैं वैसे ही अहङ्कार तत्त्व में बुद्धि के लीन हो जाने पर इन्द्रियाँ भी लीन हो जाती हैं। जब निश्चयात्मक बुद्धि अहङ्कार में स्थिर हो जाती है तब मन के साथ उसकी भिन्नता नहीं रहती। अहङ्कार, ध्यान के प्रभाव से उत्कर्ष पाकर, रूप आदि विषयों के साथ सत्त्व आदि मूल प्रकृति को प्राप्त करके, गुणों को त्यागकर निर्गुण पदार्थ को प्राप्त करता है। अव्यक्त के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। चिन्तन मनन करने, शम-दम आदि गुणों का अवलम्बन करने, वेदान्त सुनने और चित्त के शुद्ध होने पर ब्रह्म के जानने की इच्छा करे। तत्त्व-ज्ञानी मनुष्य—तर्क से अगम्य आनन्द-स्वरूप—परम ब्रह्म को अपने शरीर के भीतर और बाहर
२० सर्वत्र ढूँढ़ने का उद्योग करते हैं। जैसे आग ईंधन में प्रवेश करती है वैसे ही बुद्धि भी शब्द आदि विषयों में घूमती रहती है। जब बुद्धि विषय-वासना को छोड़ देती है तब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और जब विषय-वासना में लीन होती है तब ज्ञान जाता रहता है। जैसे स्वप्नावस्था में इन्द्रियाँ अपना-अपना काम छोड़ देती हैं वैसे ही आनन्द-स्वरूप परम ब्रह्म हमेशा सब कामों से अलग रहता है। मनुष्य अज्ञता से कर्मों मे लगे रहते हैं। जो मनुष्य कर्मों का त्याग कर देता है वह मोक्ष पद पाता है और जो उनमें आसक्त रहता है वह स्वर्गलोक को जाता है। जीव, प्रकृति, बुद्धि, इन्द्रिय, अहङ्कार और अभिमान को 'भूत' कहते हैं। सबसे पहले इन पदार्थों की उत्पत्ति ईश्वर से हुई है। उसके बाद इन पदार्थों से और सृष्टि हुई है। इन सब पदार्थों का धर्म के प्रभाव से कल्याण और अधर्म से अमङ्गल होता है। विषयों में आसक्त रहनेवाला मनुष्य मरने
२६ के बाद फिर जन्म लेता है और त्यागी मनुष्य, आत्मज्ञान के प्रभाव से, मुक्त हो जाता है।

दो सौ छः अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—हे महर्षि! शब्द आदि पाँचों गुणों के साथ पाँचों इन्द्रियों, मन और बुद्धि को मिला देने पर—मणि में पिरोये हुए सूत के समान—आत्मा का दर्शन होता है। जैसे सूत सोना, मोती, मूँगा, चाँदी और मिट्टी की वस्तुओं में पिरोया रहता है वैसे ही आत्मा अपने कर्म के प्रभाव से गाय, घोड़ा, मनुष्य, हाथी, मृग और कीट-पतङ्ग आदि योनियों में जन्म पाता है। प्राणी जिन-जिन शरीरों को पाने के लिए जो-जो कर्म करता है वह उन्हीं शरीरों को पाकर उन कर्मों के फल भोगता है। बुद्धि आत्मा द्वारा प्रेरित होकर अपने पूर्वकृत कर्मों का

स्मरण करती है। ज्ञान से इच्छा, इच्छा से प्रयत्न, प्रयत्न से कर्म और कर्म से फल उत्पन्न होता है। इस कारण फल कर्म से, कर्म बुद्धि से, बुद्धि ज्ञान से और ज्ञान आत्मा से उत्पन्न होता है। देह और आत्मा के भेद का, फल बुद्धि और कर्म का, विनाश होने पर जो दिव्य-ज्ञान उत्पन्न होता है वही ब्रह्मज्ञान है। योगी लोग कर्मों का त्याग करके नित्य सिद्ध परम पदार्थ का दर्शन करते हैं। विषयों में आसक्त अज्ञानी मनुष्य कभी उसका दर्शन नहीं पा सकता। पृथिवी से जल, जल से तेज, तेज से वायु, वायु से आकाश, आकाश से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से काल और काल से जगत्कर्ता शुद्ध ब्रह्म का महत्त्व अधिक है। परब्रह्म का न तो आदि है, न मध्य और न अन्त; इसी से वह अव्यय है। नश्वर पदार्थ ही दुःख-रूप हैं, किन्तु परब्रह्म इससे परे है। मोक्षाभिलाषी मनुष्य सांसारिक विषयों से बचकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य निवृत्ति-धर्म को समझ लेता है वह मुक्त हो सकता है। ऋक्, यजु और सामवेद मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर का आश्रय करके जीभ के अग्रभाग में रहते हैं। ये सब यत्न-साध्य और नश्वर हैं, किन्तु ब्रह्म को शरीर आदि के आश्रय की आवश्यकता नहीं, उसकी प्राप्ति ज्ञान के द्वारा होती है। वह परम पदार्थ सर्वव्यापी है। अव्यय होने के कारण वह दुःख से हीन और मान-अपमान से रहित है। विषयों में लिप्त रहने के कारण मनुष्य उस अदृश्य ब्रह्म को प्राप्त करने का उपाय नहीं सोच सकता। सिद्ध पुरुष, समाधि के प्रभाव से, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य होकर भी यदि अणिमादि ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं तो उन्हें ब्रह्म के दर्शन नहीं हो सकते। विषयी मनुष्यों को विषयों के देखने से विषय-भोग करने की इच्छा होती है, इस कारण वे विषयों से छूटकर ब्रह्म-प्राप्ति की इच्छा नहीं कर सकते। तुच्छ बाह्य गुणों में आसक्त मूढ़ मनुष्य क्या कभी योगियों के जानने योग्य श्रेष्ठ गुणों को जान सकता है? ब्रह्म के स्वरूप-भूत श्रेष्ठ आन्तरिक गुणों के द्वारा परमब्रह्म प्राप्त हो सकता है। सूक्ष्म मन के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान होता है, वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता। मनन से मन को और अभेद बुद्धि से दर्शन को स्थिर, ज्ञान से बुद्धि को सन्देहहीन, बुद्धि से मन को शुद्ध और मन के द्वारा इन्द्रियों को स्थिर करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ध्यान के पुष्ट होने पर जिसकी विषय-वासना दूर हो जाती है वह इच्छारहित निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। ईंधन में गुप्त अग्नि पर जैसे वायु का प्रभाव नहीं पड़ता वैसे ही विषयासक्त मनुष्य परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता। ध्यान के बल से विषयों को आत्मा में लीन कर देने पर, बुद्धि से परे, ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ध्यान के समय सब विषयों को आत्मा से जुदा कर देने पर, बुद्धि-कल्पित, ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस प्रकार विचार करके सब विषयों को आत्मा में लीन कर देता है वह ब्रह्म पद प्राप्त कर सकता है। आत्मा अव्यक्त है और उसके कर्म भी अव्यक्त हैं। मनुष्यों के मरने पर वह अव्यक्त भाव से ही उनकी देह से निकल जाता है। हम केवल इन्द्रियों के कर्म और

सुख-दुःख को आत्मा के कर्म और सुख-दुःख समझते हैं। किन्तु वास्तव में आत्मा न कोई कर्म करता है और न सुख-दुःख का भोग ही करता है। वह शरीर में रहकर इन्द्रियों के प्रभाव से ही कर्म में प्रवृत्त होता है, किन्तु ईश्वर की इच्छा के बिना वह और कोई कर्म नहीं कर सकता। जैसे मनुष्य पृथिवी का अन्त नहीं देख सकता, किन्तु कहीं न कहीं अवश्य ही उसका अन्त है वैसे ही सुख-दुःख आदि का अन्त भी समझ में तो नहीं आता, पर जब सुख-दुःख आदि उत्पन्न पदार्थ हैं तो निस्सन्देह उनका अन्त निर्दिष्ट है। जैसे हवा समुद्र में पड़े हुए तृण आदि को बहाकर किनारे लगा देती है वैसे ही कर्म संसार में लिप्त जीव को परब्रह्म में लीन कर
३० देता है। जैसे सूर्य पहले अपनी किरणों को फैलाकर फिर धीरे-धीरे समेट लेता है वैसे ही मनुष्य विषय-भोग करके अन्त को, अहङ्कार छोड़कर, गुणातीत परब्रह्म में लीन हो जाता है। सारांश यह कि जो जन्म नहीं लेता, जिसके रहने का कोई स्थान नियत नहीं है, जो पुण्यवान् मनुष्यों की परमगति है, जिसमें सब कार्यों का लोप हो जाता है, जो मोक्ष-स्वरूप और अविनाशी
३२ है तथा जो आदि-मध्य और अन्त से हीन है उसी परब्रह्म का ज्ञान होने पर मोक्ष मिल सकता है।

दो सौ सात अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को संसार की सृष्टि का प्रकार बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! जो सबकी उत्पत्ति करते हैं, जिनकी उत्पत्ति किसी से नहीं हुई और जो पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, विष्णु, हृषीकेश, गोविन्द और केशव आदि नामों से विख्यात हैं उन भूतभावन नारायण का वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। आप विस्तार से वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—महाराज ! मैंने जमदग्नि के पुत्र परशुराम, देवर्षि नारद और कृष्ण द्वैपायन से यह वृत्तान्त सुना है। भगवान् असित देवल, महातपस्वी वाल्मीकि और महर्षि मार्कण्डेय नारायण का यह अद्भुत वृत्तान्त कहते हैं। मैंने महात्माओं के मुँह से सुना है कि भगवान् नारायण पुरुषप्रधान ईश्वर और सर्वव्यापी हैं। अब मैं पुराण के जानकार ब्राह्मणों का वर्णन किया हुआ, महात्मा विष्णु का, वृत्तान्त सुनाता हूँ।

भगवान् पुरुषोत्तम आकाश, वायु, पृथिवी, तेज और जल, इन पाँच महाभूतों को उत्पन्न करके फिर स्वयं जल के ऊपर सो गये। इसके बाद उन्होंने मन और अहङ्कार को उत्पन्न
१० किया। अहङ्कार ही समस्त प्राणियों और भूत भविष्यत् आदि को धारण किये हुए है। अहङ्कार की उत्पत्ति के बाद जलशायी नारायण की नाभि से सूर्य के समान तेजस्वी एक दिव्य कमल उत्पन्न हुआ। उसी कमल से लोक-पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के उत्पन्न होते ही उनके तेज से सब दिशाएँ प्रकाशमान हो उठीं। भगवान् ब्रह्मा की उत्पत्ति के बाद मधु नाम का एक तमोगुणी महाअसुर पैदा हुआ और वह ब्रह्मा को खा जाने के लिए झपटा। तब

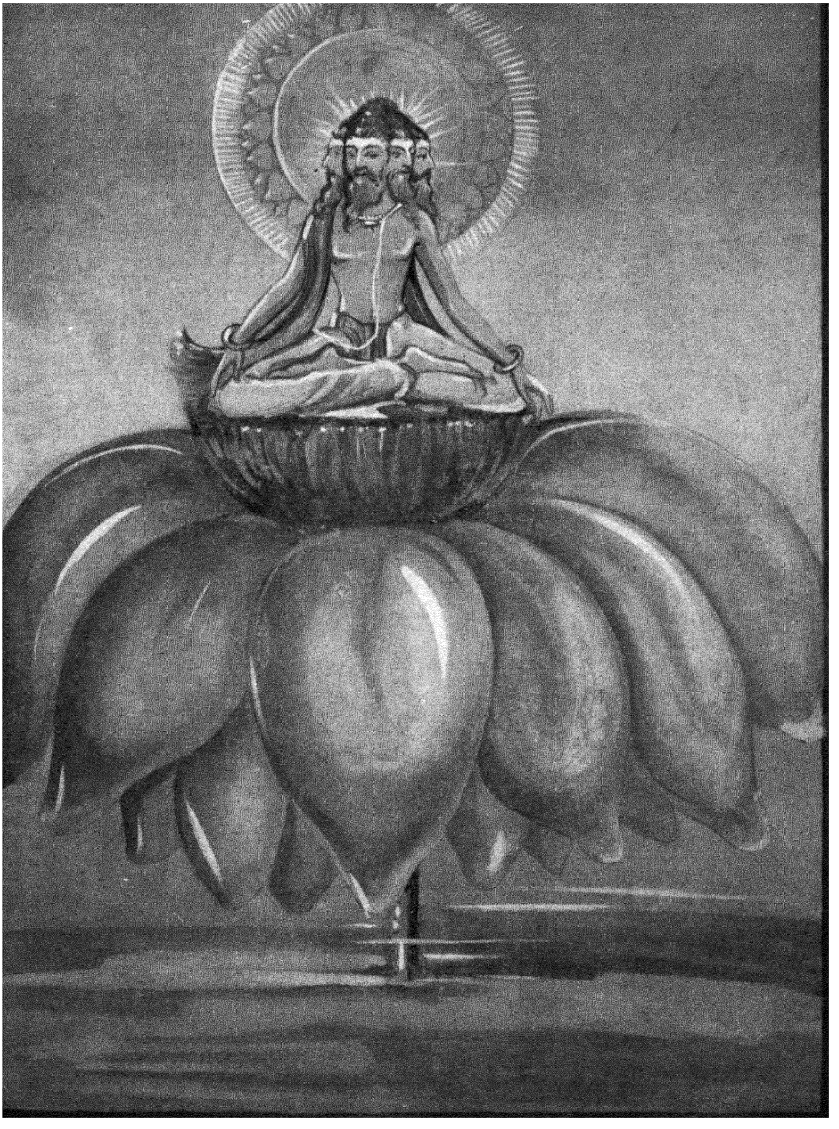

उसी कमल से लोक-पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए।—पृ० ३६३६

नारायण ने, ब्रह्मा की रक्षा के लिए, उस उग्रकर्मा भयङ्कर असुर को मार डाला। उस असुर को मार डालने से देव-दानव-मानव आदि सब हृषीकेश को मधुसूदन कहने लगे।

मधु दैत्य के मारे जाने पर ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु नाम के मानस-पुत्र उत्पन्न किये। मरीचि ने कश्यप को उत्पन्न किया। वेद-विद्या के विद्वान् मरीचि मुनि की उत्पत्ति से पहले ब्रह्मा ने अपने अँगूठे से एक और पुत्र उत्पन्न किया था। उनका नाम दक्ष प्रजापति है। दक्ष ने तेरह कन्याएँ उत्पन्न कीं। इन कन्याओं में दिति सबसे बड़ी है। सब धर्मों के मर्मज्ञ, महायशस्वी कश्यप स्वयं इन सब कन्याओं के पति हुए। २०

अब प्रजापति दक्ष ने दस कन्याएँ और पैदा करके धर्म को दे दीं। धर्म ने उन कन्याओं के गर्भ से वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, साध्य और वायु आदि पुत्रों को उत्पन्न किया। दक्ष ने और सत्ताईस कन्याएँ पैदा कीं। इन कन्याओं के पति चन्द्रमा हुए। कश्यप की स्त्री अदिति के गर्भ से महापराक्रमी देवश्रेष्ठ आदित्यगण उत्पन्न हुए। इन्हीं आदित्यगणों में वामन-रूपी विष्णु का अवतार हुआ। उन वामनदेव के विक्रमण के प्रभाव से देवताओं की वृद्धि तथा दानवों और असुरों की अवनति हुई। दनु से विप्रचित्ति आदि दानव और दिति से महापराक्रमी असुर पैदा हुए। कश्यप की और स्त्रियों ने गन्धर्व, घोड़ा, चिड़िया, गाय, किन्नर, मछली और उद्भिज जीवों को पैदा किया।

इसके बाद भगवान् मधुसूदन ने दिन, रात, काल, ऋतु, पूर्वाह्ण, पराह्ण, बादल, पृथिवी और स्थावर-जङ्गम प्राणियों की सृष्टि की। फिर उनके मुँह से एक सौ ब्राह्मण, भुजाओं से ३०
एक सौ क्षत्रिय, जाँघों से एक सौ वैश्य और पैरों से एक सौ शूद्र उत्पन्न हुए। हे युधिष्ठिर, मधुसूदन ने इस प्रकार चार वर्णों की सृष्टि करके वेद के विधाता ब्रह्मा को सब प्राणियों का अध्यक्ष, भगवान् विरूपाक्ष को भूत और मातृगण का अध्यक्ष, यमराज को पापियों और पितरों का शासक, कुबेर को धन का रक्षक, जल के स्वामी वरुणदेव को जल-जन्तुओं का अध्यक्ष और इन्द्र को सब देवताओं का अधीश्वर बना दिया। उस समय जो मनुष्य जितने दिन जीना चाहता था उतने दिनों तक जीता रहता था, किसी को मृत्यु का भय नहीं था। उस समय स्त्री-प्रसङ्ग करने की आवश्यकता नहीं थी, इच्छा से ही सन्तान की उत्पत्ति हो जाती थी। उस समय का नाम सत्ययुग था। सत्ययुग के बाद त्रेतायुग हुआ। उस युग में भी मैथुन धर्म नहीं था, स्त्री का स्पर्श करने से ही सन्तान की उत्पत्ति हो जाती थी। द्वापर युग से मैथुन धर्म प्रचलित हुआ और कलियुग में मनुष्य द्वन्द्वभाव को प्राप्त होंगे। ४०

हे धर्मराज, मैंने सब प्राणियों के अधीश्वर नारायण का वृत्तान्त कहा; अब पापियों का वृत्तान्त सुनो। दक्षिण देश में उत्पन्न नरवर, अन्ध्रक, गुह, पुलिन्द, शबर, चूचुक, मद्रक और उत्तर देश-निवासी यौन, काम्बोज, गान्धार, किरात और बर्बरगण हमेशा पाप करते रहते हैं। वे

लोग चाण्डाल, गिद्ध और कौए के से आचरण करते हैं। उनकी उत्पत्ति सत्ययुग में नहीं हुई थी। त्रेतायुग से उनकी बढ़ती होने लगी। उनकी संख्या अधिक हो जाने और उनके कारण पृथिवी के पाड़ित होने पर, भगवान् भूतभावन की इच्छा से, वे सब आपस में लड़ने लगे।

हे कुरुश्रेष्ठ, इस प्रकार परमात्मा से यह सृष्टि हुई है। सब लोकों के ज्ञाता देवर्षि नारद ने भी वासुदेव को सर्वश्रेष्ठ कहकर उनका नित्यत्व माना है। ये सत्य-पराक्रमी महाबाहु
४९ श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं हैं, इनकी महिमा अपार है।

दो सौ आठ अध्याय

मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों के वंश का और प्रत्येक दिशा में निवास करनेवाले महर्षियों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, पहले कौन-कौन प्रजापति हो गये हैं और किस-किस दिशा में कौन-कौन महर्षि थे?

भीष्म ने कहा—बेटा, प्राचीन प्रजापतियों और महर्षियों का वर्णन सुनो। पहले अकेले भगवान् ब्रह्मा थे। उन्होंने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ, ये अपने समान सात पुत्र उत्पन्न किये। पुराण में इन सात महर्षियों को सात ब्रह्मा कहा गया है।

अब प्रजापति का वृत्तान्त सुनो। महात्मा अत्रि के वंश में ब्रह्मयोनि भगवान् प्राचीनबर्हि की उत्पत्ति हुई। प्राचीनबर्हि से दस प्रचेता उत्पन्न हुए। दस प्रचेताओं के एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम दक्ष है। संसार में वे 'दक्ष' और 'क' दो नामों से प्रख्यात हुए। मरीचि के पुत्र के दो नाम थे—कश्यप और अरिष्टनेमि। अत्रि के पुत्र वीर्यवान् राजा सोम हुए, जो देवताओं के हज़ार युगों तक जीवित रहेंगे। भगवान् अर्यमा और उनके पुत्रों ने संसार का
१० शासन और नियमों का संस्थापन किया। महाराज शशबिन्दु के दस हज़ार स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियों के गर्भ से एक-एक हज़ार पुत्र पैदा हुए। इस प्रकार महात्मा शशबिन्दु के दस लाख पुत्र हो गये। उन्हीं से सारी प्रजा की उत्पत्ति हुई है। प्राचीन ब्राह्मण लोग शशबिन्दु के पुत्रों को प्रजापति कह गये हैं। यशस्वी प्रजापतियों का वृत्तान्त मैंने कह सुनाया, अब तीनों लोकों के अधीश्वर देवताओं का वर्णन सुनो।

भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये बारह आदित्य महात्मा कश्यप के पुत्र हैं। नासत्य और दस्र नाम के दो अश्विनीकुमार महात्मा अष्टम मार्तण्ड से उत्पन्न हुए। ये सब देवता और पितर के नाम से प्रसिद्ध हुए। विश्वरूप यशस्वी, अनैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष और रैवत, ये त्वष्टा के पुत्र हैं। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर,
२० सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित, ये अष्टवसु के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रजापति मनु के

अधिकार के समय ये देवता थे। प्राचीन समय में यही देवता और पितर कहलाते थे। ऋभु और मरुद्गण आदि देवता हैं। इन देवताओं और दोनों अश्विनीकुमारों में आदित्यगण क्षत्रिय, मरुद्गण वैश्य, तपस्वी अश्विनीकुमार शूद्र और अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न देवतागण ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवता भी चार वर्णों में विभक्त हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन देवताओं का नाम लेता है वह अपने किये हुए तथा दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न सब पापों से छूट जाता है।

अङ्गिरा के पुत्र यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औषज, कक्षीवान् और बल तथा त्रिलोकपावन सप्तर्षि-मण्डल और महर्षि मेधातिथि के पुत्र कण्व और वर्हिषद पूर्व दिशा में; उन्मुच, विमुच, स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, इध्मवाह और मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य, ये सब ब्रह्मर्षि दक्षिण दिशा में; उषङ्गु, कवष, धौम्य, परिव्याध, एकत, द्वित, त्रित और अत्रि के पुत्र भगवान् सारस्वत, ये सब ३०
महात्मा पश्चिम दिशा में; और भगवान् आत्रेय, वसिष्ठ, काश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीक के पुत्र जमदग्नि, ये सात महर्षि उत्तर दिशा में रहते हैं। ये तेजस्वी महर्षि जिन दिशाओं में रहते हैं उनका वर्णन मैंने किया। ये सब महात्मा तीनों लोकों के साक्षी हैं। इनका स्मरण करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य इन महर्षियों के रहने की दिशाओं में जाकर इनकी शरण लेता है वह सब पापों से छूटकर निर्विघ्न अपने घर को जाता है। ३७

दो सौ नव अध्याय

वराह भगवान् के अवतार का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! अविनाशी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के तेज, उनके कर्म और तिर्यग्योनि में उनके जन्म लेने का कारण सुनने की मेरी इच्छा है। आप विस्तार से वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—बेटा, एक बार शिकार के लिए घूमते-घामते मैंने महर्षि मार्कण्डेय के आश्रम पर पहुँचकर देखा कि वहाँ हज़ारों मुनि बैठे हैं। मुनियों ने मधुपर्क देकर मेरा सत्कार किया और मैंने सब महर्षियों को प्रणाम किया। उसके बाद महर्षि कश्यप ने मुझे एक मनोहर कथा सुनाई। मैं वह कथा कहता हूँ, मन लगाकर सुनो।

प्राचीन काल में क्रोध-लोभ के वशीभूत महापराक्रमी नरक आदि दानव, देवताओं का ऐश्वर्य और सुख सहन न कर सकने के कारण, अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगे। देवता और देवर्षिगण उनके उपद्रव से पीड़ित और व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे। देवताओं ने देखा कि घोररूप महापराक्रमी दानवों से भर जाने के कारण पृथिवी, दुःख के मारे, रसातल में धँसी जा रही है। पृथिवी की यह दुर्दशा देखने से देवताओं को और भी डर लगा। अब १०
देवताओं और ऋषियों ने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा—भगवन्, दानव लोग हमारे साथ बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। हम लोग उनके उपद्रव को कहाँ तक सहन करें?

ब्रह्माजी ने कहा—देवताओ, इस विपत्ति को दूर करने का उपाय मैंने कर दिया है। दानव लोग इस समय दल बाँधकर पाताल में रहते हैं। वे देवताओं से पाये हुए वरदान, बल और अहङ्कार के कारण मोहित होने से नहीं जान सकते कि—अव्यक्त-स्वरूप, देवताओं से भी अधृष्य—भगवान् विष्णु ने वराह का रूप धारण किया है। वही वराह-रूप भगवान् बड़े वेग से पाताल में जाकर इन दुष्टों का नाश करेंगे। ब्रह्माजी की यह बात सुनकर और अपने दुःख का अन्त समझकर देवता लोग बहुत सन्तुष्ट हुए।

अब महातेजस्वी विष्णु भगवान् ने वराह का रूप धारण करके, पाताल में जाकर, दानवों पर धावा किया। वराह का दिव्य बल देखकर कुपित दानव लोग उन्हें पकड़कर चारों ओर खींचने लगे; किन्तु उनका कुछ भी न बिगाड़ सके। इससे दानवों को बड़ा आश्चर्य और भय
२० पैदा हुआ। उन्हें अपने जीवन का सन्देह होने लगा।

देवाधिदेव वराह भगवान् योग के बल से, दानवों को डरवाने के लिए, बड़े ज़ोर से गरजने लगे। उनके गरजने का भीषण शब्द तीनों लोकों में व्याप्त हो गया; उस शब्द से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। इन्द्र आदि देवता डर गये। पृथिवी के स्थावर-जङ्गम सब प्राणी सन्नाटे में आ गये। उस शब्द से डरकर और विष्णु के तेज से मोहित होकर दानव लोग पृथिवी पर गिरने और मरने लगे। वराह भगवान् ने खुरों से दानवों का मांस, मेद और उनकी हड्डियाँ रौंद डालीं। नारायण ने वराह का रूप धारण करके जो भीषण शब्द किया इसी से उनका नाम सनातन पड़ा। देवताओं ने वराह भगवान् का गरजना सुनकर डर के मारे जगत्पति ब्रह्माजी के पास जाकर कहा—भगवन्, यह कैसा शब्द हो रहा है और यह शब्द किसने किया है, जिससे सारा संसार विह्वल हो रहा है। इस शब्द से देवता और दैत्य सभी मोहित हो रहे हैं। हम लोग इसे नहीं समझ पाते।

देवता लोग ब्रह्माजी से यों कह ही रहे थे कि इतने में वराहरूपी भगवान् विष्णु, दानवों का संहार करके, पाताल लोक से उठे। महर्षि लोग उनकी स्तुति करने लगे। अब ब्रह्माजी ने वराह को देखकर देवताओं से कहा—यह देखो, महाकाय महाबली सब विघ्नों का नाश करनेवाले भूतभावन वराहरूपी भगवान् कृष्ण दानवों का विनाश करके आ रहे हैं। तुम लोगों को अब कोई डर नहीं है। धैर्य धरो। अब शोक, सन्ताप और भय को छोड़ दो। ये वराह-रूपी कृष्ण ही विधि, प्रभाव और संहार करनेवाले काल हैं। इन्होंने लोकों की रक्षा करने के लिए यह घोर शब्द किया है। सब लोग इनको नमस्कार करते हैं। ये सबके आदि और सबके ईश्वर हैं। ३६

दो सौ दस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गुरु-शिष्य-संवाद-रूप योग का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, अब आप मोक्ष की प्राप्ति के कारण स्वरूप योग का वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में गुरु-शिष्य-संवाद नाम का आख्यान सुनो। एक बार एक परम मेधावी शिष्य ने, अपने कल्याण की इच्छा से, तेजस्वी सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय आचार्य को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हैं तो मेरे सन्देह को दूर कीजिए। मेरा और आपका उत्पन्न करनेवाला कौन है? सबके शरीर की रचना के सब उपादान एक से होने पर भी किसी की उन्नति और किसी की अवनति होती रहती है, इसका क्या कारण है? और वेदों में लौकिक तथा वर्णाश्रम-धर्म की जो व्यवस्था है उसका वर्णन कीजिए।

आचार्य ने कहा—बेटा, उस अध्यात्म योग का वर्णन सुनो जो कि चारों वेदों में भी गुप्त है और जो सब विद्याओं तथा शास्त्रों का सार है। वासुदेव सम्पूर्ण संसार और वेदों के आदि हैं। वेदवित् पण्डितों ने कहा है कि विश्वव्यापी सनातन पुरुष सत्य, ज्ञान, तितिक्षा, यज्ञ और मृदुता-स्वरूप हैं। उन्हीं से संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। वे अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म हैं। ब्राह्मण ब्राह्मण को, क्षत्रिय क्षत्रिय को, वैश्य वैश्य को और शूद्र शूद्र को वासुदेव का माहात्म्य सुनाते हैं, इसलिए तुम मुझसे यह माहात्म्य सुनने के लिए उपयुक्त पात्र हो। अब मेरी बातों को सावधान होकर सुनो। वासुदेव साक्षात् कालचक्र, अनादि और अनन्त हैं। यह त्रैलोक्य उन्हीं के द्वारा, पहिये की तरह, घूमता रहता है। उनको लोग अविनाशी, अव्यक्त और नित्य कहते हैं। उन्हीं महात्मा से देवता, पितर, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं से युग के प्रारम्भ में वेद-शास्त्र, शाश्वत धर्म और प्रकृति की सृष्टि हुई है। जैसे वसन्त आदि ऋतुओं में वृक्ष फूलते हैं वैसे ही प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सृष्टि-स्थिति-प्रलय के कर्ता हैं। युग के प्रारम्भ में काल के योग से जिन पदार्थों की उत्पत्ति होती है उन्हीं पदार्थों से, लोक-यात्रा के विधान से उत्पन्न, ज्ञान पैदा होता है।

युग के आदि में भगवान् स्वयम्भू की आज्ञा से महर्षियों ने तप के प्रभाव से, छिपे हुए, वेद और इतिहास को प्राप्त किया। संसार के हित के लिए ब्रह्माजी ने वेद, बृहस्पति ने वेदाङ्ग, शुक्राचार्य ने नीति-शास्त्र, देवर्षि नारद ने सङ्गीतशास्त्र, भरद्वाज ने धनुर्विद्या, गार्ग्य ने देवर्षियों के चरित, कृष्णात्रेय ने चिकित्साशास्त्र और अन्यान्य महर्षियों ने न्यायशास्त्र आदि की उत्पत्ति की। इन महर्षियों ने युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाण से जिस ब्रह्म का निरूपण किया है उसी की उपासना करो। देवता और ऋषिगण उस अनादि ब्रह्म का निरूपण नहीं कर सकते, केवल लोक-विधाता भगवान् नारायण ही उसको जानते हैं। महर्षियों, देव-दानवों और प्राचीन राजर्षियों ने नारायण से उस दुःख के विनाश के औषधि-स्वरूप ब्रह्म को जाना। पुरुष के आलोचित सब भावों को प्रकृति प्रकट करती है। धर्म-अधर्म से युक्त यह संसार प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ है। जैसे एक दीपक से हज़ारों दीपक जलाये जा सकते हैं वैसे ही प्रकृति से सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अनन्त होने से प्रकृति का कभी नाश नहीं होता। अव्यक्त ईश्वर से बुद्धि, बुद्धि से अहङ्कार, अहङ्कार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। ये अहङ्कार आदि आठ पदार्थ मूल-प्रकृति हैं; संसार इन्हीं पदार्थों में स्थित है। उक्त आठ प्रकृतियों से पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच विषयों और मन की उत्पत्ति हुई है। आँख, कान, जीभ, नाक और त्वचा, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, उपस्थ (लिङ्ग और योनि), गुदा और वाणी, ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच विषय हैं। इन सब इन्द्रियों और विषयों में मन व्याप्त रहता है। मन ही रसना के द्वारा रस का स्वाद लेता और वाक् इन्द्रिय द्वारा शब्द का प्रयोग करता है। इन्द्रियों से युक्त मन ही बुद्धि आदि आन्तरिक, आकाश आदि बाह्य और महत् आदि व्यक्त पदार्थों में गिना जाता है। दस इन्द्रियाँ, पाँच विषय और मन, ये सोलह देवता-स्वरूप हैं। ये सब शरीर में रहकर शरीर की उत्पत्ति करनेवाले ज्ञान-स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं। रस जल का, गन्ध पृथिवी का, श्रोत्र आकाश का, नेत्र तेज का, स्पर्श वायु का, मन बुद्धि का और बुद्धि आत्मा का गुण है। सब प्राणियों के आत्मभूत ईश्वर में ज्ञान का निवास है। ये सत्त्व आदि गुण प्रकृति के पीछे चलकर, प्रवृत्तिशून्य ईश्वर का आश्रय करके, स्थावर-जङ्गम-रूपी संसार का सब काम करते हैं।

नव द्वारों और शब्द आदि गुणों से युक्त परम पवित्र देह-रूपी पुर में निवास करके आत्मा शयन करता है, इसी से वह पुरुष कहलाता है। वह अजर, अमर, व्यक्त, अव्यक्त, सर्वव्यापी, सगुण, सूक्ष्म और सब प्राणियों के गुणों का आश्रय है। जैसे दीपक—बड़ा हो या छोटा—प्रकाश करता है वैसे ही पुरुष, उपाधि-भेद से महान् हो या लघु, सब प्राणियों में ज्ञान-स्वरूप निवास करके सब वस्तुओं का ज्ञान कराता है। वह कान और आँख के द्वारा स्वयं सुनता और देखता है। शरीर शब्द आदि विषयों की प्राप्ति का कारण है और आत्मा सब

कार्यों का कर्ता है। जैसे काठ के भीतर की आग काठ को काटकर देखने पर भी नहीं देख ४०
पड़ती वैसे ही शरीर को काट डालने पर भी उसमें आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता। जैसे काठ के रगड़ने पर उसके भीतर की आग प्रत्यक्ष हो जाती है वैसे ही, योग के प्रभाव से, देह में स्थित आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। नदी और जल तथा सूर्य और किरण का जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध शरीर और आत्मा का है। देह और आत्मा का सम्बन्ध तोड़ने के लिए योग के सिवा और कोई उपाय नहीं है। स्वप्नावस्था में जैसे आत्मा शरीर से निकलकर पाँच इन्द्रियों से युक्त हो अन्यत्र चला जाता है वैसे ही मृत्यु होने पर शरीर का त्याग करके वह दूसरा शरीर प्राप्त कर लेता है। आत्मा अपने कर्मों के प्रभाव से ही पूर्व-शरीर छोड़ देता है और अपने कर्मों के प्रभाव से ही दूसरे शरीर में जाता है। आत्मा जिस प्रकार एक शरीर का त्याग करके दूसरे शरीर में जाता है उसका वर्णन आगे करूँगा। ४६

दो सौ ग्यारह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, संसार में स्थावर-जङ्गम चार प्रकार के जीव हैं। उनके जन्म और मरण समझ से बाहर की बातें हैं। मन अव्यक्त आत्मा का स्वरूप है, इसलिए वह भी अव्यक्त है। जैसे छोटे से बीज से पीपल का भारी पेड़ पैदा होता है वैसे ही अव्यक्त परमात्मा से सारा संसार उत्पन्न होता है। जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंचता है वैसे ही पूर्व-जन्म के शुभ-अशुभ कर्म जीव के पास आ जाते हैं और मोह से उत्पन्न काम आदि इन्द्रियों के विषय तथा चित्तानन्द आदि सब भाव भी दूसरे जन्म में प्राणी का आश्रय लेते हैं। पहले पृथिवी, आकाश, स्वर्ग, महाभूत, प्राण और शान्ति तथा काम आदि गुण कुछ भी नहीं थे। केवल आत्मा की सत्ता थी। पृथिवी आदि के साथ जीव का कोई सम्पर्क नहीं है। जीव के साथ पृथिवी आदि का जो सम्बन्ध ज्ञात होता है उसका कारण माया है। जीव सर्वव्यापी, अनिर्वचनीय और नित्य है। वह पहले की अपनी इच्छा के प्रभाव से ही अपने को मनुष्य, पशु या अन्य कोई प्राणी समझता है। उसी इच्छा के वश होकर जीव कर्म करता है और कर्मों के वश से उसे फिर इच्छा पैदा होती है। इसी प्रकार जीव के कर्म और उसकी इच्छा दोनों, पहिये के समान, घूमते रहते हैं। उसके जन्म और मरण का प्रवाह-रूप चक्र हमेशा चलता रहता है। बुद्धि और वासना इस चक्र की नाभि, देह और इन्द्रिय आदि इसके अर (नाभि और नेमि को धारण करनेवाला काठ), ज्ञान और क्रिया आदि इसकी नेमि, रजोगुण इसका अक्ष और आत्मा इस चक्र का अधिष्ठाता है। जैसे तेली तिलों को पेरता है वैसे ही अज्ञान से उत्पन्न सुख-दुःख का भोग इस चक्र में संसार को पेरता रहता है। वही चक्र, फल

पाने की इच्छा से, अभिमान के वशीभूत होकर कर्म करता है। इच्छा ही कार्य और कारण
१० के संयोग का कारण है। कार्य कारण को और कारण कार्य को लाँघ नहीं सकता। काल कार्य के साधन का प्रधान कारण है। प्रकृति और विकृति उस पुरुष का आश्रय करके, कर्म से युक्त होकर, एक दूसरी से मिलती हैं। जैसे धूल हवा से उड़ाई जाकर हवा के साथ चलती है वैसे ही जीवात्मा शरीर से निकलकर राजस तामस भाव तथा पूर्वकृत कर्म और विद्या के बल से युक्त होकर परमात्मा का अनुगमन करता है। और, जैसे हवा धूल को उड़ाकर भी उससे अछूती बनी रहती है वैसे ही आत्मा राजस आदि भावों से युक्त रहने पर भी उनमें लिप्त नहीं होता। पण्डित लोग, वायु के साथ धूल के समान, सत्त्व आदि गुणों के साथ जीवात्मा का पृथक् भाव जानते हैं। हे धर्मराज, शिष्य को सन्देह होने पर आचार्य ने इस प्रकार उसका सन्देह दूर कर दिया। सुख-दुःख के त्याग करने का उपाय सभी मनुष्यों को सोचना चाहिए। जैसे आग में झुलसे हुए बीज नहीं उगते वैसे ही ज्ञानरूपी आग में सब
१७ क्लेशों को जला देने पर फिर जीवात्मा को जन्म नहीं लेना पड़ता।

दो सौ बारह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! अविवेकी मनुष्य जैसे सांसारिक कर्मों को, श्रेष्ठ समझकर, करता है वैसे ही विवेकी महात्मा लोग विज्ञान तत्त्व का ही अवलम्बन करते हैं। विज्ञान के सिवा किसी कर्म में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। वेदोक्त कर्मों को करते हुए विद्वान् पुरुषों में विरला ही मनुष्य अपनी महानुभावता से मोक्ष-मार्ग का आश्रय करने की इच्छा करता है। कर्म का त्याग करना महात्माओं का काम है और वह काम समाज में प्रशंसनीय है। कर्मों से निवृत्ति होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। देह का अभिमान करनेवाले, क्रोध-लोभ के वशीभूत, मूढ़ लोग राजस और तामस गुणों में फँसकर सांसारिक विषयों में उलझे रहते हैं। अतएव मोक्ष चाहनेवाले पुरुष, कर्म के द्वारा, आत्मज्ञान का द्वार तैयार करते हैं; किन्तु कर्मों के फल से मिलनेवाले स्वर्ग आदि को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते। लोहा मिले हुए सोने की तरह, राग आदि दोषों से दूषित विज्ञान शोभित नहीं होता। जो मनुष्य काम, क्रोध और लोभ के वश होकर धर्म-मार्ग को छोड़कर अधर्म करता है वह निस्सन्देह विपत्ति में पड़ता और नष्ट हो जाता है। अतएव राग के वश होकर शब्द आदि विषयों में फँसा रहना अच्छा नहीं। जो मनुष्य विषयों में फँसा रहता है उसे क्रोध, हर्ष और विपत्ति सहनी पड़ती है। जब सभी के शरीर पञ्चभूतमय और सत्त्व, रज, तम गुण से युक्त हैं तब दूसरे की स्तुति या निन्दा करना व्यर्थ है। मूढ़ मनुष्य ही अज्ञान से रूप, रस, स्पर्श आदि

विषयों में आसक्त रहता है। वह अपने शरीर को पार्थिव नहीं समझता। जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लीपा जाता है वैसे ही यह मिट्टी का बना हुआ शरीर मिट्टी से ही पुष्ट होता है। शहद, तैल, दूध, घी, मांस, नमक, गुड़, अन्न, फल-मूल आदि सब वस्तुएँ पानी और मिट्टी से पैदा होती हैं। जैसे वन में रहनेवाले संन्यासी लोग मिष्टान्न आदि भोजन की इच्छा न करके शरीर की रक्षा के लिए साधारण भोजन करते हैं वैसे ही गृहस्थों को भी अपने जीवन की रक्षा के लिए, रोगी मनुष्य के औषधि-सेवन के समान, साधारण भोजन करना चाहिए। उदारचित्त मनुष्य सत्यवादिता, बाह्य और आन्तरिक पवित्रता, सरलता, वैराग्य, अध्ययन आदि से उत्पन्न तेज, विक्रम, क्षमा, धैर्य, बुद्धि, मन और तपस्या के प्रभाव से सब विषयात्मक भावों पर दृष्टि रखता हुआ शान्ति प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्रियों का दमन करे। प्राणी अपने अज्ञान से ही सत्त्व, रज और तमोगुण में मोहित होकर संसार में चक्र के समान बार-बार घूमते रहते हैं। अतएव अज्ञान से होनेवाले दोषों को समझकर अज्ञान से उत्पन्न अहङ्कार को छोड़ दे। महाभूत, इन्द्रियाँ, सत्त्व आदि तीनों गुण, ईश्वर समेत तीनों लोक और कर्म, ये सब अहङ्कार में स्थित हैं। जैसे काल सब ऋतुओं के गुण प्रकट कर देता है वैसे ही अहङ्कार प्राणियों के कर्म उत्पन्न करता है। अन्धकार के सदृश मोहरूपी तमोगुण अज्ञान से पैदा होता है। सत्त्व आदि तीनों गुणों में ही प्राणियों के सुख-दुःख बँधे रहते हैं। इन तीनों गुणों से और जो गुण उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन सुनो। प्रीति, असन्देह, धैर्य और स्मरण सत्त्वगुण से; काम, क्रोध, असावधानी, लोभ, मोह, भय और दुःख रजोगुण से तथा विषाद, शोक, मान, दर्प और अनार्यता ये तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। शरीर में स्थित इन गुणों में से प्रत्येक की अधिकता और न्यूनता को मनुष्य हमेशा देखता रहे।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मोक्ष का चाहनेवाला मनुष्य किन दोषों का मन से त्याग करे और किन दोषों को बुद्धि से शिथिल करे? कौन दोष बार-बार आते और कौन दोष मोह के वश दुर्बल से जान पड़ते हैं? विवेकी लोग, बुद्धि और हेतु के द्वारा, किन दोषों के बलाबल का विचार करते हैं? इन विषयों में मुझे सन्देह है, आप समाधान कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, विशुद्धचित्त मनुष्य सब दोषों को नष्ट करके मुक्त हो जाता है। जैसे लोहे की कुल्हाड़ी लोहे से बनी हुई ज़ञ्जीर को काटकर स्वयं भी टूट जाती है वैसे ही ध्यान से शुद्ध की हुई बुद्धि महात्माओं के, रजोगुण से उत्पन्न, स्वाभाविक दोषों को नष्ट करके शान्ति प्राप्त करती है। सत्त्व आदि तीनों गुण शरीर की प्राप्ति के बीज-स्वरूप हैं, किन्तु मन को जीत लेनेवाले मनुष्य का सत्त्वगुण ही ब्रह्म की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य को रजोगुण और तमोगुण का त्याग कर देना चाहिए। मनुष्य का रजोगुण और तमोगुण हट जाने पर सत्त्व गुण बढ़ता और निर्मल हो जाता है। कोई-कोई तो चित्त-शुद्धि के कारण-स्वरूप मन्त्रयुक्त यज्ञ आदि कर्मों को अनावश्यक कहते हैं, किन्तु वास्तव में यज्ञ आदि कर्म

३० वैराग्य करानेवाले और शम आदि गुणों की रक्षा के कारण हैं। रजोगुण के प्रभाव से अधर्मयुक्त अर्थ और कामरूपी सब कर्मों के फल मिलते हैं। हिंसा करनेवाले, आलसी, निद्रा के वशीभूत, अविवेकी मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से लोभ और क्रोधयुक्त कर्मों का फल भोगते हैं। श्रद्धावान्
३३ श्रीमान् मनुष्य सत्त्व गुण का अवलम्बन करके शुद्ध सात्त्विक भाव का आश्रय करते हैं।

दो सौ तेरह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—महाराज! रजोगुण के प्रभाव से मोह तथा तमोगुण के प्रभाव से क्रोध, लोभ, भय और दर्प उत्पन्न होते हैं। जो इनका नाश कर देता है उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। शुद्धचित्त मनुष्य ही उस अविनाशी अव्यक्त सर्वव्यापी परमात्मा को जान सकता है। मनुष्य उसी परमात्मा की माया से रूप आदि बाह्य पदार्थों में आसक्त, ज्ञानभ्रष्ट, अविवेकी और क्रोधी हो जाता है। क्रोध से काम, लोभ और मोह पैदा होते हैं। उसके बाद मान (अपने को बड़ा समझना), दर्प (उच्छृङ्खलता) और अहङ्कार (दूसरे को तुच्छ समझना) उत्पन्न हो जाते हैं। अहङ्कार से कर्म, कर्म से स्नेह और स्नेह से शोक पैदा होता है। मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों को करता हुआ बार-बार जन्म लेता और मरता रहता है। वह तृष्णा के वशीभूत होने के कारण, उसकी पूर्ति के लिए, शुक्र-शोणित से उत्पन्न—मल-मूत्र से भरे—गर्भ में रहता है। स्त्रियाँ ही प्राणियों की उत्पत्ति का कारण हैं। जैसे प्रकृति पुरुष को बाँधे हुए है वैसे ही सन्तान की उत्पत्ति की क्षेत्रभूत स्त्री जाति भी प्राणियों को बाँधे हुए है। अतएव विवेकी मनुष्य उनके संसर्ग से बचा रहे। ये घोर-रूप स्त्रियाँ अविवेकी मनुष्यों को मोहित कर लेती हैं। उनका रूप रजोगुण में सूक्ष्म रूप से स्थित रहता है, वे साक्षात् इन्द्रियों के द्वारा बनी हैं, उन पर पुरुषों का अनुराग होने से जीवों की उत्पत्ति होती है। मनुष्य जैसे अपने शरीर में उत्पन्न कीड़ों को, अनात्मीय समझकर, शरीर से निकाल देता है वैसे ही अपने आत्मा और शरीर से उत्पन्न पुत्रों को भी अनात्मीय
१० समझता हुआ त्याग दे। शरीर के वीर्य-रूप स्नेह के अंश से पुत्र और शरीर के स्वेद-स्वरूप स्नेह से अथवा स्वभाव से या कर्मों से कीड़े पैदा होते हैं। अतएव विवेकी मनुष्य कीड़ों के समान पुत्रों की भी उपेक्षा कर देता है। सत्त्वगुण रजोगुण में स्थित रहता है, वह तमोगुण में स्थित है और तमोगुण अज्ञान है; ज्ञान में तमोगुण के स्थिर रहने से बुद्धि और अहङ्कार प्रकट होते हैं। वही अज्ञान (तमोगुण) प्राणियों की उत्पत्ति का बीज (कारण) है और अज्ञान का अधिष्ठान ज्ञान ही जीव कहलाता है। वह काल से युक्त कर्म के प्रभाव से सांसारिक कामों को करता है। जैसे जीव स्वप्नावस्था में मन को लेकर, देहवान् के समान, क्रीड़ा करता है वैसे ही वह कर्म से उत्पन्न अहङ्कार आदि गुणों के साथ माता के गर्भ में निवास करता है। वहाँ पूर्व-जन्म के कर्मों के

प्रभाव से वह जिस-जिस विषय का स्मरण करता है उन विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ, रागयुक्त मन के द्वारा, अहङ्कार से उत्पन्न हो जाती हैं। शब्द की इच्छा से कान, रूप की इच्छा से आँखें, गन्ध की इच्छा से नाक और स्पर्श की इच्छा से त्वक् इन्द्रिय उत्पन्न होती है। प्राण-अपान आदि पञ्चवायु उसकी देहयात्रा में सहायक होते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव से इन्द्रियों समेत शरीर धारण करता है। उसे आदि से अन्त तक शारीरिक और मानसिक दुःख भोगने पड़ते हैं। ये दुःख माता के गर्भ में मनुष्य के शरीर और इन्द्रियों के धारण करने से उत्पन्न होते और अभिमान के द्वारा बढ़ते हैं। शरीर छोड़ने पर भी दुःखों की कमी नहीं होती, अतएव दुःखों का नाश करना ही श्रेष्ठ है। दुःख का नाश होने पर मोक्ष मिलता है। इन्द्रियों की उत्पत्ति और विनाश रजोगुण से होता है। अतएव रजोगुण के नाश से इन्द्रियों का निरोध और इन्द्रियों का निरोध होने से दुःख का नाश होता है। तृष्णाहीन मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रियाँ विषयों की उपस्थिति में भी उधर आकृष्ट नहीं होतीं। अतएव जो मनुष्य इन्द्रियों का दमन कर देता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। २१

दो सौ चौदह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए योग का विवेचन करना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, शास्त्र-रूपी नेत्रों से इन्द्रियों के जीतने का जो उपाय देखा गया है उसका वर्णन सुनो। इस उपाय को जान लेने से ज्ञान के द्वारा शान्ति आदि गुणों का अवलम्बन करने पर परम गति प्राप्त होती है। सब प्राणियों में मनुष्य, मनुष्यों में ब्राह्मण और ब्राह्मणों में मन्त्रज्ञ ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। सब प्राणियों के आत्मभूत, वेद-शास्त्र के ज्ञाता, सर्वज्ञ ब्राह्मण लोग परमार्थ को भली भाँति जानते हैं। ज्ञान-हीन मनुष्य अन्धे-बहरे के समान हमेशा दुःख पाते रहते हैं; इसी से ब्रह्मवित् ज्ञानी महात्माओं को ही श्रेष्ठ समझना चाहिए। धार्मिक पुरुष शास्त्र के अनुसार यज्ञ आदि कर्म करते हैं किन्तु उन कर्मों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्मात्मा पुरुषों ने वाणी देह और मन की पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति, इन सब सद्गुणों को धर्म का मूल बतलाया है। यज्ञ आदि कर्मों के करने से केवल ये सद्गुण ही प्राप्त होते हैं। ब्रह्मचर्य धर्म ब्रह्म-स्वरूप और सब धर्मों से श्रेष्ठ है। इस धर्म से मोक्ष मिलता है। प्राण, मन, बुद्धि और दस इन्द्रियों के साथ ब्रह्मचर्य का संयोग नहीं है। वह शब्द और स्पर्श से हीन है। मनुष्य उद्योग करने पर इस पापशून्य ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचर्य का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करता है वह ब्रह्मलोक को जाता है, जो अधूरा पालन करता है वह सत्यलोक को जाता है और जो निकृष्ट श्रेणी का पालन करता है वह विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण का जन्म पाता है। १०

ब्रह्मचर्य बहुत कठिन है। अब उसका उपाय सुनो। ब्राह्मण लोग (काम आदि) रजोगुण के उत्पन्न होने और बढ़ने पर उसको रोकें। ब्रह्मचारी को स्त्रियों की बातें सुनना और उन्हें नङ्गी देखना उचित नहीं। यदि कभी नङ्गी स्त्री को देखने से किसी ब्रह्मचारी का मन चञ्चल हो जावे तो वह तीन दिन कृच्छ्र व्रत करे और यदि बहुत ही विकल हो तो पानी में खड़ा रहे। यदि स्वप्न में वीर्यपात हो जावे तो पानी में गोता लगाये रहकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जप करे। बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञानयुक्त मन के द्वारा रजोमय आन्तरिक पापों को हमेशा जलाता रहे। मल रोकने की नाड़ी के समान देह, आत्मा का, दृढ़ बन्धन-स्वरूप है। सब रस नाड़ियों के द्वारा मनुष्यों के वात, पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, स्नायु, मज्जा और मेद को बढ़ाते हैं। मनुष्यों के शरीर में वात आदि को वहन करनेवाली दस नाड़ियाँ हैं। उनका सञ्चालन पाँच इन्द्रियों के गुणों द्वारा होता है। उक्त दस नाड़ियों की शाखा-रूप हज़ारों सूक्ष्म नाड़ियाँ शरीर भर में फैली हुई हैं। जैसे सब नदियाँ यथासमय समुद्र को बढ़ाती रहती हैं वैसे ही ये सब नाड़ियाँ शरीर की वृद्धि करती हैं। मनुष्यों के हृदय में मनोवहा नाम की एक नाड़ी है। वह नाड़ी मनोविकार से उत्तेजित वीर्य को, सारे शरीर से खींचकर, लिङ्ग की ओर दौड़ा देती है। सारे शरीर में व्याप्त रहनेवाली
२० दूसरी नाड़ियाँ तेज के गुण को लेकर आँखों में देखने की शक्ति पहुँचाती हैं। जैसे मथानी से मथने पर दूध से घी निकलता है वैसे ही स्त्री को देखने, स्पर्श करने और इच्छा करने से वीर्य उत्तेजित हो उठता है। स्वप्नावस्था में, स्त्री-संसर्ग के अभाव में भी, जब मन में इच्छा और आसक्ति उत्पन्न होती है तब मनोवहा नाड़ी वीर्य को छोड़ देती है। वीर्य की उत्पत्ति का हाल महर्षि अत्रि विशेष रूप से जानते हैं। अन्न का रस, मनोवहा नाड़ी और इच्छा, ये तीन वीर्य के बीज-स्वरूप हैं। इन्द्र वीर्य के देवता हैं, इसी से उसका नाम इन्द्रिय है। जो लोग वीर्य की गति को ही प्राणियों के वर्णसङ्कर होने का कारण समझते हैं वे विरागी और इच्छाहीन होकर मोक्ष पद प्राप्त कर सकते हैं। योगी लोग बाह्य प्रवृत्ति को त्यागकर, योग के बल से गुणों की समता करके, अन्तकाल में सत्यलोक को पहुँचानेवाली सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से प्राण वायु को निकालकर परम गति प्राप्त करते हैं। मनुष्य का मन सध जाने पर ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान हो जाने पर सम्पूर्ण विषय स्वप्न से हो जाते हैं और मन भी प्रकाशमान्, वासनाहीन, मन्त्रसिद्ध और शक्तिमान् हो जाता है। अतएव मनुष्य मन को वश में करने के लिए, रजोगुण और तमोगुण का त्याग करके, निवृत्ति-रूप कर्म करता हुआ परमगति को प्राप्त करे। युवावस्था में उपार्जित ज्ञान वृद्धावस्था में, बुढ़ापे के कारण, दुर्बल हो जाता है। किन्तु विवेकी मनुष्य पुण्य के प्रताप से इच्छाओं को सङ्कुचित रखते हैं। जो मनुष्य इन्द्रियों को, दुर्गम मार्ग के समान, जीतकर
२९ दोषों का त्याग कर देता है वही मोक्ष-रूपी अमृत पीने में समर्थ होता है।

दो सौ पन्द्रह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, मनुष्य दुर्निवार इन्द्रियों के सुख में आसक्त रहने के कारण दुःख पाता रहता है। जो महात्मा पुरुष इन सुखों में आसक्त नहीं होता वही परम गति पा सकता है। विवेकी मनुष्य संसार को जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और मानसिक दुःखों से भरा हुआ समझकर मोक्ष पद पाने का उद्योग करे और मन वाणी तथा शरीर से पवित्र, अहङ्कार-शून्य, शान्त तथा ज्ञानवान् होकर बेधड़क भिक्षावृत्ति करता हुआ बिचरता रहे। प्राणियों पर मोह-ममता रखने से मन का बन्धन हो जाता है। इसलिए योगियों को किसी पर मोह-ममता न रखनी चाहिए। अच्छे काम करने से चाहे दुःख भी उठाना पड़े तो भी हमेशा अच्छे ही काम करे। जो मनुष्य अहिंसा, सत्य, दया और क्षमा का व्यवहार करता तथा सावधान रहता है वही यथार्थ सुखी है। इसलिए सब जीवों पर समान दृष्टि रखनी चाहिए। दूसरों का बुरा चेतना, ईर्ष्या करना, स्त्री-पुत्र आदि के न होने या उनके नष्ट हो जाने पर चिन्ता करना उचित नहीं। ज्ञान प्राप्त करने में मन को दृढ़ता से लगा दे। वेदान्त-वचनों का अनुशीलन करने से ज्ञान उत्पन्न होता है। जो मनुष्य सत्य बोलने और सूक्ष्म धर्म के जानने की इच्छा रखता हो उसे हिंसा, निन्दा, दुष्टता, कठोरता और क्रूरता को छोड़कर मितभाषी होना और सत्य बोलना चाहिए। ११
संसार के सब काम वचनों से ही होते हैं, इसलिए सत्य बोलना ही अच्छा है। संसार से जिसको वैराग्य हो जाता है वह अपने हिंसा आदि तामसिक कामों को अपने मुँह से प्रकट कर देता है। जो रजोगुण के प्रभाव से सांसारिक कामों में फँसा रहता है वह घोर दुःख भोगता हुआ नरक में गिरता है। जैसे डाकू चोरी का माल ढोते हैं वैसे ही अविवेकी मनुष्य संसार का भार लादे रहते हैं और जैसे चोर पुलिस के डर से चोरी का माल छोड़कर भागते हैं वैसे ही मनुष्य संसार के डर से डरकर सात्त्विक और राजस सब कामों को छोड़कर संसार के दुःखों से छूट जाते हैं। जो निःस्पृह, सब बन्धनों से मुक्त, निर्जन स्थान में रहनेवाले, मिताहारी और जितेन्द्रिय हैं; जिन्होंने ज्ञान के प्रभाव से सब दुःखों का नाश करके मन को जीतकर योग में लगा दिया है वे निस्सन्देह परमगति प्राप्त करते हैं। धैर्यवान्, बुद्धिमान् मनुष्य पहले अपनी बुद्धि को स्थिर करे; फिर बुद्धि के बल से मन को और मन के द्वारा शब्द आदि विषयों को जीते। मन को वश में कर लेने से ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन्द्रियों के साथ मन की एकता हो जाने पर ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, तब मन ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है। योगी लोग अपने योग-महत्त्व २०
को प्रकट न करें। वे योग के प्रभाव से इन्द्रियों का निग्रह ही करते रहें। योगियों को शुद्ध आचरण से रहकर क्रम से भीख में मिले हुए चावलों के कण, पके हुए उड़द, शाक, भाप में पकाया हुआ जौ का आटा, सत्तू और फल-मूल आदि खाना चाहिए। देश-काल की गति को

देखकर भोजन का नियम बना ले। योग का आरम्भ करके फिर उसमें विघ्न न पड़ने दे। अग्नि के समान उसे क्रमशः बढ़ाता रहे। ऐसा करने से, सूर्य की तरह, ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है। ज्ञान के साथ ही रहनेवाला अज्ञान जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं में मनुष्य को घेरे रहता है और बुद्धि-वृत्ति का अनुगामी ज्ञान भी अज्ञान से दब जाता है। मनुष्य जब तक तीनों अवस्थाओं से हीन परमात्मा को इन अवस्थाओं से युक्त समझता है तब तक उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता और जब उसकी भिन्नता और अभिन्नता को अच्छी तरह समझ जाता है तब उसकी सब इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और वह जरा-मृत्यु को जीतकर नित्य परमब्रह्म
२७ को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

दो सौ सोलह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो मनुष्य ब्रह्मचर्य को निर्दोष करने का इरादा करे उसे स्वप्न के दोषों पर ध्यान देकर निद्रा का त्याग कर देना चाहिए। सोने में मनुष्यों को रजोगुण और तमोगुण घेर लेते हैं और निद्रा का त्याग कर देने से कामनाएँ नहीं रह जातीं, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानों उसे दूसरी देह मिल गई है। ज्ञान का अभ्यास और अनुसन्धान करते रहने से मनुष्यों को जागरण करने का अभ्यास होता है और ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य सदा जागरित रहता है। स्वप्न में देखे हुए इन्द्रियों के कर्मों की तरह मनुष्य अपने को विषयासक्त सा समझे। स्वप्न सत्य हैं या असत्य? योगेश्वर हरि ने कहा है कि स्वप्न सङ्कल्पमात्र हैं। महर्षियों ने भी इसी की पुष्टि की है। इन्द्रियों के थक जाने पर सपना देख पड़ता है; स्वप्न में भी मन सजग रहता है। काम-काज में उलझे हुए मनुष्यों के मनोरथ के समान स्वप्न सङ्कल्पमात्र है। किन्तु निद्रा की अवस्था में, इन्द्रियों के चलायमान न होने से, स्वप्न सत्य के समान समझ पड़ता है। विषयासक्त मनुष्य को, पूर्व-जन्म के संस्कार से, स्वप्न आदि का ऐश्वर्य मिलता है। परमात्मा ही साक्षी रूप से उन ऐश्वर्यों का प्रकाश करता है। पूर्व-जन्म के कर्मों से मनुष्य के शरीर में सत्त्व, रज और तमोगुण—सुख-दुःख का भोग कराने के लिए—पैदा हो जाते हैं। मन पर जब जैसे संस्कारों का प्रभाव पड़ता है तब सूक्ष्म भूत, प्राणी को, स्त्री आदि
१० भिन्न-भिन्न आकार दिखलाते रहते हैं। अज्ञान के कारण मनुष्य—रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से—वात, पित्त और कफ प्रधान जिस शरीर को देखता है उसे, पूर्व-वासना की प्रबलता से, देखने की उपेक्षा करना बहुत कठिन है। जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियों के सजग रहने से मन में जो सङ्कल्प उठते हैं उन सङ्कल्पों को मन स्वप्न में, इन्द्रियों के सचेत न रहने से, देखता है। आत्मा के प्रभाव से मन सब भूतों में व्याप्त रहता है; आत्मज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है; क्योंकि

आत्मज्ञान होने पर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। सुषुप्ति अवस्था में मन, स्वप्न देखने के द्वारभूत, स्थूल शरीर में स्थिर रहकर आत्मा से जा मिलता है और अहङ्कार आदि भी मन में ही लीन हो जाते हैं। योगी लोग आत्मा को प्रसन्न करने के लिए ज्ञान-वैराग्य आदि ईश्वरीय गुण प्राप्त करते हैं। जिस योगी का मन विषयों में आसक्त नहीं होता वही इस ऐश्वर्य को पा सकता है और जिसका मन अज्ञान को नष्ट कर सकता है वही प्रकाश-स्वरूप परम पवित्र ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। देवता लोग अग्निहोत्र आदि करते हैं और दानव लोग उन कामों में विघ्न डालते हैं, इसलिए ब्रह्म की प्राप्ति न तो देवताओं को होती है और न दानवों को ही। देवता लोग सत्त्वगुण का और दानव लोग रजोगुण तथा तमोगुण का अवलम्बन करते हैं; किन्तु ब्रह्म तो इन सब गुणों से परे ज्ञान-स्वरूप है। जो मनुष्य उस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वही परम गति पा सकता है। ब्रह्म अविनाशी, अमृत और ज्योति-स्वरूप है। तत्त्वदर्शी लोग ब्रह्म को सगुण तथा निर्गुण बतलाते हैं और विषयों से इन्द्रियों को हटाकर योग के बल से उस अव्यक्त ब्रह्म को अवगत करते हैं। २०

दो सौ सत्रह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज! जो मनुष्य स्वप्न, सुषुप्ति तथा सगुण, निर्गुण ब्रह्म को और नारायण के कहे हुए व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप को नहीं जानता उसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता। वेद का वचन है कि आत्मा का व्यक्त भाव मृत्यु का मुख और अव्यक्त भाव अमृत पद है। फल की प्रवृत्ति रखकर जो धर्म किया जाता है उससे तीनों लोकों का आधिपत्य तक (कर्मफल) मिलता है और फलेच्छा से निवृत्त होकर जो कर्म किया जाता है उस कर्म के फल से अव्यक्त नित्य परब्रह्म की प्राप्ति होती है। प्रजापति ने कहा है कि प्रवृत्ति ही धर्म का स्वरूप है; किन्तु प्रवृत्ति-धर्म के अनुसार कर्म करने से संसार में फिर जन्म लेना पड़ता है और निवृत्ति-धर्म का अवलम्बन करने से मोक्षपद प्राप्त होता है। शुभ-अशुभ कर्म के जानकार, निवृत्तिधर्म के उपासक आत्मज्ञानी मुनियों को ही परमगति मिलती है। अतएव सबसे पहले प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करे, उसके बाद जो प्रकृति और पुरुष से महान् विचक्षण व्यक्ति है उस क्लेश आदि से शून्य परमात्मा का साक्षात्कार करे। प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि, अनन्त, अव्यक्त, नित्य, निश्चल और महत् से भी महत्तर हैं। उन दोनों के गुणों में इतना ही अन्तर है कि प्रकृति तीनों गुणों का अवलम्बन करके संसार की सृष्टि करती है; किन्तु पुरुष उन गुणों से अलग रहता है। वह प्रवृत्ति और महत् आदि पदार्थों का द्रष्टा है, दृश्य नहीं; इसी प्रकार ईश्वर और पुरुष भी तीनों गुणों से रहित तथा नेत्रों से अग्राह्य हैं। ईश्वर और पुरुष का भेद औपाधिक

मात्र है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से जीव की उत्पत्ति होती है। जीव कर्ता है। वह इन्द्रिय आदि के द्वारा जिन कर्मों को करता है उन कर्मों का कर्ता कहलाता है। आत्मज्ञान होने के पहले जीव अपने को ब्रह्म से अलग समझता है, इसी से ब्रह्म की खोज करता है; किन्तु आत्मज्ञान होने पर अपने को ही ब्रह्म समझ जाता है। जैसे पगड़ी बाँधनेवाला मनुष्य पगड़ी से अलग है वैसे ही मनुष्य सत्त्व-रज-तमोगुण से युक्त रहने पर भी उन सबसे भिन्न है। प्रकृति, पुरुष और जीव का साधर्म्य तथा वैधर्म्य मैंने विस्तार से कहा। इसे ठीक-ठीक समझ जाने से सिद्धान्त के समय भूल नहीं होती। जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहता हो उसे शरीर, मन और वाणी से कठोर नियमों का पालन करते हुए निष्काम योग करना चाहिए। चैतन्य प्रकाशरूपी आन्तरिक तप (योग) के द्वारा मनुष्य तीनों लोकों में व्याप्त हो सकता है। तप के प्रभाव से ही सूर्य और चन्द्रमा आकाश-मण्डल में प्रकाशित होते हैं। योग का फल ज्ञान है। रजोगुण और तमोगुण का नाश करनेवाला कर्म ही योग है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप तथा वाणी और मन का संयम करना मानसिक तप है। नियम से रहनेवाले द्विजातियों का अन्न लेना ही श्रेष्ठ है। नियमपूर्वक उस अन्न के खाने से राजस पाप नष्ट हो जाते हैं और विषय-भोग करने की इच्छा शिथिल हो जाती है। योगी धन को न लेकर केवल शरीर की रक्षा के लिए अन्न ही लें। इस प्रकार योगयुक्त मन के द्वारा क्रमशः जो आत्मज्ञान प्राप्त होता है उसे यदि योगी शान्तचित्त होकर अभ्यास द्वारा बढ़ाता जाय तो अन्त में मुक्त हो जायगा। बाह्य इन्द्रियों की प्रवृत्ति को छोड़कर मनुष्य योग के बल से स्थूल शरीर का त्याग करके सूक्ष्म शरीर धारण करता है और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के भोग की इच्छा छोड़कर प्रकृति में लीन हो जाता है। जो मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण, इन तीनों शरीरों से मुक्त हो जाता है वह शीघ्र मोक्षपद पा जाता है। अविद्या के प्रभाव से प्राणियों की उत्पत्ति और मृत्यु होती है। ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर फिर धर्म-अधर्म से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। जो प्रकृति आदि को आत्मा समझता है उसकी बुद्धि महत् आदि पदार्थों के विनाश और उदय का विचार करने लगती है। ऐसे लोगों के लिए मोक्ष की प्राप्ति बहुत दूर हो जाती है। योगी लोग केवल आसन की दृढ़ता से शरीर धारण करते हैं। जो लोग विवेक द्वारा चित्त की वृत्ति को विषयों से हटा लेते हैं अर्थात् जिनकी इन्द्रियाँ विषयों से निवृत्त हो जाती हैं वे इन्द्रियों को देह से सूक्ष्म समझकर भेद-बुद्धि हटा देते हैं। उनमें कोई-कोई तो शास्त्र के अनुसार धीरे-धीरे भेद-बुद्धि को त्यागकर अन्त को विवेक-बल से परम पद प्राप्त करते हैं और कोई आचार्य के उपदेश के अनुसार चलकर, योग के द्वारा शुद्धबुद्धि होकर, अव्यक्त से भी श्रेष्ठ परम-पुरुष को प्राप्त करते हैं। कोई तो सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं और कोई निर्गुण ब्रह्म की। कोई तप के प्रभाव से निष्पाप होकर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। उन सभी को

मोक्षपद मिलता है। शास्त्ररूपी नेत्रों से सगुण ब्रह्म के सूक्ष्म भेद देखे जा सकते हैं। स्थूल देह का अभिमान न करनेवाले, सांसारिक बन्धनों से मुक्त, योगी लोग ईश्वर से भिन्न नहीं हैं। विद्या के प्रभाव से मनुष्य पहले मर्त्यलोक से छूट जाता है, उसके बाद रजोगुण से हीन और ब्रह्मभूत होकर मोक्षपद पाता है। वेद के जानकार पण्डितों ने इस प्रकार ब्रह्म-प्राप्ति-विषयक धर्म का वर्णन किया है। ३०

जो इस धर्म की उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ गति पाते हैं। शास्त्र के ज्ञान से जो राग आदि का त्याग कर देते हैं वे भी उत्तम गति पा सकते हैं। जो ज्ञानवान् मनुष्य बन्धनों से छूटकर, शुद्ध भाव से, जन्म-मरण से रहित अव्यक्त भगवान् विष्णु की उपासना करते हैं वे आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और अन्त को अक्षय परमपद पाते हैं। भ्रान्त मनुष्य संसार को सत्य समझता है, किन्तु अभ्रान्त (आत्मज्ञानी) लोग इसे मिथ्या जानते हैं। यह संसार तृष्णा के वशीभूत रहकर चक्र के समान घूमता रहता है। जैसे कमल की नाल के सूत उसके भीतर रहते हैं वैसे ही तृष्णा मनुष्यों के शरीर में स्थित रहती है। दर्ज़ी जैसे कपड़े को सूई-तागे से टाँक देता है वैसे ही यह संसार तृष्णा से ओत-प्रोत है। कार्य, कारण और सनातन पुरुष का ज्ञान होने पर तृष्णा से छुटकारा होता है और मोक्षपद मिलता है। भगवान् नारायण ने प्राणियों पर दया करके मोक्ष का यह उपाय और संसार की गति बतला दी है। ३८

दो सौ अठारह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से महर्षि पञ्चशिख और मिथिला-नरेश का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मोक्ष-धर्म के अभिज्ञ मिथिला के राजा ने किस उपाय से मानवीय भोगों की इच्छाओं का त्याग करके मोक्ष पद प्राप्त किया है ?

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, राजा जनदेव ने जिस उपाय से मोक्षपद पाया है उसका वर्णन सुनो। मिथिला के महाराज जनदेव हमेशा ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय सोचते रहते थे। एक सौ आचार्य उनके यहाँ रहते थे और उन्हें आश्रमों के धर्म का उपदेश दिया करते थे; किन्तु वे वेद-पाठ में आसक्त रहते थे, इससे जन्म-मरण के उपदेश से सन्तुष्ट नहीं होते थे।

एक बार कपिला के पुत्र पञ्चशिख नाम के एक महर्षि पर्यटन करते हुए मिथिला में आये। ये महर्षि संन्यास-धर्म के यथार्थ मर्मज्ञ, निर्द्वन्द्व, निःशङ्क, ऋषियों में अद्वितीय, इच्छा-हीन और सदा मनुष्यों की भलाई चाहनेवाले थे। इनको देखने से जान पड़ता था कि सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि कपिल स्वयं अपना नाम पञ्चशिख रखकर लोगों को विस्मित करते हुए यहाँ आये हैं। ये महात्मा आसुरि के शिष्य और दीर्घजीवी थे। इन्होंने हज़ार वर्ष तक मानस यज्ञ किया था। १०

महर्षि पञ्चशिख जिस तरह कपिला के पुत्र हुए, वह वृत्तान्त मार्कण्डेयजी ने मुझसे कहा था, उसे सुनो। एक बार कपिल के मत को माननेवाले बहुत से महर्षि एक स्थान पर बैठे थे। उसी समय निःशङ्क, अन्नमय आदि पञ्च कोषों के अभिज्ञ, ब्रह्मपरायण, शम आदि पाँचों गुणों से युक्त महर्षि पञ्चशिख ने वहाँ आकर अनादि अनन्त परमार्थ के विषयों को महर्षियों से पूछा। उन महर्षियों में महात्मा आसुरि भी बैठे हुए थे। उन्होंने पञ्चशिख को उपदेश देना आरम्भ किया। महात्मा आसुरि ने, आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए, कपिलदेव के शिष्य होकर शरीर और शरीरी के विषय को भली भाँति अवगत किया था। वहाँ कपिला नाम की एक ब्राह्मणी थी। उसने प्रिय शिष्य पञ्चशिख को दूध पिलाया था, इसी से वे ब्रह्मनिष्ठ हुए और कपिला के पुत्र कहलाये।

कपिला के पुत्र होने का पञ्चशिख का यही वृत्तान्त है। अब राजा जनदेव का वृत्तान्त सुनो। धर्मज्ञ पञ्चशिख ने मिथिलानरेश को सब आचार्यों पर समान भाव से अनुरक्त देखकर, अपने ज्ञान के प्रभाव से, आचार्यों को मोहित कर दिया। इससे उक्त महाराज सब आचार्यों को त्यागकर महर्षि पञ्चशिख के अनुगामी हो गये। तब महर्षि ने विनीत और समझदार
२० मिथिलापति को सांख्यमत के अनुसार मोक्ष-धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया। उन्होंने पहले जन्म का दुःख, फिर कर्म का दुःख, उसके बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति-पर्यन्त सब दुःखों को बतलाया। अन्त को उन्होंने उस अविश्वासी विनाशी क्षणभङ्गुर मोह का वर्णन किया जिसके प्रभाव से मनुष्य धर्म और कर्म के फल की इच्छा करता है।

नास्तिकों का कहना है कि आत्मा का विनाश प्रत्यक्ष देखने पर भी जो लोग वेद का प्रमाण देकर शरीर नष्ट होने के बाद आत्मा का अस्तित्व मानते हैं उनका मत निर्मूल है और जो मोह के वश मृत्यु को आत्मा के स्वरूप का अभाव तथा दुःख, बुढ़ापा या रोग आदि के कारण इन्द्रियों के नाश को आत्मा का आंशिक नाश बतलाते हैं उनका मत भी ठीक नहीं है। यदि वेद इस तरह प्रत्यक्ष के विरुद्ध मनुष्यों में व्यवहृत होता है तो राजा को अजर और अमर होने का आशीर्वाद देने के समान वह झूठा है। यह सत्य है या झूठ, ऐसा सन्देह होने पर यदि कोई निश्चय न किया जा सके तो उसका निर्णय करना बिलकुल असम्भव है। अनुमान और आगम (शास्त्र) का मूल प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाने पर आगम की आवश्यकता नहीं रह जाती और प्रत्यक्ष के अभाव में अनुमान या शास्त्र के द्वारा कुछ प्रमाणित नहीं हो सकता। केवल अनुमान का अवलम्बन करके विचार करना व्यर्थ है। सारांश यह कि शरीर से जीवात्मा अलग नहीं है, यही नास्तिकों का मत है। जिस तरह बीज में पत्ते, फूल, फल, जड़, छाल और रूप-रस आदि उत्पन्न करनेवाली शक्ति मौजूद रहती है; गाय के खाये हुए भूसे आदि से जैसे दूध और घी पैदा हो जाता है; दो-तीन दिन किसी अन्न को पानी में भिगो रखने से

जैसे उसमें मादकता पैदा हो जाती है उसी तरह वीर्य से बुद्धि, अहङ्कार, चित्त, शरीर और गुण आदि उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे दो लकड़ियों के रगड़ने से आग पैदा हो जाती है, जैसे सूर्य की किरणें पड़ने से सूर्यकान्त मणि आग पैदा कर देती है और जैसे आग में जलती हुई वस्तुएँ पानी को सोख लेती हैं वैसे ही जड़ पदार्थ आत्मा के साथ मन का संयोग होने पर स्मरण-ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को खींचता है वैसे ही ज्ञान के प्रभाव से इन्द्रियाँ चलायमान होती हैं। इसलिए आत्मा शरीर से भिन्न पदार्थ नहीं है।

यह नास्तिकों का मत ठीक नहीं है; क्योंकि मृत्यु होने पर शरीर से चेतनता निकलती है, इस कारण देह के अतिरिक्त आत्मा का अस्तित्व मानना चाहिए। यदि देह चेतन होती तो मुर्दे में भी चेतनता बनी रहती; किन्तु यह बात नहीं है। इससे आत्मा का अस्तित्व शरीर से अलग सिद्ध है। नास्तिक लोग परलोक को जानेवाले सूक्ष्म शरीर को भी नहीं मानते; किन्तु वे लोग शीतज्वर को हटाने के लिए जिन देवताओं की प्रार्थना करते हैं उन देवताओं को तो अवश्य ही सूक्ष्म मानते होंगे। यदि उनके देवता पञ्चभूतमय स्थूल शरीरवाले होते तो वे घड़े आदि की तरह अवश्य दिखाई देते। उनके न दीखने पर भी जैसे नास्तिक उक्त देवताओं का अस्तित्व मानते हैं वैसे ही अगोचर आत्मा का अस्तित्व क्यों न माना जाय? इसके सिवा यदि आत्मा शरीर से भिन्न पदार्थ न होता तो शरीर का विनाश होने पर उसके पाप-पुण्य आदि कर्म भी निष्फल हो जाते। देह से भिन्न आत्मा को न माननेवाले नास्तिकों के ३०
मत में जिन जड़ पदार्थों को आत्मा की उत्पत्ति का कारण बतलाया गया है वे सजीव पदार्थ के कारण नहीं हो सकते; क्योंकि यदि मूर्त (क्रियाशील) पदार्थों से अमूर्त (निष्क्रिय) की उत्पत्ति हो सकता तो पृथिवी आदि चार भूतों से आकाश की भी उत्पत्ति होती। अतएव मूर्त पदार्थ कभी अमूर्त के समान नहीं हो सकते।

बौद्धों का कहना है कि अविद्या, कर्मों की इच्छा, लोभ, मोह और अन्यान्य दोष ही पुनर्जन्म के कारण हैं। अविद्या-रूपी खेत में पूर्वकृत कर्म-रूपी बीज के डालने से और तृष्णा-रूपी जल से सींचने पर मनुष्यों का पुनर्जन्म होता है। अविद्या आदि दोष शरीर में छिपे रहते हैं। शरीर के नष्ट होने पर वे सब फिर दूसरे शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। यदि अविद्या आदि दोषों को ज्ञान के प्रभाव से नष्ट कर दिया जाय तो देह का नाश होने पर फिर जन्म न लेना पड़े। उसी का नाम मोक्ष है।

यह मत भी ठीक नहीं। बौद्ध लोग क्षणिक विज्ञान को आत्मा मानते हैं, इसलिए उनके मत में मोक्ष का मिलना सम्भव नहीं है। देखो, विज्ञान कई प्रकार का है। मोक्ष चाहनेवालों को बाह्य ज्ञान होता है और मोक्ष के समय आ-लय विज्ञान होता है। अतएव यदि विज्ञान को आत्मा माना जावे तो मानना पड़ेगा कि बाह्य ज्ञान के मोक्ष की इच्छा से आ-लय विज्ञान की

मुक्ति होगी। किन्तु यह बिलकुल असङ्गत है। एक मनुष्य कर्म करे और उन कर्मों का फल दूसरा भोगे, यह सर्वथा विरुद्ध है। जब एक मनुष्य दान, विद्या का उपार्जन और तप करे और उन कर्मों का फल कोई दूसरा ही भोगे, तब तो कर्मों का करना ही व्यर्थ है। यदि वे लोग कहें कि प्रत्येक मनुष्य का ज्ञान अलग-अलग है, मनुष्यों के एक ज्ञान का विनाश होने पर दूसरे ज्ञान का और दूसरे के नष्ट होने पर तीसरे ज्ञान का उदय हो जाता है, इस प्रकार मनुष्यों का ज्ञान लगातार उत्पन्न होता रहता है; तो उन लोगों से यह पूछना चाहिए कि एक ज्ञान के नष्ट होने पर दूसरे ज्ञान के उदय होने का कारण क्या है। ज्ञान क्षणिक है, इसलिए पूर्व-क्षण में उत्पन्न हुआ ज्ञान उसका कारण नहीं हो सकता। यदि वे लोग कहें कि पूर्व-ज्ञान का नष्ट होना ही इस ज्ञान का कारण है, तो यह युक्ति के विरुद्ध है। क्योंकि तब तो किसी का शरीर मूसल से कूट डालने पर उससे दूसरा शरीर उत्पन्न हो जाना चाहिए। विशेषकर जैसे ज्ञान की अनन्त धारा से ऋतु, वर्ष, युग, सरदी, गरमी, प्रिय और अप्रिय क्रमशः बदलते रहते हैं वैसे ही मोक्ष भी बार-बार मिलता और छूटता रहेगा। कोई-कोई विज्ञान की धारा को आत्मा का धर्म कहते हैं, सो भी असङ्गत है। क्योंकि जैसे घर का सब सामान
४० नष्ट हो जाने पर घर का नाश हो जाता है और इन्द्रिय, मन, वायु, रक्त, मांस और हड्डी, ये सब जैसे नष्ट होकर स्वभाव में लीन हो जाते हैं वैसे ही आत्मा भी विज्ञान का नाश होने पर नष्ट हो जायगा। आत्मा को बुद्धि आदि का आश्रय और निर्लिप्त नहीं कहा जा सकेगा। यदि आत्मा कर्ता और भोक्ता न होता तो दान आदि कर्मों की कोई आवश्यकता न थी और आत्मा को सुख देनेवाले वैदिक तथा लौकिक सब कर्मों का लोप हो जाता।

महाराज, अनेक लोगों के मन में इस प्रकार के तर्क-वितर्क उत्पन्न होते रहते हैं। जो आत्मा को शरीर से अतिरिक्त नहीं मानते उनका मत सबसे श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। कोई-कोई मनुष्य इस प्रकार के विचार में प्रवृत्त होकर किसी एक विषय को सोचते हैं। उनकी बुद्धि उसी में प्रविष्ट रहकर क्रमशः लीन हो जाती है। सभी मनुष्य इस प्रकार के अर्थ और अनर्थ के वशीभूत रहते हैं। किन्तु जैसे महावत हाथी को चलाता है वैसे ही केवल वेद ही मनुष्यों को मार्ग बतलाते हैं। जो मनुष्य शरीर को अनित्य और बन्धु-बान्धव, स्त्री आदि को व्यर्थ समझकर उन सबका त्याग कर देता है वह शरीर को छोड़कर फिर जन्म नहीं लेता। यह शरीर नश्वर है—इससे कोई लाभ नहीं होता। जो मनुष्य शरीर को पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु से बना हुआ समझता है वह क्या कभी
४९ इसकी रक्षा के लिए यत्न करेगा ?

दो सौ उन्नीस अध्याय

पञ्चशिख और जनदेव का संवाद

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, महर्षि पञ्चशिख के वचनों को सुनकर मिथिला-नरेश ने उनसे प्राणियों के मरने पर संसार का और मोक्ष का हाल पूछा—महर्षि, यदि मोक्ष प्राप्त होने पर विशेष ज्ञान नहीं होता तो ज्ञान और अज्ञान का विशेष फल क्या है? जब शरीर नष्ट होने पर संयम-नियम आदि सबका नाश हो जाता है तब मनुष्यों की प्रमत्तता और अप्रमत्तता से क्या हानि-लाभ है? यदि मोक्षदशा में विषयों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता या रहता है तो चिरस्थायी नहीं होता तो किस फल के लिए लोग मोक्ष पाने की इच्छा करते हैं?

ये बातें सुनकर महात्मा पञ्चशिख ने उन्हें, अज्ञान से घिरा हुआ और आतुर के समान, भ्रान्त समझकर समझाते हुए कहा—महाराज! शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि का नाश हो जाना कुछ मोक्ष नहीं है और इन सबके रहने पर भी मोक्ष मिलने की सम्भावना नहीं है। किन्तु ज्ञान के प्रभाव से बुद्धि, मन आदि को जीत लेने पर अविद्या को नाश करनेवाले आनन्द-स्वरूप की जो प्राप्ति हो जाती है वही असली मोक्ष है। शरीर, इन्द्रिय और मन, ये एक-दूसरे का आश्रय करके काम करते हैं। उनमें से एक का भी नाश होने से सब के सब नष्ट हो जाते हैं। जल, आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी, ये पाँच तत्त्व मनुष्यों के शरीर में रहते और निकल जाते हैं। सारांश यह कि मनुष्य का शरीर आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी का संग्रह-मात्र है। मनुष्य के शरीर में ज्ञान, जठराग्नि और प्राण, ये तीन कर्मों के करानेवाले हैं। इन्हीं तीनों से इन्द्रियाँ, शब्द आदि विषय, चेतना, मन, प्राण और अपान उत्पन्न होते हैं और अन्न आदि का परिपाक होता है। आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा, ये पाँच इन्द्रियाँ मन से उत्पन्न होती हैं। विज्ञानयुक्त चेतना तीन प्रकार की है— १०
सुखयुक्त, दुःखयुक्त और सुख-दुःख दोनों से हीन। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द और आकार, इन छः गुणों के द्वारा मनुष्यों को ज्ञान की सिद्धि होती है। कान आदि इन्द्रियों से ही स्वर्ग के साधन-कर्म, ब्रह्मलोक को प्राप्त करानेवाले संन्यास और वास्तविक अर्थ का निश्चय होता है। पण्डितों ने तत्त्व के निश्चय को मोक्ष लाभ का बीज-स्वरूप और बुद्धि को ब्रह्म की प्राप्ति का कारण बतलाया है। जो लोग इन गुणों को ही आत्मा-समझ बैठते हैं वे अपने अज्ञान के कारण घोर दुःख भोगते हैं और जो लोग 'दृश्य पदार्थ कभी आत्मा नहीं हो सकता' ऐसा समझकर अहङ्कार और ममता को त्याग देते हैं उनको सांसारिक दुःखों से छुटकारा मिल जाता है।

महाराज, त्याग से ही मन का सन्देह दूर होता है। मैं उस त्याग का वर्णन करता हूँ। वही तुमको मोक्ष दिलाने के लिए उपयोगी होगा। मोक्ष चाहनेवाले महात्माओं के लिए कर्म का त्याग करना ही उचित है। जो मनुष्य विवेकी होकर भी कर्मों का त्याग नहीं करता उसे

सदा क्लेश भोगने पड़ते हैं। पण्डितों ने द्रव्य का त्याग करने के लिए यज्ञ आदि कर्म, भोग का त्याग करने के लिए व्रत, सुख का त्याग करने के लिए तपस्या और सब कुछ त्याग देने के निमित्त योग का साधन करने का उपदेश दिया है। सब कुछ त्याग देना ही त्याग की पराकाष्ठा है। महात्माओं को दुःख से छुटकारा पाने के निमित्त योग बतलाया गया है। सब प्रकार का त्याग योग द्वारा ही हो जाता है। जो इस संन्यास-धर्म का आश्रय नहीं लेते वे दुर्दशा में पड़े रहते हैं। मन और कान-आँख आदि ज्ञानेन्द्रियाँ बुद्धि में और प्राण तथा कर्म करनेवाले हाथ, चलनेवाले पैर, सन्तान उत्पन्न करने और आनन्द देनेवाला लिङ्ग, मल त्यागनेवाली गुदा और बोलनेवाली वाणी, ये सब कर्मेन्द्रियाँ मन में स्थित रहती हैं। बुद्धिमान् मनुष्य यह समझकर बुद्धि के द्वारा इन ग्यारहों से सम्बन्ध त्याग दे। जैसे कान, शब्द और मन, ये तीन सुनने के कारण हैं वैसे ही स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के ज्ञान में भी तीन-तीन कारण हैं। इन पन्द्रह गुणों के द्वारा शब्द आदि का ज्ञान होता है। ये पन्द्रह गुण सत्त्व, रज तथा तम के भेद से और तीन-तीन प्रकार के हो जाते हैं। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्यों के मन में अकस्मात् या किसी कारण-वश हर्ष, सुख और शान्ति आदि पैदा होते हैं। रजोगुण के प्रभाव से असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और अक्षमा तथा तमोगुण के प्रभाव से अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य उत्पन्न होते हैं। जिस भाव के उदय से मनुष्यों का शरीर और मन प्रसन्न रहता है उसका नाम सात्त्विक भाव है; जिस भाव के उदय से शरीर और मन में असन्तोष पैदा होता है वह राजस भाव और जिसके उदय से मनुष्यों को मोह होता है उसका नाम तामस भाव है। इन तीनों में सात्त्विक भाव ग्रहण करने योग्य और दूसरे दोनों त्यागने योग्य हैं। कान आकाश-तत्त्व के स्वरूप हैं, शब्द आकाश के आश्रित है। इसलिए आकाश और कान शब्द के आधार हैं। शब्द का ज्ञान आकाश और श्रोत्र इन्द्रिय के ज्ञान का कारण नहीं है; किन्तु यदि आधार और आधेय की एकता स्वीकार की जाय तो शब्द-ज्ञान को आकाश और श्रोत्र के ज्ञान का कारण कहा जा सकता है। इसी प्रकार त्वक् इन्द्रिय वायु-तत्त्व का, नेत्र अग्नि-तत्त्व का, जिह्वा जल-तत्त्व का और नाक पृथिवी-तत्त्व का स्वरूप है। त्वचा और वायु स्पर्श के, चक्षु और तेज रूप के, जीभ और जल रस के तथा नाक और पृथिवी गन्ध के आश्रय हैं। स्पर्श आदि का ज्ञान त्वचा और वायु आदि के ज्ञान का कारण नहीं है। किन्तु आधार और आधेय की एकता स्वीकार करने पर स्पर्श आदि ज्ञान को त्वचा और शब्द आदि के ज्ञान का कारण कहा जा सकता है। इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच विषयों में मन स्थित रहता है; क्योंकि विषय में इन्द्रिय का संयोग होते ही मन को उसका ज्ञान हो जाता है। सोते समय—जाग्रत् अवस्था के समान—इन्द्रिय, विषय, मन और बुद्धि एकत्र नहीं रहते। किन्तु यह न समझना चाहिए कि ऐसी अवस्था में आत्मा का नाश हो जाता है; क्योंकि सुषुप्ति तमोगुण का काम है। उस समय केवल इन्द्रियाँ

काम करने योग्य नहीं रहतीं। यदि ऐसा न होता तो जागने पर पहले की तरह फिर इन्द्रिय, विषय, मन और बुद्धि इकट्ठे न हो सकते। पहले की देखी और सुनी हुई बातें, इन्द्रियों के विषय का सम्बन्ध रहने के कारण, स्वप्नावस्था में देख पड़ने लगती हैं। अतएव स्वप्नावस्था में भी—जाग्रत् अवस्था के समान—इन्द्रिय, विषय, मन और बुद्धि एकत्र होते हैं। जिस समय मन तमोगुण से युक्त होकर, प्रवृत्ति करानेवाले आत्मा से अलग होकर, इन्द्रियों को विषयों से अलग कर देता है वही समय स्वप्नावस्था है। निद्रा का लाना तमोगुण का काम है। मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से ही मोह के वश होकर, अन्त में दुःख पाने का विचार न करके, वेद-विरुद्ध काम करने लगते हैं।

मैंने सब गुणों का वर्णन कर दिया। मनुष्य इन्हीं गुणों के वशीभूत होकर अनेक काम करते हैं। कोई-कोई तो इन गुणों के अधीन हो जाते हैं और कोई इन्हें त्याग देते हैं। अध्यात्म-विद्या के जानकार लोग मन और इन्द्रिय आदि के संयोग को क्षेत्र कहते हैं और उस क्षेत्र के कारण मन में जो आत्मा निवास करता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं। अतएव जब आत्मा शरीर से ४०
भिन्न होता है तब शरीर के नाश होने पर उसका नष्ट होना कैसे सम्भव है? जैसे छोटी नदियाँ बड़ी नदियों में और बड़ी नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना-अपना नाम और रूप त्यागकर उसमें लीन हो जाती हैं वैसे ही जीव की स्थूल उपाधियाँ सूक्ष्म में और सूक्ष्म उपाधियाँ शुद्ध आत्मा में लीन होती हैं। जीव जब तक उपाधियुक्त रहता है तभी तक उसे स्थूल और सूक्ष्म कहा जा सकता है; किन्तु जब उसकी सब उपाधियाँ शुद्ध आत्मा में लीन हो जाती हैं तब उसे पहले की तरह स्थूल और सूक्ष्म कैसे कहा जा सकता है? जो मनुष्य मोक्ष-विषयक बुद्धि को प्राप्त करके सावधानी से आत्मा के जानने की इच्छा करता है वह, जैसे पानी में पड़ा हुआ कमल का पत्ता पानी में नहीं भीगता वैसे ही, अनिष्ट करनेवाले कर्म के फल में लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य यज्ञ आदि कर्मों और पुत्र आदि के स्नेह से छूटकर सुख-दुःख का त्याग कर देते हैं वे संसार से मुक्त और सूक्ष्म शरीर से हीन होकर परमगति प्राप्त करते हैं। शास्त्रोक्त शम-दम आदि गुणों के द्वारा मनुष्यों के पाप-पुण्य का नाश और सब कर्मफल नष्ट हो जाने पर वे जरा-मृत्यु से निडर होकर आकाश के समान निर्लिप्त अशरीरी परमब्रह्म को बुद्धितत्त्व में देखते हैं। जैसे मकड़ी धागों से बनाये गये जाले में रहती है वैसे ही अविद्या के वशीभूत जीव भी कर्म-रूपी घर में निवास करता है और जैसे मकड़ी जाले को छोड़ देती है वैसे ही मुक्त पुरुष कर्ममय घर का त्याग कर देता है। कर्मों का त्याग कर देने पर मनुष्यों के दुःख, पत्थर पर पटके हुए मिट्टी के ढेले के समान, नष्ट हो जाते हैं। जैसे मृग पुराने सींगों को और साँप केंचुल को छोड़ देता है वैसे ही मुक्त पुरुष के दुःख आसानी से दूर हो जाते हैं। जैसे पक्षी पानी में गिरते हुए वृक्ष को छोड़कर उड़ जाता है वैसे ही मुक्त मनुष्य सुख-दुःख का त्याग

करके सबसे श्रेष्ठ स्थान को चला जाता है। मिथिला नगरी को आग से जलती हुई देखकर
५० तुम्हारे पूर्व-पुरुष राजा जनक ने कहा था कि इसमें हमारा कुछ नहीं जलता।

हे धर्मराज! महर्षि पञ्चशिख के इन अमृतमय वचनों को सुनकर और उनके मर्म को समझकर मिथिलानरेश महाराज जनदेव तत्त्वज्ञान प्राप्त करके, शोकहीन होकर, बड़े सुख से रहने लगे। जो मनुष्य मोक्ष का ज्ञान करानेवाले इस इतिहास को पढ़ता है उसके सब दुःख छूट जाते हैं और वह शान्त होकर, महात्मा पञ्चशिख के अनुगृहीत राजा जनदेव के
५२ समान, मोक्षपद प्राप्त करता है।

दो सौ बीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से दम गुण की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मनुष्य किस काम के करने से सुख और किस काम के करने से दुःख पाता है तथा किस काम के करने से उसे सिद्धि होती है और वह निर्भय होकर संसार में विचरता है?

भीष्म कहते हैं—बेटा, विद्वान् बूढ़े लोग दम गुण की ही प्रशंसा करते हैं। दम गुण का आश्रय सब वर्णों को, विशेषकर ब्राह्मणों को, अवश्य करना चाहिए। मनुष्य इन्द्रियों को वश में किये बिना किसी काम को ठीक-ठीक नहीं कर सकता। क्रिया, तपस्या और सत्य, ये सब दम गुण में स्थित हैं। इन्द्रियों को वश में रखने से मनुष्यों का तेज बढ़ता है। पण्डितों ने इस (दम) गुण को परम पवित्र बतलाया है। दम गुण से युक्त मनुष्य पापहीन और निर्भय होकर श्रेष्ठ फल पाता है। वह सोते-जागते प्रति समय सुखी रहता है और उसका मन हमेशा प्रसन्न रहता है। वह दम गुण के प्रभाव से अपने तेज के वेग को दबाये रहता है किन्तु दम गुण से हीन मनुष्य ऐसा करने में असमर्थ होकर काम आदि शत्रुओं के अधीन हो जाता है। दम गुण से हीन मनुष्यों से सब प्राणी उसी तरह डरते रहते हैं जिस तरह कि बाघ आदि हिंसक जीवों से। इसी लिए विधाता ने दम गुण से हीन मनुष्यों का दमन करने के लिए राजा को उत्पन्न किया है। सभी आश्रमवालों के लिए दम गुण श्रेयस्कर है। सब आश्रमों के धर्म से जो फल मिलता है उससे भी अधिक फल दम गुण के द्वारा प्राप्त होता है। अदीनता, विषयों से अरुचि, सन्तोष, श्रद्धा, क्षमा, सरलता, गुरु की पूजा, किसी की निन्दा न करना, गर्व न करना, ईर्ष्या न करना, प्राणियों पर दया करना और निष्कपट रहना आदि गुण तथा स्तुति-निन्दा का त्याग करना और झूठ न बोलना, ये सब दम गुण से उत्पन्न होते हैं। दान्त मनुष्य मोक्ष को चाहता हुआ जो सुख मिलता है उसी का भोग करता है; वह भावी सुख-दुःख की
११ चिन्ता करके न तो प्रसन्न होता है और न दुखी ही। शत्रुता और शठता से हीन, सच्चरित्र,

विशुद्धचित्त, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय मनुष्य इस लोक में सम्मानित होकर अन्त को स्वर्ग का सुख भोगता है। जो दयालु मनुष्य अकाल के समय ग़रीबों को अन्न आदि देता है वह बड़े सुख से जीवन बिताता है। जो मनुष्य सब प्राणियों की भलाई करता है और किसी से द्वेष नहीं रखता वह भारी सरोवर के समान प्रसन्न रहता है। दान्त पुरुष सब मनुष्यों में पूज्य हो जाता है; न तो उससे कोई जीव डरता है और न उसे किसी का डर रहता है। जो मनुष्य बहुत-सा धन पाने पर भी अति प्रसन्न और भारी विपत्ति पड़ने पर भी अत्यन्त दुखी नहीं होता वह दान्त कहलाता है। दम गुण से युक्त विद्वान् मनुष्य सज्जनों के किये हुए शुभ कर्मों को करता हुआ उनका फल पाता है। दुरात्मा लोग अनसूया, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और सरलता को छोड़कर काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या और गर्व के वश में रहते हैं। ब्राह्मण लोग ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय और व्रतपरायण होकर काम-क्रोध का त्याग करके कठोर तप और काल की प्रतीक्षा करते हुए देहाभिमानी के समान सब लोकों में विचरते हैं। २०

दो सौ इक्कीस अध्याय

उपवास और तप का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! व्रत-परायण द्विज लोग, स्वर्ग और पुत्र आदि की इच्छा से, यज्ञ करते और यज्ञ का अवशिष्ट खाते हैं। उनका यह काम उचित है या नहीं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो लोग वेदोक्त व्रतनिष्ठ न होकर सुख के निमित्त अभोज्य मांस आदि खाते हैं वे स्वेच्छाचारी हैं। वे संसार में पतित कहलाते हैं और जो शास्त्रोक्त विधि से मांस खाते हैं वे व्रतधारी हैं। उनको स्वर्ग का सुख मिलता है; उसके बाद वे फिर इस लोक में आते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, लोगों ने उपवास को भी तप कहा है। वास्तव में उपवास तप है या नहीं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, अविवेकी लोग एक पक्ष या एक मास के व्रत को तपस्या कहते हैं; किन्तु सज्जनों के मत में यह तपस्या नहीं है। इससे आत्मज्ञान में विशेष हानि पहुँचती है। त्याग और नम्रता ही श्रेष्ठ तप है। धर्मात्मा ब्राह्मण लोग तो स्त्री-पुत्र आदि से युक्त होने पर भी हमेशा उपवासी, ब्रह्मचारी, मुनि, देवतानिष्ठ, श्रद्धावान्, निद्रात्यागी और विघसाशी होते हैं। वे मांस न खाकर हमेशा पवित्रता से रहते, देवता के समान ब्राह्मणों की पूजा, अतिथि का सत्कार और स्वादिष्ठ भोजन करते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! ब्राह्मण लोग किस प्रकार के कर्म करते हुए उपवासी, ब्रह्मचारी, विघसाशी और अतिथि-सत्कार-परायण होते हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! जो ब्राह्मण एक बार दिन में और एक बार रात में भोजन करता है, इसके सिवा दिन और रात के बीच में भोजन नहीं करता वह सदा उपवासी कहलाता है। जो सत्यवादी और ज्ञानवान् ब्राह्मण केवल ऋतुकाल में सम्भोग करता है वह ब्रह्मचारी है। जो वृथा मांस नहीं खाता वह मांस का न खानेवाला है। जो दानशील और पवित्र भाववाला होता है तथा दिन में नहीं सोता वही निद्रात्यागी कहलाता है। जो मनुष्य नौकरों और अतिथियों को भोजन देकर भोजन करता है वही अमृताशी है। जो ब्राह्मण अतिथियों को भोजन दिये बिना नहीं खाता वह स्वर्ग का अधिकारी होता है। जो देवतों, पितरों, अतिथियों और नौकरों को खिलाकर खाता है वह विघसाशी है। इस प्रकार के ब्राह्मणों को अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। देवता लोग अप्सराओं समेत उनका सत्कार करते हैं। जो देवताओं और पितरों के साथ भोजन करके पुत्र-पौत्रों समेत सुख से रहता है वह उत्तम गति पाता है।

दो सौ बाईस अध्याय

इन्द्र और प्रह्लाद का संवाद। इन्द्र के पूछने पर प्रह्लाद द्वारा ज्ञान का उपाय बतलाया जाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! इस लोक में जो शुभ और अशुभ कर्म मनुष्यों को फल देते हैं, उन कर्मों का कर्ता मनुष्य है या नहीं ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में तुम्हें इन्द्र और प्रह्लाद का संवाद सुनाता हूँ। एक बार देवराज इन्द्र, प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न निष्पाप अहङ्कारहीन एकान्त में रहनेवाले, सात्त्विक प्रह्लाद के पास जाकर उनकी धर्मबुद्धि जानने की इच्छा से बोले—दानवराज, मनुष्यों के जितने श्रेष्ठ गुण हैं वे सब आपमें हैं। आपकी बुद्धि राग-द्वेष से हीन है। आप संसार में किस वस्तु को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अच्छा साधन समझते हैं ? आप शत्रु के हाथ में पड़ने, क़ैद होने, राज्य के नष्ट और तेज से हीन हो जाने पर रत्ती भर भी शोक नहीं करते। यह आपकी बुद्धि का फल है या धैर्य का ?

दानवराज प्रह्लाद कर्मों के फल को न चाहनेवाले, उत्साही, शम-दम आदि गुणों से युक्त, प्राणियों की सृष्टि और संहार के जानकार, आत्मज्ञान में स्थिर, सर्वज्ञ और सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखनेवाले थे। वे स्तुति-निन्दा, प्रिय-अप्रिय, सोना-मिट्टी, सबको बराबर समझते थे। इन्द्र के वचन सुनकर उन्होंने अपनी धर्म-बुद्धि के अनुसार कहा—देवराज, जो मनुष्य जीवों के जन्म-मरण का विषय नहीं जानता वह अज्ञान के वश मोहित रहता है और जो इस विषय को भली भाँति समझता है वह कभी मोहित नहीं होता। स्थूल और सूक्ष्म सब पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न होते और उसी में लीन हो जाते हैं। पुरुष स्वयं कोई काम नहीं करता; किन्तु

पुरुष के बिना कोई काम हो भी नहीं सकता। प्रकृति जड़ है। लोहा जैसे चुम्बक पत्थर के साथ होने से चलने लगता है वैसे ही प्रकृति पुरुष के साथ रहने से ही चैतन्य होकर सब काम करती है। यद्यपि पुरुष स्वयं कोई काम नहीं करता तो भी अविद्या के प्रभाव से, शरीर में स्थित, आत्मा को कर्मों के करने का अभिमान होता है। जो लोग पुरुष को कर्ता मानते हैं उनकी बुद्धि दूषित है। उनको तत्त्वज्ञान नहीं है। यदि पुरुष कर्ता होता तो उसका प्रत्येक कार्य सफल होता। जब कोई-कोई मनुष्य उपाय करने पर भी अनिष्ट होने और अभीष्ट के सिद्ध न होने का दुःख उठाते हैं और कोई-कोई किसी उपाय के बिना ही अनिष्ट को नष्ट करके अभीष्ट फल भोगते हैं और जब बुद्धिमान् मनुष्यों को साधारण अल्पबुद्धिवाले मनुष्यों से धन की आशा करते देखा जाता है तब तो, मेरे मत से, मोक्ष की प्राप्ति और आत्मज्ञान सब कुछ प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। यदि प्रकृति से ही सब कुछ उत्पन्न होता है तो मनुष्यों का कर्तृत्व आदि का अभिमान करना निरर्थक है।

२०

संसार में कर्म के प्रभाव से मनुष्यों को शुभ-अशुभ फल मिलते हैं। अब मैं आपसे कर्म का विषय कहता हूँ। जैसे कौवा अन्न खाते समय बोलकर खाने की बात प्रकट कर देता है वैसे ही सब काम प्रकृति की ओर सङ्केत करते हैं। सब काम प्रकृति के परिचायक हैं। जो मनुष्य प्रकृति को नहीं जानता, केवल प्रकृति के कामों को जानता है वह अज्ञान से मोहित रहता है और जो प्रकृति को भली भाँति समझता है वह कभी मोहित नहीं होता। जो संसार के सब पदार्थों को प्रकृति से उत्पन्न समझकर इसी सिद्धान्त पर दृढ़ रहता है उसे न तो दर्प होता है और न अभिमान। जब मेरी समझ में यह बात आ गई कि धर्म-कर्म आदि सब काम प्रकृति से उत्पन्न और सब पदार्थ नश्वर हैं; और जब ममता, अहङ्कार, शुभ-कामना तथा सब बन्धनों से मुक्त होकर मैं जन्म-मरण का हाल अच्छी तरह जानता हूँ तब फिर शोक क्यों करूँ? जो ज्ञानवान् मनुष्य दम गुण से युक्त और निःस्पृह होकर अविनाशी ब्रह्म का साक्षात्कार कर

लेता है उसे कभी कोई क्लेश नहीं होता। क्या प्रकृति और क्या विकृति, किसी से मुझे राग या द्वेष नहीं है। मैं किसी को अपना शत्रु या मित्र नहीं समझता और स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल, किसी लोक की इच्छा नहीं करता। शास्त्र के ज्ञान, अनुभव और ज्ञान के विषय से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

इन्द्र ने कहा—प्रह्लाद, जिस उपाय से इस प्रकार का ज्ञान और शान्ति मिल सकती है उसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्रह्लाद ने कहा—देवराज! सरलता, सावधानी, चित्तशुद्धि, जितेन्द्रियता की प्राप्ति और ज्ञानवान् लोगों की सेवा करने से मोक्ष मिलता है। सत्त्वप्रधान प्रकृति से तत्त्वज्ञान और शान्ति तथा रजप्रधान प्रकृति से मायिक ज्ञान उत्पन्न होता है।

हे धर्मराज, दानवराज प्रह्लाद के यों कहने पर इन्द्र बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए। उन्होंने प्रह्लाद के वचनों का बड़ा सम्मान किया। उनका आदर करके वे अपने स्थान को चले गये।

दो सौ तेईस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से इन्द्र और बलि का संवाद कहना। इन्द्र द्वारा अपमानित बलि का गर्व की निन्दा करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राज्य के नष्ट हो जाने और भारी विपत्ति में पड़ जाने पर राजा किस बुद्धि का अवलम्बन करे?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इस विषय में बलि और इन्द्र का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में इन्द्र ने सब असुरों को जीतकर, ब्रह्मा के पास जाकर, हाथ जोड़कर उनसे पूछा—पितामह! हमेशा दान करते रहने पर भी जिनका धन नष्ट नहीं हुआ; जो वायु, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और जल-स्वरूप थे; जिनके प्रभाव से सब दिशाएँ अन्धकारमय और प्रकाशित होती थीं और जो ठीक समय पर पानी बरसाते थे, वे राजा बलि इस समय कहाँ हैं?

ब्रह्मा ने कहा—देवराज, राजा बलि का हाल पूछना तुमको उचित नहीं। किन्तु किसी के पूछने पर झूठा उत्तर न देना चाहिए इसलिए मैं तुमको बलि का वृत्तान्त सुनाता हूँ। राजा बलि ऊँट, बैल, गधा या घोड़ा होकर किसी ख़ाली घर में रहते हैं।

इन्द्र ने कहा—भगवन्! यदि मैं किसी स्थान पर, ख़ाली घर में, राजा बलि को देखूँ तो उन्हें मार डालूँ या नहीं? आपकी क्या आज्ञा है?

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र, बलि को मारना मत। वे मारने योग्य नहीं हैं। तुम उनके पास जाकर न्याय की बात पूछो।

भीष्म कहते हैं कि ब्रह्मा के यों कहने पर इन्द्र, दिव्य आभूषण पहनकर, ऐरावत हाथी पर सवार हो पृथिवी पर घूमने लगे। उन्होंने एक ख़ाली घर में, गधे के रूप में, राजा बलि को देखा। तब इन्द्र ने उनसे कहा—दानवराज, इस समय तुम घास चरनेवाले अधम गधे की योनि में हो। पहले तुम अपने जातिवालों के साथ दिव्य विमान पर बैठकर हम लोगों का तिरस्कार करते और सब लोकों में अपना प्रताप फैलाये हुए थे। तुम्हारा ऐश्वर्य देखकर और दानव लोग तुम्हारे आज्ञाकारी थे। तुम्हारे प्रताप से खेतों में बिना ही जोते उपज होती थी। किन्तु आज शत्रुओं के अधीन होने से तुम श्रीभ्रष्ट, बन्धु-बान्धवों से और पराक्रम से हीन होकर इस दुर्दशा में हो। भला तुमको अपनी इस दुर्दशा पर दुःख होता है या नहीं? जब तुम समुद्र के पूर्वी किनारे पर बैठकर अपने जातिवालों को धन देते थे, जब बयालीस हज़ार गन्धर्व और दिव्य मालाएँ पहने हुए हज़ारों अप्सराएँ तुम्हारे विहार के समय नाचती थीं, जब तुम्हारे अनेक रत्नों से जड़ा हुआ सोने का छत्र था, जब यज्ञ करके सोने का भारी यज्ञ-यूप गाड़कर तुमने हज़ारों गोदान किये थे और शम्याक्षेप विधि के अनुसार तुमने सारी पृथिवी का दान कर दिया था, तब भला तुम्हारे चित्त की वृत्ति कैसी थी और इस समय कैसी है? दानवराज! इस समय तुम्हारा गड़ुआ, छत्र, दोनों चँवर और ब्रह्मा की दी हुई माला कहाँ है?

बलि ने कहा—इन्द्र! इस समय तुम मेरा गड़ुआ, छत्र, दोनों चँवर और ब्रह्मा की दी हुई मेरी माला को नहीं देख सकते। मेरी वे सब वस्तुएँ इस समय छिपी हुई हैं। किन्तु जब मेरे दिन फिरेंगे तब तुम फिर उनको देखोगे। अपने को समृद्धिशाली समझकर इस प्रकार मेरी निन्दा करना तुम्हारे यश और कुल के अनुरूप नहीं है। ज्ञानवान् क्षमाशील विद्वान् मनुष्य विपत्ति में सन्ताप और सम्पत्ति में हर्ष नहीं करता। तुम साधारण बुद्धि से मेरी निन्दा कर रहे हो, किन्तु जब तुम मेरी दशा में होगे तब ऐसा न कहोगे।

दो सौ चौबीस अध्याय

इन्द्र और बलि का संवाद। काल को ही भले-बुरे सब कामों का कर्ता बतलाना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज! दानवराज बलि यों कहकर, हाथी की तरह, लम्बी साँस खींचने लगे। तब उनकी हँसी उड़ाते हुए इन्द्र ने फिर कहा—दानवराज, तुम अपने जाति-वालों के साथ वाहनों पर सवार होकर सब लोकों का शासन और हम लोगों का उपहास करते थे। पहले सब लोक तुम्हारे अधीन थे, इसलिए तुम बड़े प्रसन्न रहते थे। किन्तु इस समय तुम्हारी दुर्दशा देखकर तुम्हारे बन्धु-बान्धवों और मित्रों ने भी तुम्हें त्याग दिया है। बतलाओ, तुमको अपनी इस दुर्दशा का सोच है या नहीं।

बलि ने कहा—इन्द्र, कोई वस्तु नित्य नहीं है। समय आने पर सबका नाश हो जाता है। इसी से मैं किसी के लिए शोक नहीं करता। काल के वश सब काम होते हैं, इसलिए मैं अपने को गधा होने का अपराधी नहीं मानता। प्राणियों के शरीर भी नश्वर हैं। उनके प्राण और शरीर एक साथ उत्पन्न होते, बढ़ते और नष्ट हो जाते हैं। जब मैं गधे की योनि में आकर भी अपने को किसी के अधीन नहीं समझता हूँ तो फिर सोच क्यों करूँ? जैसे सब नदियाँ समुद्र में गिरती हैं वैसे ही सब प्राणी मौत के मुँह में समा जाते हैं। जो मनुष्य इस विषय को अच्छी तरह जानता है वह कभी सोच न करेगा। नासमझ मनुष्य इस विषय
१० को न समझ सकने के कारण दुःख पाते रहते हैं। ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सब पापों का नाश कर सकता है। पाप का नाश होने पर सत्त्वगुण आ जाता है और सत्त्वगुण प्राप्त हो जाने पर मोह से उत्पन्न सब दुःख दूर हो जाते हैं। जो सत्त्वगुण से हीन रहकर रज और तमोगुण के अधीन रहता है उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है; वह इन्द्रियों के वशीभूत होकर हमेशा दुःख पाता है। मैं कभी अर्थ-अनर्थ, जीवन-मरण और सुख-दुःख में राग-द्वेष नहीं करता। काल से मारे हुए को ही लोग मार सकते हैं। जो दूसरे को मारता है वह भी काल के द्वारा नष्ट होगा। इसलिए जो मनुष्य 'मैं किसी को मारता हूँ' यह समझे और जो 'मैं किसी से मारा जाता हूँ' यह जानकर दुखी हो, वे दोनों मूर्ख हैं। अतएव जो मनुष्य किसी को जीतकर या किसी का विनाश कर अभिमान करे कि 'मैंने यह किया' तो उसका वह अभिमान उचित नहीं। वास्तव में वह उस काम का करनेवाला नहीं है। उसका कर्ता तो स्वतन्त्र है। संसार में कोई मनुष्य किसी की उत्पत्ति या किसी का विनाश नहीं कर सकता। ईश्वर-कृत कर्मों को करके, अपने को कर्ता मानकर, मनुष्य अभिमान करता है। मैं जब पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, इन पाँच महाभूतों को प्राणियों की उत्पत्ति का कारण समझता हूँ और जब यह जानता हूँ कि भारी विद्वान्, साधारण विद्वान्, बलवान्, निर्बल, रूपवान्, कुरूप, भाग्यवान् और अभागे, सभी मनुष्यों को काल समान भाव से समेट लेता है,

तो फिर मुझे सोच क्यों हो ? काल के ही द्वारा मनुष्यों को लाभ, वस्तुओं का दाह और विनाश होता है। मैं बहुत विचार करने पर भी इस कालरूपी समुद्र के द्वीप या इसके पार को नहीं समझ पाता हूँ। सारांश यह कि जो काल सब प्राणियों का नाश करता है उसे मैं यदि न जानता तो मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध घेरे रहते।

मैं इस समय गधे का शरीर धारण किये हुए सूने घर में हूँ, यह देखकर तुम मेरी निन्दा करते हो। किन्तु मैं चाहूँ तो इसी समय अनेक भयङ्कर रूप धारण कर लूँ, जिनको देखते ही तुम डरकर भाग जाओ। काल ही सबको देता और वही सबसे छीन लेता है। काल के प्रभाव से ही सब काम सिद्ध होते हैं। इसलिए तुम अपने पौरुष का व्यर्थ अभिमान न करो। पहले मेरे कुपित होने पर सारा संसार काँपता था। मनुष्यों की कभी उन्नति और कभी अवनति होती रहती है, यह संसार का नियम है। ऐश्वर्य का मिलना और न मिलना किसी मनुष्य के अधीन नहीं है। तुम भी इस विषय को समझो और अपनी नासमझी छोड़ दो। आज भी तुम्हारी बुद्धि बालक की सी है। तुम भली भाँति जानते हो कि देवता, मनुष्य, पितर, गन्धर्व, साँप और राक्षस सब मेरे अधीन थे और मैं जिस दिशा में रहता था उस दिशा को सब लोग प्रणाम करते थे; किन्तु मैं पहले की उस उन्नति और इस समय की अवनति पर ध्यान देकर रत्ती भर भी दुखी नहीं होता। इसके सिवा मैं निश्चित रूप से अपने को ईश्वर के अधीन समझता हूँ। जब कुलीन प्रतापी राजा को मन्त्रियों समेत दुःख पाते हुए और नीच कुल में उत्पन्न मूर्ख मनुष्य को मन्त्रियों समेत सुख की अवस्था में देखता हूँ, जब अच्छे लक्षणोंवाली परम सुन्दरी अभागिनी और कुलक्षणा कुरूपा स्त्री भाग्यवती देखी जाती है तब भवितव्यता ही सब कामों का कारण जान पड़ती है। हे इन्द्र, न तो तुम्हारे प्रताप से मेरी यह दुर्दशा हुई है और न मेरी असावधानी से तुमको इन्द्रत्व मिला है। सम्पत्ति और विपत्ति काल के फेर से आती-जाती हैं। आज मैं तुमको अपने सामने बहुत प्रसन्न और गरजता हुआ देखता हूँ; यदि मैं इस प्रकार दिनों के फेर में न पड़ा होता तो वज्रधारी होने पर भी तुम्हें इसी दम घूँसा मारकर गिरा देता। किन्तु क्या करूँ, यह समय पराक्रम दिखाने का नहीं है, यह तो शान्त रहने का समय है। समय से ही ऊँचा पद मिलता है और समय ही गिरा देता है। मैं दानवों का राजा था, जब मुझ पर काल का आक्रमण हुआ तब किस गरजते और तपते हुए पर काल का फेरा न होगा ? मैं अकेला बारह सूर्यों का तेज रखता था। मैं ही पानी खींचता (आकर्षित करता) और मैं ही बरसाता था। मैं ही तीनों लोकों को तपाता और मैं ही प्रकाशित करता था। सब लोकों का पालन, संहार, दान, ग्रहण, बन्धन और मोचन मैं ही करता था। मैं तीनों लोकों का स्वामी था; किन्तु काल के फेर से इस समय मेरा वह प्रभुत्व नहीं रहा। तुम, मैं या अन्य कोई भी कर्ता नहीं है। काल के फेर से ही मनुष्यों

का पालन और संहार होता है। विद्वानों ने काल को परमेश्वर कहा है। मास और पक्ष काल-रूपी ईश्वर का शरीर है, वह शरीर दिन और रात से ढका हुआ है। ग्रीष्म आदि ऋतुएँ उसकी इन्द्रियाँ और वर्ष उसका मुँह है। कोई-कोई महात्मा अपनी बुद्धि से विचार करके इन दृश्य पदार्थों को ब्रह्म कहते हैं; किन्तु वेद में अन्नमय आदि पाँच कोषों को ही ब्रह्म का स्वरूप बतलाया गया है। ब्रह्म समुद्र के समान अगम्य और अपार है। वह जड़ भी है और चेतन भी। उसका न तो आदि है और न अन्त। वह सूक्ष्म शरीर से हीन होने पर भी मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर में निवास करता है। तत्त्वदर्शी लोगों ने उसे नित्य बतलाया है। वह अविद्या के प्रभाव से चेतन-स्वरूप जीव को जड़ बना देता है, किन्तु वास्तव में जीव जड़
५० पदार्थ नहीं है; क्योंकि तत्त्वज्ञान हो जाने पर फिर उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। अतएव इस जीव की एक-मात्र गति काल-रूपी परमब्रह्म को लाँघकर तुम कहाँ जाओगे? बड़े वेग से दौड़ने पर भी कोई मनुष्य काल को लाँघ नहीं सकता। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से उसका ज्ञान नहीं हो सकता। उसे कोई अग्नि, कोई प्रजापति, कोई ऋतु, कोई मास, कोई पक्ष, कोई दिन, कोई क्षण, कोई पूर्वाह्न, कोई मध्याह्न, कोई अपराह्न और कोई मुहूर्त्त कहते हैं। उस ब्रह्म के रूप तो अनेक बतलाये गये हैं; किन्तु वह काल-स्वरूप है। उसी के अधीन सब कुछ है। उसी काल के प्रभाव से तुम्हारे समान बलवान् हज़ारों इन्द्र हो चुके हैं। हे देवराज, उसी के प्रभाव से एक दिन तुम भी न रह जाओगे। काल ही सबका संहार करता है, यह समझकर तुम शान्त रहो। क्या तुम, क्या मैं और क्या पूर्वज लोग, कोई भी काल को नहीं हटा सकता। तुम जिस राजश्री को पाकर सर्वश्रेष्ठ और स्थायी समझते हो वह सदा एक के पास नहीं रहती। वह तुम्हारे जैसे हज़ारों इन्द्रों के पास रह चुकी है। अब मुझे छोड़कर तुम्हारे पास गई है और शीघ्र ही तुमको भी छोड़कर किसी दूसरे के पास चली जायगी। इसलिए
६० तुम शान्त रहो, वृथा गर्व करके मेरी निन्दा न करो।

दो सौ पच्चीस अध्याय

बलि को त्यागकर लक्ष्मी का इन्द्र के पास चला जाना

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, महात्मा बलि के यों कहते ही एक रूपवती स्त्री उनके शरीर से निकल आई। उसे देखकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बलि से पूछा—दानवराज, तुम्हारे शरीर से निकलकर यह जो बाज़ूबन्द पहने सुन्दर केशोंवाली रूपवती स्त्री अपने तेज से शोभित हो रही है, यह कौन है? बलि ने कहा—इन्द्र! यह न तो देवी है, न आसुरी और न मानुषी। तुम कुछ पूछना चाहते हो तो इसी से पूछो।

तब इन्द्र ने कहा—हे सुन्दरी, तुम कौन हो और दानवराज को छोड़कर मेरे पास क्यों आ रही हो ? यह मैं नहीं समझ पाता, इसलिए तुम्हीं बताओ।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, मुझे न तो विरोचन जानते थे और न विरोचन के पुत्र ये बलि ही जानते हैं। पण्डित लोग मुझे दुस्सहा, विधित्सा, भूति, लक्ष्मी और श्री कहते हैं। तुम और अन्यान्य देवता भी मुझे नहीं जान सकते।

इन्द्र ने कहा—आर्ये, तुम बहुत दिनों से बलि के पास रहती हो। इस समय बलि में कौन सा दोष और मुझमें कौन सा गुण देखकर उन्हें छोड़कर मेरे पास आती हो ?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, मुझे एक स्थान से दूसरे स्थान पर धाता और विधाता कोई नहीं हटा सकता। मैं काल के प्रभाव से ही एक को छोड़कर दूसरे के पास जाती हूँ। इसलिए तुम बलि का अनादर न करो। १०

इन्द्र ने पूछा—सुन्दरी, तुमने बलि को क्यों छोड़ दिया और मुझे क्यों नहीं छोड़ती हो ?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज ! जहाँ सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म रहता है वहीं मैं रहती हूँ। इस समय बलि इन सबसे विमुख हो गये हैं। ये सत्यवादी, जितेन्द्रिय और ब्राह्मणों के हितैषी थे; किन्तु अब ये ब्राह्मणों से ईर्ष्या करते हैं और इन्होंने जूठे हाथ से घी छू लिया है। यज्ञ करते रहने पर भी ये मेरी ही ख़ुशामद किया करते हैं। इन्होंने सबसे यह कहना आरम्भ किया कि मैं हमेशा लक्ष्मी का भोग करता रहूँगा। इन्हीं कारणों से मैं इनको छोड़कर तुम्हारे पास आती हूँ। तुम सावधान होकर, तपस्या और पराक्रम से मेरी रक्षा करना।

इन्द्र ने कहा—हे कमलों में रहनेवाली ! देवता, मनुष्य और अन्यान्य प्राणियों में ऐसा कोई भी नहीं है जो हमेशा तुम्हारी रक्षा कर सके।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज ! तुम ठीक कहते हो। देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस कोई भी मुझे हमेशा नहीं रख सकता।

इन्द्र ने पूछा—देवि, तो फिर मैं कौन सा काम करूँ जिससे तुम हमेशा मेरे पास रहो ?

लक्ष्मी ने कहा—देवेन्द्र, तुम वेदोक्त विधि से मुझे चार हिस्सों में बाँटकर चार जगह रक्खो तो मैं हमेशा तुम्हारे पास बनी रहूँ।

इन्द्र ने कहा—देवि, मैं भरसक तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा; तुम मुझे कभी न छोड़ना। २० मेरी समझ में तुम्हारा पहला हिस्सा पृथिवी धारण कर सकती है।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज ! लो, यह मैंने अपना पहला हिस्सा पृथिवी पर रख दिया। बताओ, दूसरा हिस्सा कहाँ रक्खूँ।

इन्द्र ने कहा—देवि, तुम्हारे दूसरे हिस्से को जल धारण कर सकता है।

लक्ष्मी ने कहा—अच्छा, मैं अपना दूसरा पद जल में रखती हूँ। तीसरा कहाँ रक्खूँ ?

इन्द्र ने कहा—देवि ! वेद, यज्ञ और देवता अग्नि में स्थित रहते हैं, अतएव आप अपना तीसरा हिस्सा अग्नि में रखिए ।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, तुम्हारे कहने से मैंने तीसरा पद अग्नि में रख दिया। अब चौथे पद के रखने का स्थान बतलाओ ।

इन्द्र ने कहा—जहाँ ब्राह्मणों और वेदों की रक्षा करनेवाले सत्यवादी लोग रहते हों वहाँ अपना चौथा पद रखिए ।

लक्ष्मी ने कहा—अच्छा, मैं अपना चौथा पद सज्जनों में रखती हूँ। अब मैं चार भागों में विभक्त होकर प्राणियों में स्थित हो गई। तुम सावधानी से मेरी रक्षा करो ।

इन्द्र ने कहा—देवि, मैंने तुमको चार हिस्सों में बाँटकर स्थापित कर दिया है। जो कोई चोरी आदि करके तुम्हारा अमङ्गल करेगा उसे मैं दण्ड दूँगा ।

इस प्रकार बलि को त्यागकर इन्द्र के पास लक्ष्मी के चले जाने पर बलि ने कहा—इन्द्र ! काल के प्रभाव से सूर्य पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, चारों दिशाओं में तपते हैं। जब जिस दिशा में वे देख पड़ते हैं तब उस दिशा के लोग सुखी और जहाँ नहीं देख पड़ते वहाँ के लोग दुखी होते हैं। जैसे मनुष्य सूर्य को देखने और न देखने से सुखी और दुखी होते हैं वैसे ही मैं इस समय तुमसे परास्त होकर दुखी हुआ हूँ और समय आने पर तुमको परास्त करके सुखी
३१ हूँगा। जब सूर्य आकाश-मण्डल में एक स्थान पर स्थिर रहकर सब लोकों को भस्म कर देंगे और जब इस वैवस्वत मन्वन्तर का अन्त हो जायगा तब मैं देवासुर-संग्राम में तुमको जीतूँगा ।

इससे कुपित होकर इन्द्र ने कहा—बलि ! ब्रह्माजी ने मुझे मना किया है इससे मैं तुम्हारे सिर पर वज्र नहीं मारता। अब तुम चाहे जहाँ चले जाओ। सूर्य आकाश में स्थिर होकर कभी संसार को भस्म न करेंगे। ब्रह्माजी ने पहले ही जो नियम बना दिया है उसी नियम के अनुसार वे सब लोकों को तपाते हुए हमेशा घूमते रहेंगे। वे छः महीने उत्तरायण और छः महीने दक्षिणायन रहते हुए सब लोकों को गरमी और सरदी पहुँचाते रहेंगे ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इन्द्र के यों कहने पर दानवराज बलि दक्षिण दिशा को चले
३८ गये और इन्द्र ने भी अपने घर की राह ली ।

दो सौ छब्बीस अध्याय

इन्द्र और नमुचि का संवाद। इन्द्र के पूछने पर नमुचि का सोच की निरर्थकता बतलाना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैं अब अहङ्कार त्यागने के विषय में इन्द्र और नमुचि का संवाद सुनाता हूँ। प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश का हाल जाननेवाले नमुचि, ऐश्वर्यहीन

होने पर भी, समुद्र के समान विचलित नहीं हुए। इन्द्र ने उनके पास जाकर पूछा—दैत्यराज! तुम राज्य से भ्रष्ट, शत्रु के वशीभूत और बन्दी होने पर भी किसी प्रकार का सोच क्यों नहीं करते?

नमुचि ने कहा—देवराज, सोच करने से अपने शरीर को दुःख देने और शत्रुओं को प्रसन्न करने के सिवा और कोई सहायता नहीं मिलती। इसी से मैं सोच नहीं करता। संसार में जो कुछ देख पड़ता है वह सब नश्वर है। सन्ताप करने से रूप, श्री, आयु और धर्म का नाश हो जाता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य सन्ताप को छोड़कर हृदय में स्थित परमात्मा का ध्यान करे। परमात्मा का ध्यान करने से मनुष्यों की सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। परमात्मा के सिवा दूसरा कोई इस संसार का नियन्ता नहीं है। वह परमात्मा गर्भ में स्थित बालक की भी देख-रेख करता है। जैसी प्रभु की आज्ञा होती है वैसा ही किया करता हूँ। मैं बन्धन और मोक्ष दोनों को जानता हूँ, तो भी कल्याणकारी मोक्ष के प्राप्त करने का उपाय नहीं कर सकता। परमात्मा से नियुक्त किया हुआ मैं कभी धर्म और कभी अधर्म में प्रवृत्त होता हूँ। जो जिसे मिलना चाहिए वह उसे अवश्य मिलता है। होनहार को कोई नहीं टाल सकता। १०
विधाता ने प्राणियों को बार-बार जिस-जिस गर्भ में रहने को नियुक्त कर दिया है उन्हें उन गर्भों में रहना पड़ता है। कोई प्राणी अपनी इच्छा के अनुसार गर्भ में नहीं जाता। जो मनुष्य सुख और दुःख आ जाने पर होनहार को ही उसका कारण मानता है वह कभी मोहित नहीं होता। काल के प्रभाव से ही मनुष्य सुख-दुःख पाता है। कोई मनुष्य किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता। अतएव अपने को कर्त्ता समझना मूर्खता है। तपस्वी, देवता, दानव, वेदों के जानकार और वनवासी मुनि, किस पर विपत्ति नहीं आती? किन्तु भले-बुरे के जानकार महात्मा लोग विपत्ति को देखकर घबरा नहीं जाते। हिमालय के समान स्थिर स्वभाववाले पण्डितों को कभी क्रुद्ध, विषयासक्त, दुखी या प्रसन्न नहीं देखा जाता। वे लोग भारी विपत्ति में भी सोच नहीं करते। बहुत सा धन मिलने पर जो प्रसन्न नहीं होते, दुःख पड़ने पर जो मोहित नहीं होते और सुख, दुःख तथा सुख-दुःख मिली हुई अवस्था का जो सावधानी से भोग करते हैं वे धुरन्धर मनुष्य हैं। मनुष्य चाहे जिस अवस्था में हो, उसे सन्ताप छोड़कर सन्तोष करना चाहिए। जिस सभा में मनुष्यों को धर्म-अधर्म का भय न हो वह सभा ही नहीं है और उस सभा के लोग सभ्य कहलाने योग्य नहीं। जो बुद्धिमान् मनुष्य धर्म के मर्म को जानकर उसके अनुसार काम करता है वही सभ्य है। बुद्धिमान् मनुष्य का काम अति दुर्ज्ञेय है। वह मोह के समय भी मोहित नहीं होता। महर्षि गौतम, गृहस्थाश्रम नष्ट होने के कारण, घोर विपत्ति में पड़ने पर भी मोहित नहीं हुए थे। जब मनुष्य मन्त्र के बल, पराक्रम, बुद्धि, पौरुष, चरित्र, व्यवहार और धन के प्रभाव से किसी अलभ्य वस्तु को नहीं प्राप्त कर सकता तब किसी वस्तु के प्राप्त न होने पर रोना-धोना व्यर्थ है। विधाता ने जो काम मेरे लिए २०

निर्दिष्ट कर दिये हैं उन्हीं को मैं करता हूँ। इसलिए मुझे मौत से रत्ती भर भी डर नहीं है। जो सुख-दुःख मिलना है वह अवश्य मिलेगा। जो वस्तु मिलनी है वही मिलेगी और जिस स्थान को जाना है वहाँ जाना पड़ेगा। जो मनुष्य इन बातों को अच्छी तरह जानकर मोहित
२३ नहीं होता वह दुःख के समय को भी निर्विघ्न बिता देता है और वास्तव में वही धनवान् है।

दो सौ सत्ताईस अध्याय

इन्द्र और बलि का संवाद। बलि द्वारा काल की महिमा का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप हमारे हितचिन्तक हैं। अतएव मुझे बतलाइए कि बन्धुओं के मरने और राज्य का नाश होने के कारण घोर विपत्ति में पड़ जाने पर राजा अपने कल्याण के लिए क्या करे।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, स्त्री-पुत्र के मरने या धन का नाश होने की घोर विपत्ति आ पड़ने पर धैर्य रखने में ही मनुष्य की भलाई है। धैर्य रखने से शरीर नष्ट नहीं होता। जो मनुष्य चिन्ता नहीं करता वह हमेशा सुखी और नीरोग रहता है। नीरोग रहने से शरीर में तेज रहता है। जो बुद्धिमान मनुष्य सात्त्विक वृत्ति से रहता है उसी में धैर्य, ऐश्वर्य और अच्छे कामों के करने का उत्साह हो सकता है। यहाँ इन्द्र और बलि का संवाद फिर सुनाता हूँ। पहले देवताओं और दानवों में घोर संग्राम हुआ था। इस युद्ध में असंख्य दैत्य-दानवों का संहार हो गया। अन्त को दैत्यराज बलि तीनों लोकों के अधीश्वर हुए। कुछ दिनों बाद भगवान् विष्णु ने वामन का रूप धारण करके, बलि को धोखा देकर, इन्द्र को तीनों लोकों का राजा बना दिया। राजा हो जाने पर इन्द्र को देवता लोग यज्ञ कराने लगे, चारों वर्णों के नियम स्थापित हुए और तीनों लोक समृद्धिशाली हो उठे, इससे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। अब इन्द्र सुन्दर चार दाँतोंवाले ऐरावत हाथी पर सवार होकर अश्विनीकुमार, रुद्र, वसु, आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, साँपों के राजा, सिद्धगण और अन्यान्य देवताओं के साथ तीनों लोकों में घूमने
१० लगे। घूमते-घूमते उन्होंने समुद्र के किनारे एक कन्दरा में दानवराज बलि को देखा। वे उनके पास गये। ऐरावत पर सवार, देवताओं समेत, इन्द्र को देखकर दानवराज बलि को न तो भय हुआ और न कुछ दुःख ही। उनको निडर और निश्चिन्त देखकर इन्द्र ने पूछा—दानवराज, तुम निडर क्यों हो? तुम वीरता से ऐसे शान्त हो या वृद्धों की सेवा से, तप से या धैर्य से? इस प्रकार शान्त रहना तो बहुत कठिन है। तुम पहले अपने बाप-दादे का राज्य करते थे, अपने जातिवालों में श्रेष्ठ होकर अनेक सुख भोगते थे; किन्तु अब

शत्रुओं ने तुम्हारा सर्वस्व छीन लिया है। स्त्री तक को तुम्हारे पास नहीं रहने दिया। तुम हमारे वज्र से आहत हुए और वरुण के पाश में बाँधे जाकर हमारे अधीन हो गये। अब तुम्हारा वह ऐश्वर्य और तेज कुछ भी नहीं रह गया. इतने पर भी तुमको पछतावा नहीं है, इसका क्या कारण है? ऐसी दशा में चिन्ता न करना बहुत कठिन है। तुम बड़े धैर्यवान् हो। तीनों लोकों का राज्य नष्ट हो जाने पर तुम्हारे सिवा दूसरा कौन जीवित रह सकता है?

इन्द्र ने इस प्रकार की और भी कड़वी बातें कहकर जब बलि का अनादर किया तब उन्होंने कहा--देवराज, मैं अब तुम्हारे अधीन हो गया हूँ इसलिए मेरा अनादर करने में २०
तुम्हारी वीरता नहीं है। आज तुम मेरे सामने वज्र उठाये खड़े हो। पहले तुम बिलकुल अशक्त थे, अब कुछ शक्तिमान् हुए हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई व्यक्ति, इस अवस्था में, मुझसे ऐसी कड़वी बातें न कहता। शत्रु को अधीन करके, स्वयं बलवान् होने पर भी, जो शत्रु पर दया करता है वही पुरुष है। दो व्यक्तियों में युद्ध होने पर किसी एक का विजयी होना पहले से निश्चित नहीं रहता। युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे की पराजय अवश्य होती है। अतएव तुम यह समझकर, कि मैंने अपने पराक्रम से तीनों लोकों के अधीश्वर को जीत लिया, गर्व न करो। तुम्हारी उन्नति और मेरी अवनति का कारण न तो मैं हूँ और न तुम्हीं हो। पहले जो मेरा आधिपत्य था उसे अब तुमने प्राप्त किया है; किन्तु एक दिन मेरी सी दुर्दशा तुम्हारी भी होगी। अतएव तुम मुझे जीतकर, वीरता का गर्व करके, मेरा अनादर न करो। मनुष्य दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख भोगता रहता है। तुम भी उसी क्रम से इन्द्र हुए हो। तुमने अपनी वीरता से तीनों लोकों को नहीं जीता। हम तुम दोनों ही काल के अधीन हैं, इसी से मैं इस समय तुम्हारे समान आधिपत्य नहीं पा सकता हूँ और तुम भी मेरी सी दुर्दशा में नहीं हो। माता-पिता की सेवा और देव-पूजा करने से कोई मनुष्य, काल के विरुद्ध, सुखी नहीं हो सकता। विद्या, तपस्या, दान और बन्धु-बान्धव कोई भी समय के सताये ३०
मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकते। काल के द्वारा होनेवाले अनर्थ, बुद्धि-बल के सिवा, अन्य उपायों से नहीं हटाये जा सकते। समय के फेर में पड़े हुए मनुष्य की रक्षा कोई नहीं कर सकता। अतएव जब सब काम काल के प्रभाव से ही होते हैं तब तुम जो अपने को कर्ता समझते हो, यह दुःख की बात है। यदि मनुष्य कर्ता होता तो उसका उत्पन्न करनेवाला कोई न होता; जब कि मनुष्य दूसरे से उत्पन्न होता है तब कर्ता कैसे कहला सकता है? काल के प्रभाव से मैंने तुमको जीता था और काल के फेर से ही अब तुमने मुझे जीत लिया है। काल के प्रभाव से ही सब मनुष्य अपने-अपने काम करते हैं। सब मनुष्य काल के ही वश में हैं। तुम अपनी साधारण बुद्धि से नहीं समझ पाते हो कि एक दिन प्रलयकाल आवेगा। तुमने अपने पराक्रम से इन्द्रत्व प्राप्त किया है, यह समझकर दूसरे लोग तुम्हारी प्रशंसा भले ही करें; किन्तु

मुझे उससे तनिक भी दुःख नहीं होता। संसार की गति जाननेवाला मेरे समान कोई व्यक्ति, दुःख की अवस्था में, अपने को काल के फेर में पड़ा हुआ समझकर क्या कभी शोक और मोह के वशीभूत हो सकता है ? मेरी या मेरे समान अन्य व्यक्ति की बुद्धि क्या कभी, काल के फेर से आई हुई, विपत्ति के समय टूटे हुए जहाज़ के समान नष्ट हो जाती है ? क्या तुम्हारी, क्या मेरी और क्या आगे होनेवाले दूसरे इन्द्र की, सभी की पहले के इन्द्रों की सी गति होगी। तुम इस समय बड़े दुर्धर्ष और अपने तेज से प्रकाशमान हो रहे हो; किन्तु समय आने पर तुम भी मेरी सी दुर्दशा भोगोगे। अब तक हज़ारों इन्द्र हो चुके हैं; किन्तु काल को कोई नहीं लाँघ सका। तुम तीनों लोकों का आधिपत्य पाकर, सब प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाले ब्रह्मा के समान, अपने को श्रेष्ठ समझते हो; परन्तु स्मरण रक्खो, किसी का ऐश्वर्य चिरस्थायी नहीं होता। मूर्खता से तुम अपने ऐश्वर्य को स्थायी समझते हो। तुम काल के फेर से विश्वास के अयोग्य पर विश्वास करते हो और अनिश्चित विषय को निश्चित समझते हो। तुम मोह के वश में होकर ही राजलक्ष्मी को अपनी समझते हो; किन्तु लक्ष्मी किसी की नहीं हुई। यह बहुतों के पास रही, पर निभाया किसी को नहीं। आज यह तुम्हारे पास है; किन्तु कुछ दिनों बाद, जैसे गाय एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चली जाती है वैसे ही यह चञ्चल-स्वभाव की राजलक्ष्मी तुमको छोड़कर किसी दूसरे के पास चली जायगी। तुमसे पहले असंख्य इन्द्र हो चुके हैं और तुम्हारे बाद भी बहुत से इन्द्र होंगे। वृक्षों और ओषधियों से भरी हुई, अनेक रत्नों से सम्पन्न, समुद्र समेत इस पृथिवी का भोग पहले जितने राजा कर गये हैं आज वे कहाँ हैं ? पृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, राहु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, हीनिषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येषु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, विरूपक, बाण, कार्तस्वर, वह्नि, विश्वदंष्ट्र, नैर्ऋति, सङ्कोच, वरीताक्ष, वराहाश्व, रुचिप्रभ, विश्वजित्, प्रतिरूप, वृषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकशिपु और कैटभ आदि महापराक्रमी असंख्य दैत्य-दानव और राक्षस राजा हो गये हैं। इनमें से किसी को काल ने नहीं छोड़ा। काल बड़ा बली है। हे देवराज, कुछ तुम्हीं ने सौ यज्ञ नहीं किये हैं। सभी इन्द्र सौ-सौ यज्ञ कर गये हैं और सब धर्मपरायण, सदा यज्ञ करनेवाले, आकाशचारी, सम्मुख युद्ध करनेवाले, अस्त्रबल-सम्पन्न, मायावी और कामरूपी थे। उन सब की भुजाएँ परिघ के समान थीं। उनमें से किसी को युद्ध में हारा हुआ नहीं सुना गया। वे सब दाक्षायणी के पुत्र, महापराक्रमी, तेजस्वी, प्रतापी, सत्यवादी, विद्वान्, प्रसिद्ध, इच्छाचारी और यथेष्ट ऐश्वर्यवान् थे। वे सुपात्र को दान देते थे। उनमें से किसी ने ऐश्वर्य का गर्व नहीं किया; किन्तु उन्हें भी काल ने नहीं छोड़ा। हे देवराज, तुम जब इस पृथिवी का भोग कर चुकोगे और यह तुमसे छूट जायगी तब तुम भी अपने शोक को सँभाल न सकोगे। इसलिए सुख भोगने की इच्छा और ऐश्वर्य के गर्व को छोड़ दो। राज्य का नाश

होने पर तुमको भी शोक सहन करना पड़ेगा। अतएव तुम शोक के समय शोक और हर्ष के समय हर्ष न करो। तुम बीती हुई और आनेवाली बातों की चिन्ता को छोड़कर वर्तमान अवस्था में सन्तुष्ट रहो। मैं हमेशा लगन के साथ काम करता हूँ, अतएव जब मुझ पर काल का आक्रमण हुआ तब तुम भी शीघ्र ही काल के फेर में पड़ोगे। तुम ऊटपटाँग बातें कहकर मुझे डरवाने का उद्योग करते हो और मुझे विपत्ति में पड़ा हुआ समझकर अभिमान दिखाते हो। आज मैं काल के फेर में पड़ा हुआ हूँ इसी से तुम मेरे सामने गर्जन-तर्जन कर रहे हो; किन्तु समझ रक्खो कि वह काल तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ रहा है। पहले जब मैं क्रोध करके युद्धभूमि में उतरता था तब क्या मेरे सामने कोई ठहरता था? इस समय तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो तुम मेरे सामने ठहर सके हो। इस समय तुम स्वर्ग के अधिकारी हो; किन्तु हज़ार वर्ष बीत जाने पर तुम भी इन्द्रत्व ७०
से भ्रष्ट होकर मेरी तरह दुखी होगे। तुमने कोई शुभ काम करके इस अद्भुत जीव-लोक में इन्द्रत्व नहीं पाया है और मैं भी कोई अशुभ कर्म करने से राज्य से भ्रष्ट नहीं हुआ हूँ। तुम्हारी उन्नति और मेरी अवनति का कारण काल ही है। विद्वान् मनुष्य सम्पत्ति, विपत्ति, सुख, दुःख जन्म और मरण में अधिक सुखी या दुखी नहीं होते। हे इन्द्र, तुम मुझे जानते हो और मैं तुम्हें जानता हूँ फिर तुम निर्लज्जता से मेरा अनादर क्यों कर रहे हो? तुम मेरे पराक्रम को पहले ही देख चुके हो। मैंने आदित्य, रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गण को जीत लिया था। देवासुर-संग्राम में सब देवता मुझसे हार गये थे, यह तुम भली भाँति जानते हो। हिंसक जीवों से भरे हुए जङ्गलों से युक्त अनेक पहाड़ मैंने तुम्हारे सिर पर पटक दिये थे; किन्तु इस समय क्या करूँ! काल का फेर बहुत कठिन होता है, उसे कोई नहीं हटा सकता। यदि मैं काल के फेर में न होता तो एक घूँसा मारकर वज्र समेत तुमको गिरा देता। परन्तु करूँ क्या, यह समय सह लेने का है—पराक्रम दिखलाने का नहीं। इसी से तुम्हारी इन बातों को सहे लेता हूँ। मैं काल-रूपी अग्नि ८०
से ढका हुआ और काल के पाश में बँधा हुआ हूँ, इसी से तुम मेरा अनादर कर रहे हो। दुरतिक्रमणीय कालरूपी भीषण पुरुष ने, पशु के समान, मुझे बाँध रक्खा है। लाभ-हानि, सुख-दुःख, जन्म-मरण और बन्धन-मोक्ष, सब काल के ही प्रभाव से होते हैं। तुम या मैं कोई किसी विषय का कर्ता नहीं है। काल ही सबका कर्त्ता है। वही काल मुझे, वृक्ष में स्थित फल के समान, परिपक्व अवस्था में ले आया है। पुरुष जिन कामों के करने से सुखी होता है उन्हीं कामों को करता हुआ वह, काल के फेर से, दुःख भोगता है। अतएव जो मनुष्य काल की महिमा को जानता है उसे, काल का आक्रमण होने पर, शोक न करना चाहिए। शोक करने से दुःख नहीं मिट सकता, बल्कि शक्ति का नाश हो जाता है। इसी से मैं बेखटके हूँ।

बलि के यों कहने पर कुपित होकर इन्द्र ने कहा—बलि! वरुण का पाश और वज्र उठाये हुए मेरे बाहु को देखकर दूसरों की बात तो दूर रही, सबका नाश करनेवाली मौत भी

डरती है; किन्तु तुम अपनी तत्त्वदर्शिता के प्रभाव से इस समय दुखी नहीं होते हो। निस्सन्देह तुम बड़े धैर्यवान् हो। संसार को नश्वर समझकर कौन व्यक्ति धन और शरीर पर विश्वास करेगा? मैं भी तुम्हारी तरह इस लोक को अनित्य और कालरूपी अग्नि में पड़ा हुआ समझता हूँ। इस लोक में छोटे-बड़े सभी काल का ग्रास हो जाते हैं। कोई भी काल का ईश्वर नहीं है। काल सावधानी से हमेशा प्राणियों का शासन करता और असावधान मनुष्यों पर दृष्टि जमाये रहता है। काल सृष्टि के आरम्भ से सब पर समान आधिपत्य करता आ रहा है। न तो प्राचीन समय में कोई काल का उल्लङ्घन कर सका है और न इस समय कर सकता है। जैसे बनिया अपनी बड़ी हुई चीज़ों को समेटता है वैसे ही काल काष्ठा, कला, क्षण, पहर, दिन-रात और मास आदि अपने सूक्ष्म अंशों को एकत्र करके स्थूल करता है। अनेक लोग 'मैं यह काम आज करूँगा, वह काम कल करूँगा' इस तरह के इरादे किया करते हैं; किन्तु वे अपने अभीष्ट कामों को किये बिना ही मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं। जो व्यक्ति मर जाता है उसे लोग 'अरे, कल तो मैंने इन्हें देखा था, कैसे मर गये' कहकर रोते हैं। धन सुख, ऐश्वर्य और प्राण कुछ भी स्थायी नहीं है। काल सबको हर लेता है। उन्नत का अधःपात और विद्यमान का नाश अवश्य होता है सभी पदार्थ अनित्य हैं, ऐसा निश्चय करना बहुत कठिन है। संसार को काल के वशीभूत और अनित्य समझ लेना कोई सरल काम नहीं है। तुम्हारी बुद्धि अचल और तत्त्वदर्शिनी है, इसी से तुम दुखी नहीं होते। तुम पहले तीनों लोकों के अधीश्वर थे और अब उस बात को मन में भी नहीं लाते हो। काल छोटे-बड़े की परवा नहीं करता; वह तो आक्रमण करके सभी का संहार कर डालता है। मनुष्य काल के वशीभूत रहने पर भी उसके प्रभाव को न जानकर ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, भय और मोह में आसक्त रहता है। किन्तु तुम अपने तप, तत्त्वज्ञान और विद्या के प्रभाव से करामलकवत् काल को अच्छी तरह देखते हो। तुम काल की गति के जानकार, सब शास्त्रों के ज्ञाता, पुण्यात्मा और पण्डितों में प्रशंसनीय हो। जान पड़ता है, तुम बुद्धिबल से सब लोकों का ज्ञान प्राप्त करके सबसे मुक्त हो गये हो। तुमको कभी मोह और विषयों में अनुराग नहीं होता। तुम राग-द्वेष से शून्य हो। तुम जितेन्द्रिय हो, इसी से रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं करते। तुमको सब प्राणियों का सुहृद्, वैरभावशून्य और शान्तचित्त देखकर मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम जैसे ज्ञानी को, बन्धन की दशा में, मार डालने की मेरी इच्छा नहीं है। इस समय मुझे तुम पर दया आती है। अब मैं तुम्हारे साथ नृशंसता न करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो। समय के फेर से प्रजा के अधार्मिक होने पर तुम वरुण के पाश से छूट जाओगे। जब बहू बूढ़ी सास पर हुकूमत करेगी और पुत्र मोह के वश होकर पिता को काम में लगावेगा, शूद्र बेधड़क होकर ब्राह्मणों से पैर धुलावेंगे और ब्राह्मणी के साथ भोग करेंगे तब तुम सब बन्धनों

वह नक्षत्रों के समान चमकीले आभूषण पहन, मोतियों की माला धारण किये, साक्षात् लक्ष्मी का मनोहर वेष रक्खे —अप्सराओं के आगे आगे—अग्नि की शिखा के समान, उनकी ओर आने लगी।—पृ० ३६७

से छूट जाओगे; पुरुष जब योनि के अतिरिक्त अन्यत्र वीर्य गिरावेंगे, अपवित्र पात्र में पूजा का सामान रक्खेंगे और जब चारों वर्ण मर्यादाहीन हो जायँगे तब तुम एक-एक करके सब बन्धनों से छूट जाओगे। अब तुम मेरी ओर से बेखटके रहो। तुम निश्चिन्त और नीरोग होकर समय की प्रतीक्षा करो।

ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्र दानवराज बलि से यों कहकर और अन्यान्य असुरों को जीतकर तीनों लोकों को अपने अधिकार में करके बहुत प्रसन्न हुए। महर्षि लोग उनकी स्तुति करके अग्नि में विधिपूर्वक आहुति देने लगे। देवता लोग इन्द्र को अमृत देकर निश्चिन्त हो गये। महातेजस्वी इन्द्र इस प्रकार इन्द्रत्व पाकर बड़े आनन्द से अपने लोक को गये। ११९

दो सौ अट्ठाईस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को भावी उन्नति और अवनति के लक्षण बतलाते हुए इन्द्र और लक्ष्मी का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मनुष्यों की भावी उन्नति और अवनति के पूर्व लक्षण क्या हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मनुष्यों को उनका मन भावी उन्नति और अवनति के लक्षण बतला देता है। इस सम्बन्ध में लक्ष्मी और इन्द्र का संवाद सुनो। ब्रह्माजी के समान तेजस्वी निष्पाप महातपस्वी नारद, अपनी तपस्या के प्रभाव से, ब्रह्मलोक-निवासी ऋषियों के तुल्य होकर इच्छा के अनुसार तीनों लोकों में घूमने लगे। वे एक दिन प्रातःकाल उठकर, स्नान करने की इच्छा से, ध्रुवलोक में गङ्गा-किनारे गये। उसी समय शम्बर का नाश करनेवाले वज्रधारी इन्द्र भी वहाँ आये। महर्षि नारद और इन्द्र स्नान तथा नित्य कर्म करके गङ्गा-किनारे चमकीली बालू से परिपूर्ण पृथिवी पर बैठकर देवर्षियों की कही हुई प्राचीन कथा कहने लगे। थोड़ी देर बाद किरणें फैलाते हुए सूर्यदेव उदय हुए। तब नारद और इन्द्र ने उठकर भक्ति से १०
उनकी स्तुति की। उसी समय सूर्य के समीप, उन्हीं के समान प्रकाशवाली, एक और ज्योति देख पड़ी। उस ज्योति का तेज तीनों लोकों में फैल गया। इन्द्र और देवर्षि नारद उस ज्योति को देखने लगे। अब वह ज्योति धीरे-धीरे उनकी ओर चली। वह नक्षत्रों के समान चमकीले आभूषण पहने, मोतियों की माला धारण किये, साक्षात् लक्ष्मी का मनोहर वेष रक्खे—अप्सराओं के आगे-आगे—अग्नि की शिखा के समान, उनकी ओर आने लगी। देखते-देखते कमलों में निवास करनेवाली कमला देवी विमान से उतरकर तीनों लोकों के अधीश्वर इन्द्र और देवर्षि नारद के पास आ गईं। नारद समेत इन्द्र ने देवी की पूजा करके हाथ जोड़कर कहा—सुन्दरी, आप कौन हैं? कहाँ से किसलिए यहाँ आई हैं और अब आपको कहाँ जाना है?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, संसार में स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी मुझे पाने के लिए यत्न करते
२० हैं। मैं सब प्राणियों के ऐश्वर्य के निमित्त, सूर्य की किरणों द्वारा विकसित, कमल से उत्पन्न हुई हूँ। मैं लक्ष्मी, भूति, श्री, श्रद्धा, मेधा, सन्नति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, स्वाहा, स्वधा, नियति, स्मृति और तुम्हारी सम्पत्ति-स्वरूप हूँ। मैं विजय करनेवाले धार्मिक राजाओं के सेनापति, ध्वज, राज्य और अन्तःपुर में तथा डटकर संग्राम करनेवाले सत्यवादी, धर्मात्मा, बुद्धिमान, ब्रह्मनिष्ठ, दानशील वीरों में निवास करती हूँ। मैं पहले सत्य-धर्म के बन्धन में रहकर असुरों के यहाँ रहती थी; किन्तु अब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है इसलिए तुम्हारे पास आना चाहती हूँ।

इन्द्र ने पूछा—देवि, आपने पहले दैत्यों का आश्रय क्यों लिया था और अब उन्हें त्यागकर मेरे पास क्यों आना चाहती हैं?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज! जो मनुष्य धैर्यवान्, अपने धर्म में निरत, स्वर्ग के अभिलाषी और सत्त्वगुणी होते हैं उन्हीं पुरुषों पर मैं अनुरक्त रहती हूँ। दानव लोग पहले दान, अध्ययन और यज्ञ करते थे। वे देवताओं और पितरों की आराधना, गुरु और अतिथि का
३० सत्कार करते तथा सत्यवादी होते थे। वे जितेन्द्रिय, दान्त, ब्राह्मणों के हितैषी, श्रद्धावान्, क्रोधहीन और ईर्ष्यारहित थे। पुत्र, स्त्री और मन्त्रियों का पालन करते थे। वे कभी क्रोध करके आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं थे। दूसरे का ऐश्वर्य देखकर डाह नहीं करते थे। वे दाता, गृहीता, आर्य, विनीत, सरल, दृढ़ भक्त, कृतज्ञ, प्रियवादी, लज्जावान् और व्रतधारी थे; वे पर्व के दिनों में नित्य स्नान करते थे। वे लोग विद्वान्, उपवास और तप करनेवाले, विश्वस्त, ब्रह्मवादी, प्रतिष्ठित और धन संग्रह करने में यत्नवान् थे। वे सूर्योदय के पहले उठते थे। वे न तो प्रातःकाल सोते थे और न दिन में ही। वे रात में दही और सत्तू न खाते थे। वे पवित्र और ब्रह्मवादी रहते हुए प्रातःकाल घी और मङ्गल वस्तुओं का दर्शन, ब्राह्मणों की पूजा और आधी रात को शयन करते थे; वे दीन, अनाथ, बूढ़े, दुर्बल, पीड़ित और स्त्रियों पर दया करते थे, उनको धन
४० देते और प्रसन्न रखते थे। डरपोक, खिन्न, घबराये हुए, रोगी, दुर्बल, हृतसर्वस्व और दुखी मनुष्यों को आश्वासन देते थे। वे सब धर्म में तत्पर रहते थे। वे हमेशा सत्य और तप में लगे रहते थे; गुरुओं और वृद्धों की सेवा करते थे। वे देवताओं, पितरों और अतिथियों का सत्कार करते और उनसे बचा हुआ भोजन करते थे। वे न तो अकेले भोजन करते थे और न परस्त्री-गमन करते थे। वे सब प्राणियों पर दया करते थे। वे लोग शून्य स्थान में, पशुओं में और अयोनि में वीर्यपात नहीं करते थे। वे पर्व के दिनों में मैथुन नहीं करते थे। वे सब दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, निरहङ्कार, मित्रभाव, सत्य, तपस्या, पवित्रता, दया, प्रिय वाक्य और मित्रों के साथ अद्रोह आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त थे। निद्रा, आलस्य, द्वेष, ईर्ष्या, असावधानी, विषाद और आसक्ति आदि दोष उनमें नहीं थे।

उक्त गुणों से युक्त होने के कारण सृष्टि के आरम्भ से लेकर अभी तक मैं दानवों के पास रही हूँ। काल के प्रभाव से अब वे लोग सब गुणों को त्यागकर काम और क्रोध के वशीभूत हो गये हैं। उनमें धर्म नहीं रह गया है। धार्मिक बूढ़े सभासदों के धर्म की बात कहने पर युवक लोग उनकी हँसी उड़ाते और उनसे ईर्ष्या करते हैं। धर्मात्मा वृद्धों के आने पर युवक लोग, पहले की तरह, न तो उठकर खड़े होते हैं और न प्रणाम करके उनका सम्मान करते हैं। पिता के मौजूद रहने पर पुत्र मालिक बन बैठता है। दासत्व स्वीकार करके भी निर्लज्जता से अपने को स्वाधीन बतलाते हैं और निन्द्य काम करके धन संग्रह करना चाहते हैं। रात में ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं। अब अग्नि का तेज कम हो गया है। पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानते और स्त्री स्वामी का कहना नहीं मानती। वे सन्तान की रक्षा नहीं करते; माता, पिता, गुरु, वृद्ध, आचार्य और अतिथि में श्रद्धा नहीं रखते। भीख नहीं देते; देवता, अतिथि और गुरु का सत्कार किये बिना भोजन कर लेते हैं। उनके रसोइये बड़ी अपवित्रता से रसोई बनाते हैं और बड़े-बूढ़ों के मना करने पर भी भोजन की सब सामग्री खुली हुई रखते हैं। अन्न बिखरा पड़ा रहता है जिसे पशु-पक्षी ख़राब किया करते हैं और दूध खुला हुआ रहता है। वे लोग जूठे हाथ से घी छू लेते हैं। कुदाल, फावड़ा, पिटारी और बर्तन घर में इधर-उधर पड़े रहने पर स्त्रियाँ उनकी परवा नहीं करतीं। वे घर की चहारदीवारी या दीवार गिर जाने पर उसे नहीं बनवाते। पशुओं को बाँधकर उन्हें चारा-पानी नहीं देते। नौकरों और लड़कों के सामने, उन्हें दिये बिना, स्वयं चीज़ें खाते हैं। वे लोग वृथा-मांस खाते और अपने ही भोजन के लिए खीर, खिचड़ी (कृसर), पुआ और पूड़ी बनवाते हैं। दिन निकल आने पर भी वे लोग शय्या नहीं छोड़ते। उनके घरों में दिन-रात झगड़े हुआ करते हैं। वे लोग बड़े-बूढ़ों का सम्मान नहीं करते। वे सब धर्म-भ्रष्ट होकर आश्रमवासियों से द्वेष रखते हैं। उनमें कोई भी पवित्र नहीं रहता। वे वर्णसङ्कर होने लगे। वे न तो वेदज्ञ ब्राह्मणों का सम्मान करते और न वेदहीन ब्राह्मणों को दण्ड देते हैं। दासियाँ दुराचार करती हुई माला और कङ्कण आदि पहनने लगीं। स्त्रियाँ पुरुष का वेष और पुरुष स्त्री का वेष बनाकर क्रीड़ा करने में बड़े प्रसन्न होते हैं। पूर्वजों द्वारा सत्पात्र में दान दिये जाने का फल उनके पुत्र-पौत्र आदि को मिल चुका; किन्तु नास्तिकता के कारण उनमें अब कोई उस फल के भोगने का अधिकारी नहीं है। किसी की कोई चीज़ खो जाती है तो वह विश्वासपात्र मित्र पर सन्देह करके उससे उस चीज़ के बाबत पूछने लगता है। अच्छे वंश में उत्पन्न लोग भी दूसरों का धन हड़प लेने की घात में रहने लगे हैं। शूद्र तपस्या करने लगे और कोई-कोई तो वृथा नियम करके और कोई बिना नियम के ही अध्ययन करते हैं। कोई-कोई शिष्य गुरु की सेवा नहीं करते और कुछ गुरु लोग शिष्यों के साथ मित्रता का व्यवहार करते हैं। बूढ़े पिता-माता पुत्र पर दबाव रखने में असमर्थ होकर दीन भाव से उससे भोजन

माँगते हैं। आचार्य लोग शिष्यों की रुचि के अनुसार प्रातःकाल उनसे कुशल पूछते और उनके कहने पर चलते हैं। समुद्र के समान गम्भीर, विद्वानों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्य खेती आदि करने लगे हैं। मूर्ख लोग श्राद्ध में भोजन करते हैं। सास-ससुर के सामने बहू नौकरों पर हुकूमत करती और गर्व के साथ अपने स्वामी को बुलाकर उससे बातचीत करती है। पिता बड़े यत्न से पुत्र को प्रसन्न रखता है। अनेक लोग तो क्रोध से पुत्रों को धन बाँटकर स्वयं कष्ट भोगते हैं। किसी का धन राजा या चोरों द्वारा हरे जाने अथवा आग से जल जाने पर उसके भाई-बन्धु उससे द्वेष करके उसकी हँसी उड़ाते हैं। सारांश यह कि दानवों के वंश में सब के सब कृतघ्न, नास्तिक, पापी, गुरु की स्त्री हरनेवाले, अभक्ष्यभोजी, नियमहीन और श्रीभ्रष्ट हो गये हैं।

हे देवेन्द्र, दानवों के इस प्रकार दुराचारी हो जाने के कारण अब मैं उनके पास नहीं
८० रहूँगी। इसी से तुम्हारे पास आई हूँ। तुम मेरी संवर्धना करो; इससे सब देवता भी मेरा सम्मान करेंगे। मैं जहाँ रहती हूँ वहीं मेरी प्रिय सखी जया, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, सन्नति और क्षमा, ये आठ देवियाँ भी रहती हैं। जया सब से श्रेष्ठ है। हम सब इस समय असुरों का त्याग करके तुम्हारे पास आई हैं। अब हम धर्मपरायण देवताओं के पास रहेंगी।

लक्ष्मी के यों कहने पर देवर्षि नारद और इन्द्र ने उनको प्रसन्न करने के लिए बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उसी समय शीतल सुगन्धित पवन देवताओं के घरों में मन्द-मन्द चलने लगा। सब देवता लक्ष्मी सहित इन्द्र को बैठे हुए देखने की लालसा से पवित्र स्थानों में बैठ गये। अब हरे रङ्ग के घोड़े जुते हुए रथ पर सवार होकर इन्द्र, लक्ष्मी और अपने प्रिय मित्र महर्षि नारद के साथ, अपनी सभा को गये। वहाँ देवताओं ने उनका बड़ा सम्मान किया। तब नारद ने इन्द्र के मन का
९० भाव समझकर, लक्ष्मी के सम्मानार्थ, महर्षियों समेत उनसे स्वागत-प्रश्न किया। अब स्वर्ग से अमृत की वर्षा होने लगी। सब नगाड़े अपने-आप बजने लगे। दिशाएँ प्रसन्न और शोभित हो उठीं। अन्न पैदा करने के लिए बादल ठीक समय पर बरसने लगे। अब कोई धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होता। पृथिवी सब रत्नों की खानि हो गई। सर्वत्र वेद की ध्वनि होने लगी। सब मनुष्य पुण्यात्मा, मनस्वी और सदाचारी हो गये। देवता, किन्नर, यक्ष, राक्षस और मनुष्य समृद्धिशाली तथा उदार हो गये। हवा चलने पर वृक्षों से, फलों की कौन कहे, फूल भी अकाल में नहीं गिरते। सब गायें दूध देनेवाली और कामधेनु हो गईं। कोई किसी को कड़वी बात नहीं कहता।

हे धर्मराज, इन्द्र आदि देवता इस प्रकार लक्ष्मी का सम्मान करने लगे। जो ब्राह्मणों की सभा में जाकर इसका पाठ करते हैं उनके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और उन्हें लक्ष्मी प्राप्त होती है। तुमने उन्नति और अवनति के विषय में जो पूछा था उसके उदाहरण-स्वरूप मैंने यह
९६ इतिहास कहा है। तुम चित्त को स्थिर करके इसके मर्म को समझो।

दो सौ उन्तीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को वैराग्य का माहात्म्य बतलाते हुए जैगीषव्य और देवल का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! मनुष्य कैसे चरित्र, आचार, विद्या और पराक्रम के प्रभाव से ब्रह्मपद पा सकता है ?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, गोत्र-धर्मपरायण मिताहारी जितेन्द्रिय मनुष्य ही माया से रहित ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है। मैं इस सम्बन्ध में जैगीषव्य और देवल का संवाद सुनाता हूँ। एक बार महर्षि असित देवल ने हर्ष-क्रोध से रहित भगवान् जैगीषव्य से पूछा—महर्षि, आप प्रशंसा करने से प्रसन्न और निन्दा करने से कुपित नहीं होते। मैं जानना चाहता हूँ कि आपकी यह बुद्धि कैसी है। यह आपको कहाँ से मिली और इसका क्या फल है ?

यों पूछे जाने पर महर्षि जैगीषव्य ने असन्दिग्ध, पवित्र और सार्थक वचनों का कहना आरम्भ किया—महर्षि, पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्यों ने जिस बुद्धि के प्रभाव से परम गति और शान्ति प्राप्त की है मैं उस बुद्धि का वर्णन करता हूँ। जो स्तुति और निन्दा को समान समझते हैं वे दूसरों की की हुई स्तुति या निन्दा किसी से नहीं कहते। ज्ञानी मनुष्य शत्रु द्वारा निन्दित होने पर भी उसकी निन्दा नहीं करते और मारने के लिए उद्यत मनुष्य को भी मारने की इच्छा नहीं करते; बीती हुई और आनेवाली बातों का सोच न करके वर्तमान कामों को करते हैं। कभी प्रतिज्ञा नहीं करते। पूजा का समय उपस्थित होने पर, व्रत-निरत होकर, यथासाध्य धन १० ख़र्च करते हैं। हमेशा जितक्रोध और जितेन्द्रिय रहते हैं। मन, वचन और शरीर से न तो किसी का अपकार करते हैं और न किसी की समृद्धि देखकर जलते हैं। जो लोग किसी की निन्दा या प्रशंसा नहीं करते वे अपनी निन्दा या प्रशंसा की भी परवा नहीं करते। सब प्राणियों के हितैषी शान्तबुद्धि मनुष्य ही हर्ष, क्रोध और अपकार को छोड़कर जीव को शरीर से भिन्न समझते और बड़े सुख से विचरते हैं। जिसका कोई शत्रु या मित्र नहीं है और जो स्वयं भी किसी का मित्र या शत्रु नहीं है वह बड़े सुख से रहता है। जो धर्मज्ञ होकर धर्म के अनुसार चलता है वह हमेशा सन्तुष्ट रहता है और जो धर्म के मार्ग को त्याग देता है वह दुःख भोगता है। मैंने धर्म के मार्ग का अवलम्बन कर लिया है तो फिर मैं क्यों दूसरों से निन्दित होकर निन्दा करनेवालों से ईर्ष्या करूँ और प्रशंसा करनेवालों पर प्रसन्न होऊँ ? जो मनुष्य जिससे जिस वस्तु के पाने की इच्छा करता है उसे उससे वही प्राप्त होती है। मुझे उस मनुष्य से कोई ईर्ष्या नहीं है। प्रशंसा या निन्दा से न तो मेरा कुछ लाभ है न हानि ही। तत्त्वदर्शी लोग अपमानित होकर, अपमान को २० अमृत के समान समझकर, सन्तुष्ट होते और सम्मानित होने पर सम्मान को विष-तुल्य जानकर घबरा उठते हैं। जिन महात्माओं में एक भी दोष नहीं होता वे अपमानित होने पर भी सुखी

रहते हैं; किन्तु जो मनुष्य उनका अनादर करते हैं वे बेचैन हो जाते हैं। जो महात्मा परम गति प्राप्त करना चाहते हैं उनकी इच्छा इन्हीं नियमों का पालन करने से पूर्ण होती है। जितेन्द्रिय मनुष्य निष्काम होकर, शास्त्र के अनुसार, सब यज्ञों का अनुष्ठान करके ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं।
२५ देवता, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, कोई भी उस पद को नहीं प्राप्त कर सकता।

दो सौ तीस अध्याय

उग्रसेन के पूछने पर श्रीकृष्ण द्वारा नारद के माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! संसार में कौन मनुष्य सबका प्रिय, सब गुणों से युक्त और सब प्राणियों का पूज्य है?

भीष्म ने कहा कि महाराज, श्रीकृष्ण ने उग्रसेन से नारद के विषय में जो कहा था वही मैं तुमसे कहता हूँ। एक बार उग्रसेन ने श्रीकृष्ण से कहा—कृष्णचन्द्र, देवर्षि नारद के गुणों की प्रशंसा सब लोग करते हैं इसलिए उनके गुणवान् होने में कोई सन्देह नहीं है। अतएव तुम उनके गुणों का वर्णन करो। तब श्रीकृष्ण ने कहा—भगवन्, देवर्षि नारद के गुणों को संक्षेप में कहता हूँ। वे सच्चरित्र और विद्वान् होने पर भी अपनी सच्चरित्रता और विद्वत्ता का अभिमान नहीं करते। क्रोध, चपलता, भय और आलस्य उनको छू तक नहीं गया। वे सबके पूज्य हैं। उन्होंने काम या लोभ के वश होकर कभी अपने वचन को मिथ्या नहीं किया। वे अध्यात्म-विद्या के विद्वान्, शक्तिमान्, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, सरल, सत्यवादी, तेजस्वी, यशस्वी, बुद्धिमान्, विनीत, ज्ञानवान्,
१० वयोवृद्ध, तपोवृद्ध, सुशील, वाग्मी, मृदुभाषी, शुद्ध भोजन करनेवाले, पवित्र और ईर्ष्याहीन हैं। वे हमेशा सबका कल्याण करते रहते हैं। वे सर्वथा निष्पाप हैं। वेद का श्रवण और उच्चारण करके उन्होंने सब विषयों को जीत लिया है। उनको न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय। वे सबको समान समझते और सबके पसन्द की बात कहते हैं। वे अनेक शास्त्रों के जानकार, विचित्र बातें कहनेवाले और कामना, शठता, दीनता, क्रोध तथा लोभ से हीन हैं। उन्होंने अर्थ और काम के निमित्त न तो कभी किसी से विवाद किया और न यत्न ही। वे सर्वथा निर्दोष हैं। वे दृढ़ भक्त, अनिन्द्य और दयालु हैं। वे संसर्गहीन होने पर भी संसर्गी के समान देख पड़ते हैं। वे सबके चित्त की वृत्ति को देखते हैं; किन्तु कभी किसी की निन्दा या प्रशंसा नहीं करते। वे कभी किसी
२० शास्त्र से ईर्ष्या नहीं करते। उन्होंने बड़े परिश्रम से यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो भी वे समाधि से लुप्त नहीं हुए। वे न तो ख़ाली रहते हैं और न असावधानी करते हैं। लोग उन्हें अच्छे कामों में नियुक्त करते हैं। वे कभी किसी की गुप्त बात प्रकट नहीं करते। वे धन के मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर दुखी नहीं होते। इसी से सब जगह सब लोग उनका
२४ सम्मान करते हैं। सब गुणों से युक्त ऐसा पुरुष किसकी भलाई न करेगा?

दो सौ इकतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से शुकदेव के प्रति वेदव्यास के उपदेश का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! युग-भेद से सब प्राणियों का आदि, अन्त, ध्यान, कर्म, काल और आयु, ये सब किस प्रकार के होते हैं तथा प्राणियों की सद्गति, दुर्गति, उत्पत्ति और प्रलय किसके द्वारा होता है? यह सब जानने की मेरी इच्छा है। अतएव आप हम लोगों पर कृपा करके बतलाइए। महर्षि भृगु और भरद्वाज का संवाद सुनने से मेरी बुद्धि परम धर्मिष्ठ हो गई है। मुझे योग-धर्म में निष्ठा भी है। इसी से यह वृत्तान्त फिर सुनाने के लिए आपसे निवेदन कर रहा हूँ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेव से जो कहा था वही इतिहास तुमको सुनाता हूँ। सम्पूर्ण वेद, वेदाङ्ग और उपनिषदों को पढ़कर—धर्म में निपुणता प्राप्त करके—जन्मभर ब्रह्मचर्य रखने की इच्छा से शुकदेव ने धर्मार्थ का संशय नष्ट कर देनेवाले वेद-व्यास से पूछा—पिताजी, प्राणियों का कर्ता कौन है? काल के परिमाण द्वारा क्या निश्चय किया जाता है और ब्राह्मणों का क्या कर्तव्य है?

तब सब धर्मों के विद्वान्, भूत-भविष्य के जानकार, वेदव्यास ने कहा—बेटा! अनादि, १०
अनन्त, अजन्मा, ज्योति-स्वरूप, अजर, अमर, अव्यय, तर्क और ज्ञान से परे परब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है। महर्षियों ने पन्द्रह निमेष की काष्ठा, तीस काष्ठाओं की कला, तीन काष्ठाओं और तीस कलाओं का मुहूर्त, तीस मुहूर्त का रात-दिन, तीस रात-दिन का एक महीना और बारह महीनों का एक वर्ष बतलाया है। पण्डितों ने वर्ष को भी उत्तरायण और दक्षिणायन दो भागों में विभक्त किया है। सूर्य की गति से मनुष्यों के दिन-रात बनते हैं। मनुष्य दिन में अपना-अपना काम करते और रात में सोते हैं। मनुष्यों के एक महीने में पितरों का एक दिन-रात होता है। उसमें शुक्लपक्ष उनका दिन और कृष्णपक्ष उनकी रात है। मनुष्य के एक वर्ष में देवताओं का एक दिन-रात होता है। उसमें उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात है। मनुष्यों के जो दिन-रात मैंने बतलाये हैं उन्हीं के हिसाब से ब्रह्मा के दिन-रात और वर्ष बतलाता हूँ। देवताओं के चार हज़ार आठ सौ वर्ष तक सत्य, तीन हज़ार छः सौ वर्ष तक त्रेता, दो हज़ार चार सौ वर्ष तक द्वापर और एक हज़ार दो सौ वर्ष का कलियुग होता है। यही चतुर्युग-रूप काल हमेशा मनुष्यों को आया करता है। यही काल ब्रह्मज्ञ मनुष्यों का परब्रह्म-स्वरूप है। सत्ययुग में २१
धर्म और सत्य के चारों चरण रहते हैं। उस युग में कोई मनुष्य किसी प्रकार का अधर्म नहीं करता। त्रेता आदि युगों में क्रमशः धर्म का एक-एक चरण नष्ट होता जाता है। इसलिए उन युगों में चोरी, मिथ्या और हिंसा आदि के द्वारा अधर्म की वृद्धि होती रहती है। सत्ययुग में मनुष्य नीरोग और सिद्धकाम रहकर चार सौ वर्ष तक जीते हैं। त्रेता में तीन सौ, द्वापर

में दो सौ और कलियुग में सौ वर्ष की परमायु होती है। इन युगों में वेद-विहित धर्म, कर्म का फल, और वेद का फल क्षीण हो जाता है। क्रमशः युग का ह्रास होने के कारण सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि में मनुष्यों के भिन्न-भिन्न धर्म हैं। सत्ययुग में तपस्या, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान श्रेष्ठ धर्म है। इस प्रकार देवताओं के बारह हज़ार वर्ष में चारों युग होते हैं। हज़ार युग बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन और फिर हज़ार युग बीतने पर एक रात होती है। ब्रह्मा के दिन में जीवों की सृष्टि और रात में प्रलय होता है। प्रलय के प्रारम्भ में ईश्वर इस संसार को अपने में लीन करके योगनिद्रा में सो जाता है और
३० प्रलय के अन्त में जागता है। काल के मर्मज्ञ पण्डितों ने इस प्रकार देवताओं के एक हज़ार युग में ब्रह्मा का एक दिन और फिर दूसरे एक हज़ार युग में एक रात बतलाई है। निद्रा का त्याग करके वह अक्षय ब्रह्म-स्वरूप ईश्वर अहङ्कार की सृष्टि करता है। उसी अहङ्कार से
३२ पञ्चभूतात्मक मन उत्पन्न होता है।

दो सौ बत्तीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को सृष्टि की उत्पत्ति बतलाना

व्यासजी कहते हैं—बेटा, तेजोमय ब्रह्म ही सबका बीज-स्वरूप है। उसी से सारा संसार उत्पन्न हुआ है। उस परमात्मा ने किसी की सहायता के बिना ही पहले जड़-स्वरूप माया और चेतन-स्वरूप पुरुष को उत्पन्न किया। उसके बाद पुरुष ने, माया के द्वारा, संसार की सृष्टि की। माया से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार और अहङ्कार से आकाश आदि पञ्च-भूतात्मक मन की उत्पत्ति हुई। दूरगमनशील बहुधागामी और प्रार्थना तथा संशयात्मक मन ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर सृष्टि करने लगा। पहले मन से शब्दगुणवाले आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश से अति पवित्र बलवान् स्पर्शगुणवाले वायु की, वायु से प्रकाशमान रूपगुण-वाले अग्नि की, अग्नि से रसगुणवाले जल की और जल से गन्धगुणवाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन पाँच महाभूतों में जो जिससे उत्पन्न हुआ उसने उसका गुण भी ग्रहण कर लिया। आकाश किसी महाभूत से उत्पन्न नहीं हुआ इसलिए उसमें अपने गुण (शब्द) के सिवा दूसरा कोई गुण नहीं है। वायु में शब्द और स्पर्श; अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस; पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँचों गुण हैं। कोई-कोई मनुष्य अपनी मूर्खता के कारण जल और वायु में गन्ध को बतलाकर उसे इन दोनों का भी गुण कहते हैं, किन्तु उनका कहना युक्ति के विरुद्ध है; क्योंकि गन्ध पृथ्वी का ही गुण है पृथ्वी में मिलने से ही जल और वायु गन्धयुक्त होते हैं—गन्ध उनका गुण नहीं है।

ये महत्तत्त्व आदि सप्त पदार्थ अलग-अलग रहने से सृष्टि नहीं कर सकते। इन सबके १०
मिलने से ही हाथ-पैर आदि से युक्त स्थूल शरीर बनता है। यह स्थूल शरीर घर है और उस घर में निवास करनेवाले का नाम पुरुष है। उसके बाद पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और मन, इन सोलह पदार्थों से बना हुआ लिङ्ग-शरीर—अपने कर्मों के साथ—स्थूल शरीर में प्रवेश करता है। सब प्राणियों के सृष्टिकर्त्ता, तप करने के निमित्त, माया आदि को लेकर लिङ्ग-शरीर में प्रविष्ट हुए। संसार उन्हें प्रजापति कहता है। उन्होंने पहले स्थावर-जङ्गम प्राणियों की सृष्टि करके फिर देवता, ऋषि, पितर, नदी, लोक, समुद्र, दिशाएँ, पर्वत, वृक्ष, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सर्प और नित्य-अनित्य सब पदार्थों की सृष्टि की। आदि-सृष्टि के समय जिस पदार्थ ने जिन गुणों को ग्रहण कर लिया वह फिर उत्पन्न होने के समय बार-बार उन्हीं गुणों का अधिकारी होता है। इस जन्म में मनुष्य का मन हिंसा-अहिंसा, मृदुता-क्रूरता, धर्म-अधर्म और सच-झूठ आदि जिन विषयों में लगा रहता है उन्हीं विषयों में वह दूसरे जन्म में भी लग जाता है। परमात्मा ने ही आकाश आदि पञ्चभूत, रूप आदि इन्द्रियों के विषय और सब पदार्थों के अनेक प्रकार के स्वरूप उत्पन्न करके भोग्य और भोक्ता का भाव निर्दिष्ट कर दिया है। कोई उद्योग को, कोई भाग्य को और कोई स्वभाव को कर्मों का कारण बतलाता है। कोई तो इन तीनों में किसी एक की प्रधानता न मानकर इनकी एकता से ही सब कामों का सिद्ध होना बतलाता है। कोई उद्योग को कारण कहते हैं और कोई उसको कारण नहीं मानते; कोई भाग्य को, कोई भाग्य और उद्योग दोनों को, और कोई इन दोनों को भी कारण न मानकर अनेक प्रकार के विवाद करते हैं। किन्तु तत्त्वज्ञ लोग परमब्रह्म को ही सब कर्मों का कारण बतलाते हैं। २१

योग से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मन और बाह्य इन्द्रिय का निग्रह करना ही योग का मूल है। मनुष्य शुद्धचित्त होकर योगबल से ही सब कामनाएँ पूरी कर सकता है। संसार की उत्पत्ति करनेवाले जगदीश्वर की प्राप्ति योग से ही होती है। जिस मनुष्य में योग-बल है वही परब्रह्म को प्राप्त होता है, वही सब का प्रभु है। पूर्व जन्म में पढ़े हुए वेद का, योग-बल से ही, महर्षियों ने स्मरण किया है। सृष्टि के आदि में जगदीश्वर ने अनादि अनन्त वाङ्मयी वेदरूपा विद्या को उत्पन्न करके उसी में ऋषियों के नाम, देवताओं की उत्पत्ति, मनुष्यों के अनेक कर्मों के मन्त्र और मन्त्रों के नाम बतलाये हैं। वेदों में अध्ययन, गार्हस्थ्य, तपस्या (वानप्रस्थ), सन्ध्योपासन आदि नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, यज्ञ, जलाशय आदि की प्रतिष्ठा, ध्यान, धारणा और समाधि, ये दस मोक्ष के उपाय बतलाये गये हैं। वेद और वेदान्त में वेदज्ञ पण्डितों ने जिसे परब्रह्म निरूपित किया है वह परब्रह्म इन्हीं दस उपायों से प्रत्यक्ष हो सकता है। देहा-भिमानी जीव कर्मों के द्वारा सब [illegible] करता है, किन्तु तत्त्वज्ञानी पुरुष सब-

पूर्वक मोक्ष प्राप्त कर सकता है। शब्द-ब्रह्म और परब्रह्म दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है। जिसको शब्द-ब्रह्म का ज्ञान भली भाँति हो जाता है वह आसानी से परब्रह्म का साक्षात्कार कर
३० सकता है। ब्राह्मणों को ब्रह्म की उपासना, क्षत्रियों को देवताओं की तृप्ति के लिए पशु-हिंसा, वैश्यों को देवताओं और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए अन्न का उपार्जन करना और शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करनी चाहिए। सत्ययुग में यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं थी। त्रेता में यज्ञ का विधान हुआ और द्वापर में उसका नाश होने लगा। कलियुग में यज्ञ का नाम-निशान भी न रह जायगा। सत्ययुग में मनुष्य ऋक्, साम और यजुर्वेद में बतलाये हुए यज्ञों को त्याग कर केवल योग-धर्म का आश्रय लेते थे। त्रेतायुग में महापराक्रमी पुरुषों ने जन्म लेकर स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का शासन किया। उस समय सब मनुष्य वेद पढ़ते, यज्ञ करते और धर्म-शास्त्र का मनन करते थे। द्वापर युग में मनुष्यों की आयु कम होने लगी, इसी से वेदाध्ययन आदि कर्मों में कमी हो गई। कलियुग में सम्पूर्ण वेद कहीं-कहीं देख पड़ेंगे, यज्ञ का लोप हो जायगा और सब मनुष्य अधर्म करने लगेंगे। सत्ययुग में जिस प्रकार का चतुष्पाद धर्म मौजूद था वह कलियुग में किसी-किसी जितेन्द्रिय तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण में देख पड़ेगा। वेदज्ञ लोग अपने धर्म का पालन करते हुए भी—युग-धर्म के कारण—इच्छापूर्वक यज्ञ, व्रत और तीर्थ-स्नान आदि करते हैं। जैसे वर्षा ऋतु में पानी बरसने से अनेक प्रकार के नये-नये स्थावर-जङ्गम जीव पैदा हो जाते हैं वैसे ही प्रत्येक युग में नये-नये धर्म उत्पन्न होते हैं। जैसे शीत आदि ऋतुएँ एक बार बीतकर जब फिर आने लगती हैं तब उनके विशेष चिह्न देख पड़ते हैं वैसे ही प्रलय के बाद जब फिर सृष्टि होनेवाली होती है तब ब्रह्मा आदि का पूर्ववत् अधिकार
४० हो जाता है। मैंने पहले प्रजा की सृष्टि और प्रलय करनेवाले, जन्म-मरण-रहित, जिस विविधरूप काल का वर्णन किया है उसी काल के प्रभाव से प्रजा की उत्पत्ति और प्रलय होता है। संसार में जितने जीव सुख-दुःख भोगते हुए स्वभाव के अनुसार कर्म करते हैं उनका आश्रय और पालन-कर्त्ता काल ही है। मैंने तुमसे सृष्टि, काल, यज्ञ आदि, वेद, कर्त्ता, कार्य
४३ और क्रिया के फल का विस्तार से वर्णन कर दिया।

दो सौ तेंतीस अध्याय

संसार के प्रलय का वर्णन

व्यासजी कहते हैं—बेटा, भगवान् विश्वयोनि सृष्टि के अन्त (प्रलय) में जिस प्रकार संसार को सूक्ष्म करके अपनी आत्मा में लीन कर लेते हैं उसका वृत्तान्त सुनो।

प्रलय के समय सूर्य और अग्नि अपने तेज से सारे संसार को भस्म कर देते हैं। पृथ्वी के स्थावर-चराचर सब प्राणी उसी में लीन हो जाते हैं। पृथ्वी पर मेघ और घास-फूस कुछ

नहीं रह जाता; वह कछुए की पीठ की तरह दीखने लगती है। जल जब पृथ्वी के गुण को ग्रहण कर लेता है तब वह कारण रूप में परिवर्तित हो जाती है। उस समय जल गम्भीर शब्द करता हुआ बड़े वेग से चारों ओर उमड़ पड़ता है। अब अग्नि जल के गुण को ग्रहण कर लेता है, इससे जल उसमें लीन हो जाता है। उसके बाद अग्नि की सब शिखाएँ सूर्य-मण्डल में लीन हो जाती हैं और आकाश ज्वालाओं से परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हो उठता है। तब वायु अग्नि के गुण रूप को ग्रहण कर लेता है। ऐसा होते ही अग्नि शान्त हो जाता है और वायु अपनी उत्पत्ति के स्थान आकाश में व्याप्त होकर वेग से चारों ओर दौड़ने लगता है। १०
तब आकाश वायु के गुण स्पर्श को ले लेता है और वायु शान्त हो जाता है। आकाश रूप-स्पर्श-गन्ध आदि गुणों से शून्य होकर अव्यक्त शब्द के समान हो जाता है। अव्यक्त शब्द के समान स्थित आकाश के गुण शब्द को सूक्ष्मस्वरूप मन ग्रास कर लेता है। इसी का नाम स्थूल ब्रह्माण्ड का प्रलय है।

उसके बाद चन्द्रमा मन को ग्रस लेता है। मन के साथ ज्ञान वैराग्य आदि उसके सब गुण चन्द्रमा में लीन हो जाते हैं। चन्द्रमा में लीन हुआ मन सङ्कल्प के अधीन हो जाता है। तब ब्रह्म में अभेद-ज्ञान-स्वरूप सङ्कल्प चन्द्रमा में लीन हुए मन को, श्रेष्ठ ज्ञान सङ्कल्प को, काल उस श्रेष्ठ ज्ञान और बलरूप अपनी शक्ति को तथा विद्या उस काल को ग्रहण कर लेती है। उसके बाद वह विद्या अव्यक्त शब्द में मिल जाती है और अव्यक्त शब्द आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है। आत्मा ही नित्य, अव्यक्त परमब्रह्म है। इस प्रकार आकाश आदि सब महाभूत पर-ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। बेटा, मैंने तुमको विद्वान् और समझदार देखकर योगियों के जानने-योग्य ब्रह्म और प्रकृति तथा दो हज़ार युग पर्यन्त ब्रह्मा के दिन-रात का विषय बतला दिया। १९

दो सौ चौंतीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को ब्राह्मणों का धर्म बतलाना

व्यासजी कहते हैं—बेटा, जगदीश्वर ने जिस प्रकार महाभूतों की सृष्टि की है उसे मैं कह चुका। अब ब्राह्मणों के कर्तव्य कर्म का वर्णन करता हूँ। ब्राह्मण का पिता उसके जात-कर्म से लेकर समावर्तन पर्यन्त सब संस्कार करे। ब्राह्मण वेद-पारदर्शी आचार्य से वेदों का पढ़ना समाप्त करके गुरु की सेवा करता हुआ उनके ऋण से उरिन होवे। उसके बाद गुरु की आज्ञा से वह या तो गृहस्थाश्रम में जावे और वहाँ विवाह करके पुत्र उत्पन्न करे तथा जन्म भर इसी आश्रम में रहे; या ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता हुआ वानप्रस्थ अथवा संन्यास धर्म का अवलम्बन करे। गृहस्थ आश्रम सब धर्मों का मूल है। गृहस्थ मनुष्य दम गुण से युक्त और

काम-क्रोध आदि से रहित होने पर आसानी से सब सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मण पुत्रवान्, वेद-पारदर्शी और याज्ञिक होकर पितरों, ऋषियों और देवताओं के ऋण से उरिन होवे; उसके बाद अन्यान्य आश्रमों में जावे। उसे जो उत्तम स्थान जान पड़े वहाँ रहे। यशस्वी होने का यत्न हमेशा करता रहे। कठिन तप, विद्या की पारदर्शिता, यज्ञ और दान के द्वारा ब्राह्मणों की कीर्ति बढ़ती है। जिस ब्राह्मण की कीर्ति जितने दिनों तक संसार में रहती है वह उतने ही समय तक पुण्यात्माओं के लोक में निवास करता है। यजन, याजन, अध्ययन और अध्यापन ब्राह्मणों के कर्म हैं। वृथा दान करना और वृथा दान लेना उन्हें उचित नहीं। यजमान से धन मिलने पर उस धन से यज्ञ कर दे, शिष्य से धन मिलने पर उसे दान कर डाले और कन्यापक्ष से मिला हुआ धन दूसरों को बाँट दे—स्वयं ही उसका उपयोग न कर ले। गृहस्थ ब्राह्मणों को देवताओं, पितरों, ऋषियों और गुरुजनों की सेवा करनी चाहिए। इन सब कामों के करने के लिए दान लेने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। स्वयं क्लेश सहकर भी वृद्ध, आतुर, भूखे और शत्रु द्वारा सताये हुए मनुष्यों को भोजन देना चाहिए। योग्य पुरुषों के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है। सज्जन यदि उच्चैःश्रवा घोड़ा (बढ़िया चीज़) भी लेना चाहे तो, जिस तरह हो सके, उसे भी देने की चेष्टा करनी चाहिए। महाव्रतधारी राजा सत्यसन्ध ने विनीत भाव से अपना जीवन दान करके ब्राह्मण की रक्षा की थी। रन्तिदेव ने महात्मा वसिष्ठ को शीतोष्ण जल दिया था। अत्रि के पुत्र बुद्धिमान् इन्द्रदमन ने सत्पात्र को बहुत सा दान किया था। उशीनर के पुत्र शिबि ने ब्राह्मण के लिए अपना अङ्ग और अपना पुत्र दे दिया था। काशीपति प्रतर्दन ने ब्राह्मण को अपनी आँखें दे दी थीं। देवावृध ने आठ सोने की तीलियों से युक्त श्रेष्ठ छत्र दिया था। अत्रि के पुत्र सांकृति ने अपने शिष्यों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया था। महाप्रतापी अम्बरीष ने ब्राह्मणों को ग्यारह अर्बुद गोदान, सावित्री ने ब्राह्मण को दो दिव्य कुण्डल, जनमेजय ने ब्राह्मण के लिए अपना शरीर, युवनाश्व ने ब्राह्मण को सब रत्नों सहित अपनी प्रियतमा पत्नी और बहुत सुन्दर निवास-स्थान दिया था। निमि ने ब्राह्मणों को अपना राज्य और जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने ब्राह्मणों को सारी पृथिवी दे दी थी। इन महात्माओं ने—इस लोक और स्वर्गलोक—दोनों लोकों में कीर्ति प्राप्त की थी। पानी न बरसने पर महर्षि वसिष्ठ ने, दूसरे प्रजापति के समान, प्रजा की रक्षा की थी। करन्धम के पुत्र राजा मरुत ने महर्षि अङ्गिरा को अपनी कन्या, बुद्धिमान् पञ्चालराज ब्रह्मदत्त ने ब्राह्मणों को महानिधि शङ्ख और राजा मित्रसह ने महर्षि वसिष्ठ को अपनी पत्नी (मदयन्ती) दे दी थी। राजर्षि सहस्रजित् ने ब्राह्मण के लिए अपना शरीर त्याग दिया था। शतद्युम्न ने मुद्गल को सोने का घर और शाल्व देश के राजा महाप्रतापी द्युतिमान् ने ऋचीक को अपना राज्य दान कर दिया था। राजर्षि लोमपाद ने अपनी कन्या शान्ता ऋष्यशृङ्ग को और मदिराश्व ने अपनी सुमध्यमा कन्या हिरण्यहस्त को

दी थी। महातेजस्वी राजा प्रसेनजित् न ब्राह्मणों को बछड़ों समेत एक लाख गायें देकर स्वर्ग-लोक प्राप्त किया था। ये और इनके सिवा अन्यान्य जितने जितेन्द्रिय राजा दान और तप करके स्वर्ग को गये हैं उनकी कीर्ति प्रलय-काल तक संसार में रहेगी। ३८

दो सौ पैंतीस अध्याय

ब्राह्मण का धर्म बतलाते हुए ज्ञान की प्रशंसा करना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! चारों वेदों (ऋक्, साम, यजु और अथर्व) तथा शिक्षा, कल्प आदि वेदाङ्ग को ब्राह्मण अवश्य पढ़ें। वेदोक्त षट् कर्मों में ईश्वर नित्य स्थित रहता है। वेद-वेदाङ्ग के विद्वान् अध्यात्मकुशल सत्त्वगुणावलम्बी महात्मा ही परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकते हैं। ब्राह्मण इन्हीं धर्मों के अनुसार यज्ञ का अनुष्ठान करके अपना निर्वाह करें; पर दूसरों को कष्ट न पहुँचे। सज्जनों से ज्ञान सीखें, शास्त्र पढ़ें; शिष्ट, सत्त्वगुणी और अपने धर्म में अनुरक्त रहकर वेदोक्त षट् कर्म और पाँच प्रकार के यज्ञ करते रहें। धैर्यवान्, सावधान, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, आत्मतत्त्वज्ञ और हर्ष-क्रोधहीन ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता। दान, अध्ययन, यज्ञ, तपस्या, लज्जा, सरलता और दम गुण के द्वारा तेज की वृद्धि और पाप का नाश हो जाता है। बुद्धिमान् ब्राह्मण पापहीन, स्वल्पभोजी और जितेन्द्रिय होकर—काम-क्रोध को वश में करके—ब्रह्मपद पाने की इच्छा करे। हिंसा और कड़वी बातों को त्यागकर अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा तथा देवताओं को प्रणाम करना ब्राह्मणों का कर्तव्य है। जो ब्राह्मण शास्त्र का ज्ञान १०
प्राप्त करके ऐसे आचरण करता हुआ यज्ञ आदि करता है वह सिद्धि पा सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य पञ्चेन्द्रिय-रूप जल, क्रोध-रूप कीचड़ और लोभ-रूप तटवाली संसार-रूपी अथाह नदी को पार कर सकता है। मोहित करनेवाले काल को सदा समुद्यत देखते रहना चाहिए। स्वभाव-रूप स्रोत, वर्ष-रूप भँवर, मास-रूप तरंग, ऋतु-रूप वेग, पक्ष-रूप लता और तृण, निमेष और उन्मेष-रूप फेन, दिन-रात और अर्थ-रूप जल, काम-रूप ग्राह, वेद और यज्ञ-रूप नाव, धर्म-रूप द्वीप, सत्य वचन और मोक्ष-रूप तीर, अहिंसा-रूप वृक्ष, युग-रूप कुण्ड से युक्त ब्रह्म से उत्पन्न महाबलशाली काल-रूपी महानदी संसार को प्रवाहित करती है। काल ही सब प्राणियों को शान्त कर देता है। बुद्धिमान् लोग ज्ञानरूपी नाव द्वारा काल-रूपी महानदी को पार करते हैं; किन्तु बुद्धिहीन मनुष्य उसे पार नहीं कर सकते। ज्ञानी मनुष्य दूर से ही २०
सब विषयों के गुण-दोषों को देखता रहता है, इसलिए काल रूपी नदी का पार करना उसके लिए कठिन नहीं है। किन्तु चञ्चल स्वभाव का बुद्धिहीन कामी मनुष्य हमेशा सन्देह में पड़ा रहता है अतएव वह इस नदी को कैसे पार कर सकता है? यदि ज्ञान-रूपी नाव से विहीन पुरुष अपने दोषों को छिपाने की इच्छा से बड़े यत्न से कुछ ज्ञान प्राप्त करता है तो भी, कामी

होने के कारण, उसका ज्ञान काल-नदी में नाव का काम नहीं दे सकता। अतएव श्रेष्ठ ज्ञानी मनुष्य ही उसे पार करने का उद्योग करें। ब्रह्मज्ञ लोग ही काल-नदी को पार कर सकते हैं। मनुष्य शुद्ध कुल मे जन्म लेकर ईश्वर, जीव और मुक्ति इन तीन प्रकार के कर्मों में अनुरक्त होता है, अतएव बुद्धिमान् मनुष्य इन सन्देहों और सब कर्मों को त्यागकर ज्ञान के द्वारा काल-रूपी नदी को पार करने का उद्योग करे। संस्कारसम्पन्न, दम गुण से युक्त, संयतात्मा बुद्धिमान् मनुष्य दोनों लोकों में सिद्धि पा सकता है। गृहस्थ मनुष्य क्रोध और ईर्ष्या का त्याग करके—शम दम आदि गुणों से युक्त होकर पाँच प्रकार के नित्य यज्ञ करता हुआ—सबको भोजन कराकर भोजन करे। हिंसा का त्याग करके सज्जनों के धर्म का अनुष्ठान, शिष्टाचार का आश्रय और किसी को दुःख न देकर अपनी जीविका करे। वेद के मर्मज्ञ, सदाचारी, अपने धर्म में स्थित, क्रियावान्, धर्म-संकर-रहित, श्रद्धावान्, दानी, ईर्ष्याहीन, धर्म-अधर्म के ज्ञाता ज्ञानी मनुष्य सब कठिनाइयों को पार कर सकते हैं। हर्ष-क्रोध से हीन, धैर्यवान्, सावधान, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा आत्मतत्त्वज्ञ ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता। धैर्य, सावधानी, जितेन्द्रियता आदि सद्व्यवहार का आश्रय ब्राह्मण ले। जो ब्राह्मण ज्ञानी होकर यज्ञ आदि कर्म करता है
३० वह सिद्धि पा सकता है। मूर्ख मनुष्य धर्म की इच्छा से अधर्म करता है और धर्म को अधर्म समझता है। जो मनुष्य धर्म की इच्छा से अधर्म और अधर्म की इच्छा से धर्म करता है वह बालक के समान इन दोनों को नहीं जानता, इसलिए बार बार जन्म-मरण होने के
३२ कारण उसे दुःख भोगना पड़ता है।

दो सौ छत्तीस अध्याय

ज्ञान के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति बतलाना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव, जो मनुष्य मोक्ष पाना चाहे उसे ज्ञानवान् होना चाहिए। समुद्र की ऊँची-ऊँची तरङ्गों में डूबता-उतराता हुआ मनुष्य जैसे नाव को पाकर पार हो सकता है वैसे ही ज्ञान को प्राप्त करके आसानी से संसार-सागर से छुटकारा मिल सकता है। जो ज्ञानी है वह ज्ञान के द्वारा अज्ञानियों को भी मोक्ष पाने का अधिकारी बना सकता है; किन्तु जिसने ज्ञान का उपार्जन नहीं किया वह न तो स्वयं मुक्ति पा सकता है और न दूसरों को मुक्त करा सकता है। जो मनुष्य ध्यान में मन लगाना चाहे उसे एकान्त स्थान में निवास करना, योग को सिद्ध करनेवाले कर्म करना, योग से प्रेम रखना, शरीर की रक्षा के लिए फल-मूल खाना, आसन आदि योग, वैराग्य, वेद-वाक्यों में विश्वास, इन्द्रियनिग्रह, भोजन का नियम, स्वाभाविक विषयों की प्रवृत्ति का संकोच, मन का संयम करना और दुःख का सदा विचार करना

चाहिए। जो मनुष्य श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना चाहे वह बुद्धि-बल से वाणी और मन का संयम करे। जो शान्ति प्राप्त करना चाहे वह ज्ञान के द्वारा आत्मसंयम करे। ब्राह्मण वेद का ज्ञाता हो अथवा न हो, याज्ञिक-धार्मिक हो या पापिष्ठ, सर्वश्रेष्ठ पुरुष हो या क्लेश पा रहा हो—किसी अवस्था में क्यों न हो—यदि वह सब विषयों का त्याग कर देगा तो निस्सन्देह जरा-मरण-स्वरूप समुद्र को पार कर सकेगा। योग का आरम्भ करने और आत्मा के शान्त होने की कौन कहे, योग करने की इच्छा होते ही सब कर्मों का त्याग कर देना चाहिए।

अब ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय सुनो। मनुष्य का शरीर रथ-स्वरूप है। यज्ञ आदि धर्म सारथी के बैठने का स्थान है; अकार्य से निवृत्ति उसका वरूथ है, वैराग्य और आसन आदि योग उस रथ के धुरे हैं। अपान उसका अक्ष है, प्राण जुवा है, प्रज्ञा उसका सार है, जीव उसका बन्धन, सावधानी उसके ढाल रखने का स्थान, चरित्र उसकी नेमि, दर्शन-स्पर्शन-घ्राण और श्रवण, ये चार उस रथ के घोड़े हैं; प्रज्ञा रथी के बैठने का स्थान, समस्त सिद्धान्त-शास्त्र चाबुक, ज्ञान १०
सारथी, आत्मा उसका अधिष्ठाता, श्रद्धा और इन्द्रियनिग्रह सहित त्याग उसका परम उपकारी सेवक और ध्यान उसका प्राप्य अर्थ है। यह रथ मुमुक्षु पुरुष द्वारा जोते जाने पर विशुद्ध मार्ग से ब्रह्मलोक में जा पहुँचता है।

जो मनुष्य शीघ्र ब्रह्मलोक प्राप्त करने की लालसा से इस रथ को जोतना चाहे उसके लिए एक सरल उपाय बतलाता हूँ। एक ही विषय में चित्त लगा देने को धारणा कहते हैं। धारणा के सात विषय हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, अहङ्कार और बुद्धि। संयमी मनुष्य क्रमशः ये सात प्रकार की धारणाएँ करके इनका फल प्राप्त करे। इन सात प्रकार की धारणाओं के सिवा दूर रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा तथा नासाग्र आदि पदार्थों में अनेक धारणाओं के विषय शास्त्र में बतलाये हैं। इसके सिवा नियम का पालन करते हुए अव्यक्त धारणा का फल भी संयमी पुरुष प्राप्त करें। शास्त्र में बताये हुए नियमों के अनुसार योग में प्रवृत्त पुरुष जिस प्रकार सिद्ध हो सकता है उसका वर्णन सुनो। आत्मा को स्थूल शरीर से भिन्न समझनेवाला योगी सबसे पहले अपने हृदय में, आकाशस्थित सूक्ष्म नीहार के समान, पदार्थ देखता है। उसके बाद वह धुएँ के रूपवाला स्वरूप हट जाता है और हृदय में जलरूप देख पड़ता है। जलरूप का अन्तर्धान होने पर अग्निरूप, उसके हटने पर सबका संहार करनेवाला वायुरूप देख पड़ता है और उसके भी सूक्ष्म हो जाने पर उसका रूप ऊन के धागे के समान देख पड़ने लगता है। उसके बाद योग की शुद्ध गति प्राप्त होने पर रूपहीन आकाश के समान प्रतीत २०
होने लगता है। इन सब रूपों के देख पड़ने के बाद योगियों को जिस प्रकार का फल मिलता है वह बतलाता हूँ। जो योगी पार्थिव ऐश्वर्य की सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह, प्रजापति ब्रह्मा के समान, अपने शरीर से सृष्टि कर सकता है। जिसको वायु सिद्ध हो जाता है वह हाथ,

पैर और अँगूठे से पृथ्वी को कँपा सकता है। आकाश-सिद्ध पुरुष आकाश के समान होकर आकाश में प्रकाशित हो सकता और अपने शरीर को अन्तर्धान कर सकता है। जल-सिद्ध पुरुष चाहे तो कुएँ-तालाब आदि को सोख सकता है। अग्नि-सिद्ध मनुष्य का रूप, तेज के प्रभाव से, दूसरों को नहीं दिखाई दे सकता; किन्तु अग्नि को शान्त करते ही उसका स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। योगी को अहङ्कार की सिद्धि होने पर पञ्चभूत उसके वश में हो जाते हैं। पञ्चभूत और अहङ्कार को जीत लेने पर सन्देह-रहित ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान के प्रभाव से बुद्धि-रूप आत्मा की समझ में अव्यक्त ब्रह्म-रूप आ जाता है। बुद्धि आदि सब पदार्थ कार्य में प्रवृत्त होते हैं, इसी से वे व्यक्त कहलाते हैं। अब अव्यक्त का वर्णन करने के पहले सांख्यशास्त्र में बतलाये हुए व्यक्त का विषय सुनाता हूँ। उसके बाद अव्यक्त का वर्णन विस्तार से करूँगा। सांख्य और योगशास्त्र में २५ तत्त्व बतलाये गये हैं। सब से पहले उन्हीं को बतलाता हूँ। जन्म, वृद्धि, जरा और मृत्यु, इन चार लक्षणों से युक्त महत्
३० आदि २३ तत्त्व व्यक्त कहलाते हैं और जन्म आदि चार लक्षणों से रहित मूल प्रकृति और पुरुष को अव्यक्त कहते हैं। वेद और अन्यान्य सिद्धान्त-शास्त्रों में जीवात्मा और परमात्मा, ये दो प्रकार के आत्मा बतलाये गये हैं। जीवात्मा महत् आदि तत्त्वरूप उपाधियुक्त, चतुर्वर्ग फल का चाहनेवाला और परमात्मा से उत्पन्न है। शास्त्र में उसे व्यक्त कहा है। जीवात्मा और परमात्मा, दोनों चेतन-स्वरूप होने पर भी जड़ शरीर आदि के साथ अभिन्न भाव से रहते हैं। मैंने जड़ और चेतन का यह विषय तुमसे कहा। विषयों में अनुरक्त मनुष्यों के लिए ही वेद में दो प्रकार के आत्मा बतलाये गये हैं। तत्त्वज्ञानी लोग परमात्मा का दर्शन करते हैं।

उपनिषदों के जानकार लोग विषयों से मन को हटा लेना परम आवश्यक बतलाते हैं। जो ममता और अहङ्कार से शून्य, सुख-दुःख आदि से रहित तथा निस्सन्देह है; जिसके शरीर में क्रोध और द्वेष का लेश नहीं है; जो कभी झूठ नहीं बोलता तथा जो अपमानित होने और पीटे जाने पर भी मित्रभाव दिखलाता है वही ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जो किसी का बुरा नहीं चेतता; जो शरीर, मन और वाणी से किसी को दुःख नहीं देता और जो सब प्राणियों को समान भाव से देखता है वही ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जो विषयों के पाने की इच्छा न करके आसानी से मिली हुई वस्तुओं द्वारा निर्वाह करता है; जो निर्लोभ, दुःखहीन तथा जितेन्द्रिय है; जो यज्ञ आदि काम्य कर्मों से अलग रहता है; जो कभी किसी का अपमान और किसी से अश्रद्धा नहीं करता वही मोक्ष पा सकता है। जो सबके साथ समान भाव रखता है; जो सोने और मिट्टी को बराबर समझता है; जो प्रिय-अप्रिय को देखकर हर्ष-विषाद नहीं करता; निन्दा और स्तुति को जो समान समझता है और जो इच्छाहीन, ब्रह्मचारी तथा अहिंसक है वही योगी मोक्ष पद पा सकता है। जिस प्रकार के योग से मुक्ति हो सकती है उसे सुनो। अणिमा आदि

योग के ऐश्वर्य को तुच्छ समझनेवाला ही मुक्ति का अधिकारी है। मैंने तत्त्व का बोध करानेवाली बुद्धि का वर्णन कर दिया। इस प्रकार जो शरीर, मन और वाणी से योग का अभ्यास करता है वह ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। ४१

दो सौ सैंतीस अध्याय

प्राणियों में न्यूनता-अधिकता दिखाते हुए आत्मज्ञान की प्रशंसा करना

व्यासजी ने कहा—बेटा! विवेकी मनुष्य संसार-रूपी समुद्र में डूबता और उतराता हुआ, पार होने के लिए, ज्ञानरूपी नाव का अवलम्बन करे।

शुकदेव ने पूछा—पिताजी, जिस ज्ञान के प्रभाव से जन्म और मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है वह कौन सा ज्ञान है? प्रवृत्ति धर्म से मुक्ति हो सकती है या निवृत्ति धर्म से?

व्यासजी ने कहा—बेटा, जो ईश्वर के अस्तित्व को न मानकर केवल प्रकृति को कारण बतलाता है और मुमुक्षु शिष्यों को इसी प्रकार का उपदेश देता है वह मूर्ख है। जो निश्चित रूप से प्रकृति को ही कारण मानते हैं उन्हें, ऋषियों का उपदेश सुनने से भी, तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता। जो प्रकृति को कारण मानकर निश्चिन्त हो गया है वह कभी अपना कल्याण नहीं कर सकता। अतएव अविवेकी मनुष्यों के मन में जो यह विचार दृढ़ हो गया है कि प्रकृति ही सबका कारण है वह विचार उनके विनाश का हेतु है। मैं बतलाता हूँ कि प्रकृति संसार का कारण क्यों नहीं है। यदि प्रकृति ही सब पदार्थों का कारण होती तो खेती आदि के लिए मनुष्यों को उद्योग करने की क्या आवश्यकता थी! सब चीज़ें अपने-आप पैदा हुआ करतीं। किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य खेती करते; उससे पैदा हुए अन्न का संग्रह करते; यान, आसन, रहने के लिए घर, खेलने के लिए स्थान बनवाते तथा रोग की औषधि आदि सब काम करते हैं। बुद्धि से ही सब काम सिद्ध होते हैं और कल्याण होता है। बुद्धि से ही राजा राज्य करता है। बुद्धि से ही सब प्राणियों का स्थूल-सूक्ष्म भेद जाना जाता है। विद्या के प्रभाव से सब पदार्थों की उत्पत्ति हुई है और विद्या में ही सब कुछ लीन हो जायगा। संसार १०
में जीव चार प्रकार के हैं—जरायुज, अण्डज, उद्भिज और स्वेदज। जङ्गम जीवों में चलने-फिरने की शक्ति होती है इसलिए वे स्थावर प्राणियों से श्रेष्ठ हैं। जङ्गम जीवों में दो पैरवाले और अनेक पैरोंवाले जीव भी होते हैं। किन्तु अनेक पैरोंवालों की अपेक्षा दो पैरोंवाले ही श्रेष्ठ हैं। दो पैरोंवाले भी दो प्रकार के हैं—मनुष्य और आकाशचारी आदि। मनुष्य अन्न आदि का सुख भोगते हैं, इसलिए वे आकाशचारी आदि से श्रेष्ठ हैं। मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—उत्तम और मध्यम। उत्तम मनुष्य शुद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं इससे वे मध्यम पुरुषों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मध्यम श्रेणी के मनुष्य जाति-धर्म का पालन करते हैं इसलिए वे भी नीच मनुष्यों

की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मध्यम मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—धर्मज्ञ और धर्म के अनभिज्ञ। धर्मज्ञ मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य को समझ सकता है इसलिए वह धर्म के अनभिज्ञ मनुष्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। धर्मज्ञ मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं—वेद के जाननेवाले और वेद के न जाननेवाले। वेद के जाननेवालों में भी दो भेद हैं—वेद के वक्ता और तदन्य। वेद के वक्ता वेद, वेद में बतलाई हुई क्रियाओं और यज्ञ की विधियों को जानते तथा उनका प्रचार करते हैं। वेद के वक्ता भी दो प्रकार के हैं—आत्मज्ञानी और आत्मज्ञानहीन। आत्मज्ञानी लोग जन्म-मरण
२० के कारण को समझते हैं इसलिए वे आत्मज्ञानहीन वक्ताओं से श्रेष्ठ हैं। जो प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दोनों धर्मों को जानता है वही सर्वज्ञ, सर्ववित्, त्यागी, सत्य-सङ्कल्प, पवित्र और ईश्वर है। देवताओं ने वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञानी मनुष्यों को ही ब्राह्मण कहा है। जो ब्राह्मण बाह्य और अन्तः-स्थित आत्मा का दर्शन करता है वही देवता है। उन्हीं मनुष्यों के द्वारा यह विश्व स्थित है। उनके माहात्म्य के समान श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। वे जन्म, मृत्यु और सब कर्मों को जीतकर
२५ सब प्राणियों के ईश्वर होते हैं।

दो सौ अड़तीस अध्याय

युगभेद से धर्म का भेद और धर्म के विषय में मनुष्यों का मतभेद बतलाना

व्यासजी कहते हैं—बेटा, ब्राह्मणों के जो कर्म बतला चुका हूँ उनको ब्राह्मण अवश्य करें। कर्म नित्य है या ज्ञान से उत्पन्न होने के कारण काम्य है, इस सन्देह को छोड़कर ज्ञान-वान् मनुष्य यदि यज्ञ आदि करे तो उसे अवश्य सिद्धि मिल सकती है। ज्ञान से उत्पन्न कर्मों को काम्य कहना ठीक नहीं; क्योंकि कर्म से ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिए कर्म को नित्य मानना पड़ेगा। अब मैं युक्ति और अनुभव से देखे हुए कर्मों का विषय बतलाता हूँ। कोई उद्योग को, कोई भाग्य को और कोई प्रकृति को कार्यों का कारण बतलाता है। कोई-कोई तो इन तीनों में प्रत्येक की प्रधानता न मानकर इन सबके एकत्र होने को ही सब कार्यों का कारण बतलाते हैं। कर्म-निरत मनुष्यों में कोई उद्योग को कारण मानता है, कोई उद्योग को कारण नहीं कहता, कोई उद्योग और भाग्य दोनों को कारण बतलाता तथा कोई विवाद करते हैं कि ये दोनों कारण नहीं हैं। किन्तु योगी लोग ब्रह्म को ही सब कार्यों का कारण मानते हैं।

सत्ययुग में सब मनुष्य तपस्वी, संशयहीन और सत्त्वगुणी थे। त्रेता, द्वापर और कलि-युग में मनुष्यों को सन्देह होने लगा। सत्ययुग में मनुष्य ऋक्, साम और यजुर्वेद में भेद नहीं मानते थे और राग-द्वेष को छोड़कर केवल तपस्या करते थे। तपस्वी धर्मात्मा संयमी मनुष्य तपोबल से अपने सब मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। सृष्टि करनेवाले परमात्मा की प्राप्ति

तपस्या से हो सकती है। जो पुरुष तपोबल से परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है वही सब प्राणियों का ईश्वर है। वेद (कर्मकाण्ड) में ब्रह्म को इन्द्र आदि देवता-रूप बतलाया गया है इसलिए १०
वेद (कर्मकाण्ड) के जानकार लोग ब्रह्म को नहीं जान सकते। वेद (ज्ञानकाण्ड) में ब्रह्म को व्यक्तरूप कहा है, इसी से वेद (ज्ञानकाण्ड) का विद्वान् मनुष्य ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। ब्राह्मणों के लिए जप, क्षत्रियों के लिए देवताओं की पूजा के निमित्त पशुहिंसा, वैश्यों को देवताओं और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए अन्न का उपार्जन करना और शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा यज्ञ कहा गया है। ब्राह्मण स्वाध्यायनिरत, कर्मनिष्ठ और सबका हित-चिन्तक हो तो वह दूसरे कर्म करे या न करे, उसे मैत्र ब्राह्मण कहते हैं। त्रेतायुग में वेद का अध्ययन, यज्ञ, वर्ण और आश्रम के नियम, ये सब विशेष रूप से प्रचलित थे। द्वापरयुग में मनुष्यों की आयु कम होने लगी इसलिए इन सब कर्मों का नाश होने लगा। कलियुग में वेद आदि कहीं तो कुछ रहेंगे और कहीं उनका बिलकुल लोप हो जायगा। कलियुग के अन्त में ये सब लुप्त हो जायँगे। कलियुग में मनुष्य अपने धर्म से भ्रष्ट और अधर्मी होंगे; गायें, भूमि तथा सब ओषधियाँ रसहीन हो जायँगी। जल में मधुरता न रहेगी। वेदाध्ययन का और वेद में बतलाये हुए आश्रमों के धर्मों का लोप हो जायगा। धर्मात्मा मनुष्य दुःख भोगेंगे और स्थावर-जङ्गम सभी में विकार हो जायगा। जैसे पानी बरसने से उद्भिज प्राणियों की वृद्धि होती है वैसे ही योग के यम-नियम आदि सब अङ्ग वेद का अध्ययन करनेवाले को पुष्ट करते हैं। मैंने आदि-अन्त से शून्य, अनेक रूपधारी, जिस काल का वर्णन पहले किया है उसी काल के द्वारा सब प्राणियों की सृष्टि और सबका संहार होता है। काल ही सब प्राणियों का नियन्ता और सबकी उत्पत्ति तथा विनाश का कारण है। जीवगण उसी काल के आश्रित रहकर प्रकृति में स्थित हैं। यह मैंने सृष्टि, काल, धैर्य, वेद, कर्ता, कार्य और क्रिया का फल विस्तार से कहा। २१

दो सौ उन्तालीस अध्याय

ब्रह्मज्ञान और उसके साधन बतलाना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज! महर्षि व्यास के वचनों को सुनकर, उनकी प्रशंसा करके, मोक्ष-धर्म पूछने के लिए उत्सुक शुकदेव ने कहा—पिताजी! प्रज्ञावान्, याज्ञिक, असूयाहीन, श्रोत्रिय लोग प्रत्यक्ष और अनुमान से अज्ञात ब्रह्म को किस प्रकार प्राप्त करते हैं? तप, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग, ज्ञान, आत्म-अनात्म का विचार या अष्टाङ्ग योग, किस उपाय से ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है? मन और इन्द्रियों की एकाग्रता किस उपाय से हो सकती है? यह सब मुझे बतलाइए।

व्यासजी ने कहा—बेटा! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और सर्वत्याग के सिवा और किसी उपाय से सिद्धि नहीं मिल सकती। परमात्मा ने पृथिवी आदि महाभूतों को उत्पन्न करके उन

सबको प्राणियों के शरीर में भर दिया है। मनुष्य उन महाभूतों को आत्मा से अलग नहीं समझते। पृथिवी से प्राणियों के शरीर, जल से स्नेह, अग्नि से आँखें, वायु से प्राण और अपान बने हैं। उनके कान आकाश तत्त्व के स्वरूप हैं। भोग की इच्छा से प्राणियों के पैरों में विष्णु, हाथों में इन्द्र, पेट में अग्नि, कानों में दिशाएँ और जिह्वा में सरस्वती निवास करती है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ज्ञानेन्द्रियां हैं। शब्द आदि ज्ञान के द्वार-स्वरूप हैं।
१० शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये इन्द्रियों के विषय हैं। इन्हें इन्द्रियों से अलग समझना चाहिए। जैसे सारथी घोड़ों को हाँकता है वैसे ही मन इन्द्रियों को विषय में लगाता है। जीव हृदय में निवास करके मन को नियुक्त करता है। मन सब इन्द्रियों का और आत्मा मन का ईश्वर है। इन्द्रियाँ, रूप-रस आदि विषय, शीत-उष्ण आदि धर्म, चेतना, मन, प्राण, अपान और जीव ये सब मनुष्यों के शरीर में रहते हैं। सत्त्व आदि गुण और बुद्धि आदि जीव के आश्रय नहीं हैं। उसका आश्रय तो परमात्मा ही है। परमात्मा जीव का स्रष्टा है; गुण जीव की सृष्टि नहीं कर सकते। विद्वान् ब्राह्मण शब्द आदि पाँच विषय, दस इन्द्रियाँ और मन, इन सोलह गुणों से युक्त जीवात्मा को मन के द्वारा बुद्धि में देख सकता है। परमात्मा आँख-कान आदि इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। केवल दीपक-स्वरूप शुद्ध मन से ही परमात्मा का ज्ञान हो सकता है। परमात्मा अव्यय, अशरीरी, इन्द्रियहीन और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से हीन है। योगी लोग उस परमात्मा को अपने शरीर में ही देखते हैं। जड़-शरीर में अव्यक्त भाव से स्थित परमात्मा का जो साक्षात्कार कर लेता है वह शरीर छोड़कर ब्रह्म को प्राप्त होता है। पण्डित लोग क्या विद्वान् कुलीन ब्राह्मण, क्या गाय, हाथी, कुत्ता और क्या चाण्डाल, सबमें ब्रह्म का दर्शन करते हैं। वह परमात्मा स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों में निवास करता है। यह
२० सारा संसार उसी का फैलाव है। जीव जब अपने को सब प्राणियों से और सब प्राणियों को अपने से भिन्न नहीं समझता तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। जो आत्मा को अपने शरीर में और दूसरे के शरीर में समान रूप से देखता है वही मुक्ति पा सकता है। ब्रह्म को प्राप्त करने की इच्छा से जो सब प्राणियों को अपने समान समझता है और जो सब प्राणियों की भलाई चाहता है उस महात्मा के मार्ग पर चलने में असमर्थ होकर देवता भी मोहित हो जाते हैं। जैसे आकाश में चिड़ियों के और जल में मछलियों के चलने के चिह्न नहीं देख पड़ते वैसे ही ज्ञानियों की गति दूसरों को नहीं मालूम हो सकती। काल सब प्राणियों का नाश करता है; किन्तु जिसके प्रभाव से काल का नाश होता है उसे कोई नहीं जान सकता। वह परमात्मा ऊपर, नीचे, बीच में और इधर-उधर कहीं भी नहीं देख पड़ता। ये सब लोक उसी परमात्मा के पेट में हैं। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। यदि कोई धनुष से छूटे हुए बाण के और मन के समान वेग से दौड़े तो भी उस परमात्मा का अन्त नहीं पा सकता। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और

स्थूल से भी स्थूल है; उसकी नाप-जोख कोई नहीं कर सकता। उसके हाथ, पैर, मुँह, आँख, कान और सिर सर्वत्र फैले हुए हैं। वह सब लोकों में व्याप्त है। यद्यपि वह सब प्राणियों के शरीर में स्थित रहता है तो भी उसे कोई नहीं देख सकता। परमात्मा अक्षर और क्षर दो प्रकार का है। उसमें अविनाशी चेतन अक्षर और स्थावर-जङ्गम रूपी जड़ देह क्षर कहलाता है। स्थावर-जङ्गमात्मक सब पदार्थों का अधीश्वर, निश्चल, निरुपाधिक परमात्मा नवद्वारयुक्त नगर में प्रविष्ट होकर हंस-स्वरूप प्रतीत होता है। पण्डितों ने महत् आदि पदार्थों से सञ्चित, नश्वर, सुख-दुःख, विपर्यय और अनेक कल्पनाओं से युक्त शरीर में जन्म-रहित जीवात्मा को हंस-रूप बतलाया है। ज्ञानी पुरुष जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं समझते। जो उस परमात्मा को प्राप्त कर लेता है वह उपाधि और जन्म को त्याग देता है। ३०-३४

दो सौ चालीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को योग की विधि बतलाना

व्यासजी ने कहा—बेटा, मैंने आत्मा और परमात्मा का यह विषय विस्तार से कह दिया। अब योग का वर्णन सुनो। पण्डितों ने बुद्धि, मन और इन्द्रियों को बाह्य वृत्ति से रोककर सर्वव्यापी परमात्मा में लीन करानेवाले ज्ञान को श्रेष्ठ कहा है। अतएव योगी लोग शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, ध्याननिष्ठ, ईश्वर में अनुरक्त, शास्त्रों के मर्मज्ञ और पवित्र होकर काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, योग के इन पाँच दोषों को त्यागकर आचार्य से उस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करते हैं। शान्तस्वभाव होने तथा क्रोध और इच्छा का त्याग करने से काम जीता जा सकता है। सत्त्वगुणी होने से निद्रा जीती जा सकती है। मनुष्य धैर्य के सहारे काम और खाने की इच्छा से बचे; आँखों की सहायता से हाथ-पैरों को बचावे; मन से आँखों और कान की तथा अच्छे काम करके मन और वाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय को और ज्ञानी पुरुषों की सेवा से पाखण्ड को त्याग दे। योगी लोग इस प्रकार आलस्यहीन होकर योग के दोषों को त्याग दें। मन को दहलानेवाले हिंसायुक्त वचन न कहें; अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा तथा देवताओं को प्रणाम करें। तेजोमय ब्रह्म स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का बीज और रस-स्वरूप है। सब प्राणी उसी परमात्मा के आश्रित हैं। ध्यान, वेदाध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच और इन्द्रियनिग्रह द्वारा तेज की वृद्धि होती, पाप नष्ट हो जाता तथा अभीष्ट-सिद्धि और विज्ञान की प्राप्ति होती है। सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखनेवाले, जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट, पापहीन, तेजस्वी, मिताहारी, जितेन्द्रिय मनुष्य काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद पाने की इच्छा करते हैं। योग जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य, मन और इन्द्रियों को विषयों से हटाकर, रात के पहले और पिछले पहर में बुद्धि को मन के साथ मिलावें। १०

पाँच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय के विषय में भी आसक्त रहने पर मनुष्य की शास्त्रीय बुद्धि उस इन्द्रिय-रूप द्वार से, छेदवाली मशक से जल के समान, निकल जाती है। अतएव जैसे मछुवा पहले जाल काट डालनेवाली मछलियों के रोकने का प्रबन्ध करके तब दूसरी मछलियों को पकड़ता है वैसे ही योगी लोग पहले मन को रोककर उसके बाद इन्द्रियों का दमन करें। योग के जानकार पुरुष आँख, कान, नाक और जीभ, इन चार इन्द्रियों के विषयों को खींचकर मन में और मन को इच्छा से हटाकर बुद्धि में मिलावें। मन इन्द्रियों को लेकर जब बुद्धि में स्थित हो जाता है तब योगी पुरुष धूमहीन प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान, दीप्तिमान् सूर्य के समान और आकाश-मण्डल में स्थित बिजली के प्रकाश के समान तेजस्वरूप सर्वव्यापी
२० परब्रह्म को अपने हृदय में देख सकता है। सब प्राणियों का हित चाहनेवाले धैर्यवान् ज्ञानी महात्मा ब्राह्मण योग के प्रभाव से परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं। जो मनुष्य निर्जन स्थान में अकेला बैठकर, मन को स्थिर करके, इस प्रकार योग का अभ्यास करता है वह छः महीने में ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

तत्त्वदर्शी लोग चित्त की चञ्चलता और मोह-क्रोध आदि को त्याग दें। योगी पुरुष को योग के प्रभाव से जब दिव्य गन्ध, शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सरदी-गरमी, अन्तर्धान, आकाश की गति, सब शास्त्रों का ज्ञान और सुन्दरी स्त्रियों की प्राप्ति हो जाय तब वह इन सबको तुच्छ समझकर त्याग दे।

इस प्रकार प्रातःकाल, पूर्वरात्रि और अपर रात्रि के समय पहाड़ की चोटी पर, चैत्य वृक्ष के नीचे अथवा किसी वृक्ष के सामने योग का साधन किया करे। योग के जानकार पुरुष इन्द्रियों का दमन करके, धन की चिन्ता करनेवाले मनुष्य के समान, एकाग्रचित्त होकर उस अक्षय-धन परब्रह्म का ध्यान करें। जिस तरह हो सके, चञ्चल मन को रोकें और कभी योगाभ्यास से मन को न हटने दें। साधक पुरुष चित्त को स्थिर रखने के लिए पहाड़ की कन्दरा में, देवता के मन्दिर में अथवा निर्जन घर में रहें और मन-वचन-कर्म से दूसरों का संसर्ग छोड़कर सबकी उपेक्षा करते हुए लाभ-हानि को समान समझें और नियमित भोजन करें। किसी के मुँह से अपनी प्रशंसा या निन्दा सुनकर, उन दोनों को समान समझकर,
३० उसका भला-बुरा कुछ भी न सोचें। लाभ होने पर हर्ष और हानि होने पर खेद न करें। सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखें और सर्वस्पर्शी वायु की तरह पवित्र रहें। जो महात्मा इस प्रकार समदर्शी और शुद्धचित्त होकर लगातार छः महीने योग का साधन करते हैं उन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। मिट्टी और सोने को एक समान समझनेवाले पुरुष दूसरों को धन के लिए दुखी देखकर धन पैदा करने का उद्योग कभी न करें और कभी उससे मोहित न हों। शूद्र हो चाहे स्त्री, जो कोई इस प्रकार का साधन करेगा उसे परमगति प्राप्त होगी।

स्थिरचित्त योगी पुरुष इन्द्रियों का दमन करके उस अनादि, निर्विकार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल अनन्त ब्रह्म का दर्शन करते हैं। जो लोग महर्षियों के इन वचनों पर भली भाँति ध्यान देते हैं वे ब्रह्म के सदृश होकर परमगति पाते हैं। ३६

दो सा इकतालीस अध्याय

कर्म और ज्ञान का स्वरूप बतलाना

शुकदेव ने कहा—पिताजी! वेद में ज्ञानवान् के लिए कर्मों का त्याग और कर्म-निष्ठ के लिए कर्मों का करना, ये दो विधान हैं। किन्तु कर्म और ज्ञान, ये दोनों एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। अतएव मैं जानना चाहता हूँ कि कर्म करने से मनुष्यों को क्या फल मिलता है और ज्ञान के प्रभाव से कौन सी गति मिलती है।

व्यासजी ने कहा—बेटा, नश्वर कर्म और अविनाशी ज्ञान का विषय तुमको बतलाता हूँ। कर्म करने से जो फल मिलता है और ज्ञान के प्रभाव से जो गति प्राप्त होती है उसे ध्यान देकर सुनो। ये दोनों विषय अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं। धर्म का अस्तित्व माननेवाला पुरुष जैसे धर्म के अभाव का प्रतिपादन सुनकर घबरा उठता है वैसे ही तुम्हारे मुँह से ज्ञान और कर्म दोनों की प्रधानता सुनकर मैं सन्न हो गया हूँ। ख़ैर, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। वेद में प्रवृत्ति और निवृत्ति दो प्रकार के धर्म बतलाये गये हैं। कर्म के प्रभाव से जीव संसार के बन्धन में बँधा रहता है और ज्ञान के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, इसी से पारदर्शी संन्यासी लोग कर्म नहीं करते। कर्म करने से जीव फिर जन्म लेता है; किन्तु ज्ञान के प्रभाव से नित्य अव्यक्त अव्यय परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। कम समझ के लोग कर्म की प्रशंसा करते हैं, इसी से उन्हें बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है। जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर लेता है और जो धर्म को भली भाँति समझ जाता है वह, जैसे नदी के किनारेवाला मनुष्य कुएँ का आदर नहीं करता वैसे ही, कर्म की प्रशंसा नहीं करता। कर्म करने से सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु की १०
प्राप्ति होती है; किन्तु जहाँ जन्म, मरण और शोक कुछ भी नहीं है तथा जहाँ जाने से फिर लौटना नहीं पड़ता वह स्थान ज्ञान के सिवा और किसी उपाय से नहीं मिल सकता। ज्ञान होते ही मनुष्य के हृदय में अव्यक्त स्थिर निश्चल अमृत सर्वव्यापी ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है। तब जीव को सुख-दुःख सहन नहीं करना पड़ता, उसकी इच्छाएँ और मोह नष्ट हो जाता है। उस अवस्था में जीव सब प्राणियों के साथ भलाई करता है और सबके साथ समान मित्र भाव रखता है। कर्मनिष्ठ और ज्ञानी मनुष्य में बड़ा अन्तर है। जिस तरह अमावास्या का चन्द्रमा अदृश्य रहता है—उसका नाश नहीं होता—उसी तरह ज्ञानी पुरुष हमेशा अविनाशी रहता है। और, जैसे टेढ़ा चन्द्रमा घटता-बढ़ता रहता है वैसे ही कर्मनिष्ठ मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ा

रहता है। महर्षि लोग ज्ञान और कर्म का फल इस प्रकार बतला गये हैं। मन और सोलह कलाओं से युक्त लिङ्ग-शरीर कर्म के द्वारा प्राप्त होता है। उसी लिङ्ग-शरीर में, कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद की तरह, जो देवता निवास करता है वही चेत्रज्ञ है। मनुष्य योग-बल से उसका साक्षात्कार कर सकता है। सत्त्व, रज और तम, ये तीन बुद्धि के गुण हैं; बुद्धि जीवात्मा का गुण है और जीवात्मा परमात्मा का गुण है। आत्मज्ञानी पुरुषों का कहना है कि शरीर जड़ है, वह चेतन-स्वरूप जीव के साथ युक्त रहने से ही चैतन्य होता है। जीव ही शरीर को सचेत और
२० जीवित करता है। इस जीव से श्रेष्ठ एक और परम पदार्थ है, उसी से सातों भुवन उत्पन्न हुए हैं।

दो सौ बयालीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव से ब्रह्मचर्य धर्म का वर्णन करना

शुकदेव ने कहा—पिताजी! आपने महत्तत्त्व, अहङ्कार और शब्द आदि विषयों से युक्त इन्द्रियों को ईश्वर से उत्पन्न और अन्यान्य सब पदार्थों को बुद्धि के प्रभाव से कल्पित बतलाया है। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार में सज्जन पुरुष कैसा आचरण कर गये हैं। और, वेद में तो कर्म करने और कर्म त्यागने का भी विधान है, अतएव यह निर्णय किस प्रकार किया जावे कि उन दोनों में कौन करने योग्य है और कौन करने योग्य नहीं। मैं आपके उपदेश से पवित्र और धर्म-अधर्म का अभिज्ञ हो गया हूँ। मैं अब बुद्धि को स्थिर करके देह का अभिमान छोड़कर आत्मा का साक्षात्कार करूँगा।

व्यासजी ने कहा—बेटा! ब्रह्माजी ने जैसा विधान कर दिया है वैसा ही आचार-व्यवहार ऋषि लोग करते आये हैं। महर्षियों ने अपने कल्याण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करके सब लोकों पर विजय प्राप्त की है। जो फल-मूल खाता, दृढ़ता से तपस्या करता, पवित्र स्थान में रहता और अहिंसा-परायण है तथा जो मूसल के शब्द से शून्य धूम-रहित वानप्रस्थ की कुटी पर भिक्षा के लिए जाता है वही ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है। अतएव तुम स्तुति, नमस्कार और शुभाशुभ आदि सब विषयों को त्यागकर अकेले वन में जाकर किसी तरह निर्वाह करते हुए अपनी इच्छा के अनुसार बिचरो।

शुकदेव ने कहा—पिताजी, कर्म करना चाहिए और कर्म को त्याग देना चाहिए, ये वेद
१० के दोनों वाक्य परस्पर-विरुद्ध हैं। इन वाक्यों का निर्णय कैसे किया जाय? आप इन दोनों वचनों की प्रामाणिकता बतलाइए और यह भी बतलाइए कि कर्म का विरोध किये बिना मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार हो सकेगी।

भगवान् वेदव्यासजी शुकदेव के वचनों की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—बेटा! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी, जो कोई राग-द्वेष आदि का त्याग करके शास्त्र के

अनुसार व्यवहार करे वही परमगति पा सकता है। ब्रह्म में चार आश्रमों की सीढ़ी लगी है। उसी सीढ़ी पर चढ़कर मनुष्य ब्रह्मलोक को जा सकता है। धर्म और अर्थ का जानकार ब्रह्मचारी, ईर्ष्याहीन होकर, गुरु अथवा गुरुपुत्र के पास जीवन का एक-चौथाई भाग बितावे। गुरु के घर में रहते समय उनके सो जाने पर सोवे और उनके उठने के पहले उठे। शिष्य और सेवक के करने योग्य सब काम करे और गुरु के पास बैठे। सब कामों से छुट्टी मिलने पर अध्ययन करे। वह हमेशा सरल स्वभाव रक्खे, किसी की निन्दा न करे। आचार्य के बुलाने पर उसी दम उनके पास जावे। थोड़ी दूर पर बैठकर गुरु की ओर ताकता रहे और उनसे बातचीत करे। आचार्य के खा-पी लेने पर खावे-पीवे, बैठने के बाद बैठे और सोने के बाद सोवे। हाथ फैलाकर मृदु भाव से दहिने हाथ से गुरु का दहिना पैर और बाँयें हाथ से उनका बायाँ पैर छूकर प्रणाम करके उनसे कहे—भगवन्! मुझे शिक्षा दीजिए, मैं इन कामों को कर चुका हूँ और ये काम करूंगा, और आप जो करने की आज्ञा दें उसे भी करने को तैयार हूँ। गुरुभक्त ब्रह्मचारी इस प्रकार गुरु से सब हाल कहे और सब काम कर चुकने के बाद उनसे निवेदन कर दे। ब्रह्मचर्य के समय ब्रह्मचारी रस और गन्ध का सेवन न करे। उनका व्यवहार समावर्तन के बाद करे। शास्त्र में ब्रह्मचर्य के जो नियम बतलाये गये हैं उन सबका पालन करता हुआ ब्रह्मचारी आचार्य के अधीन रहे। इस प्रकार गुरु को प्रसन्न रखता हुआ वह दूसरे आश्रम में जावे। वेद का अध्ययन और उपवास आदि करते हुए, गुरु-कुल में जीवन का एक-चौथाई भाग समाप्त होने पर, आचार्य को दक्षिणा देकर वहाँ से समावर्तन करे (वापस आवे)। उसके बाद गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मपत्नी के साथ अग्नि-स्थापन करे और उस आश्रम के नियमों का पालन करता हुआ जीवन का दूसरा चतुर्थांश बितावे। ३०

दो सौ सैंतालीस अध्याय

गृहस्थ-धर्म का वर्णन

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव, पण्डितों ने गृहस्थों की जीविका के चार उपाय बतलाये हैं। उन्हीं के अनुसार कोई तीन साल के लिए और कोई एक साल के लिए अन्न रख लेता है। कोई प्रतिदिन खाने की चीज़ें लाता है और कोई उञ्छवृत्ति करके अपना निर्वाह करता है। इन चार प्रकार के गृहस्थों में पहली की अपेक्षा दूसरी, दूसरी की अपेक्षा तीसरी और तीसरी की अपेक्षा चौथी श्रेणी के मनुष्य श्रेष्ठ हैं। इनमें पहली श्रेणी के गृहस्थों को यजन आदि छः कर्म, दूसरी श्रेणी के लोगों को अध्ययन, दान और प्रतिग्रह, तीसरी श्रेणी के मनुष्यों को अध्ययन और दान तथा चौथी श्रेणी के पुरुषों को केवल अध्ययन करना चाहिए। गृहस्थों के नियम सब आश्रमवासियों के नियमों से श्रेष्ठ बतलाये गये हैं। केवल अपना पेट भरने के लिए भोजन बनाने

और पशु का वध करने की आज्ञा देना गृहस्थों को उचित नहीं। वे यज्ञ के लिए यजुर्वेद का मन्त्र पढ़कर बकरे आदि के सिर या पीपल आदि को काटें। दिन में तथा रात के पहले और पिछले पहर में सोना, दिन-रात के बीच दो बार से अधिक भोजन करना और ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में सम्भोग करना गृहस्थों के लिए वर्जित है। गृहस्थ मनुष्य अपने घर आये हुए ब्राह्मण को, पूजा करके, भोजन करावे और वेद के विद्वान्, अपने धर्म के अनुसार जीविका करनेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान्, तपस्वी, श्रोत्रिय के अतिथि होने पर यथोचित सत्कार करके उन्हें सन्तुष्ट करे। अपने को धर्मात्मा सिद्ध करने की इच्छा से नख और बाल रखनेवाला पाखण्डी, अग्निहोत्र न करनेवाला, गुरु का अप्रियकारी या चण्डाल, कोई भी क्यों न घर आ जाय
११ उसको भोजन देना गृहस्थों का कर्त्तव्य है। गृहस्थ मनुष्य प्रतिदिन ब्रह्मचारी, संन्यासी और अन्यान्य प्राणियों को भोजन दे। घी मिली हुई, यज्ञ से बची, भोजन की वस्तुएँ अमृत-स्वरूप हैं। भरण-पोषण करने योग्य अपने अधीन मनुष्यों को खिलाने का नाम विघस है। जो गृहस्थ उनको भोजन देकर खाता है वह विघसाशी है। पण्डितों ने यज्ञ से बचे हुए भोजन को अमृत कहा है। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, सजातीय, सम्बन्धी, बान्धव, पिता, माता, सगोत्रा स्त्री, भाई, पुत्र, पत्नी, कन्या और नौकर-चाकरों के साथ हेलमेल रखनेवाला, अपनी भार्या में सन्तुष्ट, असूयाहीन, जितेन्द्रिय गृहस्थ सब पापों से छूटकर सब लोकों पर विजय पाता है। पण्डितों ने आचार्य को ब्रह्मलोक का, पिता को प्रजापति-लोक का, अतिथि को इन्द्रलोक का, ऋत्विक् को देवलोक का और सगोत्रा स्त्री को अप्सरालोक का अधिपति बतलाया है। उन्होंने सजातीयों को विश्वेदेवलोक का, सम्बन्धियों और बान्धवों को सब दिशाओं का, माता और मामा को पृथ्वी का तथा वृद्ध, बालक, पीड़ित, दुर्बल मनुष्यों को आकाश का अधीश्वर बतलाया है। अतएव गृहस्थ लोग, आचार्य आदि की सेवा करके, ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकते हैं। बड़ा भाई पिता के समान, स्त्री और पुत्र अपने शरीर
२० के समान, दास-दासी छाया-स्वरूप और कन्या कृपा-पात्र है। अतएव शान्तस्वभाव धर्मात्मा विद्वान् गृहस्थ बड़े भाई आदि से तिरस्कृत होने पर उस तिरस्कार को शान्ति से सहन कर ले। धर्मात्मा गृहस्थ, फल की इच्छा से, कोई काम न करे। जिस प्रकार ब्रह्मचर्य की अपेक्षा गार्हस्थ्य, गार्हस्थ्य की अपेक्षा वानप्रस्थ और वानप्रस्थ की अपेक्षा संन्यास आश्रम श्रेष्ठ है उसी प्रकार गृहस्थों के लिए अन्न सञ्चित करने की अपेक्षा सञ्चय न करना और सञ्चय न करने की अपेक्षा कपोतवृत्ति श्रेष्ठ है। गृहस्थ मनुष्य शास्त्रोक्त नियमों का पालन अवश्य करें। वर्ष भर के लिए अन्न रखनेवाले तथा कपोतवृत्ति और उञ्छवृत्ति करनेवाले गृहस्थ जिस राज्य में सम्मानित होकर रहते हैं वह राज्य उत्तरोत्तर बढ़ता है। जो व्यक्ति सावधानी से इस प्रकार गृहस्थाश्रम के धर्म का पालन करता है वह चक्रवर्ती राजा की गति पाता है और उसके आगे-पीछे की दस-

दस पीढ़ियों तक के पुरुष पवित्र हो जाते हैं। जितेन्द्रिय उदार गृहस्थों को विमान समेत परम रमणीय स्वर्गलोक प्राप्त होता है। मनुष्य विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पालन करने के बाद गृहस्थ आश्रम में रहकर स्वर्ग का सा सुख भोगे। गृहस्थ आश्रम के बाद मनुष्यों को वानप्रस्थ आश्रम में जाना चाहिए। अब उस आश्रम के धर्म सुनो। २९

दो सौ चवालीस अध्याय

वानप्रस्थ-धर्म का वर्णन

भीष्म कहते हैं—युधिष्ठिर, विद्वानों के बतलाये हुए गृहस्थ-धर्म का वर्णन मैं कर चुका। अब पवित्र देशवासी, भले-बुरे का विचार रखनेवाले, सब आश्रमों के धर्म से युक्त वानप्रस्थ के धर्म का वर्णन करता हूँ।

व्यासदेव ने शुकदेव से फिर कहा—बेटा, जब गृहस्थ अपने शरीर की खाल लटकी हुई और बालों को सफ़ेद देखे और जब उसके बेटे के बेटा पैदा हो जाय तब उसे वानप्रस्थ आश्रम में चला जाना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम में रहकर वह अपने जीवन का तीसरा भाग वन में बितावे। इस आश्रम में रहकर गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों की उपासना, देवताओं की पूजा, भोजन का नियम, दिन के छठे भाग में भोजन, अग्निहोत्र की रक्षा, गौ का पालन, सब यज्ञों का अनुष्ठान, बिना जोती हुई पृथिवी में पैदा हुआ अन्न, जौ, नीवार और विघस भोजन करे। वानप्रस्थ आश्रम में भी चार प्रकार की वृत्ति बतलाई गई है। उसके अनुसार यज्ञ और अतिथि-सत्कार करने के लिए कोई एक दिन, कोई एक महीने, कोई एक वर्ष और कोई बारह वर्ष के लिए द्रव्य सञ्चय करता है। वानप्रस्थी लोग वर्षा के समय बरसात को सहें, हेमन्त ऋतु में पानी में रहें और गरमी के दिनों में पञ्चाग्नि तापें। परिमित भोजन, पृथिवी पर शयन और तीनों काल में स्नान-सन्ध्या करें। पैर के अँगूठे के बल खड़े हों, ख़ाली पृथिवी या आसन पर बैठें। कोई वानप्रस्थी तो अन्न को दाँतों से चबाकर और कोई पत्थर से कूटकर खाते हैं। १०
कोई शुक्लपक्ष में और कोई कृष्णपक्ष में केवल एक बार लप्सी खाते हैं। कोई जो कुछ मिल गया वही खा लेते हैं। कोई कन्द-मूल, कोई फल और कोई केवल फूल खाकर रह जाते हैं। वानप्रस्थियों के इनके सिवा और भी अनेक नियम हैं। संन्यास चौथा आश्रम है। इसका सब आश्रमियों को अधिकार है। इस युग में महर्षि अगस्त्य, सप्तर्षि, मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांकृति, एक स्थान पर न रहनेवाले सुदिवातण्डि, अहोवीर्य, काव्य, ताण्ड्य, मेधातिथि, कर्णनिर्वाक्, शून्यपाल ये सब महात्मा और सत्यसङ्कल्प आदि धर्म से युक्त यायावरगण इस वानप्रस्थ धर्म का पालन करके देवलोक को गये हैं। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले जितेन्द्रिय धर्मात्मा वैखानस वालखिल्य, सैकतगण और ग्रह-नक्षत्रों के अतिरिक्त अन्यान्य ज्योतिष्क- २०

गण तथा अनेकानेक निपुण धर्मज्ञ तपस्वी महर्षियों ने वानप्रस्थ धर्म का अवलम्बन किया था। अत्यन्त वृद्ध और रोग से पीड़ित हो जाने पर जीवन के अन्तिम भाग में, वानप्रस्थ आश्रम को त्यागकर, संन्यास आश्रम में चला जाना चाहिए।

ब्राह्मण एक दिन में समाप्त हो जानेवाला यज्ञ और जीवित अवस्था में अपना श्राद्ध आदि करके, पुत्र-स्त्री और अग्निहोत्र को त्यागकर, आत्मनिष्ठ हो अपने आत्मा में ही आनन्द करे। मनुष्य में जब तक योगाभ्यास करने की योग्यता न हो तभी तक उसे ब्रह्मयज्ञ और दर्श-पूर्णमास आदि यज्ञ करना चाहिए। संन्यासी अपने जीवन भर के लिए गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों का त्याग कर दे। उसके लिए यही यज्ञ है। संन्यासी अन्न की निन्दा न करके, यजुर्वेद के मन्त्र पढ़ता हुआ, पाँच या छः ग्रास भोजन करे। वानप्रस्थ आश्रम के धर्म का पालन करके पवित्र होकर, बाल और रोएँ मुड़ाकर, नख कटाकर संन्यास-धर्म का अवलम्बन करे। जो ब्राह्मण सब प्राणियों को अभय करता हुआ संन्यास-धर्म का पालन करता है वह तेजोमय लोकों को प्राप्त करके परमब्रह्म में लीन हो जाता है। सुशील, निष्पाप, आत्मज्ञानी पुरुष इस लोक और परलोक के लिए कोई कर्म नहीं करता। वह क्रोध, मोह, सन्धि-विग्रह सब कुछ छोड़कर उदासीन भाव से रहता है। जो अहिंसा आदि संयम और स्वाध्याय आदि नियमों का पालन नहीं करता, जो संन्यास की विधि के अनुसार आत्मा की खोज करता और यज्ञोपवीत उतार देता है वही आत्मज्ञानी मोक्ष पद पा सकता है। धर्मात्मा जितेन्द्रिय मनुष्य की मुक्ति होने में
३१ क्या सन्देह है? अब अनेक सद्गुणों से युक्त सर्वश्रेष्ठ चौथे आश्रम का वर्णन करता हूँ।

दो सौ पैंतालीस अध्याय

संन्यास-धर्म का वर्णन

शुकदेव ने कहा—पिताजी! ब्रह्म को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य, वानप्रस्थ आश्रम की तरह, संन्यास आश्रम में रहकर किस प्रकार परमात्मा के साथ जीवात्मा को मिलावे?

व्यासदेव ने कहा—बेटा, गृहस्थ और वानप्रस्थ दोनों आश्रमों में चित्त को शुद्ध करके उसके बाद जो करना चाहिए वह बतलाता हूँ। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमों में मन के दोषों का संशोधन करके संन्यास आश्रम का अवलम्बन करना चाहिए। अतएव तुम चित्त के दोषों को दूर करने का अभ्यास करो। संन्यासी, सिद्धि पाने के लिए, किसी की सहायता न लेकर अकेला ही धर्म का अनुष्ठान करे। जो आत्मा का साक्षात्कार करके अकेला घूमता रहता है उसे आत्मा कभी नहीं त्यागता। ऐसे पुरुष को कभी मोक्षपद से भ्रष्ट नहीं होना पड़ता। निरग्नि होकर और वासस्थान से शून्य होकर भोजन के लिए गाँव-गाँव में भीख माँगना, केवल एक दिन के लिए भोजन लेना, चित्त को एकाग्र करना, अल्पाहार करना, कमण्डलु धारण करना,

वृक्ष के नीचे आश्रय लेना, रँगे कपड़े पहनना, अकेले रहना और सबसे उदासीन रहना संन्यासी का लक्षण है। जो दूसरों की कड़वी बातें सुनकर भी उन्हें कटु वचन न कहे वही संन्यासी होने योग्य है। न तो कभी किसी की निन्दा करे और न सुने। विशेषकर ब्राह्मणों की निन्दा करना तो उचित ही नहीं। हमेशा ब्राह्मणों के हित की बात कहे। दूसरों के मुँह से ब्राह्मण की निन्दा सुनकर धैर्य के साथ चुप रहना ही अच्छा है। जो अपने को सर्वव्यापी और मनुष्यों से भरे हुए स्थान को भी शून्य स्थान समझे, जो कुछ मिल जाय वही भोजन कर ले, साधारण कपड़े पहने, जहाँ जो चाहे वहाँ घूमे और जो जन-समाज को साँप के समान समझे, उसी को देवता वास्तविक ब्रह्मज्ञ कहते हैं; जो मिष्टान्न से होनेवाली तृप्ति को नरक के समान और स्त्रियों को मुर्दे के समान समझता है, जिसे सम्मान होने पर हर्ष और अपमान होने पर क्रोध नहीं होता और जो सब जीवों को निर्भय रखता है उसी को देवता लोग सच्चा ब्रह्मज्ञ कहते हैं। संन्यासी को न तो जीवन प्रिय है और न मरण अप्रिय। जैसे नौकर मालिक के हुक्म की राह देखा करता है वैसे ही संन्यासी को काल की प्रतीक्षा करते रहना चाहिए। मन और वाणी के दोषों को त्यागकर वह सब पापों से मुक्त हो जाय। जिसका कोई शत्रु नहीं होता उसे किसी का भय नहीं रहता। जिस मनुष्य से किसी प्राणी को डर नहीं होता उसे भी किसी का डर नहीं रहता। सारांश यह कि मोहहीन मनुष्य को कोई आशङ्का नहीं है। जैसे हाथी के पैर में सभी के पैर समाते हैं वैसे ही अहिंसा धर्म के अन्तर्गत अन्यान्य सब धर्म आ जाते हैं। जो हिंसा नहीं करता वह मौत से निडर होकर बहुत दिनों तक जीवित रहता है। जो बुद्धिमान्, शान्तस्वभाव, सत्यवादी, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय और सब प्राणियों की रक्षा करनेवाला है वह अति उत्तम गति पाता है। मृत्यु इस प्रकार के ज्ञानवान्, निर्भीक और निर्लोभ मनुष्य का कुछ नहीं कर सकती, बल्कि वह पुरुष मृत्यु को जीत लेता है। जो सब विषयों से मुक्त और शान्त होकर आकाश के समान अलिप्त रहता है, जिसका कोई आत्मीय नहीं है, जो अकेला रहता है, जिसका धर्म ही जीवन है, दूसरों का उपकार करना ही जिसका धर्म है, जो दिन-रात पुण्य किया करता है, जो किसी प्रकार की इच्छा की पूर्ति के लिए काम नहीं करता, जो स्तुति करने से प्रसन्न नहीं होता और जो सब इच्छाओं को त्याग देता है उसे देवता लोग यथार्थ ब्रह्मज्ञ कहते हैं। सभी प्राणी सुख में प्रसन्न और दुःख में पीड़ित होते हैं, अतएव ऐसा काम कभी न करे जिससे दुःख हो। जीवों को अभय दान देने से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। जो हिंसा नहीं करता वह सब प्राणियों के साथ निडर होकर रह सकता है। मुँह फैलाकर पञ्चग्रास-रूप प्राणाहुति देना संन्यासी का धर्म नहीं है; क्योंकि तीनों लोकों का आत्मस्वरूप अग्नि संन्यासी के शरीर में निवास करता है। वह उस 'प्रादेश' भर के हृदयाकाश में स्थित अग्नि में मन और सब इन्द्रियों की आहुति देता है। इस आहुति के देने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तृप्त हो जाता है। जो तीनों

गुणों से युक्त मायामय जीवात्मा को सर्वश्रेष्ठ परमात्म-रूप समझ लेता है वह क्या मृत्युलोक और क्या स्वर्गलोक सब जगह प्रशंसनीय होकर सम्मान पाता है। जो चारों वेद, कर्मकाण्ड, आकाश आदि पदार्थ, परलोक और परमार्थ विषय को अपने आत्मा में ही समझता है और अलिप्त, अपरिमेय, ज्ञानमय परमात्मा को अपने हृदय में स्थित जानता है उसकी सेवा करने
३० के लिए देवता भी तैयार रहते हैं। छहों ऋतुएँ जिसकी नाभि, बारहों महीने जिसका अर और अमावास्या आदि जिसके पर्व हैं, जिसका कभी अन्त नहीं होता और जो हमेशा घूमता रहता है, वह कालचक्र योगियों के हृदय में रहता है। संसार में स्थावर-जङ्गम प्राणियों के जितने शरीर हैं उन सबमें स्थित रहकर जीवात्मा प्राण आदि देवताओं को तृप्त करता है। उनकी तृप्ति होने पर वह स्वयं भी तृप्त हो जाता है। जो स्वयं तेजोमय नित्य और अपरिमेय है, जो किसी प्राणी से नहीं डरता और जिससे किसी प्राणी को भय नहीं रहता वही पुरुष भयहीन अनन्तलोक को प्राप्त कर सकता है। जो किसी की निन्दा नहीं करता और जिसकी कोई निन्दा नहीं करता उसी को परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है। निष्पाप मोहहीन पुरुष क्या यह लोक और क्या परलोक, कहीं भी सुख भोगने की इच्छा नहीं करता। जो पुरुष सोना और मिट्टी, प्रिय और अप्रिय तथा निन्दा और स्तुति को एक समान समझता है; जो सन्धि, विग्रह, राग और मोह नहीं करता और जो निर्धन होने पर भी निःस्पृह बना
३६ रहता है वही सच्चा संन्यासी है।

दो सौ छियालीस अध्याय

संन्यास-धर्म का वर्णन

व्यासजी ने कहा—बेटा! जीवात्मा प्रकृति के विकार, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से युक्त होकर इन सबको जानता रहता है; किन्तु वे जीवात्मा को नहीं जानते। मनुष्य, सारथी से हाँके हुए पराक्रमी सुशिक्षित श्रेष्ठ घोड़ों के समान, पाँच इन्द्रियों और मन के द्वारा सब काम करता है। इन्द्रियों की अपेक्षा शब्द-स्पर्श आदि विषय, विषयों की अपेक्षा मन, मन की अपेक्षा बुद्धि, बुद्धि की अपेक्षा महत्तत्त्व, महत्तत्त्व की अपेक्षा अव्यक्त प्रकृति और अव्यक्त प्रकृति की अपेक्षा परब्रह्म श्रेष्ठ है। ब्रह्म से श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वही सबके प्राप्त करने योग्य पदार्थ और परम गति है। वह परमात्मा सब प्राणियों के शरीर में छिपा रहता है। तत्त्वज्ञ योगी लोग, सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा, उसका दर्शन करते हैं। योगी लोग चिन्ता और अभिमान छोड़कर, बुद्धि के द्वारा, इन्द्रियों और उनके विषयों को महत्तत्त्व में लीन करके और मन को तत्त्वदर्शिनी बुद्धि के द्वारा शुद्ध तथा ध्यान के द्वारा दबाकर शान्तचित्त हो ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य इन्द्रियों के अधीन और चञ्चलचित्त होकर काम-क्रोध आदि के वशीभूत रहता है वह निस्सन्देह

मौत का शिकार होता है। अतएव योगी लोग इच्छाओं को त्यागकर, स्थूल बुद्धि को सूक्ष्म बुद्धि में प्रविष्ट करके, कालञ्जर पर्वत के समान स्थिरस्वभाव हो जाते हैं। योगी लोग मन की एकाग्रता के प्रभाव से ही सब पाप-पुण्य का त्याग करके, शुद्ध-चित्त और अपने स्वरूप में स्थित होकर, अनन्त सुख भोगते हैं। सोते हुए मनुष्य के समान सुख-दुःखहीन और वायु से १०
सुरक्षित जलते हुए दीपक के समान निश्चल रहना ही प्रसन्नचित्त मनुष्य के लक्षण हैं। जो मनुष्य थोड़ा भोजन करता है और शुद्धचित्त होकर रात के पहले और पिछले भाग में परमात्मा के साथ जीवात्मा को मिलाता है उसी को जीवात्मा में परमात्मा के दर्शन होते हैं।

हे पुत्र, मैंने ऋग्वेद के दस हज़ार मन्त्र-रूप समुद्र को मथकर सब धर्मों का और सत्योपाख्यान का सारभूत वेदविहित अलौकिक अनुभवगम्य आत्म-सात्विक शास्त्रामृत तुम्हारे लिए उद्धृत किया है। जैसे दही से मक्खन निकलता और लकड़ी से आग पैदा होती है वैसे ही तुम्हारे लिए वेदशास्त्र से यह ज्ञान निकाला गया है। स्नातक व्रतधारी मनुष्यों को ही इस ज्ञान का उपदेश देना चाहिए। अप्रशान्त, अजितेन्द्रिय, तपस्याहीन, यथेच्छाचारी, वेद का अनभिज्ञ, ईर्ष्या करनेवाला, कुटिल और व्यर्थ तर्क-वितर्क करनेवाला मनुष्य इस ज्ञान का अधिकारी नहीं है। प्रशंसनीय, प्रशान्त, तपस्वी मनुष्य प्रिय पुत्र और अनुगत शिष्यों को ही इस गूढ़ धर्म की शिक्षा दें। तत्त्वज्ञ मनुष्य रत्नों से पूर्ण पृथिवी पाने की अपेक्षा इस ज्ञान की प्राप्ति को श्रेष्ठ समझता है। इसके बाद मैं इससे भी गूढ़ वेद-निर्दिष्ट आत्मतत्त्व का वर्णन करूँगा। अब तुम क्या पूछना चाहते हो? २३

दो सौ सैंतालीस अध्याय

शुकदेव के पूछने पर व्यासजी का अध्यात्म विषय कहना

शुकदेव ने कहा—भगवन्! अध्यात्म क्या है? आप इसे जैसा जानते हों उसका वर्णन विस्तार से फिर कीजिए।

व्यासजी ने कहा—बेटा! अध्यात्म का विषय सुनो। जैसे समुद्र की तरङ्गें अलग-अलग न होने पर भी अनेक प्रकार की देख पड़ती हैं वैसे ही पृथिवी-जल आदि सब महाभूत एकत्र रहते हुए भी जरायुज आदि सब प्राणियों में भिन्न रूप से स्थित हैं। जैसे कछुआ अपने सब अङ्ग फैलाता और सिकोड़ लेता है वैसे ही पृथिवी आदि सब महाभूत, देह में स्थित रहकर, उत्पत्ति और विनाश करते हैं। ये स्थावर-जङ्गम सब प्राणी पञ्चभूतमय हैं। इन्हीं पञ्चभूतों से सबकी उत्पत्ति और नाश होता है। सृष्टिकर्ता परमात्मा ने सब प्राणियों में, न्यूनता-अधिकता के अनुसार, महाभूतों का सन्निवेश कर दिया है।

शुकदेव ने कहा—भगवन्, पृथिवी आदि महाभूत जो शरीर की न्यूनता-अधिकता के अनुसार उनमें सन्निविष्ट हैं वे किस तरह जाने जा सकते हैं और यह किस तरह मालूम हो सकता है कि कौन इन्द्रिय किस महाभूत की है तथा शब्द आदि गुण किस-किसके हैं।

व्यासजी ने कहा—बेटा! तुमने जो विषय पूछा है उसे ध्यान लगाकर सुनो। शब्द, कान और शरीर के सब छिद्र आकाश के गुण हैं; प्राण, चेष्टा और स्पर्श वायु के गुण हैं; रूप, चक्षु और जठराग्नि अग्नि के गुण हैं; रस, स्वाद और स्नेह जल के गुण हैं तथा गन्ध, नासिका और शरीर पृथिवी के गुण हैं। यह पाञ्चभौतिक इन्द्रियों का वर्णन है। अब जिसका जो गुण है, वह भी सुनो। स्पर्श वायु का, रस जल का, रूप अग्नि का, शब्द आकाश का और गन्ध पृथिवी का गुण है। मन, बुद्धि और वासना लिङ्ग-शरीर में उत्पन्न होते हैं। वे इन्द्रियों को प्राप्त होकर शब्द आदि गुण ग्रहण करते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को फैलाता और सिकोड़ लेता है वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियों को विषयों में लगाती और हटा भी सकती है। बुद्धि के प्रभाव से ही मनुष्यों में अहङ्कार उत्पन्न होता है। शब्द आदि गुणों को बुद्धि प्रकाशित करती और मन को इन्द्रियों के साथ लगा देती है। बुद्धि की सहायता के बिना शब्द आदि गुण, मन और सब इन्द्रियाँ कोई काम नहीं कर सकतीं। शरीर में पाँच इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ रहते हैं। रूप आदि विषयों के ज्ञान का कारण नेत्र आदि इन्द्रियाँ हैं, उन विषयों के सन्देह का कारण मन है और उस सन्देह का निर्णय करनेवाली बुद्धि है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि का साक्षी आत्मा है। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण मन से उत्पन्न होते हैं। ये गुण सब प्राणियों में होते हैं। कार्य के ही द्वारा उनकी परीक्षा होती है। जो गुण आत्मा को प्रसन्न, प्रशान्त और निष्पाप रखता है उसका नाम सत्त्वगुण है। जिस गुण से शरीर और मन में सन्ताप उत्पन्न होता है वह रजोगुण है और जिससे आत्मा मोह से युक्त अव्यक्त अचिन्तनीय और दुर्ज्ञेय अवगत होता है वह तमोगुण है। किसी कारण-वश अथवा अकारण ही जिससे हर्ष, प्रीति, आनन्द, ममता और सुस्थचित्तता उत्पन्न हो वह सत्त्वगुण का कार्य है; जिससे अभिमान, असत्यता, लोभ, मोह और असहिष्णुता पैदा हो वह रजोगुण का चिह्न है और मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और जागरण तमोगुण का कार्य है।

दो सौ अड़तालीस अध्याय

ज्ञान के साधन बतलाना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव, कर्म की उत्पत्ति का नियम तीन प्रकार का है। पहले तो मन में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। उसके बाद बुद्धि द्वारा उन भावों का निश्चय किया जाता है। फिर अहङ्कार के प्रभाव से उनकी अनुकूलता और प्रतिकूलता का ज्ञान होता है।

इन्द्रियों से विषय, विषयों से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। जब बुद्धि, आत्मा के साथ अभिन्न रूप से स्थित होकर, घट आदि का ज्ञान उत्पन्न करती है तब उसे मन कहते हैं। इन्द्रियों के विषय अलग-अलग होने के कारण एक ही बुद्धि अनेक प्रकार की हो जाती है। बुद्धि श्रवण-ज्ञान-युक्त होने से कान, स्पर्श-ज्ञान-युक्त होने से त्वचा, दर्शन-ज्ञान-युक्त होने से दृष्टि, रस-ज्ञान-युक्त होने से रसना और गन्ध के ज्ञान से युक्त होने के कारण घ्राण-इन्द्रिय कहलाती है। बुद्धि के विकार इसी तरह के हैं। इन्हीं विकारों को इन्द्रिय कहते हैं। ज्ञानमय आत्मा इन इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। बुद्धि मनुष्यों के शरीर में तीन प्रकार से स्थित रहकर उन्हें कभी प्रसन्न, कभी दुखी और कभी सुख-दुःखहीन करती रहती है। जैसे समुद्र नदियों के वेग को मेट देता है वैसे ही बुद्धि सात्त्विक आदि तीनों भावों को छिपा लेती है। मनुष्य जब कोई इच्छा करता है तब उसकी बुद्धि मन के रूप में परिणत होती है। दर्शन आदि इन्द्रियों को, अलग-अलग होने पर भी, बुद्धि के अन्तर्गत समझना चाहिए। इन्द्रियों को अपने अधीन कर ले। इन्द्रियाँ जब बुद्धि के अनुगत हो जाती हैं तब वह स्थिर बुद्धि, विकृत होने के कारण, मन में अनेक प्रकार के ज्ञान उत्पन्न करती है। जैसे रथ पहियों के सहारे चलता है वैसे ही सत्त्व आदि तीनों गुण मन, बुद्धि १०
और अहङ्कार के भरोसे काम करते हैं। मन को विषयों से हटाकर, योग में लगाकर, बुद्धि और इन्द्रियों के प्रभाव से दीपक के समान करके मनुष्य अज्ञान-रूपी अन्धकार को दूर करे। जो मनुष्य संसार को बुद्धि द्वारा कल्पित समझता है वह कभी मोहित नहीं होता। उसके हर्ष, विषाद और ईर्ष्या आदि सब दूर हो जाते हैं। यदि इन्द्रियाँ विषयों में लिप्त रहती हैं तो अशुद्ध चित्तवाले दुरात्माओं की बात तो दूर रही, पुण्यात्मा लोग भी आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकते। किन्तु जब मन के प्रभाव से इन्द्रियाँ अपने अधीन हो जाती हैं तब आत्मा, दीपक की प्रभा के समान, प्रकाशित हो जाता है। जैसे जलचर पक्षी पानी में चलने पर भी उससे लिप्त नहीं होते वैसे ही देहाभिमान-शून्य ज्ञानी योगी, विषयों का भोग करके, कभी उनके दोषों में लिप्त नहीं होता। जो पहले के किये हुए सब कामों को त्यागकर केवल परमात्मा में अनुरक्त रहता है और जो सब प्राणियों को समान भाव से देखता है उसकी बुद्धि विषय-वासनाओं में न फँसकर ज्ञान में ही लगती है। आत्मा गुणों का निरीक्षक और नियन्ता है। गुण आत्मा को नहीं जान सकते; किन्तु आत्मा उन सबको जानता रहता है। प्रकृति और पुरुष २०
में यही भेद है कि प्रकृति विषयों की उत्पत्ति करती है; किन्तु पुरुष इन सबके सृष्टि-कार्य से बिलकुल अलग है। जैसे पानी और मछली, पतङ्ग और गूलर, सींक और मूँज ये सब एक-दूसरे से भिन्न होने पर भी एक साथ रहते हैं वैसे ही प्रकृति और पुरुष भी, स्वभावतः स्वतन्त्र होने पर भी, एक-दूसरे की सहायता के लिए एकत्र रहते हैं। २४

दो सौ उनचास अध्याय

व्यासजी का शुकदेव से ज्ञान की प्रशंसा करना

व्यासजी कहते हैं—बेटा! सत्त्व आदि गुण प्रकृति के साथ मिलकर, जैसे मकड़ी जाला पूरती है वैसे ही, विषयों को उत्पन्न करते हैं और आत्मा अलिप्त रहकर इन सब गुणों का अधिष्ठाता है। कोई कहते हैं कि गुणों का नाश हो जाने पर वे फिर उत्पन्न हो जाते हैं और कोई कहते हैं कि तत्त्वज्ञान के प्रभाव से जब गुणों का नाश कर दिया जाता है तब वे फिर नहीं उत्पन्न हो सकते। क्योंकि यदि इन गुणों की फिर उत्पत्ति होती तो तत्त्वज्ञानी पुरुषों के कार्य गुणों के अनुयायी देखे जाते। मनुष्य इन दोनों मतों को ध्यान में रखकर, सिद्धान्त स्थिर करके, आत्मनिष्ठ होवे। आत्मा का आदि-अन्त नहीं है। आत्मा के स्वरूप को जानकर मनुष्य क्रोध, हर्ष और मत्सरता को छोड़ दे। देह में आत्माभिमान और अनित्य वस्तुओं का शोक न करके, सन्देहहीन होकर, परम सुख से रहे। तैरना न जाननेवाला मनुष्य जैसे नदी में डूब जाता और दुखी होता है वैसे ही अविवेकी मनुष्य आत्म-स्वरूप को न जानकर संसार-सागर में डूबता-उतराता रहता है। किन्तु जैसे तैराक मनुष्य तैरकर पार हो जाता है वैसे ही आत्म-तत्त्वज्ञ पुरुष संसार से मुक्त होकर क्लेश से छूट जाता है। मनुष्य को चाहिए कि संसार में प्राणियों के बन्ध-मोक्ष के विषय को तथा दोनों के तारतम्य को अच्छी तरह जानकर शान्ति प्राप्त करे। ब्राह्मणों को शान्ति प्राप्त करना और आत्मज्ञान उपार्जन करना चाहिए। यही दो
१० उन्हें मोक्ष देने के लिए पर्याप्त हैं। इन दोनों के प्राप्त हो जाने पर स्वभाव शुद्ध हो जाता है। आत्मा से बढ़कर ज्ञातव्य और कोई पदार्थ नहीं है। विद्वानों ने आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पद पाया है। परलोक में अविवेकी मनुष्यों को भय होता है किन्तु विवेकी पुरुषों को रत्ती भर भी भय नहीं है। विवेकी मनुष्य को जैसी सनातन गति मिलती है वैसी श्रेष्ठ गति और किसी को नहीं मिल सकती। कोई तो दोषी को देखकर उससे ईर्ष्या करते हैं और कोई उसको देखकर शोक करते हैं; किन्तु जो कार्य-अकार्य का विचार कर सकते हैं वे विवेकी कभी शोक नहीं करते। पहले किये हुए सकाम कर्मों को निष्काम कर्म नष्ट कर देते हैं; किन्तु ज्ञानी मनुष्य
१४ के, पूर्व जन्म के किये हुए, कर्म उसका प्रिय या अप्रिय कुछ नहीं कर सकते।

दो सौ पचास अध्याय

ज्ञान के उपाय बतलाना

शुकदेव ने कहा—पिताजी! आप उसी धर्म का वर्णन कीजिए जिससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है।

व्यासजी ने कहा—बेटा! मैं ऋषियों का बतलाया हुआ सर्वश्रेष्ठ प्राचीन धर्म बतलाता हूँ, मन लगाकर सुनो। मनुष्य यत्न से अपनी सन्तान के समान, कुमार्गगामी, इन्द्रियों का—

बुद्धि द्वारा—दमन करके एकाग्रचित्त हो जावे। मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही श्रेष्ठ तपस्या और सर्वोत्तम धर्म है। अतएव मनुष्य सांसारिक विषयों की चिन्ता को छोड़कर बुद्धि के द्वारा पाँच इन्द्रियों और मन को वश में करके शुद्धचित्त हो जावे। जब तुम्हारी इन्द्रियाँ बाहरी और भीतरी सब विषयों को त्यागकर परब्रह्म में स्थित हो जायँगी तब तुम अपने आत्मा में सनातन परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकोगे। ब्रह्मज्ञानी महात्मा ही सर्वव्यापी, निर्धूम अग्नि के समान, परब्रह्म के दर्शन पा सकता है। जैसे अनेक शाखाओंवाला फल-फूलों से युक्त वृक्ष यह नहीं समझ सकता कि उसके किस स्थान में फूल और किस स्थान में फल हैं वैसे ही उपाधि-युक्त जीव यह नहीं समझता कि मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ को जाऊँगा; किन्तु अन्तरात्मा सब कुछ देखता है। मनुष्य आत्मज्ञान-रूप प्रज्वलित दीपक के द्वारा परमात्मा को देख सकता है। अतएव तुम आत्मज्ञान के प्रभाव से परब्रह्म का साक्षात्कार करके, सर्वज्ञ होकर, देह का आत्मभाव त्याग दो। १०
जो मनुष्य केंचुल छोड़े हुए साँप की तरह सब पापों से छूट जाता है वह इस लोक में श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके फिर जन्म नहीं पाता और जीवन्मुक्त हो जाता है। भवसागर में जानेवाली देह-रूपी नदी अव्यक्त-रूप से उत्पन्न हुई है। पाँचों इन्द्रियाँ उसके जलजन्तु, मन और सङ्कल्प उसके किनारे, लोभ और मोह उसके तृण, काम और क्रोध उसके साँप, सत्य उसका घाट, मिथ्या उसकी चञ्चलता, क्रोध उसका कीचड़, जिह्वा उसका भँवर और वासना उसकी अथाह गहराई है। यह नदी सब स्थानों में बड़ी-बड़ी तरङ्गें फैलाती हुई सब जीवों को बहाये लिये जा रही है। जो मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत है वह कभी इस नदी को पार नहीं कर सकता। धैर्यवान् विवेकी मनुष्य ही इस नदी के पार उतर सकता है। तुम ज्ञान के बल से इस देह-रूपी नदी के पार उतरो। ऐसा करने से ही विषयों से मुक्त, आत्मज्ञानी और पवित्र होकर श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त करके ब्रह्मस्वरूप हो सकोगे। पहाड़ पर स्थित मनुष्य जैसे पृथिवी पर के लोगों से अलग होकर उन्हें देखता है वैसे ही अब तुम संसार से मुक्त होकर सबको देखो। हर्ष, क्रोध और निठुरता को छोड़ने पर ही सब प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश के मर्म को समझ सकोगे। धर्मात्मा तत्त्वदर्शी पण्डितों ने इस देह-नदी के पार उतरने को ही सब धर्मों से श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। आत्मज्ञानी संयमी अनुगत मनुष्यों को इस धर्म का उपदेश देना चाहिए। यह आत्मज्ञान का सर्वश्रेष्ठ अति गूढ़ विषय २०
मैंने तुम्हें बतला दिया। सुख-दुःख से हीन—भूत-भविष्य का कारण—परब्रह्म न तो पुरुष है, न स्त्री और न नपुंसक ही। क्या स्त्री, क्या पुरुष, जो कोई उसे जान लेता है उसे फिर संसार के बन्धन में नहीं रहना पड़ता। मैंने सब मतों का वर्णन विशेष रूप से कर दिया। जो मनुष्य इसके अनुसार काम करता है उसी को सिद्धि मिल सकती है। हे पुत्र, जिस तरह मैंने तुमको उपदेश दिया है उसी तरह दयावान् गुणवान् पुत्र के पूछने पर मनुष्य प्रसन्नता से उन्हें सदुपदेश करें। २५

दो सौ इक्यावन अध्याय

आत्मज्ञान के साधन और उसके उपाय बतलाना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! जो मनुष्य गन्ध, रस आदि विषयों में न तो आसक्त होता और न उनसे द्वेष ही रखता है, तथा जो कीर्त्ति और सम्मान नहीं चाहता वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है। केवल ऋक् यजु और सामवेद के पढ़ने, गुरु की सेवा करने और ब्रह्मचर्य रखने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। यथार्थ ब्राह्मण वही है जो सब प्राणियों पर दयालु, सर्वज्ञ और सब वेदों का विद्वान् होकर मृत्यु को अपने अधीन कर सकता है। विधि को छोड़कर केवल बड़ी दक्षिणावाले अनेक प्रकार के यज्ञ करने से ब्राह्मणत्व नहीं मिल सकता। जिससे किसी को डर न हो और जो स्वयं भी किसी प्राणी से न डरे, जिसे लोभ और द्वेष न हो और जो मन-वचन-कर्म से किसी का बुरा न चेते वही सच्चा ब्राह्मण है। संसार में विषयों के बन्धन के सिवा और कोई बन्धन नहीं है। विवेकी मनुष्य, घने बादलों से निकले हुए चन्द्रमा के समान, निष्पाप ब्रह्म-स्वरूप होकर धैर्यपूर्वक काल की प्रतीक्षा करता है। जिस मनुष्य की विषय-वासनाएँ, समुद्र में लीन हो गये नदियों के जल के समान, आत्मा में लीन हो जातीं हैं वही मोक्ष पा सकता है। विषयी मनुष्य मोक्ष पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। ब्रह्मज्ञ मनुष्य की सब वासनाएँ पूरी हो जाती हैं; किन्तु विषयाभिलाषी मनुष्य की इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होतीं। इच्छा होने के कारण वह स्वर्ग को जाता है और वहाँ से लौटकर संसार में जन्म लेता
१० है। वेद का रहस्य सत्य, सत्य का रहस्य इन्द्रिय-निग्रह, इन्द्रिय-निग्रह का रहस्य दान, दान का रहस्य तपस्या, तपस्या का रहस्य त्याग, त्याग का रहस्य आत्मज्ञान, आत्मज्ञान से बढ़कर समाधि और समाधि से बढ़कर ब्रह्मभाव की प्राप्ति है। विषय-वासना, शोक और सन्ताप ये सब मन को क्लेश देते हैं अतएव तुम सन्तुष्ट रहकर मोक्ष के उपाय सत्त्वगुण का अवलम्बन करो। जो मनुष्य शोक, मोह और ईर्ष्या को छोड़कर सन्तोष, शान्ति और प्रसन्नता का अवलम्बन करता है वही सच्चा ज्ञान प्राप्त करके मोक्षपद पा सकता है। जो मनुष्य श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा शोक-मोह-हीन आत्मा को जान लेता है वह अन्त में सर्वव्यापी ब्रह्म को प्राप्त करता है। ज्ञानी पुरुष जन्म-मरण-हीन निर्मल ब्रह्म को प्राप्त कर परम सुख पाता है। मन को स्थिर करके ब्रह्म में लगा देने पर जैसा सन्तोष होता है वैसा दूसरे किसी उपाय से नहीं हो सकता। जिसकी महिमा से भूखा और दरिद्र मनुष्य भी तृप्त होता तथा आश्रयहीन भी बलवान् हो सकता है उस परब्रह्म को जिसने जान लिया है वही यथार्थ वेदज्ञ है। जो इन्द्रियों को रोककर ध्यान में मग्न रहता है उसी को ब्रह्मज्ञ, शिष्ट और आत्माराम कहते हैं। जो विषय-वासना और प्राणियों के प्रति पक्षपात को छोड़कर सर्वश्रेष्ठ आत्मतत्त्व में लग जाता है उसका आत्मसुख चन्द्र-मण्डल के समान क्रमशः बढ़ता रहता है और दुःख ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य के उदय होने पर घना

अन्धकार। तब उस विषय-वासना-हीन कर्मत्यागी ब्रह्मज्ञ पुरुष का जन्म और मृत्यु कुछ नहीं २१
बिगाड़ सकते। वह राग-द्वेष-हीन और सर्वत्यागी होकर इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों को जीत लेता है। इस प्रकार जो देहादिभाव का त्याग करके परमब्रह्म को प्राप्त हो जाता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। २४

दो सौ बावन अध्याय

व्यासजी का शुकदेव से आकाश आदि महाभूतों के गुणों का वर्णन करना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! मान-अपमान के सहनेवाले, धर्मार्थ में तत्पर, मोक्ष-जिज्ञासु शिष्य को गुणवान् वक्ता पहले पूर्वोक्त वचन सुना दे, फिर उपदेश दे। आकाश, वायु, ज्योति, जल और पृथिवी तथा जन्म, मृत्यु और काल, ये सब प्राणियों में विद्यमान हैं। आकाश छिद्ररूप और श्रवण-इन्द्रिय आकाश रूप है। पण्डितों ने शब्द को आकाश का गुण बतलाया है। प्राण, अपान, त्वक्-इन्द्रिय और चलना-फिरना, ये वायु के कार्य हैं और स्पर्श उसका गुण है। आँच, पाक, प्रकाश, गरमी और आँखें तेज के कार्य हैं; ताम्र, गौर और कृष्ण आदि उसके गुण हैं। पसीना, द्रवीकरण, स्वाद, जिह्वा, रक्त और मज्जा आदि जल के कार्य हैं और रस उसका गुण है। धातु, हड्डी, दाँत, नख, दाढ़ी, रोएँ, बाल, नाड़ियाँ, स्नायु, चमड़ी आदि और घ्राण-इन्द्रिय, ये सब पृथिवी के कार्य हैं और गन्ध उसका गुण है। आकाश का गुण शब्द है; वायु के गुण शब्द और स्पर्श हैं; तेज के गुण शब्द, स्पर्श और रूप हैं; जल के गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस हैं; पृथिवी के गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। महर्षियों ने यही पञ्चभूत, उनके कार्य और गुण बतलाये हैं। मनुष्यों के शरीर में पञ्चभूत, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन, बुद्धि और जीवात्मा ये सब पदार्थ रहते हैं। बुद्धि निश्चयात्मक, मन संशयात्मक और देहाभिमानी जीव कर्म का आश्रय है। सत्ययुग आदि कालकृत पुण्य-पाप से युक्त होने पर भी जीव यदि अपने को उनसे अलिप्त समझता है तो उसे मोहित नहीं होना पड़ता। १२

दो सौ तिरपन अध्याय

योगियों की प्रशंसा और उनके प्रभाव का वर्णन

व्यासजी ने कहा—बेटा, योगी लोग शास्त्र में बतलाये हुए योग आदि कर्मों के द्वारा देहहीन परमात्मा के दर्शन करते हैं। जैसे आकाश में सूर्य की किरणें स्थूल दृष्टि से न देखी जाकर युक्ति से उनका अनुमान किया जाता है वैसे ही स्थूल शरीर को छोड़कर संसार में घूमते हुए जीवों को स्थूल दृष्टि से नहीं देखा जा सकता; वे ज्ञान दृष्टि से ही देख पड़ते हैं। जितेन्द्रिय योगी लोग, पानी में सूर्य की परछाहीं के समान, जीवित शरीर में प्रकाशित लिङ्ग-शरीर को

देखते हैं। जो जाग्रत् और स्वप्नावस्था में मन के कल्पित काम आदि को और योगैश्वर्य को त्यागकर योग करता है वही लिङ्ग-शरीर को अपने अधीन कर सकता है। उसी का जीव महत्तत्त्व, अहङ्कार, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, इन सात गुणों से युक्त होने पर भी जन्म-मृत्यु को जीतकर इन्द्र आदि लोकों में विचरता है। जो मनुष्य मन और बुद्धि के वश में रहता है वह अन्य प्राणियों को अपने से पृथक् समझता है, स्वप्न में जाग्रत् अवस्था के समान पदार्थों को देखता है, पुण्य-पाप करता है, सुख-दुःख भोगता है, काम-क्रोध के वश में रहकर इच्छाओं से युक्त रहता और बहुत सा धन पाकर सन्तुष्ट होता है। जीव माता के गर्भ में दस महीने रहकर, खाये हुए अन्न की तरह, पच नहीं जाता। ईश्वर के अंशस्वरूप, सब प्राणियों के हृदय में रहनेवाले, जीवात्मा को रज और तमोगुण से युक्त मनुष्य किसी उपाय से नहीं देख सकता। जो मनुष्य योग करके जीवात्मा के दर्शन करना चाहे उसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर का अतिक्रमण करना चाहिए। महर्षियों ने संन्यासियों के भिन्न-भिन्न कर्म बतलाये हैं; किन्तु शाण्डिल्य मुनि ने शान्ति देनेवाली समाधि को ही सर्वश्रेष्ठ कहा है। मनुष्य महत्तत्त्व, अहङ्कार, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन सात गुणों का, प्रकृति के विकार संसार का तथा सर्वज्ञता, नित्यतृप्ति, नित्यबोध, स्वाधीनता, अलुप्तदृष्टि और अनन्तशक्ति, इन छः गुणों से युक्त परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।

दो सौ चौवन अध्याय

काम आदि दोषों की शक्ति बतलाना

व्यासजी ने कहा—बेटा, लोभी मनुष्य लोहे की ज़ंजीररूपी शरीर और विषय-वासनाओं में बँधे रहने के कारण हृदय में स्थित काम-वृक्ष को चारों ओर से घेरकर—फल पाने की इच्छा से—उसकी उपासना करते हैं। यह महावृक्ष मोह से उत्पन्न होता है। क्रोध और अभिमान उसके स्कन्ध हैं, कर्तव्य की इच्छा उसका थाला है, अज्ञान उसकी जड़ है, प्रमाद उसके सींचने का जल है, ईर्ष्या उसके पत्ते हैं, पूर्व जन्म के किये हुए पाप उसका सार है, मोह और चिन्ता उसकी छोटी डालियाँ हैं, शोक उसकी बड़ी डाली और भय उसका अङ्कुर है। मोहजनक तृष्णारूप लताएँ उस वृक्ष से लिपटी रहती हैं। जो मनुष्य मोहपाश से छूटकर इस वृक्ष को काट सकता है वही सुख दुःख से अपने को बचा सकता है। जो मनुष्य भोग्य विषय के द्वारा इस वृक्ष को बढ़ाता है वह, विष से मरे हुए रोगी के समान, इन विषयों द्वारा नष्ट हो जाता है। पुण्यात्मा मनुष्य इस बद्धमूल वृक्ष की अज्ञान-रूप जड़ को योग के बल से, समाधि-रूप तलवार द्वारा, काट डालते हैं। जो मनुष्य जन्म-मृत्यु-रूप बन्धन को काम्य कर्मों का फल समझकर उससे निवृत्त हो जाता है उसे दुःख नहीं सहना पड़ता। महर्षियों ने शरीर को नगर-स्वरूप बतलाया

है। बुद्धि उसकी स्वामिनी और मन उस बुद्धि का मन्त्री है। इन्द्रियाँ उस नगर की प्रजा हैं, ये बुद्धि के भोग करने के लिए काम करती हैं। उस नगर में रज और तम नाम के दोष भी रहते हैं। बुद्धि, मन और इन्द्रिय आदि पुरवासी इन दोषों के कारण सुख-दुःख भोगते हैं। १०
राजस और तामस अहङ्कार अनुचित मार्ग से उत्पन्न सुख-दुःख का आश्रय करते हैं। उस नगर में—विकृत मन के साथ मिलकर—बुद्धि भी दूषित हो जाती है और इन्द्रियाँ, उस विकृत मन के डर से, चञ्चल हो जाती हैं। दूषित बुद्धि जिस विषय को हितकर समझती है वह विषय, अनिष्ट फल देकर, नष्ट हो जाता है और मन उस नष्ट वस्तु का स्मरण करके बहुत दुखी होता है। मन के दुखी होने पर बुद्धि पीड़ित होती है और बुद्धि के पीड़ित होने पर आत्मा को दुःख होता है। सारांश यह कि मन ही, रजोगुण के साथ मित्रता करके, आत्मा और इन्द्रिय आदि पुरवासियों को दुःख में डाल देता है। १४

दो सौ पचपन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से पृथिवी आदि महाभूतों के गुणों का फिर वर्णन करना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इसके बाद प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी वेदव्यासजी ने अपने पुत्र शुकदेव से फिर जिस प्रकार पञ्चभूतों का वर्णन किया था उसको ध्यान लगाकर सुनो। स्थिरता, गुरुता, कठिनता, उत्पन्न करने की शक्ति, गन्ध, सूँघने की शक्ति, सङ्घात, सब प्राणियों का आश्रय, सहनशीलता और स्थूलता, ये सब पृथिवी के गुण हैं। शीतलता, क्लेद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, प्रस्रवण, जिह्वा, बर्फ़ और ओले के रूप में जम जाना तथा चावल आदि को पकाना, ये सब जल के गुण हैं। दुर्धर्षता, जलाना, ताप, पाक, प्रकाशन, शोक, राग, शीघ्रगामिता, तीक्ष्णता और ऊपर को चलना, ये अग्नि के गुण हैं। स्पर्श, वाक् इन्द्रिय का स्थान, चलने में स्वतन्त्रता, शीघ्रगामिता, शूरता, छोड़ना, फेंकना, श्वास आदि लेना, जन्म और मरण, ये सब वायु के गुण हैं। शब्द, सर्वव्यापकता, छिद्र-सम्पन्नता, अनाश्रयता, अनालम्बता, अव्यक्तता, विकृति, अविकारिता, अप्रतिघात और भूतत्व, ये आकाश के गुण हैं। पञ्चमहाभूत इन पचास गुणों से अलङ्कृत हैं। तर्क-वितर्क-कौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, सहिष्णुता, भले-बुरे कामों में प्रवृत्ति का होना और चञ्चलता, ये मन के गुण हैं। सुषुप्ति, उत्साह, चित्त की एकाग्रता, सन्देह और प्रत्यक्ष आदि का प्रमाणित कराना, ये पाँच गुण बुद्धि के हैं। १०

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! बुद्धि को पाँच गुणों से युक्त कैसे समझा जावे और इन्द्रियों को ही पञ्चमहाभूतों का गुण कैसे मान लिया जाय?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! बुद्धि के पाँच गुण पहले मैंने बतलाये हैं सही, किन्तु वास्तव में बुद्धि के साठ गुण हैं। पञ्चमहाभूत और पञ्चमहाभूतों के जो पचास गुण बतलाये हैं उन सबको

तथा निद्रा, उत्साह आदि पाँचों को मिलाने से बुद्धि के साठ गुण होते हैं। ये सब गुण चैतन्य के साथ मिले हुए हैं। इन गुणों की सृष्टि परमेश्वर ने की है। ये सब अनित्य हैं। संसार की उत्पत्ति के विषय में पहले जितने मत दिखलाये गये हैं वे सब वेद-विरुद्ध और विचार-
१३ दूषित हैं। मैंने जो वेदोक्त मत बतलाया है इसे समझकर तुम बुद्धि को शान्त कर लो।

दो सौ छप्पन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से नारद और अकम्पन का संवाद तथा नारद का अकम्पन से ब्रह्मा और महादेव का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले भीमपराक्रमी राजा लोग अपने समान तेजस्वी वीरों द्वारा मारे जाकर रणभूमि में पड़े हुए हैं। उनका मारनेवाला कोई दूसरा नहीं है। इस समय ये जो महाबली राजा मरे पड़े हैं, इनको मरा हुआ क्यों समझा जाय? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह हुआ है। अतएव मुझे बतलाइए कि मृत्यु क्या है, वह किस पुरुष से उत्पन्न हुई है और सब प्राणियों का संहार क्यों करती है।

भीष्म ने कहा—बेटा, सत्ययुग में अकम्पन नाम का एक राजा संग्राम में हारकर शत्रु के अधीन हो गया था। उसके हरि नाम का, नारायण के समान बलवान्, एक पुत्र था। वह पुत्र सेना के साथ संग्राम में मारा गया। महाराज अकम्पन शत्रु के वश में होने और पुत्र के मारे जाने के कारण बड़े दुखी हुए। उन्होंने एक बार महर्षि नारद को देखकर पुत्र के
१८ मारे जाने और शत्रु के हाथ में अपने पड़ने का सब हाल उनसे कहा।

सब हाल सुनकर दयालु महर्षि नारद ने पुत्र का शोक हटाने योग्य एक कथा उनसे कही कि महाराज, मैंने एक कथा सुनी है वह तुम्हें सुनाता हूँ। एक बार प्रजा की संख्या बढ़ते देखकर ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोच-विचार करने लगे कि इस समय संसार असंख्य जीवों से भर गया है, अब इसका संहार कैसे होगा। जब संसार के संहार करने का कोई उपाय उनकी समझ में न आया तब वे बड़े कुपित हुए। क्रोध के मारे उनकी इन्द्रियों से आग निकलने लगी। ब्रह्माजी के उस क्रोधानल से दसों दिशाएँ जलने लगीं।

ब्रह्माजी के कोपानल में स्थावर-जङ्गम प्राणियों से परिपूर्ण पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश-मण्डल को जलते देखकर वेदपति यज्ञेश्वर महादेव, प्रजा का हित करने के लिए, ब्रह्माजी की शरण में गये। उनको देखकर ब्रह्माजी ने कहा—महेश्वर! तुम जिस मनोरथ से मेरे पास
२१ आये हो वह बतलाओ, मैं उसे पूरा करूँगा।

दो सौ सत्तावन अध्याय

ब्रह्मा और महादेव का संवाद। मृत्यु को उत्पन्न करके प्राणियों के संहार की आज्ञा देना

महादेव ने कहा—ब्रह्मन्, मेरी प्रार्थना है कि आप प्रजा की सृष्टि करें। यह सारी प्रजा आपकी ही उत्पन्न की हुई है, इसलिए इस पर कोप करना आपको उचित नहीं। हे देव, आपके तेज से प्रजा जली जा रही है, यह देखकर मुझे बड़ी दया आती है। अब आप उस पर क्रोध न करें।

ब्रह्मा ने कहा—महेश्वर, न तो मैंने प्रजा पर क्रोध किया है और न मैं प्रजा का नाश ही करना चाहता हूँ। मैं तो केवल पृथ्वी का भार हलका करने के लिए प्रजा का नाश कर रहा हूँ। यह पृथ्वी प्राणियों के बोझ से रसातल में धँसी जा रही है। इसकी प्रार्थना सुनकर मैं सोचने लगा कि प्रजा का संहार किस प्रकार करूँ। जब बहुत सोचने पर भी मुझे कोई उपाय न सूझ पड़ा तब मुझे क्रोध आ गया।

महादेव ने कहा—भगवन्, अब आप प्रसन्न हों। इस स्थावर-जङ्गमरूपी सारी प्रजा का नाश न करें। देखिए, ये चर-अचर चारों प्रकार के जीव नष्ट हो रहे हैं। संसार में हाहाकार मच गया है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इन प्राणियों पर दया करें। प्रजा का नाश हो जाने पर फिर वह नहीं लौट सकती। अब आप अपने तेज के प्रभाव से इस अपने तेज का नाश कीजिए। प्रजा के हित के लिए ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें सारी प्रजा भस्म न हो जावे। आपने मुझे अधिदेव नियुक्त किया है, इसलिए ऐसा उपाय कीजिए १०
जिसमें प्रजा का समूल विनाश न हो और वह बार-बार मरती और पैदा होती रहे।

महादेव के ये वचन सुनकर ब्रह्माजी ने कृपापूर्वक अपने तेज को शान्त करके प्राणियों के जन्म-मरण का नियम स्थापित कर दिया। उन्होंने जब क्रोध से उत्पन्न अपने तेज को शान्त किया तब उनकी इन्द्रियों से—पीले रङ्ग के कपड़े पहने हुए, काली आँखोंवाली दिव्य कुण्डलधारिणी, दिव्य आभूषण पहने—एक कन्या उत्पन्न होकर दक्षिण दिशा में बैठ गई। ब्रह्मा और महादेव उसको देखने लगे। इसके बाद ब्रह्माजी ने उस कन्या को बुलाकर कहा—मृत्यु, तुम इस सम्पूर्ण प्रजा का [क्रम से] नाश किया करो। प्रजा का नाश करने के लिए ही मैंने, क्रोध करके, तुम्हारा स्मरण किया है। अतएव तुमको मेरी आज्ञा से पण्डित और मूर्ख सभी का नाश करना पड़ेगा। तुम्हारा कल्याण हो। कमल की माला पहने हुए मृत्यु यह बात सुनते ही, दुखी होकर, आँसुओं की धारा बहाने और उसे अपने हाथों में लेने लगी। २२

दो सौ अट्ठावन अध्याय

मृत्यु और ब्रह्मा का संवाद सुनाकर नारद का अकम्पन के पुत्रशोक को दूर करना

नारदजी ने कहा कि महाराज! इसके बाद विशाल नेत्रोंवाली मृत्यु ने किसी तरह अपने दुःख को रोककर, हाथ जोड़कर, विनीत भाव से ब्रह्माजी से कहा—भगवन्, मुझ जैसी स्त्री आपसे उत्पन्न होकर किस तरह सब प्राणियों को भयभीत करती हुई क्रूर कर्म कर सकेगी? मैं अधर्म से बहुत डरती हूँ, अतएव आप कृपा करके मुझे कोई ऐसा काम बतलाइए जो धर्मानुकूल हो। बालक, बूढ़े और जवान मनुष्यों ने मेरा क्या अपराध किया है, जो मैं उनका नाश करूँ? मनुष्यों के प्रिय पुत्रों, मित्रों, माता-पिता और भाइयों का नाश मैं न कर सकूँगी। मेरे हाथ में पड़कर मनुष्य बड़े दुखी होंगे और मुझे शाप दे देंगे। उन बेचारों के आँसू मुझे अनन्त काल तक दुःख देंगे। इसी से मैं बहुत डरती हूँ और आपकी शरण हूँ। पापियों को यम के यहाँ पहुँचाने का काम मुझे करना पड़ेगा। अतएव मेरी यही प्रार्थना है कि आप कृपा करके प्राणियों के नाश करने का काम मुझे न सौंपें। अब मैं आपको प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने जा रही हूँ।

ब्रह्माजी ने कहा—हे मृत्यु, मैंने प्रजा का संहार करने के ही लिए तुम्हें उत्पन्न किया है अतएव तुम शीघ्र जाकर अपना काम करो। मैंने जो कुछ कह दिया है उसमें उलट-पलट नहीं हो सकता। ब्रह्माजी के यों कहने पर मृत्यु ने कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप उनके मुँह की ओर देखने लगी। प्रजा का नाश करने की ब्रह्माजी की बार-बार आज्ञा सुनकर वह मुरदा सी हो गई। मृत्यु की यह दशा देख, क्रोध त्याग करके ब्रह्माजी प्रसन्नता से मुसकुराकर प्रजा की ओर देखने लगे।

ब्रह्माजी का क्रोध शान्त होने पर मृत्यु, प्रजा का संहार करने की बात न मानकर, गो-तीर्थ को चली गई। वहाँ एक पैर से खड़े होकर उसने पन्द्रह पद्म वर्ष तक कठिन तपस्या की। तब ब्रह्माजी ने फिर मृत्यु से कहा कि मृत्यु, तुम अब मेरी आज्ञा मान लो; किन्तु मृत्यु उसे स्वीकार न करके फिर बीस पद्म वर्ष तक एक पैर से खड़ी रही। इसके बाद वह दस हज़ार पद्म वर्ष तक, पशुओं के साथ, वन में घूमती रही और बीस हज़ार वर्ष केवल वायु का भक्षण करके, आठ हज़ार वर्ष पानी में खड़े रहकर, उसने मौन व्रत धारण किया। फिर गण्डकी नदी के किनारे जाकर वह जल और वायु का भक्षण करती हुई तपस्या करने लगी। प्रजा का हित करने के लिए वह भागीरथी के किनारे और सुमेरु पर्वत पर घूमती हुई पत्थर के समान निश्चल रहने लगी। इसके बाद हिमालय की जिस चोटी पर देवता लोग यज्ञ करते हैं वहाँ जाकर, ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए, निखर्व वर्ष तक अँगूठे के बल खड़ी रही।

तब ब्रह्माजी ने उसके पास जाकर कहा—बेटी, तुम तप के झमेले में क्यों पड़ी हो? मैंने जो कहा है वही करो। मृत्यु ने कहा—भगवन्, मैं प्रजा का संहार न कर सकूँगी। मैं आपको प्रसन्न करने के लिए फिर तप करूँगी। यह सुनकर और उसे अधर्म के डर से डरी

हुई देखकर ब्रह्माजी ने फिर कहा—कल्याणी, प्रजा का संहार करने से तुमको रत्ती भर भी अधर्म नहीं होगा। तुम बेखटके प्रजा का संहार करो। मैंने जो कहा है उसके विरुद्ध कभी नहीं हो सकता। प्रजा का संहार करके तुम सनातन धर्म प्राप्त करोगी। अन्यान्य देवताओं समेत मैं तुम्हारा हित करता रहूँगा। अब मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार यह वर देता हूँ कि प्रजा रोग से पीड़ित होकर मरेगी, वह तुमको दोष नहीं देगी। तुम पुरुष होकर पुरुषों का, स्त्री होकर स्त्रियों का और नपुंसक होकर नपुंसकों का संहार करो।

३०

ब्रह्माजी के यों कहने पर मृत्यु ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, मैं यह काम न कर सकूँगी। तब पितामह ने फिर कहा—मृत्यु, तुम निडर होकर प्रजा का संहार करो। मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे तुमको अधर्म न लगे। तुमने जो अपने आँसुओं को हाथों मे ले लिया था वे सब रोग बनकर यथासमय प्राणियों का नाश करेंगे। जीवों के मरने के समय तुम उनके मन में काम और क्रोध को पैदा कर देना। वही मनुष्यों के नाश का साधन होंगे। तुममें राग और द्वेष नहीं है, इससे तुमको अधर्म नहीं बल्कि धर्म होगा। अतएव तुम इस धर्म का पालन करो। अब अपना अधिकार लेकर जीवों का संहार करना ही तुम्हारा कर्तव्य है।

ब्रह्माजी के शाप से डरकर विवश हो मृत्यु ने प्राणियों का संहार करना स्वीकार कर लिया। तभी से मृत्यु, काम और क्रोध को प्रेरित करके, जीवों का नाश करती आ रही है। मृत्यु के आँसुओं की बूँदें रोग हैं। इन्हीं रोगों से मनुष्य रोगी हो जाते हैं। अतएव प्राणियों के मरने पर शोक करना व्यर्थ है। जैसे मनुष्यों की इन्द्रियाँ, सोते समय, विषयों से अलग हो जाती हैं और जागने पर फिर अपने-अपने विषय में लग जाती हैं वैसे ही मनुष्य परलोक को जाता और फिर वहाँ से लौट आता है। भीषण शब्द करनेवाला महातेजस्वी वायु, जीवों का जीवन-स्वरूप होकर, प्राणियों के शरीर में अनेक प्रकार से स्थित रहता है। इसी से वायु को ही इन्द्रियों का स्वामी कहते हैं। समय-समय पर देवता तो मनुष्य और मनुष्य देवता ४०

होते रहते हैं। आपका पुत्र स्वर्ग में सुख से रहता है, अतएव आप उसके लिए शोक न कीजिए। महाराज! मृत्यु इस प्रकार ब्रह्माजी से उत्पन्न हुई है और अपने आँसुओं की बूँदों की
४२ सहायता से, समय आने पर, प्राणियों का संहार करती है।

दो सौ उनसठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को धर्म के लक्षण बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, साधारण मनुष्य धर्म के विषय में दुविधा में पड़े हुए हैं; वे नहीं जानते कि धर्म क्या पदार्थ है और कहाँ से उत्पन्न हुआ है। इस लोक में कल्याण के लिए जो काम किया जाता है वही धर्म है या परलोक के निमित्त जो किया जाता है वह धर्म है अथवा लोक-परलोक दोनों के लिए किये जानेवाले कामों को धर्म कहते हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! वेद, स्मृति, सदाचार और अर्थ (उपकार) इन चारों से धर्म का ज्ञान होता है। मनुष्य आरम्भ किये हुए धर्म का, निर्णय करके, पालन करते हैं। लोक-व्यवहार के लिए धर्म की मर्यादा स्थापित हुई है। धर्म करने से इस लोक में और परलोक में सुख मिलता है। जो मनुष्य धर्म की परवा नहीं करता उसे निस्सन्देह पाप भोगना पड़ता है। पापी को पाप से कभी छुटकारा नहीं मिलता; किन्तु कोई-कोई मनुष्य विपत्ति के समय पाप करने पर निष्पाप और झूठ बोलने पर भी सत्यवादी तथा धार्मिक कहलाते हैं। सदाचार धर्म का आश्रय है, उसी सदाचार का अवलम्बन करने से धर्म का ज्ञान होता है। [मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे अपना पाप तो छिपाये रहते हैं; किन्तु दूसरों के पाप प्रकट कर देते हैं।] अराजक राज्य में चोरी करके चोर बेधड़क अपने को धर्मात्मा बतलाता है; किन्तु जब उसका धन दूसरा चुरा लेता है तब वह राजा के पास जाकर उस चोर का नाम बतला देता है। उस समय भी उसे अपने धन में सन्तुष्ट मनुष्यों का धन चुराने का लोभ रहता है। जिसका स्वभाव शुद्ध है और जो अपने को सर्वथा निर्दोष समझता है वह निडर होकर राज-द्वार पर जा सकता है। मनुष्यों को हमेशा सत्य बोलना चाहिए। सत्य से बढ़कर कुछ
१० नहीं है। सत्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है। पापी और उग्र स्वभाववाले मनुष्य भी सत्य के प्रभाव से नियम बनाकर, एक-दूसरे की बुराई न करके, परस्पर एकता स्थापित कर सकते हैं। वे यदि मर्यादा को तोड़ दें तो निस्सन्देह परस्पर नष्ट हो जावें। दूसरों का धन न चुराना चाहिए, यह सनातन धर्म है। कोई-कोई बलवान् मनुष्य दूसरों का धन न चुराने को दुर्बलता समझते हैं। दैव ऐसे लोगों के प्रतिकूल है। संसार में कोई मनुष्य सबसे बढ़कर बलवान् या सुखी नहीं है। अतएव सबको सरलस्वभाव रहना चाहिए। जो किसी का बुरा न चेत-कर पवित्र भाव से निडर रहता है उसे चोर, बदमाश और राजा का डर नहीं रहता। बस्ती में

आये हुए हिरन के समान चोर सबसे डरता रहता है और अपनी तरह दूसरों को भी पापी समझता है। जिसका स्वभाव शुद्ध है वह प्रसन्नता से सब जगह बेधड़क घूमा करता है और कभी किसी से अपना अनिष्ट होने का सन्देह नहीं करता। जो सब प्राणियों का भला चाहते हैं उन्होंने दान धर्म का विधान किया है। किन्तु धनी लोग, दैव के प्रतिकूल होने के कारण, इस विधान को दरिद्रों का बनाया हुआ समझते हैं। उनका यह समझना उचित नहीं। संसार में सबसे बढ़कर धनवान् और सुखी कोई नहीं हो सकता। जब मनुष्य दूसरों के द्वारा किया हुआ अपना अनिष्ट नहीं सह सकता तब क्या उसे दूसरों का अनिष्ट करना चाहिए? जो मनुष्य २०
स्वयं किसी स्त्री का उपपति हो उसे दूसरे का दोष सह लेना चाहिए; किन्तु वह किसी दूसरे को उस स्त्री का उपपति होते देखकर उसके दोष को सहन नहीं कर सकता। जो मनुष्य स्वयं जीवित रहना चाहता हो उसे दूसरे के प्राण लेना कदापि उचित नहीं। मनुष्य अपने लिए जो-जो बातें हितकर समझे, वैसा ही दूसरों के लिए भी समझना चाहिए। अपने मतलब भर के लिए धन रखकर और सब दरिद्रों को दे दिया करे। इसी से, धन की वृद्धि के लिए, 'कुसीद' वृत्ति बनाई गई है। जिस मार्ग पर चलने से देवताओं का साक्षात्कार होता है उसी मार्ग पर हमेशा चले। यदि किसी तरह का स्वार्थ न हो तो भी धर्म के ही मार्ग पर चलना चाहिए। विद्वानों ने हिंसा का त्याग करके शान्ति-मार्ग का अवलम्बन करने को ही धर्म बतलाया है। हे धर्मराज, मैंने इस समय धर्म-अधर्म के जो लक्षण बतलाये हैं इन्हीं को तुम ठीक समझो। विधाता ने धर्म को दया-प्रधान बतलाया है। सज्जन लोग उसी परम धर्म को प्राप्त करने के लिए सदा सावधान रहते हैं। मैंने धर्म का यह स्वरूप बतला दिया। तुम इसे ध्यान में रखकर सरलता का अवलम्बन करो। कभी छल का काम न करना। २७

दो सौ साठ अध्याय

धर्म की प्रामाण्यता पर युधिष्ठिर का आक्षेप

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने वेदोक्त सूक्ष्म धर्म के जो लक्षण बतलाये उनको मैं समझ गया। मैं अनुमान से उसको कह भी सकता हूँ। मेरे हृदय में उठी हुई शङ्काओं का समाधान आपने कर दिया। अब मैं कुतर्क न करके एक और प्रश्न करता हूँ। जिस धर्म के प्रभाव से प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है वह केवल शास्त्र के पढ़ने से नहीं मालूम हो सकता। विपत्तिहीन मनुष्यों का जो धर्म है वही धर्म विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के लिए नहीं है। विपत्तियाँ असंख्य हैं इसलिए आपद्धर्म भी अनेक प्रकार के हैं। अतएव शास्त्र के पढ़ने से सब आपद्धर्म कैसे जाने जा सकते हैं? शास्त्र में सज्जनों के आचरण को धर्म और जो उस धर्म का आचरण करते हैं उनको सज्जन कहा है। इस लक्षण से प्रकट

है कि कर्म और सज्जन का सापेक्ष सम्बन्ध है। इससे, इस लक्षण के द्वारा, यह नहीं जाना जा सकता कि सज्जन कौन है, और धर्म क्या है। देखिए, मोक्ष पाने की इच्छा से धर्म की वृद्धि के लिए वेदान्त आदि सुनने से शूद्रों को अधर्म होता है और यज्ञ के लिए हिंसा करना महर्षियों का धर्म है। तो फिर धर्म का निर्णय किस तरह किया जा सकता है? प्रत्येक युग में वेदों का ह्रास होता रहता है इस कारण सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारों युगों का धर्म अलग-अलग है। जब इस तरह समय-समय पर वैदिक धर्म बदलता रहता है तब वेदवाक्यों को यथार्थ बतलाना केवल मनुष्यों का मनोरञ्जन करना है। वेद से ही स्मृतियाँ निकली हैं, अत-
१० एव यदि वेद अप्रामाणिक है तो उनसे उत्पन्न स्मृतियों का भी प्रमाण नहीं माना जा सकता। कभी-कभी ऐसा होता है कि धार्मिक लोगों के किसी धर्म में प्रवृत्त होने पर बलवान् दुरात्मा उसके जिस अंश में विघ्न डालते हैं उतना अंश उस समय नष्ट हो जाता है। इसलिए धर्म का निर्णय करना सरल काम नहीं है। सारांश यह कि मुझे मालूम हो या न हो और दूसरों के उपदेश करने पर समझ में आवे या न आवे, धर्म का मर्म छुरे की धार से भी बढ़कर सूक्ष्म और पहाड़ से भी अधिक वज़नी है। यज्ञ आदि धर्म पहले तो गन्धर्वों के नगर के समान अद्भुत मालूम होते हैं किन्तु जब पण्डित लोग उन्हें अनित्य बतलाते हैं तब वे बिलकुल तुच्छ जान पड़ते हैं। मनुष्य गायों के पानी पीने के लिए छोटा गड्ढा और खेत सींचने के लिए नहरें खोदते हैं; जैसे ये सब धीरे-धीरे सूख जाते हैं वैसे ही वैदिक धर्म प्रत्येक युग में क्षीण होता हुआ कलियुग में बिलकुल नष्ट हो जाता है। पाखण्डी लोग अग्निहोत्र आदि कर्म कराते, वेतन लेकर विद्या पढ़ाते और अन्यान्य काम करने के लिए अनुचित आचरण करते हैं। सज्जन लोग जिस काम को धर्म समझते हैं उसे मूर्ख लोग प्रलाप समझकर और सज्जनों को पागल कहकर उनकी दिल्लगी उड़ाते हैं। देखिए, आचार्य द्रोण आदि महात्माओं ने अपने धर्म को त्यागकर क्षात्रधर्म का आश्रय किया था। अतएव सबका हितकारी धर्म कहीं व्यवहृत नहीं होता। कोई-कोई क्षत्रिय, ब्राह्मणों के धर्म का पालन करके, क्षात्रधर्म पर चलनेवाले ब्राह्मण की निन्दा करते हैं और कोई-कोई ब्राह्मण ब्रह्मधर्म और क्षत्रिय-धर्म दोनों को उचित कहते हैं, अतएव धर्म धोखे की जड़ है। मुझे तो यह जान पड़ता है कि वेद और स्मृति धर्म के निर्णायक नहीं हैं। प्राचीन
२० विद्वान् लोग जिसे धर्म बतला गये हैं वही आज धर्म कहलाता है।

दो सौ इकसठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जाजलि और तुलाधार का संवाद सुनाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं इस विषय में तुमको तुलाधार और जाजलि का संवाद सुनाता हूँ। जाजलि नामक एक ब्राह्मण, समुद्र-किनारे जाकर, कठिन तपस्या करने लगे। इन

बुद्धिमान् संयमी ब्राह्मण ने चीर, मृगछाला और जटा धारण करके—भस्म लगाकर—नियमित भोजन करते हुए बहुत वर्षों तक तप किया। एक बार ये महातेजस्वी जाजलि, तप के प्रभाव से, जल में स्थित होकर ध्यान के बल से सब लोकों को देखकर मन ही मन यह सोचने लगे कि संसार में मेरे समान कोई नहीं है। जल में स्थित होकर आकाश के ग्रह-नक्षत्र आदि के जानने में मेरे सिवा कोई समर्थ नहीं है।

तपस्वी जाजलि के यों कहते ही पिशाचगण बोल उठे—महाशय, आपका यह सोचना ठीक नहीं। काशी में तुलाधार नाम के एक महायशस्वी व्यापारी रहते हैं, वे भी ऐसी बात नहीं कह सकते।

यह सुनकर महातपस्वी जाजलि ने कहा कि राक्षसो, मैं उन वणिक्-धर्मावलम्बी यशस्वी तुलाधार के दर्शन करना चाहता हूँ। तब राक्षसों ने उन्हें समुद्र से निकालकर कहा कि द्विजोत्तम, तुम इस मार्ग से काशी को चले जाओ। राक्षसों के बताये हुए मार्ग से चलकर महर्षि जाजलि ने, काशी में पहुँचकर, तुलाधार के दर्शन किये। १०

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जाजलि ने पहले कौन सा कठिन काम किया था जिससे उन्हें उक्त सिद्धि प्राप्त हुई?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! वानप्रस्थी महातेजस्वी जाजलि कठोर तपस्या करते हुए सन्ध्या और प्रातः-काल स्नान, हवन, एकाग्रचित्त होकर वेदपाठ और पृथिवी पर शयन करते थे। गरमी में खुली जगह में रहते और सरदी के दिनों में पानी में रहकर घोर कष्ट सहते थे; किन्तु यह न सोचते थे कि 'मैं धार्मिक हूँ'। वे बरसात के दिनों में आकाश से गिरती हुई जल की धारा में भीगते रहते थे। हमेशा वन में घूमते रहने के कारण उनकी जटाओं में धूल भर गई थी और बाल उलझ गये थे। इसके बाद वे वायु का भक्षण करते हुए काठ की तरह अचल खड़े हो गये। तब उन्हें लकड़ी समझकर उनकी जटाओं के बीच चिड़ियों ने घोंसले बना लिये; किन्तु दयालु महर्षि २०

जाजलि ने इसकी परवा न की। वे ठूँठ की तरह खड़े थे और चिड़ियों का जोड़ा उनके सिर पर अपने घोंसले में बेखटके रहता था। बरसात बीतने पर शरद् ऋतु में काम से मोहित हो उस गौरैया ने गर्भ धारण किया और महर्षि के सिर पर अण्डे दिये। यह जानकर भी धर्मात्मा ब्राह्मण को कुछ घबराहट न हुई। गौरैयों का जोड़ा भी बड़ी प्रसन्नता से इधर-उधर घूमता और फिर अपने घोंसले में आकर, बेखटके, जाजलि के सिर पर रहता था। कुछ दिनों बाद अण्डे पुष्ट हो गये, उन्हें फोड़कर बच्चे निकल आये। बच्चे भी वहीं रहकर बढ़ने लगे; किन्तु व्रतधारी धर्मात्मा जाजलि अटल भाव से खड़े रहे। धीरे-धीरे बच्चों के पर निकल आये। उन्हें देखकर महर्षि को बड़ी प्रसन्नता हुई। गौरैयों का जोड़ा अपने बच्चों को बढ़ते देख बहुत प्रसन्न होता था और ऋषि के सिर पर बड़ी खुशी के साथ रहता था। कुछ दिनों बाद जाजलि ने सन्ध्या के समय बच्चों को अपने मा-बाप के साथ इधर-उधर उड़ते देखा। इसके बाद वे माता-पिता को छोड़कर अकेले उड़ जाने लगे। कभी सारा दिन बिताकर साँझ को अपने घोंसले में आते और कभी पाँच-पाँच, छः-छः दिन बाद लौटते थे। इतने पर भी महात्मा जाजलि को रत्ती भर भी घबराहट नहीं हुई। इस तरह बच्चों ने उड़ने का अभ्यास कर लिया। जब वे बच्चे जाजलि के सिर पर से उड़कर कहीं चले गये और एक महीने तक नहीं लौटे तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपने को सिद्ध समझने लगे। उनके सिर पर बच्चे पैदा हुए और वहीं बड़े होकर अपनी इच्छा के अनुसार उड़ गये, यह सोच करके जाजलि के आनन्द की सीमा न रही। अब वे नदी में स्नान और अग्नि में हवन करके उदय होते हुए सूर्य के सामने खड़े होने लगे।

अपने सिर पर चिड़ियों के बच्चे पैदा होने और बड़े होकर उनके उड़ जाने की याद करके महर्षि जाजलि को बड़ा आश्चर्य और अपनी तपस्या पर गर्व हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई—हे जाजलि, तुम तुलाधार के समान धार्मिक नहीं हो। तुलाधार नाम के एक बुद्धिमान् काशी में रहते हैं, वे भी तुम्हारी तरह गर्व नहीं करते। यह आकाशवाणी सुनकर जाजलि

को बड़ा क्रोध हुआ। तुलाधार को देखने के लिए, पर्यटन करते हुए, बहुत दिनों बाद काशी में पहुँचकर उन्होंने देखा कि महात्मा तुलाधार अपनी दूकान पर बैठे दूकानदारी कर रहे हैं। जाजलि को देखते ही वे उठ खड़े हुए और उनका स्वागत करके नम्रता से बोले—ब्रह्मन्, आप मेरे ही पास आये हैं। अब मेरी बात सुनिए। आपने समुद्र के किनारे तपस्या तो बड़ी कठिन की है; किन्तु आप धर्म की महिमा नहीं जान पाये। तपस्या सिद्ध होने पर आपके सिर पर चिड़िया के बच्चे पैदा हुए। आपसे उन्हें रत्ती भर भी भय नहीं हुआ। किन्तु जब उन बच्चों के पर निकल आये और वे इधर-उधर उड़ गये तब अपने को तपस्वी समझकर आपको बड़ा गर्व हो गया। उसी समय आकाशवाणी के द्वारा मेरा वृत्तान्त सुनकर, ईर्ष्या के वश हो, आप मेरे पास आये हैं। बतलाइए, मैं आपका क्या हित करूँ? ५१

दो सौ बासठ अध्याय

तुलाधार का जाजलि को उपदेश

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, महात्मा तुलाधार की बातें सुनकर जप करनेवाले बुद्धिमान् जाजलि ने कहा—हे दूकानदार! तुम ओषधि, फल-मूल, गन्ध और नमक-मिर्च आदि सब रस बेचते हो; फिर तुम्हें इस प्रकार का ज्ञान और निश्चल बुद्धि कैसे प्राप्त हुई?

वैश्य-कुल में उत्पन्न धर्मार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानी तुलाधार ने कहा—जाजलि, मैं सबके हितकारी प्राचीन सनातन धर्म को जानता हूँ। हिंसा न करना अथवा विपत्ति के समय थोड़ी हिंसा करके अपनी जीविका कर लेना प्रधान धर्म है। मैं उसी धर्म के अनुसार केवल सूखी लकड़ी और तृण आदि बेचकर अपना निर्वाह करता हूँ। मैं लाख, पद्मक, तुङ्गकाष्ठ और कस्तूरी आदि विविध गन्ध तथा अनेक रस ईमानदारी से बेचता हूँ। मद्य नहीं बेचता। सच्चा धर्मात्मा वही है जो सबका मित्र है और जो मन-वचन-कर्म से सबका हित करता है। अनुरोध-विरोध, द्वेष और

कामना को त्यागकर मैं सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखता हूँ। यही मेरे नियम हैं। जैसे आकाश-मण्डल, बादल आदि के सहयोग से, अनेक रूप धारण करता है वही हाल संसार का है। यह विचारकर मैं किसी के काम की प्रशंसा या निन्दा नहीं करता। मैं सब जीवों को एक समान समझता हूँ। मैं मिट्टी और सोने में कुछ भेद नहीं समझता। मैं अन्धे, बहरे और पागल की तरह विषयों का भोग छोड़े हुए हूँ। बूढ़े, रोगी और दुर्बल मनुष्यों के सदृश मुझे भी अर्थ, काम और भोग के विषयों का लोभ नहीं है। मनुष्य जब इच्छा, द्वेष और भय छोड़ देता है, दूसरों को भय नहीं दिखाता और मन-वचन-कर्म से किसी का बुरा नहीं चेतता तब उसे मोक्षपद प्राप्त होता है। अभयदान के समान श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है। जो मनुष्य कटुवादी और ऐसा कठोर दण्ड देनेवाला है कि जिससे लोग बुरी तरह घबराते हैं उसे भारी भय उपस्थित होगा। पुत्र-पौत्र से युक्त, हिंसारहित, बड़े-बूढ़े जैसा व्यवहार करते हैं वैसा ही मैं करता हूँ। मूर्ख लोग सदाचार के कुछ अंश को विरुद्ध देखकर सम्पूर्ण सनातन धर्म को छोड़ देते हैं; किन्तु विद्वान् जितेन्द्रिय मनुष्य विरुद्ध अंश को छोड़कर सनातन धर्म द्वारा संसार से मुक्त हो जाते हैं। जो बुद्धिमान् मनुष्य इस प्रकार संयम करके, द्रोह छोड़कर, सज्जनों के योग्य आचरण करता है उसको शीघ्र ही धर्म की प्राप्ति होती है। जैसे नदी की धारा में बहती हुई लकड़ियाँ परस्पर मिलती और जुदा होती रहती हैं वैसे ही कर्म के प्रवाह द्वारा पिता-पुत्र आदि का संयोग-वियोग हुआ करता है। जो व्यक्ति कभी किसी प्राणी को भयभीत नहीं करता वह हमेशा सब प्राणियों से निर्भय रहता है। गुर्रानेवाले भेड़िये के समान जिस मनुष्य से लोग डरते हैं उस मनुष्य को भी सबसे डर रहता है। जो व्यक्ति अभयदान-रूप धर्म का पालन करता है वह सहायवान्, उत्तम भोग करनेवाला और भाग्यवान् होकर श्रेष्ठता प्राप्त करता है। जिसके हृदय में थोड़ी सी धर्म में प्रवृत्ति होती है वह, कीर्ति पाने के लिए, अभयदान-रूप धर्म करता है और जो मनुष्य धर्म के विषय में पारदर्शी होता है वह, ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए, सब प्राणियों को अभयदान देता है। तपस्या, यज्ञ, दान और ज्ञान के उपदेश द्वारा जो फल मिलता है वह फल केवल अभयदान द्वारा प्राप्त हो सकता है। जो मनुष्य सब प्राणियों को निर्भय करता है उसे सम्पूर्ण यज्ञों का फल मिलता और किसी का भय नहीं रहता। सारांश यह कि अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जिस मनुष्य से किसी प्राणी को डर नहीं रहता उसे भी किसी प्राणी का डर नहीं है और जिस मनुष्य से, घर में रहनेवाले साँप की तरह, सब लोग डर के मारे घबराते रहते हैं उसे क्या यह लोक और क्या परलोक कहीं धर्म नहीं प्राप्त हो सकता। जो मनुष्य सब जीवों को अपने समान समझता है वह यद्यपि ब्रह्मलोक आदि पद से रहित है तो भी देवता उसके मार्ग को देखकर ललचाते हैं।

अभयदान सब दानों से श्रेष्ठ है। काम्य कर्म करनेवाला मनुष्य उन कर्मों के फल से भाग्यवान् और उस फल के समाप्त हो जाने पर फिर भाग्यहीन होता है, इसलिए ज्ञानवान् मनुष्य

नश्वर काम्य कर्मों की निन्दा करते हैं। धर्म बहुत सूक्ष्म पदार्थ है। कोई धर्म बिना कारण का नहीं है। वेदशास्त्र में ब्रह्म की प्राप्ति और स्वर्ग आदि की प्राप्ति, ये दो प्रकार के धर्म बतलाये गये हैं। उनमें स्वर्ग आदि की प्राप्ति करानेवाला धर्म स्थूल और ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला अभयदान-रूप धर्म सूक्ष्म है। सूक्ष्म धर्म अत्यन्त गूढ़ है इसलिए सब लोग आसानी से उसे नहीं जान सकते। बिरले सज्जन इस धर्म को जानते हैं। जो मनुष्य बैलों को बधिया करते, बाँधते, पीटते, उनकी नाक छेदते और उन पर अधिक बोझा लादते हैं; जो अनेक जीवों को मारकर उनका मांस खाते हैं; जो दूसरे मनुष्यों को दास बनाकर उनसे सब काम कराते हुए सुख भोगते हैं; जो वध और बन्धन के दुःख को जानकर भी दूसरों को उसी तरह के दुःख देते हैं; उनकी निन्दा न करके आप मुझे क्यों निन्दनीय समझते हैं? पाँच इन्द्रियों से युक्त सभी प्राणियों में सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, विष्णु और यम आदि देवता निवास करते हैं; ४०
अतएव जो मनुष्य जीवों को बेचकर अपनी जीविका करते हैं वे, आपकी समझ में, क्या निन्दनीय नहीं हैं? बकरी में अग्नि, भेड़ में वरुण, घोड़े में सूर्य, पृथ्वी में विराट् तथा गाय और बछड़े में चन्द्रमा निवास करते हैं। अतएव जो मनुष्य इनको बेचता है वह कभी सिद्ध नहीं हो सकता; किन्तु तेल, घी, शहद और ओषधि बेचने से कोई पाप नहीं लगता। डाँस-मच्छरों से रहित स्थान में रहनेवाले, सुख से बढ़े हुए, अपनी माता के प्यारे पशुओं को मनुष्य—खेती आदि का काम लेने के लिए—डाँसों से भरे हुए कीचड़वाले स्थानों में ले जाते हैं और बोझा ढोने के अयोग्य बैलों पर भारी बोझा लादकर उन्हें दुःख देते हैं। मेरी समझ मे तो ये सब काम भ्रूणहत्या से भी बढ़कर निन्दनीय हैं। लोग खेती की बड़ी प्रशंसा करते हैं; किन्तु वह बड़ा निन्द्य काम है। देखो, ज़मीन जोतने पर हज़ारों जीव मर जाते हैं और हल खींचनेवाले बैल बड़ा दुःख पाते हैं। वेद मे बैलों का अघ्न्य नाम है, अतएव उन्हें मारना या सताना किसी को उचित नहीं। जो मनुष्य बैल या गाय का वध करता है वह घोर पापी है।

[महाराज नहुष ने मधुपर्क देते समय गो-वध किया था तब] तत्त्वदर्शी ऋषियों ने उनसे कहा था कि महाराज, आपने माता के समान गाय और प्रजापति के सदृश बैल का वध करके बड़ा ही निन्द्य काम किया है; अतएव आपके यज्ञ में होम करने की हम लोगों की इच्छा नहीं होती। आपके इस काम से हम लोगों को बड़ा दुःख हो रहा है। यों कहकर तपस्वियों ५०
ने राजा नहुष का बड़ा तिरस्कार किया; किन्तु कुछ देर बाद अपने तपोबल से ध्यान करके जब उन्होंने देखा कि नहुष ने जान-बूझकर यह काम नहीं किया है तब नहुष के किये हुए उस पाप को एक सौ एक हिस्सों में बाँटकर सब प्राणियों पर रोग-स्वरूप फेंक दिया और उनसे कहा—महाराज, तुम्हारा यह गोवध का पाप अज्ञान से होने पर भी सब जीवों को दुःख देनेवाला हो गया। हे जाजलि, आप पूर्वजों के आचरण देखकर वैसे ही काम कीजिए; किन्तु जो आचरण

इस प्रकार का अशुभ करनेवाले हैं उन्हें आप नहीं समझ सके। जिन कामों के करने से सब जीव निर्भय रहें वही काम धर्म्य कहलाते हैं। केवल लोकाचार धर्म नहीं हो सकता। जो मनुष्य मुझे सताता है अथवा जो मेरी प्रशंसा करता है, उन दोनों को मैं एकसा समझता हूँ। न तो कोई मेरा प्रिय है न अप्रिय। पण्डित लोग इसी प्रकार के धर्म की प्रशंसा करते हैं और
५५ धर्मात्मा महात्मा लोग, यतियों के किये हुए, इसी परम धर्म का पालन करते हैं।

दो सौ तिरसठ अध्याय

तुलाधार का जाजलि को उपदेश

जाजलि ने कहा—हे वैश्य, वाणिज्य कर्म और इस प्रकार का धर्म करते हुए तुम सब प्राणियों की जीविका और स्वर्ग का द्वार रोक रहे हो। खेती करने से अन्न पैदा होता है। तुम भी उसी अन्न को खाकर जीते हो। अन्न और पशुओं से ही मनुष्यों का निर्वाह होता है। जीवित रहकर मनुष्य यज्ञ आदि कर्म करते हैं। तुम तो नास्तिकों की सी बातें करते हो। जीविका छोड़कर क्या कोई कभी जी सकता है?

तुलाधार ने कहा—ब्रह्मन्, मनुष्यों को जिस तरह अपना निर्वाह करना चाहिए वह सुनिए। आप मुझे नास्तिक समझते हैं, किन्तु मैं नास्तिक नहीं हूँ। मैं यज्ञ की निन्दा भी नहीं करता, परन्तु यज्ञ करने की विशेष जानकारी रखनेवाला मनुष्य दुर्लभ है। ब्राह्मणों के करने योग्य अन्तर्यज्ञ को और अन्तर्यज्ञ करनेवाले महात्माओं को मैं प्रणाम करता हूँ। जो हो, इस समय ब्राह्मण लोग अपने करने योग्य अन्तर्याग का त्याग करके, क्षत्रियों के करने योग्य, ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करने लगे हैं। देखिए, लालची आस्तिक लोग वेद के वचनों का ठीक-ठीक मर्म न समझकर, सत्य के समान देख पड़नेवाले, मिथ्यामय, क्षत्रियों के योग्य (हिंसामय) यज्ञ करते और यजमान को अनेक वस्तुओं का दान करने के लिए उत्साह दिलाते हैं। उन वस्तुओं को एकत्र करने के लिए यजमान अनेक अनुचित उपाय करता है और इसी लिए चोरी आदि नीच कर्म होते हैं। होम करने योग्य जो वस्तु न्याय से पैदा की जाती है उसी के होम से देवता सन्तुष्ट होते हैं। शास्त्र में बतलाया गया है कि नमस्कार, हवि, स्वाध्याय और ओषधि द्वारा देवताओं की पूजा करनी चाहिए। जो मनुष्य किसी कामना से इष्टापूर्त आदि यज्ञ करता है उसके उस यज्ञ के प्रभाव से लोभी सन्तान पैदा होती है। लोभी रहने से लोभी पुत्र और राग-द्वेष आदि से शून्य रहने से राग-द्वेष-हीन पुत्र पैदा होता है। यजमान और ऋत्विक् के सकाम होने से पुत्र भी सकाम और निष्काम होने से उसकी सन्तान भी निष्काम होती है। जैसे आकाशमण्डल से साफ़ पानी बरसता है
१० वैसे ही यज्ञ करने से प्रजा की उत्पत्ति होती है। अग्नि में दी हुई आहुति सूर्यमण्डल में जाती है।

उसके बाद सूर्य से वृष्टि, वर्षा होने से अन्न और अन्न से सन्तान की उत्पत्ति होती है। पूर्वजों ने सब कामनाएँ छोड़कर यज्ञ किया था और यज्ञ करके अपनी इच्छाएँ पूरी कर ली थीं। वे लोग अपना मनोरथ पूरा करने के लिए हिंसा नहीं करते थे। उस समय हल से जोते बिना ही खेतों में बहुत उपज होती थी। संसार की ही भलाई के लिए लता आदि उत्पन्न होती हैं। वे लोग यज्ञ को फल देनेवाला और आत्मा को फल का भागी नहीं मानते थे।

यज्ञ का फल मिलेगा या नहीं, यह सन्देह करके जो मनुष्य यज्ञ करता है वह दूसरे जन्म में दुष्ट, धूर्त और लोभी होता है। जो मनुष्य कुतर्क के द्वारा वेदों को अशुभ फल देनेवाले सिद्ध करता है वह कृतघ्न अपने अशुभ कर्मों के प्रभाव से पापियों की गति पाता है। जो नित्यकर्म को कर्तव्य समझता है; जो ब्रह्म को हवि-मन्त्र-अग्नि आदि के रूप में स्थित जानता है और जो अपने कर्म पर अभिमान नहीं करता वही यथार्थ ब्राह्मण है। उसके कर्मों के किसी अङ्ग की हानि हो जाय तो भी वह श्रेष्ठ गिना जाता है। यदि कुत्ता, सुअर आदि अशुद्ध जीव उसके यज्ञ में विघ्न डाल दें तो भी वह श्रेष्ठ है; किन्तु जो मनुष्य सकाम होकर कर्म करता है उसे यदि इस प्रकार का व्याघात उपस्थित हो तो उसे प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिए। परम पुरुषार्थ पाने का इच्छुक, वैराग्ययुक्त, ईर्ष्याहीन पुरुष सत्यपरायण और जितेन्द्रिय होता है। जो देह और आत्मा का तत्त्व जानता है, योग ही जिसका प्रधान कर्म है और जो हमेशा प्रणव का जप करता है वह अनायास दूसरों को सन्तुष्ट कर सकता है। ब्रह्म ही सम्पूर्ण देवता है, जो इस ब्रह्म को जानता है उसका आश्रय देवता भी लेते हैं। उसके सन्तुष्ट होने पर देवता भी सन्तुष्ट होते हैं और भोग-सुख में उसके तृप्त होने पर वे भी तृप्त हो जाते हैं। २०
जैसे कोई मनुष्य सब रसों का स्वाद लेकर तृप्त हो जाने पर किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता वैसे ही ज्ञानतृप्त लोगों को अन्य किसी विषय में सुख नहीं मिलता। जिनका धर्म ही आधार है और जो कार्य-अकार्य का विचार कर सकते हैं, तथा जो धर्म में ही सुखी रहते हैं उनका अन्तरात्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। संसार-सागर को पार करने के अभिलाषी ज्ञानवान् लोग उस परमपावन ब्रह्मलोक को जाते हैं जहाँ शोक, दुःख और पतन का भय नहीं है। वे स्वर्ग, यश और धन पाने की इच्छा से यज्ञ नहीं करते; केवल सज्जन-सेवित मार्ग पर चलते हैं और हिंसा-रहित यज्ञ आदि कर्म करते हैं। ये सब महात्मा वनस्पति, ओषधि और फल-मूल को ही यज्ञ का साधन समझते हैं। लोभी ऋत्विक् लोग, उनसे कुछ मिलने की आशा न देखकर, उनको यज्ञ नहीं कराते। ज्ञानवान् ब्राह्मण अपने को यज्ञ की सामग्री समझकर, प्राणियों पर दया करने के निमित्त, मानसिक यज्ञ करते हैं। लोभी ऋत्विक् लोग स्वर्ग चाहनेवाले मनुष्यों को यज्ञ कराते हैं और अपने धर्म के द्वारा मनुष्यों को स्वर्ग पाने का उपाय कर देते हैं। मैं इन दोनों प्रकार के कामों को देखकर शुभ कर्मों का ही अनुसरण करता हूँ।

सकाम ब्राह्मण हिंसात्मक यज्ञ और ज्ञानी ब्राह्मण मानसिक यज्ञ करते हैं। ये दोनों ही देवताओं के निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं, किन्तु उनमें जो सकाम हैं वे फिर पृथिवी पर जन्म लेते हैं और
३० ज्ञानी लोग मुक्त हो जाते हैं। ज्ञानवान् पुरुषों की इच्छा होते ही बैल स्वयं गाड़ी में जुतकर उनकी सवारी ले चलते हैं और गायें दूध देने लगती हैं। वे इच्छा करते ही यूप और दान-दक्षिणा समेत मानसिक यज्ञ करने में समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार योग के बल से जिनका चित्त शुद्ध हो जाता है वे यज्ञ में गो-हत्या भी कर सकते हैं। यद्यपि उन्हें गो-वध का पाप नहीं लग सकता तो भी वे पशु का वध न करके ओषधियों से ही यज्ञ करते हैं और सकाम मूर्ख लोग, ओषधियों को छोड़कर, पशुहिंसा करके यज्ञ करते हैं जिसका कि उन्हें अधिकार नहीं।

हे तपोधन, सकाम और निष्काम ज्ञानवान् पुरुषों में आत्मज्ञानियों के कामों को ही श्रेष्ठ समझकर मैंने उन्हीं का विषय विशेष रूप से बतलाया है। अब मैं संक्षेप में बतलाता हूँ कि ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार से हो सकती है। जो कर्म का फल मिलने की आशा और कर्म करने का उद्योग नहीं करते; जो दूसरों का नमस्कार लेने और दूसरों को नमस्कार करने से हमेशा बचते हैं; जो अपनी स्तुति सुनकर न तो प्रसन्न होते हैं और न स्वयं किसी की स्तुति करते हैं; जिन्होंने सब कर्मों का त्याग कर दिया है और जो ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण हैं वे ही सच्चे ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं। जो मनुष्य न तो दूसरों को ज्ञान का उपदेश देता है, न यज्ञ करता है और न दान ही देता है; केवल अपनी इच्छा के अनुसार भोग्य वस्तुओं का भोग करता है वह क्या तो देवमार्ग और क्या पितृमार्ग किसी मार्ग से नहीं जा सकता। किन्तु जो व्यक्ति निष्काम धर्म का अवलम्बन करता है उसको ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

जाजलि ने कहा—हे वैश्य, मैंने मानसिक यज्ञ का तत्त्व कभी नहीं सुना। वह बहुत कठिन है। प्राचीन महर्षियों में बहुतों ने तो इसका उल्लेख ही नहीं किया और जिन्होंने किया भी है, वे भी इसका भली भाँति प्रचार नहीं कर सके। जो हो, इस समय अविवेकी मनुष्य मानसिक यज्ञ नहीं कर सकते। उन्हें किस काम के करने से सुख मिल सकता है, उसे विस्तार से बतलाओ। मुझे तुम्हारी बातों पर बड़ी श्रद्धा है।

तुलाधार ने कहा—तपोधन, जिन पाखण्डियों के यज्ञ उनके दोष के कारण निष्फल हो जाते हैं उन्हें किसी यज्ञ के करने का अधिकार नहीं है। जो श्रद्धावान् और समर्थ हैं वे घी, दूध, दही और पूर्णाहुति से यज्ञ करते हैं और जो असमर्थ हैं वे गाय की पूँछ से पितरों का तर्पण, गाय के सींग से अभिषेक और गाय के पैर की धूल से यज्ञ करते हैं। इस प्रकार केवल गाय से ही समर्थ और असमर्थ दोनों के यज्ञ हो सकते हैं। जो घी आदि से यज्ञ करते हैं उनकी केवल श्रद्धा ही सहधर्मिणी का काम देती है। इस प्रकार श्रद्धा के साथ यह यज्ञ करने से ब्रह्मपद प्राप्त हो सकता है। अतएव पशु-हिंसा की अपेक्षा पुरोडाश द्वारा यज्ञ

करना श्रेष्ठ है। सब नदियाँ सरस्वती के समान शुद्ध करनेवाली और सब पर्वत परम पवित्र हैं। सारांश यह कि जिस स्थान पर मन और आत्मा का संयोग (समाधि) हो सके वही श्रेष्ठ ४०
तीर्थ है। अतएव तुम तीर्थयात्रा के लिए भटकते मत फिरो। जो मनुष्य ज्ञानवान् होकर इस प्रकार का धर्माचरण करता है वह निस्सन्देह शुभ लोकों को प्राप्त कर सकता है। हे युधिष्ठिर, तुलाधार ने इस प्रकार सज्जन-सेवित युक्तिसङ्गत धर्म की विशेष रूप से प्रशंसा की थी। ४२

दो सौ चौंसठ अध्याय

तुलाधार का जाजलि को उपदेश

तुलाधार ने फिर कहा—ब्रह्मन्! अहिंसा-रूप धर्म का पालन सज्जन करता है या दुर्जन, यह मालूम हो जाने पर अहिंसा की प्रधानता प्रकट हो जायगी। देखिए, आपके सिर पर पैदा हुए पक्षी इस स्थान पर उड़ रहे हैं और अपने पंख-पैर आदि समेटकर अपने-अपने घोंसले में घुस रहे हैं। आप अपने पुत्र के समान इन पर स्नेह रखते और ये सब पिता के समान आपका सम्मान करते थे। आप इनके पिता के तुल्य हैं। इस समय इन्हें बुलाइए। 'अहिंसा प्रधान धर्म है या नहीं' यह आपका सन्देह इन्हीं से दूर हो जायगा।

अब महर्षि जाजलि ने चिड़ियों को बुलाया। चिड़ियों ने आकर जाजलि से कहा—ब्रह्मन्, अहिंसा आदि कर्म दोनों लोकों में मनुष्यों की रक्षा करते हैं और हिंसा आदि कर्म मनुष्यों का विश्वास नष्ट कर देते हैं। विश्वासघातक मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो शम-दम आदि गुणों से युक्त होकर लाभ-हानि को समान समझता है और फल की इच्छा छोड़कर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार यज्ञ करता है उसी को धर्म का यथार्थ फल मिलता है। सत्त्व गुण से ब्रह्म में श्रद्धा पैदा होती है। वह श्रद्धा सबकी रक्षा करती और सबको शुद्ध जन्म देती है। वह श्रद्धा ध्यान और जप से भी श्रेष्ठ है। कर्म मन्त्रहीन या व्यग्रता के कारण अङ्गहीन होने पर भी श्रद्धा के प्रभाव से सिद्ध हो जाता है। किन्तु श्रद्धा न होने पर मन्त्र, अनुष्ठान और यज्ञ कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। इस विषय में पूर्व वृत्तान्त के जानकारों ने ब्रह्म के जो वाक्य कहे हैं उन्हें सुनो। श्रद्धाहीन पवित्र और पवित्रताहीन श्रद्धावान् इन दोनों १०
के धन को तथा वेदज्ञ कृपण और अत्यन्त दानी वृद्धिजीवी (सूदख़ोर) इन दोनों के अन्न को देवता यज्ञ में एक सा समझते थे। यह देखकर भगवान् प्रजापति ने उनसे कहा—हे देवताओ, तुम्हारी यह समझ ठीक नहीं है। श्रद्धावान् व्यक्ति यदि अपवित्र है और पवित्र व्यक्ति यदि श्रद्धाहीन है तो, श्रद्धा न होने के कारण, पवित्र मनुष्य ही निन्दनीय है और वेदज्ञ कृपण तथा अतिदानी वृद्धिजीवी, इन दोनों में वेदज्ञ कृपण का अन्न ग्रहण करने योग्य है; किन्तु वृद्धिजीवी मनुष्य अतिदानी ही क्यों न हो, उसका अन्न लेना उचित नहीं। सारांश यह कि श्रद्धाहीन मनुष्य

को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है और उसका अन्न अग्राह्य है। अश्रद्धा से बढ़कर पाप और श्रद्धा से बढ़कर पुण्य नहीं है। जैसे साँप पुरानी केंचुल छोड़ देता है वैसे ही श्रद्धावान् मनुष्य, श्रद्धा के प्रभाव से, पाप का नाश कर देता है। श्रद्धा की सहायता से विषयों से निवृत्त हो जाना सब पवित्रताओं से बढ़कर है। जो मनुष्य राग-द्वेष आदि का त्याग करके श्रद्धावान् हो सकता है वही यथार्थ पवित्र है। उसे तपस्या, आचार-व्यवहार और अन्यान्य धर्म करने की आवश्यकता नहीं। संसार के सभी प्राणी श्रद्धावान् हैं। मनुष्यों को सत्त्व, रज और तम इन तीनों में से किसी न किसी गुण में श्रद्धा अवश्य होती है। जिन्हें सत्त्वगुण में श्रद्धा होती है वे सात्त्विक, जिन्हें रजोगुण में श्रद्धा होती है वे राजस और जिन्हें तमोगुण में श्रद्धा होती है वे तामस हैं। धर्मार्थ के जानकार सज्जनों ने इस प्रकार धर्म का वर्णन किया है। अतएव आप श्रद्धावान् हो जाइए और तदनुकूल आचरण कीजिए, इसी से धर्म की प्राप्ति होगी। अपने मार्ग पर चलनेवाला श्रद्धावान् मनुष्य ही धार्मिक और सबसे श्रेष्ठ है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इसके बाद महर्षि जाजलि और तुलाधार अपने-अपने स्थान को चले गये और बहुत दिनों बाद अपने-अपने कर्म के प्रभाव से स्वर्ग में जाकर सुख भोगने लगे। इस तरह तुलाधार के मुँह से सनातन धर्म को सुनकर महात्मा जाजलि ने शान्ति
२३ प्राप्त की थी। मैंने यह तुलाधार की कथा तुम्हें सुना दी। अब क्या सुनना चाहते हो?

दो सौ पैंसठ अध्याय

राजा विचख्यु की वक्तृता; अहिंसा-धर्म की प्रशंसा

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, प्राणियों पर दया करके राजा विचख्यु जो कुछ कह गये हैं वह प्राचीन इतिहास सुनो। राजा विचख्यु ने गोमेध यज्ञ में निर्दय ब्राह्मणों और घायल बैलों को देखकर तथा गायों का आर्तनाद सुनकर दयाभाव से कहा—ओह, गायों को कैसा कष्ट मिल रहा है! सब लोकों में अब गायों का कल्याण हो। मूर्ख, नास्तिक, सन्देह-युक्त मनुष्य ही हिंसा-यज्ञ को श्रेष्ठ कहते हैं। मनुष्य अपनी इच्छा के वशीभूत होकर ही यज्ञभूमि में पशुहिंसा करते हैं। धर्मात्मा मनु ने अहिंसा की ही प्रशंसा की है। अतएव उसी प्रमाण के अनुसार सूक्ष्म धर्म का अनुष्ठान करना पण्डितों का कर्त्तव्य है। अहिंसा सब धर्मों से श्रेष्ठ है। ज्ञानवान् मनुष्य दृढ़व्रत होकर, वेदोक्त धर्म के फल और गृहस्थ-धर्म को छोड़कर, संन्यास-धर्म का अवलम्बन करते हैं। क्षुद्र स्वभाव के मनुष्य ही फल पाने की इच्छा करते हैं। यूप बनाने के लिए वृक्षों का काटा जाना और 'वृथा-मांस' खाना निन्दनीय है। धूर्त लोग तिलों की खिचड़ी, मदिरा, मांस, मछली, शहद और ताड़ो खाते-पीते हैं। वेद में इनके खाने-
१० पीने का विधान नहीं है। काम, लोभ और मोह के वश से ही मनुष्य ये चीज़ें खाते-पीते हैं।

वेदज्ञ ब्राह्मण लोग यज्ञ में विष्णु का आविर्भाव मानकर वेदकल्पित यज्ञ के वृक्ष, पुष्प और स्वादिष्ठ खीर के द्वारा उनकी आराधना करते हैं। शुद्धभाव-सम्पन्न महानुभावों ने जिन वस्तुओं को श्रेष्ठ बतलाया है वही देवता को चढ़ाई जा सकती हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! विपत्ति शरीर को सुखा देती है और शरीर विपत्ति का नष्ट कर देने की इच्छा करता है. अतएव बिलकुल हिंसा न करने से संसार में किस तरह निर्वाह हो सकता है ?

भीष्म ने कहा—बेटा, ऐसा काम करना चाहिए जिससे शरीर का नाश तो हो नहीं और अहिंसा-धर्म का पालन होता रहे। १४

दो सौ छाछठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से चिरकारी का उपाख्यान कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जटिल समस्याओं को सुलझाने का उपदेश देने में आप मेरे परम गुरु हैं। अब यह बतलाइए कि किसी काम के करने का इरादा होने पर उसे शीघ्र कर डाले या उसमें देरी करे।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं इस विषय में महर्षि अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न चिरकारी का प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। जो मनुष्य बहुत सोच-विचारकर काम करता है उससे भूल नहीं होती। महर्षि गौतम के चिरकारी नामक पुत्र था। वह बुद्धिमान्, कार्यकुशल और खूब सोच-समझकर काम करनेवाला था। वह देर तक प्रत्येक काम को सोचता, देर तक सोता और देर तक जागता था। वह देर में करने और न करने योग्य काम को समझ लेता था इसलिए लोग उसे चिरकारी कहने लगे। नासमझ लोग उसे आलसी कहते थे। एक बार महर्षि गौतम ने अपनी स्त्री को व्यभिचारिणी जानकर, कुपित हो, पुत्र को आज्ञा दी कि बेटा, तुम अपनी माता को मार डालो। यह आज्ञा देकर महर्षि गौतम वन को चले गये। चिरकारी अपने स्वभाव के अनुसार उक्त आज्ञा को सुनकर देर तक यों सोचने लगा कि पिता की आज्ञा का पालन करने पर माता का वध करना पड़ेगा और यदि माता का वध न करूँ तो पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन होगा, अतएव अब किस तरह इस धर्म-सङ्कट से बचूँ। पुत्र माता और पिता दोनों के १०
अधीन है। इसलिए पिता की आज्ञा का पालन और माता की रक्षा ये दोनों ही कर्तव्य पुत्र के हैं। इन दोनों में किसी की अवहेलना करने से पुत्र को पाप लगता है। कोई कभी माता का नाश करके सुखी और पिता की आज्ञा टालकर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। अतएव ऐसा करना चाहिए जिसमें पिता की आज्ञा का तो उल्लङ्घन हो नहीं और माता की रक्षा हो जाय। पिता स्वयं अपने शील, गोत्र और कुल की रक्षा करने के लिए पत्नी में, पुत्र-रूप से, आत्मा को स्थापित

करता है। मैं तो पिता और माता दोनों का ही पुत्र हूँ। जातकर्म और यज्ञोपवीत के समय पिता ने जो वाक्य कहे हैं उन्हीं से उनका गौरव प्रकट होता है। भरण-पोषण और अध्यापन करने के कारण पिता प्रधान गुरु है। वेद में यह भी आज्ञा है कि पिता पुत्र को जो आज्ञा दे उसका पालन करना पुत्र का परम धर्म है। पुत्र पिता पर केवल स्नेह रख सकता है, किन्तु पिता का पुत्र पर सोलहों आने अधिकार है; क्योंकि वह पुत्र को शरीर आदि सब कुछ देता है। अतएव बिना सोच-विचार किये पिता की आज्ञा मानना पुत्र का कर्तव्य है। ऐसा करने से पुत्र सब पापों से बच जाता है। पिता पुत्र को उत्पन्न करता, अन्न-वस्त्र देता, पढ़ाता-लिखाता और
२० लोकाचार सिखाता है। पिता स्वर्ग, धर्म और तपस्या-स्वरूप है। पिता पर स्नेह रखने से देवता भी सन्तुष्ट होते हैं। पिता पुत्र को जो कुछ आज्ञा देता है वह सब पुत्र के लिए आशीर्वाद के समान है। वृक्ष से फूल-फल गिर पड़ते हैं, किन्तु पिता गाढ़े सङ्कट में भी पुत्र को नहीं छोड़ता। पुत्र के लिए पिता साधारण वस्तु नहीं है। ख़ैर, यह तो मैंने सोच लिया, अब माता के विषय में सोचूँ।

जैसे अरणि लकड़ी अग्नि की उत्पत्ति का कारण है वैसे ही माता इस पाञ्चभौतिक शरीर का प्रधान हेतु है। दुखी के लिए माता ही सुख का एकमात्र आधार है। जब तक माता जीवित रहती है तब तक मनुष्य अपने को सहायवान् समझता है; माता के न रहने पर वह अनाथ सा हो जाता है। माता को पुकारकर घर में प्रविष्ट होने पर दुखी पुत्र का सब दुख दूर हो जाता है। जिसकी माता जीवित होती है वह पुत्र-पौत्रवाला और सौ वर्ष का होने पर भी अपने को बालक के समान समझता है। पुत्र योग्य, अयोग्य, मोटा, दुबला कैसा ही हो, माता हमेशा उसकी रक्षा करती है। माता के समान पुत्र का पालन करनेवाला कोई नहीं है। माता के मरते ही लोग अपने को बूढ़ा और दुखी समझते हैं; सारा संसार उनके
३० लिए सूना हो जाता है। माता के समान शोक दूर करनेवाला स्थान, गति, रक्षक और प्रिय वस्तु और कोई नहीं है। माता गर्भ में धारण करने से धात्री, जन्म का कारण होने से जननी, अङ्ग आदि को पुष्ट करने से अम्बा और पुत्र का प्रसव करने के कारण वीरसू कहलाती है। बालकपन में माता पुत्र का पालन करती है, इसलिए माता की सेवा करना पुत्र का कर्त्तव्य है। पुत्र माता से उत्पन्न होता है इसलिए माता पुत्र का दूसरा शरीर-स्वरूप है। तब कौन मनुष्य आत्महत्या के समान मातृहत्या करने को तैयार होगा? समागम के समय माता और पिता दोनों ही श्रेष्ठ पुत्र पैदा होने की लालसा करते हैं; किन्तु यह लालसा पिता की अपेक्षा माता में अधिक होती है। किसके वीर्य से और किसके गोत्र में पुत्र पैदा हुआ है, यह बात माता ही जानती है। पालन-पोषण करने के कारण पुत्र पर माता का बहुत अधिक स्नेह रहता है। इधर पुत्र पर पिता का ही पूरा अधिकार है। यदि पुरुष अपनी ब्याहता स्त्री को छोड़कर व्यभिचारी हो जाय तो वह निन्दनीय हो जाता है। स्त्री का भरण करने से पुरुष उसका भर्ता और पालन

करने से पति कहाता है। इन दोनों कामों के न करने से वह भर्ता और पति कहलाने योग्य नहीं। सारांश यह कि किसी विषय में स्त्री का कोई अपराध नहीं है। मेरी माता ने इन्द्र का ४० अपने पति का सा स्वरूप देखकर उसके साथ भोग किया है, इसलिए उन्हें व्यभिचार का दोष नहीं लग सकता। सब बातों में पुरुषों का ही अपराध है; क्योंकि स्त्रियाँ तो पुरुषों के अधीन हैं इसलिए वे अपराधिनी नहीं हो सकतीं। मेरी माता ने भोग-सुख के लिए इन्द्र से प्रार्थना नहीं की है, इसलिए उन्हें पाप कैसे लग सकता है? बल्कि इन्द्र ने उनसे अनुरोध किया है इससे वही पापी है। सभी स्त्रियाँ अवध्य हैं, फिर पतिव्रता माता तो किसी प्रकार वध करने योग्य नहीं है। बुद्धिहीन पशु भी इस बात का अनुमोदन करेगा। पिता में सब देवता स्थित हैं; किन्तु माता में देवता और मनुष्य दोनों रहते हैं। इसलिए पिता केवल पारलौकिक सुख दे सकता है; किन्तु माता इस लोक और परलोक दोनों लोकों के सुख का कारण है।

अपनी दीर्घसूत्रिता के कारण चिरकारी इस प्रकार बहुत तर्क-वितर्क करते रहे। उधर तपोधन महाप्राज्ञ गौतम, अपनी स्त्री के वध को अनुचित समझकर, बहुत दुखी हुए और आँखों में आँसू भरकर कहने लगे कि त्रिलोकपति इन्द्र, ब्राह्मण का वेष बनाकर, अतिथि के रूप में मेरे आश्रम पर आये। मैंने स्वागत करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर उनकी यथोचित पूजा की और कहा कि मैं आपके अधीन हूँ। मैंने उस समय यह सोचा कि ऐसा शिष्टाचार करने से इन्द्र मुझ पर प्रसन्न होंगे। किन्तु उन्होंने अपनी चपलता से जो मेरी स्त्री को भ्रष्ट कर दिया तो इसमें मेरी स्त्री को व्यभिचार का दोष कैसे लग सकता है? अब मेरी समझ में आता है कि इस मामले में मेरी स्त्री, मैं और अतिथि इन्द्र कोई भी अपराधी नहीं है। इसका अपराध तो केवल स्त्री को सुरक्षित न रखना ही है। महर्षियों का कहना है कि ईर्ष्या से व्यसन उत्पन्न ५० होता है। मैंने ईर्ष्या से ही स्त्री की हत्या करने का पाप किया है। स्त्री तो भरण करने योग्य होने से भार्या कहलाती है। आज मैंने अपनी पतिव्रता भार्या को मरवा डाला। अब इस पाप से मुझे कौन बचावेगा? मैंने उदारबुद्धि चिरकारी को, अपनी स्त्री के, वध करने की आज्ञा भूल से दी है। यदि चिरकारी आज अपने नाम के अनुरूप काम करे तो निस्सन्देह इस पाप से मुझे बचा ले। बेटा चिरकारी, तुम्हारा कल्याण हो। यदि आज तुमने अपने नाम के अनुरूप काम किया होगा तो तुम्हारा नाम सार्थक है। तुम आज मुझे, अपनी मा को और माता के वध-रूप पाप से अपने को बचाओ जिससे मेरी बहुत दिनों की तपस्या नष्ट न हो जाय। आज तुम सच्चे चिरकारी हो जाओ। बुद्धि की प्रखरता के कारण तुम स्वभाव से ही देर में काम करते हो, आज उसके विरुद्ध न हो। ओह, तुम्हारी माता ने बहुत दिनों तक तुम्हें गर्भ में रक्खा था और तुमसे अपने भले की आशाएँ की थीं। आज तुम अपनी दीर्घसूत्रिता का परिचय देकर अपनी माता की शुभ आशाओं को सफल करो। किसी काम को करने के लिए मेरी आज्ञा पाने पर तुम

सन्ताप के भय से उसमें देर करते हो और किसी काम के रोकने पर भी उचित-अनुचित को विचारते हुए देर लगाते हो, अतएव आज मुझे और मेरी स्त्री को इस चिर सन्ताप से बचा लो।

महर्षि गौतम बड़े दुःख से रोते और शोक करते हुए घर लौट आये। उन्होंने देखा कि उनका पुत्र चिरकारी चिन्तित बैठा हुआ है। पिता गौतम को देखकर चिरकारी शस्त्र फेंककर, उनको प्रसन्न करने के लिए, दुःखित चित्त से उनके पैरों पर गिर पड़ा। पुत्र को विनीत और स्त्री की लज्जा के मारे पाषाण सदृश देखकर गौतम बहुत सन्तुष्ट हुए। माता का वध न करनेवाला, पैरों पर पड़ा हुआ, चिरकारी अपनी नम्रता से पिता की कठिन आज्ञा को भूल सा गया था। तब गौतम ने पुत्र को अपने पैरों पर पड़ा देखकर सोचा कि चिरकारी डर के मारे शस्त्र-ग्रहण की चपलता को छिपा रहा है।

अब गौतम ने चिरकारी का माथा सूँघकर, उसे छाती से लगाकर, उसके काम की प्रशंसा करके प्रसन्न होकर कहा—बेटा! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी आयु बढ़े। तुमने मेरी आज्ञा का पालन करने में विलम्ब करके मेरा बड़ा उपकार किया है। मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन करने के कारण तुम रत्ती भर भी खेद न करो।

अब महात्मा गौतम धैर्यवान् चिरकारी को यह उपदेश देने लगे—हितैषी का वध और कार्य का परित्याग ख़ूब सोच-विचार करके करना चाहिए। बहुत सोच-विचार करने के बाद जो मित्रता स्थापित होती है वही स्थायी होती है। क्रोध, दर्प, अभिमान, अनिष्ट-चिन्तन, अप्रिय और पाप-कर्म करने में विलम्ब करना चाहिए। बन्धु, मित्र, सेवक और स्त्री के अपराध को अच्छी तरह जाने बिना उन्हें झटपट दण्ड न दे दे।

हे युधिष्ठिर, महर्षि गौतम अपने पुत्र चिरकारी की यह चिरकारिता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। अतएव प्रत्येक काम को ख़ूब सोच-समझकर करना चाहिए। जो मनुष्य क्रोध को रोक सकता है और सोच-समझकर काम करता है उसे अन्त को पछताना नहीं पड़ता। बड़े-बूढ़ों के साथ देर तक रहे। देवताओं का ध्यान करके पूजा करे। प्रत्येक काम और धर्म देर

तक करे। देर तक पण्डितों का सत्सङ्ग, सज्जनों की सेवा और आत्म-चिन्तन करने से मनुष्य सबका सम्मान-पात्र होता है। धर्म का उपदेश देनेवाले से यदि कोई विषय पूछा जावे तो उसे बहुत सोच-विचारकर उत्तर देना चाहिए। हे धर्मराज, महातपस्वी महर्षि गौतम उसी आश्रम में बहुत दिनों तक निवास करके पुत्र के साथ देवलोक को गये। ७८

दो सौ सड़सठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से प्रजा का पालन करने के विषय में द्युमत्सेन और सत्यवान् का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजा हिंसा किये बिना प्रजा का पालन किस प्रकार करे?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस सम्बन्ध में महाराज द्युमत्सेन और उनके पुत्र सत्यवान् का इतिहास सुनाता हूँ। एक बार सत्यवान् के पिता ने किसी मनुष्य को प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी। सत्यवान् ने उस मनुष्य को पिता के पास लाकर कहा—पिताजी, इसका वध करना आपको उचित नहीं। कभी-कभी धर्म का अधर्म में और अधर्म की धर्म में गिनती हो जाती है, यह बात तो सही है; किन्तु वध को कभी धर्म नहीं कहा जा सकता।

द्युमत्सेन ने कहा—बेटा, यदि तुम अपराधी के वध को भी अधर्म समझते हो तो फिर धर्म क्या वस्तु है? चोरों को दण्ड न देने से सभी लोग धीरे-धीरे कुमार्ग पर चलने लगेंगे। कलि-युग में मनुष्य दूसरों की वस्तु ले लेने की चेष्टा करते हैं। इस दशा में दण्ड के बिना संसार का निर्वाह कैसे हो सकता है? बिना दण्ड के निर्वाह होने का कोई उपाय जानते हो तो बतलाओ।

सत्यवान् ने कहा—पिताजी! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीनों वर्णों को ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। जब ये तीनों वर्ण धर्मानुसार चलने लगेंगे तो सूत-मागध आदि भी धर्म करने लगेंगे। कोई मनुष्य यदि ब्राह्मण का कहना न माने तो ब्राह्मण इसकी सूचना राजा को दे। सूचना पाकर राजा उद्दण्ड मनुष्य को दण्ड दे। शासन ऐसा करना चाहिए जिससे किसी को प्राणदण्ड देने की नौबत ही न आवे। अपराधी के काम और नीतिशास्त्र पर भली भाँति विचार किये बिना प्राणदण्ड देना ठीक नहीं। चोरों को प्राणदण्ड देने पर उनके माता-पिता और स्त्री-पुत्र भी काल का ग्रास हो जाते हैं यद्यपि वे निरपराधी होते हैं, अतएव राजा को चोरों के विषय में खूब समझ-बूझकर अपना कर्तव्य स्थिर करना चाहिए। १० कभी-कभी दुर्जन भी सज्जन होकर अच्छे आचरण करने लगता है और कभी दुर्जन से भी अच्छी सन्तान पैदा हो सकती है। अतएव मनुष्यों को प्राणदण्ड देना उचित नहीं। दण्ड के योग्य मनुष्यों का वध न करके उनका सर्वस्व हर लेना, कैद कर लेना और सिर मुड़ा देना आदि दण्ड दिये जायँ। उनका वध करके उनके कुटुम्बियों को क्लेश पहुँचाना अच्छा नहीं।

अपराधी यदि पुरोहित की शरण में जाकर कहे कि 'मैं अब ऐसा काम कभी न करूँगा' तो उसे दण्ड न देकर छोड़ देना चाहिए। विधाता का यही विधान है। ब्राह्मण अपराधी हो तो उसे मृगछाला और दण्ड धारण कराकर उसका सिर मुड़ा देना चाहिए। गुरुओं के अपराधी होने पर उन्हें एक बार क्षमा कर दे; किन्तु बार-बार अपराध करने पर क्षमा करना उचित नहीं।

द्युमत्सेन ने कहा—बेटा, प्रजा को अच्छी राह पर लगाना राजा का कर्तव्य है। यदि प्रजा राजा की आज्ञा न मानकर बुरे मार्ग पर चले तो, जिस उपाय से हो सके, राजा उसे अच्छी राह पर लगाने का उद्योग करे। धर्म के विरुद्ध आचरण करनेवालों को दण्ड नहीं दिया जाता तो उनके द्वारा जनता को क्लेश मिलता है। प्राचीन समय में मनुष्यों का स्वभाव कोमल होता था, उनकी रुचि सत्य की ओर होती थी, द्रोह उन्हें कम पसन्द था और क्रोध की मात्रा भी उनमें कम थी, इसलिए उस समय धिग्दण्ड (चेतावनी) देना पर्याप्त था; किन्तु उसके बाद मनुष्यों में अपराध की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई तब वाग्दण्ड और अर्थदण्ड प्रचलित हुआ। अब कलियुग में मनुष्य अपराध बहुत करने लगे हैं, इस कारण वधदण्ड का प्रचार हुआ। इस समय तो वध-
२० दण्ड से भी काम नहीं चलता। संसार में कोई किसी का नहीं है; फिर डाकुओं के साथ मनुष्यों, देवताओं, गन्धर्वों और पितरों का कोई सम्बन्ध नहीं है; [अतएव उनका वध करने पर उनके कुटुम्बियों को अधिक कष्ट होने की क्या सम्भावना है ?] जो लोग श्मशान से मुर्दों के ज़ेवर और कपड़े उठा लाते हैं उन्हें शपथ आदि के द्वारा अच्छी राह पर कौन ला सकता है ?

सत्यवान् ने कहा—पिताजी, यदि आप हिंसा किये बिना डाकुओं को सुमार्ग पर न ला सकें तो नरमेध यज्ञ के द्वारा उनका संहार कीजिएगा। राज्य में डाकुओं का उपद्रव उपस्थित होने पर राजाओं को लज्जित होना पड़ता है, इसलिए वे प्रजा का हित करने की इच्छा से, डाकुओं का उपद्रव मेटने के लिए, तपस्या करते हैं—उपाय सोचते हैं। जब भय दिखाकर प्रजा को सदाचारी बनाया जा सके तब उसका वध कर देना ठीक नहीं। अतएव राजा सद्व्यवहार से ही प्रजा का शासन करे। श्रेष्ठ लोग जैसा व्यवहार करते हैं वैसा ही आचरण साधारण लोग भी धीरे-धीरे करने लगते हैं। जो राजा अपना आचरण शुद्ध न रखकर प्रजा के आचरण सुधारना चाहता है उस विषयासक्त राजा का अवश्य उपहास होता है। जो मनुष्य पाखण्ड और मोह के वश होकर राजा का थोड़ा सा भी अहित करे तो राजा, जैसे बने वैसे, उसका शासन करके उसे उस पाप से छुड़ा दे। जो राजा अपराधियों को अच्छे रास्ते पर लाने की इच्छा रखता हो उसे पहले अपना चित्त शुद्ध कर लेना चाहिए। भाई और पुत्र के अपराध करने पर भी राजा उन्हें कठोर दण्ड दे। जिस राज्य में पापी नीच लोग दुःख नहीं
३० पाते उसमें निस्सन्देह पाप की वृद्धि और धर्म का ह्रास हो जाता है। एक दयालु विद्वान् ब्राह्मण ने मुझे इस प्रकार का उपदेश दिया था और पूर्व पितामह लोग भी मुझे इसी तरह

बतला गये हैं। सत्ययुग में राजा समझा-बुझाकर और दया दिखाकर प्रजा को अपने अधीन करते थे। यद्यपि त्रेतायुग में धर्म के तीन चरण, द्वापर में दो चरण और कलियुग में धर्म का एक ही चरण रह जाता है तो भी इन युगों में प्राणदण्ड न देकर दूसरे प्रकार के दण्ड देना ही राजा का कर्तव्य है। राजा के अनुचित बर्ताव से कलियुग की प्रबलता होने पर धीरे-धीरे धर्म के एक चरण का सोलहवाँ हिस्सा रह जाता है; किन्तु उस समय भी प्राणदण्ड देना उचित नहीं। अहिंसा-रूप दण्ड के द्वारा प्रजा का पालन करने पर सज्जनों को क्लेश नहीं होता; अतएव राजा आयु, शक्ति और काल का विचार करके प्रजा को दण्ड दे। स्वायम्भुव मनु प्राणियों पर दया करना बतला गये हैं। जो लोग ब्रह्म को प्राप्त करना चाहें उन्हें कभी तत्त्वज्ञान का त्याग न करना चाहिए। ३६

दो सौ अड़सठ अध्याय

फल की इच्छा न करके यज्ञ आदि कर्म करने के विषय में गो-कपिल-संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! मनुष्य अहिंसक रहकर योग के प्रभाव से महातेजस्वी हो सकता है, यह आपने विस्तार से बतलाया। अब मुझे वह धर्म बतलाइए जिसका अवलम्बन करने से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हो सकें। गृहस्थ-धर्म और योग-धर्म, दोनों से मुक्ति हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु इन दोनों में कौन धर्म श्रेष्ठ है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ये दोनों धर्म श्रेष्ठ हैं। दोनों ही श्रेष्ठ फल देनेवाले और सज्जनों के उपास्य हैं; किन्तु इनका पालन करना बहुत कठिन है। जो हो, तुम्हारा सन्देह दूर करने के लिए गो-कपिल-संवाद कहता हूँ। ध्यान लगाकर सुनो। एक बार महर्षि त्वष्टा अतिथि-रूप से राजा नहुष के घर आये। राजा नहुष ने, वेद की विधि के अनुसार, उन्हें मधुपर्क देने के लिए गोवध करने का इरादा किया। इतने में ज्ञानवान् संयमी महात्मा कपिल वहाँ आ गये। उन्होंने नहुष को गोवध करने के लिए उद्यत देखकर अपनी नैष्ठिकी बुद्धि के प्रभाव से कहा कि ऐसे वेद को धिक्कार है। उसी समय स्थूमरश्मि नाम के एक महर्षि ने, योगबल से गाय के शरीर में प्रविष्ट होकर, कपिल से कहा—महर्षि, आपने वेद-विहित हिंसा को देखकर वेद का अनादर किया है; किन्तु आप जिस हिंसा-रहित धर्म का अवलम्बन करते हैं क्या वह वेद-विहित नहीं है ? धैर्यवान् ज्ञानी तपस्वी लोग वेदों को परमेश्वर का वाक्य बतलाते हैं। परमेश्वर को किसी विषय में राग, द्वेष या लोभ नहीं है। कर्मकाण्ड और १०
ज्ञानकाण्ड दोनों ही उसके लिए समान हैं।

कपिल ने कहा—न तो मैं वेद की निन्दा करता हूँ और न कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड की पारस्परिक श्रेष्ठता की तुलना ही करना चाहता हूँ। क्या संन्यास, क्या वानप्रस्थ, क्या गृहस्थ

और क्या ब्रह्मचर्य, मनुष्य चाहे जिस आश्रम-धर्म का पालन करे, अन्त को उसे श्रेष्ठ गति मिलती है। संन्यासी आदि चार प्रकार के आश्रमवासियों के लिए चार प्रकार की गति निर्दिष्ट है। संन्यासी मोक्ष को, वानप्रस्थ ब्रह्मलोक को, गृहस्थ स्वर्गलोक को और ब्रह्मचारी ऋषिलोक को जाते हैं। कर्म करने का और न करने का, दोनों ही विधान वेद मे हैं। इसलिए वेद के अनुसार इन दोनों विधानों का बलाबल विचारना बहुत कठिन है। यदि आपने वेद के अतिरिक्त अन्य किसी युक्ति या अनुमान से अहिंसा की अपेक्षा और किसी धर्म को श्रेष्ठ माना है तो बतलाइए।

स्यूमरश्मि ने कहा—महर्षि, वेद की आज्ञा है कि स्वर्ग की इच्छा से यज्ञ करे। पहले फल की कल्पना करके तब यज्ञ करना चाहिए। बकरा, भेड़, घोड़ा, गाय, पक्षी आदि ग्राम्य और जङ्गली सब जीव तथा ओषधियाँ प्राणियों का भोजन हैं। प्रति दिन सवेरे और सन्ध्या के समय इनसे निर्वाह किया करे। भगवान् प्रजापति ने अन्न और सब पशुओं को यज्ञ का प्रधान
२० अङ्ग बतलाकर यज्ञ की सृष्टि की है। उन्होंने स्वयं यज्ञ करके देवताओं की पूजा की थी। गाय, बकरा, मनुष्य, घोड़ा, भेड़, खच्चर और गधा, ये सात ग्राम्य तथा सिंह, बाघ, सुअर, भैंसा, हाथी, रीछ और वानर, ये सात जङ्गली, इन चौदह प्रकार के जीवों से यज्ञ होता है। पशु आदि यज्ञ के प्रधान अङ्ग हैं और प्राचीन महात्माओं ने यज्ञ में इनके उपयोग का अनुमोदन किया है। सभी पुरुष अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार यज्ञ में पशु का वध करते हैं। मनुष्य, पशु, वृक्ष और ओषधि आदि सभी स्वर्ग की इच्छा करते हैं; किन्तु उन्हें यज्ञ के सिवा स्वर्ग प्राप्त करने का दूसरा उपाय नहीं है। ओषधि, पशु, वृक्ष, लता, घी, दूध, दही, पुरोडाश आदि हवन करने योग्य वस्तुएँ, पृथ्वी, दिशा, श्रद्धा, काल, ऋक्, यजु, साम, यजमान और अग्नि, ये सत्रह पदार्थ यज्ञ के अङ्ग हैं। सब प्राणियों का आधार यज्ञ ही है। गाय का घी, दूध, दही, गोबर, आमिक्षा (दही मिला दूध), बैल का चमड़ा, गाय का सींग, पूँछ और पैर धोया हुआ जल, इन सब वस्तुओं से यज्ञ होता है। इन वस्तुओं को और दक्षिणा तथा ऋत्विक् लोगों को
३० एकत्र करके प्राचीन लोग यज्ञ किया करते थे। जो मनुष्य फल की इच्छा न करके, केवल कर्तव्य समझकर, यज्ञ करता है वह न तो जीव-हिंसा करता है और न दूसरों का अनिष्ट करता है। ये सब शास्त्रोक्त यज्ञ के अङ्गभूत द्रव्य एक दूसरे की सहायता करते हैं। ऋषियों का बनाया हुआ स्मृतिशास्त्र पढ़ने से जान पड़ता है कि वेद उसी में स्थित है। स्मृतिशास्त्र को कर्म में प्रवृत्ति करानेवाला समझकर विद्वानों ने उसी पर विश्वास किया है। ब्राह्मण और वेद यज्ञ के मुख्य कारण हैं। यज्ञ की सब सामग्री ब्राह्मणों को दे देनी चाहिए। संसार से यज्ञ की और यज्ञ से संसार की रक्षा होती है। प्रणव वेद का आदि है, अतएव पहले प्रणव का उच्चारण करके तब यज्ञ की क्रिया करनी चाहिए। वेद का वचन है और महर्षियों ने भी कहा है कि जो मनुष्य यथाशक्ति यज्ञ में प्रणव, नमः, स्वाहा और वषट् शब्द का प्रयोग करता है उसे तीनों

लोकों में कोई भय नहीं है। जो ऋक्, यजु, साम और साम-पूरक शब्दों को जानता है वही यथार्थ ब्राह्मण है। अग्निहोत्र, सोमयाग और अन्यान्य यज्ञों का जो फल मिलता है उसे आप भली भाँति जानते हैं। अतएव मनुष्य स्वयं यज्ञ करे और दूसरों को भी यज्ञ करने का उपदेश दे। यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो यज्ञ नहीं करता उसे न तो इस लोक में सद्गति मिलती है और न परलोक में ही। वेद के पण्डितों ने कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों को ही प्रामाणिक माना है। ४०

दो सौ उनहत्तर अध्याय

गाय के शरीर में प्रविष्ट स्यूमरश्मि और कपिल का संवाद

गाय के शरीर में स्थित महात्मा स्यूमरश्मि की बातें सुनकर कपिल ने कहा—योगियों ने कर्म के फल की अनित्यता देखकर ज्ञान-मार्ग का आश्रय करके परमात्मा को प्राप्त किया है। वे इच्छा करते ही सब लोकों को जा सकते हैं। जो हर्ष-विषाद और नमस्कार-आशीर्वाद नहीं करते; जो शुद्धस्वभाव, निर्मलचित्त और सब पापों से मुक्त रहते हैं तथा जो विषय-वासनाओं को त्यागकर और मोक्ष प्राप्त करने का निश्चय करके ब्रह्म-स्वरूप हो जाते हैं वे सरलता से नित्य सिद्धलोक को जा सकते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार की श्रेष्ठ गति पा सके उसे गृहस्थ आश्रम से क्या प्रयोजन है?

स्यूमरश्मि ने कहा—महर्षि, माना कि ब्रह्मज्ञानी संन्यासी लोग तत्त्वज्ञान और परम गति पा सकते हैं; किन्तु गृहस्थों का आश्रय किये बिना कोई किसी धर्म का पालन नहीं कर सकता। जैसे सब प्राणी माता के आश्रित रहकर जीते हैं वैसे ही सब आश्रमी लोग गृहस्थधर्म के प्रभाव से जीवन धारण करते हैं। गृहस्थ मनुष्य ही यज्ञ और तपस्या कर सकता है। गृहस्थधर्म ही सुख का मूल है। सन्तान का उत्पन्न करना मनुष्यों के सुख का प्रधान कारण है; किन्तु गृहस्थाश्रम के सिवा अन्य किसी आश्रम में सन्तान की उत्पत्ति सम्भव नहीं। गृहस्थ लोग ही तृण, अन्न और पहाड़ों पर पैदा हुई सोमलता आदि सब ओषधियों को एकत्र करते हैं। अन्न से सब मनुष्यों की रक्षा होती है, इसलिए गृहस्थाश्रम ही सबसे प्यारा और जीवन का कारण है। कौन मनुष्य गृहस्थाश्रम को मोक्ष का प्रतिबन्धक कह सकता है? श्रद्धाहीन, पूर्वापर-विचार-हीन, नासमझ, आलसी, गृहस्थ-धर्म का पालन करने में असमर्थ मनुष्य ही संन्यास आश्रम का अवलम्बन करके शान्ति का उपाय करते हैं। नित्यसिद्ध वेदमर्यादा ही त्रैलोक्य की रक्षा का ११
कारण है। वेद के ज्ञाता पुरुष जन्म से ही सबके पूज्य हैं। गर्भाधान से लेकर विवाह पर्यन्त ब्राह्मणों के सब संस्कार तथा लोक और परलोक-सम्बन्धी कर्म वेद के मन्त्रों से होते हैं। मृत शरीर का दाहकर्म, श्राद्ध, तर्पण, पिण्ड को जल में प्रवाह करना और मृतक को स्वर्ग-प्राप्ति होने के उद्देश्य से दानादान आदि करना, ये सब काम मन्त्रों से होते हैं। अर्चिष्मान्, बर्हिषद और क्रव्याद नाम के

पितरों ने इन सब कामों को मन्त्रमूलक बतलाया है। मनुष्य जब देवताओं, ब्राह्मणों और पितरों के ऋणी रहते हैं और जब वेदमन्त्रों में कर्मकाण्ड की विधि निर्दिष्ट है तब मोक्ष कैसे मिल सकता है? श्रीहीन आलसी मनुष्य ही मिथ्या-स्वरूप मोक्ष को सत्य कहते हैं। जो ब्राह्मण वेद के अनुसार यज्ञ आदि कर्म करता है, पाप उसका कुछ नहीं कर सकता। वह, यज्ञ में मारे गये पशु के साथ, स्वर्ग को जाता है। जिस तरह पशुओं से उसकी तृप्ति होती है, उसी तरह उससे पशुओं को आनन्द मिलता है। वेदोक्त कर्मों का अनादर, दुष्टता और कपट करने से मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। वैदिक कर्मों के करने से ही मोक्ष मिल सकता है।

कपिल ने कहा—जो बुद्धिमान् पुरुष चित्त-शुद्धि के लिए हिंसा-रहित दर्श, पौर्णमास,
२० अग्निहोत्र और चातुर्मास्य यज्ञ करते हैं उन्हीं का आश्रय सनातन धर्म करता है। आसक्ति-रहित, धैर्यवान्, ब्रह्मज्ञ महात्मा ही ब्रह्म का साक्षात्कार करके अमृत के अभिलाषी देवताओं को सन्तुष्ट कर सकते हैं। जो मनुष्य सब प्राणियों को आत्म-तुल्य समझता है उसके मार्ग में देवता भी मोहित होते हैं। ज्ञानी मनुष्य जीव को जरायुज आदि चार श्रेणियों में विभक्त और उसके मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त को चार मुख तथा हाथ, वाणी, पेट और उपस्थ (लिङ्ग और योनि) को चार द्वार बतलाते हैं। जीव हाथ आदि चार द्वारों का रक्षक है। अतएव इन द्वारों की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। जो बुद्धिमान् मनुष्य जुआ नहीं खेलता, चोरी नहीं करता, नीच जाति के मनुष्यों को यज्ञ नहीं कराता और क्रोध में आकर किसी पर प्रहार नहीं कर बैठता उसी का हस्त-द्वार रक्षित रहता है। जो मनुष्य सत्यवादी, मितभाषी और सावधान रहकर क्रोध, असत्य, कुटिलता और दूसरों की निन्दा का त्याग कर देता है उसी का वाग्-द्वार सुरक्षित रहता है। जो मनुष्य अधिक भोजन और लोभ न करके शरीर की रक्षा के लिए परिमित भोजन और हमेशा सज्जनों की सङ्गति करता है वही पेट-द्वार की रक्षा कर सकता है। जो मनुष्य एक स्त्री के मौजूद रहने पर दूसरा विवाह नहीं करता तथा ऋतु-समय के अतिरिक्त भोग और परस्त्री-गमन नहीं करता उसी का लिङ्ग-द्वार सुरक्षित रहता है। जो महात्मा इस प्रकार चारों द्वारों की रक्षा कर सकता है उसी को ब्रह्मज्ञानी कहते हैं। जो मनुष्य इन द्वारों की रक्षा नहीं कर सकता उसके सब कार्य निष्फल हो जाते हैं। वह तपस्या, यज्ञ और शरीर के द्वारा कोई फल नहीं पा सकता। जो मनुष्य चदरा और उत्तम शय्या को त्यागकर हाथ का ही
३० तकिया लगाकर पृथिवी पर सोता है उसे देवता लोग ब्रह्मज्ञ कहते हैं। जो दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करता; जो स्त्री-पुरुष को परस्पर अनुरक्त देखकर उनसे ईर्ष्या न करके अकेला आनन्द से रहता है; जो सब प्राणियों की गति, प्रकृति और विकृति आदि को जान सकता है तथा जो सब प्राणियों को आत्म-स्वरूप समझकर न तो किसी से डरता और न किसी को डरवाता है उसी को देवता लोग ब्रह्मज्ञ कहते हैं। फलाभिलाषी पुरुष दान-यज्ञ आदि के फल-

स्वरूप चित्त की शुद्धि न कर सकने के कारण गुरु के बतलाये हुए तत्त्वज्ञान को नहीं जान सकते, इसी से वे स्वर्ग आदि प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। आश्रमी पुरुष अपने कर्म और नित्यसिद्ध निष्काम धर्म का आश्रय करके, आत्मज्ञानी होकर, संसारमूलक अज्ञान का नाश कर देते हैं किन्तु फलाभिलाषी मनुष्य उस निष्काम धर्म का पालन नहीं कर सकता इसलिए वह आपत्ति, आचार, प्रमाद और पराभव से हीन, प्रत्यक्ष फल देनेवाले अविनाशी धर्म को निरर्थक और दूषित समझता है। सारांश यह कि निष्काम धर्म, यज्ञ के अनुष्ठान आदि, सकाम धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। पहले तो यज्ञ आदि का स्वरूप समझना ही कठिन है, यदि वह किसी तरह मालूम भी हो जाय तो यज्ञ करना सहज काम नहीं है। और यदि यज्ञ का अनुष्ठान भी हो सके तो उससे अनन्त सुख मिलने की सम्भावना नहीं है। अतएव यज्ञ आदि का फल नश्वर समझकर तत्त्वज्ञान का ही आश्रय करना चाहिए।

स्यूमरश्मि ने कहा—भगवन्! वेद में कर्म के करने और कर्म के त्यागने, दोनों का विधान है। इन दोनों का तत्त्व आप मुझे बतलाइए।

कपिल ने कहा—विवेकी लोग कर्म का त्याग करके, ब्रह्मप्राप्ति-रूप सुमार्ग पर चलकर, अनुभव के द्वारा ब्रह्म को प्रत्यक्ष के समान देखते हैं; किन्तु आप जिस स्वर्ग की प्रशंसा करके यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना बतलाते हैं उससे इस लोक में कौन सी विशेषता देखते हैं? ४०

स्यूमरश्मि ने कहा—ब्रह्मन्, मेरा नाम स्यूमरश्मि है। तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपके पास आकर, इस गाय के शरीर में प्रवेश करके, मैंने आपसे प्रश्न किया है। आपके विपक्ष में होकर मैं अपना कोई सिद्धान्त स्थापित करना नहीं चाहता। आपने सुमार्ग पर स्थित होकर अनुभव द्वारा ब्रह्म का दर्शन किया है; वह ब्रह्म का अनुभव किस प्रकार का है, इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है, आप उसे दूर कीजिए। वेद-विरोधी तर्कशास्त्र की उपेक्षा करके मैंने केवल आगम के अर्थ को जाना है। वेद ही आगम है और वेद के अर्थ का निर्णय करनेवाले मीमांसा-शास्त्र को भी आगम कहते हैं। प्रत्येक आश्रम में इसी आगम की प्रतिपादित विधि का पालन करने से सिद्धि हो सकती है। कोई नाव दूसरे देश की नाव में बँधी रहने से जैसे अपने सवार को गन्तव्य स्थान पर नहीं ले जा सकती वैसे ही, पूर्व वासनाओं में बँधे रहने के कारण, कर्म हम लोगों को जन्म-मृत्यु के प्रवाह से पार नहीं लगा सकते। जो हो, अब मैं आपके पास आया हूँ। आप मुझे इस विषय में उपदेश दीजिए। मनुष्यों में सर्वत्यागी, सन्तुष्ट, शोकहीन, नीरोग, इच्छा-रहित, निष्कर्मा और किसी से सम्पर्क न रखनेवाला कोई भी नहीं है। आप भी हम लोगों की तरह शोक और हर्ष के वशीभूत हैं और दूसरे मनुष्यों के समान आपकी इन्द्रियाँ भी विषयोन्मुख हैं। अतएव आप बतलाइए कि चारों वर्णों और चारों आश्रमों का अक्षय सुख क्या है।

कपिल ने कहा—ब्रह्मन्! कर्म किसी शास्त्र के अनुसार क्यों न किया जाय, वह फल का देनेवाला होता ही है। जिस शास्त्र के अनुसार शम-दम आदि गुणों का अवलम्बन किया

जा सकता है उसी से, सब दोषों से रहित, ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। विवेकी मनुष्य को संसार में किसी वस्तु पर अनुराग नहीं होता। अज्ञान से ही जन्म-मरण-रूप शृङ्खला द्वारा
५० प्राणियों को अनेक प्रकार के क्लेश मिलते हैं। आप लोग ज्ञानवान् और नीरोग हैं; किन्तु आप लोगों को कभी जीवात्मा और परमात्मा का अभेद-ज्ञान नहीं होता। शास्त्रों के मर्म को न जाननेवाले अनीश्वरवादी मूर्ख लोग इच्छा, द्वेष, मोह और अहङ्कार के वशीभूत तथा शम-दम आदि गुणों से हीन होकर ज्ञान को निष्फल कहते हैं; वे ज्ञान के ऐश्वर्य आदि गुणों का अनुसरण नहीं करते। उन लोगों का एकमात्र आश्रय तमोगुण ही है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है वह वैसा ही आचरण करता है। जो मनुष्य तमोगुण के वशीभूत है उसके काम, क्रोध, द्वेष और दम्भ आदि निरन्तर बढ़ते रहते हैं। जो उत्तम गति पाने की इच्छा रखते हों वे स्वकर्म-निरत संन्यासी इस प्रकार विचार कर शुभ और अशुभ दोनों का त्याग कर दें।

स्थूमरश्मि ने कहा—ब्रह्मन्, मैंने शास्त्र के अनुसार आपसे कर्म की प्रशंसा और कर्मत्याग की निन्दा की है। शास्त्र के मर्म को भली भाँति समझे बिना शास्त्रोक्त कर्मों में किसी की प्रवृत्ति नहीं होती। न्याय के अनुसार आचरण करना ही शास्त्र है और जो न्याय से हीन है वही अशास्त्र है। न्याय का उल्लङ्घन करने से शास्त्रीय प्रवृत्ति नहीं होती। जो वेद-वचनों के विरुद्ध है वह शास्त्र ही नहीं। जो लोग केवल प्रत्यक्ष वस्तुओं का ही अस्तित्व मानते हैं वे इसी लोक का विश्वास करते हैं। जिनकी बुद्धि अज्ञान से ढकी रहती है वे अविवेकी लोग शास्त्र में कहे गये दोषों को न समझकर उन्हीं के अनुसार काम करते हैं। उन्हीं की तरह हम लोगों को हमेशा शोक करना पड़ेगा। देखिए, सभी मनुष्य आपकी तरह सरदी-गरमी सहन करते हैं; किन्तु उनके और आपके कामों में जो भेद देख पड़ता है वह अत्यन्त विस्मयजनक
६० है। इस प्रकार आपने सब शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार अनन्त-स्वरूप ब्रह्म का विषय बतलाकर चारों वर्णों और चारों आश्रमों में मेरे हृदय को शान्त-रस से तर कर दिया है। आपने जो कहा है वह सर्वोत्तम है; किन्तु उसका करना सहज नहीं है। जो जितेन्द्रिय निर्विवादी पुरुष योगयुक्त और कृतकार्य होकर केवल शरीर धारण करके निर्वाह कर सकता है वही कर्म से अलिप्त रहकर मोक्ष-पद पा सकता है; किन्तु जो मनुष्य परिवार के साथ रहता है वह कभी मुक्ति देने योग्य कर्म नहीं कर सकता। जब दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तान की उत्पत्ति और सरलता का व्यवहार करने पर भी मुक्ति नहीं मिल सकती तब मुक्ति के चाहनेवाले मनुष्य को, मुक्ति को और मुक्ति पाने के लिए निरर्थक परिश्रम को धिक्कार है। जो हो, इस समय मुझे मोक्ष के विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिए आप ठीक-ठीक उसका वर्णन कीजिए। मैं आपके पास आया हूँ, मुझे
६८ उपदेश दीजिए। आप मुक्ति का विषय जैसा जानते हैं वैसा मुझे भी बतलाइए।

दो सौ सत्तर अध्याय

स्यूमरश्मि और कपिल का संवाद

कपिल ने कहा—महर्षि ! सब लोग वेद को प्रमाण मानते हैं, वेद की कोई अवज्ञा नहीं करता। ब्रह्म दो प्रकार का है—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म का ज्ञान होने पर परब्रह्म की प्राप्ति होती है। पिता पुत्र को उत्पन्न करके वेद-मन्त्र के द्वारा उसके शरीर का संस्कार करता है। संस्कार-सम्पन्न होने पर पुत्र शुद्ध शरीर और ब्राह्मणत्व प्राप्त करके ज्ञान का उपार्जन करने के उपयुक्त पात्र होता है। कर्म का फल चित्त की शुद्धि है। अब चित्त-शुद्धि का विषय सुनिए। चित्त शुद्ध हुआ या नहीं, इसको कर्म करनेवाला मनुष्य ही जान सकता है। दूसरा मनुष्य वेद या अनुमान के द्वारा इसका निश्चय नहीं कर सकता। जो लोग निर्लोभ और राग-द्वेषहीन होकर, धन का संग्रह न करके, केवल धर्म को ही अपना कर्तव्य समझकर यज्ञ करते हैं वे धन्य हैं। उनके धन का उपयोग सत्पात्र को दान देने में ही होता है। प्राचीन समय में अनेक ज्ञानवान्, क्रोधहीन, ईर्ष्या-रहित, निरहङ्कार, सब प्राणियों का हित चाहनेवाले कर्मनिष्ठ गृहस्थ, राजा और ब्राह्मण थे। वे कभी पाप नहीं करते थे। इच्छा करते ही उनके सब काम सिद्ध हो जाते थे। वे शीलवान्, सन्तुष्ट, पवित्र और परब्रह्म में श्रद्धालु थे। वे नियम से ब्रह्मचर्य का पालन करते थे; घोर विपत्ति पड़ने पर भी धर्म को नहीं छोड़ते थे। उन लोगों को यह सुभीता था कि वे मिल-जुलकर १०
धर्म का अनुष्ठान करते थे। उनको कभी प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता था। सत्य के प्रभाव से वे महातेजस्वी थे। वे किसी धर्म को अपनी बुद्धि के बल से न करके केवल शास्त्र के अनुसार श्रेष्ठ धर्म का पालन करते थे। धर्म में वे कभी छल नहीं करते थे। इन नियमों का पालन करने से प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। जो लोग इन नियमों का पालन नहीं करते उन्हीं को प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्राचीन समय में असंख्य ब्राह्मण वेदों के विद्वान्, पवित्र, सद्-व्यवहार-सम्पन्न, यशस्वी, निर्लोभ, बन्धनमुक्त, याज्ञिक, काम-क्रोध-हीन, अपने-अपने कर्मों से विख्यात, नम्रस्वभाव, शान्तगुणावलम्बी और कर्मनिष्ठ हो गये हैं। वे लोग यज्ञ, वेद, शास्त्र, शास्त्र के अनुसार कर्म और सङ्कल्प को ब्रह्म-स्वरूप मानते थे। प्राचीन समय में केवल ब्रह्मार्पण बुद्धि से सब काम किये जाते थे। अन्त को जब मनुष्य इस सूक्ष्म धर्म की रक्षा २०
नहीं कर सके तब उक्त धर्म चार भागों में विभक्त कर दिया गया। कोई तो ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ और कोई गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ का अवलम्बन करके परमगति प्राप्त करते थे। वे सब ब्राह्मण तेजोमय देह धारण करके आकाशमण्डल में तारागण हो गये। उनमें से अनेक ब्राह्मण (अगस्त्य वशिष्ठ आदि) ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गये हैं। यदि वे संसार में जन्म लेते हैं तो कर्म के फल में लिप्त नहीं होते। जो ब्राह्मण इन महात्माओं के समान गुरु की सेवा करके, दृढ़सङ्कल्प होकर, ब्रह्मचर्य का पालन करता है वही ब्राह्मण के नाम को सार्थक करता है।

दूसरों का ब्राह्मण नाम धारण करना विडम्बना मात्र है। जब कर्म के द्वारा ब्राह्मण और अब्राह्मण का निरूपण किया गया है तब कर्म को ही पुरुषों के मङ्गल और अमङ्गल का ज्ञापक समझना चाहिए। जो इस प्रकार निष्काम कर्म और गुरु के उपदेश द्वारा चित्त को शुद्ध कर लेता है वह अपने चित्त में सबको ब्रह्ममय देखता है। विषय-वासनाओं से रहित, शुद्ध चित्त-वाले महात्माओं का केवल समाधि ही परमधर्म है। क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण भी इन सद्गुणों से युक्त होकर इस धर्म का पालन कर सकते हैं। शुद्ध चित्तवाले ब्राह्मण (जिज्ञासु) ही ब्रह्म
३० की प्राप्ति कर सकते हैं। नित्यसन्तुष्ट कर्मफलत्यागी पुरुष को ही ब्रह्मज्ञान हो सकता है। संन्यास-धर्म गुरु-परम्परागत है। वह कभी-कभी दूसरे धर्मों के साथ मिल जाता है। जो पुरुष ब्रह्मपद पाने की इच्छा करके त्याग के बल से इस धर्म का अवलम्बन कर सकता है वही संसार से मुक्त हो सकता है। त्याग के बिना कोई मनुष्य इस धर्म का पालन नहीं कर सकता।

स्यूमरश्मि ने कहा—भगवन्! जो लोग विषयों का भोग, दान और यज्ञ करते तथा वेद का अध्ययन करते हैं और जो विषयों का त्याग करके संन्यास-धर्म का अवलम्बन करते हैं, वे सब शरीर त्यागने के बाद स्वर्ग को जाते हैं। किन्तु उनमें श्रेष्ठ कौन हैं?

कपिल ने कहा—ब्रह्मन्, गृहस्थ लोग अनेक गुणों से सम्पन्न होकर विषय-सुख भोगते हैं; किन्तु उन्हें त्याग-सुख का अनुभव नहीं हो सकता।

स्यूमरश्मि ने कहा—महर्षि, शास्त्र का वचन है कि प्रत्येक आश्रम के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। आपने ज्ञान के प्रभाव से जो फल प्राप्त किया है उसे गृहस्थ लोग कर्म के प्रभाव से प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ है। शास्त्र के अनुसार मुझे समझाइए कि ज्ञान और कर्म, ये दोनों समान हैं अथवा कर्म ज्ञान का अङ्ग है।

कपिल ने कहा—ब्रह्मन्, कर्म के द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीर की शुद्धि होती है और ज्ञान मोक्ष की प्राप्ति का साधन है। कर्म के द्वारा चित्त के दोषों का नाश होता है और शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञान के द्वारा दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, इच्छाओं का त्याग, सहनशीलता और लज्जा उत्पन्न होती है तथा द्रोह और अभिमान का नाश हो जाता है। ये सब गुण ब्रह्म को प्राप्त करने के उपाय-स्वरूप हैं। मनुष्य इन्हीं गुणों के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञानी मनुष्य, वैराग्य द्वारा चित्त के दोषों के नष्ट हो जाने को ही कर्मों का फल समझता
४० है। शुद्ध चित्तवाले आत्मज्ञानी ब्राह्मण जिस गति को प्राप्त करते हैं वही श्रेष्ठ गति है। जो मनुष्य वेद, वेद में बतलाये हुए कर्म, कर्मों के अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान को अच्छी तरह जान लेते हैं वही वेद के विद्वान् हैं और जिन्हें इनका ज्ञान नहीं होता उनका जन्म व्यर्थ है। वे केवल भस्त्रिका (धौंकनी) के समान श्वास लेते हैं। वेद में सभी विषयों का वर्णन है, इसलिए वेदज्ञ मनुष्य सब कुछ जान सकता है। वेद में संसार का अस्तित्व और अभाव दोनों देखे जाते हैं। अविवेकी

मनुष्य जगत् का अस्तित्व ही मान बैठते हैं; किन्तु विवेकी मनुष्य उसकी वास्तविकता को स्वीकार नहीं करते। जो मनुष्य जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं समझता वही परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। मोक्ष ही अविनाशी ब्रह्मानन्द का एकमात्र आधार है। पण्डितों ने मोक्ष को नित्य-सिद्ध, सब प्राणियों में स्थित, सब लोकों में विख्यात, ज्ञातव्य, स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का आत्मा और देह-स्वरूप, सुख और मङ्गल का देनेवाला, परब्रह्म का आधार तथा अक्षय बतलाया है। तत्त्वज्ञ पुरुष ज्ञान के बल से तेज, क्षमा और शान्ति के द्वारा जगत् के कारण-स्वरूप जिस निरामय सनातन परम पदार्थ को प्राप्त करते हैं उस ब्रह्मज्ञान से अभिन्न परमब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ। ४७

दो सौ इकहत्तर अध्याय

भीष्म का अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म को श्रेष्ठ बतलाते हुए कुण्डधार की कथा कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! वेद में धर्म, अर्थ और काम, तीनों की प्रशंसा की गई है; किन्तु इन तीनों में किसका प्राप्त करना सबसे श्रेष्ठ है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! प्राचीन समय में कुण्डधार नाम के मेघ ने प्रसन्न होकर एक ब्राह्मण का उपकार किया था, उसका इतिहास सुनो। एक बार एक दरिद्र ब्राह्मण ने, फल की इच्छा करके, यज्ञ करने का निश्चय किया। किन्तु यज्ञ धन से होता है, यह विचारकर धन प्राप्त करने के लिए वह ब्राह्मण घोर तपस्या करने लगा। ब्राह्मण ने बड़ी भक्ति के साथ बहुत दिनों तक देवताओं की पूजा की; किन्तु इतने पर भी उसे धन न मिला। तब वह सोचने लगा कि जिस देवता की आराधना किसी मनुष्य ने कभी न की हो, मैं अब उसी की उपासना करूँगा। वही देवता शीघ्र मुझ पर प्रसन्न होगा। ब्राह्मण यह सोच रहा था कि इतने में कुण्डधार नाम का मेघ वहाँ आया। उसको देखकर ब्राह्मण के हृदय में उसके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। ब्राह्मण

ने सोचा कि इनसे किसी मनुष्य ने कभी वर न माँगा होगा। ये देवलोक के पास रहते हैं और इनका आकार भी भारी है। अतएव ये शीघ्र ही मुझे धन दे सकते हैं। यह निश्चय करके ब्राह्मण ने दिव्य गन्ध, धूप आदि पूजा की सामग्रियों से कुण्डधार की पूजा आरम्भ की।

ब्राह्मण की भक्ति देख कुण्डधार प्रसन्न होकर बोला—हे ब्राह्मण! सज्जनों ने ब्रह्महत्यारे, मदिरा पीनेवाले, चोर और व्रतहीन मनुष्यों के प्रायश्चित्त का विधान किया है; किन्तु कृतघ्न व्यक्ति का किसी प्रकार प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। आशा का पुत्र अधर्म, ईर्ष्या का पुत्र क्रोध और निर्धनता या कपट का पुत्र लोभ है; किन्तु कृतघ्नता बाँझ है। यह कहकर कुण्डधार चुप हो गया।

इसके बाद तपस्वी ब्राह्मण रात को कुशासन पर सो गया। कुण्डधार के प्रभाव से स्वप्न में ब्राह्मण ने सब प्राणियों को देखा। तेजस्वी यक्षराज मणिभद्र मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार, देवताओं की आज्ञा से, उनको धन आदि देता और अशुभ कर्मों के फल से फिर ले लेता है। वह कुण्डधार, यक्षों के सामने, देवताओं के साथ पृथिवी पर पड़ा है। उसे देखकर देवताओं ने मणिभद्र से उसका हाल पूछने को कहा। यक्षराज ने वहाँ आकर पूछा—कुण्डधार, तुम क्या चाहते हो? कुण्डधार ने कहा—यक्षराज, यदि देवता मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे परम भक्त इस ब्राह्मण को जिस तरह कुछ सुख मिले वैसी कृपा इस पर करें। तब मणिभद्र ने देवताओं की आज्ञा पाकर मेघ से कहा—कुण्डधार! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा, उठो। तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण धन चाहता हो तो इसकी इच्छा पूरी कर दो। यह जितना धन माँगेगा उतना मैं, देवताओं की आज्ञा के अनुसार, इसे दूँगा। तब कुण्डधार ने मनुष्य-शरीर को अनित्य और क्षणभङ्गुर समझकर तथा ब्राह्मणों के तप करने को ही श्रेयस्कर विचारकर कहा—यक्षराज, मैं इस ब्राह्मण के लिए धन की प्रार्थना नहीं करता। देवताओं को इस पर दूसरी तरह की कृपा करनी पड़ेगी। मैं इसके लिए रत्नों से परिपूर्ण पृथिवी नहीं माँगता। मैं चाहता हूँ कि देवताओं की कृपा से यह धर्मपरायण हो जावे। इसकी बुद्धि धर्म में स्थिर हो और धर्म में ही शान्ति प्राप्त करे। तब मणिभद्र ने कहा—कुण्डधार, यह ब्राह्मण शारीरिक दुःखों से छुटकारा पाकर धर्म के फल-स्वरूप राज्य और अनेक सुख भोगेगा। देवताओं की इस बात पर कुण्डधार सहमत नहीं हुआ। वह ब्राह्मण के लिए बार-बार धर्म की ही प्रार्थना करने लगा। कुण्डधार का यह आग्रह देखकर देवताओं को बड़ा सन्तोष हुआ। इसके बाद मणिभद्र ने कहा—कुण्डधार, देवगण तुमसे और इस ब्राह्मण से बहुत सन्तुष्ट हैं। अब यह ब्राह्मण धर्मपरायण हो गया; इसकी बुद्धि हमेशा धर्म में स्थिर रहेगी। यह बात सुनकर, दुर्लभ अभीष्ट वर पाकर, कुण्डधार बहुत प्रसन्न हुआ।

स्वप्न में यह घटना देखकर ब्राह्मण ने फिर देखा कि उसके चारों ओर कफन पड़ा हुआ है। यह देखने से उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा कि मैंने कुण्डधार

की आराधना की है; किन्तु वह व्यक्ति प्रत्युपकार करनेवाला नहीं है। अब दूसरे से क्या आशा की जाय ? अतएव मैं धन की आशा छोड़कर धर्म करने के लिए वन को जाता हूँ।

देवताओं की कृपा से ब्राह्मण को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह वन में जाकर घोर तपस्या और देवताओं की पूजा करता हुआ, अतिथियों को भोजन देकर, फल-मूल खाने लगा। उसकी बुद्धि क्रमशः धर्म मे दृढ़ होने लगी। कुछ दिनों बाद फल-मूल का त्याग करके वह केवल पत्ते खाकर रहने लगा। उसके बाद पत्तों को भी छोड़कर केवल पानी पीकर और फिर उसे भी छोड़कर वायु का आहार करके बहुत समय तक तपस्या करता रहा। किन्तु इस प्रकार भोजन छोड़ देने पर भी उसका बल नहीं घटा। उसको देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसी कठिन तपस्या करने पर बहुत दिनों बाद ब्राह्मण को दिव्य ज्ञान हो गया। तब उसने सोचा कि यदि मैं प्रसन्न होकर किसी को धन दूँ तो वह निस्सन्देह धनी हो जायगा। मैं अब तप के प्रभाव से सिद्ध हो गया हूँ, इसलिए जो कुछ कह दूँगा उसके विरुद्ध न होगा। यह सोचकर प्रसन्नता से वह फिर तपस्या करने लगा। कुछ दिनों बाद पहले से भी बढ़कर सिद्धि मिलने पर वह सोचने लगा कि यदि अब मैं प्रसन्न होकर किसी को राज्य दूँ तो वह अवश्य राजा हो जायगा। मेरा वचन निष्फल न होगा। ४०

उसी समय ब्राह्मण के तपोबल से और उसके साथ मित्रता होने के कारण कुण्डधार वहाँ आया। उसको देखकर ब्राह्मण ने विस्मित हो उसका यथोचित सत्कार किया। तब कुण्डधार ने ब्राह्मण से कहा—हे तपोधन, तपस्या के प्रभाव से आपको दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है। उससे आप राजाओं और अन्य मनुष्यों की गति देख सकते हैं। यह सुनकर ब्राह्मण ने दिव्य दृष्टि के द्वारा दूर से ही राजाओं को नरक में पड़ा देखा। कुण्डधार ने कहा—ब्राह्मण, भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके यदि आप दुःख भोगते रहते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता ? जब कि मनुष्यों के लिए स्वर्ग-प्राप्ति में काम-क्रोध आदि बाधक हैं तब क्या मनुष्यों को इच्छाओं के वश में रहना चाहिए ?

कुण्डधार के कहने पर ब्राह्मण ने देखा कि असंख्य मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, भय, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य के वशीभूत हैं। तब कुण्डधार ने कहा—ब्रह्मन्, काम-क्रोध आदि में सब

मनुष्य फँसे रहते हैं। देवता लोग भी काम आदि के कारण मनुष्यों से डरते हैं और ये काम आदि, देवताओं की आज्ञा के अनुसार, मनुष्यों के सब कामों में विघ्न डालते हैं। सारांश यह कि देवताओं के अनुग्रह बिना कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता। यह देखिए, अब आप तप के प्रभाव से मनुष्यों को राज्य और बहुत सा धन दे सकते हैं।

कुण्डधार की ये बातें सुनकर ब्राह्मण ने प्रणाम करके उससे कहा—भगवन्, आपने मुझ
५० पर बड़ी कृपा की है। मैंने आपके इस स्नेहपूर्ण स्वभाव को समझे बिना, काम और लोभ के वश होकर, जो आपके प्रति अश्रद्धा प्रकट की है उस मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए।

'मैंने आपका अपराध क्षमा किया' यह कहकर कुण्डधार ने ब्राह्मण को गले से लगा लिया। इसके बाद वह अन्तर्धान हो गया। कुण्डधार की कृपा से, तप के प्रभाव से सिद्ध होकर, ब्राह्मण भी अपनी इच्छा के अनुसार सब लोकों में विचरने लगा। मतलब यह कि धर्म का पालन और योगाभ्यास करने से आकाश-मार्ग से चलने की सामर्थ्य, इच्छाओं की सिद्धि और श्रेष्ठ गति मिलती है। धार्मिक पुरुषों का सम्मान देवता, ब्राह्मण, यक्ष, मनुष्य और चारण आदि करते हैं; धनवान् कामी का कभी आदर नहीं करते। हे धर्मराज, तुमको धर्मात्मा समझकर देवता लोग तुम पर बहुत
५६ प्रसन्न हैं। धन से थोड़ा सा सुख मिल सकता है; अनन्त सुख तो धर्म के प्रभाव से मिलता है।

दो सौ बहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से अहिंसात्मक यज्ञ का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यज्ञ तो अनेक प्रकार के हैं; आप उस यज्ञ का वर्णन कीजिए जिसके द्वारा शुद्ध धर्म प्राप्त होता हो। स्वर्ग आदि फल देनेवाले यज्ञों का ब्योरा मैं नहीं सुनना चाहता।

भीष्म ने कहा—बेटा! तपस्वियों में श्रेष्ठ नारदजी ने यज्ञ के विषय में, उञ्छवृत्ति करनेवाले सत्य नाम के ब्राह्मण का, जो इतिहास कहा था वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। धर्मप्रधान विदर्भ देश में सत्य नाम का एक ब्राह्मण, उञ्छवृत्ति करता हुआ, यज्ञ करता था। वह साँवाँ, सूर्यपर्णी, सुवर्चला और अन्यान्य तीखे नीरस शाक खाता था; किन्तु उसकी तपस्या के प्रभाव से ये सब शाक बड़े स्वादिष्ठ हो जाते थे। वह वानप्रस्थ आश्रमी था और दरिद्रता के कारण पशु आदि तो पाल नहीं सकता था, इसलिए फल-मूल को ही पशु-रूप समझकर उनसे हिंसाप्रधान यज्ञ करता था। पुष्करधारिणी नाम की शुद्ध स्वभाववाली उसकी पत्नी थी। वह इतने व्रत उपवास आदि किया करती थी कि उसकी देह दुबली हो गई थी। वह कपड़ों की जगह मोर की पूँछ से गिरे हुए पंख पहनती थी। यद्यपि वह स्त्री अपने पति की मानसिक वृत्ति को हिंसामय देखकर उनके अनुकूल काम करना पसन्द नहीं करती थी तो भी उसे, शाप के डर से, स्वामी की आज्ञा मानकर हिंसामय यज्ञ करना पड़ता था।

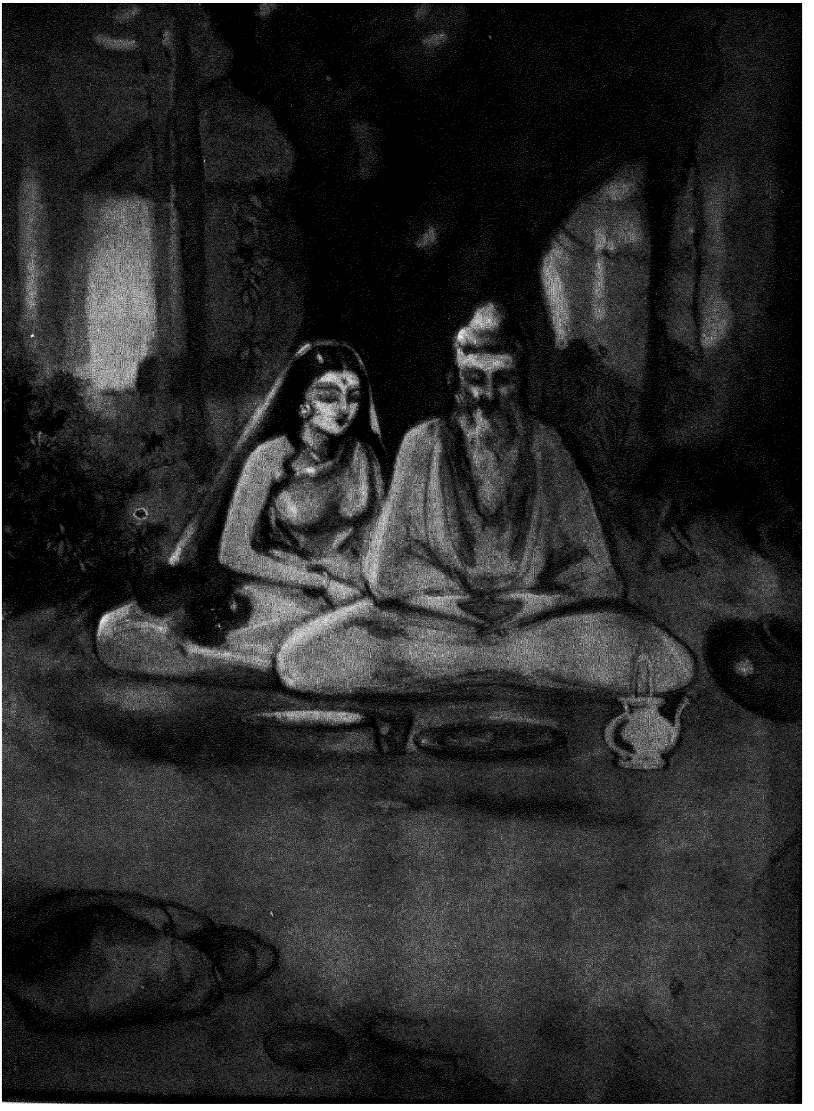

पुष्करधारिणी नाम की शुद्ध स्वभाववाली उसकी पत्नी थी। वह इतना व्रत उपवास आदि किया करती थी कि उसकी देह दुबली हो गई थी।—पृ० ३७५०

एक बार वह ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था, इतने में उसका हितैषी धर्म मृग का रूप धारण करके उसके पास आकर बोला—सत्य, तुम अङ्गहीन यज्ञ करके बड़ा दुष्कर्म कर रहे हो। तुम मुझे अग्नि में होम दो और अनिन्दित होकर स्वर्ग को जाओ। मृग के यों कहते ही, रूप धारण करके, सावित्री देवी वहाँ आ गईं और सत्य से कहने लगीं—ब्राह्मण! तुम इस पशु का, मेरे प्रीत्यर्थ, अग्नि में होम कर दो; किन्तु ब्राह्मण इसके लिए तैयार न हुआ। उसने कहा कि हाय, यज्ञ में कैसा अकार्य होता है। अब देवी सावित्री, पाताल लोक देखने के लिए, यज्ञ की आग में प्रवेश कर गईं। तब वह मृग, अपना वध करने के लिए, सत्य से बार-बार प्रार्थना करने लगा। किन्तु सत्य ने उसकी बात

१०

नहीं मानी और उसे गले लगाकर कहा—तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ। तब वह मृग आठ पैर चलकर फिर लौट आया और बोला—ब्रह्मन्, आप मेरा वध कीजिए। यज्ञ में वध होने से मुझे सद्गति मिलेगी। आप मेरी दी हुई दिव्य दृष्टि के द्वारा आकाश में स्थित गन्धर्वों के विचित्र विमानों और अप्सराओं को देखिए। मृग के यों कहने पर ब्राह्मण ने अप्सराओं और विमानों को देखकर स्वर्ग का भोग करने की इच्छा से मृग का वध करना उचित समझा। तब मृग-रूपी धर्म ने ब्राह्मण की उस कुप्रवृत्ति को बदलने के लिए कहा—ब्रह्मन्, हिंसा करके यज्ञ करना श्रेयस्कर नहीं है। यह सुनकर ब्राह्मण की हिंसा-प्रवृत्ति जाती रही; किन्तु उसने मन में मृग का वध करने का निश्चय किया था, इसलिए उसकी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट हो गई। अतएव यज्ञ में पशु-हिंसा करना उचित नहीं है।

इसके बाद [मृग का रूप त्यागकर] भगवान् धर्म ने स्वयं उस ब्राह्मण को यज्ञ कराया। ब्राह्मण ने भी तप के प्रभाव से, पत्नी के साथ, अहिंसा धर्म का अवलम्बन किया। हे धर्मराज! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, अहिंसा अति श्रेष्ठ धर्म है; हिंसा से बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्यवादी पुरुषों ने अहिंसा धर्म को ही सादर ग्रहण किया है। २०

दो सौ तिहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को धर्म की श्रेष्ठता बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किन कर्मों के करने से मनुष्य को पाप लगता है और किन कर्मों के द्वारा धर्म, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे तुम नहीं जानते। तुम केवल आत्मज्ञान दृढ़ करने के लिए मुझसे पूछते हो। जो हो, मैं मोक्ष, वैराग्य, पाप और धर्म की प्राप्ति का वर्णन विस्तार से करता हूँ। मनुष्य रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पाँच भोग्य विषयों में से किसी एक का स्वाद लेकर राग-द्वेष के वश में हो जाता है। तब वह अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति और जिससे द्वेष रखता है उसका अनिष्ट करने का उद्योग करता है। इस कारण वह भयङ्कर काम कर बैठता है और हमेशा रूप-रस आदि का भोग करने के लिए यत्न करता रहता है। इसके बाद उसके हृदय में लोभ, मोह, राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। लोभ और मोह के वशीभूत होकर तथा राग और द्वेष से घिरी रहकर मनुष्य की धर्म-बुद्धि नष्ट हो जाती है। तब वह कपट-धर्म और छल-पूर्वक धन का संग्रह करने लगता है। दूसरों को धोखा देने से जब धन पैदा होने लगता है तब इसी तरह धन पैदा करने का उसे चस्का लग जाता है। उसके मित्र और पण्डित लोग यदि उसे ऐसा करने से रोकते हैं तो वह बहाने बनाने लगता है। वह पापी मनुष्य राग और मोह से उत्पन्न पाप-कर्म करता है। पाप में ही उसका मन लगा रहता है और वह पाप की बातें करता है। उसके
१० इन अधर्मों को सज्जन देखा करते हैं। पापी लोग अपने ही जैसे मनुष्यों के साथ मित्रता करते हैं। न तो उन्हें इस लोक में ही सुख मिलता है और न परलोक में ही।

अब धर्मात्माओं के काम बतलाता हूँ। धर्मात्मा मनुष्य दूसरों की भलाई मनाते हुए अपनी भलाई चाहते हैं। परोपकार के द्वारा परम गति मिलती है। जो मनुष्य सुख-दुःख का विचार कर सकता है और ऊपर बतलाये हुए सब दोषों को ज्ञान के प्रभाव से देखता हुआ सत्सङ्गति करता है उसकी धर्म-बुद्धि बढ़ती है और वह धर्म का पालन करता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है। धार्मिक मनुष्य धर्म से ही धन का उपार्जन करता है; वही काम करता है जिसके करने से गुणों की प्राप्ति होती है। वह अपने ही सदृश मनुष्यों के साथ मित्रता करता है। सुशील मित्र और धर्म से उपार्जित धन के द्वारा वह इस लोक और परलोक में सुख भोगता है। धर्मात्मा मनुष्य धर्म के प्रभाव से रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श, सब विषयों का सुख पा सकता है।

धर्मात्मा मनुष्य धर्म का फल पाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह ज्ञान के प्रभाव से वैराग्य का अवलम्बन करता है। रूप, रस, गन्ध आदि भोग्य विषयों से मन को हटा लेने पर वह सब कर्मों का त्याग कर देता है और सब लोकों को नश्वर समझकर निष्काम कर्म

करता हुआ मोक्षपद पाने का यत्न करने लगता है। जो मनुष्य पाप-कर्मों को त्यागकर धीरे- २१
धीरे वैराग्य की ओर बढ़ने लगता है वही धर्मात्मा है और वही मोक्षपद पा सकता है।

मैंने पाप, पुण्य, मोक्ष और वैराग्य का वर्णन कर दिया। अतएव तुम सब अवस्थाओं में धर्म का पालन करो। धार्मिक मनुष्य परम पद प्राप्त कर सकता है। २४

दो सौ चौहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष का उपाय बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने कहा है कि उपाय करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अतएव मोक्ष प्राप्त करने का उपाय विशेष रूप से मुझे बतलाइए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम हमेशा उपाय के द्वारा धर्म आदि को प्राप्त करने की इच्छा करते हो सो तुम्हारा यह प्रश्न ठीक ही है। जैसे घड़ा बनाते समय उसके बनाने की इच्छा ही उसका कारण होती है और घड़ा तैयार हो जाने पर वह इच्छा-बुद्धि जाती रहती है वैसे ही धर्म करते समय मनुष्य की बुद्धि उस धर्म का कारण होती है और योग आदि मोक्ष-धर्म की सिद्धि हो जाने पर उस इच्छा का लोप हो जाता है। जैसे पूर्वीय समुद्र के मार्ग पर जानेवाला मनुष्य पश्चिम के समुद्र पर नहीं पहुँच सकता वैसे ही अन्य धर्म का पालन करनेवाला मनुष्य मोक्ष-धर्म को नहीं पा सकता। इस धर्म का तो एक ही मार्ग है। उस मार्ग को मैं विस्तार से बतलाता हूँ। मनुष्य क्षमा के द्वारा क्रोध को, इच्छा का त्याग करने से विषय-वासना को, सत्त्व-गुण का अवलम्बन करने से निद्रा को, सावधान रहने से बदनामी को, आत्मा का मनन करने से श्वास को, धैर्य से काम और द्वेष को, तत्त्वज्ञान के प्रभाव से भ्रम प्रमाद और संशय को, ज्ञान का अभ्यास करने से अनुसन्धान और न करने योग्य कामों की विचारशक्ति को अधीन कर लेता है; वह परिमित हितकर और सुपक्व भोजन करने से रोग और शारीरिक क्लेश को, सन्तुष्ट रहने से लोभ और मोह को, दया के प्रभाव से अधर्म को, हमेशा पालन करते रहने से धर्म को, भविष्य का विचार करने से आशा को, लोभ का त्याग करने से धन को, सब वस्तुओं को अनित्य समझ जाने पर स्नेह को, योग के प्रभाव से क्षुधा को, दीनता से आत्माभिमान को, उद्योग से आलस्य को, वेद पर विश्वास करने से सन्देह को, मौन रहने से वाचालता को और षट् रिपुओं को वश में करके संसार के भय को जीत लेता है। पहले बुद्धि के बल से मन और ११
वाणी को संयत करके ज्ञानचक्षु के द्वारा बुद्धि को अपने अधीन करे। उसके बाद आत्मज्ञान के प्रभाव से उस ज्ञान को वश में करके जीवात्मा और परमात्मा के भेद को दूर कर दे। शान्ति और निष्काम धर्म द्वारा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही सर्वथा उचित है। पण्डितों ने काम, क्रोध, लोभ, भय और निद्रा, इन पाँच दोषों को योग के साधन में विघ्न रूप बतलाया

है। अतएव इन सब का त्याग करके योग की सिद्धि के उपायस्वरूप दान, ध्यान, अध्ययन, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, चित्तशुद्धि, आहारशुद्धि और इन्द्रियसंयम करना चाहिए। इन कामों के करने से तेज की वृद्धि, इच्छाओं की सिद्धि और अनेक प्रकार के विज्ञान की उत्पत्ति होती है तथा सब पाप नष्ट हो जाते हैं। निष्पाप, तेजस्वी, मितभोजी, जितेन्द्रिय मनुष्य काम-क्रोध को अपने अधीन करके ब्रह्मपद प्राप्त करने की इच्छा करें। शरीर, मन और वाणी का संयम करना तथा मूर्खता, विषयों की इच्छा, काम, क्रोध, दीनता, अहङ्कार, घबराहट और घर,
१९ इन सबका त्याग करना, ये मोक्ष प्राप्त करने के उपाय हैं।

दो सौ पचहत्तर अध्याय

पृथिवी आदि महाभूतों की उत्पत्ति और विनाश के विषय में नारद और देवल का संवाद

भीष्म ने कहा कि युधिष्ठिर, तुम्हें नारद और देवल का संवाद सुनाता हूँ। एक बार देवर्षि नारद ने बुद्धिमान् वृद्ध असित देवल को बैठे देखकर उनसे पूछा—ब्रह्मन्, यह स्थावर-जङ्गमरूपी संसार किससे उत्पन्न हुआ है और प्रलय के समय किसमें लीन होगा?

देवल ने कहा—नारद, सृष्टि के समय परमात्मा ने जिन वस्तुओं से प्राणियों की उत्पत्ति की है उन वस्तुओं को विज्ञानवान् महात्मा लोग पञ्चमहाभूत कहते हैं। परमात्मा से प्रेरित होकर जीवात्मा इन महाभूतों के द्वारा अन्यान्य प्राणियों को सृष्टि करता है। जो लोग परमात्मा, जीवात्मा और पञ्चमहाभूतों के सिवा अन्य किसी चेतन या अचेतन को सृष्टि का कारण बतलाते हैं उनकी बातें निर्मूल हैं। ये पञ्चभूत तेजस्वरूप, नित्य और निश्चल हैं। जीव उनका छठा अङ्ग है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, यही पाँच महाभूत हैं। इन पञ्चभूतों के अतिरिक्त संसार में और कोई पदार्थ नहीं है। पञ्चमहाभूतों से ही शरीर बनता है। ये पञ्चभूत और जीव जिस शरीर के कारण हैं उसके नष्ट होने में कोई सन्देह नहीं। पञ्चभूत, जीव, पूर्व संस्कार और अज्ञान, यही आठ प्राणियों के जन्म-मरण के कारण हैं। प्राणी इन आठों के द्वारा उत्पन्न होता और इन्हीं में लीन हो जाता है। मरने पर प्राणियों के शरीर पाँच हिस्सों में
१० बँट जाते हैं। उनकी उत्पत्ति के समय पृथिवी से शरीर, आकाश से कान, तेज से आँखें, वायु से प्राण और जल से रक्त उत्पन्न होता है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा, ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। बाह्य पदार्थों को देखना, सुनना, सूँघना, स्पर्श का ज्ञान करना और स्वाद लेना, ये पाँच उन इन्द्रियों के काम हैं। ये इन्द्रियाँ रूप, रस आदि अपने विषयों का अनुभव स्वयं नहीं कर सकतीं; इनका अनुभव इन्द्रियों के द्वारा आत्मा ही करता है। इन्द्रियों से चित्त, चित्त से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। मनुष्य पहले, इन्द्रियों के द्वारा, रूप आदि विषयों का अनुभव करता है, उसके बाद मन के द्वारा उनका विचार और फिर बुद्धि के द्वारा उनका

निश्चय करता है। पाँच इन्द्रियाँ, मन, चित्त और बुद्धि, ये आठ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, गुदा, लिङ्ग और मुँह, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। बोलने और खाने के लिए मुँह, चलने-फिरने के लिए पैर, काम करने के लिए हाथ, मल त्यागने के लिए गुदा और वीर्य निकालने के लिए लिङ्ग इन्द्रिय है। २१
इन पाँचों के सिवा एक और कर्मेन्द्रिय है। उसका नाम प्राण है। वह छठी इन्द्रिय है।

थक जाने के कारण जब इन्द्रियाँ अपना काम रोक देती हैं तब मनुष्य सो जाता है। इन्द्रियों के विश्राम करने पर भी मन काम करता रहता है। वह विषयों का अनुभव करता है, इसी से मनुष्यों को स्वप्न देख पड़ते हैं। मन के भाव तीन प्रकार के हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। सात्त्विक सबसे श्रेष्ठ है। इन तीनों भावों के प्रभाव से जाग्रत् अवस्था में की हुई इच्छाएँ निद्रा-अवस्था में स्वप्न-रूप से देख पड़ती हैं। सात्त्विक पुरुष के हृदय में जाग्रत् अवस्था में सुख, ऐश्वर्य, ज्ञान और वैराग्य, ये चारों विराजमान रहते हैं, इसलिए वह स्वप्न में भी इन्हीं का अनुभव करता है। सात्त्विक पुरुषों के समान ही राजस और तामस पुरुषों के हृदय में उनके मनोभाव के अनुरूप जो-जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हीं का अनुभव वे स्वप्न में करते हैं। मनुष्य के शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और सात्त्विक आदि तीन भाव, ये सत्रह गुण रहते हैं। अठारहवाँ जीवात्मा है जो अविनाशी है। ये जो सत्रह गुण शरीर में रहते हैं इन सबसे अदृश्य रहकर जीवात्मा इन गुणों में और शरीर में निवास करता है। जीवात्मा समेत इन अठारह गुणों, देह और जठराग्नि, कुल बीस पदार्थों के एकत्र होने से पाञ्चभौतिक समूह तैयार होता है। जीव प्राणवायु को लेकर शरीर की रक्षा करता ३०
है और वही शरीर के नष्ट होने का कारण है। जीव पाञ्चभौतिक शरीर का आश्रय करता है और प्रारब्ध का नाश होने पर शरीर को त्याग देता है। उसके बाद इस शरीर के द्वारा किये हुए पुण्य-पाप को लेकर फिर दूसरे शरीर में जाता है। जैसे मनुष्य पुराना घर छोड़कर नये घर में चला जाता है वैसे ही जीव अपने कर्मों के फल से उत्पन्न एक शरीर का त्याग करके दूसरा शरीर धारण कर लेता है। जो मनुष्य इन बातों को भली भाँति समझ जाता है वह पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्बियों के मरने पर खेद नहीं करता। अविवेकी मनुष्य ही उनके लिए रोते और शोक करते हैं। संसार में कोई किसी का नहीं है। केवल जीव मनुष्यों को सुख-दुःख देता हुआ उनके शरीर में निवास करता है। वह न तो पैदा होता और न मरता है। वह ज्ञान उत्पन्न होने पर, कर्मों का त्याग करके, इस पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर मोक्षपद प्राप्त करता है। पुण्य-पाप का नाश करने के लिए सांख्यशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है। पुण्य-पाप का नाश होते ही जीव ब्रह्मरूप होकर परमगति प्राप्त करता है। ३८

———

दो सौ छिहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जनक और माण्डव्य के संवाद में तृष्णा का त्याग बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! जब हम लोगों ने राज्य के लोभ से पिता, भाई, पौत्र, सजातीय और मित्रों का नाश किया है तब हमारे समान क्रूर और पापी कोई न होगा। हम लोगों ने तृष्णा से ही यह घोर पाप किया है। अब वह उपाय बतलाइए जिससे हम लोगों की यह तृष्णा दूर हो जाय।

भीष्म ने कहा कि बेटा, मैं इस विषय में एक प्राचीन कथा कहता हूँ। यह कथा राजा जनक ने माण्डव्य से कही थी। विदेहराज ने माण्डव्य से कहा—महात्मन्, यद्यपि किसी वस्तु पर मुझे ममता नहीं है तो भी मैं बड़े सुख से रहता हूँ। विदेह-नगरी के भस्म हो जाने पर भी मेरा कुछ नहीं जलेगा। ज्ञानी महात्मा लोग ब्रह्मलोक को भी दुःख का कारण समझते हैं; किन्तु अविवेकी मनुष्य असार विषयों में ही हमेशा मोहित रहते हैं। तृष्णा का नाश होने पर जो शुद्ध सुख मिलता है उसके सामने संसार के और स्वर्ग के सब सुख सोलह आने में एक आने भर भी नहीं हैं। जैसे बैल के बढ़ने के साथ-साथ उसके सींग भी बढ़ते रहते हैं वैसे ही ऐश्वर्य की जितनी वृद्धि होती जाती है उतनी ही अधिक तृष्णा भी बढ़ती जाती है। मनुष्य को यदि रत्ती भर वस्तु पर भी ममता होती है तो उसका नाश होने से उसको अवश्य शोक होता है। इच्छाओं का दास होना उचित नहीं। इच्छाओं में आसक्त रहने से निस्सन्देह दुःख भोगना पड़ेगा। अतएव धन प्राप्त करके, इच्छाओं को त्यागकर, धर्म के कामों में उसे ख़र्च कर देना चाहिए। ज्ञानवान् मनुष्य सब प्राणियों को अपने समान समझता है और शुद्ध-
१० चित्त तथा कृतकृत्य होकर सब पुण्य-पापों का त्याग कर देता है। सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, प्रिय, अप्रिय, भय और अभय, सब कुछ त्याग देने से ही मनुष्य शान्तचित्त और निरामय हो जाता है। अविवेकी लोग जिसका त्याग करना दुःसाध्य समझते हैं, वृद्धावस्था में भी जो नहीं बुढ़ाती और महात्मा लोग जिसे प्राण का अन्त कर देनेवाला रोग कहते हैं उस तृष्णा का त्याग करने से ही परम सुख मिल सकता है। धर्मात्मा लोग शुद्ध आचरण करके इस लोक और परलोक में सुख का अनुभव करते और यशस्वी होते हैं। विदेहराज की यह कथा सुनकर
१४ महर्षि माण्डव्य बहुत प्रसन्न हुए और उनको धन्यवाद देकर मुक्ति प्राप्त करने का यत्न करने लगे।

दो सौ सतहत्तर अध्याय

आयु शीघ्र नष्ट हो जाती है, इसलिए करने योग्य काम को जल्दी करना चाहिए,
इस विषय में पिता और पुत्र का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! सब प्राणियों को भय देनेवाला यह काल धीरे-धीरे बीता जा रहा है, अतएव मुझे उपदेश दीजिए कि किस काम के करने से कल्याण होगा।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैं इस विषय में एक इतिहास कहता हूँ जिसमें पिता और पुत्र का संवाद है। किसी विद्वान् ब्राह्मण के मेधावी नाम का एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्ष-धर्म के जानकार मेधावी ने एक बार स्वाध्याय-निरत अपने पिता को मोक्ष-धर्म का अनभिज्ञ समझकर उनसे पूछा—पिताजी! मनुष्यों की आयु बहुत शीघ्र बीत जाती है, यह जानता हुआ विद्वान् मनुष्य किस प्रकार के आचरण करे? मैं भी उसी के अनुसार धर्म का पालन करूँ।

पिता ने कहा—बेटा! मनुष्य पहले ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर वेद का अध्ययन करे, उसके बाद गृहस्थ आश्रम में जाकर पितरों को तृप्त करने के लिए पुत्र उत्पन्न करे और अग्नि का स्थापन करके नियमानुसार यज्ञ करे। अन्त को वन में जाकर मुनियों के धर्म का अवलम्बन करे।

पुत्र ने कहा—पिताजी, जब मनुष्य इस प्रकार नष्ट और आक्रान्त हो रहे हैं तथा अविनाशिनी सदा आती-जाती रहती है तब आप निश्चिन्त की तरह यह क्या कह रहे हैं?

पिता ने पूछा—बेटा, मनुष्यों को कौन नष्ट और कौन उन पर आक्रमण कर रहा है? और जो अविनाशिनी लगातार आती-जाती है, वह कौन है?

पुत्र ने कहा—पिताजी! मृत्यु मनुष्यों का विनाश और बुढ़ापा उन पर आक्रमण करता है तथा दिन-रात अविनाशिनी है, वह हमेशा आती-जाती रहती है। आप इनकी ओर ध्यान क्यों नहीं देते? जब मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि मौत किसी को नहीं छोड़ेगी तब अज्ञान में पड़ा रहकर काल की प्रतीक्षा क्यों करूँ? जब मनुष्यों की आयु दिन प्रतिदिन १०
घटती जा रही है तब, थोड़े जल में रहनेवाली मछली के समान, किसी को सुख की आशा नहीं है। जैसे मनुष्य वन में बेधड़क फूल तोड़ रहा हो और उसी बीच कोई हिंसक जीव उस पर आक्रमण कर दे वैसे ही विषय-भोग में लगे हुए मनुष्य को, उसकी तृष्णा पूरी होने के पहले ही, सहसा मौत आकर दबोच लेती है। जिस काम को कल करना हो उसे आज करे और जिसे दूसरे पहर करना है उसे इसी पहर कर डाले; क्योंकि काम पूरा हुआ या नहीं, इसकी प्रतीक्षा मृत्यु नहीं करती। कोई नहीं जानता कि किस समय किसकी मौत होगी। काम पूरा होने के पहले ही मौत आ जाती है, अतएव जो काम करना हो उसे आज ही कर डाले। बुढ़ापे की प्रतीक्षा न करके तरुण अवस्था में ही धर्म का आचरण करे। धर्म करने से दोनों लोकों में सुख मिलता है। मनुष्य मोह के वश होकर, उचित-अनुचित सब तरह के काम करके, स्त्री और पुत्रों को सन्तुष्ट रखता है; किन्तु जैसे नदी सोये हुए बाघ को अपने वेग में बहा ले जाती है और जैसे भेड़िया भेड़ को ले भागता है वैसे ही मृत्यु, स्त्री-पुत्र आदि से सम्पन्न, मनुष्य को उठा ले जाती है। 'यह काम हो गया, अब यह करना है और यह काम अधूरा पड़ा है' इस प्रकार की चिन्ता में पड़े हुए मनुष्य पर सहसा मौत का आक्रमण हो जाता है। काल किसी काम के पूरे होने और उसका फल मिलने की प्रतीक्षा नहीं करता। खेत, दूकान २०

और घर के कामों में लगे हुए, दुर्बल, बलवान्, बुद्धिमान्, शूर-वीर, मूर्ख और पण्डित, किसी को काल नहीं छोड़ता। जब मनुष्य मौत, बुढ़ापा, रोग और अनेक कारणों से उत्पन्न दुःखों को हटाने में असमर्थ है तब आप क्यों निश्चिन्त बने रहते हैं? मनुष्य का जन्म होते ही बुढ़ापा और मौत उसके साथ हो लेती है। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी इन दोनों के वशीभूत हैं। मृत्यु की सेना को सत्य-बल के सिवा और कोई नहीं हटा सकता। सत्य ही अमृत का आश्रय है, और बस्ती में रहने की इच्छा ही मौत का निवासस्थान है। वेद का वचन है कि वन देवताओं के रहने का स्थान है और गाँव (बस्ती) में रहने की इच्छा ही बन्धन की रस्सी है। पुण्यवान् मनुष्य इस रस्सी को काटकर देवताओं के निवासस्थान वन का आश्रय करते हैं; किन्तु पापी मनुष्य उसे नहीं काट सकता। जो मन, वाणी और शरीर से किसी का बुरा नहीं चेतता और जो किसी की जीविका नहीं हरता उसे किसी का डर नहीं रहता। सत्य का पालन करके, शम-दम आदि गुणों से युक्त होकर, सत्य के बल से मौत को जीतना चाहिए। मृत्यु और अमृत दोनों इसी शरीर में स्थित हैं। मोह के वश होने से मृत्यु होती है और सत्य-मार्ग का अवलम्बन करने से अमृत की प्राप्ति होती है। अतएव मैं हिंसा और काम-क्रोध को
३० त्यागकर, सत्य का अवलम्बन करके, अमर के समान मौत का उपहास करूँगा और सूर्य के उत्तरायण होने पर शान्ति-मार्ग का अवलम्बन, वेद का अध्ययन तथा कर्म मन और वाणी का संयम करूँगा। मेरे समान मनुष्य को हिंसामय पशुयज्ञ अथवा पिशाच के समान विनाशक क्षत्रिय-यज्ञ की दीक्षा लेनी उचित नहीं। मैं अपने आत्मा से स्वयं उत्पन्न हुआ हूँ; मैं आत्म-निष्ठ होकर, पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा छोड़कर, परमात्मा में जीवात्मा की आहुति दूँगा। मेरा कल्याण पुत्र से न होगा। जिसकी वाणी और मन संयत है और तपस्या, दान तथा योग ही जिसका परमधर्म है वह इनके प्रभाव से अपना कल्याण कर सकता है। ज्ञान के समान नेत्र, राग के समान दुःख और त्याग के समान सुख नहीं है। एकाग्रता, सब प्राणियों के साथ सम भाव, सत्य, अपने धर्म में स्थिति, दण्ड का और कर्मों का परित्याग तथा सरलता ये काम ही ब्राह्मणों के परम धन हैं। पिताजी! जब मरना निश्चित है तब आप क्यों धन, बन्धु-बान्धव और स्त्री-पुत्र की इच्छा करते हैं? अब इस शरीर में स्थित आत्मा का ध्यान कीजिए। आपके पिता और पितामह आदि पूर्व-पुरुष कहाँ गये?

हे धर्मराज, ज्ञानवान् पुत्र के यों कहने पर पिता ने उसकी बातों पर विश्वास करके सत्य-धर्म का अनुष्ठान किया था। तुम भी उसी तरह सत्यधर्म का पालन करते हुए परम सुख
३९ से जीवन व्यतीत करो।

दो सौ अठहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष के साधन बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! मनुष्य किस प्रकार के चरित्र, आचार, ज्ञान और आश्रय से युक्त होने पर सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! ब्रह्मपद को वही पा सकता है जो कि मोक्ष-धर्म में लगा रहता, परिमित भोजन करता और जितेन्द्रिय होता है। अतएव किसी वस्तु के मिलने और न मिलने को समान समझे और उपस्थित सामग्री की परवा न करके गृहस्थाश्रम को त्यागकर संन्यास-धर्म का अवलम्बन कर ले। क्या सामने और क्या पीठ पीछे, मन वाणी और सङ्केत के द्वारा किसी की निन्दा न करे। हिंसा का त्याग करके सबके साथ मित्रता रक्खे। इस नश्वर शरीर को धारण करके किसी मनुष्य के साथ शत्रुता करना उचित नहीं। यदि कोई निन्दा करे तो उसे सह ले। दूसरों से अपने को श्रेष्ठ समझकर दर्प करना बड़ा निन्दित काम है। यदि कोई निन्दा करके क्रोध दिलाना चाहे तो उससे प्रिय वचन बोले और यदि कोई प्रहार करे तो उसके हित की बात कहे। किसी मनुष्य के अनुकूल या प्रतिकूल होना संन्यासियों का धर्म नहीं है। यदि वे बहुत से घरों में भटकने पर भी भीख न पावें तो भी किसी गृहस्थ के बुलाने पर भोजन के लिए उसके घर न जायँ। मूर्ख मनुष्य द्वारा अपमानित होने पर भी उसे कठोर वचन न कहे। हमेशा अपने धर्म का पालन करना, दयावान् होना, किसी के अपकार करने पर बदले में उसका अपकार न करना तथा निर्भय और अहङ्कार-हीन रहना चाहिए। जब गृहस्थों के घर में धुआँ न देख पड़े, जब उनके घरों में मूसल की आवाज़ न हो रही हो और जब बर्तनों के धरने-उठाने का शब्द न सुनाई दे तब उनके घरों में भिक्षा के लिए संन्यासियों को जाना चाहिए। कोई अधिक परिमाण में भोजन की सामग्री दे तो अपने शरीर की रक्षा भर के लिए ही ले ले। वस्त्र आदि का सञ्चय करना तो दूर रहा, खाने की वस्तुओं का भी संग्रह करना उचित नहीं। मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर असन्तुष्ट न होना चाहिए। चन्दन-माला आदि सर्वसाधारण के योग्य वस्तुओं की भी वे इच्छा न करें। १०
निमन्त्रित होकर भोजन करना उन्हें उचित नहीं। उन्हें भोजन की प्रशंसा या निन्दा न करनी चाहिए। वे निर्जन स्थान में बैठें और सोवें। उन्हें सूने घर, पेड़ के नीचे, वन, पहाड़ की कन्दरा या अन्य किसी जनशून्य स्थान में रहना चाहिए। वे मान और अपमान को समान समझें और निश्चल रहें। कर्म करके पुण्य-पाप का उपार्जन न करें। सब कुछ त्यागकर हमेशा सन्तुष्ट, प्रसन्नमुख, निर्भय, जप-परायण और मौन रहें। प्राणियों का जन्म-मरण बार-बार होता है और सबके शरीर और इन्द्रियाँ नश्वर हैं, इन बातों को ध्यान में रखकर किसी विषय का लोभ न करना, सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखना, अपने आत्मा में ही प्रसन्न रहना,

थोड़ा भोजन करना, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय होकर अन्न आदि या फल-मूल खाकर निर्वाह करना उनका कर्तव्य है। वे वाणी, मन, क्रोध, उदर और इन्द्रिय के वेग को सँभाले रहें। निन्दा और प्रशंसा को समान समझकर मध्यस्थ के सदृश रहना संन्यास आश्रम का प्रधान धर्म है। संन्यासी महात्माओं को दमगुण से युक्त, सहायहीन, गृहशून्य, शान्तचित्त और सावधान रहना चाहिए। वे एक बार से अधिक किसी स्थान पर भिक्षा के लिए न जावें। वानप्रस्थ आश्रमी या गृहस्थ से विशेष मेल-जोल न रक्खें। हर्ष में डूब न जाना और अपने आप मिली हुई अनिन्दित
२० वस्तु का भोजन करना उनका कर्तव्य है। महात्मा हारीत ने संन्यास-धर्म को ही मोक्ष प्राप्त करने का प्रधान साधन बतलाया है। ज्ञानवान् मनुष्य ही इस धर्म का आश्रय करके मोक्षपद पा सकते हैं। अविवेकी लोग यदि इस धर्म का पालन करने की चेष्टा करते हैं तो परिश्रम के सिवा उनके हाथ और कुछ नहीं लगता। सारांश यह कि जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान देकर, गृहस्था-
२२ श्रम का त्याग करके, संन्यास-धर्म का पालन करता है वही परम ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

दो सौ उन्नासी अध्याय

भीष्म का धर्म के विषय में शुक्राचार्य और वृत्रासुर का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मनुष्य हम लोगों को धन्य कहते हैं; किन्तु हम लोगों से बढ़कर दुखी कोई नहीं है। देखिए, संसार में प्रतिष्ठित और धर्म आदि देवताओं के पुत्र होने पर भी हम लोगों को घोर कष्ट सहना पड़ा है। अतएव जान पड़ता है कि शरीर धारण करना ही दुःख का कारण है। हाय, हम लोग दुःखनाशक संन्यास-धर्म का आश्रय कब करेंगे? महर्षि लोग पाँच प्राण, मन, बुद्धि, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, मुक्ति के विरोधी काम-क्रोध आदि तथा शब्द आदि इन्द्रियों के विषयों और सत्त्व आदि गुणों से मुक्त होकर संसार से छुटकारा पाते हैं। फिर उन लोगों को जन्म नहीं लेना पड़ता। हाय, हम लोग राज्य को छोड़कर महर्षियों के समान संन्यास आश्रम का अवलम्बन कब करेंगे?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, दुःख का अन्त अवश्य होता है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका अन्त न होता हो। मुक्त हो जाना ही पुनर्जन्म का अन्त है। सभी विषयों की एक-एक सीमा निर्दिष्ट है। संसार के अनुराग का कारण होने से ऐश्वर्य दूषित तो अवश्य है, किन्तु उससे तुम लोगों का कुछ अपकार न होगा। तुम लोग धर्मात्मा हो, इसलिए शम-दम आदि गुणों के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकोगे। मनुष्य पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है, बल्कि पुण्य-पाप अज्ञान के द्वारा उसे घेरे रहते हैं। जैसे हवा धूल के कारण काले, पीले और लाल रङ्ग की देख पड़ती है वैसे ही जीव कर्मों के फल से युक्त और अज्ञान के वश होकर—स्वयं वर्णशून्य होने
१० पर भी—गौरत्व आदि देह के धर्म का अवलम्बन करके देह-देह में घूमा करता है। ज्ञान के

प्रभाव से मनुष्य जब अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देता है तब उसे सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है। उद्योग करने से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, इसलिए हमेशा महर्षियों की सङ्गति करनी चाहिए। तुम भी महात्माओं की सङ्गति करो। ब्रह्म की प्राप्ति यत्नसाध्य है, इसलिए महर्षि लोग हमेशा यत्नवान् रहते हैं। शत्रु से पराजित, राज्य से भ्रष्ट, असहाय दानव-राज वृत्र ने शत्रु के विषय में जो कुछ कहा था उसे ध्यान देकर सुनो।

प्राचीन समय में दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने वृत्रासुर को ऐश्वर्य-भ्रष्ट देखकर पूछा कि दानवराज, तुम शत्रु से हार जाने पर भी दुखी क्यों नहीं हुए? तब वृत्र ने कहा—आचार्य, मैं प्राणियों की मृत्यु और मुक्ति के विषय को तपस्या और वेद-वाक्यों के प्रभाव से भली भाँति जानता हूँ, इसलिए मैं कभी शोक से पीड़ित और हर्ष से विह्वल नहीं होता। बहुत से जीव काल से प्रेरित होकर नरक में गिरते हैं और बहुत से देवलोक में जाकर सुख भोगते हैं। जीव स्वर्ग और नरक में निर्दिष्ट समय बिताकर अवशिष्ट पुण्य-पाप के प्रभाव से बार-बार जन्म लेते हैं। उनको हज़ारों बार तिर्यक् योनि में जन्म लेना और नरक में जाना पड़ता है। मैं जीवों के विषय में यही जानता हूँ। शास्त्र में बतलाया गया है कि जिसके जैसे कर्म होते हैं उसे वैसी ही गति मिलती है। २०
जीव कर्म के अनुसार ही तिर्यक्, मनुष्य और देवयोनि में जाता और कर्मों के फल से ही बार-बार नरक का दुःख सहन करता है। कर्मों के प्रभाव से ही उसे मृत्यु के बाद सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय मिलता है। सभी जीव परलोक में कर्म का फल भोग करके पृथ्वी पर आते हैं।

वृत्रासुर के मुँह से ये सज्जनोचित बातें सुनकर और सृष्टि-स्थिति के एकमात्र आश्रय परमात्मा पर उनकी दृढ़ भक्ति देखकर शुक्राचार्य ने कहा कि दानवराज, तुम असुर होने पर भी इस तरह की बातें कैसे कह रहे हो? वृत्र ने कहा—भगवन्, यह सब जानने के लिए पहले मैंने जो कठिन तपस्या की थी उसे आप और दूसरे लोग सब जानते हैं। मैंने गन्ध-रस आदि विषयों और अन्यान्य भोग्य वस्तुओं पर अधिकार करके, अपने तेज के प्रभाव से, तीनों लोकों का अभ्युदय प्राप्त किया था। मैं प्रभामण्डल में व्याप्त होकर आकाश में बेखटके घूमता था। उस समय मुझे कोई नहीं जीत सकता था। मैंने तपस्या के प्रभाव से ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त किया था और अपने कर्मों के दोष से ही मैं भ्रष्ट हुआ हूँ। मैं इस समय केवल अपने धैर्य के बल से उसका शोक नहीं करता। जब मैं इन्द्र से युद्ध करने जा रहा था तब मुझे वैकुण्ठनाथ विष्णु के दर्शन हुए थे। मैं निश्चित रूप से समझता हूँ कि मुझे विष्णु के दर्शन-स्वरूप तप का फल मिलना अभी बाक़ी है। मैं उसी भाग्य के प्रभाव से आपसे कर्मों के फल का विषय पूछता हूँ। ३०
ब्रह्मरूप महान् ऐश्वर्य किस वर्ण में है और उस ऐश्वर्य से मनुष्य किस तरह भ्रष्ट होते हैं? प्राणियों की उत्पत्ति किससे होती है और किसके द्वारा वे जीवित रहते हैं? जीव किस फल के प्रभाव से ब्रह्म-स्वरूप होता है? जिस फल के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है वह फल किस कर्म या ज्ञान

से मिलता है ? यह सब आप विस्तार से कहिए। हे धर्मराज, इसके बाद महर्षि शुक्राचार्य
३४ ने जो कुछ कहा था उसे तुम भाइयों समेत सावधान होकर सुनो।

दो सौ अस्सी अध्याय

भीष्म का सनत्कुमार द्वारा वर्णित विष्णु का माहात्म्य कहना

शुक्राचार्य ने कहा—दानवराज! यह भूमण्डल जिनका निम्न भाग, आकाशमण्डल जिनका मध्यभाग और मोक्ष धाम जिनका मस्तक है, उन नारायण को प्रणाम करके मैं उनका माहात्म्य कहता हूँ।

वृत्रासुर और शुक्राचार्य में इस तरह बातें हो ही रही थीं कि इतने में धर्मात्मा सनत्कुमार, सन्देह दूर करने के लिए, वहाँ आ गये। वृत्रासुर और शुक्राचार्य ने सनत्कुमार को देखकर उनकी यथोचित पूजा की और उन्हें योग्य आसन पर बैठाया। महात्मा सनत्कुमार के बैठ जाने पर शुक्राचार्य ने कहा कि महात्मन्, आप दानवराज वृत्र से विष्णु का माहात्म्य कहिए। तब महात्मा सनत्कुमार वृत्रासुर से कहने लगे—दानवराज, मैं तुमको विष्णु का माहात्म्य सुनाता हूँ। यह संसार उन्हीं विष्णु में स्थित है। वही परम पुरुष, काल की सहायता से, सब प्राणियों की बार-बार सृष्टि और संहार करते हैं। ये सब जीव उन्हीं से उत्पन्न और उन्हीं में लीन हो जाते हैं। उन परमपुरुष की प्राप्ति न तो शास्त्र के ज्ञान, न तपस्या और न यज्ञ करने से ही हो सकती है; उनकी प्राप्ति तो इन्द्रिय-संयम से ही होती है। जो निष्काम यज्ञ और
१० शम-दम आदि के द्वारा चित्त को शुद्ध कर लेता है वही मोक्ष पा सकता है। सोना आदि धातुएँ जैसे सुनार के द्वारा बार-बार तपाई जाने पर शुद्ध होती हैं वैसे ही मनुष्य बार-बार जन्म लेने पर शुद्ध होता जाता है। कोई-कोई तो एक ही जन्म में बड़े यत्न से यज्ञ करने और शम-दम आदि गुणों के प्रभाव से शुद्ध हो जाते हैं। शरीर का मैल धो डालने के समान दोषों को दूर कर देना चाहिए। जैसे तिल और सरसों आदि में एक बार थोड़े से फूल रखने पर भी तिल और सरसों आदि की गन्ध पूरे तौर से नहीं निकल जाती वैसे ही एक जन्म में थोड़े से सत्त्वगुणों के द्वारा सब दोष दूर नहीं किये जा सकते। जैसे तिल और सरसों में कई बार अधिक परिमाण में फूल रखने से उनकी गन्ध जाती रहती है वैसे ही बार-बार जन्म लेने पर और सत्त्वगुण की अधिकता होने से, स्त्री-पुत्र आदि के स्नेह से उत्पन्न, सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

हे दानवराज, अब तुमको बतलाता हूँ कि कर्म में अनुरक्त और कर्म से विरक्त मनुष्य किस प्रकार कर्म करते हैं और किस तरह कर्म को त्याग देते हैं। अनादि अनन्त भगवान् नारायण स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों की सृष्टि करते हैं। देह और जीव-रूप से वे सब प्राणियों
२० में विराजमान रहते हैं और ग्यारह इन्द्रिय-स्वरूप होकर संसार का भोग करते हैं। उनके पैर पृथ्वी, सिर स्वर्ग, भुजाएँ चारों दिशाएँ, कान आकाश, आँखें सूर्य, मन चन्द्रमा, बुद्धि

ज्ञान और रसना जल-रूप से स्थित है। धर्म उनके हृदय में और सम्पूर्ण ग्रह उनकी भौंहों में रहते हैं। नक्षत्र-गण उनकी आँखों से उत्पन्न हुए हैं और सत्त्व, रज तथा तम ये तीनों गुण उन्हीं का स्वरूप हैं। वे सब आश्रमों, जप आदि कर्मों और संन्यास-धर्म के फल-स्वरूप हैं। उनके रोएँ वेद और वाणी प्रणव है। वही सब आश्रमों के आश्रय हैं। उनका मुख सर्वत्र है। वही ब्रह्म, वही परम धर्म, तपस्या, शुभ और अशुभ काम, मन्त्र, शास्त्र, यज्ञ के पात्र, सोलह ऋत्विजों से युक्त यज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मित्र, वरुण, यम और कुबेर-स्वरूप हैं। ऋत्विक् लोग उन्हें इन्द्र-महेन्द्र आदि अनेक रूपों में अलग-अलग देखकर भी अद्वितीय कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं अद्वितीय भगवान् नारायण के अधीन है। वेद में उनको सब प्राणियों का कारण बतलाया गया है। जीव जब ज्ञान के प्रभाव से सब प्राणियों को परमात्म-स्वरूप देखता है तब उसे ब्रह्मज्ञान होता है।

स्थावर प्राणी हज़ार करोड़ कल्प तक रहते हैं; इतने ही समय तक जङ्गम जीव विचरते हैं। ३०
एक योजन चौड़ी, पाँच सौ योजन लम्बी और एक कोस गहरी हज़ारों बावलियों के पानी में से यदि प्रतिदिन केवल एक बार बालों के द्वारा बूँदें फेंकी जावें और इसी तरह फेंकने से उन सब बावलियों का पानी जितने दिनों में सूखे उतने दिनों में एक बार सृष्टि और एक बार प्रलय होता है। प्राणियों के रङ्ग छः प्रकार के हैं—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हरिद्र और शुक्ल। ये सब वर्ण क्रमशः एक से एक बढ़कर सुख देनेवाले हैं। तमोगुण की प्रधानता से कृष्ण वर्ण अर्थात् स्थावरयोनि, रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता से धूम्र वर्ण अर्थात् तिर्यक्योनि, रजोगुण की प्रधानता से नील वर्ण अर्थात् मनुष्ययोनि, रजोगुण और सत्त्वगुण की प्रधानता से रक्त वर्ण अर्थात् प्राजापत्य, सत्त्व की प्रधानता से हारिद्र वर्ण अर्थात् देवत्व प्राप्त होता है और केवल शुद्ध सत्त्वगुण के प्रभाव से शुक्ल वर्ण अर्थात् जीवन्मुक्ति मिलती है। शुक्ल वर्ण के प्रभाव से जीव निष्पाप, शोकहीन और श्रमहीन होकर सिद्धि प्राप्त करता है; किन्तु वह अत्यन्त दुर्लभ है। जीव हज़ारों बार जन्म लेकर शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके अन्त को उन्हीं शास्त्रों में बतलाई हुई गति पाता है। शुक्ल आदि वर्णों के प्रभाव से गति मिलती है और सत्य आदि युगों के प्रभाव से वर्ण प्राप्त होते हैं। शुक्ल वर्ण को छोड़कर अन्य सब वर्णों की गति चौदह प्रकार की है। इन चौदह प्रकार की गतियों के और भी बहुत से भेद हैं। गुणों के प्रभाव से ही जीव श्रेष्ठ लोक को जाता, वहाँ निवास करता और फिर संसार में आता है। कृष्ण वर्ण की गति अति निकृष्ट है। इस वर्ण के प्रभाव से जीव नरक में जाता, लाखों वर्ष नरक का दुःख भोगता और फिर धूम्र वर्ण को प्राप्त होता है। इस धूम्र वर्ण के प्रभाव से जीव को सरदी-गरमी आदि का दुःख सहना पड़ता है। अन्त को पाप का नाश होने पर उसके चित्त में वैराग्य उत्पन्न होता है, तब वह नील वर्ण प्राप्त करता है। जब सत्त्वगुण की अधिकता होती है तब वह तमोगुण से मुक्त होकर

रक्त वर्ण प्राप्त करता है और अपनी बुद्धि के प्रभाव से, अपना कल्याण करने के लिए, उद्योग करता हुआ मनुष्य-लोक में घूमता है। वह एक कल्प तक पुण्य-पाप की शृङ्खला में बँधा रहकर उसके
४० बाद हारिद्र वर्ण प्राप्त करता है। उसके बाद सौ कल्पों तक देवता रहकर मनुष्य-योनि में आता है। फिर मनुष्य-योनि को त्यागकर देवता हो जाता है और अनेक कल्पों तक स्वर्ग में रहता है। उसके बाद क्रमशः उन्नीस हज़ार गतियाँ पाकर अन्त को सब कर्मों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य-योनि के समान सभी योनियों से क्रमशः उन्नति और अवनति होती रहती है। देवलोक में विहार करके जीव फिर मनुष्य होता है और एक सौ आठ कल्प तक मनुष्य-शरीर में रहकर शुभ कर्म करके अन्त को मुक्त हो जाता है। यदि जीव देवलोक से मृत्युलोक में आकर पाप-कर्म करने लगता है तो उसे निकृष्ट कृष्ण वर्ण प्राप्त होता है।

हे दानवराज! जीव को जिस प्रकार सिद्धि मिल सकती है वह मैं विशेष रूप से बतलाता हूँ, सुनो। जीव सात सौ दैव कल्प तक रक्त, हारिद्र और शुक्ल वर्ण का भोग करता है। महात्मा लोग शुक्ल वर्ण प्राप्त करके, अपनी इच्छा के अनुसार, अनेक लोकों को जाते हैं। शुक्ल वर्ण की गति जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों से भिन्न है। योगी लोग एक कल्प तक महर्लोक आदि चार लोकों में रहते हैं। इस कल्प के बीतने पर उनकी मुक्ति हो जाती है। जो राग आदि दोषों से रहित होने पर भी ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकते और योग के ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाते हैं वे सौ कल्प तक भूर्लोक आदि सात लोकों में रह करके अन्त को वहाँ से लौटकर फिर मनुष्य-योनि में आकर महत्त्व पाते हैं। उसके बाद फिर मृत्युलोक से निकलकर क्रमशः ऊपर के सात लोकों में भ्रमण करते हैं। इन लोकों में भ्रमण करते समय मनुष्यों का बार-बार जन्म-मरण देखकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न होता है। तब वे ऊपर के लोकों को भी अनित्य समझकर, उनका अनादर करके, जीवलोक को चले आते हैं। उसके बाद उन्हें अक्षयलोक प्राप्त होता है। इस लोक को कोई महादेव का,
५० कोई विष्णु का, कोई ब्रह्मा का, कोई अनन्त का, कोई नर का और कोई ब्रह्म का लोक कहते हैं। मोक्षपद प्राप्त करते समय सज्जन लोग सब इन्द्रियों और प्रकृति आदि सहित स्थूल और सूक्ष्म शरीर को भस्म करके ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जन्म लेकर जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार निर्दिष्ट स्थान में रहते हैं; प्रलयकाल में वे सब प्रकृति के साथ ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जो महात्मा सिद्ध-लोक से भ्रष्ट हुए हैं वे प्रलय काल के समय उसी लोक को जाते हैं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष जितने दिनों तक इस लोक में इन्द्रियों का संयम करके, शुद्धचित्त होकर, सुख-दुःख में हर्ष-विषाद नहीं करता उतने ही समय तक उसके शरीर में वेदविद्या और ब्रह्मविद्या का प्रकाश रहता है। उस समय उसे जीवन्मुक्त और सर्वमय कहा जा सकता है। मनुष्य पहले शुद्ध मन के द्वारा अनुसन्धान करके विशुद्ध चेतन-रूप ब्रह्म का साक्षात्कार करे और अन्त को दूसरों के लिए अति दुर्लभ मोक्ष-स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करे। हे दैत्यराज, यह मैंने नारायण के माहात्म्य और मोक्ष का वर्णन किया।

दानवराज वृत्र ने सनत्कुमारजी से कहा—महर्षि, आपका कहना ठीक है। संसार को अनित्य समझकर मुझे किसी प्रकार का शोक नहीं होता। अब आपके ये वचन सुनकर मैं निष्पाप और शोक-मोह-हीन हो गया हूँ। भगवान् विष्णु का यह अनन्त कालचक्र सदा चलता रहता है। इसी चक्र के प्रभाव से सब पदार्थों की सृष्टि होती है। उन्हीं पुरुषश्रेष्ठ में यह संसार स्थित है।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, इसके बाद दैत्यराज वृत्र ने अपने आत्मा को परब्रह्म में लीन करके प्राण त्यागकर परमगति प्राप्त की।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, महर्षि सनत्कुमार ने वृत्रासुर से जिन भगवान् विष्णु का माहात्म्य कहा था वे विष्णु क्या यही श्रीकृष्ण भगवान् हैं? ६०

भीष्म ने कहा—धर्मराज, चेतन-स्वरूप परब्रह्म अपने असीम तेज के प्रभाव से अनेक रूप धारण करके अवतार लेते हैं। ये श्रीकृष्ण उन्हीं के आठवें अंश हैं और ये तीनों लोक भी उन्हीं परब्रह्म के आठवें अंश से उत्पन्न हुए हैं। कल्पान्त में विराट् पुरुष का नाश हो जाता है, उस समय केवल भगवान् विष्णु जल में सो रहते हैं। प्रलय-काल में सब लोकों का नाश हो जाने पर यही अनादि अनन्त केशव फिर संसार की सृष्टि करते हैं। यह विचित्र संसार इन्हीं में स्थित है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मुझे मालूम होता है कि दानवराज वृत्र अपनी सद्गति स्वयं देखते थे इसी से उन्हें रत्ती भर भी शोक नहीं था, बल्कि वे बड़े सुख से रहते थे। तिर्यक् योनि और नरक से वही मुक्त होता है जो कि शुक्ल वर्ण में स्थित है, अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ है और सिद्ध है; उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो हारिद्र और रक्त वर्ण में स्थित रहता है उसे कभी-कभी दुर्भाग्यवश तामस कार्यों में आसक्त होकर तिर्यक् योनि में जाना पड़ता है। हम लोग हमेशा दुःख-सुख में आसक्त रहते हैं, इसलिए हमें कृष्णवर्ण या कोई उससे भी बढ़कर नीच गति मिलेगी।

भीष्म ने कहा— हे पाण्डवो, एक तो तुम लोग व्रतधारी हो फिर श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए हो। अतएव तुम लोग देवलोक को जाकर फिर मृत्युलोक में आओगे। उसके बाद फिर देवलोक में जाकर सुख भोग करके अन्त को सिद्ध पुरुषों में गिने जाओगे। तुम लोग डरो मत। ७०

दो सौ इक्यासी अध्याय

भीष्म का इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, महातेजस्वी ज्ञानी विष्णुभक्त दानवराज वृत्र बड़े धर्मात्मा थे। दैत्य होकर उन्होंने किस तरह भगवान् विष्णु की दुर्ज्ञेय महिमा को जाना? आपने वृत्रासुर की जो कथा कही है उसे मैंने बड़ी श्रद्धा से सुना। अब वृत्रासुर का पूरा वृत्तान्त सुनने की मेरी इच्छा है। वेदान्त के मर्मज्ञ परम धार्मिक वृत्र को इन्द्र ने किस तरह मारा? आप विस्तार से कहिए कि दानवराज वृत्र किस तरह इन्द्र से पराजित हुए और उन दोनों में किस तरह युद्ध हुआ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! प्राचीन समय में इन्द्र, वृत्र के साथ युद्ध करने की इच्छा से, देवताओं समेत रथ पर सवार होकर चले। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पाँच सौ योजन ऊँचे और तीन सौ योजन चौड़े शरीरवाले वृत्र, दानवों की सेना के आगे, पर्वत के समान शोभित हैं। तीनों लोकों में अजेय दुर्जय महाबली वृत्र को देखकर सब देवता डर गये। उनका भयङ्कर रूप देखकर इन्द्र भी शिथिल से हो गये। अब संग्रामभूमि में दोनों ओर बाजे बजने और सिंहनाद होने लगे। इन्द्र को युद्ध में आया हुआ देखकर दानवराज वृत्र को न तो रत्ती भर डर लगा और न घबराहट हुई।

इसके बाद इन्द्र और वृत्रासुर का घोर युद्ध होने लगा। तलवार, भल्ल, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर, शिला, धनुष और अग्नि तथा उल्का आदि अनेक दिव्य अस्त्रों से संग्रामभूमि भर गई। पितामह ब्रह्मा और असंख्य देवता, महर्षि, सिद्ध, अप्सरा और गन्धर्वगण दिव्य विमानों पर चढ़कर युद्ध देखने के लिए आकाश-मार्ग में आ गये। धर्मात्मा वृत्र ने इन्द्र के चारों ओर शिलाओं की वर्षा करके आकाश-मण्डल को पाट दिया। यह देखकर देवताओं ने भी क्रोध में आकर, लगातार बाण बरसाकर, शिलाओं की वृष्टि को रोक दिया। तब महापराक्रमी मायावी दानवराज ने युद्ध में ऐसी माया फैलाई कि इन्द्र की एक न चली।

युद्ध में वृत्र की माया से जब इन्द्र की यह दशा हो गई तब महर्षि वसिष्ठ ने सामवेद के मन्त्रों का पाठ करके उन्हें सचेत किया और कहा—देवराज ! तुम देवश्रेष्ठ, असुरों का नाश करनेवाले और महापराक्रमी होकर इस तरह क्यों घबराते हो ? देखो, पितामह ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्रमा और अनेक महर्षि उपस्थित हैं। तुम साधारण मनुष्यों के समान घबराओ मत ; युद्ध में मन लगाकर शत्रुओं को परास्त करो। यह देखो, सब लोकों के पूज्य लोकगुरु महादेवजी तुम्हारी ओर देख रहे हैं। तुम सावधान हो जाओ। देखो, बृहस्पति आदि ब्रह्मर्षिगण तुम्हारी विजय-कामना से तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं।

वसिष्ठजी के यों कहने पर महातेजस्वी इन्द्र ने अतुल बल धारण किया। उन्होंने युक्ति से वृत्रासुर की माया को हटा दिया। इसके बाद अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति और अन्यान्य महर्षियों ने, वृत्र के पराक्रम को देखकर, संसार के हित के लिए महादेवजी के पास जाकर कहा—भगवन्, आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे दानवराज वृत्र मारा जाय। महर्षियों के यों कहने पर महादेवजी का तेज, ज्वर-रूप होकर, वृत्र के शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसी समय सब लोकों के रक्षक और सब लोकों के पूज्य भगवान् विष्णु ने भी इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया। तब बुद्धिमान् बृहस्पति, महातेजस्वी वसिष्ठ और अन्य महर्षियों ने पास जाकर इन्द्र से कहा कि देवराज, अब वृत्र को मारो। महादेवजी ने भी कहा—देवराज ! यह वृत्र महापराक्रमी, सर्वत्र-गामी और बड़ा मायावी है। यह दानव तुम्हारा परम शत्रु है अतएव तुम शीघ्र इस त्रैलोक्य-

विजयी असुर का वध करो। अब देर करने का काम नहीं है। इस दानव ने बलवान् होने के लिए साठ हज़ार वर्ष तक कठिन तपस्या की थी। इसने उस तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा का वर पाकर योगियों का महत्त्व, महामाया, महान् पराक्रम और अतुल तेज प्राप्त किया है। इस समय तुम्हारे शरीर में हमारा तेज प्रविष्ट होता है। तुम इस तेज के प्रभाव से वज्र के द्वारा शीघ्र इसका संहार करो।

इन्द्र ने कहा—भगवन्! आपकी कृपा से, आपके सामने ही, वज्र द्वारा इस दुर्धर्ष दानव का वध करता हूँ।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, जब ज्वर-रूप होकर महादेवजी का तेज वृत्र के शरीर में प्रविष्ट हो गया तब देवता और ऋषि लोग प्रसन्न होकर कोलाहल मचाने लगे। दुन्दुभि, शङ्ख, मुरज और डिंडिम आदि हज़ारों बाजे बजने लगे। दम भर में दानवों की माया का लोप हो गया और उनकी स्मरण-शक्ति नष्ट हो गई। देवता और ऋषि लोग वृत्र को ज्वर से पीड़ित देखकर, महादेव और इन्द्र की स्तुति करने तथा इन्द्र को वृत्र से युद्ध करने के लिए जल्दी मचाने लगे। संग्रामभूमि में जिस समय ऋषि लोग इन्द्र को उ`जित कर रहे थे उस समय रथ पर सवार इन्द्र का स्वरूप दुर्लक्ष्य हो रहा था। ४४

दो सौ बयासी अध्याय

इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का मारा जाना और इन्द्र की ब्रह्महत्या का अग्नि आदि में बांटा जाना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, दानवराज वृत्र जिस समय ज्वर से आक्रान्त हुए थे उस समय उनके शरीर में जो चिह्न देख पड़ते थे उनको सुनो। उनका चेहरा लाल हो उठा, शरीर काँपने लगा, रोंगटे खड़े हो गये और शरीर का रङ्ग बदल गया। वे लम्बी साँस खींचने लगे। उनकी स्मरण-शक्ति जाती रही। उनके पास ही उल्कापात होने लगा। गिद्ध, कौए और बगुले भयङ्कर शब्द करने लगे और चक्र के समान बनकर उड़ते हुए उनके सिर पर घूमने लगे।

अब रथ पर सवार इन्द्र ने वज्र उठाकर वृत्र की ओर देखा। ज्वर के मारे उन्हें जमुहाई आ रही थी। वज्रधारी इन्द्र को देखकर वे सिंह के समान गरजने लगे। वृत्र को जमुहाते देखकर इन्द्र ने उन पर वज्र का प्रहार किया। प्रलयकाल की आग के समान महातेजस्वी वज्र के लगने पर दानवराज वृत्र की मृत्यु हो गई। वृत्रासुर को मरा हुआ देखकर देवता खुशी के मारे गरजने लगे। दानवों के शत्रु महायशस्वी देवराज, वृत्रासुर को मारकर, विष्णु से युक्त अपने वज्र को लेकर स्वर्ग को चले गये। इन्द्र के चले जाने पर दानवराज वृत्र के शरीर से मुण्डमालाधारिणी ब्रह्महत्या निकली। उसका रङ्ग काला, बाल बिखरे हुए और आँखें डरावनी थीं; बड़े-बड़े दाँत होने से वह भयावनी थी। वह बल्कल पहने हुए थी। वृत्र के शरीर से निकलकर ब्रह्महत्या वज्रधारी इन्द्र को ढूँढ़ने लगी। कुछ दिनों बाद एक बार देवराज मनुष्यों के हित के लिए बाहर निकले, उसी समय ब्रह्महत्या उनके सामने जा खड़ी हुई। ब्रह्महत्या लगने पर इन्द्र बहुत डरे और वहाँ से भागकर मृणाल-तन्तु में बहुत वर्षों तक छिपे रहे। ब्रह्महत्या लगने से इन्द्र का तेज नष्ट हो गया। ब्रह्महत्या को हटाने के लिए इन्द्र ने बड़ा यत्न किया किन्तु वे किसी तरह उसको दूर न कर सके। जब ब्रह्महत्या से छूटने का उन्हें कोई उपाय न सूझा तब वे पितामह ब्रह्माजी के पास जाकर उनके पैरों पर गिर पड़े। उन्होंने इन्द्र की यह दशा देखकर ब्रह्महत्या को समझाते हुए कहा—हे कल्याणी, तुम हमारे कहने से इन्द्र को छोड़ दो और जो चाहो सो हमसे माँग लो।

तब ब्रह्महत्या ने कहा—पितामह, आप तीनों लोकों के पूज्य और सृष्टिकर्ता हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इसी से मैं कृतकार्य हो चुकी। आप मेरे रहने के लिए कोई स्थान बतलाइए। सब लोकों की रक्षा के लिए आपने ही यह नियम बना दिया है कि यदि कोई ब्राह्मण का वध करेगा तो उसे ब्रह्महत्या लगेगी। इसी से मैंने इन्द्र पर आक्रमण किया है। अब आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं इन्द्र के शरीर से निकली आती हूँ; मेरे रहने को स्थान बतला दीजिए।

इन्द्र के चले जाने पर दानवराज वृत्र के शरीर से मुण्डमालाधारिणी ब्रह्महत्या निकली। उसका रङ्ग काला, बाल बिखरे हुए, और आँखें डरावनी थीं; बड़े-बड़े दांत होने से वह भयावनी थी। वह वल्कल पहने हुए थी। वृत्र के शरीर से निकलकर ब्रह्महत्या वज्रधारी इन्द्र को ढुँढ़ने लगी।—पृ० ३७६८

ब्रह्महत्या की बात मानकर ब्रह्माजी ने उसे इन्द्र की देह से निकाल दिया। अब उन्होंने अग्नि का स्मरण किया। उसी दम अग्निदेव वहाँ आ गये और बोले—भगवन्, मैं आ गया। कहिए, क्या आज्ञा है? ब्रह्माजी ने कहा—अग्नि, इन्द्र को ब्रह्महत्या से छुड़ाने के लिए आज मैं ब्रह्महत्या के चार भाग करूँगा। उसका एक हिस्सा तुम लो। अग्नि ने कहा—पितामह, मैं इस ब्रह्महत्या से कैसे छूटूँगा? ब्रह्माजी ने कहा—अग्नि! तुमको प्रज्वलित देखकर जो मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से बीज, ओषधि और रस लाकर तुममें आहुति न देगा उसे यह ब्रह्महत्या लगेगी। तुम शोक न करो। ब्रह्माजी के यों कहने पर अग्नि ने उनकी बात मानकर ब्रह्महत्या का चौथा भाग ले लिया।

अब ब्रह्माजी ने वृक्ष, ओषधि और तृणों को बुलाकर ब्रह्महत्या का एक भाग लेने के लिए उनसे अनुरोध किया। ब्रह्माजी की बात सुनकर वे सब भी अग्नि की तरह दुखी हुए और बोले—पितामह, हम लोग किस तरह इस पाप से छूटेंगे? देखिए, हम लोग हमेशा सरदी-गरमी और वायु को सहन करते हैं। इसके सिवा मनुष्य हम लोगों को काटते रहते हैं। हम लोग तो दैव के कोप से योंही पीड़ित हैं, अब आप अधिक दुःख न दीजिए। आज आपकी आज्ञा से यह ब्रह्महत्या हमको लगेगी, अतएव आप इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय बतला दीजिए। ब्रह्माजी ने कहा—जो मनुष्य मोह के वश होकर पर्व के दिन तुम लोगों को काटेगा उसे इस ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। यह सुनकर—ब्रह्माजी को प्रणाम करके—वृक्ष, ओषधि और तृण अपने-अपने स्थान को चले गये।

अब ब्रह्माजी ने अप्सराओं को बुलाकर मधुर वचन कहे—हे अप्सराओ, यह ब्रह्महत्या इन्द्र के शरीर से निकली है। मैं अनुरोध करता हूँ कि इसका चौथाई हिस्सा तुम ले लो। अप्सराओं ने कहा—पितामह, आपकी आज्ञा से ब्रह्महत्या का एक हिस्सा तो हम लिये लेती हैं; किन्तु आप इससे छुटकारा पाने का उपाय भी बतला दीजिए। ब्रह्माजी ने कहा—अप्सराओ, जो मनुष्य रजस्वला स्त्री का संसर्ग करेगा उसे यह ब्रह्महत्या लगेगी। तुम खेद न करो। यह सुनकर अप्सराएँ प्रसन्नता से अपने स्थान को चली गईं।

अब ब्रह्माजी ने जल का स्मरण किया। याद करते ही जल वहाँ आ पहुँचा और प्रणाम करके बोला—भगवन्, आज्ञा पाकर मैं आ गया हूँ। मुझे क्या आज्ञा है? ब्रह्माजी ने कहा—वृत्रासुर के शरीर से निकलकर यह भयङ्कर ब्रह्महत्या इन्द्र को लगी थी। इसका चौथाई हिस्सा तुम ले लो। जल ने कहा—भगवन्! आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं तैयार हूँ, किन्तु इससे छुटकारा पाने का भी कोई उपाय कर दीजिए। आप ही संसार के एकमात्र आश्रय हैं, अतएव इस पाप से छुटकारा पाने के लिए आपके सिवा और किससे प्रार्थना करूँ? ब्रह्माजी ने कहा—जो मनुष्य तुम्हें साधारण समझकर तुम्हारे ऊपर मल-मूत्र फेंकेगा उसे यह ब्रह्महत्या लगेगी। तब तुम्हारा इससे छुटकारा होगा।

हे धर्मराज, ब्रह्माजी ने इस तरह इन्द्र के शरीर से ब्रह्महत्या को निकाल दिया। ब्रह्माजी के बतलाये हुए स्थानों को ब्रह्महत्या भी चली गई। अब इन्द्र ने, ब्रह्मा की आज्ञा से, अश्वमेध यज्ञ किया। तब कहीं उन्हें सम्पूर्ण रूप से ब्रह्महत्या से छुटकारा मिला। उन्हें फिर उनकी सम्पत्ति मिली। वे शत्रुओं को जीतकर सुख से रहने लगे। वृत्रासुर के रक्त से शिखण्ड नाम का वृक्ष पैदा हुआ है। दीक्षितों, तपस्वियों और ब्राह्मणों को उसे न खाना चाहिए।

ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं, अतएव तुम हमेशा ब्राह्मणों का प्रिय करते रहो। वे पृथिवी पर देवता-स्वरूप हैं। इन्द्र ने सूक्ष्म बुद्धि से इस उपाय द्वारा वृत्रासुर का संहार किया था। तुम इन्द्र के समान पृथिवी पर अजेय होगे। जो मनुष्य प्रत्येक पर्व के समय, ब्राह्मणों के बीच, इन्द्र और वृत्रासुर की यह कथा कहेगा उसे कभी पाप नहीं भोगना पड़ेगा। इन्द्र के अद्भुत काम का हाल तुम सुन चुके। अब क्या सुनना चाहते हो?

दो सौ तिरासी अध्याय

दक्ष के यज्ञ में अंश न पाने से शङ्कर का रुष्ट होना; उनके पसीने से अग्नि-रूप ज्वर की उत्पत्ति

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप सब शास्त्रों के विद्वान् और बुद्धिमान् हैं। वृत्रासुर के वध का वृत्तान्त सुनकर मैं आपसे एक बात और पूछना चाहता हूँ। आपने कहा है कि जब दानवराज वृत्र ज्वर से मोहित हो गये तब इन्द्र ने उन्हें वज्र से मार डाला। तो वह ज्वर किस तरह कहाँ से उत्पन्न हुआ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ज्वर की उत्पत्ति का वर्णन सुनो। प्राचीन समय में सुमेरु पर्वत पर, अनेक रत्नों से विभूषित, तीनों लोकों का पूज्य, सावित्र नाम का अनुपम शिखर था। उस शिखर पर कोई नहीं जा सकता था। सुवर्ण से विभूषित सुमेरु पर्वत की उस चोटी पर भगवान् शङ्कर रहते थे। हिमाचल की पुत्री पार्वती भी उनके पास रहती थीं। देवता, वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, कुबेर, महर्षि शुक्र, अङ्गिरा, सनत्कुमार आदि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, पर्वत, अप्सराएँ, विद्याधर, सिद्धगण और तपस्वी लोग वहाँ जाकर महादेवजी की उपासना किया करते थे। वहाँ हमेशा सुगन्धित पवित्र हवा चलती रहती थी। ऋतु-ऋतु के फूल फूले रहते थे। अनेक-रूपधारी महापराक्रमी भयङ्कर भूत, पिशाच और राक्षस आदि अनुचरगण हथियार लिये सदा शङ्कर के पास रहते थे। भगवान् नन्दीश्वर चमकीला शूल धारण किये वहीं रहते थे। सब तीर्थों के जल से उत्पन्न गङ्गाजी, स्वरूप धारण करके, भगवान् शङ्कर की उपासना करती थीं। इस प्रकार शङ्करजी देवताओं और देवर्षियों से पूजित होकर सुमेरु पर्वत की उस चोटी पर निवास करते थे।

कुछ समय के बाद प्रजापति दक्ष ने यज्ञ का आरम्भ किया। उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए, महादेव की आज्ञा से, इन्द्र आदि सब देवता, अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान विमानों पर चढ़कर हरिद्वार को चले। पार्वती ने देवताओं को जाते देखकर शङ्करजी २१
से पूछा—भगवन्, इन्द्र आदि देवता कहाँ जा रहे हैं?

महादेवजी ने कहा—देवि, प्रजापति दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ किया है। निमन्त्रित होकर सब देवता वहीं जा रहे हैं। पार्वती ने पूछा—महात्मन्, आप क्यों नहीं जाते? आपको कौन सी रुकावट है? महादेवजी ने कहा—प्रिये, पहले यज्ञ में भाग लगाते समय देवताओं ने मुझे हिस्सा नहीं दिया था। उसी पुरानी रीति के अनुसार उन्होंने आज भी मुझे भाग नहीं दिया है। पार्वती ने कहा—महाभाग! आप गुण, यश, तेज और प्रभाव में सबसे श्रेष्ठ हैं। अतएव यज्ञ में आपको भाग न मिलने की बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। भीष्म ने कहा कि धर्मराज, महादेवजी से यों कहकर मारे दुःख के पार्वती चुप हो गईं। ३०

पार्वती का अभिप्राय जानकर महादेवजी नन्दी को वहाँ रहने की आज्ञा देकर योगबल से, अपने अनुचरों के साथ, दक्ष की यज्ञभूमि में जाकर यज्ञ का ध्वंस करने लगे। उनके अनुचरों में कोई चिल्लाता, कोई हँसता, कोई यज्ञ की आग में रक्त बरसाता, कोई यूप को उखाड़कर इधर-उधर घूमता और कोई अपना भीषण मुँह फैलाकर यज्ञ के कर्मचारियों को खाने के लिए दौड़ता था।

गणों ने जब इस प्रकार उपद्रव करना आरम्भ किया तब यज्ञ पीड़ित होकर, मृग का रूप धारण करके, आकाश मार्ग से भागा। मृग-रूप यज्ञ को भागते देखकर महादेवजी को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने धनुष-बाण लेकर उसका पीछा किया। यज्ञ के पीछे दौड़ते-दौड़ते उनके माथे से पसीने की बूँदें निकलकर पृथिवी पर टपक पड़ीं। बूँदें गिरते ही उनसे प्रलयकाल के अग्नि के समान आग उत्पन्न हुई। उस आग से काले रङ्ग का महापराक्रमी एक नाटा सा पुरुष पैदा हो गया। वह पुरुष लाल रङ्ग के कपड़े पहने था। उसकी आँखें लाल थीं और दाढ़ी-मूँछें

हरे रङ्ग की थीं। उसका शरीर बाज़ और उल्लू पक्षी के समान लोमश था। जैसे आग घास के ढेर को जला देती है वैसे ही वह पुरुष मृग-रूपी यज्ञ को भस्म करके बड़े वेग से ऋषियों और देवताओं की ओर झपटा। उसे देखकर डर के मारे देवता लोग भाग खड़े हुए। उस महापराक्रमी पुरुष के भार से पृथिवी काँपने लगी। संसार में हाहाकार मच गया।

संसार को इस प्रकार विपद्ग्रस्त देखकर ब्रह्माजी ने कहा—महेश्वर! यह देखिए, सब लोक नष्ट हुए जा रहे हैं। ये सब ऋषि और देवता आपको कुपित देखकर घबरा रहे हैं। अतएव आप शीघ्र अपने क्रोध को शान्त कीजिए। अब देवता लोग आपको यज्ञ में भाग दिया करेंगे। आपके पसीने से जो पुरुष उत्पन्न हुआ है वह पृथिवी में ज्वर नाम से विख्यात होगा; किन्तु आपके इस तेज-समूह को सम्पूर्ण पृथिवी भी धारण नहीं कर सकती। अतएव आप इसको कई भागों में विभक्त कर दीजिए।

यह कहकर ब्रह्माजी ने शङ्करजी को यज्ञ में भाग मिलने का निश्चय कर दिया। महादेवजी ने भी प्रसन्नता से अपना भाग स्वीकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने प्राणियों की शान्ति के लिए ज्वर के अनेक भाग कर दिये। हाथियों के सिर में दर्द, पर्वत पर शिलाजीत, पानी की सेवार, साँपों को केंचुल, गाय-बैलों के पैर का रोग, पृथिवी के ऊसर, पशुओं की आँखों की बीमारी, घोड़े के गले का रोग, मोर की चोटी, कोयल का नेत्ररोग, भेड़ का पित्तभेद, तोते की हिचकी और सिंह की थकावट, ये सब ज्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके सिवा वह ज्वर अपने नाम से प्रसिद्ध होकर मनुष्यों के शरीर में—जन्म, मृत्यु और अन्य समय में—प्रविष्ट होता है। महादेवजी का वह ज्वर नामक भीषण तेज प्राणियों के प्रणाम करने योग्य और उनका मान्य है। दानवराज वृत्र इसी ज्वर से पीड़ित होकर जमुहाई ले रहे थे, उसी समय इन्द्र ने उन पर वज्र चलाया था। वज्र के लगने से दानवराज का शरीर विदीर्ण हो गया। वे विष्णु के परम भक्त थे, इसलिए युद्ध में मारे जाने पर उन्हें विष्णुलोक प्राप्त हुआ।

हे धर्मराज, मैंने वृत्रासुर के वृत्तान्त के प्रसङ्ग में विस्तार से ज्वर की उत्पत्ति कह दी। अब जो कुछ सुनना चाहते हो वह पूछो। जो मनुष्य सावधान होकर ज्वर की उत्पत्ति का वर्णन पढ़ता है वह रोगहीन और सुखी होकर प्रसन्नता से मनोवाञ्छित फल पाता है।

दो सौ चौरासी अध्याय

वीरभद्र द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस और दक्ष की स्तुति से प्रसन्न शङ्कर का दक्ष को वरदान

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, वैवस्वत मनु के अधिकार के समय प्रचेता के पुत्र दक्ष के अश्वमेध यज्ञ का किस तरह विध्वंस हुआ था ? पार्वती को दुःखित देखकर विश्वात्मा महादेव को किस प्रकार क्रोध हुआ और उनको प्रसन्न करके दक्ष ने फिर वह यज्ञ किस प्रकार पूर्ण किया था ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! प्रचेता के पुत्र दक्ष ने ऋषियों समेत हिमालय के समीप, सिद्ध महर्षियों और अनेक वृक्ष-लताओं से शोभित, हरिद्वार में अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया था। उस समय पृथिवी, आकाश और स्वर्ग के निवासी सब प्राणी दक्ष प्रजापति के पास आकर, हाथ जोड़कर, उनकी प्रशंसा करने लगे। देव, दानव, हाहा हूहू तुम्बुरु विश्वावसु और विश्वसेन आदि गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस, अप्सराओं समेत इन्द्र, नारद, आदित्य, वसु, मरुत्, रुद्र और सिद्धगण, ऋषियों समेत ब्रह्मा, ऊष्मपायी सोमपायी धूमपायी और घृतपायी पितृगण, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज ये चारों प्रकार के जीव निमन्त्रित होकर वहाँ आये थे। अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ देवता, यज्ञ में भाग लेने के लिए, विमानों पर सवार होकर अग्नि के समान शोभायमान हुए थे। १०

देव-दानव आदि के समागम को देखकर महात्मा दधीचि ने कुपित होकर कहा—महाशयो, जहाँ भगवान् शङ्कर की पूजा नहीं होती वह न तो यज्ञ है और न धर्म ही है। हाय, काल की गति बड़ी कठिन है। इस यज्ञ में तुम लोग केवल वध या बन्धन के लिए आये हो। मोह के वशीभूत होने के कारण तुम लोग नहीं समझ पाते कि तुम्हारा विनाश-काल उपस्थित हुआ है। अब महायोगी दधीचि ने ध्यान करके देखा कि महात्मा नारद शिव-पार्वती के पास बैठे हैं। यह देखने से उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। तब वे यह सोचकर कि इन लोगों ने एकमत होकर महादेव को निमन्त्रण नहीं दिया है, यों कहते हुए यज्ञभूमि से चल दिये कि जो व्यक्ति पूज्य पुरुष का अपमान और अपूज्य की पूजा करता है उसे नरहत्या के समान महापाप लगता है। मैं आज तक कभी झूठ नहीं बोला हूँ और आगे भी न बोलूँगा। इस समय देवताओं और ऋषियों के समाज में सत्य कहता हूँ कि जगत्पति यज्ञभोक्ता भगवान् शङ्कर शीघ्र ही यहाँ आवेंगे।

महात्मा दधीचि की बातें सुनकर दक्ष ने कहा—महर्षि, जटा-जूट-धारी शूलपाणि ग्यारह रुद्र इस लोक में हैं; उनमें महादेव कौन हैं, यह मुझे नहीं मालूम। २०

दधीचि ने कहा—दक्ष, तुम लोगों ने एकमत होकर महादेव को निमन्त्रण नहीं दिया है; किन्तु मेरी समझ में उनके समान प्रधान देवता दूसरा नहीं है। अतएव जब तुमने उनको निमन्त्रण नहीं दिया है तब निस्सन्देह तुम्हारा यज्ञ नष्ट हो जायगा।

दक्ष ने कहा—महर्षि ! यज्ञेश्वर विष्णु के निमित्त, मन्त्रों से पवित्र की हुई, यह हवि सोने के पात्र में रक्खी है। मैं इस यज्ञ-भाग के द्वारा उन भगवान् को सन्तुष्ट करूँगा।

यहाँ महर्षि दधीचि और दक्ष में इस प्रकार बातें हो रही थीं और वहाँ देवी पार्वती, अपने पति का निमन्त्रण न होने के कारण, बड़े दुःख के साथ कहने लगीं कि हाय ! मैं कौन सा दान, नियम या तपस्या करूँ जिससे मेरे पति भगवान् त्रिलोचन को यज्ञ में आधा या तिहाई भाग मिले।

महादेवजी ने अपनी पत्नी पार्वती के खेद-पूर्वक कहे गये वचनों को सुनकर कहा—सुन्दरी, मैं सब यज्ञों का ईश हूँ। तुम नहीं जानती कि मेरे लिए कैसे वचनों का प्रयोग करना चाहिए। आज तुमको मोह हो जाने से इन्द्र आदि सब देवता और तीनों लोकों के प्राणी घबरा गये हैं। ध्यानहीन दुर्जन मुझे नहीं जान सकते। स्तुति करनेवाले पुरुष यज्ञ में मेरी स्तुति करते हैं। सामवेदी ब्राह्मण मेरे ही निमित्त सामवेद के मन्त्रों का गान करते हैं। ब्रह्म-यज्ञ में ब्राह्मण लोग मेरी उपासना करते हैं और ऋत्विक्गण मुझे यज्ञ में भाग देते हैं।

पार्वती ने कहा—नाथ, साधारण मनुष्य भी स्त्रियों के सामने गर्व और अपनी प्रशंसा करते हैं। महादेवजी ने कहा—देवि, मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता हूँ। अच्छा, यज्ञ का विध्वंस करने के लिए एक महावीर को उत्पन्न करता हूँ, देखो। महेश्वर ने प्राणों से भी प्रिय पार्वती से यों कहकर अपने मुँह से एक भयङ्कर पुरुष को पैदा किया। उसका नाम वीरभद्र है। महादेवजी ने वीरभद्र से कहा—तुम शीघ्र प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर डालो। तब शिव के मुँह से उत्पन्न सिंह-तुल्य वीर पुरुष ने, देवी पार्वती का क्रोध शान्त करने के लिए, दक्ष का यज्ञ नष्ट करने की इच्छा की। उसी समय पार्वती के क्रोध से उत्पन्न भीषण-मूर्त्ति-धारिणी महा-काली भी वीरभद्र के साथ हो गईं।

३०

इसके बाद भगवान् शङ्कर के समान महापराक्रमी, शूर-वीर, मूर्तिमान् क्रोध-स्वरूप वीरभद्र ने महादेवजी को प्रणाम करके और उनकी आज्ञा लेकर अपने शरीर के प्रत्येक रोएँ से रुद्र-सदृश प्रभावशाली रौम्यगणों को उत्पन्न किया। भीषणस्वरूप महाकाय वीरगण

भगवान् शङ्कर के समान महापराक्रमी शूर-वीर मूर्तिमान् क्रोध-स्वरूप वीरभद्र । पृष्ठ ३७७४

उत्पन्न होते ही किलकिलाते हुए यज्ञ का नाश करने के लिए वीरभद्र के साथ हो लिये। उनके भयङ्कर शब्द से देवता डर गये, पर्वत फटने लगे, पृथिवी काँपने लगी, बवण्डर उठने लगे और समुद्र चञ्चल हो गया। अग्नि और सूर्य का तेज फीका पड़ गया। चन्द्रमा और ग्रह-नक्षत्रों का प्रकाश जाता रहा। देवता, ऋषि और मनुष्य इधर-उधर छिपने लगे। चारों ओर अँधेरा हो गया। भूतगण यज्ञ को नष्ट करने और यज्ञभूमि को भस्म करने लगे। कोई तो मार- ४०
पीट करने लगा और किसी ने यूप उखाड़ डाला। कोई वायु के समान वेग से दौड़ने लगा और किसी ने यज्ञ के पात्र तथा आभूषण आदि नष्ट कर दिये। खाने-पीने की सामग्री के ढेर इधर-उधर बिखेर दिये जाने से यज्ञभूमि ऐसी प्रतीत होने लगी जैसे आकाश-मण्डल में नक्षत्रों का उदय हुआ हो। भूतगण दूध, दही, घी, खीर, शक्कर और मांस आदि खाने-पीने की सामग्री को तरह-तरह के मुँह बनाकर खाने-पीने और फेंकने लगे। यज्ञभूमि में दूध की नदी बह चली और खीर की कीच हो गई। दही माँड़ के समान बहने लगा और शक्कर बालू की तरह फैला दी गई। कोई खाने की चीज़ों को दाँतों से काटता और कोई फेंक देता था। कोई देवताओं की सेना को डरी हुई देखकर नाचता था और कोई देवताओं की स्त्रियों को उठाकर फेंक देता था।

इस प्रकार कुपित वीरभद्र ने, भूतों की सहायता से, सब देवताओं से सुरक्षित यज्ञ को नष्ट कर दिया और मृग का रूप धारण करके भाग रहे यज्ञ का सिर काटकर, बड़ी प्रसन्नता से, भयङ्कर सिंहनाद करना आरम्भ किया।

अब ब्रह्मा आदि देवताओं और प्रजापति दक्ष ने हाथ जोड़कर वीरभद्र से पूछा—भगवन्, आप कौन हैं? वीरभद्र ने दक्ष को उत्तर दिया—ब्रह्मन्, मैं न तो रुद्र हूँ और न देवी पार्वती। मैं खाने या तमाशा देखने अथवा ब्राह्मणों के दर्शन करने को भी यहाँ नहीं आया हूँ। पार्वती के दुःखित होने पर भगवान् शङ्कर को क्रोध आ गया। उन्हीं की आज्ञा के अनुसार मैं तुम्हारे यज्ञ को नष्ट करने आया हूँ। मेरा नाम वीरभद्र ५०
है। मैं रुद्र के कोप से उत्पन्न हुआ हूँ और पार्वती के क्रोध से यह वीर स्त्री पैदा हुई है। इसका

नाम भद्रकाली है। रुद्र की आज्ञा से हम दोनों यहाँ आये हैं। तुम उन्हीं देवदेव उमापति की शरण में जाओ। अन्य देवता से वर पाने की अपेक्षा शङ्कर के क्रोध में पड़ना अच्छा है।

यह सुनकर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ दक्ष ने महादेवजी को प्रणाम करके स्तुति द्वारा उनको प्रसन्न करने की इच्छा से कहा—मैं उन नित्य, निश्चल, अविनाशी, जगत्पति देवादिदेव महादेव की
६० शरण हूँ। प्रजापति दक्ष के इस प्रकार स्तुति करने पर, हज़ार सूर्य के समान प्रकाशमान भगवान् शङ्कर, प्रसन्न होकर प्राणायाम करके चारों ओर देखते हुए भूत-पिशाचों के बीच अग्नि-कुण्ड से निकल आये। उन्होंने दक्ष की ओर देखा और मुसकुराकर कहा—ब्रह्मन्, मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ? उनको देखकर प्रजापति दक्ष बहुत डरे और आँखों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर कहने लगे—भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे अपना प्रिय समझकर वर देना चाहते हैं तो मेरी यह जो यज्ञ की सामग्री खा-पी ली गई है, जलाकर नष्ट कर दी गई है और चूर-चूर करके इधर-उधर फेंक दी गई है यह सब, बहुत दिनों में बड़े यत्न से सञ्चित की हुई, यज्ञ-सामग्री निष्फल न हो। बस, मैं यही वर माँगता हूँ। तब धर्माध्यक्ष विरूपाक्ष ने 'तथास्तु' कहकर उनकी इच्छा पूरी कर दी। प्रजापति दक्ष उमापति शङ्कर से इस प्रकार वर-
७१ दान पाकर, घुटने टेककर, एक हज़ार आठ नामों से उनकी स्तुति करने लगे।

दो सौ पचासी अध्याय

दक्ष का एक हज़ार आठ नामों से महादेव की स्तुति करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, प्रजापति दक्ष ने महादेव के जिन नामों से उनकी स्तुति की थी उन नामों को सुनने की मेरी इच्छा है। आप उनका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, मैं अद्भुतकर्मा महादेवजी के गुप्त और प्रकट सब नाम बतलाता हूँ, सुनो। प्रजापति दक्ष ने महादेवजी की स्तुति करते हुए कहा—हे देवदेवेश, आपने दानवों का दर्प चूर्ण कर दिया है। आपने बल दैत्य को मारा है। देवता और दानव हमेशा आपकी पूजा करते हैं। आप सहस्राक्ष, विरूपाक्ष और त्र्यम्बक हैं। आप कुबेर के मित्र हैं। आपके हाथ, पैर, मस्तक, आँखें, कान और मुँह सर्वत्र हैं। आप सब जगह मौजूद हैं। आप शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण और पाणिकर्ण हैं। आप समुद्र में निवास करते हैं। आप शतोदर, शतावर्त और शतजिह्व हैं। आपको नमस्कार है। गायत्री और सूर्य के उपासक आपको गायत्री और सूर्य-रूप मानते हैं। विद्वान् लोग आपको ब्रह्मा और इन्द्र मानते तथा आकाश के समान निर्लिप्त कहते हैं। आप समुद्र और आकाश के समान विशाल हैं। जिस तरह गोष्ठ में गायें रहती हैं उसी तरह सब देवता आपके स्वरूप में

ही निवास करते हैं। मैं आपके शरीर में चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वरुण, ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति को देखता हूँ। आप कार्य, कारण, क्रिया और करण हैं। आप ही स्थूल-सूक्ष्म की उत्पत्ति और नाश के कारण हैं। आप भव, शर्व, रुद्र, वरद, पशुपति, अन्धकघाती, त्रिजट, त्रिशी, १०
त्रिशूलपाणि, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र और त्रिपुरहन्ता हैं। आप चण्ड, कुण्ड, अण्ड, अण्डधारी, दण्डी, समकर्ण, दण्डिमुण्ड, ऊर्ध्वदंष्ट्र, ऊर्ध्वकेश, विशुद्ध, विश्वमय, विलोहित, धूम्र और नीलग्रीव हैं। आपको नमस्कार है। आपके समान और कोई नहीं है। आपके अनेक प्रकार के रूप हैं। आप परम कल्याण-रूप हैं। आप सूर्यमण्डल, सूर्यमण्डल के मध्यवर्ती नारायण, सूर्यध्वज और सूर्यपताका-सम्पन्न हैं। आप प्रमथनाथ, वृषस्कन्ध, धनुर्धर, शत्रुमर्दन और दण्ड हैं। आप बल्कलधारी हैं। आप हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यचूड़ और हिरण्यपति हैं। आपको नमस्कार है। आप स्तुत, स्तुत्य और स्तूयमान हैं। आप सर्व, सर्वभक्ष और सब प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। आप ही होता और मन्त्र-स्वरूप हैं। आप शुक्ल वर्ण की ध्वजा-पताका से युक्त हैं। आप जगदाधार, और प्राणियों के नाभि-स्वरूप हैं। आप विश्व भर में व्याप्त, कृशनाश, कृशाङ्ग, कृश और संहृष्ट हैं। आप शयान, शयित, उत्थित, अवस्थित, २०
धावमान, मुण्ड, जटिल, नर्तनशील और गाल बजानेवाले हैं। आप सबसे पहले पूजा कराने की इच्छा नहीं करते। आप गाने-बजाने में संलग्न रहते हैं। आप ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलनिषूदन, कालनाथ, कल्य, प्रलय और उपप्रलय-स्वरूप हैं। आपका हँसना दुन्दुभि के भीषण शब्द के समान है। आप भीमव्रतधारी, उग्र, दश-बाहु-युक्त और कपालपाणि हैं। आप चिताभस्म-प्रिय, भीषण और भीष्म हैं। आप विकृत मुखवाले, खड्गजिह्व, दंष्ट्री, कच्चे-पक्के मांस के लोभी और तुम्बी-युक्त वीणाप्रिय हैं। आप वृष्टिकर्ता, धर्म की वृद्धि करनेवाले, वृषश्रेष्ठ (नन्दी) और धर्म-स्वरूप हैं। आप वायु के समान शीघ्रगामी, नियन्ता, प्राणियों के संहारक, सर्वश्रेष्ठ, वर-स्वरूप और वरद हैं। आप विचित्र गन्ध, माला और वस्त्र से शोभित हैं। आप रागवान्, रागविहीन, ध्यानकर्ता और अक्षमालाधारी हैं। आप मिलित और पृथक् हैं। आप छाया, धूप और गरमी के स्वरूप हैं। आप अघोर, घोर और अतिघोर-रूप हैं। आप शिव, शान्त और शान्ततम हैं। आप एकचरण, बहुनेत्र, एकमस्तक, रुद्र, क्षुद्र वस्तु के लोभी और संविभाग- ३०
प्रिय हैं। आप विश्वकर्मा, शम गुण से युक्त, शत्रुओं के लिए भीषण घण्टाधारी, घण्टामाला-प्रिय और घण्टा के समान शब्दायमान प्राणवायु-स्वरूप हैं। आप हूंहूंहूंकार-स्वरूप, हूंहूंकार-प्रिय, शम-दम आदि गुणों से युक्त और गिरि-वृक्ष-निवासी हैं। आप हृदय के मांस के लोभी हैं। पाप का नाश करने के कारण आप यज्ञ, यजमान, हुत और प्रहुत-स्वरूप हैं। आप ऋत्विक्, जितेन्द्रिय, सत्त्व और रजोगुण से सम्पन्न और तट, नदी तथा समुद्र-रूप हैं। आप अन्नदाता, अन्नपति और अन्नभोक्ता हैं। आप सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्रशूलधारी और

सहस्रनेत्र हैं। आप प्रातःकाल के सूर्य के समान प्रभा-सम्पन्न, बालरूपधारी, बालानुचर-रक्षक और बालकों के खिलौने हैं। आप वृद्ध, लुब्ध, क्षुब्ध और क्षोभन हैं। आप तरङ्गाङ्कितकेश, मुञ्जकेश, षट्कर्म-परितुष्ट और त्रिकर्म-निरत हैं। आपने ही सब वर्णाश्रमवासियों के कर्म भिन्न-भिन्न रूप से निर्दिष्ट किये हैं। आप शब्दित, शब्द और कोलाहल-स्वरूप हैं। आपके नेत्र श्वेत, पिङ्गल, कृष्ण और रक्त वर्ण के हैं। आप जितश्वास, कृश, आयुध और विदारण-स्वरूप हैं। आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का विषय बतलाते हैं। आप सांख्य (कपिल) और सांख्यमुख्य (पातञ्जल) योग (निदिध्यासन) के प्रकाशक हैं। आप जल, अग्नि, वायु और आकाशमार्गगामी हैं। आपके शरीर में काली मृगछाला उत्तरीय-रूप और सर्प यज्ञोपवीत-रूप है। आप ईशान, वज्र के समान कठिन शरीरवाले, पिङ्गल-केश-युक्त, अम्बक, अम्बिकापति और व्यक्त-अव्यक्त-स्वरूप हैं। आप काम, कामद और कामघ्न हैं। आप तृप्ति और अतृप्ति के विचारक हैं। आप सर्व, सर्वद, सर्वघ्न और सन्ध्या-राग-स्वरूप हैं। आप महामेघ-समूह के सदृश हैं और महाकाल-स्वरूप हैं। आप स्थूल, जीर्णाङ्ग, जटिल और वल्कल अजिनधारी हैं। आप सूर्य और अग्नि के समान प्रदीप्त जटाधारी, सहस्र सूर्य के समान, नित्य तपोनुष्ठान-निरत और व्यामोहक हैं। सैकड़ों भँवरों से युक्त गङ्गाजल से आपकी जटाएँ गीली हुई थीं। आप चन्द्रमा, युग और बादलों को बदलते रहते हैं। आप अन्न, अन्नभोक्ता, अन्नदाता, अन्न-पालक और अन्नस्रष्टा हैं। आप पाककर्ता, पक्वभुक्, पवन और अग्नि-स्वरूप हैं। आप जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज हैं। आप सब देवताओं के ईश्वर और चराचर की सृष्टि तथा संहार करते हैं। ब्रह्मज्ञानी लोग आपको ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, मन की उत्पत्ति का स्थान तथा आकाश, वायु, ज्योति, ऋग्वेद, सामवेद और ओंकार-स्वरूप कहते हैं। ब्रह्मज्ञ सामवेदी महात्मा लोग, सामवेद का गान करते समय, 'हायि हायि हुवा हायि' इत्यादि स्तोत्र द्वारा आपकी स्तुति करते हैं। आप ऋक्, यजु और आहुति-स्वरूप हैं। वेदों और उपनिषदों में आपकी स्तुति की गई है। आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णसंकर-रूप हैं। आप बादल, बिजली, बादलों का शब्द तथा संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, युग, निमेष, क्षण, नक्षत्र, ग्रह और कला हैं। आप वृक्षों की जड़, पर्वतों के शिखर, पशुओं में बाघ, पक्षियों में गरुड़, साँपों में वासुकि, समुद्रों में क्षीर-समुद्र, यन्त्रों में धनुष, अस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्यव्रत हैं। आप द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, चेष्टा, धैर्य, काम, क्रोध, लोभ, जय और पराजय-स्वरूप हैं। आप गदा, बाण, धनुष, खट्वाङ्ग और झर्झर (बाजा) धारण करते हैं। आप छेद, भेद और प्रहार के कर्ता हैं। आप सबको सुमार्ग पर लगानेवाले और सन्ताप देनेवाले हैं। आप अहिंसा आदि दस गुणों से युक्त धर्म, अर्थ और काम-स्वरूप हैं। आप गङ्गा, समुद्र, नदी, झील, तालाब, लता, वल्ली, तृण, ओषधि, मृग, पक्षी और पशु-स्वरूप हैं। आपसे ही पृथिवी आदि

पदार्थों और सब कर्मों की उत्पत्ति होती है। आप समय-समय पर फल-फूल देते हैं। आप वेद के आदि और अन्त तथा गायत्री और ओंकार-स्वरूप हैं। आप हरा, लाल, नीला, काला, रक्त, अरुण, कद्रु, कपिल, कपोत और मेचक आदि वर्ण-स्वरूप हैं। आप वर्णहीन, उत्तम-वर्ण और वर्णकर्ता हैं। आपकी उपमा नहीं है। आपका नाम सुवर्ण है; आप सुवर्णप्रिय हैं। आप यम, इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि, ग्रहण, राहु, सूर्य, अग्नि, क्षेत्र, क्षेता (यजमान) और हवन के द्रव्य-स्वरूप हैं। आप सामवेद के त्रिसुपर्ण और यजुर्वेद के रुद्राध्याय-स्वरूप हैं। आप पवित्रों के पवित्र और मङ्गलों के मङ्गल-स्वरूप हैं। आप अचेतन पदार्थ को चेतन करते हैं। आप जीवात्मा, देह, प्राण तथा सत्त्व, रज और तमोगुण-स्वरूप हैं। आप आयु और हर्ष-स्वरूप हैं। आप प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, निमेष, छींक और जम्हाई-स्वरूप हैं। आपकी आँखें लाल, मुँह और पेट बड़ा, रोएँ सुई के समान और दाढ़ी हरे रङ्ग की है। आप ७०
ऊर्ध्वकेश और अति चञ्चल हैं। आप गाने-बजाने के बड़े प्रेमी और मर्मज्ञ हैं। आप ही संसार के सब जीव और वासना-रूपी जाल में बँधे हुए जीव-स्वरूप हैं। आप केलि-प्रिय और कलह-प्रिय हैं। आप काल, अकाल, अतिकाल और दुष्काल हैं। आप मृत्यु, क्षुर (छुरा), चौरकर्म में निपुण, मित्र और अमित्र के नाशक हैं। आप मेघकाल, महादंष्ट्र, संवर्तक और बलाहक मेघ-स्वरूप हैं। आप प्रकाशवान्, अप्रकाश, अन्तर्यामी, घण्टाधारी और रुद्र हैं। आप स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों के साथ क्रीड़ा करते हैं। आप अग्नि की स्वाहा, परमहंस और त्रिदण्डधारी हैं। आप चारों युग, चारों वेद और चार अग्नि-स्वरूप हैं। आप चारों आश्रमवासियों के उपदेष्टा हैं। आपसे ही चारों वर्णों की सृष्टि हुई है। आप अक्षप्रिय, धूर्त, भूतगण के ईश्वर, रक्तमाला और रक्तवस्त्रधारी, गिरिश तथा गिरिक (कषाय)-प्रिय हैं। आप प्रचण्ड, शिल्पी, शिल्पियों में श्रेष्ठ और शिल्प-कर्म के सृष्टिकर्ता हैं। आपने ही भग देवता की आँखें और सूर्य के दाँत नष्ट किये हैं। आप स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार-स्वरूप हैं। आप गूढ़ व्रतधारी, गूढ़ तपस्वी तथा प्रणव और आकाश-स्वरूप हैं। आप सबके सृष्टिकर्ता हैं। आप सब प्राणियों की स्थिति और सबका संहार करते हैं। आप सबके आश्रय हैं; किन्तु आपका आश्रय कोई नहीं है। आप ब्रह्मा, तपस्या, सत्य, ब्रह्मचर्य और सरलता-स्वरूप हैं। आप सब प्राणियों के आत्मा हैं और आपसे ही आकाश आदि सब पदार्थों की उत्पत्ति हुई है। आप भूत, भविष्य और वर्तमान के कारण हैं। आप भूः, भुवः, स्वः, शाश्वत, जितेन्द्रिय और महेश्वर हैं। आप दीक्षित, अदीक्षित, क्षमाशील, दुर्दान्त और दुष्टों का विनाश करनेवाले ८०
हैं। आप मास, कल्प और सृष्टि के कारण हैं। आप काम, वीर्य, सूक्ष्म, स्थूल और कर्णिकार-मालाप्रिय हैं। आप नन्दिमुख, भीममुख, सुमुख, दुर्मुख, चतुर्मुख, बहुमुख, अग्निमुख और निर्मुख हैं। आप नारायण, निर्लिप्त, अनन्त और विराट् हैं। आप अधर्म का नाश

करनेवाले हैं। आप महापार्श्व, प्रचण्ड मूर्तिधारी और गणों के ईश हैं। आपने कृष्णावतार में गोधन-रक्षा के समय गो-नाद किया था; गोवर्धन धारण करके आपने ही गोकुल की रक्षा की थी। महावृष आपका वाहन है। आप तीनों लोकों के रक्षक, गोविन्द और सब इन्द्रियों के परिचालक हैं। इन्द्रियों के द्वारा आपको प्राप्त नहीं किया जा सकता। आप सर्वश्रेष्ठ, अचल, तीनों लोकों के धारण करने के स्तम्भ, निष्कम्प और कम्प-स्वरूप हैं। आप दुर्निवार, दुर्विषह, दुस्सह और दुरतिक्रम हैं। आप दुर्धर्ष और दुष्प्रकम्प हैं। आप दुःप्रवेश हैं। आप जय, दुर्जय, शीघ्रगामी, चन्द्रमा, यम, शीत, उष्ण, क्षुधा और बुढ़ापा-स्वरूप हैं। आप आधि, व्याधि और व्याधिनाशक हैं। आप मृगरूपधारी यज्ञ के व्याध-रूप हैं। आपके ही द्वारा सब व्याधियाँ आती-जाती हैं। आप शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष और पुण्डरीक वन के निवासी हैं। आप दण्डधारी, त्र्यम्बक, उग्रदण्ड और ब्रह्माण्ड के नाशक हैं। आप जगन्नाथ, सुरश्रेष्ठ और मरुत्पति हैं। आपने महाविष कालकूट को पी लिया था। आप सोमरस, दूध और अमृत का पान करते हैं। आप विष, अग्नि और मृत्यु से रक्षा करते हैं। आप दुःखी प्राणियों के
८० रक्षक हैं। ब्रह्मा की रक्षा आप ही करते हैं। आप हिरण्यरेता हैं; आप स्त्री, पुरुष, नपुंसक तथा बालक, युवा और वृद्ध हैं; आप नागेन्द्र, इन्द्र, विश्वस्रष्टा, विश्वसंहर्ता और विश्वस्रष्टाओं में श्रेष्ठ हैं; आप विश्वरूप, विश्वमुख और विश्वबाहु हैं। चन्द्र-सूर्य आपकी आँखें, ब्रह्मा आपकी बुद्धि, सरस्वती आपकी वाणी, अग्नि और वायु आपका बल, दिन-रात आपकी पलकों का खुलना और बन्द होना है। ब्रह्मा, विष्णु और प्राचीन महर्षिगण आपका माहात्म्य अच्छी तरह नहीं जान सकते। आपकी सूक्ष्म मूर्ति को हम लोग नहीं देख सकते। जिस तरह पिता अपने वीर्य से उत्पन्न पुत्र की रक्षा करता है उसी तरह आप हमेशा मेरी रक्षा करते रहें। आपको बार-बार नमस्कार है। आप भक्तों पर कृपा करते हैं। मैं भी आपका भक्त हूँ, अतएव मुझ पर कृपा कीजिए। जो सबमें व्यापक होकर भी अदृश्य है और कामनाओं का नाश हो जाने पर ही जिसके दर्शन हो सकते हैं वह सदा मेरी रक्षा करे। योगी लोग सत्त्वगुणावलम्बी, निद्राशून्य, जितश्वास और जितेन्द्रिय होकर जिन्हें ज्योति-स्वरूप देखते हैं उन योगात्मा को नमस्कार है। जो जटाजूट से शोभित, दण्डधारी, बड़े पेटवाले और हमेशा कमण्डलु-रूप तूणीर धारण करते हैं, उन ब्रह्मात्मा को नमस्कार है। जिनके बालों में बादल, शरीर की सन्धियों में
१०० नदियाँ और जिनके पेट में चारों समुद्र हैं उन सलिलात्मा को नमस्कार है। जो युग के अन्त में सब प्राणियों का संहार करके जल में सो रहते हैं, मैं उन्हीं जलशायी की शरण हूँ। जो राहुरूप होकर रात में चन्द्रमा को और दिन में सूर्य को ग्रस लेते हैं वे मेरी रक्षा करें। ब्रह्मा आदि देवता और पितृगण जिनसे उत्पन्न होकर स्वाहा-स्वधा आदि मन्त्रों के द्वारा दिये हुए यज्ञ भाग को ग्रहण करते हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ। जो केवल अँगूठे भर का पुरुष सब

प्राणियों के शरीर में रहता है वह जीवरूपी रुद्र सदा मेरी रक्षा और तृप्ति करे। जो सब शरीरों में निवास करते और स्वयं रोदन न करके सब शरीरधारियों को रुलाते हैं तथा जो स्वयं प्रसन्न न होकर सब शरीरधारियों को प्रसन्न करते हैं, उन रुद्र को मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो नदी, पर्वत, कन्दरा, पेड़ों की जड़ें, गायों के रहने के स्थान, घने वन, चौराहे, गली, चबूतरे, नदी के किनारे, हाथी-घोड़ों के रहने और रथों के रखने के स्थान, पुराने बग़ीचे, पञ्चभूत, दिशा-विदिशाएँ, चन्द्रमा, सूर्य, चन्द्र-सूर्य की किरणें, रसातल और रसातल से परे इन सब स्थानों में निवास करते हैं; जिनकी संख्या और जिनके प्रमाण तथा रूप नहीं हैं, उनको बार-बार नमस्कार है। हे रुद्र! आप सब भूतों के स्रष्टा, उनके स्वामी १०
और सबके अन्तरात्मा हैं; इसी से मैंने आपको निमन्त्रण नहीं दिया। बहुत सी दक्षिणा देकर अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके आपकी ही पूजा की जाती है और आप ही सबके कर्ता हैं, इसी से मैंने आपको निमन्त्रण नहीं दिया। अथवा मैं आपकी सूक्ष्म माया से मोहित हो गया हूँ, इस कारण आपको निमन्त्रण देना भूल गया। अब आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं रजोगुणी हूँ, इसी से आपको नहीं पहचान सका। अब मैं अपना हृदय, मन और बुद्धि आपको अर्पण करता हूँ। इस प्रकार महादेव की स्तुति करके प्रजापति दक्ष चुप हो गये।

तब भगवान् रुद्र दक्ष पर प्रसन्न हुए और उनसे कहने लगे—ब्रह्मन्, मैं तुम्हारी स्तुति सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब और स्तुति करने की आवश्यकता नहीं। मेरी प्रसन्नता से तुम हज़ार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञों का फल तथा सब लोकों का आधिपत्य पाकर अन्त को सदा मेरे समीप निवास करोगे। मैंने पहले के कल्पों में तुम्हारे यज्ञों में विघ्न डाला था, उन पुरानी बातों का तुम्हें स्मरण होगा ही; अतएव इस कल्प में मैंने जो तुम्हारे यज्ञ में विघ्न डाला है इससे तुम दुखी मत होओ। मैं तुमको एक वर और देता हूँ, उसे तुम प्रसन्नता से सुनो और ग्रहण करो। मैंने षडङ्ग वेद, सांख्य और योगशास्त्र से युक्ति द्वारा पाशुपत-धर्म उत्पन्न १२०
किया है। इस धर्म का अनुष्ठान करना देवताओं और दैत्यों के लिए भी कठिन है। उसके प्रभाव से सदा शुभ फल मिलता है। उस धर्म का अधिकार सब आश्रमवासियों को है। थोड़े ही समय में उस धर्म के द्वारा सिद्धि मिलती है। वह सद्योजात आदि पाँच मन्त्रों से युक्त और अत्यन्त गूढ़ है। उसमें अज्ञानियों की प्रवृत्ति नहीं होती। वर्ण और आश्रम धर्मों के साथ, अनेक अंशों में, उसकी समता नहीं है। किसी-किसी अंश में समानता देख पड़ती है। सिद्धान्त के मर्म को समझनेवाला पुरुष ही उसकी उपयोगिता समझ सकता है। सब आश्रमों के त्यागी परमहंस ही उसका अवलम्बन कर सकते हैं। मेरे वरदान से तुम उस पाशुपत-धर्म का सम्पूर्ण फल प्राप्त करो। तुम्हारा मानसिक दुःख नष्ट हो जावे। महापराक्रमी भगवान् महादेव दक्ष को इस प्रकार वर देकर, देवी पार्वती और अनुचरों समेत, अन्तर्द्धान हो गये।

हे धर्मराज, जो मनुष्य दक्ष की की हुई रुद्र की इस स्तुति को पढ़ेगा या सुनेगा वह बहुत दिनों तक निर्विघ्न जीता रहेगा। जैसे भगवान् शङ्कर सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं वैसे ही यह शिव की स्तुति सब स्तुतियों से बढ़कर है। जो मनुष्य यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य और ब्रह्म को प्राप्त करना चाहे वह भक्ति के साथ इसको सुने। जो रोग से पीड़ित, दुःखित, चोरों से डरा हुआ और राजकार्य में नियुक्त हो वह इस स्तुति को सुनकर निर्भय हो जायगा। इस स्तुति का पाठ
३० करने से मनुष्य इसी देह से रुद्र के अनुचर गणों के समान होकर तेजस्वी और यशस्वी हो जायँगे। जिस घर में इस स्तोत्र का पाठ होगा उसमें राक्षस, भूत, पिशाच और विनायकगण कुछ उपद्रव न करेंगे। जो स्त्री श्रद्धा के साथ ब्रह्मचारिणी होकर इस स्तोत्र को सुनेगी उसके दोनों कुलों के पितर देव तुल्य सम्मान पावेंगे। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इसको पढ़ेगा या सुनेगा उसके सब काम सिद्ध होंगे और उसकी इच्छा पूरी होगी। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवादिदेव महादेव, कार्त्तिकेय, भगवती और नन्दी को बलि देकर एकाग्रचित्त से उनके नामों का स्मरण करता है उसकी सब इच्छाएँ पूरी होती हैं। वह अन्त को बहुत दिनों तक स्वर्ग में रहता है; उसे तिर्यक् योनि में जन्म लेना नहीं पड़ता। हे धर्मराज, भगवान् वेदव्यास ने स्वयं इस
१३७ स्तोत्र का फल इस प्रकार बतलाया है।

दो सौ छियासी अध्याय*

भीष्म का युधिष्ठिर से अध्यात्म विद्या का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, इस लोक में मनुष्यों ने जिस अध्यात्म विद्या की आलोचना की है वह विद्या किस प्रकार की है और किससे उत्पन्न हुई है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम जिस विद्या को सब ज्ञानों का साधन और सबसे श्रेष्ठ समझकर मुझसे पूछते हो उसका वर्णन सुनो। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, यही पाँच महाभूत सब प्राणियों की उत्पत्ति और नाश का कारण हैं। जैसे तरङ्गें समुद्र से उठती और उसी में लीन हो जाती हैं वैसे ही प्राणियों के शरीर पञ्चभूतों के मेल से उत्पन्न होते और पञ्चभूतों में ही लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को शरीर से बाहर निकालता और फिर समेट लेता है वैसे ही सब प्राणी महाभूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाते हैं। आकाश से शब्द, पृथिवी से हड्डी-मांस आदि शरीर का कठिन अंश, वायु से प्राण, जल से रस और तेज से रूप उत्पन्न होता है। स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों में शब्द आदि गुण मौजूद हैं। सारा संसार बार-बार उस सृष्टिकर्ता से उत्पन्न होता और उसी में लीन हो जाता है। परमात्मा ने पाँच महाभूतों से शरीर के सब अंश रच दिये हैं। शब्द, कान और शरीर

* यह अध्याय इसी पर्व के एक सौ चौरानबे अध्याय (पृष्ठ ३६११ से ३६१४ तक) का उपसंहार है।

के सब छिद्र आकाश के गुण हैं। रस, मेद और जिह्वा जल के गुण हैं। गन्ध, नासिका और शरीर पृथिवी के; रूप, चक्षु और जठराग्नि तेज के तथा प्राण, स्पर्श और चेष्टा वायु के गुण हैं। १०

जगदीश्वर ने शब्द आदि गुणों को उत्पन्न करके सत्त्व, रज और तमोगुण तथा काल, धर्म, बुद्धि और मन के साथ उनका सम्बन्ध कर दिया है। बुद्धि मनुष्यों के शरीर में, पैर से लेकर सिर तक, व्याप्त है। मनुष्य के शरीर में पाँच इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीव, ये सब रहते हैं। सत्त्व, रज और तमोगुण इन्द्रियों का आश्रय करते हैं, अतएव इन्द्रियाँ किसी गुण के वशीभूत अवश्य होंगी। मनुष्य आँखों से देखता, मन से सन्देह करता और बुद्धि से उसका निश्चय करता है। आत्मा केवल साक्षी-स्वरूप है। काल, कर्म तथा सत्त्व, रज और तमोगुण बुद्धि को और बुद्धि सब इन्द्रियों को विषयों में लगाती है। इन्द्रियों का और तम आदि पाँचों का आश्रय बुद्धि ही है। बुद्धि ही आँखों द्वारा देखती, कानों द्वारा सुनती, नाक द्वारा सूँघती, जीभ से स्वाद लेती और त्वचा द्वारा स्पर्श करती है। बुद्धि जब किसी वस्तु की इच्छा करती है तब उसी को मन कहते हैं। पाँचों इन्द्रियाँ और मन बुद्धि के आश्रय हैं। अतएव मन और इन्द्रियों के २० दूषित होने पर बुद्धि भी दूषित हो जाती है। साक्षी रूप जीव में स्थित होकर बुद्धि सात्त्विक आदि तीनों भावों का अवलम्बन करके कभी प्रसन्न रहती, कभी दुखी होती और कभी सुख-दुःख से रहित रहती है। जैसे समुद्र अपनी सीमा के बाहर नहीं जाता वैसे ही बुद्धि सत्त्व आदि तीनों भावों के बाहर न जाकर उन्हीं में रहती है। सत्त्व गुण का उदय होने से हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्त-शुद्धि; रजोगुण के प्रभाव से खेद, शोक, सन्ताप, मूर्च्छा और अक्षमा तथा तमोगुण होने से अज्ञान, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, भय, असमृद्धि, दीनता, प्रमोह, स्वप्न और आलस्य उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों के चित्त में जो प्रीतियुक्त भाव उत्पन्न होते हैं वे सात्त्विक, जो दुःखयुक्त अप्रीतिकर भाव उदित होते हैं वे राजस, और जो मोहयुक्त अप्रतर्क्य अविज्ञेय भाव पैदा होते हैं ३० वे तामस हैं। बुद्धिमान् ही इन सब बातों को अच्छी तरह जानता है।

शरीर और आत्मा में यह भेद है कि शरीर से विषयों की उत्पत्ति होती है; किन्तु जीवात्मा से किसी विषय की उत्पत्ति नहीं होती। शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं; किन्तु जैसे मछली पानी से भिन्न होने पर भी पानी में ही रहती है, वैसे ही आत्मा शरीर से पृथक् होकर भी शरीर में ही निवास करता है। गुण आत्मा को नहीं जान सकते; किन्तु आत्मा सब गुणों को जानता रहता है। मनुष्य आत्मा को सब विषयों का उत्पादक समझता है; किन्तु आत्मा तो विषयों का केवल द्रष्टा है। चेतना-युक्त शरीर के सिवा बुद्धि का और कोई स्थान नहीं है। कारण-भूत सत्त्व आदि गुणों से शरीर की उत्पत्ति होती है। इन कारणभूत गुणों का स्वरूप जानना बहुत कठिन है। अचेतन इन्द्रियाँ, दीपक के समान, बुद्धि की सहायता से सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करती हैं। जो मनुष्य इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों को समझकर कभी शोक और हर्ष

नहीं करता वही यथार्थ निरहङ्कारी है। जैसे मकड़ी से जाला पैदा होता है वैसे ही शरीर से
४० विषयों की उत्पत्ति होती है। कोई कहते हैं कि शरीर का नाश होने पर गुणों का नाश नहीं होता; वे लिङ्ग-शरीर में अति सूक्ष्म-रूप से बने रहते हैं और कोई कहते हैं कि शरीर का नाश होने पर गुण भी नष्ट हो जाते हैं। इन दोनों में अन्तिम मत दूषणीय है; क्योंकि, गुणों का एक बार नाश होने पर फिर उनके उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं है। मनुष्य इन सब झञ्झटों को छोड़कर शोक का त्याग करके सुख से रहे। अज्ञान से अन्धा मनुष्य मोह-जाल से परिपूर्ण अगाध विस्तृत संसार-रूपी नदी में गिरकर जैसा कष्ट भोगता है वैसा दुःख विवेकी मनुष्य नहीं पाते। विवेकी लोग ज्ञानरूपी नाव का अवलम्बन करके इस नदी को पार करते हैं। मूर्ख मनुष्य जिससे डरते हैं उससे विद्वानों को रत्ती-भर भी डर नहीं रहता। विवेकी पुरुषों को निर्दिष्ट नियम के अनुसार समान गति प्राप्त होती है। वे अपने पूर्व-कर्मों को दूषित समझते हैं और
४६ कर्मनिष्ठ मनुष्य जिसे कर्तव्य या अकर्तव्य कहते हैं, उन दोनों को वे लोग अप्रिय समझकर छोड़ देते हैं।

दो सौ सत्तासी अध्याय

नारद और समङ्ग का संवाद। ज्ञान से दुःख की निवृत्ति बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! दुःख और मृत्यु का भय प्राणियों को हमेशा बना रहता है, अतएव वह उपाय बतलाइए जिससे कि इन दोनों से हम लोग बचे रहें।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, मैं इस विषय में महर्षि नारद और समङ्ग का संवाद सुनाता हूँ। एक बार देवर्षि नारद ने महात्मा समङ्ग से कहा—महर्षि, आपको साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखकर मुझे मालूम होता है कि आप दोनों हाथों से संसार-रूपी नदी को तैरकर पार होने को उद्यत हैं। मैं आपको सदा सन्तुष्ट और शोकहीन देखता हूँ। आप बालक के समान राग-द्वेष से दूर रहते हैं। इसका क्या कारण है?

समङ्ग ने कहा—भगवन्! भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालों की सब वस्तुएँ अनित्य हैं तथा कर्मों का आरम्भ और कर्मों के फल दुःख के कारण हैं। इन सब बातों को भली भाँति जानकर मैंने कर्मों का त्याग कर दिया है और मैं हमेशा प्रसन्नचित्त रहता हूँ। कर्म ही जन्म का कारण है। देखिए, मूर्ख-विद्वान्, धनी-निर्धन, जड़, अन्धा, बलवान्-निर्बल, सब प्राणी पूर्वजन्म के कर्मों द्वारा जीवित रहते हैं। देवता लोग प्राचीन कर्मों के प्रभाव से ही रोग-हीन बने रहते हैं। देखिए, किसी के पास हज़ारों और किसी के पास सैकड़ों रुपये होते हैं और कोई शाक-पात खाकर ही रहता है। जो हो, जब मैंने अज्ञान के मूल शोक को त्याग दिया तब धर्म और यज्ञ आदि कर्मों से मुझे क्या काम है? सुख-दुःख अनित्य हैं, यह मुझे
१० अच्छी तरह मालूम है, इसी से मैं इनमें आसक्त नहीं रहता। बुद्धिमानों का कहना है कि बुद्धि

ही इन्द्रियों की प्रसन्नता का कारण है। मूर्ख मनुष्य में बुद्धि नहीं आ सकती, इसी से उसकी इन्द्रियाँ हमेशा मुग्ध और शोक-सन्तप्त रहती हैं। मूर्ख मनुष्य मोहवश अपने को धनी और मानी समझकर गर्व करता है। वह किसी लोक में अपना भला नहीं कर सकता। सुख-दुःख बहुत दिनों तक नहीं रहते, अतएव सुखी होने पर गर्व और दुखी होने पर खेद करना व्यर्थ है। शरीर का अभिमान न करनेवाले मेरे समान कोई मनुष्य इस परिवर्तनशील, सन्ताप-स्वरूप संसार को पसन्द न करेंगे। वे अभीष्ट वस्तुओं के भोग की इच्छा और दुःख की चिन्ता न करेंगे। योगी लोग दूसरों को सुखी देखकर सुख की इच्छा नहीं करते; अप्राप्त विषयों के पाने का विचार करके सुखी, बहुत सा धन पाने पर सन्तुष्ट और धन का नाश होने पर दुखी नहीं होते। मित्र, ऐश्वर्य, कुल, शास्त्र के ज्ञान, मन्त्र और वीर्य के द्वारा पारलौकिक दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता। परलोक में शान्ति तो सदाचार के द्वारा ही मिल सकती है। योगहीन मनुष्यों में मोक्ष पाने की बुद्धि नहीं हो सकती। सुख प्राप्त करने का योग के सिवा और उपाय नहीं है। दुःख का त्याग और धैर्य धारण करने से ही सुख मिलता है। प्रिय वस्तु मिलने से हर्ष होता है और हर्ष होने से गर्व पैदा होता है। गर्व से ही मनुष्य को नरक में जाना पड़ता है। इसी से मैं प्रिय वस्तु, हर्ष और गर्व का त्याग करके सुख-दुःख से निर्लिप्त रहकर—साक्षी के समान—प्राणियों के शोक, भय और गर्व को देखता हुआ राग, द्वेष और शोक को छोड़कर तथा अर्थ, काम, विषय-तृष्णा और मोह का त्याग करके संसार में विचरता हूँ। मुझे न तो इस लोक में और न परलोक में ही मृत्यु, अधर्म और लोभ आदि से भय है। मैंने योग का कठोर अभ्यास करके इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया है। इसी से मुझे शोक पीड़ित नहीं करता। २१

दो सौ अट्ठासी अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को कल्याण के साधन बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! जो मनुष्य शास्त्र के मर्म को ठीक-ठीक नहीं जानता, जो सन्देह में पड़ा रहता है और जो शम-दम आदि गुणों से हीन है उसका कल्याण कैसे हो सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ऐसे मनुष्य गुरु की और ज्ञानी पुरुषों की सेवा करें तथा शास्त्र की बातें सुनें। मैं इस विषय में गालव और नारद का संवाद सुनाता हूँ। अपने कल्याण की इच्छा से एक बार गालव ने मोहहीन ज्ञानवान् जितेन्द्रिय नारदजी से कहा—देवर्षि, जिन गुणों के द्वारा समाज में पुरुष का सम्मान होता है वे आपमें मौजूद हैं। आप विद्वान् भी हैं। मैं सांसारिक विषयों से बिलकुल अनभिज्ञ और मूर्ख हूँ, अतएव आप मेरा सन्देह दूर कीजिए। मनुष्यों के लिए शास्त्रों में जो कर्म बतलाये गये हैं उनमें कौन कर्म मेरे लिए श्रेयस्कर है, यह मैं निश्चित नहीं कर पाता। अतएव आप मुझे यह विषय विस्तार से समझाइए। सब आश्रमों के

धर्म अलग-अलग हैं। अपने-अपने आचार को सभी उत्तम बतलाते हैं। इस तरह मनुष्यों को अपने-अपने शास्त्र के अनुसार अनेक मार्गों में चलते देखकर मैं निश्चय नहीं कर सकता कि क्या करूँ। यदि शास्त्र एक समान होता तो उसमें किसी तरह का सन्देह न होता। अनेक
१० शास्त्र होने के कारण मैं अपना कर्त्तव्य नहीं सोच सकता। इसी से मैं आपके पास आया हूँ। कृपा करके मेरा सन्देह दूर कीजिए।

नारदजी ने कहा—हे महर्षि, जिस तरह चार आश्रम अलग-अलग हैं उसी तरह आश्रमों के धर्म भी भिन्न-भिन्न हैं। इन आश्रमों के धर्म का अवलम्बन करके तुम, आचार्य से उनका मर्म जानकर, उनके विशुद्ध भाव को समझोगे। जो मनुष्य स्थूल दृष्टि से आश्रमों के धर्म को देखता है उसका सन्देह, धर्म का निरूपण करते समय, कभी दूर नहीं हो सकता। और, जो मनुष्य सूक्ष्म दृष्टि से उनके मर्म को ढूँढ़ता है वह मोक्ष को सब आश्रमों के धर्म का फल समझता है। जिस मनुष्य को शास्त्र का ज्ञान नहीं है उसके लिए मित्रों पर दया करना, शत्रुओं को दण्ड देना, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का संग्रह करना, पापों से बचे रहना, हमेशा शुभ कर्म करना और सज्जनों के साथ सद्व्यवहार करना भला है; वह सब प्राणियों पर दया रक्खे, सबके साथ सरलता का बर्ताव करे, मीठी बातें करे, देव पितर और अतिथि की पूजा करे, सेवकों के साथ अहङ्कार न करे, सत्य बोले, सत्य ज्ञान का अवलम्बन करे, गर्व न करे, सावधान और सन्तुष्ट रहे, ईश्वर की उपासना करे, धर्म के अनुसार वेद और वेदान्त पढ़े तथा ज्ञान का
२१ उपार्जन करने के लिए शास्त्र जानने की इच्छा करे। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे वह शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध आदि का सेवन मात्रा से अधिक न करे; रात में न घूमे; दिन में न सोवे; आलस्य, दुष्टता और अहङ्कार का त्याग कर दे। वह न तो बेहद आहार-विहार ही करे और न उसे सर्वथा छोड़ ही बैठे। दूसरों की निन्दा करके अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना अनुचित है। प्रतिष्ठा अपने गुणों से ही मिलती है। ऐसे अनेक आत्माभिमानी गुणहीन मनुष्य मौजूद हैं, जो गुणवानों की समता करने के लिए उन पर दोषारोपण करते हैं। वे शिक्षित होने पर भी गर्व के मारे अपने को गुणवान् मनुष्यों से बढ़कर गुणी समझते हैं। गुणवान् विद्वान् मनुष्य अपने मुँह अपनी बड़ाई और दूसरों की निन्दा किये बिना ही समाज में यशस्वी होता है। जैसे फूल अपनी प्रशंसा न करके अपनी सुगन्ध चारों ओर फैला देते हैं, जैसे सूर्य अपने मुँह से अपने गुणों का बखान न करके अपनी किरणों से आकाश-मण्डल को प्रकाशित कर देते
३० हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष अपनी प्रशंसा न करके अपने गुणों से संसार में प्रसिद्ध होता है। मूर्ख लोग अपनी प्रशंसा करके सब जगह बदनाम हो जाते हैं। विद्वान् मनुष्य कितना ही क्यों न छिपा रहे, प्रसिद्ध हो ही जाता है। मूर्ख मनुष्य चाहे चिल्ला-चिल्लाकर भी कोई बात कहे किन्तु निस्सार होने के कारण उसकी बात व्यर्थ हो जाती है और विद्वान् मनुष्य की धीरे से भी कही

हुई बात को, सारवान् होने के कारण, सब लोग मानते हैं। जैसे सूर्यकान्त मणि के संयोग से सूर्य का प्रकाश बहुत बढ़ जाता है वैसे ही मूर्ख मनुष्य कुवाक्य कहकर अपनी नीचता प्रकट कर देता है। इसी कारण अपना कल्याण चाहनेवाला मनुष्य ज्ञानवान् होने के लिए यत्न करे। ज्ञानवान् होना ही, मेरे मत में, सबके लिए अच्छा है। बिना पूछे या अनुचित रीति से पूछे जाने पर भी ज्ञानवान् मनुष्य जड़ के समान चुपचाप बैठा रहे। जो मनुष्य अपने कल्याण की इच्छा करे उसे सदाचारी, धर्मात्मा और दानी मनुष्यों के पास बैठना चाहिए। जहाँ चारों वर्णों के धर्म का उल्लङ्घन किया जाता हो वहाँ कभी न ठहरे। संसार में जो मनुष्य जैसी सङ्गति करता है उसे वैसा ही पुण्य-पाप मिलता है। जल और अग्नि के संयोग से जैसे सर्दी गर्मी लगती है वैसे ही पुण्य-पाप के स्पर्श से सुख और दुःख मिलता है। विषभाषी मनुष्य भोजन के स्वाद का विचार न करके केवल निर्वाह के लिए भोजन करते हैं, इसलिए वे भोग आदि विषयों में लिप्त नहीं होते और जो भोजन का स्वाद लेता है वह भोग के विषयों में फँसा रहता है। जहाँ शिष्य गुरु के पास जाकर उद्दण्डता के साथ प्रश्न करें और गुरु उन्हें ४०
धर्म का उपदेश दें, वह स्थान ज्ञानवान् मनुष्य को छोड़ देना चाहिए। वहीं पर रहे जहाँ शास्त्र के अनुसार अध्ययन और अध्यापन होता हो। जिस देश में, अपनी प्रतिष्ठा के लिए, विद्वान् पुरुष पर मिथ्या दोष लगाया जाता हो वहाँ बुद्धिमान् मनुष्य को नहीं रहना चाहिए। लोभी मूर्ख मनुष्यों के द्वारा जिस देश में धर्म का नाश किया जा रहा हो उस देश को, जलते हुए कपड़े की तरह, त्याग देना चाहिए। सज्जनों को उसी देश में रहना चाहिए जहाँ महात्मा लोग बेधड़क धर्म-कर्म कर सकें। धर्म की ओट में धन पैदा करने से पाप लगता है; अतएव जिस देश में मनुष्य धन उपार्जन करने के लिए धर्म करते हों वहाँ कभी न रहे। जिस देश में मनुष्य दुष्कर्मों द्वारा अपना निर्वाह करते हों उस देश को, साँपवाले घर की तरह, शीघ्र छोड़ दे। कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को उन कर्मों का त्याग कर देना चाहिए जिन्हें करके वासनाओं के वशवर्त्ती लोग दुःख भोगते हैं। जिस देश में राजा और राजकर्मचारी अपने परिवार को भोजन दिये बिना स्वयं पहले भोजन कर लेते हों, उस राज्य में बुद्धिमान् मनुष्य निवास न करे। सज्जनों को उसी राज्य में रहना चाहिए जिसमें यज्ञ करानेवाले, अध्यापक और धर्म-परायण श्रोत्रियगण सबसे पहले भोजन करते हों। जिस देश में स्वाहा, स्वधा और ५०
वषट्कार शब्द का नित्य उच्चारण होता हो उसी देश में, बिना सोचे-समझे, सज्जन निवास करें। जिस राज्य में आचारभ्रष्ट अपवित्र ब्राह्मण हों उस राज्य को, विष मिले हुए भोजन के समान, त्याग दे। जिस देश के मनुष्य, बिना माँगे, प्रसन्नता से दान करते हों वहाँ सज्जन बेखटके निवास करें। जिस देश में उद्दण्ड मनुष्यों को दण्ड दिया जाता हो और सज्जनों का सम्मान होता हो उसी देश मे पुण्यवान् महात्माओं के साथ निवास करना चाहिए। जिस

देश का राजा विषयों का त्याग करके—जितेन्द्रिय मनुष्यों पर क्रोध करनेवाले, सज्जनों पर अत्याचार करनेवाले—लोभी, उद्दण्ड मनुष्यों को दण्ड देता हो और धर्म के अनुसार राज्य का पालन करता हो उस राज्य में बिना आगा-पीछा सोचे निवास करना चाहिए। इस प्रकार का अच्छे स्वभाववाला राजा हमेशा प्रजा का हित करता है। अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों के लिए मैंने ये उपाय बतलाये हैं। जो मनुष्य अपने धर्म पर चलता हुआ सावधानी से इन नियमों के
५९ अनुसार निर्वाह करता है वह अपनी असीम उन्नति कर सकता है।

दो सौ नवासी अध्याय

मोक्ष के विषय में अरिष्टनेमि और सगर का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मेरे समान राजा किस प्रकार का व्यवहार करने और किन गुणों का आश्रय लेने से संसार के बन्धन से छूटे ?

भीष्म ने कहा कि बेटा, इस विषय में महर्षि अरिष्टनेमि ने महाराज सगर को जो प्राचीन इतिहास सुनाया था, वही मैं तुमको सुनाता हूँ। एक बार महाराज सगर ने महर्षि अरिष्टनेमि से पूछा—महर्षि, मैं जानना चाहता हूँ कि किस प्रकार के शुभ कर्म करने से इस लोक में शोक और क्षोभ से बचे रहकर सुख मिल सकता है। राजा को उपदेश के योग्य पात्र समझकर महर्षि अरिष्टनेमि ने कहा—महाराज, सच्चा सुख मोक्ष ही है। स्त्री-पुत्र आदि के पालन और धन-धान्य के जञ्जाल में फँसा हुआ अविवेकी मनुष्य परमपद मोक्ष की ओर ध्यान नहीं देता। विषयों में उलझी हुई बुद्धि और वासनाओं में फँसे हुए मन को उनसे हटाना बहुत कठिन है। स्नेह के बन्धन में बँधा हुआ अविवेकी मनुष्य कभी मोक्षपद नहीं पा सकता।

अब स्नेह के बन्धन से छूटने का वर्णन सुनो। यथासमय पुत्र उत्पन्न करो और जब वे जवान होकर अपने आप जीविका कर सकें तब उनका विवाह कर दो; फिर उनका स्नेह छोड़कर जहाँ चाहो वहाँ सुख से घूमो। स्त्री जब पुत्रवती होकर पुत्र का लाड़-प्यार करके वृद्धा हो जावे तब उसे छोड़कर परमार्थ-चिन्तन करो। पुत्र पैदा हो या न हो, पहले इन्द्रियों का सुख
१० भोग लो, फिर विषय-वासनाओं को छोड़कर बेखटके विचरो। जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहो। यह विषयों को भोग करके फिर उनको त्याग देने की बात मैंने तुमसे संक्षेप में कही, अब मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन विस्तार से करता हूँ।

संसार में जो मनुष्य विषयों को छोड़कर बेखटके विचरता है उसी का जीवन सुख से व्यतीत होता है और जो विषयों में फँसा रहता है उसे जन्म-मृत्यु का दुःख भोगना पड़ता है। देखो, हमेशा अपने पेट की चिन्ता में फिरते हुए कीड़े और चिउँटी आदि भी मरते-खपते रहते हैं, अतएव संसार में विषयों से मुक्त होना ही मनुष्यों के लिए यथार्थ सुख है। 'मेरे न रहने पर

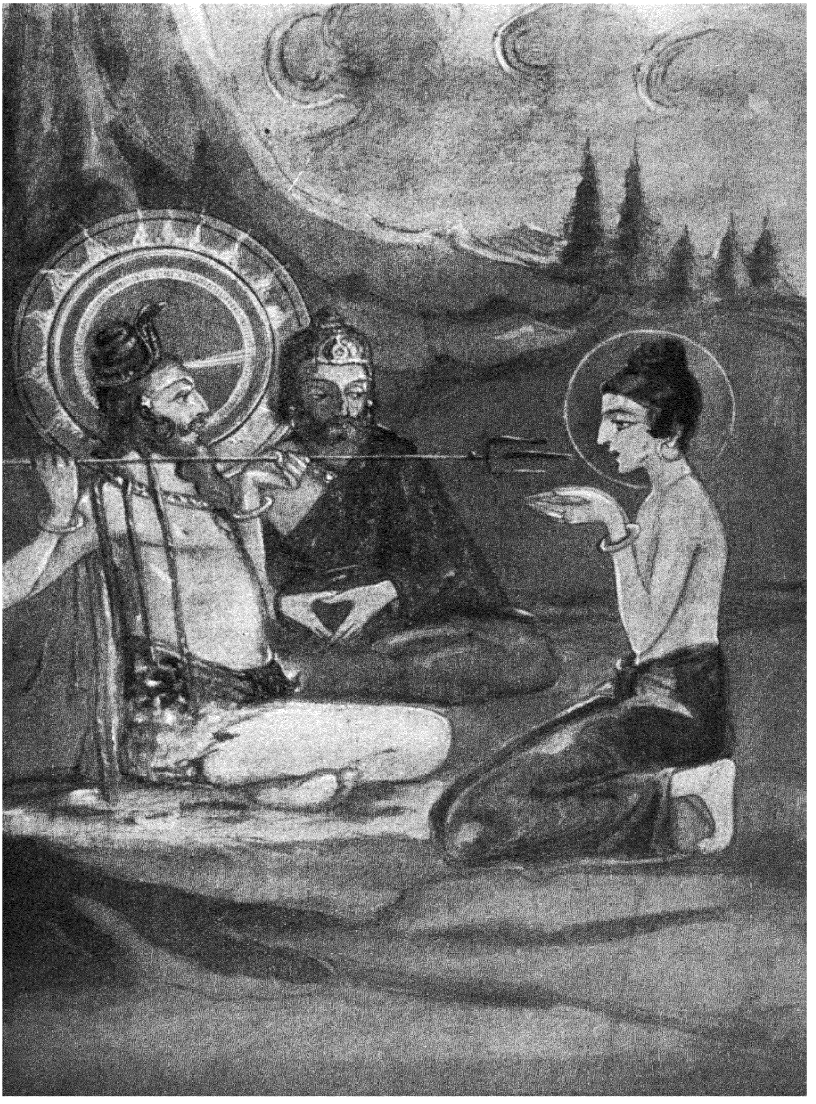

महादेवजी ने शुक्राचार्य्य को वहाँ देखकर पिनाक की तरह शूल के अग्रभाग को झुका दिया।—पृष्ठ ३७९०

मेरे कुटुम्बी लोग किस तरह निर्वाह करेंगे' यह चिन्ता मोक्ष चाहनेवाला मनुष्य न करे। अपने कर्मों से जीव स्वयं उत्पन्न होता, बढ़ता, सुख-दुःख भोगता और मरता है। कर्मों के प्रभाव से ही वह माता-पिता के संग्रह किये हुए अथवा अपने उपार्जित धन से अपना निर्वाह करता है। पूर्व-जन्म में जिसने जैसे कर्म किये हैं उन्हीं के अनुसार विधाता उसकी जीविका निर्दिष्ट कर देता है, अतएव सबका निर्वाह अपने-अपने कर्मों के द्वारा होता है। मनुष्य जब स्वयं मिट्टी के पिण्ड के समान और पराधीन है तब उसका कुटुम्बियों के पालन करने की चिन्ता करना व्यर्थ है। जब तुम अपने कुटुम्ब की रक्षा करते रहते हो और उसी बीच कुटुम्बियों की मृत्यु हो जाती है, जब तुम परिवार का भरण-पोषण पूरे तौर से नहीं कर पाते, बीच में ही उनको छोड़कर संसार से चले जाते हो, कुटुम्बियों के मर जाने पर जब तुम उनका सुख-दुःख नहीं देख सकते और तुम जीवित रहो या न रहो, कुटुम्ब के लोग अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगते रहते हैं, तब उनके सुख-दुःख को उनके भाग्य के अधीन समझकर अपने कल्याण की चिन्ता करो। संसार में कोई किसी का नहीं है, इसको अच्छी तरह ध्यान में रखकर मोक्ष प्राप्त करने का उपाय करना चाहिए। २०

जो मनुष्य क्रोध, लोभ, मोह और भूख-प्यास आदि को जीत लेता है; जो मोह के वश होकर जुआ खेलने, मदिरा पीने, स्त्री-प्रसङ्ग करने और शिकार खेलने में आसक्त नहीं रहता तथा जिसका मन स्त्रियों को देखकर नहीं बिगड़ता वही मोक्ष पा सकता है। जो प्राणियों के जन्म, मरण और जीवन के क्लेश को भली भाँति जानता है; जो अन्न से भरी हुई हज़ारों गाड़ियों के मिलने पर भी खाने भर के लिए अन्न लेता है; जो अटारी और मचान को समान समझता है तथा जो सब प्राणियों को रोग और मौत से पीड़ित और जीविका के लिए दुखी देखता है वही मोक्ष पा सकता है। जो थोड़े ही लाभ से सन्तुष्ट हो जाता और सम्पूर्ण जगत् को भोक्ता तथा भोग्य वस्तु द्वारा परिपूर्ण देखकर स्वयं मायामय सुख-दुःख में आसक्त नहीं होता; जो पलँग पर या पृथिवी पर सोने, बढ़िया अथवा साधारण भोजन करने, रेशमी कपड़े पहनने या घास के बने हुए अथवा बल्कल पहनने, कम्बल और चमड़ा आदि सब कुछ को समान समझता है वही मोक्ष पा सकता है। जो सब प्राणियों को पञ्चभूतों से उत्पन्न समझकर स्वतन्त्र विचरता है; जो सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, राग-द्वेष, भय तथा उद्वेग को समान समझता है; जो रक्त और मल-मूत्र से परिपूर्ण शरीर को अनेक दोषों की खान और बुढ़ापे के कारण उसकी दुर्बलता, उसके रङ्ग के बदल जाने, पुरुषत्वहीन होने, अन्धा बहरा कुबड़ा और कमज़ोर हो जाने को अच्छी तरह जानता है वही मोक्ष पा सकता है। देवता, ऋषि और असुरगण भी दूसरे लोक को जाते हैं, ऐसा विचारकर जो मनुष्य सम्पूर्ण संसार को अनित्य समझता है; जो प्रभावशाली राजाओं की मृत्यु को भी देखता है; जो इस लोक में धन की प्राप्ति को बहुत कठिन और दुःख ३० ४०

की प्राप्ति को बहुत सरल तथा कुटुम्ब के भरण-पोषण को व्यर्थ—केवल क्लेशजनक—समझता है; तथा जो वैदिक और लौकिक व्यवहार को देखकर सब पदार्थों को असार समझता और परमार्थ के लिए उद्योग करता है वही मोक्ष पद पा सकता है। संसार में सन्तान और कुटुम्बियों के दुर्गुणों को देखकर कौन मनुष्य मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता? मेरी बात मानकर तुम मुक्त पुरुष का सा व्यवहार करने लगो; चाहे तुम गृहस्थ आश्रम में रहो चाहे संन्यास आश्रम में।

हे धर्मराज, महर्षि अरिष्टनेमि के इस उपदेश को सुनकर राजा सगर विवेकी होकर
४७ प्रजा का पालन करने लगे।

दो सौ नव्वे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से शुक्राचार्य का चरित्र कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, बुद्धिमान् शुक्राचार्य किस कारण देवताओं का अप्रिय और दानवों का प्रिय करते थे और स्वयं देवर्षि होकर देवताओं की अवनति किस कारण चाहते थे? वे किस प्रकार शुक्रत्व प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् हुए? आकाशमण्डल के बीच में होकर वे क्यों नहीं जाते?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैंने यह वृत्तान्त जिस तरह पहले सुन रक्खा है और जितना मुझे मालूम है वह कहता हूँ। भृगुवंशी महर्षि शुक्राचार्य, विष्णु के द्वारा, अपनी माता का वध होने के कारण देवताओं से शत्रुता करने लगे थे। यक्ष-राक्षसों के राजा कुबेर देवराज इन्द्र के कोषाध्यक्ष थे। योगी शुक्राचार्य ने कुबेर के शरीर में प्रविष्ट होकर, योग के बल से, उन्हें क़ैद करके उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली थी। सर्वस्व छिन जाने पर धनपति कुबेर अत्यन्त
११ व्याकुल होकर महातेजस्वी महादेव के पास जाकर कहने लगे—महेश्वर, महर्षि शुक्राचार्य ने योग के बल से मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मुझे क़ैद करके मेरा सर्वस्व छीन लिया। फिर वे मेरे शरीर से निकल गये। यह सुनकर महायोगी महादेव को बड़ा क्रोध आ गया; उनकी आँखें लाल हो गईं। हाथ में त्रिशूल लेकर वे कहने लगे—'शुक्राचार्य कहाँ है?' महात्मा शुक्राचार्य को, तपस्या के प्रभाव से, दूर से ही योगीश्वर महेश्वर का क्रोध और उनका अभिप्राय मालूम हो गया तब वे उनके शूल की नोक पर आ गये। महादेवजी ने शुक्राचार्य को वहाँ देखकर, पिनाक की तरह, शूल के अग्र-भाग को झुका दिया। शूल के झुकते ही शुक्राचार्य उनके हाथ में आ गये। तब महादेवजी ने अपना
२० मुँह फैलाकर उनको खा लिया। इस तरह शुक्राचार्य महादेवजी के पेट में जाकर घूमने लगे।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, महातेजस्वी शुक्राचार्य महादेवजी के पेट में ही क्यों घूमते रहे? वहाँ उन्होंने क्या काम किया?

भीष्म ने कहा—बेटा! शुक्राचार्य को पेट में रक्खे हुए महादेवजी ने जल में, वृक्ष की तरह, निश्चल खड़े रहकर बहुत दिनों तक कठोर तपस्या की। उसके बाद जब वे जल से निकले

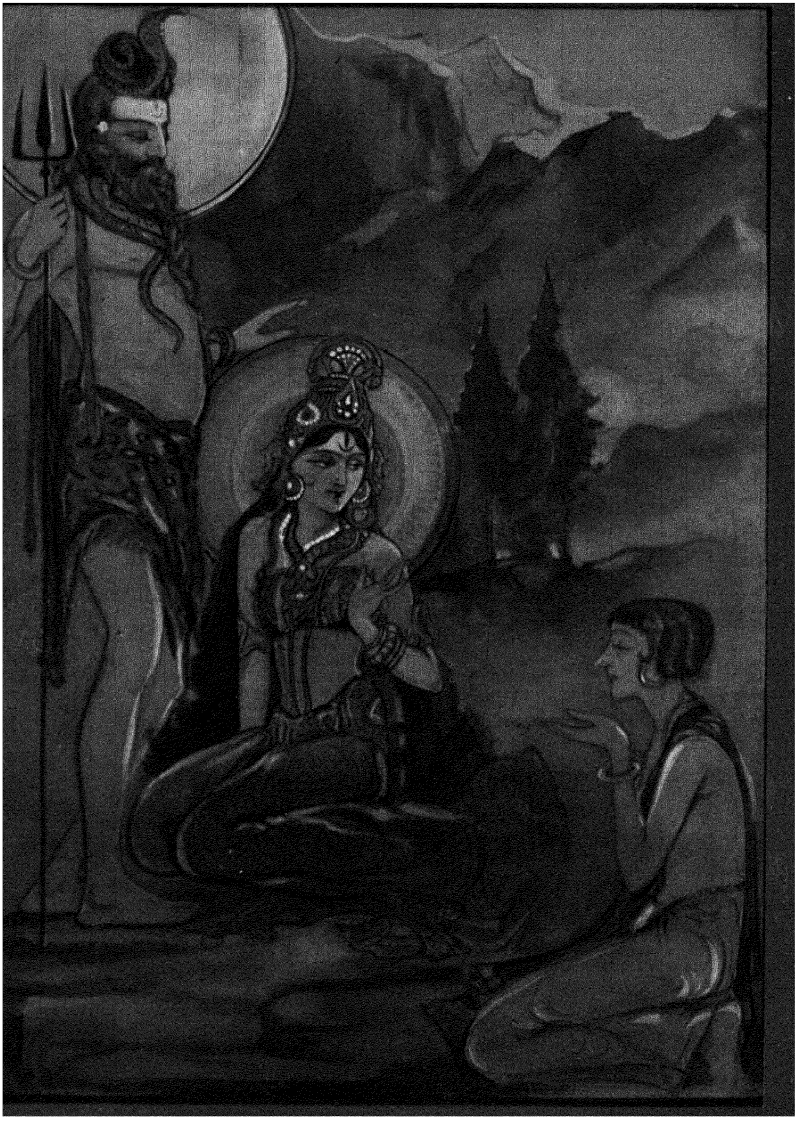

देवी पार्वती ने शङ्कर को कुपित देखकर कहा·····यह मेरा पुत्र हो गया है। अब इसका वध करना आपको उचित नहीं है। पृष्ठ ३७६१

तब ब्रह्माजी ने उनकी कुशल और तपोवृद्धि का हाल पूछा। अचिन्त्यात्मा सत्य-धर्मपरायण महादेव ने ब्रह्माजी को तपस्या का हाल बतलाया और तपोबल से अपने तेज की वृद्धि देखी। तपस्या के प्रभाव से तीनों लोकों में उनकी शोभा हुई। उसके बाद उन्होंने फिर समाधि लगा ली। महायोगी शुक्राचार्य उनके पेट में बहुत घबरा रहे थे। पेट से बाहर निकलने के लिए वे महादेवजी की स्तुति करने लगे कि भगवन्, आप प्रसन्न होकर मेरी रक्षा कीजिए। अब मुझसे यह कष्ट नहीं सहा जाता। तब उन्होंने सब इन्द्रियों के द्वार रोककर कहा—भार्गव, तुम लिङ्ग द्वार से निकल जाओ। यह सुनकर शुक्राचार्य पहले तो अपने निकलने का मार्ग न देख सके, फिर कुछ ३०
देर पेट में इधर-उधर घूमने के बाद वे लिङ्ग द्वार से निकल गये। महर्षि भार्गव महादेव के लिङ्ग द्वार से निकले, इसी से उनका नाम शुक्र पड़ा। लिङ्ग द्वार से निकलने के कारण ये महर्षि आकाश के मध्य में कभी नहीं देख पड़ते। तेजस्वी शुक्राचार्य को बाहर निकले देखकर महादेवजी ने क्रोध से शूल लेकर उन्हें मार डालना चाहा। देवी पार्वती ने शङ्कर को कुपित देखकर कहा—भगवन्! आपने अपने पेट (लिङ्ग द्वार) से इसे निकाला है इसलिए यह मेरा पुत्र हो गया। अब इसका वध करना आपको उचित नहीं। यह सुनकर भगवान् शूलपाणि प्रसन्न होकर हँसने लगे। उन्होंने पार्वती से कहा—देवि, मैं प्रसन्न हूँ। अब यह चाहे जहाँ चला जावे। तब महादेवजी और देवी पार्वती को प्रणाम करके महर्षि शुक्राचार्य वहाँ से चल दिये। हे युधिष्ठिर! शुक्राचार्य का यही वृत्तान्त है। ३८

दो सौ इक्यानबे अध्याय

महर्षि पराशर का जनक को धर्मोपदेश

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मैं आपकी अमृतरूपी बातें जितनी ही सुनता हूँ उतनी ही अधिक सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है। अब आप यह बतलाइए कि किस प्रकार के शुभ कर्म करने से दोनों लोकों में मनुष्यों का कल्याण हो सकता है।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, प्राचीन समय में यशस्वी राजा जनक ने एक दिन महात्मा पराशर से पूछा—महर्षि, किस कर्म के द्वारा मनुष्य इस लोक में और परलोक में अपना कल्याण कर सकते हैं?

सब धर्मों के जानकार महातपस्वी पराशर ने कहा—राजन्, धर्म करने से दोनों लोकों में कल्याण होता है। अतएव धर्म से बढ़कर और कुछ नहीं है। धर्म के प्रभाव से स्वर्गलोक में मनुष्यों का सम्मान होता है। शुभ कर्म करना ही धर्म है। अपने-अपने धर्म के अनुसार कर्म करना सभी का कर्तव्य है। ब्राह्मण दान ले, क्षत्रिय कर ले, वैश्य खेती आदि करे और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करे, ये चार प्रकार के उपाय संसार में निर्वाह के लिए बतलाये गये हैं। इन्हीं उपायों के द्वारा मनुष्य निर्वाह करें। जीविका के लिए अनेक प्रकार के पुण्य-

पाप करने से ही उन्हें अनेक प्रकार की गति मिलती है। जैसे ताँबे आदि के बर्तनों पर सोने और चाँदी की कलई कर दी जाती है वैसे ही मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार पुण्य-पाप में लिप्त हो जाता है। बीज के बिना किसी पदार्थ की उत्पत्ति और कर्म के बिना किसी मनुष्य को सुख मिलने की सम्भावना नहीं है। मनुष्य अपने शुभ कर्मों से ही सुख पाता है। चार्वाक भाग्य को कोई चीज़ नहीं मानता। उसका मत है कि प्रकृति के द्वारा देव, गन्धर्व और दानव योनि प्राप्त होती है; पूर्व जन्म के कर्म को फल की प्राप्ति का कारण मानना बुद्धिमानों को उचित नहीं। वेद में कही हुई बातें लोक-निर्वाह और मनुष्यों का मन प्रसन्न करने के लिए हैं; वे ज्ञानवान् पुरुषों का उपदेश नहीं हैं। किन्तु चार्वाक का वह मत ठीक नहीं है। आँख, वाणी, मन और कर्म से जो मनुष्य जैसे कर्म करता है उसे वैसे ही फल मिलते हैं। भोगे बिना पुण्य और पाप का नाश नहीं होता। मनुष्य अपने कर्मों के प्रभाव से ही सुख, दुःख और सुख-दुःख दोनों मिली हुई अवस्था को भोगता है। संसार-सागर में डूबे हुए मनुष्य का सुख, दुःख भोगने के समय, छिपा रहता है; दुःख का अन्त होने पर सुख का उदय हो जाता है। उसका नाश होने पर फिर दुःख आ जाता है। इच्छाओं का त्याग, शम-दम, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्य, लज्जा, अहिंसा और दक्षता मनुष्यों के सुख के कारण हैं। किसी को हमेशा सुख या हमेशा दुःख नहीं मिलता। विवेकी मनुष्य को हमेशा अपना मन स्थिर रखने का यत्न करना चाहिए। किसी को दूसरे का किया हुआ पुण्य-पाप नहीं भोगना पड़ता। जो मनुष्य जैसे कर्म करता है उसे वैसे ही फल मिलते हैं। जो मनुष्य पुण्य-पाप को आत्मा में लीन करके ज्ञान-मार्ग का अवलम्बन करता है उसका मनोरथ सफल होता है और जो स्त्री-पुत्र आदि सांसारिक विषयों में फँसा रहता है उसे स्वर्ग या मोक्ष कुछ भी नहीं मिलता। जो मनुष्य दूसरों के जिस कर्म की निन्दा करे उसे स्वयं वह काम न करना चाहिए। उस काम के करने से निस्सन्देह उसकी हँसी होती है। डरपोक राजा, सर्वभोजी ब्राह्मण, निकम्मा वैश्य, आलसी शूद्र, क्रियाभ्रष्ट विद्वान्, बुरा बर्ताव करनेवाला कुलीन, व्यभिचारिणी स्त्री, रागयुक्त योगी, अतिथि आदि को न देकर अपना पेट भरने के लिए रसोई बनानेवाला, मूर्ख वक्ता, अराजक राज्य और प्रजा पर स्नेह न करनेवाला राजा, ये सब निन्दनीय हैं।

दो सौ बानबे अध्याय

पराशर का उपदेश

पराशर ने कहा—हे राजर्षि, जो मनुष्य ज्ञानरूपी रस्सी से शरीर-रूप रथ के शब्द आदि विषय-रूप घोड़ों को बाँध रखता है वही बुद्धिमान् है। जो मनुष्य विषय-वासना को छोड़कर, गुरु की कृपा से, ईश्वर की भक्ति प्राप्त करता है उसकी सब जगह प्रशंसा होती है। इन्द्रियों

के विषयों का भोग करने से दुर्लभ आयु नष्ट हो जाती है। मनुष्य को अच्छे कामों के द्वारा अपनी आयु बढ़ाने का यत्न करना चाहिए। जो मनुष्य श्रेष्ठ वर्ण में उत्पन्न होकर तामस कर्म करता है वह वर्ण से भ्रष्ट हो जाता है; फिर उसका सम्मान नहीं होता। पापी को पुण्य से प्राप्त होनेवाला श्रेष्ठ वर्ण नहीं मिल सकता, बल्कि पापकर्मों द्वारा वह आत्मा को नरकभागी कर देता है। अज्ञान से किया हुआ पाप तपस्या द्वारा नष्ट हो जाता है; किन्तु जान-बूझकर किया हुआ पाप दुःखजनक होता है। अतएव दुःख-रूप पाप-कर्म करना उचित नहीं। जैसे पवित्र पुरुष चाण्डाल को छूने में घृणा करता है वैसे ही विवेकी मनुष्य पाप के द्वारा भारी लाभ की आशा होने पर भी उसे न करे। पाप का फल बड़ा निन्दित है। पाप-कर्मों के कारण पापी की दृष्टि विपरीत हो जाती है, इससे वह शरीर आदि को आत्मा समझने लगता है। जो मूर्ख सांसारिक विषयों में ही उलझा रहता है उसे शरीर त्यागने के बाद नरक का दुःख भोगना पड़ता है। जैसे बिना रँगा कपड़ा मैला होने पर खार आदि द्वारा साफ़ किया जा सकता है; किन्तु रँगा हुआ कपड़ा सफ़ेद नहीं हो सकता वैसे ही अज्ञान से किया हुआ पाप प्रायश्चित्त करने से नष्ट हो जाता है, किन्तु जान-बूझकर किया हुआ पाप किसी तरह नष्ट नहीं हो सकता। १०
जो मनुष्य जान-बूझकर पाप करके फिर उसका प्रायश्चित्त करता है उसे उस प्रायश्चित्त का फल स्वर्ग और पाप का फल नरक मिलता है। ब्रह्मज्ञानियों ने, वेद की विधि देखकर, कहा है कि अज्ञान से किया हुआ हिंसा-जनित पाप अहिंसा व्रत करने से नष्ट हो जाता है; किन्तु ज्ञान-पूर्वक हिंसा करने का फल भोगना ही पड़ता है। जो हो, पुण्य और पाप चाहे ज्ञान से किया गया हो अथवा अज्ञान से, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। संसार में जान-बूझकर किये हुए स्थूल और सूक्ष्म सब कर्म फल अवश्य देते हैं; किन्तु ज्ञान से किये हुए हिंसायुक्त श्रेष्ठ कर्म भी थोड़ा फल देते हैं। देवताओं या महर्षियों को न्याय-विरुद्ध कर्म करते देखकर वैसे काम करने लगना या उनकी निन्दा करना धर्मात्माओं को उचित नहीं। जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार विचारपूर्वक शुभ कर्म करता है उसका कल्याण होता है। जैसे कच्चे घड़े में रक्खा हुआ पानी बह जाता है; किन्तु पके हुए घड़े में रखने से नहीं बहता वैसे ही बिना सोचे-समझे काम करने पर हानि उठानी पड़ती है और विचारपूर्वक काम किया जाता है तो सुख मिलता है। जैसे किसी बर्तन में पानी रक्खा हो तो उसमें और पानी छोड़ देने से पानी बढ़ जाता है वैसे ही शुभ कर्म करने से धार्मिक मनुष्यों का पुण्य बढ़ता है। २०

महाराज! यह मैंने तुमसे साधारण धर्म कहा, अब राजधर्म सुनो। राजा पहले शत्रुओं को जीते, फिर धर्म के अनुसार प्रजा का पालन और यज्ञ करके अन्त को वन में जावे। वहाँ धर्मात्मा और जितेन्द्रिय होकर सब प्राणियों को अपने समान देखे, यथाशक्ति बड़े-बूढ़ों की सेवा करे और सत्य तथा सदाचार का पालन करता हुआ सुख से रहे। २३

दो सौ तिरानबे अध्याय

परागर का राजा जनक को उपदेश

पराशर ने कहा—महाराज! संसार में न तो कोई किसी का उपकार कर सकता है और न कोई किसी को कुछ दे सकता है; सब अपने-अपने स्वार्थ के लिए काम करते हैं। अतएव दूसरों की बात तो दूर रही, सगा भाई भी यदि स्नेह न करता हो और क्षुद्र विचार का हो तो उसे भी त्याग देना चाहिए। अच्छे मनुष्य को ही धन दे और अच्छे मनुष्य से ही धन ले; किन्तु दान लेने की अपेक्षा द्विजों को दान देना श्रेष्ठ है। न्याय से पैदा किया हुआ और न्याय से बढ़ाया हुआ धन धर्म के कामों में लगाने के लिए रख छोड़े। अनुचित काम करके धन कमाना धर्मार्थी मनुष्यों को उचित नहीं। धन की चिन्ता में न डूबकर अपनी शक्ति के अनुसार सब काम करे। प्यासे मनुष्य को, ठण्ढा या गरम, पानी देना धन देने के समान फलदायक है। महात्मा रन्तिदेव ने फल, मूल और पत्र द्वारा मुनियों का सम्मान करके इस लोक में सिद्धि प्राप्त की थी। राजा शैव्य भी फल-मूल द्वारा पार्षदगण समेत सूर्यदेव को प्रसन्न करके उत्तम लोक को गये हैं। मनुष्य जन्म लेते ही देवता, ऋषि, पितर, अतिथि और पुत्र आदि का तथा अपने आत्मा का ऋणी हो जाता है। अतएव उसे यज्ञ के द्वारा देवताओं का, वेदों का अध्ययन करके ऋषियों का, श्राद्ध द्वारा पितरों का, सत्कार द्वारा अतिथियों का, जातकर्म आदि संस्कार करके पुत्र का और वेद-शास्त्र का श्रवण, यज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन तथा प्राणियों
११ की रक्षा करके आत्मा का ऋण चुकाना चाहिए। निर्धन मुनि लोग अग्निहोत्र करके सिद्ध हो गये हैं। महात्मा अजीगर्त के पुत्र शुनःशेफ ने विश्वामित्र के पुत्र होकर ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा देवताओं की स्तुति करके सिद्धि पाई थी। दानवों के गुरु शुक्राचार्य, पार्वती और महादेव की कृपा से शुक्रत्व प्राप्त करके यशस्वी हुए हैं। इनके सिवा असित देवल, नारद, पर्वत, काक्षीवान्, परशुराम, जितेन्द्रिय तार्क्ष्य, वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, कुण्डधार, हरिश्मश्रु और श्रुतश्रवा आदि महर्षि एकाग्रचित्त से ऋग्वेद द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति करके उनकी कृपा से सिद्ध हो गये हैं। निन्दनीय मनुष्य भी इस लोक में, विष्णु की स्तुति करने के प्रभाव से, सबके पूज्य हुए हैं। निन्दित काम करने से किसी की उन्नति नहीं हो सकती। धर्ममार्ग पर चलकर जो धन पैदा किया जा सके वही यथार्थ धन है। अधर्म से पैदा किया हुआ धन किसी काम का नहीं। संसार में धर्म ही नित्य पदार्थ है, धन के लिए धर्म छोड़ना ठीक नहीं। अग्निहोत्र करनेवाले पुरुष पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हैं। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहव-
२० नीय, ये तीन अग्नि वेदों में बतलाये गये हैं। क्रियावान् मनुष्य ही यथार्थ अग्निहोत्री है। क्रियाहीन होकर अग्निहोत्र करने की अपेक्षा उसका न करना ही अच्छा है। अग्नि, आत्मा, पिता, माता और गुरु की विधिपूर्वक सेवा करनी चाहिए। जो मनुष्य हिंसा का त्याग करके निष्काम होकर

धर्म का अनुष्ठान करते और अभिमान छोड़कर ज्ञानी पुरुषों की सेवा करते तथा निःस्पृह होकर सब प्राणियों पर समान भाव से कृपा-दृष्टि रखते हैं उन्हीं सज्जनों का भले लोग सम्मान करते हैं। २३

दो सौ चौरानवे अध्याय

पराशर का ब्राह्मण आदि वर्णों के धर्म का वर्णन करना।

पराशर ने कहा—महाराज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करके अपना निर्वाह करना शूद्रों का धर्म है। इस सेवा के द्वारा शूद्र धर्मात्मा होता है। यदि किसी शूद्र के बाप-दादे ने किसी की सेवा न भी की हो तो भी सेवा के सिवा और कोई वृत्ति करना शूद्रों के लिए उचित नहीं। सेवा ही शूद्रों का परम धर्म है। धर्मात्मा सज्जनों की सङ्गति करे; दुष्टों के साथ न रहे। जैसे उदयाचल पर मणि और मोती आदि सूर्य के समीप होने से अधिक चमचमाते हैं वैसे ही शूद्र भी सज्जनों के साथ रहने से अच्छे स्वभाव के हो जाते हैं। सफ़ेद कपड़ा नीले-पीले आदि जिस रङ्ग में रँग दिया जाय वही रङ्ग उस पर चढ़ जाता है, अतएव दोषों को छोड़कर गुणों में ही मन लगाना चाहिए। संसार में मनुष्यों का जीवन अनित्य है। शास्त्र का ठीक-ठीक जानकार वही है जो सुख और दुःख, दोनों अवस्थाओं में अच्छे कर्म करता है। अधर्म-मार्ग पर चलने से यदि बहुत सा धन मिलने की आशा हो तो भी बुद्धिमान् मनुष्य उस मार्ग पर न चले। यदि राजा दूसरों से छीनकर हज़ारों गायें दान कर दे तो उस दान से कुछ फल नहीं मिलेगा, बल्कि उसे चोरी करने का पाप लगेगा।

परमात्मा ने सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया है। ब्रह्मा ने संसार की रक्षा के लिए एक पुत्र पैदा किया, उसका नाम इन्द्र है। वैश्य लोग इन्द्र की पूजा करते हुए खेती और १०
पशुओं का पालन आदि करें। क्षत्रियों को अन्न की रक्षा करना, ब्राह्मणों को उसका उपयोग और शूद्रों को क्रोध तथा दुष्टता का त्याग करके यज्ञ की सामग्री लाने और यज्ञभूमि की सफ़ाई का काम करना चाहिए। इस तरह के काम करने से किसी का धर्म नष्ट नहीं होता। धर्म की रक्षा से ही प्रजा सुखी रहती है और प्रजा के सुखी रहने से देवता सन्तुष्ट होते हैं। सारांश यह कि राजा धर्म के अनुसार प्रजा का पालन, ब्राह्मण वेद का अध्ययन, वैश्य धन का उपार्जन और शूद्र सेवा करें। ऐसा करने से सबका सम्मान होता है। जो मनुष्य इस नियम के विरुद्ध चलता है वह धर्मभ्रष्ट है। न्याय के मार्ग पर चलकर धन पैदा करके बहुत सा दान देना तो श्रेष्ठ है ही; किन्तु क्लेश सहन करते हुए एक कौड़ी का दान करने से भी भारी फल होता है। जो राजा सम्मान के साथ ब्राह्मणों को जितना ही अधिक दान करता है उसे उसी के अनुसार फल मिलता है। जिसे दान देना है उसके पास जाकर, उसे सन्तुष्ट करने के लिए, जो दान किया जाता है वह सबसे श्रेष्ठ; माँगने पर जो दिया जाता है वह मध्यम और जो अश्रद्धा तथा

अनादर के साथ दिया जाता है वह निकृष्ट दान है। संसार-सागर में डूबे हुए मनुष्यों को उससे पार लगने के लिए अनेक उपाय करने चाहिएँ। ब्राह्मण जितेन्द्रिय, क्षत्रिय विजयी और
२१ वैश्य धनी होने तथा शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा में लगे रहने से सम्मान पाते हैं।

दो सौ पञ्चानबे अध्याय

पराशर का जनक को उपदेश। वर्ण-धर्म का वर्णन

पराशर ने कहा—महाराज! ब्राह्मण को दान लेने से, क्षत्रिय को विजय करने से, वैश्य को न्याय से पैदा करके और शूद्र को सेवा-वृत्ति के द्वारा जो धन प्राप्त हो सके वही धर्म का फल देनेवाला और प्रशंसनीय है। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्रों का परम धर्म है। ब्राह्मण यदि विपत्ति पड़ने पर क्षत्रिय-धर्म या वैश्य-धर्म का आश्रय कर ले तो पतित नहीं होता। हाँ, सेवा-धर्म करने से पतित हो जाता है। शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करके यदि अपना निर्वाह न कर सके तो वाणिज्य, पशुओं का पालन और शिल्प-कर्म कर सकता है। जिस मनुष्य ने नाटक का पात्र बनकर, अनेक प्रकार के वेष बनाकर, मदिरा-मांस और लोहे या चमड़े के व्यवसाय से कभी अपनी जीविका नहीं की है वह इन कामों को न करे और जो बहुत दिनों से इन्हीं कामों के द्वारा अपना निर्वाह कर रहा है वह यदि इन कामों को छोड़ सके तो बड़ा धर्मवान् है। संसार में मनुष्य धन के मद से मतवाले होकर दुष्कर्म करने लगते हैं; किन्तु इस प्रकार पाप-कर्म में प्रवृत्त होना किसी को उचित नहीं। धार्मिक लोगों की ही प्रशंसा होती है और वही सब गुणों की खान होते हैं। प्राचीन समय में मनुष्य जितेन्द्रिय, नीतिज्ञ और धर्मात्मा होते थे। उस समय दैववश यदि कोई मनुष्य निन्द्य कर्म कर बैठता था तो धिक्कार देना ही उसके लिए काफ़ी दण्ड हो जाता था। कुछ दिनों बाद इस प्रकार के धर्म में लगे हुए मनुष्यों को देखकर दानवों से न रहा गया। वे मनुष्यों के शरीर में काम आदि के रूप से प्रविष्ट होने
१० लगे। काम आदि के प्रविष्ट होने पर मनुष्यों के शरीर में, धर्म का नाश करनेवाला, दर्प उत्पन्न हुआ। उसके बाद दर्प से क्रोध पैदा हुआ, फिर धीरे-धीरे उनकी सुशीलता तथा लज्जा नष्ट हो गई। तब सारी प्रजा मोह के वश हो गई और अपने पूर्व भावों को भूलकर एक-दूसरे को सता करके अपना ऐश्वर्य बढ़ाने तथा देवता और ब्राह्मणों का अपमान करके विषय-भोग करने लगी। उस समय केवल धिग्दण्ड देकर प्रजा का शासन करना कठिन हो गया।

प्रजा के उद्दण्ड हो जाने पर देवताओं ने बहुरूपधारी महादेव के पास जाकर यह सब हाल कहा। भगवान् शूलपाणि ने प्रजा का इस प्रकार का आचरण सुनकर कुपित हो प्रजा के शरीर में स्थित काम-क्रोध आदि को अपने तेज से नष्ट करके फिर सर्वप्रधान महामोह को नष्ट कर दिया। महामोह के नष्ट होने पर मनुष्य पहले की तरह सद्भाव-सम्पन्न हो गये; वेद और अन्यान्य धर्म-

शास्त्र के अनुसार चलने लगे। इसके बाद सप्त ऋषियों ने इन्द्र को देवताओं का राजा बनाकर स्वयं मनुष्यों का शासन करना आरम्भ किया। सप्त ऋषि कुछ दिनों तक शासन करते रहे; किन्तु उनके अस्त्रहीन होने के कारण विपृथु और अन्य कुछ क्षत्रिय पृथिवी के किसी-किसी प्रदेश पर अधिकार करके राजा बन गये। २०

जिस समय महादेव ने प्रजा का काम-क्रोध आदि नष्ट किया था उस समय किसी-किसी कुलीन वृद्ध पुरुष के हृदय से वह आसुर भाव नहीं निकला था। उन्हीं लोगों के संसर्ग से अनेक महापराक्रमी राजाओं ने फिर आसुर काम करना आरम्भ किया। इस समय मूर्ख लोग उन्हीं के कामों का अनुसरण कर रहे हैं और दूसरों को भी उसी तरह के कामों में लगाते हैं। अतएव मैं शास्त्र के अनुसार तुमसे कहता हूँ कि हिंसात्मक कामों को छोड़कर आत्मज्ञान का अवलम्बन करना मनुष्यों का कर्तव्य है। धर्म करने के लिए नीति का त्याग करके पाप-कर्मों द्वारा धन पैदा करने से कल्याण नहीं हो सकता। अतएव विवेकी पुरुष कभी ऐसा काम न करे। अब तुम जितेन्द्रिय धर्मात्मा होकर अपने मित्रों का हित और पुत्र, सेवक तथा प्रजा का पालन करो। हित और अहित करने से ही मित्रता और शत्रुता पैदा होती है। जो मनुष्य हित और अहित (द्वन्द्व) को समान नहीं समझता उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है। गुणों में अनुरक्त होना और दोषों का त्याग करना तुम्हारा कर्तव्य है। बिलकुल नासमझ मनुष्य अपने में थोड़ा सा गुण होने पर प्रसन्न होता है। धर्म और अधर्म हमेशा मनुष्यों में घूमते रहते हैं। धर्मात्मा, विद्वान्, याचक और अयाचक, सबको हिंसा छोड़कर सब प्राणियों को समान भाव से देखना चाहिए। जब मनुष्य का मन सब वासनाओं को छोड़कर सत्य का पालन करने लगता है तभी उसका कल्याण हो सकता है। ३१

दो सौ छियानवे अध्याय

पराशर का जनक से तपस्या की प्रशंसा करना

पराशर ने कहा—महाराज, यह मैंने गृहस्थों के धर्म का वर्णन किया। अब तपस्या के नियम बतलाता हूँ। प्रायः सभी गृहस्थों में राजस-तामस गुणों के प्रभाव से ममता हो जाती है। मनुष्यों के स्त्री, पुत्र, सेवक, घर, गायें, खेत और धन होता है तो फिर वे किसी पदार्थ को अनित्य नहीं समझते। लोग इन सब चीज़ों को देखते-देखते राग-द्वेष में फँस जाते और मोह के वश हो जाते हैं। तब वे लोग भोगी मनुष्यों को ही कृतार्थ समझते और स्त्री-सम्भोग को ही सबसे बढ़कर सुख मानते हैं। वे लोभ के वश में हो जाते हैं और दास-दासियों की संख्या बढ़ाते हुए उनको और कुटुम्ब को सन्तुष्ट करने के लिए जान-बूझकर असत् उपायों से धन पैदा करते हैं। वे लोग अबोध बालक पर स्नेह करते और उसके मर जाने पर बहुत दुखी होते हैं।

गृहस्थ लोग समाज में सम्मान पाकर स्त्री-पुत्र आदि के सुख में मग्न रहते हैं; किन्तु एक दिन यही सुख उन्हें ले डूबते हैं। जो ज्ञानवान् ब्रह्मवादी गृहस्थ शुभ कर्मों के करने की इच्छा करके
१० निन्दित कामों को छोड़ देते हैं वही बहुत दिनों तक सुख पा सकते हैं। विपत्ति पड़ने और स्त्री, पुत्र तथा धन आदि के नष्ट होने पर ज्ञानवान् मनुष्यों के हृदय में जब वैराग्य उत्पन्न होता है तब उन्हें आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञान होने पर वे लोग शास्त्र पढ़ते हैं। शास्त्र पढ़ने से उनमें तपस्या करने की प्रवृत्ति होती है। किन्तु स्त्री-पुत्र आदि के सुख को अन्त मे क्लेशकर समझकर तपस्या करनेवाले मनुष्य गृहस्थों में बहुत दुर्लभ हैं। तपस्या सर्व-साधारण का धर्म है। शूद्र आदि को भी तपस्या (भक्ति) करने का अधिकार है। तपस्या के प्रभाव से जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्ग को जाता है। ब्रह्माजी ने भी अनेक नियमों का पालन करके तपस्या की थी और उसी के प्रभाव से प्रजा की सृष्टि की है। आदित्य, वसु, रुद्र, अग्नि, वायु, विश्वेदेवा, साध्य, पितर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध और अश्विनीकुमार आदि देवता भी तपस्या के प्रभाव से सिद्ध हुए हैं। ब्रह्माजी ने पहले जिन ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था वे अपनी-अपनी तपस्या के प्रभाव से पृथिवी का पालन करके अब स्वर्गलोक में विचरते हैं। इस लोक में जिन राजाओं और कुलीन वंश में उत्पन्न धनवान् गृहस्थों को रेशमी वस्त्र, उत्तम आभूषण, वाहन, आसन, परम रूपवती स्त्रियाँ, महल, उत्तम शय्या, अच्छे-अच्छे भोजन और अन्यान्य मनमानी वस्तुओं का भोग करते देखा जाता है वह सब उनके
२२ पूर्व-जन्म की तपस्या का फल है। तपस्या के प्रभाव से तीनों लोकों की कोई वस्तु असाध्य नहीं है। तपस्या के प्रभाव से आत्मज्ञानहीन मनुष्यों में भी वैराग्य उत्पन्न होता है। मनुष्य सुखी हो या दुखी, अपनी बुद्धि के बल से शास्त्र को देखकर, लोभ को छोड़ दे। लोभ ही सब दुःखों का कारण है। लोभ से इन्द्रियों का वेग होता और इन्द्रियों के वेग से, अभ्यास-हीन विद्या के समान, ज्ञान का नाश हो जाता है। ज्ञान का नाश होने पर विवेक नहीं रह जाता। जो हो, विपत्ति पड़ने पर मनुष्य घोर तपस्या करे। संसार में जो वस्तु प्रिय है वह सुख देनेवाली और जो अप्रिय है वही दुःख का कारण समझी जाती है। तपस्या करने से सुख और तपस्या न करने से दुःख मिलता है। निष्पाप होकर तपस्या करने से सब विषयों का सुख मिलता, प्रसिद्धि होती और कल्याण होता है। जो मनुष्य फल की इच्छा से सुमार्ग छोड़ देता है उसका हमेशा अमङ्गल और सब जगह अनादर होता है। उसे विषय-भोग के कारण अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं। तपस्या और दान आदि धर्म करने योग्य अनेक कामों के उपस्थित रहने पर भी मनुष्य
३० अनुचित कामों द्वारा पाप करके नरक को जाते हैं। सुखी हो या दुखी, किसी दशा में जो अपने धर्म से विचलित नहीं होता वही सच्चा ज्ञानी है। देखने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने का सुख बहुत थोड़ी देर मिलता है। इस सुख का नाश होते ही दुःख घेर लेता है। मोक्ष का सुख स्थायी है, किन्तु मूर्ख लोग उस सुख की कभी प्रशंसा नहीं करते। विवेकी मनुष्य

ही मोक्ष प्राप्त करने के लिए शम-दम आदि गुणों का अवलम्बन करता है। उसके धर्म, अर्थ और काम की कभी हानि नहीं होती। प्रारब्ध कर्म के फल को भोगे और उद्योग के साथ अपने धर्म का पालन करता रहे। कुलीन शास्त्रज्ञ पूज्य मनुष्यों को विषय-भोग के लिए कभी यत्न न करना चाहिए। यज्ञ आदि सब कर्म नश्वर हैं, अतएव आत्मतत्त्व का निर्णय करना ही शास्त्र के जानकार मनुष्यों का कर्तव्य है। कर्मनिष्ठ गृहस्थों को अपने धर्म के अनुसार यज्ञ की सामग्री जुटाकर यज्ञ आदि करना चाहिए। जैसे छोटी-बड़ी सब नदियाँ समुद्र में गिरती हैं वैसे ही ब्रह्मचारी आदि सब आश्रमी गृहस्थों के आश्रित रहते हैं। ३९

दो सौ सत्तानवे अध्याय

पराशर का जनक से अनेक धर्मों का वर्णन करना

जनक ने पूछा—भगवन, जब सभी मनुष्य ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं और पिता-पुत्र में कोई विशेषता नहीं है तब मनुष्य चार वर्णों में किस प्रकार विभक्त हो गये?

पराशर ने कहा—राजन्! पिता ही पुत्र रूप से उत्पन्न होता है; किन्तु तपस्या की कमी होने से मनुष्य क्रमशः नीच जातियों में जन्म पाने लगता है। पिता-माता के शुभ कर्मों के प्रभाव से पुत्र धर्मात्मा और उन्हीं के पापों से पुत्र अधर्मी होता है। धर्म के जानकारों ने कहा है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और पैरों से शूद्र जाति उत्पन्न हुई है। जो इन चार वर्णों से अलग है वह सङ्करवर्ण है। अम्बष्ठ, उग्र, वैदेहक, श्वपाक, पुल्कस, स्तेन, निषाद, सूत, मागध, अयोग, करण, व्रात्य और चाण्डाल, ये जातियाँ ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के संयोग से पैदा हुई हैं।

जनक ने कहा—भगवन्! मनुष्य ब्रह्मा से उत्पन्न होकर किस प्रकार अनेक गोत्रों में विभक्त हो गये और बहुत से मुनि, नीच जाति की स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न होने पर भी, किस प्रकार ब्राह्मण हो गये हैं? ११

पराशर ने कहा—महाराज, नीच जाति मे जन्म लेने से मुनि लोग नीच नहीं हो सकते। उनकी तपस्या से उनका आत्मा श्रेष्ठ हो जाता है। पिता ने चाहे जिस वर्ण में उत्पन्न करके उन्हें तपोबल से ऋषि बना दिया है। मेरे पितामह वसिष्ठ, विभाण्डक-पुत्र ऋष्यशृङ्ग, वेद, तार्क्ष्य, कृप, काक्षीवान्, कमठ, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतङ्ग, द्रुमद और मात्स्य आदि महर्षि नीच जाति में जन्म लेने पर भी तपोबल से ऋषि होकर विद्वानों में श्रेष्ठ और जितेन्द्रिय हुए हैं। पहले अङ्गिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु, इन्हीं चार महर्षियों से चार गोत्र उत्पन्न हुए हैं। उसके बाद दूसरे गोत्र कर्मों द्वारा बन गये हैं। लोग आज भी उन्हीं गोत्रों का व्यवहार करते हैं।

जनक ने कहा—भगवन्! आप सब वर्णों का विशेष और साधारण धर्म जानते हैं। कृपा कर वह सब मुझे बतलाइए।

पराशर ने कहा—महाराज ! ब्राह्मणों का दान लेना, यज्ञ कराना और विद्या पढ़ाना; क्षत्रियों का प्रजा की रक्षा करना; वैश्यों का खेती, पशु-पालन और वाणिज्य करना और शूद्रों का इन तीन वर्णों की सेवा करना ही प्रधान धर्म है। मैंने चारों वर्णों का यह विशेष धर्म तुमसे कहा; अब विस्तार से साधारण धर्म सुनो। कोमलता, अहिंसा, सावधानी, कुटुम्बियों को यथोचित अंश देना, श्राद्ध करना, अतिथि-सेवा करना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, अपनी स्त्री से सन्तुष्ट रहना, ईर्ष्या न करना, पवित्रता, आत्मज्ञान और सहनशीलता, ये सब वर्णों के साधारण धर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। पूर्वोक्त विशेष धर्मों में द्विजातियों का अधिकार है। निषिद्ध कर्म करने से ये लोग पतित हो जाते हैं। धार्मिक लोग अपने धर्म के अनुसार चलकर और सज्जनों का आश्रय करके उन्नति करते हैं। न तो शूद्रों का संस्कार ही होता है और न वे निषिद्ध कर्म करने से पतित ही होते हैं। वे अहिंसा आदि साधारण धर्म का पालन तो कर सकते हैं; किन्तु ब्रह्मचर्य आदि धर्मों में उनका अधिकार नहीं है। विद्वान् ब्राह्मण अनृशंसता आदि धर्मों से युक्त शूद्र को ब्राह्मण के समान कहते हैं और मैं इस प्रकार के शूद्रों को क्षत्रिय के तुल्य मानता हूँ। शूद्र लोग भी अपनी उन्नति करने की इच्छा से उत्तम आचरण करते हुए, मन्त्रों का उच्चारण किये बिना, धर्म-कर्म कर सकते हैं। इतर जाति के लोग भी जिस प्रकार के आचरण करते हैं उन्हीं के अनुसार इस लोक और परलोक में सुख पाते हैं।

जनक ने कहा—महर्षि, कर्म करने से मनुष्य की हीन दशा होती है अथवा नीच जाति में जन्म लेने से ? मेरे इस सन्देह को दूर कर दीजिए।

पराशर ने कहा—राजन् ! कर्म और जन्म, इन दोनों के द्वारा मनुष्य की हीन दशा होती है; किन्तु हीन होने का प्रधान कारण कर्म ही है। जो मनुष्य नीच जाति में पैदा होकर भी नीच कर्म नहीं करता वह नीच नहीं समझा जाता और जो मनुष्य श्रेष्ठ वर्ण में उत्पन्न होकर निषिद्ध कर्म करता है वही हीन दशा को प्राप्त होता है।

जनक ने पूछा—महर्षि, वे कौन से धर्म-कर्म हैं जिनका पालन करने से दूसरे प्राणियों को कुछ क्लेश नहीं पहुँचता ?

पराशर ने कहा—महाराज, जिन कर्मों के द्वारा प्राणियों को सताये बिना मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है उनको सुनो। शोक और मोह को छोड़कर संन्यास-धर्म का पालन करने से मोक्षपद का मार्ग मिल जाता है। श्रद्धावान्, विनीत, जितेन्द्रिय ज्ञानी पुरुष काम्य कर्मों का त्याग करके सनातन ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। सारांश यह कि धर्म के अनुसार काम करने और हमेशा सत्य बोलने से सभी वर्ण के मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं।

दो सौ अट्ठानबे अध्याय

परागर का जनक से अनेक धर्म का वर्णन करना

पराशर ने कहा—महाराज! जो मनुष्य भक्तिहीन है उसे माता, पिता, गुरु, गुरुपत्नी और मित्रों की सेवा करने का कोई फल नहीं मिलता और जो उन पर श्रद्धा रखता है, प्रिय बोलता है, उनका हित करता है और उनका आज्ञाकारी रहता है वही उनकी सेवा का फल पा सकता है। पिता पुत्र का परम देवता और माता से भी श्रेष्ठ है। जितेन्द्रिय मनुष्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझते और उसके द्वारा ही परमपद को प्राप्त होते हैं। जो राजा युद्धभूमि में पतङ्ग की तरह बाणरूपी अग्नि में भस्म होकर प्राण त्याग देता है वह देव-दुर्लभ लोकों में जाकर स्वर्ग का सुख भोगता है। थके हुए, डरे हुए, शस्त्र आदि से हीन, रोते हुए, युद्ध से भागते हुए, युद्ध से विरत, रोगी, शरणागत, बालक और बूढ़े मनुष्य पर प्रहार करना उचित नहीं। समरभूमि में शस्त्र आदि से सुसज्जित, युद्ध के लिए उद्यत, सामने आये हुए क्षत्रिय पर आक्रमण करना राजाओं का कर्तव्य है। अपनी बराबरी के या अपने से श्रेष्ठ मनुष्य के हाथ मारा जाना प्रशंसनीय है। डरपोक नीच मनुष्य के हाथ से प्राण त्यागना निन्दनीय है। पापी के हाथ से मारे जाने पर निस्सन्देह नरक में जाना पड़ता है। जिस मनुष्य का काल आ गया है उसकी रक्षा कोई नहीं कर सकता और जिसकी ज़िन्दगी है उसे कोई मार नहीं सकता। माता-पिता आदि गुरुजन यदि दूसरों की हिंसा करके पु की रक्षा करने को उद्यत हों तो पुत्र, अपने जीवन के लिए, दूसरों की हिंसा करने से उन्हें रोके। मोक्ष चाहनेवाले गृहस्थों को किसी तीर्थ पर प्राण त्यागना चाहिए। आयु का अन्त होने पर १०
कोई रोगी होकर मरता है और कोई अकस्मात् मर जाता है। मरने के बाद जीव फिर दूसरे शरीर में चला जाता है। जैसे मनुष्य एक घर छोड़कर दूसरे घर को जाता है वैसे ही जीव, अपने कर्मों के अनुसार, एक शरीर छोड़ता और दूसरे में जाता है; किन्तु 'योग' का अभ्यास करने से जीव मुक्त हो जाता है। आत्मज्ञानी लोग शरीर को शिराओं, स्नायुओं और हड्डियों से परिपूर्ण; विकृत पदार्थों से भरा हुआ और अपवित्र; पञ्चभूत, इन्द्रियों और विषयों का स्थान तथा चमड़े से ढका हुआ कहते हैं। जीव जब शरीर को त्याग देता है तब वह शिथिल और अचेतन होकर गिर पड़ता है। जीव अपने कर्मों के अनुसार ऊँची या नीची किसी जाति में फिर जन्म लेता है। शरीर छोड़ने के बाद जीवात्मा कुछ दिनों तक सूक्ष्म शरीर में रहकर, बादलों की तरह, आकाश में घूमता रहता है; उसके बाद फिर दूसरे शरीर में जन्म पाता है। शरीर की अपेक्षा इन्द्रियाँ, इन्द्रियों की अपेक्षा मन और मन की अपेक्षा आत्मा श्रेष्ठ है। आत्मा स्थावर-जङ्गम सबके शरीर में समान भाव से रहने पर भी, उपाधि-भेद से, न्यूनाधिक देख पड़ता है। स्थावर जीवों में जङ्गम, जङ्गम प्राणियों में मनुष्य, मनुष्यों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में ज्ञानी, ज्ञानियों में आत्म-
ानी और आत्मज्ञानियों में मान-अपमान को समान समझनेवाला पुरुष श्रेष्ठ है। २१

संसार में अपने-अपने गुणों के अनुसार कर्म करके, शरीर को त्यागकर, जो फिर जन्म लेते हैं उन्हें उस शरीर को भी त्यागना पड़ता है। जो महात्मा किसी को दुःख नहीं देता और शुभ कर्म करता हुआ पाप को त्याग देता है तथा उत्तरायण में, पवित्र नक्षत्र और शुभ मुहूर्त में प्राण त्यागता है वह पुण्यवान् है। विष खाकर, फाँसी लगाकर या आग मे जलकर जो मरता है और जिसे चोर या हिंसक जीव मार डालते हैं उसकी मृत्यु अपमृत्यु कहलाती है। ऐसी मृत्यु निन्दनीय है। पुण्यवान् मनुष्य भारी दुःख उठाने पर भी इस तरह की मौत से मरना नहीं चाहता। जो मनुष्य केवल पुण्य करता है उसके प्राण ऊर्ध्वभाग से, जो पुण्य और पाप दोनों करता है उसके प्राण मध्यभाग से और जो केवल पाप ही किया करता है उसके प्राण अधोभाग से निकलते हैं।

अज्ञान के वश होकर मनुष्य बुरे काम करता है, अतएव अज्ञान के समान शत्रु कोई नहीं है। जो मनुष्य वेद-धर्म के अनुसार बड़े-बूढ़ों की सेवा करता है वही प्रज्ञारूपी बाण से इस शत्रु का नाश करके मुक्ति पा सकता है। ज्ञानी मनुष्य पहले ब्रह्मचारी होकर वेद का अध्ययन करे, उसके बाद गृहस्थाश्रम में जाकर पञ्चयज्ञ करे और अन्त में पुत्र को गृहस्थी सौंपकर मोक्ष
३० प्राप्त करने के लिए वन को चला जावे। आत्मा को सताना मनुष्य को उचित नहीं। अन्य योनि में जन्म लेने की अपेक्षा मनुष्य-योनि में चाण्डाल का जन्म मिलना भी अच्छा है। वही जाति श्रेष्ठ है जिसमें उत्पन्न होकर आत्मा शुभ कर्मों द्वारा संसार से मुक्त हो सके। मनुष्य-योनि से भ्रष्ट न होने का उपाय करता हुआ मनुष्य वेद के अनुसार धर्म करे। जो व्यक्ति अति दुर्लभ मनुष्य-देह पाकर, इच्छाओं के वश होकर, मनुष्यों से द्वेष और धर्म में लापरवाही करता है उसकी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। जो महात्मा पुरुष वैराग्य का अवलम्बन करके—विषयों को त्यागकर—शान्त स्वभाव और प्रसन्नता से सब प्राणियों को देखता है, उन्हें अन्न देता है, उनसे मीठी बातें करता है, उनके दुःख में दुखी और उनके सुख में सुखी होता है उसे परलोक में कोई दुःख नहीं उठाना पड़ता। सरस्वती, नैमिष और पुष्कर आदि तीर्थों में जाकर मन को शान्त करना और वैराग्य का अवलम्बन करके तपस्या द्वारा शरीर को पवित्र करना तथा दान करना मनुष्यों का कर्तव्य है। जो मनुष्य अपने घर में मरे उसके कुटुम्बवालों को वह मृत शरीर रथी पर ले जाकर श्मशान में वेदोक्त विधि के अनुसार उसका दाह करना चाहिए। मनुष्य अपने ही हित के लिए यज्ञ, पौष्टिक कर्म, यजन (यज्ञ करना), याजन (यज्ञ कराना), दान और पितरों का श्राद्ध आदि शुभ कर्म करते हैं। पुण्यवान् मनुष्यों के ही कल्याण के लिए धर्म-शास्त्र, वेद और शिक्षा-कल्प आदि वेद के अङ्ग बनाये गये हैं।

भीष्म ने कहा—राजन्! प्राचीन समय मे महात्मा पराशर ने विदेहराज जनक को,
४१ कल्याण के लिए, यह उपदेश दिया था।

दो सौ निन्नानबे अध्याय

परागर का जनक को धर्मोपदेश

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इसके बाद महाराज जनक ने सब धर्मों के जानकार पराशरजी से फिर पूछा—महर्षि, संसार में कौन सा कर्म कल्याण करनेवाला है और कौन सी गति श्रेष्ठ है ? किस कर्म का नाश नहीं होता और किस स्थान को जाने पर फिर लौटना नहीं पड़ता ?

पराशर ने कहा—राजन् ! सांसारिक विषयों का त्याग करना ही कल्याण करनेवाला कर्म है, ज्ञान ही श्रेष्ठ गति है, सत्पात्र को दिये हुए दान और तपस्या का विनाश नहीं होता तथा पाप का नाश करके अभयदानपूर्वक धर्म का पालन करने से परम स्थान प्राप्त होता है; उसी स्थान को जाने पर फिर लौटना नहीं पड़ता। जो मनुष्य सत्पात्र को हज़ारों गायें और सैकड़ों घोड़े दान करता है तथा सब प्राणियों को अभय कर देता है उसे किसी से कोई डर नहीं रहता। विवेकी मनुष्य विषयों का उपयोग करने पर भी उनमें नहीं फँसता; किन्तु अविवेकी मनुष्य, विषयों की प्राप्ति न होते हुए भी, उनके लिए हाय-हाय किया करता है। कमल के पत्ते पर पड़े हुए पानी के समान, विवेकी मनुष्य को अधर्म कभी छू तक नहीं जाता; वह लकड़ी में चिपकी हुई लाख की तरह अविवेकी मनुष्य को अपना आश्रय बना लेता है। समय आने पर मनुष्य को अधर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। आत्मज्ञानियों को कर्म का फल नहीं भोगना पड़ता। जो मनुष्य मोह के वश होकर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की गति को वश में नहीं रख सकता और सुख के समय बहुत प्रसन्न होता तथा दुःख के समय घबरा जाता है उसे कष्ट भोगने पड़ते हैं। जो मनुष्य विषयों से बचा रहता और राग-द्वेष को त्याग देता है उसे विषयों में रहने पर भी उनका पाप नहीं लगता। नदी के पुल के समान धर्म की मर्यादा बाँध देने से, अर्थात् वेद की १०
आज्ञा के अनुसार चलने से, मनुष्यों को कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता, बल्कि उनके धर्म की वृद्धि होती है। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य के तेज को खींचती है वैसे ही चित्त को एकाग्र करने से ब्रह्मभाव प्राप्त होता है। जैसे सुगन्धित फूलों में बार-बार बसाने से तिलों में सुगन्ध बढ़ जाती है वैसे ही सज्जनों की सङ्गति करने से शुद्धचित्त मनुष्यों में सत्त्वगुण की अधिकता हो जाती है। जो मनुष्य सम्पत्ति, पद, सवारी और स्त्री आदि का त्याग करके सत्त्वगुण का अवलम्बन करता है उसमें विषय-वासना नाम लेने को भी नहीं रह जाती और जिसकी बुद्धि विषयों में लगी रहती है वह आत्म-कल्याण की ओर मन नहीं लगा सकता। जैसे स्त्री-पुत्र-पशु आदि ऊपर से देखने पर तो बड़े उपकारी जान पड़ते हैं परन्तु वास्तव में हैं केले के पेड़ की तरह सार-हीन वैसे ही इन्द्रियाँ भी शरीर के लिए सुखदायक जान पड़ती हैं परन्तु अन्त में इन्हीं की बदौलत मनुष्य ध्येय से भटक जाता है। धर्म करने के लिए कोई समय निश्चित नहीं है। मौत समय की प्रतीक्षा नहीं करती और मरना तो एक दिन सभी को है, अतएव सदा धर्म करते रहना चाहिए।

अभ्यास होने से जैसे अन्धा मनुष्य राह में चल सकता है वैसे ही ज्ञानी मनुष्य योग का अभ्यास करके अगोचर ज्ञान-मार्ग पर चला जाता है। जन्म-मृत्यु के फन्दे में फँसा हुआ जो मनुष्य मोक्ष धर्म से अनभिज्ञ होता है वह जन्म-मृत्यु के वश में रहकर चक्र के समान घूमता रहता है। विवेकी मनुष्य दोनों लोकों में सुख से रहता है। जो अग्निहोत्र आदि अनेक यज्ञ करता है उसे दुःख उठाने पड़ते हैं, और जो त्याग-मार्ग का अवलम्बन करता है उसके सुख की सीमा नहीं रहती। अग्निहोत्र आदि से मोक्ष-मार्ग में सहायता नहीं मिलती; मोक्ष तो त्याग-मार्ग पर चलने से ही मिलता है। जैसे मृणाल में लगा हुआ कीचड़ जल्दी छूट जाता है वैसे ही तत्त्व-ज्ञान होने पर लिङ्ग-शरीर के साथ आत्मा का कोई सम्पर्क नहीं रह जाता। मन आत्मा को योग में लगाता है। आत्मा जब योग में लग जाता है तब योगी मन को आत्मा में लीन कर देता है। इस प्रकार योग का अभ्यास करने से सिद्धि मिल जाने पर उपाधिहीन आत्मा का साक्षात्कार होता है। जो मनुष्य योग में लगकर इन्द्रियों के तृप्त करने और शरीर की रक्षा को ही अपना कर्तव्य समझता है वह निस्सन्देह योग से भ्रष्ट हो जाता है। योगभ्रष्ट मनुष्य अपने कर्मों के फल से अधोगति, तिर्यक्‌योनि और स्वर्ग पाता है। तपस्या द्वारा परिपक्व हुए शरीर में स्थित होकर जीवात्मा, पके हुए मिट्टी के बर्तन में रक्खे हुए जल आदि द्रव पदार्थ के समान, बहुत दिनों तक रह सकनेवाले अपने शुभ कर्मों द्वारा ब्रह्मलोक तक का भोग कर सकता है। जो मनुष्य सांसारिक विषयों में आसक्त रहता है वह परलोक में सुख नहीं पा सकता; वहाँ तो उसी को सुख मिलता है जो सांसारिक विषयों के सुख में नहीं फँसता। जैसे जन्म का अन्धा मनुष्य राह नहीं देखता वैसे ही इन्द्रियों के अधीन रहनेवाला अविवेकी मनुष्य, अज्ञान-रूपी अन्धकार से ढका रहकर, परमार्थ को नहीं देख सकता। जैसे व्यापारी समुद्र-यात्रा करके अपने मूलधन के अनुसार धन पैदा करता है और जैसे साँप वायु का आहार करता है वैसे ही मौत, संसार में बुढ़ापा आदि रूप से घूमती हुई, प्राणियों को खाती रहती है। मनुष्य को इस जन्म में पूर्व-जन्म के कर्मों का फल मिलता है। मनुष्य सोते-जागते, उठते-बैठते और दुनियादारी करते समय शुभ-अशुभ जो कर्म करता है उन कर्मों का फल उसे अवश्य मिलता है। समुद्र के पार पहुँच जाने पर फिर जैसे नाव की आवश्यकता नहीं रहती वैसे ही जो मनुष्य तत्त्वज्ञान के प्रभाव से संसार से मुक्त होकर फिर जन्म लेने की इच्छा नहीं करता उसका बेड़ा पार है। जैसे मल्लाह अपने अभिप्राय के अनुसार रस्सी लेकर डूबती हुई नाव को निकालता है वैसे ही मन, सत्त्वगुण का अवलम्बन करके, संसार में डूबते हुए देहाभिमानी जीव का उद्धार करता है। जैसे सब नदियाँ समुद्र में मिलती हैं वैसे ही योग के समय मन मूल प्रकृति में संलग्न हो जाता है। अज्ञान से घिरे रहने और स्नेह-पाश में बँधे रहने से मनुष्य, जल में स्थित बालू की दीवार की तरह, नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य शरीर को घर और पवित्रता को ही तीर्थ समझ-

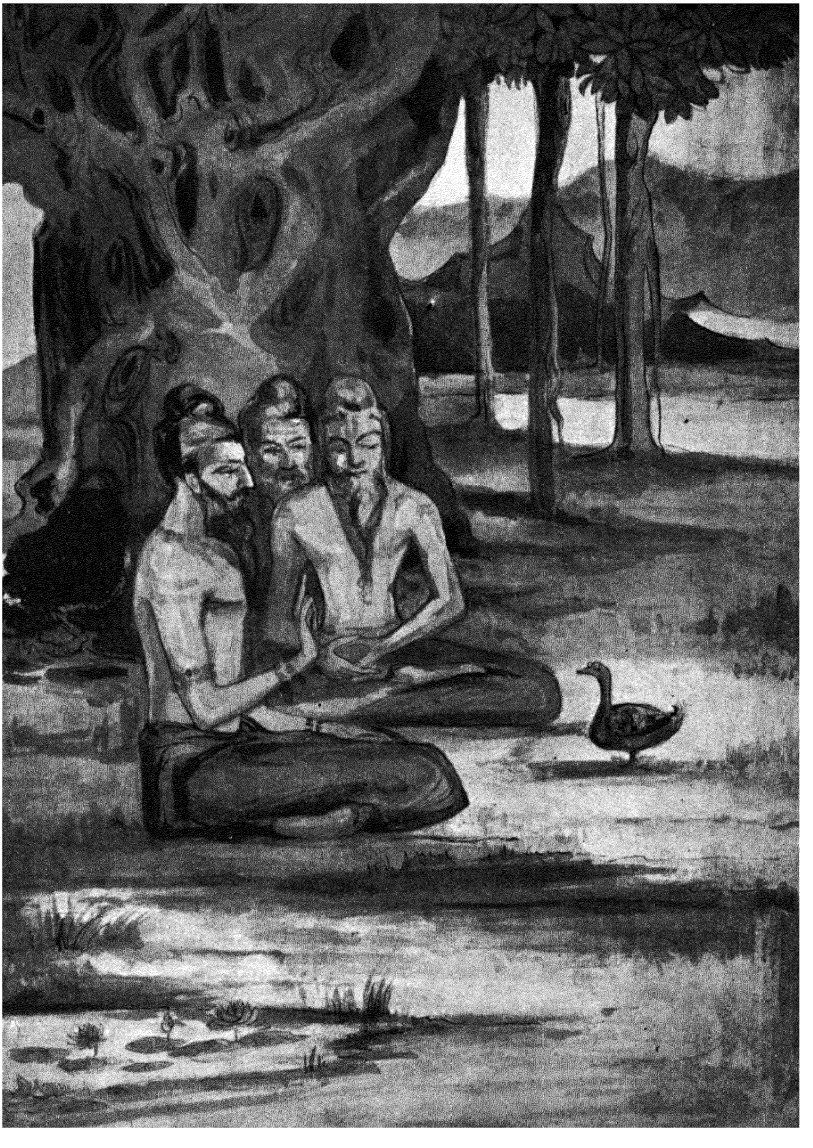

हंस को देखकर साध्यगण बोले—हम लोग.....आपसे मोक्ष धर्म और अन्य विषय पूछेंगे।—पृष्ठ ३८०५

कर बुद्धिपूर्वक काम करता है वह दोनों लोकों में सुख पाता है। अग्निहोत्र आदि कर्म बेड़े को पार नहीं लगाते। इन कर्मों से केवल लौकिक सुख मिल सकता है, किन्तु त्याग-मार्ग पर चलने से आत्मा को सुख मिलता है। मनुष्य जब तक अपने कुटुम्बियों का भरण-पोषण कर सकता है तभी तक उसके मित्र, जातिवाले, पुत्र, स्त्री और सेवक आदि उसके अनुगत रहते हैं। अतएव योग का मार्ग छोड़कर परिवार का पालन करने की चिन्ता करना व्यर्थ है। पिता-माता से परलोक का कोई काम नहीं निकलता। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही फल भोगता है। केवल दान ही स्वर्ग-मार्ग का पाथेय है। पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और मित्र आदि सब सोने की रेखा के समान देखने में तो सुन्दर हैं; किन्तु उनके द्वारा परलोक में सुख मिलने की कोई सम्भावना नहीं। पूर्वजन्म के शुभ-अशुभ कर्म आत्मा के साथ रहते हैं। आत्मा कर्मों ४०
के अनुसार फल भोगने के लिए बुद्धि को अनेक कामों में लगाता है। जो मनुष्य सहायवान् और उद्योगी होकर काम करता है उसका कोई काम निष्फल नहीं होता। जैसे किरणें सूर्य से कभी अलग नहीं होतीं वैसे ही सफलता एकाग्रचित्त उद्योगी धैर्यवानों को नहीं त्यागती। आस्तिकता, उद्योग, गर्व न करना, उपाय और बुद्धि, इनके द्वारा जो काम किये जाते हैं वे कभी नष्ट नहीं होते। गर्भ में जाते ही अपने पूर्वजन्म के शुभ-अशुभ कर्म प्राणी के साथ हो लेते हैं। जैसे हवा लकड़ी के बुरादे को उड़ा ले जाती है वैसे ही अनिवार्य मृत्यु, जीवन नष्ट करनेवाले काल की सहायता से, प्राणियों को दूसरे लोक को ले जाती है। मनुष्यों को पूर्व-जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा रूप, ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्र आदि प्राप्त होते हैं।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, धर्म के जानकारों में श्रेष्ठ राजा जनक महात्मा पराशर के इस उपदेश को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। ४७

तीन सौ अध्याय

मोक्ष के विषय में हंस-रूपी ब्रह्मा और साध्यगण की बातचीत

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! विद्वान् लोग सत्य, शम-दम, क्षमा और बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। इस विषय में आपकी क्या राय है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में साध्यगण और हंस की जो बातचीत हुई थी उसको सुनो। अनादि अनन्त भगवान् प्रजापति एक बार सुवर्णमय हंस का रूप धारण करके घूमते-घामते साध्यगण के पास पहुँचे। हंस को देखकर साध्यगण बोले—पक्षिराज! हम लोग साध्यदेव हैं, आपसे मोक्षधर्म और अन्य विषय पूछेंगे। आप मोक्षधर्म के अभिज्ञ, पण्डित, धैर्यवान् और बोलने में चतुर हैं, अतएव बतलाइए कि इस लोक में कौन सा काम सबसे श्रेष्ठ है, कौन सा काम आपको पसन्द है और किस काम के करने से सब बन्धनों से छुटकारा मिलता है। हम लोग वही काम करेंगे।

तब हंसरूपी प्रजापति ने साध्यगण से कहा—देवताओ ! मैंने सुना है कि तपस्या करना, इन्द्रियों समेत मन को जीतना तथा सत्य बोलना आवश्यक है। राग आदि हृदय की ग्रन्थियों को छुड़ाकर प्रिय विषयों में हर्ष और अप्रिय विषयों में विषाद करना छोड़ दे। न तो लगती हुई बात कहे, न कड़ी बात कहे। नीच मनुष्यों से दान न ले। ऐसी बातें न कहे जिनसे पाप लगता हो। मुँह से कठोर बात निकलने पर उसके कारण दिन-रात सन्ताप होता है, अतएव बुद्धिमान् मनुष्य कठोर वचन न बोले। यदि कोई मनुष्य पण्डितों को कठोर वचन कहे तो शान्ति के साथ सह लेना चाहिए; क्योंकि क्रुद्ध किये जाने पर भी जो क्रोध को रोककर प्रसन्न रह सके वह क्रोध करानेवाले के पुण्य का अधिकारी होता है। कोई निन्दा करे अथवा सतावे तो भी उसे कुछ उत्तर न देकर चुपचाप सह ले। सज्जन लोग क्षमा, सत्य, सरलता और दया को श्रेष्ठ बतलाते हैं। वेद का फल सत्य, सत्य का फल इन्द्रियों का संयम और संयम का फल मोक्ष है। जो मनुष्य वाणी, मन, क्रोध, तृष्णा, पेट और इन्द्रिय के वेग को रोक सकता है उसी को मैं ब्रह्मनिष्ठ और ध्यानी कहता हूँ। क्रोधी की अपेक्षा क्रोधहीन, क्षमा न करनेवाले की अपेक्षा क्षमावान्, अमानुष की अपेक्षा मानुष और अज्ञानी की अपेक्षा ज्ञानी मनुष्य श्रेष्ठ हैं। किसी के निन्दा करने पर जो उसकी निन्दा न करके क्रोध को रोक लेता है वह निन्दक का सब पुण्य ले लेता है और निन्दा करनेवाला मनुष्य अपनी करतूत के कारण हमेशा जलता-भुनता रहता है। जो मनुष्य निन्दा के बदले निन्दा और प्रशंसा के बदले प्रशंसा नहीं करता तथा किसी के प्रहार करने पर प्रहार करनेवाले का बुरा नहीं चेतता उसकी प्रशंसा देवता भी करते हैं। बराबरी-वाला या नीच आदमी यदि मारे-पीटे या अनादर करे तो उसे, अपनी भलमनसाहत के लिए, सह ले। मेरी सब इच्छाएँ पूरी हो गई हैं तो भी मैं सज्जनों की सेवा करता रहता हूँ। मुझे कर्म करने की चाह और क्रोध लेशमात्र भी नहीं है। धन मिलने पर भी मैं धर्म को नहीं छोड़ता और धन के लिए कभी किसी से प्रार्थना नहीं करता। किसी के शाप देने पर मैं उसे शाप नहीं देता। इन्द्रियों के संयम को ही पुण्य का द्वार समझता हूँ। मनुष्य सब प्राणियों से श्रेष्ठ है। धैर्यवान् मनुष्य बादल से निकले हुए चन्द्रमा के समान पाप से छूटकर धैर्य गुण के प्रभाव से सिद्ध हो सकता है। जो सबका पूज्य है, जो ब्रह्माण्ड-रूपी मण्डप का स्तम्भ-स्वरूप है, उस परमात्मा के प्रति श्रद्धा रखनेवाला पुरुष संयम के प्रभाव से देवलोक को जाता है। ईर्ष्या करने-वाला मनुष्य दूसरों के दोषों को प्रकट करने के लिए जिस तरह उतावला होता है उस तरह गुणों को देखकर उनका वर्णन करने के लिए उत्सुक नहीं होता। जो मनुष्य मन और वाणी को वश में रखकर हमेशा ईश्वर को अर्पण करता रहता है उसे वेद-पाठ, तपस्या और दान का फल मिलता है। मूर्खों के अपमान और निन्दा करने पर उसी तरह की बातें कहकर उनकी निन्दा विवेकी पुरुष न करे। ऐसा करने से न तो अपना जी दुखेगा और न दूसरे का। विवेकी

लोग अपमान को अमृत के समान समझकर सुख की नींद सोते हैं, किन्तु अपमान करनेवाला मनुष्य अपनी करतूत का फल अवश्य पाता है। क्रोध करके यज्ञ, दान, तपस्या और होम किया जाय तो रत्ती भर भी फल नहीं मिलता, इसलिए क्रोधी मनुष्य का सब परिश्रम निष्फल हो जाता है। जिसका पेट, हाथ, वाणी और इन्द्रिय ये चार द्वार सुरक्षित रहते हैं वही मनुष्य धर्मात्मा है। जो मनुष्य वेद पढ़ता है; दूसरों के धन का लोभ नहीं करता; अच्छे स्वभाव का है; सत्य, संयम, सरलता, दया, धैर्य और वैराग्य का आश्रय करता है वही शरीर त्यागने के बाद स्वर्ग-लोक को जाता है। जैसे बछड़ा चार स्तनों से दूध पीता है वैसे ही सत्य, संयम, क्षमा और ज्ञान, इन चार गुणों में अनुरक्त रहना मनुष्यों का कर्तव्य है। सत्य ही सबसे बढ़कर पवित्र है। मैं देवलोक ३०
और मर्त्यलोक में घूम चुका हूँ, इसलिए अपने अनुभव की बात कहता हूँ कि जैसे समुद्र की यात्रा करने का एकमात्र उपाय जहाज़ है वैसे ही स्वर्गलोक जाने की सीढ़ी सत्य है। जो मनुष्य जैसी सङ्गति करता है और जैसा होने की इच्छा करता है, वह वैसा ही हो जाता है। सज्जन, दुर्जन, तपस्वी और चोर, जिसकी सङ्गति में जो रहता है, उसका स्वभाव उसी का सा हो जाता है। देवता लोग सदा सज्जनों के साथ बातचीत करते हैं, इसलिए सज्जनगण लौकिक विषयों को देखने की भी इच्छा नहीं करते। सब विषयों के मर्म को जाननेवाला ही सज्जन है; वायु और चन्द्रमा भी उसकी समानता नहीं कर सकते। जिस मनुष्य का आत्मा राग-द्वेष से शून्य होता है उस पर देवता प्रसन्न होते हैं और जो मनुष्य खाने-पीने तथा भोग-विलास में लगे रहते हैं तथा चोर और अप्रियवादी होते हैं उन्हें, प्रायश्चित्त करने पर भी, देवता त्याग देते हैं। नीचबुद्धि, सर्व-भक्षी और दुष्कर्मी मनुष्य देवताओं को प्रसन्न नहीं कर सकता। सत्यवादी, धर्मात्मा और कृतज्ञ मनुष्य देवताओं के साथ रहकर अपना कल्याण कर सकता है। निरर्थक बातें करने की अपेक्षा चुप रहना, चुप रहने की अपेक्षा केवल सच्ची बात कहना और सत्य बोलने की अपेक्षा धर्मयुक्त सत्य वचन कहना अच्छा है। वह धर्मयुक्त सच्ची बात यदि मनुष्यों को प्रिय भी लगे तो क्या कहना है।

साध्यगण ने पूछा—पक्षिराज! मनुष्य किस वस्तु से ढके रहते हैं और किस कारण प्रकाशित नहीं होते, किस कारण मित्रों को त्याग देते हैं और किस कारण स्वर्ग को नहीं जा सकते?

हंस ने कहा—साध्यगण! मनुष्य अज्ञान से ढके रहते हैं, मात्सर्य के कारण प्रकाशित नहीं होते, लोभ के वश मित्रों को त्याग देते हैं और विषयों में फँसे रहने के कारण स्वर्ग को नहीं जा सकते। ४०

साध्यगण ने पूछा—पक्षिराज! ब्राह्मणों में कौन पुरुष हमेशा सन्तुष्ट रहता है, कौन मनुष्य मौनव्रत धारण करके अनेक लोकों को जा सकता है, कौन मनुष्य दुर्बल होने पर भी बलवान् समझा जाता है और कौन मनुष्य किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करता?

हंस ने कहा—साध्यगण! ज्ञानी ब्राह्मण सदा सन्तुष्ट रहता है। ऐसा ब्राह्मण मौनी होकर अनेक लोकों को जा सकता है। ज्ञानी दुर्बल होने पर भी बली समझा जाता है। ज्ञानी किसी से विरोध नहीं करता।

साध्यगण ने पूछा—हे पक्षिराज ! किन साधनों से ब्राह्मण सज्जन, दुर्जन, मनुष्य और देवता हो सकता है ?

हंसरूपी ब्रह्मा ने कहा—हे साध्यगण ! वेद का पाठ करना ब्राह्मणों का देवत्व है, ब्र उनकी सज्जनता, दूसरों की निन्दा करना दुर्जनता और मृत्यु उनका मनुष्यत्व है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैंने हंस और साध्यगण की यह बातचीत कह सुनाई। सारां
४५ यह कि शरीर कर्म करने का स्थान और आत्मा सत्य-स्वरूप है।

तीन सौ एक अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से योग का निरूपण करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आप सब धर्मों के मर्मज्ञ हैं, अतएव मुझे सांख्य और योग-शास्त्र के सिद्धान्त बतलाइए। इन दोनों में कौन शास्त्र श्रेष्ठ है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, सांख्य-शास्त्र के विद्वान् सांख्य की और योग के जानका योग की प्रशंसा करते हैं। योगी लोग अपने मत को यह कहकर श्रेष्ठ बतलाते हैं कि ईश्वर क सिवा मोक्ष प्राप्त करने का और कोई उपाय नहीं है। किन्तु सांख्य के विद्वानों के मत से ईश्व को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य सब तत्त्वों को जानकर विषयों का त्या कर देता है वह शरीर छोड़ने के बाद मुक्त हो जाता है। सांख्य के मत से मुक्ति का यही स्वरू है। हे धर्मराज ! मुक्ति के ये दो भेद हैं और दोनों पक्षों का समर्थन करनेवाले प्रमाण पाये जा हैं; जिसे अनुकूल समझो उसे मान लो। योग अनुभव-प्रधान है और सांख्य का मत शास्त्र प अवलम्बित है। इन दोनों में किसी मत के अनुसार चलने से मोक्षपद मिल सकता है। दोने ही मार्गों में पवित्र रहने, तपस्या, सब जीवों पर दया और व्रतों का पालन करने के नियम बत लाये गये हैं; किन्तु इन दोनों मतों का मार्ग एक नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! जब दोनों मतों में व्रत, पवित्रता और दया समान रू
१० से निर्दिष्ट हैं और दोनों का फल भी एक ही है तब फिर इन दोनों का मार्ग एक क्यों नहीं है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! मनुष्य योग के बल से काम, क्रोध, मोह, अनुराग और स्नेह इन पाँच दोषों का त्याग करने से मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। जैसे बड़ी-बड़ी मछलिय जाल को तोड़कर निकल जाती हैं और जैसे बलवान् मृग फन्दे को काटकर भाग जाते हैं वैसे ह योगी लोग, योग के बल से, सांसारिक बन्धनों को तोड़कर मोक्ष-मार्ग को प्राप्त करते हैं। किन जिन योगियों में योग का बल नहीं होता वे जाल में पड़े हुए निर्बल मृग, छोटी मछली और निर्बल पक्षी के समान कर्मपाश में फँसकर नष्ट हो जाते हैं। योग ही मोक्ष प्राप्त करने व एकमात्र उपाय है। योगबल से हीन योगी, बड़ी-बड़ी लकड़ियों में पड़ी हुई आग की चिनगा

के समान, नष्ट हो जाता है। किन्तु जिस योगी में योग का बल होता है वह वायु की सहायता से प्रदीप्त अग्नि के समान और प्रलयकाल के सूर्य के समान संसार को भस्म कर सकता है। २१
दुर्बल मनुष्य जैसे नदी की धारा में बह जाता है वैसे ही योगबल-हीन अजितेन्द्रिय योगी विषयों में फँसा रहता है; किन्तु जिस तरह नदी का वेग हाथियों को नहीं बहा सकता उसी तरह योगबल से युक्त योगियों को विषय विचलित नहीं कर सकते। महात्मा योगी किसी के वश न होकर प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतों में प्रविष्ट हो सकते हैं। महापराक्रमी काल, यम और मृत्यु भी कुपित होकर उनका कुछ नहीं कर सकते। वे योग के बल से अनेक प्रकार के रूप धारण करके संसार भर में विचर सकते हैं। कोई-कोई योगी योगबल से ऐश्वर्य प्राप्त कर विषय-सुख भोगने लगते हैं और फिर उसे छोड़ उसी प्रकार घोर तपस्या करने लगते हैं जिस प्रकार सूर्य किरणों को फैलाकर समेट लेता है। सांसारिक बन्धनों को तोड़ देने में समर्थ योगी मोक्ष पा सकते हैं।

धर्मराज! योग का यह महत्त्व मैंने तुमको बता दिया, अब समाधि और धारणा का सूक्ष्म विषय सुनो। जैसे धनुर्धारी मनुष्य सावधान होकर लक्ष्य-भेद करता है वैसे ही योगी ३०
एकाग्रचित्त से योग का साधन करके मोक्ष को प्राप्त करते है। जैसे मनुष्य जल से भरा हुआ घड़ा सिर पर रखकर, उसी में मन लगाकर, सीढ़ी पर चढ़ते हैं वैसे ही योगी लोग आत्मा को सूर्य के समान तेजस्वी, निर्मल और निश्चल करके योग की उच्च श्रेणी पर पहुँचते हैं। जैसे मल्लाह जहाज़ लेकर सावधानी से समुद्र-पार पहुँचते हैं वैसे ही योगी लोग जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य-साधन करके दुर्लभ ब्रह्मलोक को जाते हैं। जैसे सारथी अच्छे घोड़ों को जोतकर सावधानी से रथी को अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देता है वैसे ही योगी लोग मन को एकाग्र करके शरीर में स्थित आत्मा को परम स्थान में पहुँचा देते हैं। जिस तरह सुशिक्षित धनुर्धारी के हाथ से छूटा हुआ बाण लक्ष्य पर गिरता है उसी तरह योगबल से युक्त योगी का आत्मा ब्रह्मपद प्राप्त करता है। जीवात्मा को परमात्मा में मिलाकर निश्चलता से योग का अभ्यास करनेवाला व्यक्ति सब पापों से छूटकर, ज्ञानवान् पुरुषों के प्राप्त करने योग्य, सनातन मोक्ष-धाम को जाता है। जो योगी अहिंसा आदि धर्म का पालन करता हुआ नाभि, मस्तक, कण्ठ, हृदय, वक्षःस्थल, दोनों पार्श्व, आँख, कान और नाक में जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाता है वह शुभ-अशुभ सब कर्मों को नष्ट करके योग के बल से मोक्षपद प्राप्त करता है। ४१

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, योगी लोग किस प्रकार का भोजन करके और किसको जीतकर योग का बल प्राप्त करते हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! जो योगी तेल और घी का त्याग करके तिल की खली और चावलों के कण खाते हैं, जो शुद्धचित्त होकर केवल एक बार दोपहर को जौ की लप्सी खाते हैं, जो केवल दूध मिला हुआ पानी दिन में एक बार, उसके बाद पक्ष में एक बार, इसी तरह एक

मास, एक ऋतु और एक वर्ष में एक-एक बार पीते हैं उन्हीं को योग का बल प्राप्त होता है। योग-वर्ज्य वस्तुओं का त्याग तो आवश्यक है ही। योगी राग-द्वेष, काम-क्रोध, सरदी-गरमी-बरसात, भय, शोक, श्वास, शब्द आदि विषयों को तथा तृष्णा, विषाद, स्पर्श-सुख, निद्रा और आलस्य को जीतकर ज्ञान के प्रभाव से, ध्यान और अध्ययन द्वारा, परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। विवेकी
५० ब्राह्मणों ने योगमार्ग को दुर्गम बतलाया है। इस मार्ग पर चलना हँसी-खेल नहीं है। जैसे बिरला साहसी पुरुष ही साँपों, काँटों, दावानल, गड्ढों और चोरों से भरे हुए दुर्गम वन के मार्ग में निर्विघ्न जा सकता है वैसे ही कोई-कोई अभ्यासी योगमार्ग पर चलकर परमपद को प्राप्त कर पाता है। योगमार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं, इसलिए सब योगी उस मार्ग पर चलने में समर्थ नहीं होते। छुरे की तेज़ धार पर चाहे कोई बैठ भी सके; किन्तु योग का अभ्यास करना अत्यन्त दुस्साध्य है। जिस तरह मल्लाह के बिना नाव ऊपर बैठे हुए मनुष्य को विपत्ति में डाल देती है उसी तरह अयोग्य व्यक्ति को, योग का अभ्यास, विपत्ति में फँसा देता है। जो महात्मा विधि-पूर्वक योग का साधन कर सकता है वही जन्म-मरण और सुख-दुःख से छुटकारा पाता है। यह मैंने योग-शास्त्र का निचोड़ तुमको बतला दिया। इस योगधर्म में द्विजों को ही अधिकार है। ब्रह्म-स्वरूप होना ही योग का फल है। योगी लोग योग के बल से रजोगुण और तमोगुण को त्यागकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, धर्म, षडानन, ब्रह्मा के कपिल आदि छः पुत्रों, शुद्ध सत्त्वगुण, मूल प्रकृति, वरुण की पत्नी सिद्धिदेवी, सम्पूर्ण तेज, महान् धैर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों से शोभित आकाश, विश्वदेवगण, पितर, पहाड़, समुद्र, नदी, वन, वायु, दिशा, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, स्त्री और पुरुष, सब में प्रविष्ट हो सकते और उनमें से निकल आते हैं। जगन्नियन्ता परमात्मा की कथा जो सुनता है उसे अवश्य शुभ फल मिलता है। योगी लोग ईश्वर की उपासना के प्रभाव से ही सब प्राणियों
६२ से श्रेष्ठ और नारायण-स्वरूप होकर संकल्पमात्र से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कर सकते हैं।

तीन सौ दो अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सांख्य-शास्त्र का मत कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप तीनों लोकों की सब बातें जानते हैं। आपने सज्जन-सम्मत योग-मार्ग का विशेष रूप से वर्णन किया। अब सांख्य मत की सम्पूर्ण विधि विस्तार से सुनाइए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, कपिल आदि महर्षियों ने सूक्ष्म सांख्य मत को जिस प्रकार बतलाया है वह सुनो। इस मत में भ्रम तो कोई है नहीं पर गुण अनेक हैं। दोष कोई भी नहीं है। जो लोग ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, सर्प, गन्धर्व, पितर, तिर्यक् योनि, गरुड़, वायु, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, असुर, विश्वेदेवा, देवर्षि, योगी, प्रजापतिगण और ब्रह्मा के सब विषयों को दोषयुक्त समझते तथा प्रलय और आत्मतत्त्व पर विचार करते हैं वही मोक्षपद

पा सकते हैं; जो जीवित अवस्था, सुख के यथार्थ तत्त्व, तिर्यक् योनि में उत्पन्न और नरक में पड़े हुए विषयाभिलाषी मनुष्यों के दुःख, स्वर्ग, वैदिक कर्म, ज्ञानयोग, योग और सांख्य के गुण-दोषों को विशेष रूप से जानते हैं तथा प्रलय और आत्मतत्त्व पर विचार करते हैं वही मोक्षपद पा सकते हैं; जो आनन्द, प्रीति, उद्वेग, ख्याति, पुण्य, सन्तोष, श्रद्धा, सरलता, दानशीलता और ऐश्वर्य, इन दस गुणों से युक्त सत्त्वगुण; आस्तिकता, दृढ़ता, सुख-दुःख का भोग, भेद, पुरुषत्व, काम, क्रोध, मद, अहङ्कार और द्वेष से निन्दा करना, इन नव गुणों से युक्त रजोगुण और मोह, महामोह, तम, तामिस्र, अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठ गुणों से युक्त तमोगुण को जानते हैं तथा प्रलय और आत्मतत्त्व पर विचार करते हैं वही मोक्षपद पा सकते हैं; जो अहङ्कार, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से युक्त बुद्धि को तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों से युक्त मन और आकाश आदि पञ्चभूतों का यथार्थ तात्पर्य जानते हैं एवं प्रलय और आत्मतत्त्व पर विचार करते हैं वही मोक्षपद पा सकते हैं; जो दूसरे मतों का संशय, निश्चय, गर्व और स्मरण, इन चार गुणों से युक्त बुद्धि; अप्रतिपत्ति, विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति, इन तीन प्रकार के गुणों से युक्त तमोगुण; प्रवृत्ति और दुःख, इन दो गुणों से युक्त रजोगुण और प्रकाश-रूप गुण से युक्त सत्त्वगुण के मर्म को भली भाँति जानकर प्रलय और आत्मतत्त्व पर विचार करते हैं वही कल्याणमय मोक्षपद को प्राप्त कर सकते हैं। रूप आँखों का, गन्ध नाक का, शब्द कानों का, रस जीभ का, स्पर्श त्वचा का, वायु आकाश का, मोह तमोगुण का, लोभ धन का, विष्णु गमन का, इन्द्र बल का, अग्नि पेट का, पृथिवी जल का और जल तेज का आश्रय करता है; तेज वायु का, वायु आकाश का, आकाश महत्तत्त्व का, महत्तत्त्व बुद्धि का, बुद्धि तमोगुण का, तमोगुण रजोगुण का, रजोगुण सत्त्वगुण का, सत्त्वगुण आत्मा का, आत्मा परमात्मा का और परमात्मा मोक्ष का आश्रय करता है। मोक्ष किसी के आश्रित नहीं है। मोक्ष चाहनेवालों के लिए इन सब बातों का विशेष रूप से ज्ञान रखना आवश्यक है। जो मनुष्य इन बातों को भली भाँति जानता है और जो सत्त्वगुण के कार्य, इन्द्रिय आदि सोलह गुणों से युक्त मनुष्य के शरीर, शरीर में रहनेवाले स्वभाव (पूर्व-जन्म के कर्म) और चेतना (बुद्धिवृत्ति), उदासीन परमात्मा तथा पुण्य-पाप का फल भोगनेवाले आत्मा को विशेष रूप से जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है; जो आत्मा के आश्रित इन्द्रियों और सब विषयों को तथा मोक्ष की दुर्लभता को जानता है; जो प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, अधोस्थित और ऊर्ध्वगत, इन सात प्रकार के वायु की गति को जानता है; जो प्रजापति और ऋषियों के चरित को; पुण्य के अनेक मार्गों को; सप्तर्षियों, राजर्षियों, देवर्षियों और सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्मर्षियों के ऐश्वर्य के नाश को और आत्मा तथा शरीर के सब विषयों को विशेष रूप से जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है; जो प्राणियों की मृत्यु, पापी मनुष्यों की दुर्गति, वैतरणी नदी में डूबते हुए पतित मनुष्यों की दुर्दशा और अनेक योनियों में जन्म लेने को; कफ, मल, मूत्र, रुधिर, शुक्र,

मज्जा और स्नायु से भरे हुए घृणित गर्भ में निवास को; सैकड़ों नाड़ियों तथा नवद्वार से युक्त अपवित्र नगर में रहनेवाले आत्मा के विविध योगों को विशेष रूप से जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है; जो सात्त्विक राजस और तामस, इन तीन प्रकार के प्राणियों के—तत्त्वज्ञानी महात्माओं द्वारा निन्दित—मोक्ष-विरुद्ध व्यवहार को; राहु द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के ग्रास को, ग्रहों और नक्षत्रों के गिरने को, स्त्री और पुरुष के वियोग को, प्राणियों की परस्पर हिंसा को और आत्मा तथा शरीर के सब विषयों को विशेष रूप से जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है; जो बालकपन के मोह, शरीर के नाश, राग और मोह से युक्त मनुष्यों के क्षण भर के लिए सत्त्वगुण के आश्रय, हज़ारों में कहीं एक मनुष्य के मोक्षधर्म के अवलम्बन, मोक्ष की दुर्लभता, अप्राप्य
४० वस्तु के लालच और प्राप्य वस्तु से लापरवाही को और आत्मा तथा शरीर के सब विषयों को विशेष रूप से जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है; जो विषयों को बन्धन का कारण जानता, मृत व्यक्तियों की दशा देखता, गृहस्थी में रहने और वहाँ के दुःख को जानता; ब्रह्महत्यारे, पतित, नीच, गुरु की स्त्री हर लेनेवाले, दुष्ट तथा मदिरा पीनेवाले ब्राह्मणों के नरक-वास को समझता; माता की सेवा न करनेवाले, देवता की पूजा से विमुख, पाप करनेवाले और तिर्यक् योनि को प्राप्त प्राणियों की अनेक प्रकार की दुर्गति तथा आत्मा और शरीर के सब विषयों को भली भाँति जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है; जो चारों वेदों के मर्म को, संवत् ऋतु मास पक्ष और दिन के क्षय को; चन्द्रमा, समुद्र और ऐश्वर्य के घटने-बढ़ने को; संयोग, युग, पर्वत, नदी और सब वर्णों के विनाश को; मनुष्यों के बुढ़ापा, मौत, जन्म, दुःख और शरीर के दोष को तथा
५२ आत्मा और शरीर के सब विषयों को विशेष रूप से जानता है वही मोक्ष का अधिकारी है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! मनुष्यों के शरीर में कौन-कौन दोष हैं ? उन दोषों को मैं विशेष रूप से नहीं जानता। आप विस्तार से उनका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—बेटा ! कपिल का मत माननेवाले सांख्य के आचार्यों ने कहा है कि सब प्राणियों के शरीर में काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास, ये पाँच दोष रहते हैं। क्षमावान् होने से क्रोध को, इच्छाओं का त्याग करने से काम को, सत्त्वगुण का अवलम्बन करने से निद्रा को सावधान रहने से भय को और परिमित भोजन करने से श्वास को जीता जा सकता है। सांख्य मत के अनुयायी बुद्धिमान् पुरुष गुणों के द्वारा गुणों को, दोषों के द्वारा दोषों को, कारणों के द्वारा कारणों को विशेष रूप से जानकर—ज्ञान के प्रभाव से संसार को पानी के फेने के समान नश्वर और विष्णु की माया से ढका हुआ जानकर—संसार-सागर को पार करते हैं, वे संसार के
६० चित्रित भीत और तृण के समान असार, अन्धकारमय गड्ढे के समान भयङ्कर, सुखहीन और रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त समझकर, पुत्र-स्नेह आदि छोड़कर तपस्या-रूप दण्ड और ज्ञान-रूप शस्त्र द्वारा सत्त्व, रज और तमोगुण से उत्पन्न गुण-दोषों को नष्ट करके संसार-सागर के

पार करते हैं। इस संसार-सागर में लगातार दुःख-रूप जल है, चिन्ता और शोक-रूप कुण्ड है, व्याधि और मृत्यु ही इसमें जलजीव हैं, महाभय ही साँप है, तमोगुण कछुआ है, रजोगुण मछली है, स्नेह ही कीचड़ है, बुढ़ापा ही इसका दुर्गम स्थान है, कर्म इसकी गहराई है, सत्य इसके किनारे हैं, हिंसा इसकी तरङ्गें हैं और अनेक रस ही इसमें महारत्न हैं। यह दुःख और ज्वर-रूप आँधी तथा शोक और तृष्णा-रूप भँवरों से भरा हुआ है; इसमें व्याधि-रूप महागज है, हड्डी ही घाट है, कफ फेना है, रक्त-रूप मूँगे हैं, दान-रूप मोतियों की खान है, हँसी और चिल्लाना ही निर्घोष है, अनेकविध ज्ञान ही इसकी दुस्तरता है, इसमें आँसू खार की जगह हैं; सङ्ग का त्याग ही इसमें परम आश्रय है, पुत्र और बान्धव-रूप पत्तन है, अहिंसा और सत्य इसकी सीमा है, प्राणत्याग ही इसका महाप्रवाह है, वेदान्त-ज्ञान ही इसमें द्वीप है और मोक्ष-रूप दुर्लभ विषय ७०
इसमें भरा हुआ है। जो पुरुष ज्ञान के प्रभाव से संसार-सागर के तत्त्व को जानकर स्थूल शरीर का अभिमान छोड़ देते हैं उन्हें सूर्यदेव, कमल की नाल से पानी खींचने के समान, अपनी किरणों से चौदहों भुवनों का ऐश्वर्य खींचकर देते हैं। उसके बाद शीतल, सुगन्ध, सुखस्पर्श वायु उनको प्रसन्न करता है। फिर सात वायुओं में सबसे श्रेष्ठ वायु पवित्र लोकों के दर्शन कराकर उनको हृदयाकाश में ले जाता है। तब वे हृदयाकाश से रजोगुण, रजोगुण से सत्त्वगुण, सत्त्व-गुण से भगवान् नारायण और नारायण से परमात्मा को प्राप्त करके, शुद्धचित्त होकर, मोक्ष प्राप्त करते हैं। हे धर्मराज! सत्य और सरलता से युक्त, सब प्राणियों पर दयावान्, वासना-हीन महात्माओं को ऐसी ही परमगति मिलती है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मुमुक्षु पुरुष जब मोक्षपद प्राप्त कर लेता है तब उसे जन्म-मृत्यु
का स्मरण रहता है या नहीं? वेद में कहीं तो कहा है कि मुक्त होने पर विशेष ज्ञान रहता है और ८०
कहीं पर कहा है कि मोक्ष प्राप्त होने पर ज्ञान का लेश मात्र नहीं रह जाता। मोक्ष के विषय में ये दो प्रकार के मत होने से बड़ी विकट समस्या खड़ी होती है। यदि मुक्त होने पर भी जीव को विशेष ज्ञान बना रहता है तो कष्टसाध्य मोक्ष के लिए क्यों प्रयत्न किया जाय? सुखसाध्य स्वर्ग आदि को प्राप्त करानेवाले कर्मों को ही क्यों न किया जाय? और, यदि ज्ञान नहीं रहता तो सुषुप्ति अवस्था के समान कोई विशेष ज्ञान उत्पन्न होता होगा। आप इसे ठीक-ठीक बतलाइए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! तुमने बड़ा कठिन प्रश्न किया है। पण्डितों को भी इसमें चकराना पड़ता है। अब इसका यथार्थ तत्त्व सुनो। सांख्य मत के आचार्य इस विषय को भली भाँति जानते हैं। अति सूक्ष्म जीवात्मा, शरीर में निवास करता हुआ, स्वप्रकाशित इन्द्रियों द्वारा सब पदार्थों को देखता है। जीवात्मा के न रहने से सब इन्द्रियाँ, लकड़ी पत्थर के समान चेष्टा-हीन होकर, समुद्र में उठे हुए फेने की तरह दम-भर में नष्ट हो जाती हैं। मनुष्यों के सो जाने पर इन्द्रियाँ, काम करने में असमर्थ होकर, विषहीन साँप की तरह अपने-अपने स्थान में शिथिल

पड़ी रहती हैं। उस समय केवल आत्मा, आकाशचारी वायु के समान, शरीर भर में घूमा कर
है और सूक्ष्म गति द्वारा इन्द्रियों के स्थान में जाकर जाग्रत् अवस्था की तरह सोते समय भी दर्श
९१ स्पर्शन आदि सब काम करता रहता है। सत्त्व, रज, तम, बुद्धि, मन, आकाश, वायु, स्नेह, उ
और पृथिवी के सब गुण जीवात्मा में व्याप्त रहते हैं। परमात्मा इन सब गुणों के द्वारा जीवात
में व्याप्त रहता है। जीवात्मा इन सब गुणों और शुभाशुभ कर्मों में व्याप्त रहता है। इन्द्रि
शिष्य की तरह जीवात्मा के पास बनी रहती हैं। जीवात्मा जब कर्मों का त्याग करके अन
निर्द्वन्द्व परमात्मा को प्राप्त करता है तब पुण्य और पाप का उसमें लेश नहीं रह जाता और व
परमात्मा में लीन हो जाता है। ज्ञानी पुरुष परमात्मा को प्राप्त करके जीवन्मुक्त होने पर भी-
पाँच ज्ञानेन्द्रियों, मन और शरीर के नष्ट होने तक—उस शरीर में निवास करके पूर्व-जन्म
पुण्य-पाप को भोगते हैं; किन्तु उस फल-भोग के द्वारा जीवन्मुक्त पुरुष को सुख-दुःख नहीं होत
मुमुक्षु पुरुष ज्ञान प्राप्त करके बहुत जल्द शान्त हो जाते हैं। सांख्य मत के अनुयायी ज्ञानव
१०० पुरुष ज्ञान के प्रभाव से परम गति पाते हैं। इसके समान श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है। विद्वान् लोग इ
सांख्य मत को अक्षर, ध्रुव, पूर्णब्रह्म, सनातन, निर्द्वन्द्व, निर्विकार, नित्य तथा अनादि, अन
और मध्यहीन कहते हैं। यह मत योग से भी श्रेष्ठ है। इसी से सृष्टि, स्थिति और प्रलय ह
हैं। महर्षियों ने सांख्यशास्त्र को सब शास्त्रों से श्रेष्ठ कहा है। देवता, ब्राह्मण, योगी, सां
मत के अनुयायी और शान्तचित्त पुरुष जिस परमात्मा की सदा स्तुति करते हैं उस निराव
परमब्रह्म की मूर्ति सांख्यशास्त्र ही है।

पृथिवी पर स्थावर और जङ्गम दो प्रकार के जीव हैं। उनमें जङ्गम जीव श्रेष्ठ है। वे
योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास और पुराणों में जो लौकिक तथा परमात्म-विषयक ज्ञान की ब
देखी जाती हैं वे सब सांख्यशास्त्र से ली गई हैं। सांख्यशास्त्र में शान्ति, बल, सूक्ष्म ज्ञान औ
१० तपस्या तथा सुख का विषय विशेष रूप से बतलाया गया है। सांख्य मत के अनुयायी पु
यदि अपने मत के अनुसार पूरे तौर से कार्य नहीं कर सकते तो भी उनकी अधोगति नहीं होत
वे देवलोक को जाते हैं; फिर उन्हें ब्राह्मण-वंश में जन्म मिलता है। वे शरीर त्यागने के ब
क्रमशः श्रेष्ठ लोकों को ही जाते हैं। जो मनुष्य सांख्य मत का अवलम्बन करके ज्ञान प्राप्त क
का उद्योग करता है उसे, ज्ञान के साधन पूर्ण रूप से न कर सकने पर भी, तिर्यक् योनि में न
जाना पड़ता। उसे पापी के साथ रहकर कष्ट नहीं उठाने पड़ते। जो मनुष्य समुद्र के सम
अति विशाल इस प्राचीन सांख्य मत को भली भाँति जानता है वह परमब्रह्म-स्वरूप है।

हे धर्मराज, मैंने सांख्यशास्त्र का मत विस्तार से कहा। सांख्यशास्त्र भगवान् नारा
का स्वरूप है। यही महात्मा सृष्टि के समय इस विश्व की रचना करते हैं और प्रलय के स
११६ सबका संहार करके अपने में लीन कर लेते हैं, फिर परम सुख से सो जाते हैं।

तीन सौ तीन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से क्षर और अक्षर का विषय बतलाते हुए जनक और वसिष्ठ का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, वह अक्षर पदार्थ क्या वस्तु है जिसे प्राप्त कर लेने पर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता और क्षर पदार्थ क्या है जिसकी प्राप्ति होने पर आवागमन बना रहता है? उस अक्षर और क्षर पदार्थ को विशेष रूप से जानने की मेरी इच्छा है। विद्वान् ब्राह्मण और महात्मा तपस्वी आपको ज्ञान का ख़ज़ाना कहते हैं। अब दक्षिणायन में थोड़े ही दिन बाक़ी हैं। सूर्यदेव के उत्तरायण होते ही आप परमधाम को चले जायँगे। आप कुरु-वंश के दीपक हैं। आपके न रहने पर हम लोग फिर किससे नीति की बातें सुनेंगे। आपके मुँह से अमृत-मय वचनों को सुनकर मेरी सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है, अतएव आप मुझे क्षर और अक्षर का विषय बतलाइए।

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में जनक के वंश में उत्पन्न राजर्षि कराल और महर्षि वसिष्ठ का इतिहास सुनाता हूँ। एक बार महाराज कराल ने अध्यात्म-विद्या के पण्डित, सूर्य के समान तेजस्वी, तपस्वियों में श्रेष्ठ आसन पर विराजमान वसिष्ठजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, मैं विद्वानों के मोक्ष के कारण कल्याण-स्वरूप अक्षर परमब्रह्म और विनाश के कारणभूत क्षर पदार्थ का विषय सुनना चाहता हूँ। १०

वसिष्ठ ने कहा—महाराज, सम्पूर्ण जगत् को क्षर पदार्थ कहते हैं। देवताओं के बारह हज़ार वर्ष का एक युग, चार युगों का एक कल्प और दो हज़ार कल्पों का ब्रह्मा का एक दिन-रात होता है। ब्रह्मा का अन्त होने पर पृथिवी का नाश हो जाता है। उसके बाद अणिमा-लघिमा आदि आठ सिद्धियों से युक्त ज्योतिःस्वरूप नारायण जागकर फिर ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं। नारायण के हाथ, पैर, मस्तक और आँखें सर्वत्र हैं; वे सब जगह मौजूद हैं। पण्डितों ने नारायण को हिरण्यगर्भ कहा है। वेद में परमात्मा के महान्, विरिञ्चि और अज तथा सांख्य-शास्त्र में विचित्ररूप, विश्वात्मा, एक और अक्षर आदि अनेक नाम बतलाये हैं। यह त्रैलोक्य उन्हीं से उत्पन्न हुआ है। उनके अनेक प्रकार के रूप हैं, इससे उनका नाम विश्वरूप है। वे विकारयुक्त २० होकर सृष्टि करने की इच्छा से, सत्त्वप्रधान प्रकृति से, महत्तत्त्व को उत्पन्न करते हैं। महत्तत्त्व विकारयुक्त होकर तमप्रधान अहङ्कार उत्पन्न करता है। अहङ्कार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, ये पाँच सूक्ष्मभूत और इन सूक्ष्मभूतों से क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी, ये पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इन्हीं दसों से सब प्राणियों की सृष्टि होती है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, ये चौबीस तत्त्व सब प्राणियों के शरीर में रहते हैं। तत्त्वज्ञानी

३० ब्राह्मण लोग यदि इन तत्त्वों को अच्छी तरह जानते हैं तो कभी मोह के वश नहीं होते। यही चौबीस तत्त्व देवता, दानव, मनुष्य, यक्ष, भूत, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, चारण, देवर्षि, निशाचर, दंश, कीट, मशक, पूति, कृमि, चूहा, कुत्ता, चण्डाल, ऐणेय, पुल्कस, हाथी, घोड़ा, गधा, सिंह, वृक्ष और गाय आदि सब जीवों के शरीर में हैं। जल, स्थल और आकाश, इन्हीं तीन स्थानों में सब जीव रहते हैं। इन तीन स्थानों में जितने जीव हैं उन सबके शरीर उक्त चौबीस तत्त्वों से बने हुए हैं। इन तत्त्वों से बने हुए शरीर हमेशा नष्ट होते रहते हैं, इसी से इनका नाम क्षर है। यह संसार मोहरूप है, यह पहले अव्यक्त जान पड़ता है उसके बाद व्यक्त होता है। इसलिए यह नश्वर है।

महाराज, आपने क्षर पदार्थ के विषय में जो पूछा था वह मैंने बतला दिया, अब अक्षर का वर्णन सुनिए। चौबीस तत्त्वों से परे सनातन विष्णु अक्षर पदार्थ हैं। इन तत्त्वों में उनकी गिनती तो नहीं है, किन्तु इन सब तत्त्वों में वे निवास करते हैं इसलिए पण्डितों ने उन्हें पच्चीसवाँ तत्त्व बतलाया है। निराकार, सर्वशक्तिमान् परमात्मा चेतन-रूप से सब शरीरों में निवास करता है। निर्गुण होने पर भी जब वह सृष्टि का संहार करनेवाली प्रकृति के साथ मिलता है तब
४० शरीर-रूप से सबको देख पड़ता और जन्म-मृत्यु के वशीभूत होता है। प्रकृति के साथ मिलने से ही उक्त महापुरुष के शरीर में आत्माभिमान पैदा होता है। वह सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त होकर सात्त्विक आदि देहों में निवास करके उन्हीं गुणों के अनुसार काम करता है। तमोगुण द्वारा तामस, रजोगुण द्वारा राजस और सत्त्वगुण द्वारा सात्त्विक भाव उत्पन्न होता है। प्रकृति से उत्पन्न सब प्राणी सत्त्व, रज और तमोगुण के प्रभाव से शुक्ल, रक्त और कृष्णवर्ण कहलाते हैं। उनमें तमोगुणी नरक में, रजोगुणी मनुष्यलोक में और सत्त्वगुणी बड़े सुख से देवलोक में निवास करते हैं। जो केवल पाप करता है उसे तिर्यक्योनि, जो पुण्य और पाप दोनों करता है उसे मनुष्य-योनि और जो केवल पुण्य करता है उसे देवयोनि प्राप्त होती है।

महाराज, पण्डितों ने माया से उत्पन्न वस्तुओं को क्षर और चौबीस तत्त्वों से परे मायारहित
४९ पदार्थ को अक्षर बतलाया है। तत्त्व-ज्ञान के द्वारा वह अक्षर पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है।

तीन सौ चार अध्याय

वसिष्ठ और राजा कराल का संवाद। जीवों की अज्ञता का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—महाराज, इस प्रकार जीवात्मा प्रकृति के साथ मिलने से मोह और अज्ञान के वश होकर बार-बार मरता जीता रहता है। वह तमोगुण के प्रभाव से तिर्यक्योनि में, रजोगुण के प्रभाव से मनुष्ययोनि में और सत्त्वगुण के प्रभाव से देवयोनि में जाता है। वह कभी पुण्य करने से स्वर्ग को जाता, कभी पुण्य का नाश होने पर देवलोक से मनुष्यलोक में

आता और कभी पाप के करने से नरक में गिरता है। जैसे मकड़ी जाला तानकर अपने को छिपा लेती है वैसे ही निर्गुण आत्मा, गुणों से उत्पन्न कर्मों द्वारा, अपने को बन्धन में डाल लेता है और स्वभावतः सुख-दुःख से हीन होने पर भी अनेक योनियों में जन्म लेकर सुख और दुःख भोगता है। सिर का रोग, आँखों का रोग, दाँतों की पीड़ा, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, गल-गण्ड, विषूचिका, श्वित्र (सफ़ेद दाग़), कुष्ठ, आग से जल जाना, कास-श्वास और अपस्मार आदि रोग प्राणियों के शरीर में उत्पन्न होते हैं। जीव अपने को इन रोगों से आक्रान्त समझता है। जीव कभी नीचे-ऊँचे स्थान में, कभी खुली जगह में, कभी टूटे-फूटे घर में, कभी ऊबड़-खाबड़ पत्थर पर, कभी धूल से भरे पत्थर पर, कभी पृथिवी पर, कभी कीचड़ में, कभी तख़्ते पर १०
और कभी सुन्दर शय्या पर सोता है। कभी सफ़ेद कपड़े, कभी मैले कपड़े, कभी कौपीन, कभी दुपट्टा, कभी पत्ते, कभी मृगछाला, कभी बाघम्बर, कभी सिंह का चमड़ा, कभी भोजपत्र, कभी खुरदरे कपड़े, कभी रेशमी कपड़े और कभी चीर पहनता है। कभी तो रत्न धारण करता और कभी नङ्ग-धड़ङ्ग घूमता है। कभी एक रात के बाद, कभी दिन-रात के बीच में एक बार, कभी दिन के चौथे पहर और कभी छठे या आठवें पहर, कभी छः दिन के बाद, कभी सात दिन के बाद, कभी आठ दिन के बाद, कभी दस दिन के बाद, कभी बारह दिन के बाद और कभी एक महीने बाद भोजन करता है। कभी सिद्धि पाने के लिए फल, मूल, वायु, जल, तिल की खली, दही, गोबर, गोमूत्र, शाक, सेवार, माँड़ या सूखे पत्ते खाता है। कभी विधिपूर्वक चान्द्रायण व्रत करता है। कभी चारों आश्रमों के धर्म, कभी पाशुपत, पाञ्चरात्र आदि धर्म और कभी २०
पाखण्ड-मार्ग का अवलम्बन करता है। कभी पहाड़ पर निर्जन स्थान में, कभी झरने के पास, कभी कन्दरा में, कभी सूखी नदी के किनारे, कभी निर्जन वन में, कभी पवित्र देवस्थान में और कभी तालाब के किनारे निवास करता है। कभी मन्त्रों का जप, कभी व्रत, कभी नियम, कभी तपस्या और कभी यज्ञ करता है। कभी वाणिज्य, कभी ब्राह्मण-धर्म, कभी क्षत्रिय-धर्म, कभी वैश्य-धर्म और कभी शूद्र के धर्म का आश्रय करता है। कभी दीन, दरिद्र और अन्धे को दान देता है। कभी सत्त्वगुण, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण का अवलम्बन करता है। कभी धर्म, कभी अर्थ और कभी काम का आश्रय करता है। कभी स्वधा, कभी स्वाहा, कभी वषट्कार और कभी नमस्कार करता है। कभी यज्ञ करता, कभी यज्ञ कराता, कभी पढ़ता, कभी पढ़ाता, कभी दान देता और कभी दान लेता है। कभी जन्म लेता, कभी मरता, कभी विवाद और कभी संग्राम करके अभिमान करता है। पण्डितों ने इन सब शुभ-अशुभ कामों को कर्म-मार्ग बतलाया है। ३०

प्रकृति से ही जगत् की सृष्टि और प्रलय होता है। जैसे सूर्यदेव अस्त होते समय अपनी किरणें समेट लेते हैं और उदय होने के समय फिर उनको फैला देते हैं वैसे ही जगदीश्वर प्रलय-काल में सब गुणों का संहार करके अकेले रह जाते हैं और सृष्टि के समय फिर गुणों को उत्पन्न

कर देते हैं। इस प्रकार बार-बार संसार की सृष्टि और प्रलय करना उनका खेल है। वे तीनों गुणों से हीन होने पर भी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाली प्रकृति को उत्पन्न करके उसके साथ अभिन्न भाव से रहते हैं। प्रकृति के प्रभाव से ही संसार मोहित रहता और सदा सुख-दुःख में पड़ा रहता है। मनुष्य मूर्खता के कारण अनेक प्रकार के विचार करता है कि 'ये दुःख मुझे मिल रहे हैं, ये दुःख मुझ पर आनेवाले हैं, मैं इन सबको दूर करके देवलोक में जाकर सुख भोगूँगा, इस लोक में ये सब शुभ-अशुभ फल मुझे भोगने पड़ेंगे, मुझे वही काम करना चाहिए जिससे सुख मिले, मैं प्रत्येक जन्म में सुखी हूँगा, अपने कर्मों से ही मुझे इस लोक में असीम दुःख उठाने पड़ रहे हैं, मनुष्य होना महादुःख का कारण है, मनुष्य होने से नरक में
४० जाना पड़ता है, मैं नरक से निकलकर मनुष्य और मनुष्य से देवता होऊँगा, उसके बाद फिर देवता से मनुष्य और मनुष्य से नरक को जाऊँगा'। शरीर को ही आत्मा समझनेवाला अज्ञानी मनुष्य बार-बार देवता, मनुष्य और तिर्यक्योनि में जन्म लेता और इन्हीं योनियों में भटकता रहता है। इस प्रकार जीव हज़ारों बार पैदा होता और मरता है। जो जैसे शुभ-अशुभ कर्म करता है वह उन्हीं कर्मों के अनुसार फल भोगता है। तीनों लोकों में प्रकृति ही शुभ-अशुभ कर्म करती और उनका फल भोगती है। तिर्यक् योनि, मनुष्यलोक और देवलोक, यही तीन स्थान 'प्रकृति' के कार्य हैं। जैसे 'प्रकृति' के कोई चिह्न नहीं हैं, केवल महत् आदि पदार्थों द्वारा उसका अनुमान किया जाता है वैसे ही 'पुरुष' के भी कोई चिह्न नहीं हैं, शरीर की चेतनता से ही उसकी सत्ता स्वीकार की जाती है। पुरुष निर्विकार और प्रकृति का प्रवर्त्तक होने पर भी शरीर धारण करके इन्द्रियों के द्वारा किये हुए कर्मों का कर्ता अपने को समझता है। कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ
५० और वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ सत्त्व आदि गुणों के संयोग से अनेक विषयों में प्रवृत्त होती हैं। अज्ञानी मनुष्य निर्दोष होने पर भी अपने को दूषित, देहहीन होने पर भी अपने को देहवान्, काल के वशीभूत न होने पर भी अपने को काल के वश, बुद्धिहीन होने पर भी बुद्धिमान्, तत्त्वज्ञान-हीन होने पर भी तत्त्वज्ञानी, अमर होने पर भी मृत्युग्रस्त, अचल होने पर भी चलायमान, जन्महीन होने पर भी जन्मयुक्त, तपस्याहीन होने पर भी अपने को तपस्वी, गतिहीन होने पर भी अपने को
५४ चलायमान, निर्भय होने पर भी अपने को भयभीत और अक्षर होने पर भी क्षर समझता है।

तीन सौ पाँच अध्याय

राजा कराल और महर्षि वसिष्ठ का संवाद

वसिष्ठ ने कहा—राजन्, मनुष्य अपने अज्ञान और अज्ञानी मनुष्यों के संसर्ग के कारण बार-बार मरता और जन्म लेता है। सत्त्व, रज और तमोगुण के प्रभाव से वह कभी देवयोनि, कभी मनुष्ययोनि और कभी तिर्यक्योनि में जाता है। जैसे सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा की

पन्द्रह कलाओं का ही बार-बार क्षय होकर [illegible] होती है, किन्तु सोलहवीं 'अमा' कला का न कभी नाश होता है और न वृद्धि होती है वैसे ही जीवात्मा के स्थूल-शरीर की वृद्धि और बार-बार उसी का नाश होता है; किन्तु लिङ्ग-शरीर न तो कभी बढ़ता है और न नष्ट होता है। जैसे प्रलय के समय सोलहवीं कला का नाश होने पर चन्द्रमा का सम्पूर्ण रूप नष्ट हो जाता है वैसे ही लिङ्ग-शरीर का नाश होने पर जीवात्मा की मुक्ति हो जाती है। स्थूल-शरीर पर ममता होने से जीवात्मा कभी मोक्ष पद नहीं पा सकता। जीवात्मा चौबीस तत्त्वों से परे निर्मल परमात्मा को न जानने से ही, स्वयं शुद्ध होने पर भी, अशुद्ध शरीर के साथ रहने के कारण अपवित्र रहता है। चेतन-स्वरूप होने पर भी वह जड़ शरीर का संसर्ग करने के कारण जड़ और निर्गुण होने पर भी तीनों गुणों से युक्त प्रकृति के साथ रहने से तीनों गुणों से युक्त हो जाता है। ११

तीन सौ छः अध्याय

वसिष्ठ का राजा कराल से जीव और शरीर आदि का सम्बन्ध कहना

जनक (कराल) ने कहा—भगवन्, प्रकृति के साथ पुरुष का जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध स्त्री और पुरुष का है। पुरुष के बिना स्त्री गर्भ नहीं धारण कर सकती और स्त्री के बिना पुरुष पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकता। स्त्री के रजस्वला होने के पश्चात् पुरुष के संयोग से सन्तान उत्पन्न होती है। वेद और स्मृति आदि में कहा है कि पिता से अस्थि, स्नायु और मज्जा तथा माता से त्वचा, मांस और रक्त उत्पन्न होता है। वेद और स्मृति आदि का कथन ही ठीक है। यदि प्रकृति और पुरुष भी स्त्री-पुरुष के समान परस्पर गुण-सापेक्ष होकर एक-दूसरे से बँधे हैं तो फिर मोक्ष धर्म कैसे हो सकता है? भगवन्! आप प्रत्यक्षदर्शी हैं, अतएव यदि मोक्ष के अस्तित्व में कोई विशेष प्रमाण हो तो ठीक-ठीक मुझे बतलाइए। मैं मोक्ष का अभिलाषी हूँ; जो निर्विकार, निराकार, इन्द्रियों से अगोचर, अजर, नित्य और सर्वश्रेष्ठ है, उसी परमात्मा को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ। १०

वसिष्ठ ने कहा—महाराज, वेद और शास्त्र की बात ऐसी ही है; किन्तु उसका यथार्थ तात्पर्य आपने नहीं समझा। आपने वेद और स्मृति आदि शास्त्र पढ़े तो हैं; किन्तु उनके पढ़ने का फल आपको नहीं मिला। जो मनुष्य पुस्तक तो पढ़ लेता है किन्तु उसके यथार्थ तात्पर्य को नहीं समझ पाता उसका पढ़ना व्यर्थ है। वह केवल शास्त्र का बोझ लादे रहता है। किन्तु जो मनुष्य ग्रन्थ के यथार्थ तत्त्व को समझ सकता है और किसी के पूछने पर उसका ठीक उत्तर दे सकता है उसी का परिश्रम सफल है। जो मन्दबुद्धि मनुष्य विद्वानों की सभा में बैठकर ग्रन्थ का मर्म नहीं समझा सकता वह कभी ग्रन्थ का अर्थ न समझ सकेगा। निर्बुद्धि मनुष्य जितेन्द्रिय होने पर भी सभा में अपना मत प्रकट करेगा तो उसकी हँसी होगी।

अब सांख्य और योग-शास्त्र का यथार्थ तत्त्व सुनो। योगी लोग योग के बल से जिसके दर्शन करते हैं उसी को सांख्यमतावलम्बी भी प्राप्त करते हैं। अतएव जो लोग सांख्य और योग के मत को एकरूप समझते हैं वही बुद्धिमान् हैं। मनुष्य के शरीर में त्वचा, मांस, रक्त, मेद, पित्त, मज्जा, स्नायु और इन्द्रियाँ होती हैं। जैसे बीज से बीज उत्पन्न होता है वैसे ही त्वचा-मांस आदि से त्वचा-मांस आदि, इन्द्रियों से इन्द्रियाँ और शरीर से शरीर उत्पन्न होते हैं। परमात्मा के शरीर, इन्द्रियाँ और बीज नहीं हैं, इसलिए उसमें गुण कैसे हो सकते हैं? जैसे आकाश आदि विषय शब्द आदि गुणों से उत्पन्न होते और उन्हीं में लीन हो जाते हैं वैसे ही शब्द आदि गुण प्रकृति से उत्पन्न होते और उसी में लीन हो जाते हैं। जैसे कभी-कभी केवल शुक्र से ही त्वचा, मांस, रक्त, मेद, पित्त, मज्जा, हड्डी और नाड़ियों से युक्त शरीर उत्पन्न हो जाता है वैसे ही केवल प्रकृति से संसार की सृष्टि होती है। जीवात्मा और जगत् सत्त्व आदि तीनों गुणों में लिप्त हैं। जीवात्मा और संसार से परमात्मा पृथक् है। जैसे ऋतुएँ देहहीन होने पर भी फलों-फूलों द्वारा जानी जाती हैं वैसे ही प्रकृति का स्वरूप न होने पर भी उससे उत्पन्न महत् आदि गुणों द्वारा उसका अनुमान किया जाता है। इसी तरह देह की चेतनता से ही हर्ष-विषाद आदि विकारों से रहित, चौबीस तत्त्वों से हीन, निर्मल परमात्मा का अनुमान किया जाता है। अनादि, अनन्त, समदर्शी, निरामय आत्मा देह आदि का अभिमान करने से सगुण कहलाता है। जो मनुष्य यह समझता है कि 'सगुण पदार्थ के साथ गुणों का सम्बन्ध है, किन्तु निर्गुण पदार्थ के साथ गुणों का कोई सम्पर्क नहीं है' वही यथार्थ तत्त्वदर्शी है। काम आदि प्राकृतिक गुणों को जीत लेने से जीवात्मा, देह का अभिमान छोड़कर, परमात्मा का साक्षात्कार करता है। सांख्य और योग के विद्वान् महात्मा लोग अहङ्कार आदि का त्याग करके उस अन्तर्यामी, सबकी सृष्टि करनेवाले, चौबीस तत्त्वों से परे परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जन्म-मृत्यु से भीत ज्ञानवान् पुरुष उस अव्यक्त परब्रह्म का ज्ञान होने पर परमात्मा और जीवात्मा में भेद नहीं समझते। अविवेकी मनुष्य ही जीवात्मा को परमात्मा से भिन्न मानते हैं। सारांश यह कि एक रूप से प्रतीयमान परमात्मा को अक्षर और अनेक रूप से प्रतीयमान जगत् को क्षर कहते हैं। ज्ञानवान् मनुष्य पच्चीसवें तत्त्व जीवात्मा का विचार करने पर पच्चीस तत्त्वों से परे छब्बीसवें तत्त्व परमात्मा और जीवात्मा को एक-रूप समझ जाता है। इस प्रकार समझ जाने पर वह परमात्मा के एक-रूप दर्शन को शास्त्र-सम्मत और अनेक-रूप दर्शन को शास्त्र-विरुद्ध समझता है। यह मैंने सब तत्त्वों का और परमात्मा का विषय तुमको समझा दिया। पण्डितों ने पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्चभूत, शब्द आदि पाँच विषय, मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति और जीवात्मा, इन्हीं पच्चीस तत्त्वों को सृष्ट पदार्थ और इन सबसे पृथक् छब्बीसवें पदार्थ को परमात्मा कहा है।

तीन सौ सात अध्याय

सांख्य और योग का मत

जनक ने कहा—महर्षि, आपने अक्षर को एकरूप और क्षर को अनेकरूप बतलाया है; परन्तु इन दोनों में मुझे सन्देह है। अविवेकी मनुष्य आत्मा के अनेक रूप और ज्ञानी पुरुष आत्मा का एक रूप मानते हैं; किन्तु मेरी बुद्धि स्थूल है, इसलिए मैं इन दोनों में किसी को नहीं समझ सकता। आपने अक्षर और क्षर की जो व्याख्या की है उसे भी, स्वभाव की चञ्चलता से, मैं भूल सा गया हूँ। अब अनेकत्व, एकत्व, ज्ञानवान्, ज्ञानहीन, ज्ञातव्य विषय, विद्या, अविद्या, क्षर, अक्षर, सांख्य और योग, यह सब सुनने की मेरी इच्छा है।

वसिष्ठ ने कहा—राजन्! आपने जो-जो बातें पूछी हैं उनका उत्तर देता हूँ, विशेषकर योग का वर्णन विस्तार से करता हूँ। ध्यान ही योगियों का परम बल है। विद्वानों ने इस ध्यान को, चित्त की एकाग्रता और प्राणायाम, यों दो प्रकार का बतलाया है। प्राणायाम भी दो प्रकार का है—सगर्भ और निगर्भ। जप समेत प्राणायाम को सगर्भ और जपहीन को निगर्भ प्राणायाम कहते हैं। मल-मूत्र त्यागने और भोजन करने के समय को छोड़कर प्रत्येक समय ध्यान करना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्य चित्त की एकाग्रता के प्रभाव से, शब्द आदि विषयों से इन्द्रियों को हटाकर, पैर के अँगूठे से लेकर सिर तक प्राणवायु को रोककर जीवात्मा को चौबीस तत्त्वों से अलग करके परमात्मा में मिलाता है। इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य १०
कर देने पर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। पण्डितों ने जीवन्मुक्त योगियों को ब्रह्म-रूप बतलाया है। जिस पुरुष का मन प्राणायाम में लगा रहता है वही परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है और वही योग-रूप व्रत करने योग्य है। विषय-वासना को छोड़कर, थोड़ा भोजन करते हुए, जितेन्द्रिय रहकर बुद्धि से मन को और मन के द्वारा इन्द्रियों को स्थिर करके पाषाण के समान स्थिर-चित्त से, सन्ध्या के समय और थोड़ी रात रहे, आत्मा में मन को लगाना योगी पुरुषों का कर्तव्य है। योगी जब पर्वत के समान अचल और पत्थर के समान स्थिर हो जाता है; जब उसे देखने, सुनने, सूँघने और स्वाद लेने तथा स्पर्श करने का ज्ञान नहीं रह जाता और जब मन में इच्छा का नाम तक नहीं रहता तब वह शुद्ध योगी हो जाता है। उस समय वह वायु से सुरक्षित स्थान में जलते हुए दीपक के समान प्रकाशित, अचल और लिङ्ग-शरीर-हीन हो जाता है। तब उसे स्वर्ग या पाताल किसी लोक को नहीं जाना पड़ता। जो योगी परमात्मा का साक्षात्कार करके ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है वही यथार्थ आत्मदर्शी है। मेरे सदृश मनुष्यों को इतना ही मालूम है कि परमात्मा हृदय में विराजमान है। आत्मा का प्रकाश हो जाने पर वह हृदय में बिना धुएँ की आग के समान, किरणों से युक्त सूर्य के समान और बिजली की ज्योति के समान दीखने लगता है। ब्रह्मज्ञानी शास्त्रज्ञ धैर्यवान् महात्मा ब्राह्मण जिस अनादि अमृतमय परब्रह्म के २०

दर्शन करते हैं वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महत् से भी महत्तर है। वह सब प्राणियों में निवास करता है, किन्तु उसे कोई देख नहीं सकता। केवल सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा उसका अनुमान किया जाता है। वह स्थूल ब्रह्माण्ड से अलग है। वेद के विद्वानों ने उस निर्मल निरुपाधि ब्रह्म को संसार से मुक्त करनेवाला बतलाया है। ऊपर कही हुई विधि के अनुसार साधन करने से योगी पुरुष आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं। यह योग का विषय मैंने तुमसे कहा, अब सांख्य का मत सुनो।

प्रकृतिवादी, सांख्यशास्त्र के मर्मज्ञों ने प्रकृति को ही प्रधान बतलाया है। उनका कहना है कि प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार और अहङ्कार से शब्द-स्पर्श आदि पाँच सूक्ष्म भूत उत्पन्न होते हैं। सांख्यवादी पण्डित इन्हीं आठों को प्रकृति कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, आकाश आदि पञ्चभूत और मन, यही सोलह, प्रकृति के विकार हैं। जिस पदार्थ से जो पदार्थ उत्पन्न होता है वह उसी पदार्थ में लीन हो जाता है। जैसे तरङ्गें समुद्र से उठतीं और समुद्र में ही लीन हो जाती हैं वैसे ही सब गुण गुणों से उत्पन्न होते और गुणों में ही लीन हो जाते हैं। यही सृष्टि और प्रलय का विषय है। तत्त्वज्ञानियों ने कहा है कि जगदीश्वर प्रलय के समय एक रूप और सृष्टि के समय अनेक रूप धारण करता है। अव्यक्त प्रकृति जैसे देह के अधिष्ठाता पुरुष को सृष्टि के समय अनेक रूप और प्रलय के समय एक रूप प्राप्त कराती है वैसे ही जीवात्मा भी सृष्टि के समय प्रकृति को अनेक रूप और प्रलय के समय एक रूप से उत्पन्न करता है। चौबीस तत्त्वों से परे आत्मा के निवास-स्थान देह को क्षेत्र और अधिष्ठाता पुरुष को आत्मा कहते हैं। जीवात्मा क्षेत्र में स्थित होकर उसके तत्त्वों को जान सकता है, इसी से वह अधिष्ठाता पुरुष और क्षेत्रज्ञ कहलाता है। प्रकृति और पुरुष अलग-अलग हैं। पण्डितों ने प्रकृति को क्षेत्र, चौबीस तत्त्वों से परे आत्मा को ज्ञाता, ज्ञान को ज्ञाता से भिन्न, प्रकृति को कार्य और ज्ञेय वस्तु को ज्ञान से पृथक् चौबीस तत्त्वों से रहित बतलाया है। प्रकृति को अव्यक्त, क्षेत्र, बुद्धि और ईश्वर कहा है। सांख्य के पण्डितों ने प्रकृति को ही संसार की सृष्टि का कारण माना है। जिस शास्त्र में चौबीस तत्त्व बतलाये गये हैं वही सांख्यशास्त्र है। यह सांख्य का मत मैंने विस्तारपूर्वक कहा। इस मत को जो मनुष्य भली भाँति समझ जाता है वह शान्ति प्राप्त करता है।

ब्रह्म का साक्षात्कार करना ही सम्यक् दर्शन है। भ्रान्त मनुष्य जिस तरह विषयों को देखता है उसी तरह अभ्रान्त मनुष्य अलौकिक ब्रह्म के दर्शन करता है। ब्रह्मस्वरूप हो जाने और निरुपाधि सुख प्राप्त करने पर मुक्त पुरुषों को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो मनुष्य भेद बुद्धि के वश रहकर परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता उसी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है और जो पुरुष इन सब तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करके योग के प्रभाव से सब पदार्थों को प्रत्यक्ष कर सकता है वह शरीर के वशीभूत नहीं होता। सारांश यह कि संसार की सृष्टि करनेवाली प्रकृति के कामों से आत्मा बिलकुल अलग है। जिस पुरुष को आत्मा का ज्ञान हो जाता है उसे संसार का भय नहीं रहता।

तीन सौ आठ अध्याय

विद्या और अविद्या का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—महाराज, यह मैंने सांख्य का मत तुमसे कहा। अब विद्या और अविद्या का विषय सुनो। पण्डितों ने सृष्टि और प्रलय करनेवाली प्रकृति को अविद्या और सृष्टि-प्रलय से रहित प्रकृति को विद्या कहा है। विद्या चौबीस तत्त्वों से रहित है। सांख्य मत के माननेवालों ने बुद्धि-इन्द्रियों को विद्या बतलाया है। अब विशेष रूप से इसका वर्णन सुनो। बुद्धि-इन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय में बुद्धि-इन्द्रिय, स्थूल भूत और बुद्धि-इन्द्रिय में स्थूल भूत, मन और स्थूल भूत में मन, सूक्ष्म भूत और मन में सूक्ष्म पञ्चभूत, अहङ्कार और पञ्च सूक्ष्म भूत में अहङ्कार, महत्तत्त्व और अहङ्कार में महत्तत्त्व, प्रकृति और महत्तत्त्व में प्रकृति तथा पुरुष और प्रकृति में पुरुष विद्या-स्वरूप है। ज्ञान प्रकृति का कार्य है तथा ज्ञेय और विज्ञाता चौबीस तत्त्वों से परे है।

विद्या और अविद्या का यथार्थ तत्त्व मैंने बतला दिया; अब क्षर और अक्षर का वर्णन सुनो। प्रकृति और पुरुष ही क्षर और अक्षर कहलाते हैं। ज्ञानियों ने दोनों को ही जन्म-मृत्यु- १०
हीन तथा ईश्वर कहा है और दोनों को ही पच्चीसवाँ और छब्बीसवाँ तत्त्व माना है। सृष्टि और प्रलय करने के कारण प्रकृति को अक्षर कहते हैं। प्रकृति बार-बार विकृत होकर महत् आदि गुणों को पैदा करती है। पुरुष क्षेत्र में रहता है इसलिए उसका नाम क्षेत्र भी है। जब महत् आदि गुण प्रकृति में लीन हो जाते हैं तब उन गुणों के साथ चौबीस तत्त्वों से परे पुरुष उसी में लीन हो जाता है। गुणों के लीन हो जाने पर केवल प्रकृति रह जाती है। जब जीव प्रकृति में लीन हो जाता है तब प्रकृति महत् आदि गुणों से युक्त होकर क्षर और सत्त्व आदि गुणों से हीन हो जाती और निर्गुणता प्राप्त करके अक्षर कहलाती है। क्षेत्र का ज्ञान नष्ट होने पर स्वभावतः निर्गुण अक्षर पुरुष भी प्रकृति के समान क्षरत्व प्राप्त करता है। जब देहाभिमानी जीवात्मा प्रकृति को गुणों से युक्त और अपने को निर्गुण समझ सकता है और अपने को प्रकृति से पृथक् और प्रकृति को अपने से अलग जान जाता है तब वह शुद्ध होता है। जीवात्मा जब प्रकृति से २०
भिन्न रहता है तब परमात्मा से अभिन्न और जब प्रकृति के साथ मिलता है तब परमात्मा से भिन्न हो जाता है। जीवात्मा जब प्राकृत गुणों की निन्दा करता और परब्रह्म को नहीं भूलता है तब परमात्मा से मिल सकता है। ज्ञान उत्पन्न होते ही जीवात्मा इस प्रकार समझने लगता है—'जैसे मछली अपनी मूर्खता से जाल में फँसती है वैसे ही मैं मोह के वश होकर इस प्राकृत देह में आश्रय करके बड़ा अनुचित कर्म कर रहा हूँ। जैसे मछली अपने जीने के लिए एक तालाब से दूसरे तालाब में जाती है वैसे ही मैं मुग्ध होकर, शरीर को त्यागकर, दूसरे शरीर में जाता हूँ। जैसे मछली पानी को ही अपना जीवन समझती है वैसे ही मैं पुत्र आदि को आत्मा समझ रहा

हूँ। हाय, मैं अज्ञान के वश होकर परमात्मा को छोड़कर बार-बार प्राकृत शरीर का आश्रय ले रहा हूँ, अतएव मुझे धिक्कार है। परमात्मा मेरा परम बन्धु है। उसका आश्रय करने से मैं तद्रूप हो जाऊँगा। मैं परमात्मा से किसी अंश में कम नहीं हूँ। मैं उसी के समान निर्मल और अव्यक्त हूँ। मोह के वश प्रकृति के अधीन होने से मेरी यह दुर्गति हो रही है। मैं निर्गुण होकर भी सगुण प्रकृति के साथ इतने दिनों तक रहा, अतएव मेरे समान मूर्ख और कौन होगा? प्रकृति कभी देवयोनि, कभी मनुष्ययोनि और कभी तिर्यक्योनि में ले जाती है, अतएव
३० उसके साथ रहना मुझे कदापि उचित नहीं। मैंने निश्चय कर लिया है कि अब उसके साथ न रहूँगा। यद्यपि मैं निर्विकार हूँ तो भी इतने दिनों तक इस विकारयुक्त प्रकृति ने मुझे ठगा है। इसमें प्रकृति का कोई अपराध नहीं, अपराध सब मेरा ही है। मैं स्वयं परमात्मा से विमुख होकर प्रकृति में आसक्त हुआ हूँ। मैं रूपहीन और मूर्तिहीन होने पर भी मोह के वश होकर अनेक रूपों और मूर्त्तियों में रहता हूँ। मैं ममताहीन होकर भी, ममता के वश हो, अनेक योनियों में घूमता हुआ कैसा अनुचित काम कर रहा हूँ। प्रकृति अहङ्कार द्वारा मुझ पर पर्दा डाले हुए है और स्वयं अनेक भागों में विभक्त होकर मुझे अनेक शरीरों में ले जाती है। अब मैं अहङ्कार और ममता से छूटकर होश में आया हूँ। मैं अब प्रकृति के साथ न रहूँगा। प्रकृति और अहङ्कार द्वारा की गई ममता को छोड़कर अब मैं अद्वैत परमात्मा का आश्रय लूँगा। परमात्मा के साथ मिलने से ही मेरा कल्याण है। अतएव मैं उसके साथ मिलूँगा। प्रकृति के साथ रहना ठीक नहीं।' ऐसा ज्ञान होने पर जब जीवात्मा परमात्मा को जान जाता है तब क्षरत्व त्यागकर अक्षरत्व प्राप्त
४० करता है। प्रकृति के साथ शरीर में निवास करने से निर्गुण जीव सगुण होता है और ज्ञान के प्रभाव से निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर फिर निर्गुण हो जाता है।

यह मैंने क्षर और अक्षर का वर्णन किया, अब बतलाता हूँ कि किस तरह सन्देहहीन निर्मल सूक्ष्म ज्ञान उत्पन्न होता है। शास्त्र का ठीक-ठीक मर्म बतलाते समय मैंने सांख्य और योगशास्त्र की कथा कही है, वे दोनों एक समान हैं। सांख्यशास्त्र का ज्ञान तो शिष्यों को आसानी से हो जाता है, किन्तु योगशास्त्र बहुत कठिन है; उसका ज्ञान शीघ्र होना सम्भव नहीं। योगशास्त्र बहुत बड़ा और बहुत कठिन है, किन्तु वेद में उसी का अधिक सम्मान है। सांख्य मत माननेवाले विद्वान् छब्बीस तत्त्व नहीं, पच्चीस ही तत्त्व मानते हैं; इसलिए वेद में सांख्य का अधिक सम्मान नहीं है। ये मैंने सांख्यवादी विद्वानों के परमतत्त्व तुमको बतलाये। योग-शास्त्र के मत में परमात्मा उपाधि-युक्त होने पर जीव-स्वरूप हो जाता है। इसी से योग के
४८ विद्वान् जीवात्मा और परमात्मा दोनों को मानते हैं।

तीन सौ नव अध्याय

वसिष्ठ और राजा कराल का संवाद। बुद्ध और अबुद्ध का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—महाराज, अब बुद्ध और अबुद्ध का वर्णन सुनो। परमात्मा को बुद्ध और जीवात्मा को अबुद्ध कहते हैं। जीवात्मा सत्त्व आदि गुणों के प्रभाव से स्वयं अनेक रूप धारण करके उन रूपों को यथार्थ समझता है और अपने को कर्ता समझकर, अभिमान करके, परमात्मा को नहीं जान सकता। वह निर्विकार होकर भी प्रकृति के साथ रहने के कारण विकृत जान पड़ता है। वह प्रकृति को और उसके सब कामों को जानता रहता है, इसलिए कोई-कोई उसे ज्ञानी कहते हैं। ब्रह्म निर्गुण हो चाहे सगुण, उसको प्रकृति नहीं जान सकती इसलिए सांख्यवादी उसे जड़ मानते हैं; उसमें ज्ञान का अभाव है, और यदि उसमें ज्ञान होना मान भी लिया जाय तो उसकी पहुँच जीवात्मा तक ही हो सकती है। प्रकृति के सङ्ग रहने के कारण जीवात्मा को वेद में सङ्गी कहा है। निर्विकार और अति सूक्ष्म होने पर भी सङ्ग-दोष के कारण कोई-कोई उसे मूढ़ भी कहते हैं। परमात्मा के यथार्थ रूप को जीवात्मा नहीं जानता; किन्तु अप्रमेय सनातन परमात्मा उसे और प्रकृति को भी अच्छी तरह जानता है। ज्ञानी पुरुष ही उस स्थूल सूक्ष्म कार्य-कारणगत अद्वितीय ब्रह्म को जान सकते हैं। जब जीवात्मा समझने लगता है कि 'मैं स्थूल हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं विद्वान् हूँ' तब वह परमात्मा, प्रकृति और अपने को नहीं जान सकता। जब जीवात्मा प्रकृति को जड़ और अपने को उससे भिन्न समझता है तब उसे विशुद्ध निर्मल श्रेष्ठ मोक्ष का उपयोगी ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान का उदय होते ही १०
जीवात्मा परमात्मा को जान लेता है और सृष्टि-प्रलय करनेवाली प्रकृति को, विशेष रूप से जानकर, त्याग देता है। तब परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर वह, उपाधि से मुक्त होकर, परमात्मा में ही मिल जाता है। विद्वानों ने आत्मा को परमतत्त्व, अजर, अमर और पचीस तत्त्वों से पृथक् बतलाया है। चौबीस तत्त्वों का आश्रय करने पर भी आत्मा को तत्त्ववान् नहीं कहना चाहिए; क्योंकि आत्मा चाहे तो सब तत्त्वों को त्याग सकता है। जीव जब अपने को जरा-मरण-हीन परमात्मा समझता है तब, ज्ञान के प्रभाव से, परमात्मा में मिल सकता है। जब तक जीव सर्वशक्तिमान् चेतन-स्वरूप परमात्मा को नहीं जानता तभी तक उसके अनेक रूप रहते हैं; किन्तु परमात्मा का ज्ञान होते ही वह एकरूप हो जाता है। परमात्मा के साथ मिल जाने पर जीव में पाप और पुण्य का लेश नहीं रह जाता। २०

यह मैंने वेद के अनुसार जड़ रूप प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा का विषय तुमसे कहा। जीव का अनेकत्व और एकत्व इसी प्रकार बतलाया गया है। गूलर में रहनेवाले कीड़ों और गूलर, तथा जल में रहनेवाली मछलियों और जल में जैसी भिन्नता है वैसी ही परमात्मा और जीवात्मा में समझनी चाहिए। परमात्मा के साथ जीवात्मा का ऐक्य हो जाना ही मोक्ष

है। जड़ प्रकृति से जीवात्मा को अलग कर लेना सर्वथा उचित है। मुक्ति पाने का दूसरा उपाय नहीं है। जीवात्मा देह से भिन्न होने पर भी जब जिस प्रकार के शरीर में रहता है तब उसी के धर्म का पालन करता है। धर्मात्माओं के साथ रहने से जीवात्मा धर्मवान्, बुद्धिमानों के साथ रहने से बुद्धिमान्, संन्यासियों के साथ रहने से संन्यासी, रागहीन पुरुषों के साथ रहने से विरागी, मुमुक्षु के साथ रहने से मोक्ष का अभिलाषी, पुण्यवान् पुरुषों के साथ रहने से पुण्यवान्, निर्मल का साथ करने से निर्मल, सङ्गहीन पुरुषों के साथ रहने से सङ्गहीन और
३० स्वाधीन मनुष्यों के साथ रहने से स्वाधीन हो जाता है।

महाराज, मैंने सनातन ब्रह्म का वर्णन कर दिया। जिसे वेद का ज्ञान चाहे न हो, किन्तु ब्रह्म को प्राप्त करने की श्रद्धा हो, उस पुरुष को तुम ब्रह्म का उपदेश देना। मिथ्यावादी, दुष्ट, शास्त्र के अनभिज्ञ, कुटिल, हिंसा करनेवाले, पण्डितों से द्वेष रखनेवाले नीच मनुष्यों को यह उपदेश नहीं देना चाहिए। श्रद्धावान्, गुणवान्, क्षमाशील, दूसरों का हित चाहनेवाला, शुद्ध-स्वभाव, विधि के अनुसार कर्म करनेवाला, विवादहीन, बहुश्रुत, शम-दम आदि गुणों से युक्त, शास्त्र का तात्पर्य समझनेवाला और ज्ञानवान् मनुष्य ही यह उपदेश प्राप्त करने का अधिकारी है। ऐसे मनुष्यों को उपदेश देने से उपदेष्टा का कल्याण होता है। अपात्र को उपदेश देने से कोई लाभ नहीं है। व्रतहीन मनुष्य चाहे रत्नों से परिपूर्ण पृथिवी भी दे तो भी उसके बदले में उसे यह शुद्ध उपदेश देना उचित नहीं। महाराज, आज तुमने उस अनादि अनन्त शोकहीन परमपवित्र ब्रह्म की कथा सुनी है अतएव अब तुम्हें कुछ डर नहीं है। उस मङ्गलमय परमात्मा का ज्ञान होने पर जन्म-मरण का झञ्झट नहीं रह जाता। अब तुम उस परमात्मा को भली
४० भाँति जानकर मोह को छोड़ दो। तुम्हारे पूछने पर यह ब्रह्मतत्त्व मैंने जिस तरह तुमसे कहा है उसी तरह प्राचीन समय में मैंने ब्रह्माजी से यही विषय पूछा था और उन्होंने विस्तार से मुझे इस परमतत्त्व का उपदेश दिया था।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैंने महर्षि नारद से परब्रह्म का विषय जिस तरह सुना था उसी तरह विशेष रूप से तुम्हें बतला दिया। उस अजर अमर परब्रह्म के यथार्थ तत्त्व को जीवात्मा नहीं जानता, इसी से उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है। महात्मा वसिष्ठ को ब्रह्माजी से और देवर्षि नारद को वसिष्ठ से यह उपदेश मिला था। मैंने देवर्षि नारद से यह विषय सुना है। अब तुम मुझसे यह उपदेश सुन चुके, अतएव तुम्हें शोक न करना चाहिए। जो मनुष्य क्षर और अक्षर का स्वरूप विशेष रूप से जानता है, उसे कोई भय नहीं रहता और जो उसे नहीं जान सकता वह हमेशा डरता रहता है। अज्ञान के समुद्र में डूबा रहने से ही जीव, मोह के वश, बार-बार देवलोक, मृत्युलोक और नरक में जाता है और हज़ारों योनियों में जन्म लेकर दुःख भोगता है। सज्जनों की सङ्गति करने से यदि वह किसी तरह उस अज्ञान-सागर से उबरता है तो फिर

जन्म-मृत्यु के दुःख से छूट जाता है। अज्ञान-सागर अति भीषण, अव्यक्त और अगाध है। जीव हमेशा उसमें डूबे रहते हैं। तुम उस अज्ञान-सागर से पार हो गये, इसलिए अब तुममें रजोगुण और तमोगुण का लेश नहीं है। ५१

तीन सौ दस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से धर्म के विषय में एक महर्षि और वसुमान् का संवाद कहना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, एक बार जनकवंशी महाराज वसुमान् ने निर्जन वन में शिकार करते-करते एक भृगुवंशी महर्षि को देखा। उनको देखते ही वसुमान् के मन में उनके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। उन्होंने पास जाकर महर्षि को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से बैठकर विनीत भाव से पूछा—भगवन्, कौन सा कर्म करने से कामनाओं के वशीभूत पुरुषों का इस लोक और परलोक में कल्याण हो सकता है?

यों पूछे जाने पर प्रसन्न होकर महर्षि ने वसुमान् का सम्मान करके कहा—महाराज, यदि तुम दोनों लोकों में मनमाने विषय प्राप्त करना चाहते हो तो कभी किसी का बुरा न चेतो। धर्म ही सज्जनों का परम हितकर और आश्रय-स्वरूप है। धर्म से ही स्थावर-जङ्गम आदि तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं। जिस तरह शहद की मक्खी रस लेने के लिए फूल पर बैठ जाती है और यह नहीं समझती कि मुझे शीघ्र ही यहाँ से भागना पड़ेगा उसी तरह तुम विषय-तृष्णा के वश होकर विषयों को भोगने में लगे हुए हो, किन्तु इस विषय-भोग के कारण जो घोर कष्ट तुम्हें भोगना पड़ेगा वह तुम्हारी समझ में नहीं आता। इन सांसारिक विषयों को छोड़ दो। जिस तरह ज्ञान का फल चाहनेवाला मनुष्य सदा ज्ञान की छानबीन करता रहता है उसी तरह धर्म का फल चाहनेवाला मनुष्य हमेशा धर्म की ओर ध्यान रक्खे। दुष्ट मनुष्य धर्म की इच्छा से अच्छे कर्म करना चाहता है तो उसके लिए बड़ी कठिनता पड़ जाती है और सज्जनों के लिए धर्म की इच्छा से शुभ कर्मों का करना बहुत सरल है। जो मनुष्य वन में रहकर गाँव का सुख भोगना चाहता है उसकी गिनती ग्रामीण मनुष्यों में ही होती है और जो गाँव में रहने पर भी ग्राम्य सुखों से बचा रहता है उसे पण्डित लोग ग्रामीण न कहकर वनवासी ही कहते हैं। अब १०
तुम सकाम और निष्काम धर्म के गुण-दोषों पर विचार करके, एकाग्रचित्त होकर, मन-वचन और शरीर से धर्म का पालन करो। व्रतधारी, पवित्र और ईर्ष्याहीन होकर, देश-काल का ध्यान रखते हुए, सुपात्रों को दान दो। अच्छे उपाय से धन पैदा करके शान्तचित्त से सत्पात्र को दान दो। दान करके फिर उसके लिए न तो पश्चात्ताप करो और न उसका ढिंढोरा पीटो। दयावान्, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सरल, वेदों के विद्वान्, षट्कर्म करनेवाले और पिता की सवर्णा विवाहिता स्त्री के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मण दान के उपयुक्त पात्र हैं। देश, काल और पात्र

के भेद से धर्म भी अधर्म हो जाता है और अधर्म धर्म गिना जाता है। जैसे खूब मल-मलकर धोने से शरीर का मैल बहुत कट जाता है और कम रगड़ने से थोड़ा ही निकल पाता है वैसे ही अधिक या कम दुष्कर्म करने से पापों की संख्या घटती-बढ़ती है। जैसे मनुष्य दस्तावर दवा खाकर कोष्ठ शुद्ध करके जब घी खाता है तब वह घी औषध के समान उसे लाभ पहुँचाता है वैसे ही धर्मार्थी मनुष्य दान आदि के द्वारा जब दोषों को हटा देता है तब यज्ञ आदि कर्म करने से परलोक में सुख पाता है। सभी का मन शुभ और अशुभ कर्मों की ओर दौड़ता है। बुद्धिमान् मनुष्य मन को अशुभ कर्मों से हटाकर शुभ कर्मों में लगावे। अपना धर्म समझकर मनुष्य जो कर्म करे उसकी निन्दा न करनी चाहिए। जिस धर्म को तुम अपना कर्तव्य समझते हो
२० उसका पालन करो। तुम धैर्यहीन, बुद्धिहीन, अशान्त और अप्राज्ञ हो। अब तुम्हें धैर्यवान्, बुद्धिमान्, शान्त और प्राज्ञ हो जाना चाहिए। धर्म से उत्पन्न तेज के प्रभाव से इस लोक और परलोक में कल्याण होता है। धैर्य ही उस तेज का मूल कारण है। धैर्यहीन होने से ही महात्मा महाभिष स्वर्ग से भ्रष्ट हुए थे और महानुभाव ययाति, पुण्यहीन होने पर भी, केवल धैर्य के बल से श्रेष्ठ लोक को गये। अब तुम धर्म का पालन करते हुए ज्ञानवान् तपस्वियों की शरण में जाकर उनकी सेवा करो। इससे तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी और तुम अपना कल्याण कर सकोगे।

हे धर्मराज, इस प्रकार महर्षि के उपदेश देने पर महाराज वसुमान् ने सांसारिक विषयों
२५ को त्यागकर धर्म का अवलम्बन किया।

तीन सौ ग्यारह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! जो धर्म-अधर्म से विमुक्त, सन्देहहीन, जन्म-मृत्यु-रहित, मङ्गलस्वरूप, नित्य, अविनाशी, विशुद्धस्वभाव और निर्लेप है उसका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, मैं यहाँ याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद सुनाता हूँ। जनक के वंश में उत्पन्न देवरात-तनय ने एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य से कहा—महर्षि, प्रकृति और इन्द्रियाँ कितनी हैं? सगुण और निर्गुण क्या है? जन्म, मृत्यु और काल किसे कहते हैं? आप ज्ञान के भाण्डार हैं। मैं अज्ञानी हूँ, इससे पूछता हूँ। कृपा करके मेरा सन्देह दूर कीजिए।

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज! योग-शास्त्र और सांख्य-शास्त्र के जानकार होते हुए भी तुमने प्रश्न किया है इससे उत्तर देना ही पड़ेगा। प्रकृति आठ प्रकार की है और विकार सोलह
१० हैं। अध्यात्म-विद्या के पण्डितों ने मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, इन आठ को प्रकृति और कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नाक, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिङ्गेन्द्रिय और मन, इन सोलह को विकार बतलाया है। उनमें पाँच कर्मेन्द्रियों

और शब्द आदि पाँच विषयों का 'विशेष' तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन, इन छः का 'सविशेष' नाम रक्खा है। पञ्चमहाभूतों में ही विशेष और सविशेष निवास करते हैं। महाराज, यह जो मैंने वर्णन किया है वह तुम्हारा और अन्यान्य तत्त्वज्ञानी पण्डितों का अनुमोदित विषय है।

अव्यक्त से महत् उत्पन्न हुआ है। पण्डितों का कहना है कि प्रकृति का सबसे पहला कार्य महत्तत्त्व है। महत् से अहङ्कार उत्पन्न हुआ। वह बुद्धि-स्वरूप द्वितीय सृष्टि है। अहङ्कार से मन की उत्पत्ति हुई, उसे आहङ्कारिक तृतीय सृष्टि कहते हैं। मन से महाभूत उत्पन्न हुए, उनका नाम मानस है और वे चौथी सृष्टि हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँचों पञ्चम सृष्टि हैं। तत्त्वज्ञानियों ने उनका नाम भौतिक रक्खा है। कान, त्वचा, आँख, २०
जीभ और नाक, ये पाँच छठी सृष्टि हैं। उन्हें बहुचिन्तात्मक सृष्टि कहते हैं। उसके बाद पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। पण्डितों ने उनको सातवीं सृष्टि और ऐन्द्रियक सृष्टि कहा है। वृक्ष और जङ्गली पशु-पक्षी आदि की सृष्टि को आठवीं सृष्टि और (ग्राम्य) पशु-पक्षी आदि तथा मनुष्यों की सृष्टि को नवीं सृष्टि बतलाया है। इन दोनों सृष्टियों को आर्जव सृष्टि कहते हैं। महाराज, यह मैंने शास्त्र के अनुसार नव प्रकार की सृष्टि और चौबीस तत्त्वों का वर्णन किया। अब पण्डितों के बतलाये हुए काल की संख्या सुनो। २६

तीन सौ बारह अध्याय

याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद। अण्ड आदि सृष्टि का वर्णन

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज, दस हज़ार कल्प का नारायण का एक दिन होता है और उतने ही कल्पों की एक रात होती है। नारायण ने रात बीतने पर जागकर पहले, प्राणियों के निर्वाह के लिए, अन्न आदि पैदा किया। उसके बाद ब्रह्मा को उत्पन्न किया। ब्रह्मा सब प्राणियों के मूर्त्ति-स्वरूप हैं। वे एक वर्ष तक तो अण्ड में रहे, उसके बाद उसमें से निकलकर उन्होंने पृथिवी, स्वर्ग और स्वर्ग तथा पृथिवी के मध्यवर्ती आकाश की उत्पत्ति की। साढ़े सात हज़ार कल्प का उनका एक दिन होता है और उतने ही कल्पों की एक रात होती है। ब्रह्मा ने सबसे पहले अहङ्कार और उसके बाद मन, बुद्धि तथा चित्त को उत्पन्न किया। अहङ्कार आदि से पृथिवी, जल, वायु, आकाश और अग्नि, ये महाभूत और इन पञ्चमहाभूतों से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। ये इन्द्रियाँ चर-अचर सब प्राणियों में होती हैं। पाँच हज़ार कल्प का परमेष्ठीरूप १०
अहङ्कार का एक दिन होता है और उतनी ही बड़ी एक रात होती है। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, इन पाँचों का नाम 'विशेष' है। ये सब पञ्चमहाभूतों में रहते हैं। इन्हीं के प्रभाव से सब प्राणी एक-दूसरे का हित और स्पृहा करते तथा परस्पर ईर्ष्या करके एक-दूसरे का वध करते हैं। इन्हीं कर्मों के कारण मनुष्य, शरीर त्यागने के बाद, तिर्यक्योनि में जन्म पाता है

और इसी लोक में भ्रमता रहता है। तीन हज़ार कल्प का पञ्चमहाभूतों का एक दिन होता है और उतने ही कल्पों की उनकी रात होती है।

इन्द्रियों में मन सबसे श्रेष्ठ है। मन की सहायता के बिना कोई इन्द्रिय अपना काम नहीं कर सकती। मन की सहायता के बिना आँख रूप को नहीं देख सकती। मन के व्याकुल होने पर आँख पास की वस्तु को भी नहीं देख सकती। मनुष्यों का कहना है कि इन्द्रियों को ही दर्शन आदि का ज्ञान होता है, किन्तु ऐसा नहीं है। असल में सब विषयों का ज्ञान मन को ही होता है। जब मन विषयों से हट जाता है तब इन्द्रियाँ भी दर्शन-स्पर्शन आदि काम छोड़
२१ देती हैं। मन सब इन्द्रियों का स्वामी है। वह सब प्राणियों में होता है।

तीन सौ तेरह अध्याय

प्रलय का संक्षिप्त वर्णन

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज, यह मैंने सृष्टि और काल की संख्या का वर्णन किया; अब संहार का विषय सुनो। अनादि अनन्त ब्रह्माजी बार-बार जीवों को उत्पन्न करते और उनका संहार करते हैं। जब प्रलय का समय आ जाता है तब वे, संसार का संहार करने के लिए, महारुद्र को प्रेरित करते हैं। ये रुद्रदेव सूर्य-रूप से, बारह भागों में विभक्त होकर, प्रज्वलित अग्नि के समान अपने तेज से जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज, चारों प्रकार के प्राणियों को भस्म कर देते हैं। तब पृथिवी कछुए की पीठ की तरह हो जाती है। उसके बाद महापराक्रमी रुद्रदेव जल के द्वारा पृथिवी को डुबा देते हैं। फिर प्रलयकाल की आग के द्वारा जल को सुखा देते हैं। जल के सूख जाने पर प्रज्वलित आग भयानक रूप धारण करती है। तब अष्ट-मूर्ति-धारी बलवान् वायु, प्राणियों के ऊष्मा-स्वरूप, उस अग्नि को खा जाता है और बड़े वेग से सब
१० दिशाओं में घूमने लगता है। उस भीषण वायु को आकाश ग्रस लेता है। फिर मन आकाश को, अहङ्कार मन को, महत्तत्त्व अहङ्कार को और जगदीश्वर उस श्रेष्ठ महत्तत्त्व को ग्रास कर लेता है। जगदीश्वर अणिमा आदि गुणों से युक्त, त्रिकालज्ञ, ज्योति-स्वरूप और अव्यय है। उसके हाथ, पैर, नाक, कान, आँखें, सिर और मुँह सब दिशाओं में हैं। वह सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। वह सब प्राणियों का अन्तर्यामी और अन्तरात्मा है। महत्तत्त्व का नाश हो जाने पर सब पदार्थ उसी में लीन हो जाते हैं। न तो उसकी वृद्धि होती, न ह्रास होता और न क्षय ही होता है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान का स्रष्टा है। उसमें लेशमात्र दोष नहीं है।

महाराज, यह मैंने प्रलय का वर्णन कर दिया; अब अध्यात्म, अधिभूत और अधिष्ठात्री
१७ देवता का वर्णन सुनो।

तीन सौ चौदह अध्याय

इन्द्रियों का विषय और उनके अभिमानी जीवात्मा तथा सत्त्व आदि गुणों का वर्णन

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज, चरण-इन्द्रिय अध्यात्म, चलना उसका अधिभूत और विष्णु उसके देवता हैं। गुदा-इन्द्रिय अध्यात्म, मल त्यागना उसका अधिभूत और मित्र उसके देवता हैं। लिङ्गेन्द्रिय अध्यात्म, आनन्द उसका अधिभूत और प्रजापति उसके देवता हैं। दोनों हाथ अध्यात्म, काम करना उनका अधिभूत और इन्द्र उनके देवता हैं। वाक्-इन्द्रिय अध्यात्म, वक्तव्य विषय उसका अधिभूत और अग्नि उसके देवता हैं। आँख-इन्द्रिय अध्यात्म, रूप उसका अधिभूत और सूर्य उसके देवता हैं। कर्ण-इन्द्रिय अध्यात्म, शब्द उसका अधिभूत और दिशाएँ उसके देवता हैं। जिह्वा-इन्द्रिय अध्यात्म, रस उसका अधिभूत और जल उसका देवता है। घ्राण (नाक)-इन्द्रिय अध्यात्म, गन्ध उसका अधिभूत और पृथिवी उसकी अधिष्ठात्री है। त्वक्-इन्द्रिय अध्यात्म, स्पर्श उसका अधिभूत और वायु उसका देवता है। मन अध्यात्म, मन्तव्य विषय उसका अधिभूत और चन्द्रमा उसका देवता है। अहङ्कार अध्यात्म, अभिमान उसका अधिभूत और बुद्धि उसका देवता है। बुद्धि अध्यात्म, ज्ञातव्य विषय उसका अधिभूत और आत्मा उसका देवता है। ये सब देवता इन इन्द्रियों मे निवास करते हैं। महाराज! यह मैंने इन्द्रिय, अधिभूत और उनके देवताओं का वर्णन किया। यह सब प्रपञ्च रचने के लिए प्रकृति अपनी इच्छा के अनुसार बार-बार गुणों को उत्पन्न करती है। जैसे मनुष्य एक दीपक से बहुत से दीपक जला लेता है वैसे ही प्रकृति, पुरुष के एक-एक गुण से, अनेक गुण उत्पन्न कर देती है। सत्त्व, आनन्द, ऐश्वर्य, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धता, आरोग्य, सन्तोष, श्रद्धा, अकृपणता, अक्रोध, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समदर्शिता, सत्य, ऋणी न होना, नम्रता, लज्जा, अचपलता, सरलता, आचार, अभ्रान्तता, इष्ट और अनिष्ट के वियोग की उदासीनता, प्राणियों की रक्षा, निर्लोभता, दूसरों की जीविका के लिए धन का उपार्जन और सब प्राणियों पर दया, इस प्रकार के गुण सत्त्वगुण से उत्पन्न होते हैं। रूप, ऐश्वर्य, विग्रह, सांसारिक व्यवहार में उलझे रहना, निर्दयता, सुख-दुःख में आसक्ति, दूसरों की निन्दा, विवाद और अहङ्कार करना, असम्मान, चिन्ता, शत्रुता, शोक, चोरी, निर्लज्जता, कुटिलता, भेदज्ञान, पुरुषत्व, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और बकवाद करना, ये गुण रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। मोह, अप्रकाश, मरण, क्रोध, असावधानी, अनेक प्रकार के भोजनों में रुचि, खाने-पीने में असन्तोष, सुगन्ध, वस्त्र, शय्या, आसन, विहार, दिन में सोने और दूसरों की निन्दा करने में आनन्द, नाच-गान और बाजे मे रुचि तथा धर्म से द्वेष, ये तमोगुण से उत्पन्न होते हैं।

१०

२०

२८

तीन सौ पन्द्रह अध्याय

याज्ञवल्क्य का जनक को सत्त्व आदि गुणों का तारतम्य बतलाना
और जनक का मोक्ष-धर्म के विषय में प्रश्न करना

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज ! सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण प्रकृति से उत्पन्न होकर संसार के सब प्राणियों में रहते हैं। इन गुणों का कभी नाश नहीं होता। अव्यक्तरूप परमात्मा इन गुणों के विकार से अपने को अनेक रूपों में प्रकाशित करता है। आत्मज्ञानियों ने कहा है कि सात्त्विक पुरुषों को श्रेष्ठ गति, रजोगुणी मनुष्यों को मध्यम और तमोगुणी लोगों को नीच गति मिलती है। जो पुरुष केवल पुण्य करते हैं उन्हें देवलोक, जो पुण्य और पाप दोनों करते हैं उन्हें मनुष्यलोक और जो केवल पाप करते हैं उन्हें तिर्यक्योनि में जाना पड़ता है।

अब सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों के द्वन्द्व और सन्निपात का वर्णन विस्तार से सुनो। सत्त्वगुण के साथ रजोगुण, रजोगुण के साथ तमोगुण अथवा तमोगुण के साथ सत्त्व-गुण मिलने से गुणों का द्वन्द्व कहलाता है। सत्त्वगुण से युक्त मनुष्यों को देवलोक, सत्त्व और रजोगुण से युक्त मनुष्यों को मनुष्यलोक, तथा रज और तमोगुण से युक्त मनुष्यों को तिर्यक्योनि में जाना पड़ता है। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के संयोग को सन्निपात कहते हैं। जो मनुष्य इन तीनों गुणों में आसक्त रहता है उसे मनुष्यलोक में जन्म लेना पड़ता है। पुण्य-पाप
१० से मुक्त तत्त्वज्ञ महात्मा लोग जन्म-मृत्यु-रहित, इन्द्रियों से परे, सनातन अक्षयलोक को जाते हैं।

तुमने पहले परमात्मा के सम्बन्ध में जो चर्चा छेड़ी थी, अब उसका वर्णन सुनो। पर-मात्मा प्रकृति से भिन्न है। यद्यपि परमात्मा प्रकृति से सम्बद्ध है तथापि वह निर्विकार ही रहता है। प्रकृति स्वभाव से ही जड़ पदार्थ है। परमात्मा के नेतृत्व में वह चैतन्य होकर प्राणियों की सृष्टि और उनका संहार करती है।

जनक ने कहा—भगवन् ! प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि, अविनाशी, रूपहीन, अचल और अच्युत हैं; वे स्वभाव और बुद्धि से अगम्य हैं। तो फिर प्रकृति को जड़, और प्रकृति में स्थित पुरुष को चेतन किस तरह माना जावे ? आपने मोक्ष-धर्म की प्रशंसा विशेष रूप से की है, इसी से मैं आपसे विस्तार के साथ मोक्ष-धर्म सुनना चाहता हूँ। अब आप पुरुष के अस्तित्व, एकत्व और प्रकृति से उसकी भिन्नता का तथा शरीर की इन्द्रियों, मृत मनुष्यों के स्थान, सांख्य-शास्त्र, योगशास्त्र और मृत्यु का वर्णन कीजिए। ये सब बातें आपको, हथेली पर रक्खे
१८ हुए आँवले की तरह, मालूम हैं।

तीन सौ सोलह अध्याय

याज्ञवल्क्य का जनक से सांख्यशास्त्र का मत कहना

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज, निर्गुण को कोई सगुण नहीं कर सकता। निर्गुण और सगुण का वर्णन विस्तारपूर्वक सुनो। तत्त्वदर्शी महात्मा मुनियों ने परमात्मा को गुणों से युक्त होने पर सगुण और गुणहीन होने पर निर्गुण कहा है। प्रकृति गुणात्मक है, इसलिए वह कभी गुणों का त्याग नहीं कर सकती। वह अपनी स्वाभाविक अज्ञता से गुणों का ही आश्रय करती है। पुरुष ज्ञानवान् है। वह अपने को सबसे श्रेष्ठ समझता है। नित्य और अविनाशी पुरुष को चेतन तथा सृष्टि और संहार करनेवाली प्रकृति को जड़ कहते हैं। जब पुरुष अज्ञान के वश होकर बार-बार गुणों का आश्रय करता है तब वह अपने को भूलकर मोक्ष प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। पुरुष जब सृष्टि करता है तब उसे सृष्टि-धर्मावलम्बी, जब योग करता है तब उसे योग-धर्मावलम्बी, जब प्राकृत धर्म का पालन करता है तब प्रकृति-धर्मावलम्बी और जब स्थावर पदार्थों की उत्पत्ति करता है तब उसे बीज-धर्मावलम्बी कहते हैं। वह गुणों का सृष्टिकर्ता और संहारक है; वह निस्सङ्ग, सर्वमय और शरीर आदि से पृथक् है; इसी से अध्यात्म-विद्या के जानकारों ने उसे अद्वितीय और नित्य तथा प्रकृति को अनित्य और अनेकरूप बतलाया है। कोई-कोई प्रकृति को एक और पुरुष को अनेक बतलाते हैं। उनके मत में पुरुष सब प्राणियों पर दया करके, केवल ज्ञान का अवलम्बन करके उनमें निवास करता है। १०

महाराज, यह मैंने पुरुष के अस्तित्व और एकत्व का वर्णन किया। अब पुरुष और प्रकृति की भिन्नता सुनो। जिस तरह मूँज और सिरकी, गूलर और पतङ्गे, पानी और मछली, चूल्हा और आग तथा कमल के पत्ते और पानी, एक जगह रहने पर भी एक-दूसरे से भिन्न हैं उसी तरह अनित्य प्रकृति और नित्य पुरुष एकत्र रहते हुए भी पृथक्-पृथक् हैं। जो मनुष्य प्रकृति और पुरुष की भिन्नता नहीं जानता वह अधम बार-बार घोर नरक में गिरता है। यह मैंने सांख्य का मत विस्तार के साथ तुमको बतलाया। सांख्यशास्त्र के विद्वान् पुरुष इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष के भेद का ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं। तत्त्वज्ञानी मनुष्य सांख्य-मत के द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं। अब योग का वर्णन सुनो। २०

तीन सौ सत्रह अध्याय

योग-शास्त्र का वर्णन

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज! सांख्य का ज्ञान तो मैं बतला ही चुका, अब योग का विषय सुनो। सांख्य-ज्ञान के सदृश ज्ञान और योग-बल के समान बल दूसरा नहीं है। इन्हीं

दोनों शास्त्रों के मत का अनुष्ठान करने की विधि बतलाई गई है और यही दोनों मत मुक्ति के साधन हैं। नासमझ मनुष्य ही इन दोनों में भेद मानता है। मैं इन दोनों मतों को एकरूप समझता हूँ। योगी और सांख्य-मतावलम्बी दोनों ही सिद्ध होने पर परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। अतएव सांख्य और योग-शास्त्र को जो मनुष्य तुल्य समझता है वही यथार्थ पण्डित है। प्राण और इन्द्रियों को वशीभूत करके योगसिद्ध होने पर अणिमा आदि आठ गुण प्राप्त हो जाते हैं। वेद में संयम-नियम आदि आठ अङ्गों से युक्त योग को श्रेष्ठ बतलाया है। ये संयम-नियम आदि आठ गुण सूक्ष्म, और अणिमा आदि आठ गुण उनकी अपेक्षा स्थूल हैं। योग दो प्रकार का है—सगुण और निर्गुण। प्राणायाम-युक्त योग को सगुण और चित्त की एकाग्रता से युक्त योग को निर्गुण कहते हैं। प्राणायाम भी दो प्रकार का है—सबीज और निर्बीज। मूलाधार आदि चक्रों में स्थित देवताओं का ध्यान न करके प्राणायाम करने पर वात की अधिकता होती है, इसलिए उसे कभी न करना चाहिए। रात के पहले पहर में बारह और अन्तिम पहर में बारह, यों चौबीस प्रकार के वायु धारण करने का विषय योग-शास्त्र में बतलाया गया है। दमगुण से युक्त शास्त्रज्ञ संन्यासियों का कर्तव्य है कि चौबीस प्रकार के वायु को धारण करके और चञ्चल मन को स्थिर करके जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलावें। योगी महात्मा लोग पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को शब्द आदि विषयों से हटाकर मन में, मन को अहङ्कार में, अहङ्कार को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को प्रकृति में स्थित करके परमात्मा का ध्यान करते हैं। परमात्मा निष्पाप, निर्मल, नित्य, अनन्त, अच्युत, स्थिर, जरा-मरणहीन और अभेद्य है।

अब नित्य समाधि-युक्त योगी के लक्षण सुनो। इस प्रकार का योगी हमेशा प्रसन्नचित्त रहकर सन्तुष्ट सोये हुए मनुष्य के समान और वायु से सुरक्षित तेल से पूर्ण जलते हुए दीपक के तुल्य स्थिर रहता है। जैसे पानी की बूँदों से पहाड़ को चोट नहीं लगती और वह हिलता-डुलता नहीं है वैसे ही योगी किसी विषय से विचलित नहीं होता। शङ्खध्वनि, नगाड़े के शब्द और अनेक प्रकार के गाने-बजाने से योगी के योग को भङ्ग करना कठिन है। जैसे स्थिर स्वभाव का मनुष्य तेल से भरा हुआ बर्तन लेकर सीढ़ी पर चढ़ते समय खड्गधारी पुरुष के डाटने पर भी भयभीत न होकर तेल की एक बूँद तक नहीं गिरने देता वैसे ही योगी, इन्द्रियों की चञ्चलता के कारण, योग से विचलित नहीं होता। योग में अच्छी निपुणता हो जाने पर घोर अन्धकार में स्थित तेज की भाँति अव्यय ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। मनुष्य केवल योग के द्वारा इस नश्वर शरीर का त्याग करके मुक्त हो जाता है। यह मैंने योगियों के लक्षण और योग का विषय तुमसे कहा। विद्वान् पुरुष योग का ज्ञान प्राप्त करके अपने को कृतकार्य मानते हैं।

तीन सौ अठारह अध्याय

शरीर के स्थान-भेद से निकलने पर जीवात्मा की गति और मरणासन्न मनुष्य के लक्षण बतलाना

याज्ञवल्क्य ने कहा—राजन्, मृत्यु के समय जीवात्मा शरीर के जिन-जिन स्थानों से निकलकर जो-जो गति प्राप्त करता है उसे सुनो। जीवात्मा पैरों के द्वारा निकलने पर विष्णुलोक को, पिंडलियों के द्वारा निकलने से अष्टवसु के लोक को, जानु के द्वारा निकलने से साध्यदेव के लोक को, गुदा के द्वारा निकलने से मैत्रलोक को, जाँघों के द्वारा निकलने से मनुष्य-लोक को, ऊरु द्वारा निकलने से प्रजापति-लोक को, पार्श्व द्वारा निकलने से महत्लोक को, नाक की राह निकलने से चन्द्रमा के लोक को, बाहु द्वारा निकलने से इन्द्रलोक को, हृदय के द्वारा निकलने से रुद्रलोक को, गले के द्वारा निकलने से ऋषियों के लोक को, मुँह की राह निकलने से विश्वेदेवाओं के लोक को, कान की राह निकलने से दिग्-देवता के लोक को, घ्राण के द्वारा निकलने से वायुलोक को, आँख की राह निकलने से सूर्यलोक को, भौंह के द्वारा निकलने से अश्विनीकुमारों के लोक को, मस्तक की राह निकलने से पितृलोक को और ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा निकलने पर ब्रह्मलोक को जाता है।

मनुष्यों के जिन-जिन स्थानों द्वारा निकलने से जीवात्मा की जो-जो गति होती है सो मैंने बतला दी। अब मरणासन्न मनुष्य के लक्षण सुनो। जो मनुष्य अरुन्धती और ध्रुव नक्षत्र को, जिन्हें कि पहले देखता था, न देख सके और जो पूर्ण चन्द्रमा तथा दीपक की ज्योति के दाहने भाग को खण्डित देखने लगे वह केवल एक वर्ष जीवित रह सकता है। जो मनुष्य दूसरे की आँख की पुतली में अपना प्रतिबिम्ब न देख सके वह भी वर्ष भर तक जी सकता है। जो १०
मनुष्य तेजस्वी और ज्ञानवान् होने पर भी तेजहीन और अज्ञानी हो जावे, जिसका स्वभाव बदल जावे अर्थात् कृपण हो तो दानी और दानी हो तो कृपण हो जावे, जो काले रङ्ग का मनुष्य पीला पड़ जावे और जो देवताओं की निन्दा तथा ब्राह्मणों के साथ द्वेष करने लगे वह छः महीने से अधिक नहीं जी सकता। जो मनुष्य सूर्य और चन्द्रमा को मकड़ी के जाले के चक्र के समान छिद्रयुक्त देखे और मन्दिरों की सुगन्धित वस्तुओं की सुगन्ध जिसे मुर्दे की गन्ध के समान जान पड़ने लगे वह मनुष्य सात दिन के अन्दर मर जायगा। जिसकी नाक और कान टेढ़े हो जावें, जिसके दाँतों का रङ्ग बिगड़ जावे, जिसकी बुद्धि जाती रहे, जिसके सब अङ्ग ठण्ढे पड़ जावें, जिसकी बाईं आँख से आँसू निकलने लगे और जिसके माथे से धुआँ उठने लगे वह मनुष्य बहुत जल्दी मर जायगा। आत्मज्ञानी महात्मा लोग इस प्रकार मृत्यु के लक्षणों को जानकर रात-दिन परमात्मा के साथ जीवात्मा को मिलाते हुए मृत्युकाल की प्रतीक्षा करते हैं। यदि वे मरने की इच्छा नहीं करते तो इन्द्रियों को वश में करके, शब्द आदि विषयों को त्यागकर, मृत्यु को जीत लेते हैं। उसके बाद सांख्य तत्त्व का अवलम्बन करके योग के बल से जीवात्मा को परमात्मा में मिलाकर, साधारण मनुष्यों के लिए अति दुर्लभ, अक्षय सनातन ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। २१

तीन सौ उन्नीस अध्याय

याज्ञवल्क्य का जनक से मोक्ष-धर्म का वर्णन करना

याज्ञवल्क्य ने कहा—महाराज ! तुमने जो परब्रह्म का विषय पूछा था अब उस गोपनीय विषय को, सावधान होकर, सुनो। ऋषियों की बतलाई हुई विधि के अनुसार विनम्र भाव से मैंने सूर्यदेव से यजुर्वेद प्राप्त किया था। भगवान् भास्कर को प्रसन्न करने के लिए मैंने घोर तपस्या की थी। एक दिन प्रसन्न होकर उन्होंने मुझसे कहा—महर्षि, मुझे प्रसन्न करना बहुत कठिन है; किन्तु तुम्हारी भक्ति देखकर मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। अब जो चाहो सो माँग लो। प्रसन्न होकर सूर्यदेव के यों कहने पर मैंने उनको प्रणाम करके कहा—भगवन्, मुझे यजुर्वेद का अभ्यास नहीं है और उसे जानने की मेरी बड़ी इच्छा है। तब सूर्यदेव ने कहा—मैं तुमको यजुर्वेद देता हूँ। अपना मुँह फैलाओ, देवी सरस्वती तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो जायँगी। आज्ञा पाकर मैंने अपना मुँह फैलाया और देवी सरस्वती मेरे मुँह में समा गईं। उनके प्रविष्ट होते ही मेरे शरीर में जलन होने लगी। तब मैंने पानी में डुबकी लगाई। अपनी यह दशा देखकर मुझे सूर्यदेव पर बड़ा क्रोध आया। मुझे दुखी देखकर सूर्यदेव ने कहा—महर्षि, थोड़ी देर तक इस कष्ट को सह लो, मुहूर्त भर में तुम्हारी यह जलन मिट जायगी और शरीर शीतल हो जायगा। बस, क्षण भर में मेरा शरीर शीतल हो गया। तब उन्होंने फिर कहा—महर्षि ! पद, शाखा, सम्पूर्ण शतपथ और उपनिषद् समेत यजुर्वेद का ज्ञान तुमको होगा। उसका ज्ञान होने पर तुम्हारी बुद्धि मोक्ष-मार्ग में प्रवेश करेगी, तब तुम सांख्य-मतावलम्बी और योगी के पद को प्राप्त करोगे। यह कहकर सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये।

१०

इसके बाद अपने घर आकर प्रसन्नता से मैंने सरस्वती को स्मरण किया। स्मरण करते ही सरस्वती, स्वर और व्यञ्जन वर्णों समेत, ओंकार को आगे करके मेरे सामने आ गईं। देखते ही मैंने उनको और सूर्यदेव को अर्घ्य दिया। तब सम्पूर्ण शतपथ, उपनिषद्, तर्क और परिशिष्ट समेत यजुर्वेद मुझे हृदयङ्गम

हो गया। उसके बाद अपने मामा वैशम्पायन का और उनके शिष्यों का अप्रिय करने के लिए मैंने वेद पढ़ाकर सौ शिष्य तैयार किये। उन शिष्यों को लेकर, किरणों से शोभित सूर्य के समान, मैं तुम्हारे पिता के यज्ञ में दीक्षित हुआ। वहाँ महर्षि देवल के सामने, वेद-पाठ की दक्षिणा के लिए, मामा वैशम्पायन के साथ मुझसे विवाद हो गया। सुमन्तु, जैमिनि, पैल, तुम्हारे पिता और अन्य महर्षियों के कहने से मैंने आधी दक्षिणा मामा को दे दी। २०

इस प्रकार मुझे सूर्यदेव से यजुर्वेद की पन्द्रह शाखाएँ प्राप्त हुईं। इसके सिवा रोमहर्ष से मैंने पुराण पढ़े। इसके बाद सूर्यदेव के प्रभाव से और सरस्वती की कृपा से मैंने वेद का तात्पर्य प्रकट करना आरम्भ किया। शिष्यों को परिशिष्ट समेत सम्पूर्ण वेद उत्तम रीति से पढ़ाया। वे पढ़-लिखकर प्रसन्नता से अपने-अपने स्थान को चले गये। ज्ञानी पुरुषों को पहले सूर्यदेव की बतलाई हुई इन पन्द्रह शाखाओं को पढ़कर उसके बाद ज्ञातव्य विषय का विचार करना चाहिए।

एक बार वेद-वेदान्त के ज्ञाता गन्धर्वराज विश्वावसु, ब्राह्मणों से हितकर मोक्ष और ज्ञेय पदार्थ का विषय पूछते हुए, मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे कहा—ब्रह्मन्! विश्व, अविश्व, अश्वा, अश्व, मित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, अज्ञ, ज्ञ, तपाः, अतपाः, सूर्याद, सूर्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अचल, चल, अक्षय और क्षय, इन शब्दों का अर्थ क्या है? और तर्क के द्वारा किस प्रकार प्रकृति और पुरुष का नित्यत्व प्रमाणित किया जाता है? मैंने उनसे कहा—गन्धर्वराज! ३०
थोड़ी देर ठहर जाओ, मैं इन प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। मेरी बात मानकर गन्धर्वराज चुप हो गये। तब मैंने मन में देवी सरस्वती का ध्यान किया। स्मरण करते ही, जैसे दही से घी निकलता है वैसे ही, जिन-जिन शास्त्रों का मनन करके उन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता था वे सब शास्त्र मुझे उपस्थित हो गये। तब मैं सम्पूर्ण उपनिषद् और आन्वीक्षिकी शास्त्र का मनन करने लगा। यह आन्वीक्षिकी विद्या मनुष्य को मुक्ति देनेवाली और चौथी विद्या कहलाती है।

मैंने विश्वावसु से कहा—गन्धर्वराज! अपने प्रश्नों का उत्तर सुनो। जन्म-मरण के भय और तीनों गुणों से युक्त विश्व को प्रकृति और अविश्व को निर्गुण पुरुष कहते हैं। इसी प्रकार अश्वा प्रकृति और अश्व पुरुष, वरुण प्रकृति और मित्र पुरुष, ज्ञान प्रकृति और ज्ञेय पुरुष, अज्ञ प्रकृति और ज्ञ पुरुष, तपाः प्रकृति और अतपाः पुरुष, अविद्या प्रकृति और विद्या पुरुष, अवेद्य प्रकृति और वेद्य पुरुष, सूर्याद प्रकृति और सूर्य पुरुष तथा चल प्रकृति और अचल पुरुष है। ४३
मत-भेद से प्रकृति को वेद्य और पुरुष को अवेद्य कहते हैं। प्रकृति और पुरुष दोनों अज्ञ, नित्य, अक्षय और जन्म-मृत्युहीन हैं। उनका जन्म नहीं होता इसलिए वे अज हैं और क्षय नहीं होता इससे उनका नाम अक्षय है। सत्त्व आदि गुणों का आश्रय और संसार की सृष्टि करने के कारण प्रकृति को अक्षय कहते हैं। यह मैंने वेद के अनुसार विश्व-अविश्व आदि शब्दों का अर्थ और तर्क द्वारा प्रकृति तथा पुरुष का अक्षयत्व प्रमाण सहित तुमको बतलाया। गुरु की

सेवा करके, वेद का तात्पर्य जानकर, नित्यक्रिया करने के बाद वेद का अध्ययन करना चाहिए। जो मनुष्य साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन तो करता हो किन्तु उससे आकाश आदि महाभूतों की सृष्टि और संहार के कर्त्ता, वेद में प्रसिद्ध, परमात्मा को न जान सके तो उसका वेद पढ़ना वेद का
५० बोझ लादने के समान है। घी की इच्छा से यदि कोई मनुष्य गधी का दूध मथे तो उसे घी तो मिलेगा नहीं, बल्कि विष्ठा के समान दुर्गन्ध उसके हाथ लगेगी। जो मनुष्य वेद पढ़कर प्रकृति और पुरुष का ज्ञान न प्राप्त कर सका वह महामूर्ख है और उसका पढ़ना व्यर्थ है। यत्न के साथ प्रकृति और पुरुष, दोनों का साक्षात्कार करना चाहिए। तब फिर संसार में जन्म-मृत्यु के वशीभूत नहीं रहना पड़ता। (कर्मकाण्ड) वेद में बतलाये हुए नश्वर धर्मों को छोड़कर, अक्षय धर्म योग में लगकर, प्रतिदिन आत्मा के शुद्ध रूप को हृदय में देखने से प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। अविवेकी मनुष्य परमात्मा को जीवात्मा से भिन्न समझते हैं किन्तु विद्वान् पुरुष जीवात्मा और परमात्मा को एकरूप मानते हैं। योगी और सांख्यमतावलम्बी पुरुष अविनाशी जीवात्मा और परमात्मा के अभिन्न ज्ञान की ही विशेष प्रशंसा करते हैं।

विश्वावसु ने फिर पूछा—ब्रह्मन्, आपने जीवात्मा को अविनाशी कहा है। आप ठीक-ठीक बतलाइए कि वास्तव में जीवात्मा अविनाशी है या नहीं। यद्यपि मैंने बुद्धिमान् जैगीषव्य, असित देवल, पराशर, वार्षगण्य, भृगु, पञ्चशिख, कपिल, शुक, गौतम, आर्ष्टिषेण, गर्ग, नारद, आसुरि, पुलस्त्य, सनत्कुमार, शुक्राचार्य, पिता कश्यप, रुद्र, विश्वरूप, देवता, पितर और दैत्यों से
६३ इस विषय को सुना है तो भी आपके मुँह से इस विषय के सुनने की इच्छा है। आप श्रेष्ठ वक्ता, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। देवता, पितर, ब्रह्मलोक के महर्षिगण और सूर्यदेव हमेशा आपकी प्रशंसा किया करते हैं। आप सांख्य-शास्त्र, योग-शास्त्र और चराचर विश्व का विषय अच्छी तरह जानते हैं। इसी से मैंने यह श्रेष्ठ ज्ञान आपसे प्राप्त करने की इच्छा की है।

तब मैंने कहा—गन्धर्वराज, तुम बड़े मेधावी हो अतएव तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ।
७० जीवात्मा जड़रूप प्रकृति को जान सकता है; किन्तु प्रकृति जीवात्मा को नहीं जान सकती। सांख्य और योग के विद्वान् लोग जीवात्मा को ज्ञानवान् कहकर श्रेष्ठ मानते हैं। देहाभिमानी जीवात्मा परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकता; किन्तु देहाभिमान छूटने पर उसे परमात्मा का ज्ञान हो जाता है। जीवात्मा और शरीर दोनों को परमात्मा हमेशा देखता रहता है। ज्ञानी मनुष्य चौबीस तत्त्वों से युक्त शरीर को कभी आत्मा नहीं मानता। मछली को चारा देने से जैसे वह उस पर आसक्त हो जाती है वैसे ही जीवात्मा, परमात्मा की प्रेरणा से, विषयों में आसक्त रहता है। जीव जब तक शरीर के साथ रहकर, अभेद-बुद्धि के कारण स्नेहवश

होकर, परमात्मा के साथ अपना ऐक्य नहीं समझ सकता तब तक संसार-सागर में डूबा रहता है। जब वह परमात्मा को अपने से अभिन्न समझ लेता है तब संसार-सागर से पार हो जाता है। जीव जब अपने को शरीर से पृथक् समझ लेता है तब परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता ८०
है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों स्वतन्त्र हैं; किन्तु सज्जनों ने उनका स्वरूप एक माना है। जब जीव अपने को शरीर से भिन्न समझता है और परमतत्त्व परमात्मा को द्रष्टा और दृश्य, भिन्न और अभिन्न, संसार का कारण और जीव-रूप न समझकर ज्ञान के द्वारा उसके दर्शन करता है तब वह सर्वज्ञ होकर मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार परमात्मा के साथ एकीभाव होने पर जीवात्मा अविनाशी कहलाता है। हे गन्धर्वराज! यह मैंने शास्त्र के अनुसार प्रकृति, जीव और ब्रह्म का विषय तुमसे कहा। इस प्रकार ज्ञान से परिपूर्ण मेरे वचनों

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि दिव्य-रूपधारी गन्धर्वराज बड़ी प्रसन्नता से मुझे प्रणाम और प्रदक्षिणा करके देवलोक को चले गये और शीघ्र ही भूलोक, स्वर्गलोक और नागलोक में सुमार्ग पर चलनेवाले पुरुषों में मेरे उपदेश का प्रचार करने लगे।

महाराज! सांख्यमतावलम्बी, योगधर्म में तत्पर और मोक्ष के अभिलाषी अन्यान्य पुरुषों के लिए यह उपदेश अत्यन्त श्रेयस्कर है। ज्ञान से ही मोक्ष होता है। अतएव ज्ञान का उपार्जन करना चाहिए। ज्ञान के द्वारा मनुष्य जन्म-मरण से छूट जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की बात तो दूर रही, शूद्र आदि नीच जाति से भी ज्ञान का उपदेश मिलने पर उनके प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए। श्रद्धावान् पुरुष को जन्म-मृत्यु का भय नहीं रहता। सभी वर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं, अतएव सभी वर्ण ब्राह्मण कहे जा सकते हैं और सब वर्णों को वेद पढ़ने का अधिकार है। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है। ब्रह्मा के मुँह से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, नाभि से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य अज्ञान के वश बार-बार जन्म-मृत्यु पाता है। ९०
अतएव ज्ञान का उपार्जन अवश्य करना चाहिए। ज्ञान का प्रभाव सर्वत्र सब काल में रहता है। प्राचीन समय में अनेक ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि ज्ञान का उपार्जन करके मुक्त हो गये हैं। इसलिए मोक्ष ही नित्यसिद्ध स्थान है। महाराज, तुमने जो प्रश्न किये थे उनका ठीक-ठीक उत्तर मैंने दे दिया। अब तुम अच्छी तरह इनको ध्यान में रखकर प्रसन्नता से इन्हीं के अनुसार ज्ञान का उपार्जन करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार मिथिला-नरेश देवरात के पुत्र को उपदेश दिया। उसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। महर्षि की प्रदक्षिणा करके उन्होंने उनको बिदा किया। महर्षि के चले जाने पर मिथिला-नरेश ने ब्राह्मणों को एक-एक करोड़ गायें, एक-

एक करोड़ सोने की मुद्राएँ और एक-एक अञ्जलि रत्न दिये। इसके बाद उन्होंने अपने पुत्र को राज्य देकर अज्ञान के मूल धर्म-अधर्म का त्याग करके संन्यास धर्म ग्रहण कर लिया। सांख्य और योगशास्त्र को पढ़कर—अपने को सर्वव्यापी समझकर—धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सच-झूठ
१०० और जन्म-मृत्यु सबको वे व्यर्थ समझने लगे।

हे धर्मराज! सांख्य और योग-शास्त्र के पण्डित लोग संसार को प्रकृति और पुरुष का कार्य समझते हैं। विद्वान् पुरुष सर्वश्रेष्ठ परमब्रह्म को इष्ट-अनिष्ट से मुक्त, नित्य और पवित्र बतलाते हैं। अतएव तुम भी पवित्र भाव धारण करो। दाता, देने की वस्तु, दान और दान लेनेवाला, सबको आत्मा समझो। आत्मा ही अद्वितीय पदार्थ है, उससे बढ़कर कुछ नहीं है। उसी का हमेशा ध्यान करो। जिसे ब्रह्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है उसके लिए तीर्थयात्रा और यज्ञ करना ही श्रेष्ठ कर्म है। वेद पढ़ने और तपस्या तथा यज्ञ करने से मोक्ष नहीं मिल सकता। मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान होने से ही हो सकती है। जो महत्तत्त्व की उपासना करता है उसे अहङ्कार का स्थान मिलता है; किन्तु जो प्रकृति से श्रेष्ठ परमब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह मायातीत सर्वश्रेष्ठ मोक्ष पद का अधिकारी होता है।

हे धर्मराज! महात्मा जनक को याज्ञवल्क्य से यह ज्ञान प्राप्त हुआ था और जनक से मुझे मिला। ज्ञान यज्ञ से श्रेष्ठ है। ज्ञान के प्रभाव से संसार-सागर को पार किया जा सकता है; किन्तु यज्ञ के द्वारा संसार-सागर के पार पहुँचने की सम्भावना नहीं है। ज्ञानवानों का कहना है कि दुःखप्रद जन्म-मृत्यु से छुटकारा यज्ञ-याग आदि नहीं करा सकते। यज्ञ, तपस्या, व्रत और नियम करने से स्वर्ग मिलता है और फिर पृथिवी पर जन्म लेना पड़ता है। अतएव तुम शुद्ध हृदय से परम पावन निर्मल शान्तस्वरूप परब्रह्म की उपासना करो। इसी से तुम परमात्मा का स्वरूप हो सकोगे। हे धर्मराज, महर्षि याज्ञवल्क्य ने जिस सनातन ब्रह्म का उपदेश राजा जनक
११२ को दिया है उसी उपदेश के अनुसार चलने पर शोकहीन अमृतमय मोक्ष पद प्राप्त हो सकता है।

तीन सौ बीस अध्याय

पञ्चशिख और जनक का संवाद। बुढ़ापे और मौत को जीतने का एकमात्र उपाय योग

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! अणिमा आदि सिद्धियाँ, धन, दीर्घ आयु, तपस्या, यज्ञ आदि कर्म, अध्ययन या रसायन का प्रयोग, इनमें किस उपाय से मौत और बुढ़ापे को जीता जा सकता है?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में पञ्चशिख और जनक का संवाद सुनाता हूँ। धर्म और अर्थ के विषय में सन्देहहीन, वेद के विद्वान्, महर्षि पञ्चशिख से एक बार विदेहराज जनक ने पूछा—भगवन्! तपस्या, पुण्यकर्म, बुद्धि और शास्त्रज्ञान, इनमें किस उपाय से मनुष्य

मौत और बुढ़ापे को जीत सकता है ? इस पर महर्षि पञ्चशिख कहने लगे—महाराज, [जीवन्मुक्त योगी ही जरा-मृत्यु को जीत सकते हैं; उनके सिवा और] कोई मनुष्य जरा और मृत्यु को जीतने में वैसे ही समर्थ नहीं हो सकता जैसे कि दिन-रात और महीने आदि का ताँता नहीं टूटता। अज्ञानी मनुष्य जरा-मृत्यु-रूप जल-जीवों से व्याप्त कालरूपी समुद्र में, बिना नाव के, डूबते-उतराते रहते हैं। कोई उनकी सहायता नहीं कर सकता। संसार में कोई किसी का नहीं है। जैसे मार्ग में चलते हुए यात्रियों की एक-दूसरे से भेंट हो जाती है वैसे ही संसार में स्त्री-पुत्र और भाई-बन्धु आदि को समझना चाहिए। जैसे गरजते हुए बादलों को हवा एक १०
स्थान से दूसरे स्थान को उड़ा ले जाती है वैसे ही प्राणी, काल से प्रेरित होकर, हाय-हाय करते हुए मरते और जन्म लेते रहते हैं। भेड़िये के समान बुढ़ापा और मौत दुर्बल, बलवान्, श्रेष्ठ और नीच सबको खा जाती है। इसी कारण नित्यस्वरूप जीवात्मा अनित्य शरीर के धारण करने और छोड़ने पर हर्ष या शोक नहीं करता। तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? किसी के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? तुम कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे ? यह सब सोच-कर शोक का त्याग कर दो। तुम किसलिए शोक करते हो ? कोई किसी के बदले में स्वर्ग या नरक नहीं भोगता। अतएव शास्त्र के अनुसार दान और यज्ञ करना सभी का कर्तव्य है। १५

तीन सौ इक्कीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सुलभा और जनक का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, क्या कोई मनुष्य गृहस्थ-आश्रम में ही रहकर मोक्ष-पद का प्राप्त हुआ है ? लिङ्ग-शरीर और स्थूल-शरीर का त्याग किस तरह किया जाता है और मोक्ष किसे कहते हैं ?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में सुलभा और जनक का उपाख्यान सुनाता हूँ। सत्ययुग में, जनक के वंश में उत्पन्न संन्यास-धर्म के मर्मज्ञ धर्मध्वज नाम के एक राजा मिथिला में राज्य करते थे। वे वेद, मोक्षशास्त्र और राजनीति के पूरे पण्डित थे। वे इन्द्रियों को वश में करके अच्छे ढँग से शासन करते थे। वेद के जानकार पण्डित और दूसरे लोग भी उनका आचरण देखकर उन्हीं के समान सज्जन होने की इच्छा करते थे।

उसी समय सुलभा नाम की एक संन्यासिनी, योग धर्म का अवलम्बन करके, अकेली देश-देश में विचरती थी। वह अनेक स्थानों में घूमती-घामती संन्यासी महात्माओं के मुँह से जनक-वंशी राजा धर्मध्वज का वृत्तान्त सुनकर, और यह सन्देह करके कि वे सचमुच मोक्षधर्मा-वलम्बी हैं या नहीं, राजा धर्मध्वज के देखने को, योग के द्वारा अपना शरीर छोड़कर सुन्दर स्वरूप धारण करके बाण के समान तेज़ी से दम-भर में रमणीय विदेह नगर में आ गई। भीख माँगने ११

के बहाने वह राजा के पास पहुँची। उसका असाधारण रूप-लावण्य देखकर राजा धर्मध्वज विस्मित हो गये। वे सोचने लगे कि यह कौन है, किसकी कन्या है और कहाँ से आई है। उसका स्वागत करके उन्होंने उसे पाद्य, आसन, उत्तम भोजन और पानी देकर सन्तुष्ट किया।

सुलभा ने राजा की परीक्षा लेने और अपना सन्देह दूर करने की इच्छा से, पण्डितों और मन्त्रियों के बीच में बैठे हुए, राजा की बुद्धि में अपनी बुद्धि द्वारा और उनकी आँखों में अपनी आँखों द्वारा प्रवेश करके योग के बल से उनको अपने अधीन कर लिया। उस समय उन दोनों का स्थूल शरीर काम करने में असमर्थ हो गया।

तब विदेहराज ने सुलभा का अभिप्राय जानकर, लिङ्ग-शरीर का आश्रय करके, मुस-कुराकर कहा—देवि, तुम कहाँ रहती हो? किसकी कन्या हो? कहाँ से आई हो और कहाँ
२० जाओगी? किसी से पूछे बिना दूसरे का शास्त्रज्ञान, आयु और जाति नहीं मालूम हो सकती। मुझसे मेरे शास्त्रज्ञान आदि की बात पूछना तुम्हारा कर्तव्य है। इस समय राज-काज से मुझे छुट्टी है, इसलिए अपने तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का हाल बतलाकर तुम्हारा सम्मान करना मेरा धर्म है। पराशरगोत्री संन्यासधर्मावलम्बी वृद्ध महात्मा पञ्चशिख मेरे गुरु हैं। उन्हीं महात्मा से मुझे मोक्ष-शास्त्र का ज्ञान हुआ है। उनके समान वक्ता दूसरा नहीं है। वे मोक्ष के कारण-स्वरूप हैं। मैं उन्हीं की कृपा से सांख्य का ज्ञान, योग और निष्काम यज्ञ आदि, यह तीन प्रकार का मोक्ष-धर्म जानकर सन्देहहीन हुआ हूँ। सांख्य के तत्त्वज्ञ महात्मा पञ्च-शिख ने, वर्षाकाल में चार महीने मेरे घर ठहरकर, मुझे यह तीन प्रकार का धर्म सुनाया है; किन्तु उन्होंने राज्य करने से मुझे नहीं रोका। उन्हीं के उपदेश के अनुसार मैं विषय-वासना छोड़कर परब्रह्म का ध्यान करता हूँ। वैराग्य ही मोक्ष प्राप्त करने का श्रेष्ठ उपाय है। ज्ञान से वैराग्य की उत्पत्ति होती है। ज्ञान के द्वारा योग का अभ्यास और योगाभ्यास द्वारा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है। आत्मज्ञान के प्रभाव से मनुष्य योग का अभ्यास करके सुख-दुःख
३० को त्यागकर, मृत्यु को जीतकर, मोक्ष-पद प्राप्त करता है। मैं आत्मज्ञान प्राप्त करके, मोह छोड़कर, संसार से निर्लिप्त और सुख-दुःखहीन हो गया हूँ। जैसे सींचा हुआ खेत बीज को अङ्कुरित कर सकता है वैसे ही मनुष्यों को अपने कर्मों के प्रभाव से दूसरा जन्म लेना पड़ता है। जैसे भुना हुआ बीज सींची हुई ज़मीन में पड़ने पर भी अङ्कुरित नहीं हो सकता वैसे ही मैं विषयों के साथ रहता हुआ भी, पञ्चशिख की कृपा से, विषय-रूपी बीज को अङ्कुरित नहीं होने देता। मैं न तो स्त्री से प्रेम करता हूँ और न शत्रु पर क्रोध करता हूँ। एक मनुष्य मेरे दाहिने हाथ में चन्दन लगावे और दूसरा कुल्हाड़ी से मेरा बाँयाँ हाथ काटे तो मैं उन दोनों मनुष्यों को एक सा समझूँगा। जब मैं मिट्टी के ढेले और सोने को बराबर समझता हूँ, मोक्ष का अभिलाषी होने पर भी पुरुषार्थ के साथ राज्य करता हुआ सुख से रहता हूँ, तब मुझे अन्य

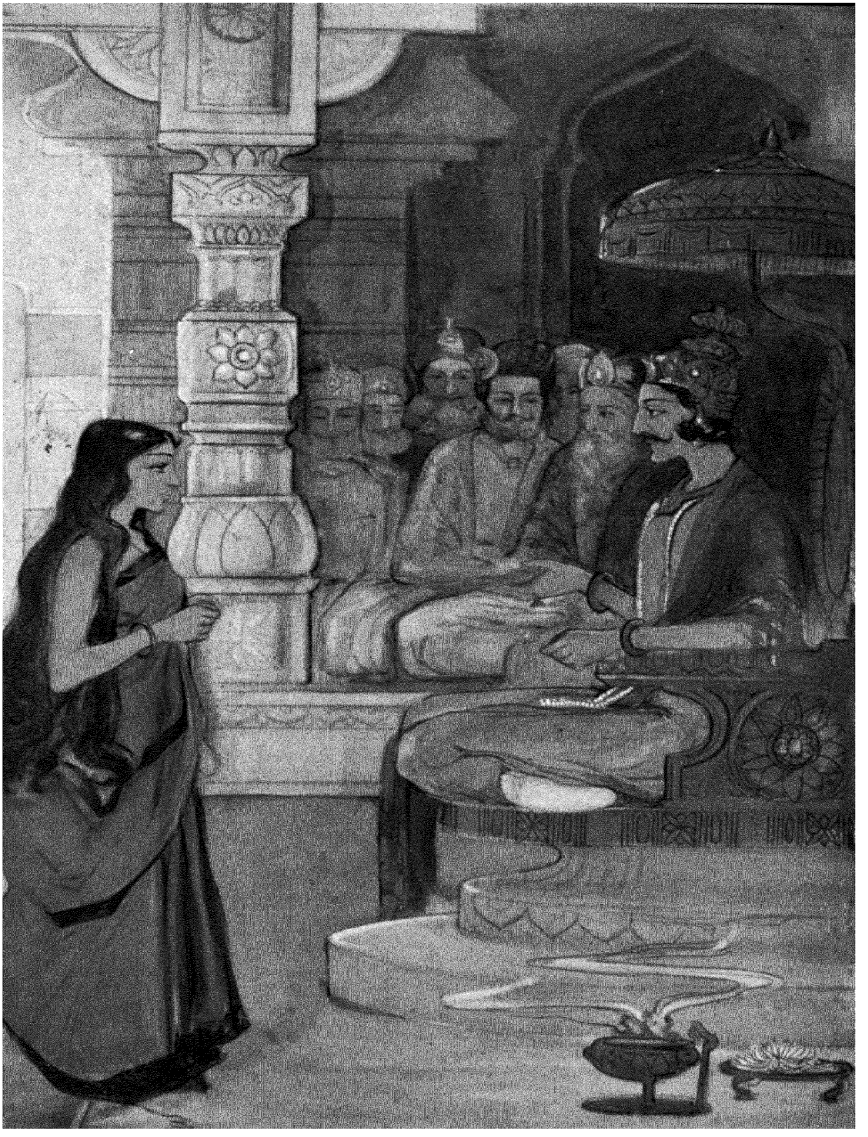

उसी समय सुलभा नाम की एक संन्यासिनी·····भीख माँगने के बहाने राजा के पास पहुँची। पृष्ठ ३८४२

संन्यासियों की अपेक्षा श्रेष्ठ कहना चाहिए। मोक्ष के जानकार लोगों ने मोक्ष की निष्ठा तीन प्रकार की बतलाई है। कोई ज्ञानयुक्त कर्म को और कोई कर्मयुक्त ज्ञान को मोक्ष का साधन बतलाते हैं; किन्तु महात्मा पञ्चशिख ने इन दोनों के अतिरिक्त केवल शुद्ध ज्ञान को ही मुक्ति का कारण बतलाया है। संन्यासियों में भी जब संयम, नियम, काम, द्वेष, मान, दम्भ और स्नेह मौजूद ४०
रहे तब उनमें और गृहस्थों में भेद ही क्या है? यदि त्रिदण्ड धारण करने से ही मोक्ष प्राप्त होता हो तो छत्र आदि धारण करने से मुक्ति क्यों नहीं हो सकती? संसार में सभी मनुष्य अपने-अपने मतलब की वस्तु लेना चाहते हैं। जो मनुष्य गृहस्थ-धर्म में दोष देखकर उसका त्याग करके दूसरे आश्रम को ग्रहण कर लेता है उसे भी एक का त्याग और दूसरे का स्वीकार करने के कारण संगत्यागी न कहना चाहिए। जब संन्यासियों और राजाओं में निग्रह और अनुग्रह रूप समान आधिपत्य है तब संन्यासियों को ही मोक्ष-प्राप्ति होने का क्या प्रमाण है? अतएव, मेरे मत में तो, जो तत्त्वज्ञानी होता है वह राज्य करता हुआ भी सब पापों से छूटकर शरीर में स्थित परमात्मा के दर्शन करता है। रँगे कपड़े पहनना, सिर मुँड़ाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करना केवल संन्यासियों के चिह्न हैं। इन्हीं लक्षणों से मोक्ष नहीं मिल सकता। यदि त्रिदण्ड आदि लक्षण होने पर भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता है तो इन लक्षणों से क्या लाभ? अथवा दुःखों से बचने के लिए यदि त्रिदण्ड धारण करने की आवश्यकता समझी जाय तो दुःखों से छुटकारा पाने के लिए छत्र आदि ग्रहण करना भी बुरा नहीं है। यह बात ग़लत है कि निर्धन होने से मोक्ष मिलता है और धनवान् होने से नहीं मिल सकता; निर्धन हो या धनवान्, तत्त्वज्ञानी होने से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है। मैं इसी कारण, बन्धन के ५०
आश्रय-स्वरूप धर्म-अर्थ और काम से परिपूर्ण, राज्य करता हुआ मोक्षधर्म-रूप पत्थर पर तेज़ की हुई त्याग-रूप तलवार द्वारा ऐश्वर्य-पाश और स्नेह-रूप बन्धन को काट रहा हूँ।

देवि! पहले संन्यासिनी समझकर मैंने तुम्हारा आदर किया था; किन्तु अब तुम्हारी आयु और सुन्दरता देखकर तुम्हारे योग के विषय में मुझे सन्देह हुआ है। इसके सिवा, मेरे योग की जाँच करने के लिए तुमने जो मेरा शरीर रोक रक्खा है, यह काम तुम्हारे संन्यासिनी होने के अनुरूप नहीं है। विषय-भोग करनेवाले योगी का त्रिदण्ड धारण करना निष्फल है। त्रिदण्ड धारण करके तुम योगधर्म की रक्षा नहीं करती हो। अब तुम्हारे योगभ्रष्ट होने की बात मेरी समझ में ठीक-ठीक आ गई। तुम अपनी बुद्धि के द्वारा मेरे शरीर में प्रविष्ट हुई हो, इससे तुम्हें व्यभिचार का दोष लगा। तुमने किसकी सहायता से मेरे राज्य और नगर में प्रवेश किया है और किसकी सहायता से तुम मेरे शरीर में प्रविष्ट हुई हो? देखो, एक तो तुम श्रेष्ठवर्ण ब्राह्मणी हो और मैं क्षत्रिय हूँ, इसलिए मेरे और तुम्हारे संयोग से वर्ण-सङ्कर होने की सम्भावना है। दूसरे, तुम संन्यासिनी हो और मैं गृहस्थ हूँ, इसलिए हम दोनों के संयोग से

आश्रम-संकर होगा। तीसरे, तुम मेरे गोत्र की हो या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम, और तुम भी मेरे गोत्र आदि के विषय में कुछ नहीं जानतीं; यदि तुम मेरी सगोत्रा हो तो गोत्र-संकर दोष उत्पन्न होगा। चौथे, यदि तुम्हारा पति जीवित हो तो तुम परभार्या और अगम्या हो; यदि मैं तुम्हें ग्रहण करूँ तो धर्मसंकर दोष लगेगा। बतलाओ, तुम कौन हो? किस काम से और किसके कहने से, मूर्खता-वश या विपरीत बुद्धि के कारण, तुमने यह अनुचित काम कर डाला है? तुम अपने दोष से इस प्रकार स्वतन्त्र हो गई हो, इसलिए तुम्हारा शास्त्र का पढ़ना व्यर्थ है। तुम्हारे बुरे विचार मुझे मालूम हो गये हैं। तुम केवल मुझे ही नहीं, बल्कि मेरी सभा के सभी महात्माओं को जीत लेना चाहती हो। मेरी सभा में बैठे हुए पूज्य पुरुषों को तुम जिस तरह देख रही हो उससे मालूम होता है कि तुम अपने को श्रेष्ठ और इन मान्य पुरुषों को तुच्छ समझ रही हो। मेरी उन्नति देखकर ईर्ष्या के मारे और योग के बल का घमण्ड करके, मुझसे प्रेम करने के लिए, तुमने मेरी बुद्धि के साथ अपनी बुद्धि को मिलाया है। किन्तु मैं तुमसे प्रेम नहीं करता हूँ, इसलिए तुम्हारा मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। जब स्त्री और पुरुष दोनों में परस्पर प्रेम होता है तभी उनका संयोग अमृत-तुल्य होता है; किन्तु जब उन दोनों में एक तो प्रेम करता है और दूसरा उसे नहीं चाहता तो उनका संयोग विष के समान हो जाता है। जो हो, अब तुम मेरा स्पर्श न करो, मुझे साधु समझो और अपने संन्यास-धर्म का पालन करो।

मैं जीवन्मुक्त हूँ या नहीं, यह तुम्हें मालूम हो गया होगा। मुझे ठीक-ठीक बतलाओ कि तुम अपने मतलब से गुप्तभाव से मेरे पास आई हो या किसी राजा का काम सिद्ध करने के लिए। राजा, ब्राह्मण और गुणवती स्त्री के साथ छल करना किसी को उचित नहीं। जो इनके साथ छल करता है वह मारा जाता है। राजाओं का ऐश्वर्य, ब्रह्मज्ञानियों का ब्रह्मज्ञान तथा स्त्रियों की सुन्दरता और जवानी उनका बल है। ऐसे बलवान् व्यक्तियों के साथ सरल व्यवहार करना चाहिए। अतएव तुम छल-कपट छोड़कर अपनी जाति, अपना शास्त्रज्ञान, व्यवहार, स्वभाव, अपने हृदय के भाव और अपने आने का प्रयोजन ठीक-ठीक बतला दो।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इन अयुक्त और कठोर बातों से तिरस्कृत होने पर भी सुलभा विचलित नहीं हुई। वह सुन्दरी राजा जनक से मधुर वचन बोली—महाराज, अठारह दोषों से रहित और इतने ही गुणों से युक्त बात कहनी चाहिए। सौक्ष्म्य, सांख्य, क्रम, निर्णय और प्रयोजन, इन पाँच अङ्गों से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। अब इनके लक्षण बतलाती हूँ। संशय-सूचक का नाम सौक्ष्म्य है; जिसके द्वारा गुण-दोष का विचार किया जाय उसका नाम सांख्य है; जिससे पूर्वापर का क्रम निरूपित किया जाय उसका नाम क्रम है; पूर्व और परपक्ष का विचार करने के बाद जो सिद्धान्त निकले उसका नाम निर्णय और उत्सुकता तथा द्वेष के कारण करने और न करने योग्य कामों में जो प्रवृत्ति और निवृत्ति पैदा हो उसका

नाम प्रयोजन है। ऐसी बात कहनी चाहिए जो सार्थक, अच्छे पदों से युक्त, सरल, संक्षिप्त और मधुर हो। उसमें सन्देह न होना चाहिए। कड़वी, अश्लील पदों से युक्त, निर्मूल, धर्म-अर्थ और काम के विरुद्ध, व्याकरण आदि के दोषों से युक्त, क्रमहीन, लक्षणायुक्त, युक्तिशून्य, अण्ट-शण्ट बात कभी न कहे। महाराज! मैं काम, क्रोध, लोभ, भय, दीनता, दर्प, लज्जा, दया या अभिमान के वश होकर आपको उत्तर नहीं दे रही हूँ। उचित समझकर ही मैं आपको यह उत्तर देती हूँ। वक्ता और श्रोता, जब दोनों एक-से होते हैं तभी अर्थ प्रकाशित होता है। श्रोता की उपेक्षा करके वक्ता गर्व के साथ चाहे अच्छी बात भी कहे तब भी सुननेवाला प्रसन्न नहीं होता और जो मनुष्य स्वार्थ को छोड़कर केवल श्रोता के अनुकूल बात कहता है उसकी उस बात पर लोगों को सन्देह होता है। इसलिए इस तरह की बात भी दूषित है। किन्तु जो मनुष्य अपने और श्रोता के अनुकूल बात कहता है उसी को अच्छा 'वक्ता' कहते हैं और उसी की बात सार्थक है। आपने मुझसे पूछा है कि तुम कौन हो, किसकी कन्या हो और कहाँ से आई हो। अब मैं इन प्रश्नों का उत्तर देती हूँ। जैसे लाख और लकड़ी तथा धूल और पानी की बूँदें परस्पर मिली रहती हैं वैसे ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पाँच इन्द्रियाँ आत्मा के साथ जुड़ी हैं। इन्द्रियाँ अपने रूप को नहीं देख सकतीं। न आँख अपने को देख सकती है और न कान में यह शक्ति है कि अपने को सुन सके। एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय का काम नहीं कर सकती। वे साथ रहने पर भी परस्पर मिली हुई धूल और पानी की बूँदों के समान एक-दूसरी को नहीं जानतीं। इन्द्रियाँ अपना काम करने के लिए बाह्य गुणों की सहायता चाहती हैं। रूप, आँख और प्रकाश, ये तीन देखने के कारण हैं। श्रवण आदि के भी इसी तरह तीन-तीन कारण हैं। पदार्थों का ज्ञान कराने में मन एक प्रधान कारण है, जिसके द्वारा आत्मा हमेशा भले-बुरे का विचार करता रहता है। पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च तन्मात्राएँ और मन, ये ग्यारह गुण कहलाते हैं। बुद्धि बारहवाँ गुण है; वह विषय-ज्ञान के समय संशय उत्पन्न होने पर उसे दूर कर देती है। सत्त्व तेरहवाँ गुण है; उसके द्वारा मनुष्यों के शुद्ध भाव की न्यूनता-अधिकता का अनुमान किया जाता है। अहङ्कार चौदहवाँ गुण है, उसके द्वारा ममत्व-बुद्धि उत्पन्न होती है। वासना पन्द्रहवाँ गुण है; इसी वासना में सारा संसार व्याप्त रहता है। अविद्या सोलहवाँ गुण है। माया सत्रहवाँ और प्रकाश अठारहवाँ गुण है। सुख-दुःख, जरा-मृत्यु, लाभ-हानि और प्रिय-अप्रिय, ये उन्नीसवें गुण हैं। काल बीसवाँ गुण है। इसी काल के प्रभाव से प्राणियों का जन्म-मरण होता है। इनके सिवा पञ्च महाभूत और सद्भाव, असद्भाव, शुक्र, बल और विधि, इन दस को भी गुण कहते हैं। अतएव सब गुण तीस प्रकार के हुए। ये सब गुण जिसमें निवास करते हैं उसी का नाम शरीर है। कोई प्रकृति को, कोई परमात्मा को, कोई प्रकृति और परमात्मा दोनों को और कोई ईश्वर तथा माया-

शक्ति और जीव तथा अविद्या इन चार को इन सब गुणों का कारण बतलाते हैं। अव्यक्त प्रकृति इन सब गुणों की सहायता से व्यक्त भाव को प्राप्त होती है।

महाराज, सब प्राणी शुक्र और शोणित से उत्पन्न होते हैं। रज और वीर्य के मिलने पर गर्भाशय में सबसे पहले झिल्ली पैदा होती है। उस झिल्ली में बुद्बुद पैदा होता है। बुद्बुद से मांस का लोथड़ा और मांस के लोथड़े से शरीर के अङ्ग बन जाते हैं। उसके बाद रोम और नख पैदा होते हैं। गर्भ रहने के नव महीने बाद प्राणी का जन्म होता है। जन्म होने पर, चिह्न के अनुसार, वह स्त्री या पुरुष कहाता है। उस समय उसके तलवे, नख और अँगुलियाँ लाल रङ्ग की होती हैं। कुछ दिनों बाद वह रूप बदल जाता है। उसके बाद कुमार-अवस्था, जवानी और अन्त को बुढ़ापा आ जाता है। जो अवस्था एक बार बीत जाती है वह दुबारा नहीं लौटती। जैसे दीपक की शिखा क्रमशः घटती-बढ़ती रहती है, किन्तु उसका अनुभव कोई नहीं कर सकता वैसे ही मनुष्य की कुमार आदि अवस्थाएँ इतनी जल्दी बीत जाती हैं कि उनका
१२१ अनुमान भी नहीं होता। जैसे अच्छा घोड़ा तेज़ी से दौड़ता है वैसे ही जीव एक अवस्था से दूसरी अवस्था में तेज़ी से पहुँच जाता है। इस प्रकार जब देह की दशा सदा बदलती रहती है तब यह किसकी है और कहाँ से आई है, यह निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? सारांश यह कि आपकी देह के साथ प्राणियों का कोई सम्बन्ध नहीं। जैसे सूर्यकान्त मणि और लकड़ी से आग पैदा होती है वैसे ही शब्द-स्पर्श आदि गुणों से प्राणियों की उत्पत्ति होती है। आप अपने को जिस तरह समझते हैं उसी तरह दूसरों को भी समझिए। यदि आप अपने को और दूसरों को एक समान समझते हैं तो फिर क्यों मुझसे 'तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो' यह पूछते हैं? जब आप स्वार्थ और परार्थ से शून्य हैं तब मुझसे 'तुम कौन हो और कहाँ से आई हो' ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं। जो राजा शत्रु, मित्र और उदासीन के साथ उचित व्यवहार करता है और सन्धि तथा विग्रह में आसक्त रहता है वह किस तरह मोक्ष-पद का अधिकारी हो सकता है? जो मनुष्य त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) के तत्त्व को भली भाँति नहीं समझता और उन्हीं में आसक्त रहता है वह मोक्ष-मार्ग का पथिक नहीं है। जो राजा बलवान्-
३० निर्बल और प्रिय-अप्रिय को एक समान नहीं समझता उसमें मुक्त का कौन-सा लक्षण है? आप मोक्ष के अनधिकारी होकर भी अपने को मुक्त समझने का अभिमान कर रहे हैं, आपके मित्रों को चाहिए कि ऐसा करने से आपको रोकें। विषयासक्त मनुष्यों का मोक्ष प्राप्त करने का उद्योग करना वैसा ही व्यर्थ है जैसा कि कुपथ्य करनेवाले का औषध-सेवन। मोक्ष का अधिकारी वही है जो स्त्री आदि संसर्ग-विषयों को आत्मा से अभिन्न समझता है।

अब मैं शयन, उपभोग, भोजन और वस्त्र के विषय में कुछ सूक्ष्म बातें कहती हूँ। जो राजा सम्पूर्ण पृथिवी का शासन करता है वह हमेशा नगर में रहता है। रात को घर में किसी

जगह शय्या पर सोता है। उस शय्या पर भी उसका पूरा अधिकार नहीं है। उसकी स्त्री उस पर आधा अधिकार रखती है। अतएव जब राजा का केवल शय्या के आधे हिस्से पर ही अधिकार है तब उसका इस विशाल ब्रह्माण्ड पर अधिकार करना व्यर्थ है। इसी तरह भोजन, उपभोग और वस्त्र के विषय में भी राजा को बहुत थोड़ी वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। और देखिए, राजा को हमेशा पराधीन रहना पड़ता है। जब राजा को तुच्छ विषयों में आसक्त रहने से और सन्धि, विग्रह, स्त्री-सम्भोग, क्रीड़ा, विहार, मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा और गुण-दोषों का विचार करके निग्रह और अनुग्रह करना पड़ता है तब वह स्वाधीन कहाँ है? जिस समय राजा किसी को किसी काम के करने की आज्ञा देता है उस समय वह उस कार्य के अधीन हो जाता है। नींद आने पर भी, कार्यार्थियों के मारे, वह सुख से नहीं सो पाता। १४० विशेष काम आ जाने पर उसे उसी दम उठना पड़ता है। राज-कर्मचारी लोग राजा को स्नान स्पर्श भोजन और पान करने, अग्नि में आहुति देने, यज्ञ करने, बोलने और सुनने का अनुरोध करके कामों में फँसाये रहते हैं। धन की इच्छा से लोग राजा के पास जाकर धन माँगते हैं, किन्तु वह लोभ के मारे उन्हें दान नहीं देता। दान करने पर ख़ज़ाना ख़ाली हो जाता है और दान न करने पर दूसरों से शत्रुता होती है। इसलिए राजा कभी-कभी कर्तव्यविमूढ़ होकर काम-काज से ऊब जाता है। धनवान् से, ज्ञानी से, बलवान् से, निर्भय से और नित्य सेवा करने-वाले से, सभी से राजा को डर बना रहता है। ये सब राजा का अनिष्ट कर सकते हैं।

और देखिए, सभी मनुष्य अपने-अपने घर के मालिक होते हैं और अपने कुटुम्बियों पर शासन करते हैं, अतएव सभी मनुष्य राजा के समान हैं। राजा के समान सभी के पुत्र, स्त्री, आत्मा, कोष, मित्र और धन का संग्रह है। देश के नष्ट होने, नगर के जलने और प्रधान हाथी के मरने पर राजाओं को भी—विपद्-ग्रस्त दूसरे मनुष्यों की तरह—शोक होता है और वे सदा इच्छा, द्वेष और भय से उत्पन्न मानसिक दुःख और सिर के रोग आदि से पीड़ित होते हैं। ५० विशेष कर उन्हें दिन गिनते-गिनते शङ्कित चित्त से शत्रुओं से परिपूर्ण राज्य का पालन करना पड़ता है। अतएव दुःखों से परिपूर्ण, फूस की आग और फेन के बुलबुले के समान दम भर में नष्ट हो जानेवाले, असार राज्य का भार ग्रहण करना मूर्खता का काम है। उसको ग्रहण करने से कभी शान्ति नहीं मिल सकती। आप अपने नगर, राज्य, बल, कोष और मन्त्रियों पर जो गर्व करते हैं वह बिलकुल व्यर्थ है। विचार कर देखने से मालूम हो जायगा कि ये सब सभी के पास रहते हैं। मित्र, मन्त्री, नगर, राज्य, दण्ड, कोष और राजा, ये राज्य के सात अङ्ग त्रिदण्ड के समान एक-दूसरे के आश्रित रहते हैं। इनमें कोई किसी की अपेक्षा अधिक योग्य नहीं है। जब जिस अङ्ग के द्वारा कार्य की सिद्धि होती है तब वही अङ्ग प्रधान समझा जाता है। मित्र आदि सात अङ्ग और प्रभाव, उत्साह तथा मन्त्रणा की शक्ति, यही दस वर्ग एक

साथ मिलकर राज्य का भोग करते हैं। जो राजा उत्साही और क्षत्रिय-धर्म का प्रेमी होता है वह प्रजा से दसवाँ हिस्सा 'कर' लेकर सन्तुष्ट रहता है। अन्य राजाओं को इतने में सन्तोष नहीं होता। कोई राज्य ऐसा नहीं है जिसमें राजा न हो और कोई भी अद्वितीय राजा नहीं है, अतएव 'मेरा राज्य है और मैं राजा हूँ' ऐसा गर्व करना मूर्खता है। अहङ्कारी राजा के राज्य में नियमों का पालन नहीं किया जाता। नियमों का पालन न होने से राज्य में धर्म का स्थापित करना असम्भव हो जाता है और धर्म न रहने से कभी मोक्ष नहीं मिल सकता। नियमानुसार प्रजा का पालन और राजधर्म की रक्षा करने से भूमिदान समेत अश्वमेध यज्ञ से बढ़कर फल मिलता है, यह बात तो ठीक है; किन्तु पूरे तौर से राजधर्म की रक्षा करना किसी राजा के लिए
१६० सरल काम नहीं है। मैं राजाओं के इस प्रकार के हज़ारों कष्ट बतला सकती हूँ।

जो हो, आपने मुझे अपने शरीर का स्पर्श करने को मना किया है। सो अपने शरीर के साथ भी मेरा स्पर्श नहीं है, तो भला दूसरे के शरीर का स्पर्श करना मेरे लिए कैसे सम्भव है? आपने पञ्चशिख के मुँह से उपाय (निदिध्यासन), उपनिषद् (श्रवण, मनन), उपासङ्ग (यम-नियम आदि) और निश्चय के साथ सम्पूर्ण मोक्ष-धर्म सुना है अतएव मुझे वर्णसङ्कर करनेवाली कहकर वृथा तिरस्कार करना आपको उचित नहीं। यदि आप काम आदि शत्रुओं को जीतकर सङ्गहीन हो गये हैं तो छत्र आदि के साथ आपका सम्पर्क क्यों है? इससे साफ़ मालूम हो रहा है कि आपने वेद-शास्त्र कभी नहीं सुने और सुने भी हैं तो आपको उनके सुनने का कोई फल नहीं मिला, अथवा वेद समझकर आपने कोई दूसरा शास्त्र पढ़ा होगा। सारांश यह कि आपमें तत्त्वज्ञान का लेश भी नहीं है। आप केवल लौकिक ज्ञान में फँसे हैं। आप साधारण मनुष्यों की तरह स्पर्श और अवरोध के द्वारा रुक गये हैं। मैंने सत्त्वगुण के बल से आपके शरीर में प्रवेश किया है। यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश करने से आपकी कौन-सी हानि हो गई? सूने घर में रहना संन्यासियों का धर्म है। उसी धर्म के अनुसार मैंने आपके जड़ शरीर में प्रवेश किया है। इसमें मेरा क्या दोष है? मैंने हाथ, पैर, छाती या और किसी अङ्ग से आपको नहीं छुआ है। आप उच्च कुल में उत्पन्न, लज्जावान् और दीर्घदर्शी हैं, अतएव मैंने जो गुप्त भाव से आपके शरीर में प्रवेश किया है वह बात सभा में प्रकट कर देना आपको उचित न था। ये सब ब्राह्मण और अन्यान्य गुरुजन जिस तरह आपके पूज्य हैं उसी तरह आप भी उन लोगों के माननीय हैं। उसी तरह आपको एक-दूसरे के गौरव की रक्षा
७० करनी चाहिए। इस समय नीच-ऊँच का विचार करके सभा में स्त्री-पुरुष के संयोग की बात कहना आपको उचित न था। कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल के समान निर्लिप्त भाव से मैं आपके शरीर में प्रविष्ट हुई हूँ। यदि इसमें भी आपको स्पर्श का दोष समझ पड़ता है तो पञ्चशिख की कृपा से आपको जो विषय-सङ्गहीन ज्ञान प्राप्त हुआ है वह किसी काम का नहीं।

साफ़ मालूम हो रहा है कि आप गृहस्थ-धर्म से भ्रष्ट और मोक्ष प्राप्त करने में असमर्थ होकर, वृथा मुमुक्षु बनकर, गृहस्थ और मोक्ष दोनों के बीच में लटके हुए हैं। मुक्त के साथ मुक्त और प्रकृति के साथ पुरुष का संयोग होने से कहीं वर्णसङ्कर होता है? जो मनुष्य आत्मा को शरीर से अभिन्न समझता और वर्ण तथा आश्रम के धर्मों को भिन्न-भिन्न रूप से देखता है वही वर्णसङ्कर होना स्वीकार करता है। मेरा शरीर ही आपके शरीर से भिन्न है, किन्तु मेरा आत्मा आपके आत्मा से अलग नहीं है। जब मैं इस बात को भली भाँति जानती हूँ तब वर्ण-सङ्करता आदि का दोष रही कहाँ गया? हाथ और हाथ में स्थित दूध का बर्तन, दूध का बर्तन और उसमें का दूध तथा दूध और उसमें पड़ी हुई मक्खी जैसे एक साथ रहने पर भी एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं वैसे ही वर्ण और आश्रम के धर्म ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों को छू तक नहीं जाते।

महाराज! न तो मैं ब्राह्मणी हूँ, न वैश्या या शूद्रा ही। मैं तो शुद्ध वंश की आपकी सजातीया हूँ। मेरे पूर्वजों के यज्ञ में द्रोण, शतशृङ्ग और चक्रद्वार आदि पर्वतों को लेकर देव- १८०
राज इन्द्र आये थे। आपने प्रधान नामक राजर्षि का नाम सुना होगा। मैं उन्हीं के वंश में उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम सुलभा है। योग्य वर न मिलने से मैं संन्यासिनी हो गई हूँ। मैं कपट-संन्यासिनी या किसी का धन हरनेवाली नहीं हूँ। धर्मसङ्कर करना भी मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं नियमानुसार अपने धर्म का पालन करती हूँ। न तो कभी प्रतिज्ञा के विरुद्ध काम करती हूँ और न बिना विचारे कोई बात कहती हूँ। मैं आपके पास बिना विचारे नहीं चली आई हूँ। मैंने सुना कि आप मोक्ष-धर्म के अच्छे जानकार हैं इसी से धर्म-चर्चा करने के लिए आपके पास आई हूँ। मैं सच कहती हूँ, जो मनुष्य वितण्डावादी है वह कभी मुक्त नहीं हो सकता और जो बकवाद छोड़कर केवल ब्रह्म में मग्न रहता है वही मोक्ष का अधिकारी है। जैसे संन्यासी नगर में सूना घर पाकर वहीं रात बिताता है वैसे ही मैं आज की रात आपके शरीर में रहूँगी। आपने मेरा यथेष्ट सम्मान किया है। मैं आपकी बातों से बहुत सन्तुष्ट हुई हूँ। आज आपके शरीर में रहकर, यह रात बिताकर, कल यहाँ से चली जाऊँगी।

हे धर्मराज! मनस्विनी सुलभा के सार्थक वचनों को सुनकर महाराज जनक कुछ उत्तर न दे सके। वे चुपचाप बैठे रहे। १९०

तीन सौ बाईस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को उपदेश

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी ने किस प्रकार वैराग्य प्राप्त किया था? कार्य, कारण, बुद्धि और ब्रह्म का यथार्थ तत्त्व क्या है तथा भगवान् नारायण की लीला किस प्रकार की है?

भीष्म ने कहा कि बेटा, महर्षि वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को साधारण मनुष्यों की तरह निर्भय घूमते हुए देखकर उनको सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग पढ़ाकर कहा—बेटा! तुम जितेन्द्रिय होकर सरदी-गरमी, आँधी-पानी और भूख-प्यास को जीतकर धर्म, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, दम, तपस्या, अहिंसा और अनृशंसता आदि सद्गुणों का पालन करो और धर्म में अनुरक्त होकर देवताओं और अतिथियों का सत्कार करके उनसे बचा हुआ भोजन करते हुए निर्वाह करो। यह शरीर पानी के बुलबुने के समान क्षणभङ्गुर है; इसमें जीवात्मा, पेड़ पर बैठे हुए पक्षी के समान, निर्लिप्त भाव से रहता है और प्रिय लोगों का साथ अधिक दिनों तक नहीं रहता। अतएव तुम पुरुषार्थ में शीघ्र क्यों नहीं लग जाते? काम आदि शत्रु हमेशा जागरित, क्रियाशील और सावधान रहकर छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं। तुम बालक हो, इसलिए उन्हें नहीं समझ पाते। दिन बीते जा रहे हैं और प्रतिदिन आयु क्षीण होती जा रही है तो भी तुम देवता या गुरु की शरण क्यों नहीं लेते? नास्तिक मनुष्य ही संसार में रक्त मांस बढ़ाने में लगे रहकर पारलौकिक कामों को नहीं करते। धर्म के शत्रु को मूर्ख मनुष्य की सङ्गति करने से भारी क्लेश उठाना पड़ता है। अतएव तुम धर्म-मार्ग पर चलकर, नित्य सन्तुष्ट और वेदज्ञ होकर, वृद्ध महात्माओं की सेवा करके उनसे धर्म का उपदेश लेकर बुद्धि के बल से अपने कुमार्गगामी मन का शासन करो। जो केवल वर्तमान समय को ही देखते हैं और दूसरे दिन की चिन्ता नहीं करते तथा खाद्य-अखाद्य का जिन्हें कुछ विचार नहीं है वही अभागे नास्तिक इस पृथिवी को कर्म-भूमि नहीं मानते। अतएव धर्म की सीढ़ी को पकड़कर उस पर धीरे-धीरे चढ़ो। कोषकार कीड़े की तरह जो स्वयं अपने को बन्धन में डाल लेते हैं उन कुलान्तक नियमहीन नास्तिकों को, बाँस के समान उद्धत और श्रद्धा के अयोग्य समझकर, छोड़ दो। तुम योगमय नाव तैयार करके—पञ्च इन्द्रिय-रूप जल, काम-क्रोध आदि स्वरूप जल-जन्तु और जन्म-रूप विषम दुर्ग से युक्त—संसार-रूपी नदी को पार करो। मनुष्यों की आयु प्रति-दिन घटती रहती है, बुढ़ापा और मौत सभी को घेरे रहते हैं, अतएव धर्मरूपी नाव पर चढ़कर संसार-सागर को पार करो। जब सोते हुए और बैठे हुए सभी को मृत्यु ढूँढ़ लेती है तब सभी मनुष्यों को एक दिन अकस्मात् मौत के मुँह में जाना पड़ेगा। उससे मनुष्यों का छुटकारा कैसे हो सकता है? जैसे भेड़िया भेड़ को ले भागता है वैसे ही मृत्यु, धन का संग्रह करते हुए, हाय-हाय में फँसे मनुष्य को ले भागती है। इसलिए तुम यत्न के साथ धर्म-बुद्धिमय ज्ञान-दीपक धारण करो; नहीं तो तुमको इस अन्धकारमय संसार में दुःख भोगना पड़ेगा। अनेक योनियों में घूमने पर जीव को ब्राह्मण योनि में जन्म मिलता है। तुमको उसी दुर्लभ ब्राह्मण योनि में जन्म मिला है, अतएव तुम ब्राह्मण के अनुरूप कर्म करो। ब्राह्मण लोग विषय भोगने के लिए जन्म नहीं लेते। वे इस लोक में कष्ट सहकर तपस्या करते हैं और परलोक में अनन्त

सुख भोगते हैं। अनेक जन्मों की तपस्या के फल से ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होकर उसकी कुछ परवा न करना बड़ी मूर्खता है। अतएव तुम अपनी भलाई के लिए उद्योगशील होकर सदा वेद का अध्ययन, तपस्या और दम गुण से युक्त होने का यत्न करो। मनुष्यों का अव्यक्त स्वभाव बहुत सूक्ष्म है और आयु रूपी घोड़ा गुप्त रूप से लगातार दौड़ता रहता है। दण्ड-मुहूर्त आदि उस घोड़े का शरीर है, महीना उसका अङ्ग, कृष्ण और शुक्ल पक्ष उसके दो नेत्र और क्षण-निमेष आदि उसके रोएँ हैं। यदि तुम इस अश्व की तीव्र गति को देखते रहोगे तो निस्सन्देह परलोक को जानकर धर्म में मन लगाओगे। जो इस लोक में हमेशा कामासक्त और अनिष्ट संसर्ग में रहता है वह अनेक अधर्मों के कारण परलोक में यातना-देह धारण करके तरह-तरह के दुःख उठाता है। धर्मात्मा राजा लोग इस लोक में उत्तम और अधम मनुष्यों का विचार तथा अनेक प्रकार के शुभ कर्म करके परलोक में पवित्र लोक को जाते और परम सुख पाते हैं। जो लोग इस लोक में पिता-माता आदि गुरु-जनों की बातों पर श्रद्धा नहीं करते उनको परलोक में भीषण शरीरवाले कुत्ते, कौए, गिद्ध आदि पक्षी तथा रक्त-लोलुप कीड़े सताते हैं। जो इस लोक में पवित्रता, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर में श्रद्धा, अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य रखना और दान न लेना, इस दस प्रकार की वेद-मर्यादा का उल्लङ्घन करते हैं उन पापियों को यमलोक में स्थित असिपत्र नाम के नरक में घोर दुःख भोगना पड़ता है। जो ३०
मनुष्य इस लोक में लोभ, मिथ्या, कपट और चोरी-ठगी आदि दुष्कर्म करते हैं वे परलोक में गरम वैतरणी नदी में डूबते, असिपत्र नरक में गिरते और परशुवन नामक नरक में सोते हैं। उन्हें घोर कष्ट उठाना पड़ता है। तुम ब्रह्मा आदि देवताओं के दर्शन करके अपने को कृतार्थ समझते हो; किन्तु ब्रह्म की ओर ध्यान नहीं देते और जिसके प्रभाव से मृत्यु होती है उस बुढ़ापे की तुमको तनिक भी चिन्ता नहीं है। अब मोक्ष-मार्ग पर चलो। लापरवाही क्यों करते हो? शीघ्र ही सुखनाशक महाभय उपस्थित होगा, अतएव तुरन्त ही मुक्ति-सुख प्राप्त करने का उद्योग करो। मरने पर यमराज की आज्ञा के अनुसार तुम यमपुर को जाओगे इसलिए अन्त में सुख पाने के लिए, कृच्छ्र उपवास आदि द्वारा, मुक्त होने की चेष्टा करो। दूसरों का दुःख न देखनेवाली मौत निस्सन्देह तुमको और तुम्हारे बन्धु-बान्धवों को एक दिन उठा ले जायगी। उसे हटाने के लिए कोई समर्थ न होगा, अतएव परलोक में कल्याण करनेवाले कर्मों में तुरन्त लग जाओ। जब तुम अत्यन्त व्याकुल और यमदूतों के वशीभूत होकर दसों दिशाओं में घूमते-घूमते यमलोक को जाओगे तब तुम्हारा शास्त्रज्ञान लुप्त हो जायगा, अतएव अब समाधि में मन लगाओ। तुम शीघ्र ज्ञान का उपार्जन करो, इससे तुमको परलोक में पूर्व-जन्मों के शुभ-अशुभ कर्मों का स्मरण करके शोक न करना पड़ेगा। बल, अङ्ग और मनोहर रूप को ४०
हर लेनेवाला बुढ़ापा तुम्हारे शरीर को जर्जर कर देगा, अतएव ज्ञान का उपार्जन करने में आलस्य

न करो। मौत, रोग को साथी बनाकर, तुम्हारे प्राण लेने के लिए बलपूर्वक शरीर को क्षीण कर देगी, अतएव शीघ्र तपस्या करने में लग जाओ। देह में स्थित काम आदि शत्रु तुमको अनेक प्रकार के प्रलोभन देंगे, इसलिए यत्न से पुण्य सञ्चय करो। थोड़े ही दिन बाद तुमको अन्धकार दिखाई पड़ेगा और पर्वत के शिखर पर सुवर्णमय वृक्ष देख पड़ेंगे, अतएव शुभ कर्म करो। जो इन्द्रियाँ तुमको मित्र जान पड़ रही हैं वे तुम्हारी शत्रु हैं, वे तुम्हारी बुद्धि को भ्रष्ट कर डालेंगी। इससे दृढ़प्रतिज्ञ होकर परमपदार्थ के खोजने का उद्योग करो। उस धन का उपार्जन करो जिसके लिए न तो राजा का और न चोरों का ही भय है और शरीर छोड़ने के बाद भी जिस पर अधिकार बना रहता है। उस धन में कोई हिस्सा नहीं बँटा सकता। साधारण मनुष्यों को वही ज्ञानरत्न दान करो जिसके द्वारा परलोक में निर्वाह होता है और तुम भी उसी अविनाशी धन के उपार्जन करने का उद्योग करो। तुम सोचते होगे कि विषय-भोग कर लेने के बाद मोक्ष-मार्ग का अवलम्बन करूँगा, किन्तु तुम्हारी यह समझ ठीक नहीं है; क्योंकि विषय-भोग करते ही करते मौत के आ जाने की पूरी सम्भावना है, अतएव तुम शीघ्र शुभ कर्मों में लग जाओ। मनुष्यों के परलोक जाते समय माता, पुत्र, बन्धु-बान्धव आदि परिवार का कोई प्रिय मनुष्य साथ नहीं जाता; केवल शुभ-अशुभ कर्म ही
५० उनके साथ जाते हैं। धन-रत्न आदि परलोक में किसी के काम नहीं आता। वहाँ अपना आत्मा ही पुण्य-पाप का साक्षी रहता है। आत्मा के समान दूसरा साक्षी नहीं है। शरीर छोड़कर परलोक जाते समय जीवात्मा भोगदेह में प्रविष्ट होकर शुभ-अशुभ कर्मों को देखता है। शरीर में स्थित सूर्य, अग्नि और वायु भी मनुष्यों के पुण्य-पाप के साक्षी-स्वरूप हैं। हमेशा घूमते हुए प्रकाशशील दिन और अन्धकारमय रात प्राणियों की आयु नष्ट करते हैं, अतएव तुम सावधानी से अपने धर्म का पालन करो। परलोक-मार्ग में अनेक प्रकार के भयानक शत्रु हैं, अतएव तुम पुण्यकार्य करने में विलम्ब न करो। कर्म ही परलोक में साथ जाते हैं। वहाँ कोई किसी के कर्मों में हिस्सा नहीं बँटा सकता। जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है। अप्सराएँ और महर्षि अपने-अपने कर्मों के अनुसार विमानों पर सवार होते और अनेक प्रकार के सुख-दुःख भोगते हैं। पुण्यात्मा मनुष्य इस लोक में जैसे शुभ कर्म करते हैं उन्हीं के अनुसार उनको पर-
६० लोक में उत्तम गति मिलती है। गृहस्थ लोग भली भाँति अपने धर्म का पालन करके कोई प्रजापति-लोक को, कोई बृहस्पति-लोक को और कोई इन्द्र-लोक को जाते हैं। हे पुत्र, मैं बार-बार कहता हूँ कि धर्म ही मनुष्यों को अच्छे मार्ग पर लगाता है। तुम चौबीस वर्ष के हो चुके हो, अब तुमने पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश किया है। अब तुम्हें समय गँवाना उचित नहीं। मौत के पञ्जे में फँसने से पहले ही तुम धर्म का पालन करने लगो। शीघ्र आत्मज्ञान प्राप्त कर लो। शरीर और पुत्र आदि से तुम्हें क्या प्रयोजन है? भय का नाश करनेवाले, परलोक में हितकर,

धर्म का पालन करने से ही तुम्हारा कल्याण होगा। काल सबको नष्ट कर देता है। उसे कोई टाल नहीं सकता। मैंने जो यह सदुपदेश दिया है इसी के अनुसार काम करो। जो मनुष्य अपने कर्मों की सिद्धि के लिए ब्रह्म में मन लगाता और सब वस्तुओं को त्याग देता है उसे अज्ञान और मोह से उत्पन्न दुःख नहीं भोगने पड़ते। पुण्यात्मा मनुष्य इस ब्रह्मज्ञान को सुनकर, इस उपदेश के प्रभाव से, ब्रह्माण्ड-व्यापी हो जाते हैं। कृतज्ञ मनुष्य को दिया हुआ उपदेश निष्फल नहीं होता। ७०
गृहस्थाश्रम में रहकर उसमें आसक्त रहने से मनुष्य मायाजाल में फँसा रहता है। पापी मनुष्य का उस जाल से छूटना कठिन है; किन्तु पुण्यवान् मनुष्य आसानी से उसे काटकर अभीष्ट स्थान को चला जाता है। जब तुमको निस्सन्देह एक दिन काल का ग्रास होना है तब पुत्र, बन्धु-बान्धव और ऐश्वर्य से तुम्हें क्या प्रयोजन है? तुम्हारे पितामह आदि पूर्वज कहाँ चले गये? अब परमात्मा का साक्षात्कार करने का उद्योग करो। जो काम कल करना है उसे आज ही और जो तीसरे पहर करना है उसे इसी दम कर डाले; क्योंकि मौत यह नहीं सोचेगी कि इस मनुष्य का काम पूरा हुआ या नहीं, वह तो अकस्मात् उठा ले जायगी। मरने पर उसके सजातीय और बन्धु-बान्धव लोग उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करके घर लौट आवेंगे, कोई उसके साथ न जायगा। अतएव तुम पापी निर्दय नास्तिक लोगों का साथ और आलस्य छोड़कर, स्थिरचित्त होकर, परमात्मा की खोज करो। जब मौत निश्चित है तब क्यों समय बर्बाद कर रहे हो! धैर्य के साथ अपने धर्म का पालन करो। जो महात्मा परमात्मा के साक्षात्कार करने का उपाय अच्छी तरह जानते हैं वे इस लोक में अपने धर्म का पालन करके परलोक में अनन्त सुख पाने के अधिकारी होते हैं। जो जानते हैं कि शरीर छोड़ देने के बाद फिर मौत नहीं होती वे मोक्ष-पद प्राप्त करके फिर मौत का दुःख नहीं उठाते। जो मनुष्य क्रमशः धर्म की वृद्धि करने में लगे रहते हैं वही यथार्थ पण्डित हैं और धर्म से भ्रष्ट लोग तो मूर्ख हैं। शुभ कर्म करनेवाले मनुष्य अपने-अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग आदि फल पाते हैं; किन्तु पापियों को निस्सन्देह नरक में जाना पड़ता है। मनुष्य-शरीर को स्वर्ग की सीढ़ी समझो; इसे पाकर फिर नीचे न गिरना पड़े, इसलिए उद्योग के साथ ब्रह्म में मन लगाना चाहिए। जो मनुष्य धर्म के मार्ग पर चलकर स्वर्ग ८०
प्राप्त करने का उपाय करता है उसे पण्डित लोग पुण्यवान् कहते हैं। उसके पुत्र और बान्धवों को उसके लिए शोक न करना चाहिए। चञ्चलता न करके, दृढ़ता के साथ, कर्तव्य कर्मों में मन लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता। जो मनुष्य तपोवन में पैदा होता है और भोग का स्वाद नहीं जानता, अर्थात् तपोवन में ही रहकर जीवन बिता देता है उसे थोड़ा धर्म होता है; किन्तु जो गृहस्थाश्रम में जन्म लेता है और भोग का स्वाद लेकर उसे छोड़कर तप करता है उसे निस्सन्देह अधिक धर्म प्राप्त होता है; उसके लिए कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है। संसार में मनुष्यों के हज़ारों पिता-माता और सैकड़ों स्त्री-पुत्र हो चुके

Private Library

हैं और फिर होंगे; किन्तु विचार करके देखने पर किसी का किसी के साथ कोई सम्पर्क नहीं है। मैं किसी का नहीं हूँ और मेरा भी कोई नहीं है। जिस तरह सब लोग अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल पाते हैं उसी तरह तुम भी अपने कर्मों के अनुसार फल पाओगे, इसलिए दूसरों के साथ सम्पर्क रखने की क्या आवश्यकता है? ऐश्वर्यवान् मनुष्य के ही सब सगे होते हैं; दरिद्र का कोई सगा नहीं होता। इसलिए ऐश्वर्य का त्याग करके दरिद्र रहना ही अच्छा है। मनुष्य स्त्री के वश होकर, उसे सन्तुष्ट रखने के लिए, तरह-तरह के अनुचित काम करता है। उन कर्मों के कारण उसे अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतएव विवाह न करना ही अच्छा है। सारांश यह कि संसार नश्वर है। मैंने जैसा उपदेश दिया है उसी के अनु-
९० सार चलो। जो परलोक में अपना कल्याण चाहता हो वह शुभ कर्म अवश्य करे। महीना और ऋतुरूप चमचा, सूर्यरूप आग और दिन-रात-रूप ईंधन के द्वारा काल सब जीवों को पकाता है। यदि धन होने पर भी दान और भोग न करे, यदि शक्ति होने पर शत्रु का संहार न करे, यदि शास्त्र का ज्ञान होने पर भी धर्म-कर्म न करे और यदि जीवित रहकर जितेन्द्रिय न हो सके तो उसके लिए ये सब वृथा हैं। धन, बल, शास्त्रज्ञान और जीवन से उसको क्या लाभ है?

हे धर्मराज! महात्मा वेदव्यास के यों कह चुकने पर, उनके उपदेश के अनुसार मोक्ष
९४ प्राप्त करने का सङ्कल्प करके, पिता को त्यागकर शुकदेवजी चले गये।

तीन सौ तेईस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सर्वथा धर्म की कर्तव्यता बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या और गुरु की सेवा करने से किस प्रकार का फल मिलता है?

भीष्म ने कहा—बेटा, जो अनर्थकारिणी बुद्धि का आश्रय करके अनेक प्रकार के पाप करता है उसे निस्सन्देह दुःख भोगने पड़ेंगे। पापी मनुष्य दूसरे जन्म में दरिद्र होकर अनेक प्रकार के दुर्भिक्ष-क्लेश, भय और मौत का दुःख भोगता रहता है। किन्तु पुण्यवान् मनुष्य दूसरे जन्म में श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय और धनवान् होकर स्वर्ग का सुख भोगता है। पापी नास्तिक मनुष्यों को हमेशा बाघ, हाथी और साँप आदि हिंसक जीवों तथा चोरों से परिपूर्ण दुर्गम मार्ग में चलना पड़ता है। देवताओं और अतिथियों का सत्कार करनेवाले दानी यज्ञशील सज्जन उस मार्ग पर चलते हैं जो शुद्धचित्त महात्माओं का है। जैसे अन्न में भूसी और पक्षियों में 'पूत्यण्ड' (सड़े हुए अण्डे?) निकृष्ट हैं वैसे ही अधार्मिक मनुष्य हैं; उन पर कोई विश्वास नहीं करता। मनुष्य चलने-फिरने आदि चाहे जिस काम में लगा हो, वह सभी अवस्थाओं में शुभ-अशुभ कर्मों के फल के अधीन रहता है। जिसने जैसे कर्म कर रक्खे हैं उसे उन्हीं के अनुसार पर-जन्म में

फल भोगने पड़ेंगे। काल हमेशा सब प्राणियों को दबोचता रहता है। पूर्वजन्म के कर्मों का फल, बिना माँगे ही, फल-फूलों की तरह अपने समय पर उत्पन्न हो जाता है। मान-अपमान, लाभ-हानि और क्षय-अक्षय, ये सदा मनुष्यों का आश्रय करते हैं; इनको कोई टाल नहीं सकता। मनुष्य गर्भवास करते समय भी, पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार, सुख-दुःख भोगता है। लड़कपन, जवानी और बुढ़ापा, जिस अवस्था में मनुष्य जैसे कर्म करता है उसी अवस्था में उसे दूसरे जन्म में उनके अनुरूप फल भोगना पड़ता है। जैसे हज़ारों गायों के बीच में खड़ी अपनी माँ को बछड़ा ढूँढ़ लेता है वैसे ही पूर्वजन्म के कर्मों का फल कर्ता को ही प्राप्त होता है। मैला कपड़ा जैसे पानी से साफ़ किया जाता है वैसे ही महात्मा लोग उपवास आदि के द्वारा सब पापों से छूटकर अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं। जो मनुष्य बहुत दिन तपस्या करके पापों का नाश कर देता है उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं। जैसे आकाश में चिड़ियों की और पानी में मछलियों की गति के चिह्न नहीं देख पड़ते वैसे ही पुण्यवान् मनुष्यों की महिमा हमारी बुद्धि के परे है। दूसरों की बात सुनकर अधर्म-मार्ग का अवलम्बन करना किसी को उचित नहीं। अपने हित के लिए शुभ कर्म करना सर्वथा उचित है। १०

२०

तीन सौ चौबीस अध्याय

पुत्र के लिए व्यासदेव की तपस्या और शुकदेव के जन्म का वृत्तान्त

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, महातपस्वी धर्मात्मा शुकदेव का अमृतमय माहात्म्य सुनकर मुझे अभी सन्तोष नहीं हुआ। उनका जन्म किस तरह हुआ और वे किस प्रकार सिद्ध हुए? उनकी माता कौन हैं? संसार में किसी मनुष्य को बचपन में सूक्ष्म ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ तो शुकदेव ने बाल्यावस्था में ही किस प्रकार उसे प्राप्त कर लिया? यह सब वृत्तान्त सुनने की मेरी इच्छा है, आप विस्तार से वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! बाल्यावस्था, बुढ़ापा, धन या भाई-बन्धुओं द्वारा महर्षियों को महत्त्व नहीं प्राप्त होता। वेद का अध्ययन करने से ही उन्हें महत्त्व मिलता है। शुकदेव के जन्म आदि का जो वृत्तान्त तुमने पूछा है उसका मूल कारण तपस्या ही है। इन्द्रियों का संयम किये बिना तपस्या नहीं हो सकती। इन्द्रियों के वश में रहने से मनुष्य अनेक प्रकार के दोष करता है। इन्द्रियों का संयम कर लेने पर सिद्धि प्राप्त हो सकती है। योग का थोड़ा सा अभ्यास करने से जैसा फल मिलता है वैसा हज़ारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से नहीं मिल सकता। अब मैं महात्मा शुकदेव के जन्म, योग और उनकी सद्गति का वर्णन करता हूँ। १०

प्राचीन समय में भगवान् भूतनाथ, शैलराज-पुत्री पार्वती और भूतगणों के साथ, कनेर के वन से युक्त सुमेरु पर्वत के शिखर पर रहते थे। महर्षि, राजर्षि, लोकपाल, साध्य, वसु,

आदित्य, रुद्र, वायु, नदी, समुद्र, देवता, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सरागण तथा सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, नारद, पर्वत, विश्वावसु और अश्विनीकुमार, ये सब उनकी आराधना के लिए वहाँ रहते थे। भगवान् शङ्कर इस पर्वत पर कनेर के फूलों की विचित्र माला पहने हुए, चाँदनी से शोभित चन्द्रमा के समान, शोभायमान थे। महर्षि वेदव्यास शङ्करजी की कृपा से अग्नि, जल, वायु, पृथिवी और आकाश के गुणों से युक्त पुत्र प्राप्त करने की इच्छा करके—दुर्जनों को दुर्लभ उसी पर्वत पर जाकर—इन्द्रियों का संयम करके वायु-भक्षण करते हुए घोर तपस्या करने लगे। उन्होंने सौ वर्ष तक इसी प्रकार तपस्या की; किन्तु न तो उनका बल घटा और न उनको कोई क्लेश ही
२१ हुआ। वेदव्यास को इस प्रकार तपस्या करते देखकर तीनों लोक चकित हो गये। उनकी जटाएँ प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान हो गईं। उसी तपस्या के प्रभाव से आज भी उनकी जटाएँ अग्नि की शिखा के समान चमकती हैं। वेदव्यास की यह दृढ़ भक्ति और कठोर तपस्या देखकर महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और मुसकुराकर बोले—व्यास! तुम शीघ्र ही अग्नि, वायु, जल, पृथिवी और आकाश के समान शुद्ध पुत्र प्राप्त करोगे। वह पुत्र ब्रह्मपरायण होकर मन, प्राण और बुद्धि को ब्रह्म में लगावेगा। उसका यश तीनों लोकों में फैलेगा।

हे धर्मराज, मैंने मार्कण्डेयजी से यह वृत्तान्त सुना था। वे हमेशा मुझे देवताओं
२९ का चरित सुनाया करते थे।

तीन सौ पचीस अध्याय

शुकदेव के जन्म का वृत्तान्त

भीष्म ने कहा—धर्मराज, महादेवजी से इस प्रकार वरदान पाकर वेदव्यास बहुत प्रसन्न हुए। वे होम करने के लिए, आग बनाने की इच्छा से, 'अरणी' लेकर रगड़ने लगे। उसी समय घृताची नाम की रूपवती अप्सरा उन्हें देख पड़ी। उसे देखते ही महर्षि सहसा काम के वश हो गये। उनको कामातुर देखकर, शुक पक्षी का रूप धारण करके, घृताची उनके सामने आ गई। कामातुर महर्षि व्यासजी उसे दूसरे रूप में देखकर, धैर्य धारण करके, काम को हटा देने की चेष्टा करते हुए अरणी मथने लगे; किन्तु चञ्चल मन को किसी तरह स्थिर न कर सके। उसी समय सहसा उनका शुक्र उसी लकड़ी पर गिर पड़ा। उसे देखकर उन्हें कोई शंका न हुई। वे पहले की तरह लकड़ियों को रगड़ते रहे। लकड़ियों के रगड़ने से उस पर पड़ा हुआ शुक्र बार-बार हिलता था। शीघ्र ही उससे तेजस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेव
१० उत्पन्न होकर यज्ञभूमि में प्रज्वलित अग्नि के समान शोभित होने लगे। शुक्र के मथने से उनका जन्म हुआ, इसी से उनका नाम शुक रक्खा गया। शुकदेव का जन्म होते ही भगवती भागीरथी, स्वरूप धारण करके, वहाँ आ गईं। उन्होंने जल से उन्हें स्नान कराया। उसी समय उन

महात्मा के लिए आकाश से दण्ड और काली मृगछाला पृथिवी पर गिर पड़ी। तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, हाहा, हूहू आदि गन्धर्व उनकी स्तुति करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं, वायु दिव्य फूल बरसाने लगा और देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे। इन्द्र आदि देवता, लोकपाल, देवर्षि और ब्रह्मर्षिगण वहाँ आ गये। सारांश यह कि उस समय स्थावर-जङ्गम सब प्राणी प्रसन्न हो गये।

इसके बाद पार्वती समेत महादेवजी वहाँ आये और प्रसन्नता से, वेद की विधि के अनुसार, उन्होंने शुकदेव का यज्ञोपवीत कराया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर शुकदेव को सुन्दर कमण्डलु और दिव्य वस्त्र दिया। हंस, शतपत्र, सारस और शुक आदि हज़ारों पक्षी शुकदेव की प्रदक्षिणा करने लगे। २०

महातेजस्वी शुकदेव इस प्रकार जन्म लेकर, ब्रह्मचर्य धारण करके, वहीं रहने लगे। वेद-वेदाङ्ग और ब्राह्मण ग्रन्थ शीघ्र ही उन्हें हृदयङ्गम हो गये। तब उन्होंने धर्म का पालन करने के लिए बृहस्पति के पास जाकर सम्पूर्ण वेद, वेदाङ्ग, इतिहास और राजनीति का अध्ययन किया। इसके बाद बृहस्पति को गुरुदक्षिणा देकर वे वहाँ से लौट आये। शुकदेवजी बालकपन में ही ब्रह्मचर्य धारण करके, ध्यान और तपस्या के प्रभाव से ज्ञानवान् होकर, महर्षियों और देवताओं के माननीय हो गये। फिर थोड़े ही दिनों में सब आश्रमों से उनकी श्रद्धा हट गई; तब उन्होंने मोक्ष-धर्म का अवलम्बन किया। २७

तीन सौ छब्बीस अध्याय

शुकदेव का, व्यासदेव की आज्ञा से, मोक्ष-धर्म का उपदेश लेने के लिए जनक के पास जाना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, जब महात्मा शुकदेव के हृदय में मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई तब वे अपने पिता के पास पहुँचे। उन्होंने प्रणाम करके विनीत भाव से कहा—पिताजी! आप मोक्ष-धर्म के मर्मज्ञ हैं, अतएव मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मेरे चित्त को शान्ति मिले। यह सुनकर महर्षि वेदव्यास ने प्रसन्न होकर कहा—बेटा, तुम मोक्ष और अन्यान्य धर्मों का अध्ययन करो। तब धर्मात्मा शुकदेव ने, पिता की आज्ञा पाकर, उनसे सम्पूर्ण योग-शास्त्र और सांख्य-शास्त्र का अध्ययन किया। कुछ दिनों के बाद वेदव्यास ने पुत्र को मोक्ष-धर्म का विद्वान् और ब्रह्म के समान प्रभावशाली देखकर कहा—बेटा, तुम मिथिला-नरेश जनक के पास जाओ। वे तुमको मोक्ष-शास्त्र का उपदेश करेंगे। तुम उनके पास अपने प्रभाव से आकाश-मार्ग से न जाकर साधारण मनुष्यों की तरह नम्रता के साथ जाओ। मार्ग में किसी प्रकार के सुख या अपनी जान-पहचानवालों की खोज न करना; नहीं तो ममता में फँस जाओगे। राजा जनक हम लोगों के यजमान हैं, इसलिए उनसे किसी प्रकार का अहङ्कार न करना। हमेशा उनके कहे में रहना। तब वे तुम्हारा सब सन्देह दूर कर देंगे। १०

पिता की आज्ञा पाकर धर्मात्मा शुकदेव मिथिला नगरी को चले। वे आकाश-मार्ग से संसार भर में जहाँ चाहे जा सकते थे; किन्तु पिता के रोक देने के कारण आकाश-मार्ग से न चलकर पैदल ही चले। वे पर्वत, नदी, तीर्थ, तालाब, हिंसक जीवों से भरे हुए वन, इलावृतवर्ष, हरिवर्ष और किम्पुरुषवर्ष को लाँघकर भारतवर्ष में पहुँचे। चीन और हूण लोगों के देश को देखते हुए आर्यावर्त्त में आये। वे जितना ही आगे बढ़ते थे उतने ही सुन्दर गाँव, समृद्धिशाली नगर, विचित्र वस्त्र, बड़े-बड़े मनोहर बग़ीचे और अच्छे-अच्छे रत्न देखते थे; किन्तु उनका मन किसी में आसक्त न हुआ। अन्त को वे बहुत शीघ्र धर्मात्मा जनक के विदेह राज्य में पहुँचे। इस राज्य में अनेक रमणीय गाँव थे। गाँवों में अनेक प्रकार की भोजन की वस्तुएँ, पानी, अहीरों की बस्तियाँ, गेहूँ तथा दूसरे अन्न के ढेर और हंस तथा सारस आदि अनेक जलचर पक्षी थे; वहाँ सुन्दरी
२१ पद्मिनी स्त्रियाँ थीं। महात्मा शुकदेव विदेह-राज्य में प्रवेश करके धीरे-धीरे मिथिला नगरी के रमणीय उपवन में पहुँचे। इस बग़ीचे में हाथी, घोड़े, रथ और स्त्री-पुरुषों को देखकर भी उनके मन में किसी तरह का विकार नहीं उत्पन्न हुआ। अब वे बग़ीचे को लाँघकर मोक्ष के विषय की

चिन्ता करते-करते मिथिला नगरी में पहुँचकर उसकी पहली ड्योढ़ी में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते ही द्वारपालों ने उन्हें रोका। द्वारपालों के रोकने पर वे तनिक भी खिन्न नहीं हुए और उसी जगह धूप में खड़े हो गये। उन्हें भूख, प्यास, गरमी और थकावट से तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। एक द्वारपाल ने महात्मा शुकदेव को दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी देखकर, हाथ जोड़कर, यथासाध्य उनका सम्मान किया और उन्हें दूसरी ड्योढ़ी पर पहुँचा दिया। वहाँ बैठकर वे फिर मोक्ष-विषयक चिन्तन करने लगे। ठण्डी छाया और तेज़ धूप, उनके लिए एक सी थी।

महात्मा शुकदेव इस तरह थोड़ी देर दूसरी ड्योढ़ी पर बैठे होंगे कि राजा का
३० मन्त्री उनके पास आया और हाथ जोड़कर उनको तीसरी ड्योढ़ी में ले गया। सुन्दर तालाब और फूले हुए वृक्षों से युक्त अमरावती के समान मनोहर प्रमदा-वन में ले जाकर,

उनको आसन देने की आज्ञा देकर, मन्त्री चला गया। मन्त्री के चले जाने पर लाल रङ्ग की महीन साड़ी पहने सुन्दरी जवान पचास वेश्याएँ वहाँ आ गईं। उन्होंने शुकदेव को पहले पाद्य आदि देकर फिर शीघ्र ही स्वादिष्ठ भोजन दिया। वे रूपवती वेश्याएँ सोने के गहने पहने, नाचने-गाने में निपुण, मन की बात भाँप लेनेवाली और काम-कला के व्यवहार में प्रवीण थीं। वे मुसकुरा-मुसकुराकर बातें करती थीं। शुकदेवजी को भोजन कराकर वे उनको साथ लेकर हँसती, गाती और अठखेलियाँ करती हुई प्रमदावन की शोभा दिखाने लगीं; किन्तु जितेन्द्रिय क्रोधहीन शुद्धात्मा शुकदेवजी को तनिक भी हर्ष या विषाद न हुआ।

सन्ध्या होने पर वेश्याओं ने शुकदेवजी को सुन्दर बिछौना, रत्नों से जड़ी हुई महामूल्य दिव्य शय्या और आसन दिया। धर्मात्मा शुकदेव ने, पैर धोकर, रात का पूर्व भाग ध्यान ४०
में बिता दिया। इसके बाद वे रात के मध्य भाग में सोकर चौथे पहर में उठ बैठे और शौच-क्रिया करके फिर ध्यान करने लगे। ध्यान करते समय भी वेश्याएँ उनके चारों ओर बैठ गईं; किन्तु वे किसी तरह उनके मन को विचलित न कर सकीं। हे धर्मराज, इस प्रकार महात्मा शुकदेव ने महाराज जनक के राजभवन में एक दिन और रात बिताई। ४५

तीन सौ सत्ताईस अध्याय

शुकदेव से जनक का मोक्ष-धर्म का वर्णन करना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! इसके बाद दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज जनक मन्त्रियों और रनिवास की स्त्रियों को साथ लेकर, अपने सिर पर पूजा की सामग्री रखकर, गुरु-पुत्र शुकदेव से मिलने चले। उनके पुरोहित, आसन और अनेक रत्न लेकर, आगे-आगे चले। शुकदेव के पास पहुँचकर महाराज जनक ने पुरोहित के हाथ से आसन लेकर महात्मा शुकदेव को दिया। उन्हें आसन पर बैठाकर पाद्य, अर्घ्य और गोदान देकर विधि के अनुसार उनका सम्मान किया। तब तेजस्वी महात्मा शुकदेव ने महाराज जनक की कुशल पूछकर आदर के साथ उनसे बैठने के लिए कहा। आज्ञा पाकर राजा जनक, अनुचरों समेत, पृथ्वी पर बैठ गये। अपने कुशल-समाचार बतलाकर उन्होंने हाथ जोड़कर नम्रता के साथ कहा—भगवन्, अपने पधारने का कारण बतलाइए।

शुकदेव ने कहा—महाराज! मेरे पिताजी ने मुझसे कहा है कि प्रवृत्ति या निवृत्ति-मार्ग में कुछ सन्देह हो तो तुम मेरे यजमान, मोक्ष-धर्म के जानकार, विदेह-राज के पास जाओ। ११
उन्हीं की आज्ञा से मैं अपना सन्देह दूर करने को आपके पास आया हूँ। संसार में ब्राह्मणों का कर्तव्य क्या है? मोक्षतत्त्व किस प्रकार का है? मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से हो सकती है या तपस्या से? इन विषयों का मुझे ज्ञान नहीं है, अतएव आप कृपा करके मुझे बतलाइए।

जनक ने कहा—भगवन्, ब्राह्मणों को जन्म से लेकर जो-जो कर्म करने चाहिएँ उनको सुनिए। यज्ञोपवीत होने के बाद वेद का अध्ययन और तपस्या करे, ईर्ष्या न करे, गुरु पर श्रद्धा रक्खे, और ब्रह्मचर्य द्वारा देवताओं का तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरों का ऋण चुका दे। वेद पढ़ चुकने के बाद गुरु को दक्षिणा देकर फिर उनकी आज्ञा से घर को लौटे। उसके बाद गृहस्थ आश्रम में रहकर, ईर्ष्याहीन और आहिताग्नि होकर, अपनी स्त्री से पुत्र उत्पन्न करे। फिर वन में जाकर वानप्रस्थ-धर्म का पालन करते हुए शास्त्र के अनुसार प्रति-दिन अतिथियों का सत्कार और होम करे। अन्त को विषय-राग और सुख-दुःख का त्याग करके संन्यासी हो जाय।

शुकदेव ने कहा—महाराज, यदि ब्रह्मचर्य का ग्रहण करने से पहले ही किसी को मोक्षधर्म
२० का मूल ब्रह्मज्ञान हो जावे तो क्या उसके लिए ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों में रहना आवश्यक है?

जनक ने कहा—भगवन्, जैसे ज्ञान और विज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती वैसे ही गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिल सकता। पण्डितों ने ज्ञान को नाव-स्वरूप और गुरु को संसार-सागर का कर्णधार बतलाया है। अतएव गुरु से ज्ञान प्राप्त करके संसार-सागर के पार उतरकर अन्त को ज्ञान और गुरु दोनों का त्याग कर दे। प्राचीन पण्डितों ने, मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देने और कर्मकाण्ड को बचाने के लिए, ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का धर्म स्थापित किया है। इसी नियम के अनुसार धर्म का पालन करते रहने पर मनुष्य अनेक जन्मों के बाद, कर्म के शुभ-अशुभ फल का त्याग करके, मोक्ष प्राप्त करता है। जो मनुष्य अनेक जन्मों के साधन द्वारा इन्द्रियों को वश में करके बुद्धि को शुद्ध कर सकता है वह ब्रह्मचर्य आश्रम से ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्य आश्रम से मोक्ष प्राप्त कर सकने पर गृहस्थ आदि आश्रमों में जाने की आवश्यकता नहीं है। रजोगुण और तमोगुण का त्याग करके, सत्त्वगुण से युक्त होकर, जीवात्मा को परमात्मा में मिलाना चाहिए।

जैसे जल-जन्तु जल में रहने पर भी उससे लिप्त नहीं होते वैसे ही मनुष्य सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों में स्थित देखकर निर्लिप्त भाव से रहे। जो मनुष्य इस लोक में सुख-दुःख का त्याग करके, मुक्त होकर, शान्ति प्राप्त करता है वह परलोक में—पक्षी के
३० समान ऊर्ध्वगामी होकर—अनन्त सुख भोगता है। महाराज ययाति ने मोक्ष के विषय में जो वचन कहे हैं उन्हें मोक्ष के जानकार ब्राह्मण लोग विशेष रूप से जानते हैं, वही मैं आपको बतलाता हूँ। स्थिरचित्त महात्मा ही आत्म-रूप सब प्राणियों में स्थित परमात्मा के दर्शन कर सकता है। मनुष्य जब न दूसरों को डराता है और न स्वयं दूसरों से डरता है, जब इच्छा और द्वेष का त्याग कर सकता है और जब मन-वचन-कर्म से किसी का बुरा नहीं चेतता तब मोक्ष प्राप्त कर सकता है; जब काम, क्रोध और मोह उत्पन्न करनेवाली ईर्ष्या का त्याग करके मनुष्य मन को जीवात्मा में स्थिर कर सकता है, जब प्रिय या अप्रिय बात सुनकर और प्रिय या अप्रिय

वस्तु को देखकर हर्ष-विषाद नहीं करता तब मोक्ष प्राप्त कर सकता है; जब वह स्तुति-निन्दा, सोना-लोहा, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय और जीवन-मरण को समान समझता है तब मोक्ष प्राप्त कर सकता है। जैसे कछुआ अपने अङ्ग फैलाता और फिर समेट लेता है वैसे ही संन्यासी मन और इन्द्रियों को अपने क़ाबू में कर लेता है। जैसे दीपक के द्वारा अँधेरे घर में प्रकाश हो जाता है वैसे ही ज्ञान के द्वारा परमात्मा के दर्शन होते हैं। ४०

ब्रह्मन्, मैंने यहाँ तक मोक्ष के उपयोगी जिन कर्मों का वर्णन किया है उनको आप जानते ही हैं। गुरु वेदव्यास की कृपा से मुझे दिव्य ज्ञान हो गया है। उसी ज्ञान के प्रभाव से आपके आने का हाल मुझे पहले ही मालूम हो गया था। विज्ञान, श्रेष्ठ गति और अणिमा आदि ऐश्वर्य से युक्त होकर भी आप अपना प्रभाव नहीं जानते। विज्ञान उत्पन्न होने पर भी बालकपन, सन्देह या भय-युक्त होने के कारण आप परम गति नहीं पा सकते। मोक्ष चाहनेवाले मनुष्य, मेरे जैसे मनुष्य से सन्देह दूर करके, शरीर का अभिमान त्यागकर शुद्ध आचरण द्वारा परमगति पा सकते हैं। आप ज्ञानवान्, स्थिरबुद्धि और लोभहीन हैं; केवल अभ्यास न करने के कारण आपको ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। सुख-दुःख, लोभ, नाचने-गाने में अनुराग, बन्धुओं पर स्नेह, शत्रु का भय और भेद-बुद्धि, ये सब आपके हृदय से बिलकुल हट गये हैं। आपने जिस श्रेष्ठ मार्ग का आश्रय किया है उसे मैं और अन्य विद्वान् विशेष रूप से जानते हैं। ब्राह्मणों के कर्तव्य और मोक्ष के विषय में आप सब कुछ जानते हैं। अब आपको और क्या पूछना है? ५१

तीन सौ अट्ठाईस अध्याय

शुकदेव का जनक के पास से लौटकर व्यासजी के पास जाना और उनसे सब वृत्तान्त कहना। वैशम्पायन आदि शिष्यों के साथ व्यासजी की बातचीत

भीष्म ने कहा—धर्मराज! महाराज जनक के यों कहने पर धर्मात्मा शुकदेव, आत्मा का साक्षात्कार करके कृतकार्य होने के निमित्त, वायु के समान वेग से उत्तर दिशा को हिमालय पर्वत की ओर चले। उस समय देवर्षि नारद भी उस पर्वत की सैर करने गये थे। उस पर्वत पर अप्सरा, सिद्ध, चारण और किन्नर रहते हैं। वहाँ भौंरे, कबूतर, खञ्जन, जीवजीवक, विचित्र मोर, राजहंस और कोयल शब्द किया करते हैं। पक्षिराज गरुड़ हमेशा वहीं रहते हैं। इन्द्र आदि चारों दिक्पाल, संसार का हित करने के लिए, देवताओं और ऋषियों समेत हमेशा वहाँ जाया करते हैं। भगवान् विष्णु ने, पुत्र की इच्छा से, उक्त स्थान पर घोर तपस्या की थी। उसी पर्वत पर महावीर कार्त्तिकेय ने, तीनों लोकों को तृण के समान समझकर, यह कहकर शक्ति गाड़ दी थी कि तीनों लोकों में यदि कोई मुझसे बढ़कर बलवान्, ब्राह्मण-प्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हो तो इस शक्ति को उखाड़ डाले या हिला दे। कार्त्तिकेय के शक्ति गाड़ ११

देने पर उस शक्ति को उखाड़ डालने की चिन्ता से तीनों लोक व्याकुल हो उठे। देव, दानव और राक्षस आदि सबको व्याकुल देखकर भगवान् विष्णु अपना कर्तव्य सोचने लगे। अन्त को कार्त्तिकेय का अहङ्कार न सह सकने के कारण वे बाँयें हाथ से उस प्रज्वलित शक्ति को पकड़कर हिलाने लगे। शक्ति के हिलाये जाते ही सम्पूर्ण पर्वत और वन समेत सारी पृथिवी हिलने लगी। भगवान् विष्णु इस शक्ति को उखाड़ सकते थे; किन्तु कार्त्तिकेय का गौरव रखने के लिए उन्होंने उसे उखाड़ा नहीं, केवल हिला दिया। इसके बाद उन्होंने प्रह्लाद से कहा—दैत्यराज, कार्त्तिकेय का पराक्रम देखो। इस शक्ति को कोई उखाड़ नहीं सकता। इस बात को प्रह्लाद न सह सके; उन्होंने शक्ति को उखाड़ डालने का निश्चय किया। किन्तु वे किसी तरह उसे हिला न सके, बल्कि ज़ोर से चिल्लाकर पृथिवी पर गिर पड़े। उनको मूर्च्छा आ गई। महादेवजी ने इस पर्वत के उत्तर भाग में आश्रम बनाकर बहुत दिनों तक तपस्या की थी। प्रज्वलित अग्नि के समान वह आश्रम आज तक आदित्य पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पापियों के जाने की बात कौन कहे; यक्ष, राक्षस और दानव भी नहीं जा सकते। वह आश्रम दस योजन विस्तीर्ण और प्रज्वलित अग्नि से घिरा हुआ है। महादेवजी का विघ्न हटाने के लिए अग्निदेव, स्वरूप धारण करके, वहाँ स्थित रहते हैं। भगवान् शङ्कर ने इस स्थान पर नियम-पूर्वक हज़ार वर्ष तक एक पैर पर खड़े रहकर तपस्या की थी और अपनी तपस्या के प्रभाव से देवताओं को सन्तप्त किया था।

महातपस्वी वेदव्यास इसी हिमालय पर्वत के पूर्व भाग में एक निर्जन स्थान पर सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनि और पैल को पढ़ाते थे। सूर्य के समान तेजस्वी महात्मा शुकदेव आकाश-मार्ग से चलकर उसी रमणीय स्थान को गये। प्रज्वलित अग्नि के समान, धनुष से छूटे हुए बाण के समान, दूसरों के लिए दुस्साध्य योग से युक्त पुत्र को आते देखकर महर्षि वेदव्यास बहुत प्रसन्न हुए। धर्मात्मा शुकदेव ने पिता के पास जाकर उनको प्रणाम करके अन्य ऋषियों से भेंट की और महाराज जनक का आद्योपान्त वृत्तान्त पिता को कह सुनाया।

महर्षि वेदव्यास, शिष्यों के साथ, शुकदेव को भी वेद पढ़ाते हुए उसी स्थान पर रहने लगे। कुछ दिनों बाद जब वेद का अध्ययन समाप्त हो गया तब वेदव्यास के चारों ओर बैठे हुए शिष्यों ने हाथ जोड़कर कहा—गुरुजी, आपकी कृपा से हम लोगों ने यथेष्ट तेज और यश प्राप्त कर लिया है। अब आपसे हम लोगों की एक और प्रार्थना है। आप कृपा करके उसे स्वीकार कीजिए। महर्षि ने कहा—प्रिय शिष्यो, अब मैं तुम लोगों का क्या प्रिय करूँ? यह सुनकर शिष्यगण बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगे—भगवन्, आपकी कृपा से हम लोग कृतार्थ हो गये। अब हम यह वरदान चाहते हैं कि हम लोगों के सिवा आपका और कोई शिष्य, हम लोगों के समान, प्रसिद्ध न हो सके। आपके चार शिष्य हम लोग और गुरु- ४०
पुत्र शुकदेव, इन पाँच के सिवा इस लोक में और कोई वेद का प्रतिष्ठाता न हो।

यह प्रार्थना सुनकर महर्षि वेदव्यास ने कहा—शिष्यो! ब्राह्मण को, वेद सुनने के अभिलाषी को और ब्रह्मलोक प्राप्त करने के उद्योगी मनुष्य को वेद का उपदेश अवश्य करना चाहिए। अतएव तुम लोग वेद का प्रचार करो। शिष्य, व्रतपरायण और पुण्यात्मा मनुष्य के सिवा और किसी को वेद का उपदेश न करना। आचरण जाने बिना शिष्य को विद्या पढ़ाना अनुचित है। जैसे आग में तपाने, कसौटी पर कसने और काटने से सोने की परख होती है वैसे ही कुल और गुण आदि की जाँच करके शिष्यों की परीक्षा करनी चाहिए। अनुचित या भय के कामों में शिष्य को कभी नियुक्त न करे। तुम लोगों की बुद्धि और विद्या सफल होगी। तुम लोग हमेशा दुर्गम स्थानों को पार करोगे; तुम्हारा कल्याण होगा। ब्राह्मण को अग्रसर करके चारों वर्णों को वेद सुनाना चाहिए। वेद का पढ़ाना सबसे श्रेष्ठ काम है। देवताओं की स्तुति करने के लिए ब्रह्माजी ने वेदों की रचना की है। जो मनुष्य अज्ञान के वश होकर वेद के पारदर्शी ब्राह्मण की निन्दा करता है उसे निस्सन्देह हानि उठानी पड़ती है। जो मनुष्य धर्म के अनुसार प्रश्न नहीं करता और जो धर्म के अनुसार उत्तर नहीं देता वे दोनों अधर्म के भागी और निन्दनीय होते हैं। यह मैंने वेद के पढ़ाने की विधि तुम लोगों को बतला दी। इसे ध्यान में रखकर तुम लोग शिष्यों का उपकार करो। ५३

तीन सौ उन्तीस अध्याय

शिष्यों के चले जाने पर व्यासजी का उदास होना और उनके पास नारदजी का आना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, यह कहकर महात्मा वेदव्यास चुप हो गये। शिष्यों ने बड़ी प्रसन्नता से परस्पर आलिङ्गन करके व्यासजी से कहा—"गुरुजी, भविष्य का विचार करके आपने हम लोगों को जो उपदेश दिया है उसे हम कभी न भूलेंगे।" उन्होंने आपस में इसका निश्चय करके कहा—गुरुजी, यदि आपकी आज्ञा हो तो अब हम लोग पृथिवी पर जाकर वेदों का प्रचार करें।

यह सुनकर व्यासजी ने धर्मार्थयुक्त हितकर वचन उनसे कहा—शिष्यो, क्या पृथिवी और क्या स्वर्ग-लोक, तुम लोग चाहे जहाँ जा सकते हो; किन्तु हमेशा सावधानी से रहना। तनिक सी भी असावधानी करने से मनुष्य वेद और स्मृति के मार्ग से विचलित हो जाता है। वेदव्यास के यों कह चुकने पर शिष्यों ने उनको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके वहाँ से प्रस्थान किया। वे पृथिवी पर आकर गृहस्थ-धर्म स्वीकार करके यज्ञ, अध्यापन तथा ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की पुरोहिती करते हुए संसार में प्रसिद्ध हुए। वे ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों से सम्मानित होकर बड़े सुख से रहने लगे।

१० शिष्यों के चले जाने पर वेदव्यास अपने पुत्र शुकदेव के साथ सोच-विचार करने लगे। उसी समय तपस्वियों में श्रेष्ठ देवर्षि नारद उनके आश्रम में आकर उनसे मधुर वचन कहने लगे—महर्षि, आप वेद का पाठ करना छोड़कर किस चिन्ता में पड़े हुए हैं? वेद की ध्वनि न होने के कारण अब यह पर्वत, राहु से ग्रस्त चन्द्रमा के समान, शोभाहीन हो गया है। इस पर्वत पर देवर्षि, महर्षि, देवता और गन्धर्व तो रहते हैं; किन्तु वेद की ध्वनि न होने से यह बहेलिये के घर के समान जान पड़ता है। यह सुनकर वेदव्यास ने उत्तर दिया—महात्मन्! आप सर्व-दर्शी, सर्वज्ञ और अद्भुतकर्मा हैं। आपका कहना मेरे अनुकूल ही है। तीनों लोकों में जो कुछ होता है वह सब आप जानते हैं। इस समय शिष्यों को न देखने से मेरा चित्त घबरा रहा है, इसलिए मैं चुपचाप बैठा हूँ। कहिए, अब क्या करूँ?

नारदजी ने कहा—महर्षि! पण्डितों ने आवृत्ति न करना वेद का, व्रत न करना ब्राह्मण
२० का, वाहीक जाति पृथ्वी का और कौतूहल करना स्त्रियों का दोष (मल) बतलाया है। अतएव आप पुत्र के साथ वेद का पाठ करके वेद की ध्वनि द्वारा राक्षसों के भय से उत्पन्न मोह का नाश कीजिए।

यह उपदेश सुनकर धर्मात्मा वेदव्यास, नारदजी की आज्ञा के अनुसार, पुत्र शुकदेव समेत ऊँचे स्वर से वेद का पाठ करने लगे। वेद की ध्वनि से सम्पूर्ण लोक गूँज उठे। एक दिन पिता और पुत्र वेद पढ़ रहे थे, इतने में अकस्मात् आँधी आ गई। वायु का वेग देखकर वेदव्यासजी ने, अनध्याय का समय समझकर, पुत्र को वेद पढ़ने से रोक दिया। पाठ छोड़-कर शुकदेव ने पूछा—पिताजी, वायु कहाँ से उत्पन्न हुआ है और उसका क्या काम है? वेद-व्यासजी ने अनध्याय के समय पुत्र का यह विज्ञान-सम्बन्धी प्रश्न सुनकर विस्मित होकर कहा—बेटा! तुमको दिव्य ज्ञान हो गया है, तुम्हारा मन स्थिर है और तुम रजोगुण तथा तमोगुण से मुक्त हो गये हो। जिस तरह दर्पण में अपना मुँह देखा जाता है उसी तरह तुम अपने आत्मा में परमात्मा के दर्शन करते हो। तुम बुद्धि द्वारा वेदों में इसका विचार करो तो यह बात अपने-आप तुम्हारी समझ में आ जायगी। पण्डितों ने सर्वव्यापी परमात्मा के मार्ग को देव-यान और तमोगुण से उत्पन्न मार्ग को पितृयान कहा है। शरीर त्यागने के बाद जो देवयान से जाता है उसे उत्तम गति (मुक्ति) मिलती है और जो पितृयान से जाता है उसे बार-बार संसार

में जन्म लेना पड़ता है। पृथ्वी और आकाश में सात प्रकार के वायु भिन्न-भिन्न गति से चला ३०
करते हैं। उनका वर्णन सुनो। पण्डितों ने दुर्जय समान-वायु को इन्द्रियों का, उदान-वायु को समान का, व्यान-वायु को उदान का, अपान-वायु को व्यान का, और प्राण-वायु को अपान का पुत्र बतलाया है। प्राण-वायु के कोई पुत्र नहीं है। समान, उदान, व्यान, अपान और प्राण, इन पाँच वायुओं के और भी पाँच नाम हैं—संवह, उद्वह, विवह, आवह और प्रवह। इनके सिवा परिवह और परावह नाम के दो और वायु हैं।

अब इन सबके कार्य बतलाता हूँ। प्रवह नाम का वायु, धुआँ और गरमी से उत्पन्न, बादलों को उड़ाता हुआ आकाश-मार्ग में विद्युत् अग्नि होकर अतुल तेज धारण करता है। यही वायु प्राणियों के शरीर में रहकर चेष्टा उत्पन्न करता है, इसलिए इसे प्राण कहते हैं। आवह नाम का वायु भीषण शब्द करता हुआ बहता है और हमेशा चन्द्रमा आदि नक्षत्रों का उदय करता है। उसका दूसरा नाम अपान है। उद्वह नाम का वेगवान् वायु चारों समुद्रों से जल लेकर बादलों को देता है और बादलों को वृष्टि के अधिष्ठाता देवता के पास पहुँचाता है। उसका दूसरा नाम उदान है। संवह नाम का वायु बादलों को अनेक रूपों ४०
में उड़ाता है और आकाश-मार्ग में विमानों का वहन करता है। इसी वायु के प्रभाव से बादल कभी तो पानी बरसाते हैं और कभी पानी बरसाने के लिए इकट्ठे होकर ठहर जाते हैं। उसका दूसरा नाम समान है। विवह नाम का वायु प्रचण्ड वेग से वृक्षों को उखाड़ता और प्रलय-काल के मेघ तथा धूमकेतु आदि संसार के विनाशसूचक अनेक उत्पात उत्पन्न करता है। उसका दूसरा नाम व्यान है। परिवह नाम का वायु आकाश-गङ्गा के जल को रोके रहता है। इसी से वह जल पृथिवी पर नहीं गिरता, आकाश-मार्ग में ही घूमा करता है। हज़ार किरणों से युक्त सूर्य इसी वायु के प्रभाव से एक किरण के समान देख पड़ते हैं। यही वायु क्षीण चन्द्रमा को प्रतिदिन बढ़ाता है। परावह नाम का दुर्निवार्य वायु प्राणों का संहार करता है। मृत्यु और यम इसी का अनुसरण करते हैं। हे पुत्र! तुम शुद्ध बुद्धि के द्वारा उसको देखो। यह वायु ध्यान में स्थित महात्माओं के लिए अमृतरूप है। दक्ष प्रजापति के दस हज़ार ५०
पुत्र इसी वायु के बल का आश्रय करके, ब्रह्माण्ड को भेदकर, दसों दिशाओं को चले गये थे। जो कोई इस वायु का स्पर्श कर लेता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। ये अद्भुत सातों वायु अदिति के पुत्र-सदृश हैं। ये सदा चलते रहते हैं। देखो, इन्हीं सातों के प्रभाव से हिमालय काँप रहा है। जब ये सब वायु, विष्णु की श्वास के द्वारा, प्रचण्ड वेग से चलते हैं तब सारा संसार पीड़ित हो जाता है। वेग से वायु के चलते समय श्रोत्रिय लोग वेद का पाठ नहीं करते। उस समय पढ़ने से वेदोच्चारण शुद्ध-शुद्ध नहीं होता। पुत्र से यों कहकर और आँधी निकल जाने पर उन्हें वेद का पाठ करने की आज्ञा देकर व्यासजी मन्दाकिनी के किनारे चले गये। ५७

तीन सौ तीस अध्याय

नारदजी का शुकदेव को उपदेश

भीष्म ने कहा—धर्मराज, वेदव्यास के चले जाने पर महर्षि नारद आकाश-मार्ग द्वारा शुकदेवजी के पास आ गये। उनको देखकर शुकदेवजी बहुत प्रसन्न हुए। विधि के अनुसार अर्घ्य आदि देकर शुकदेव ने उनका सम्मान किया। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर नारदजी ने कहा—धर्मात्मन्! कहो, तुम्हारी भलाई के लिए क्या करूँ? शुकदेव ने कहा—देवर्षि, यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे वही उपदेश दीजिए जिससे इस लोक में मेरा हित हो।

नारदजी ने कहा—बेटा, प्राचीन समय में महर्षियों के पूछने पर सनत्कुमारजी ने उन्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया था। विद्या के समान नेत्र, सत्य के समान तपस्या, दान के समान सुख और विषय-वासना के समान दूसरा दुःख नहीं है। पाप से बचे रहना, पुण्य करना और सदाचार तथा सद्व्यवहार ही सबसे बढ़कर काम हैं। दुर्लभ मनुष्य-शरीर को प्राप्त करके जो मनुष्य विषयों में आसक्त रहता है वह सदा मोह में फँसा रहता है। सारांश यह कि विषयासक्ति ही दुःखों का कारण है। विषयासक्त मनुष्य की बुद्धि हमेशा चञ्चल रहती है और वह मोहमाया में फँसा रहकर इस लोक तथा परलोक में अनन्त काल तक दुःख भोगता है। काम और क्रोध से हित का नाश होता है। अतएव इन शत्रुओं को जैसे बने, अपने अधीन
१० करना चाहिए। क्रोध से तपस्या की, ईर्ष्या से तेज की, मान-अपमान से विद्या की और प्रमाद से आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। दयाभाव के समान धर्म, क्षमा के समान बल, आत्मज्ञान के समान ज्ञान और सत्य के समान श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है। मनुष्यों को सत्य बोलना चाहिए; किन्तु जहाँ सत्य बोलने से किसी का अनिष्ट होता हो वहाँ सत्य को छोड़कर झूठ बोलना ठीक है। मेरे मत में तो सत्य वही है जिससे मनुष्यों का कल्याण होता है। जो किसी से कुछ वास्ता न रक्खे वही यथार्थ ज्ञानी और पण्डित है। जो शान्तचित्त और निर्विकार होकर इन्द्रियों को आत्मा के वशीभूत करके, विषयों में आसक्त न रहकर, उनका भोग करता है वह शीघ्र मुक्त हो जाता है। जो किसी के साथ दर्श-स्पर्श और सम्भाषण नहीं करता वही अपना कल्याण कर सकता है। किसी जीव की हिंसा करना उचित नहीं। सबके साथ मित्रभाव रखना चाहिए। मनुष्य-जन्म पाकर किसी के साथ शत्रुता करना अच्छा नहीं है। तत्त्वज्ञानी जितेन्द्रिय मनुष्यों को सब विषयों से मुक्त, नित्य सन्तुष्ट, निर्लोभ और शान्त रहना चाहिए। इसी से उनका परम कल्याण होता है। अब तुम सब विषयों को त्यागकर जितेन्द्रिय हो जाओ। जिसका
२० आश्रय करने से दोनों लोकों में शोक और भय का लेश नहीं रह जाता उसी का आश्रय करो। वीतराग मनुष्य को कोई शोक नहीं रहता, अतएव इच्छा का त्याग करना परम आवश्यक है। जो मनुष्य तपस्या करके संयतात्मा होकर ब्रह्मपद प्राप्त करना चाहे उसे विषयों का त्याग

अवश्य कर देना चाहिए। जो तत्त्वज्ञानी विषयों में आसक्त न रहकर सदाचारी बना रहता है उसे कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता। जो मनुष्य दाम्पत्य-सुख भोग रहे मनुष्यों को देखता हुआ उन्हीं के बीच बेलाग रह सकता है वही यथार्थ ज्ञानी है। उसे कभी शोक नहीं करना पड़ता। कर्मों के वशीभूत मनुष्य शुभ कर्म करने से देवत्व, शुभ-अशुभ कर्म करने से मनुष्यत्व तथा अशुभ कर्म करने से अधोगति पाता है। क्या तुम नहीं देखते कि सभी मनुष्य बूढ़े होते और मरते हैं? तुम अहित को हित, अनिश्चित को निश्चित और अनर्थ को अर्थ समझते हो। मोह के वश होकर (रेशम के) कीड़े के समान अपने कर्म-सूत्र में क्यों बँधे हो? विषयों का बन्धन अनेक दोषों की खान है, अतएव बन्धन से मुक्त होना ही मनुष्यों का कर्तव्य है। रेशम का कीड़ा अपने मुँह से जाला निकालकर उसी में बँध जाता है। स्त्री-पुत्र और अन्य कुटुम्बियों में अनुरक्त रहने से मनुष्य को, कीचड़ में फँसे हुए मतवाले हाथी के समान, व्यथित होना पड़ता है। अज्ञान के कारण स्नेह-पाश में फँसा रहने से मनुष्य, जल के बाहर पड़ी हुई मछली ३०
की तरह, दुःख भोगता है। स्त्री, पुत्र, परिवार, शरीर और सञ्चित धन, कुछ भी अपने साथ नहीं जायगा; शुभ-अशुभ कर्म ही साथ जायँगे। जब सब कुछ त्यागकर एक दिन काल के वश होकर चला जाना निश्चित है तब तुम क्यों अपना कार्य सिद्ध करने का उद्योग नहीं करते और अनर्थ करनेवाले विषयों में आसक्त रहते हो? तुम बिना सहारे और बिना कलेवा के किस तरह अन्धकारमय दुर्गम परलोक के मार्ग में जाओगे? परलोक जाते समय शुभ और अशुभ कर्मों के सिवा और कुछ तुम्हारे साथ नहीं जायगा। विद्या, कर्म, पवित्रता और ज्ञान के द्वारा परमार्थ की खोज की जाती है। परमार्थ की सिद्धि होने से ही मुक्ति होती है। गृहस्थाश्रम में रहकर उसमें अनुरक्त रहने से मनुष्य माया-जाल में फँसा रहता है। पुण्यात्मा मनुष्य इस जाल को काटकर मुक्त हो सकते हैं; किन्तु पापी अविवेकी मनुष्य इस जाल को नहीं काट सकते। संसार-रूपी नदी बड़ी भयङ्कर है। रूप इस नदी का तट, मन इसका स्रोत, स्पर्श इसका द्वीप, रस इसका प्रवाह, गन्ध इसका कीचड़ और शब्द ही इसका जल है। क्षमा-रूप लग्गी, धर्म की स्थिरता स्वरूप खींचने की रस्सी और दान-रूप वायु द्वारा सञ्चालित शरीर-रूपी नौका के सहारे इस नदी को पार करना चाहिए। अब तुम पहले इच्छाओं के त्याग द्वारा धर्म को, लोभ के त्याग द्वारा अधर्म को, बुद्धि के द्वारा सत्य और झूठ को तथा परमात्म-तत्त्व-निर्णय द्वारा बुद्धि को त्यागकर अन्त को इस हड्डी और स्नायु से युक्त, मांस और रुधिर से परिपूर्ण, मल-मूत्र से भरे हुए, शोक और बुढ़ापे से युक्त, रोगों की खानि अनित्य शरीर का त्याग करो। यह स्थावर-जङ्गम- ४३
स्वरूप विश्व पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न हुआ है। पञ्चमहाभूत, पाँच इन्द्रियाँ, शरीर में स्थित पञ्चवायु, बुद्धि और सत्त्व आदि गुण, इन सत्रह को अव्यक्त कहते हैं। ये सत्रह अव्यक्त, रूप आदि पञ्च विषय, अहङ्कार और ममता, ये चौबीस पदार्थ तत्त्व कहलाते हैं। इन चौबीस

तत्त्वों को व्यक्त और अव्यक्त, दोनों कहा जा सकता है। जीवात्मा इन चौबीस तत्त्वों से युक्त होने पर पुरुष कहलाता है। धर्म, अर्थ और काम, यह त्रिवर्ग सुख देनेवाला है तथा जन्म और मृत्यु अत्यन्त दुखदायी हैं। जो मनुष्य इन विषयों को भली भाँति समझ जाता है उसे नित्य और अनित्य सब वस्तुएँ हृदयङ्गम हो जाती हैं। ज्ञेय पदार्थ एक-दूसरे के सम्बन्ध से जाने जाते हैं। जो पदार्थ इन्द्रियों द्वारा जाने जाते हैं वे व्यक्त और जिनका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता वे अव्यक्त कहलाते हैं। ज्ञानी मनुष्य इन्द्रियों का संयम करके, परम सन्तुष्ट
५० होकर, आत्मा को सब लोकों में व्याप्त और आत्मा में सब लोकों को स्थित देखते हैं। उनकी ज्ञानशक्ति कभी नष्ट नहीं होती। वे उस शक्ति के प्रभाव से सदा सब जीवों को देखते रहते हैं। जो मनुष्य ज्ञान के बल से मोह से उत्पन्न क्लेशों का नाश कर देता है उसका न तो कोई अशुभ होता है और न वह कभी अपने मार्ग से विचलित होता है। मोक्ष के तत्त्वज्ञ पुरुष परमात्मा को जन्म-मृत्युहीन, शरीर में स्थित, निराकार, निर्लिप्त बतलाते हैं। मनुष्य एक बार दुष्कर्म करके अत्यन्त दुखी होकर उस दुःख को नष्ट करने के लिए, जीवों की हिंसा द्वारा, अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं। उससे फिर वे नये-नये दुष्कर्मों में लिप्त होकर, अपथ्य करनेवाले रोगी के समान, क्लेश भोगते हैं। मोहान्ध मनुष्य दुःख को सुख समझकर, अपने कर्मों के फल में हमेशा बँधा रहकर, अनेक प्रकार के क्लेश पाता है। ऐसे मनुष्य, अपने कर्मों के अनुरूप, अनेक योनियों में जन्म लेकर संसार में चक्र के समान घूमते रहते हैं। अतएव तुम संसार के बन्धन से छूट-कर—काम्य-कर्मों का त्याग करके—सर्वज्ञ, सर्वविजयी और सिद्ध हो जाओ। अनेक महात्मा
५९ तपस्या के प्रभाव से संसार के बन्धन से छूटकर अनन्त सुख देनेवाली सिद्धि पा चुके हैं।

तीन सौ इकतीस अध्याय

नारदजी का शुकदेवजी को उपदेश

नारदजी ने कहा—बेटा, शोक का नाश करनेवाले और शान्ति देनेवाले शास्त्र को सुनने से बुद्धि शुद्ध होती है और परम सुख मिलता है। मूढ़ मनुष्यों को हज़ारों प्रकार के शोक और भय प्रतिदिन बने रहते हैं; किन्तु पण्डितों के पास वे फटकने नहीं पाते। अब मैं तुम्हारे अनिष्ट को नष्ट करने के लिए कुछ उपदेश देता हूँ। जब बुद्धि वश में हो जाती है तब सब प्रकार के शोक नष्ट हो जाते हैं। अल्पबुद्धि मनुष्य इष्ट का वियोग और अनिष्ट का संयोग होने पर मानसिक दुःख से पीड़ित होते हैं। अतएव किसी वस्तु के नष्ट हो जाने पर उसके गुणों की चिन्ता करना व्यर्थ है। जो मनुष्य नष्ट वस्तुओं की चिन्ता करता है वह कभी स्नेह-पाश से नहीं छूटता। महात्मा लोग किसी विषय में अनुराग उत्पन्न होने पर उस विषय को, अनिष्ट-कर और दोषों की खान समझकर, शीघ्र ही छोड़ देते हैं। जो मनुष्य बीती बातों की चिन्ता

करता है उसे धर्म और यश की प्राप्ति नहीं होती। वह बड़े कष्ट से जीवन व्यतीत करता है। शोक करने से नष्ट हुई वस्तु नहीं मिल सकती। सभी प्राणियों को कभी कोई विषय प्राप्त होता और कभी वह नष्ट हो जाता है। संसार में किसी को शोक ही शोक नहीं घेरे रहता। जो मनुष्य किसी के मरने का या प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने का शोक करता है, उसे उस शोक के द्वारा दुःख के सिवा और कुछ नहीं मिलता। संसार में जन्म-मरण का प्रवाह देखकर जो मनुष्य प्रिय वस्तु के नष्ट होने पर शोक नहीं करता वही यथार्थ ज्ञानवान् है। किसी प्रकार का १०
शारीरिक या मानसिक दुःख आ पड़ने पर यदि वह किसी उपाय से न हटाया जा सके तो उसके लिए चिन्ता करना उचित नहीं। यही उसकी दवा है। चिन्ता करने से दुःख का नाश नहीं होता, बल्कि वह बढ़ता ही जाता है अतएव बुद्धि के द्वारा मानसिक दुःख का और औषध द्वारा शारीरिक दुःख का नाश करना चाहिए। शास्त्रज्ञान के प्रभाव से ही यह बात हो सकती है। बालक की तरह शोक और हर्ष में डूब जाना उचित नहीं। यौवन, रूप, जीवन, द्रव्य का सञ्चय, आरोग्य और प्रिय का संसर्ग चिरस्थायी नहीं है। विवेकी लोग इनमें न फँसें। संसार में सभी के पुत्र आदि मरते रहते हैं, अतएव उनके लिए शोक करना बुद्धिमान् मनुष्य को उचित नहीं। पुत्र आदि के मर जाने पर यदि शोक उत्पन्न हो तो यत्न से उसको हटा देना ही अच्छा है। संसार में प्रायः सभी को सुख के बाद दुःख मिलता है और सभी लोग मोह के वश विषयों में अनुराग करते तथा मृत्यु को अप्रिय समझते हैं। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों का त्याग कर देता है वही ब्रह्म पदार्थ को प्राप्त कर सकता है। ऐसे पुरुषों को इस लोक से प्रस्थान करते देखकर बुद्धिमान् मनुष्य शोक नहीं करते। धन पैदा करने में और उसका बचाव तथा ख़र्च करते समय बड़ा क्लेश होता है। धन प्रत्येक अवस्था में मनुष्य को कष्ट देता है, अतएव धन का नाश होने पर चिन्ता करना किसी को उचित नहीं। अविवेकी मनुष्य हमेशा धन की उन्नति करने में लगे रहते हैं और विषय-भोग से कभी तृप्त नहीं होते; किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य सदा संतुष्ट रहते हैं। समय आने पर सभी वस्तुओं का नाश, संयोग का वियोग, उन्नत की अवनति और प्राणियों की मृत्यु होती है। तृष्णा का अन्त नहीं है। सन्तोष ही सब सुखों का २०
मूल है। इसी कारण विवेकी लोग सन्तोष को ही परम धन समझते हैं। आयु लगातार नष्ट होती रहती है, वह दम भर भी विश्राम नहीं करती अतएव जब अपना शरीर ही चिरस्थायी नहीं है तब सांसारिक विषयों के लिए शोक करना व्यर्थ है। जो मनुष्य, बुद्धि के द्वारा, सब प्राणियों के अन्तर्गत परमात्मा का चिन्तन करके शोक का त्याग कर देता है वही परम गति पा सकता है। जैसे बाघ पशुओं को मार डालता है वैसे ही मौत धन कमाने में लगे हुए, विषय-भोग से अतृप्त, अविवेकी मनुष्यों को उठा ले जाती है। अतएव मौत के दुःख से बचने का उपाय सोचना आवश्यक है। मनुष्य शोक को छोड़कर कार्य का आरम्भ करे और विषयों का त्याग

करके दुःख से छूट जावे। क्या धनवान् और क्या निर्धन, सभी मनुष्य जिस समय रूप-रस आदि विषयों का भोग करते हैं उसी समय उन्हें उन विषयों का सुख मिलता है, उसके बाद फिर उस सुख का नाम तक नहीं रह जाता। जब संयोग के पहले प्राणियों को दुःख नहीं होता तब वियोग होने पर शोक करना विवेकियों को उचित नहीं। मनुष्य धैर्य के द्वारा लिङ्गेन्द्रिय और उदर की, आँखों से हाथ और पैर की, मन के द्वारा आँख और कान की तथा विद्या के द्वारा मन और वाणी की रक्षा करे। जो मनुष्य पूज्य तथा अन्य मनुष्य के साथ स्नेह न करके शान्त-चित्त से रहता है और जो अध्यात्म-विद्या में तत्पर, उदासीन और लोभहीन होकर केवल आत्मा
३० के साथ संसार में विचरता है वही यथार्थ सुखी और बुद्धिमान् है।

तीन सौ बत्तीस अध्याय

नारदजी का उपदेश सुनकर योगाभ्यास करने के लिए शुकदेवजी का कैलास पर्वत पर जाना

नारदजी ने कहा—बेटा! जब सुख और दुःख अपने आप मिलते हैं तब पौरुष, बुद्धि और नीति के द्वारा दुःख नहीं हटाया जा सकता। मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिए। सावधान मनुष्य को दुःख नहीं उठाना पड़ता। रोग, मौत और बुढ़ापे के दुःख से अपने प्रिय आत्मा का उद्धार अवश्य करे। धनुर्वेद के जानकार धनुषधारी के मारे हुए तीक्ष्ण बाण के समान शारीरिक और मानसिक व्यथा शरीर को पीड़ित करती है। रोग से पीड़ित, जीवन की आशा करनेवाले, दुखी मनुष्यों के शरीर क्रमशः क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यों की आयु को लिये हुए दिन और रात, नदी की धारा के समान, भागते ही जाते हैं। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष क्रमशः आते-जाते रहकर मनुष्यों को जीर्ण करते हैं। सूर्य स्वयं अजर हैं, किन्तु प्रतिदिन उदय और अस्त होकर प्राणियों के सुख-दुःख का नाश करते हैं। रात भी लगातार नई-नई घटनाओं के साथ बीतती रहती है।

कर्मों का फल यदि पराधीन न होता तो जो मनुष्य जैसी इच्छा करता वह वैसी ही पूरी हो जाती। कभी-कभी कार्य-कुशल, नियमों का पालन करनेवाले बुद्धिमान् मनुष्यों के काम
११ सिद्ध नहीं होते और कभी-कभी गुणहीन नराधम मूर्ख को श्रेष्ठ फल मिलता है। संसार में कोई मनुष्य तो हमेशा हिंसा और धूर्तता करता हुआ भी अनेक प्रकार के सुख भोगता है, कोई बिना उद्योग के ही अतुल धन प्राप्त करता है और कोई-कोई मनुष्य अच्छे कर्म करते रहने पर भी कुछ फल नहीं पाते।

देखो, मनुष्यों का वीर्य एक स्थान में उत्पन्न होकर फिर दूसरे स्थान में जाकर सन्तान उत्पन्न करता है। वह कभी-कभी ठीक स्थान में पहुँचकर भी गर्भ धारण कराने में असमर्थ होकर, गिरे हुए फूल की तरह, नष्ट हो जाता है। कोई पुत्र के लिए अनेक प्रकार के उपाय

करने पर भी पुत्रवान् नहीं होते और कोई-कोई गर्भ को कुपित साँप की तरह क्लेशकर समझने पर भी दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त करते हैं। बहुत सी कुलीन स्त्रियाँ पुत्र की इच्छा से घोर तपस्या करके गर्भ धारण करती हैं, तब भी उनके दुराचारी पुत्र पैदा होता है। कोई पुत्र पिता का सञ्चित धन-धान्य और विपुल ऐश्वर्य नष्ट कर देता है और कोई बहुत दिनों तक दुःख सहता है। पुरुष का वीर्य जीव-रूप से स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट होता है। इसके बाद क्रमशः शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग उत्पन्न होते हैं, वह नाव पर रक्खी हुई नाव की तरह माता के गर्भ में निवास करता है। किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि वीर्य स्त्री के पेट में, अन्न-पानी आदि खाने-पीने की चीज़ों की तरह, पच नहीं जाता। सभी को मल-मूत्र के आधार गर्भस्थल में जन्म लेना पड़ता है। न तो कोई अपनी मर्ज़ी से गर्भ में निवास करता है और न अपनी इच्छा से गर्भ के बाहर आ सकता है। कोई गर्भ में ही नष्ट हो जाता है, कोई पैदा होते समय और कोई पैदा होकर मर जाता है। बुढ़ापे का और मौत का दुःख शरीरों को ही सहना पड़ता है। आत्मा न तो वृद्ध होता है और न मरता है। मनुष्य रोगी हो जाते हैं, उनमें उठने-बैठने तक की शक्ति नहीं रह जाती। वे नीरोग होने के लिए चतुर वैद्यों को बहुत सा धन देते हैं; किन्तु वैद्य लोग अनेक उपाय करने पर भी उन्हें चङ्गा नहीं कर सकते। औषधों का संग्रह करनेवाले चतुर वैद्यों को भी, बाघ से पकड़े गये पशु के समान, भयङ्कर रोग हो जाते हैं। वे अनेक प्रकार के रस और घी पीते हैं; किन्तु बुढ़ापे से नहीं बचते। जो रोग की दवा करता है वह भी रोग से नहीं बच सकता। पशु-पक्षियों, हिंसक जीवों और दरिद्र मनुष्यों की दवा कोई नहीं करता; किन्तु वे प्रायः चङ्गे बने रहते हैं। और, तेजस्वी दुर्धर्ष राजा को अनेक रोग घेरे रहते हैं। इस प्रकार मनुष्य संसार-सागर के प्रबल वेग में बहते हुए हमेशा अनेक रोगों से पीड़ित और शोक-मोह से ग्रस्त रहते हैं। कोई मनुष्य राज्य, धन या कठोर तपस्या के द्वारा प्रकृति का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। यदि सभी कार्य उद्योग से सफल होते तो संसार में किसी मनुष्य को बुढ़ापे और मौत का दुःख न उठाना पड़ता। सभी के सब काम सिद्ध हो जाते। संसार में प्रत्येक मनुष्य सबसे श्रेष्ठ होने का उद्योग करता है, किन्तु सफल कोई भी नहीं होता। सरल स्वभाव के सावधान पराक्रमी मनुष्य भी, मदिरा पीनेवाले उन्मत्त, धन के घमण्डी मूर्खों की खुशामद करते हैं। कोई-कोई मनुष्य विपत्ति आ पड़ने पर उसके हटाने का कुछ उपाय नहीं करते फिर भी अनायास उससे छुटकारा पा जाते हैं; कोई-कोई बहुत सा धन होने पर भी उसे पा न सकने के कारण घोर कष्ट उठाते हैं। संसार में जैसे कर्मनिष्ठ मनुष्यों के विलक्षण कर्म होते हैं वैसे ही उन्हें विलक्षण फल भी मिलते हैं। देखो, कोई तो पालकी पर सवार होते हैं और कोई पालकी ढोते हैं, कोई रथ पर सवार होते हैं और कोई रथ के आगे-आगे दौड़ते हैं। सैकड़ों पुरुष स्त्री के विरह में छटपटाते रहते हैं और सैकड़ों स्त्रियाँ पुरुष के विरह में मरती रहती हैं।

इसी प्रकार सब प्राणी संसार में जन्म लेकर तृष्णा के वशीभूत हो अपने कर्मों का फल भोगते हैं, अतएव तुम मोह को छोड़कर ज्ञान के बल से पहले धर्म-अधर्म और सच-झूठ का त्याग करके उसके बाद ज्ञान का भी त्याग कर दो। यह मैंने तुमको बड़ा गूढ़ विषय बतलाया है। इसी उपाय का अवलम्बन करके देवताओं ने मृत्युलोक को त्यागकर स्वर्गलोक प्राप्त किया है।

तपस्वियों में श्रेष्ठ नारद के इस उपदेश को सुनकर महात्मा शुकदेव सोचने लगे कि स्त्री-पुत्र आदि परिवार के साथ रहने में बहुत दुःख हैं और वेद-विद्या का अनुशीलन करना भी सहज काम नहीं है। अतएव थोड़े परिश्रम से सिद्ध होने योग्य नित्य स्थान को प्राप्त किये बिना तनिक भी सुख मिलने की सम्भावना नहीं है। किन्तु वह स्थान कैसा है? महात्मा शुकदेव इसी प्रकार कुछ देर तक तर्क-वितर्क करते रहे। थोड़ी देर बाद उनके हृदय में नित्य स्थान का स्वरूप अपने आप भासित हो गया। तब वे फिर सोचने लगे कि मैं किस तरह उस श्रेष्ठ स्थान को जाऊँ। उस स्थान को जाने पर फिर मुझे संसार-सागर में डूबना नहीं पड़ेगा। किसी के साथ मेरा संसर्ग न रह जायगा। मेरा आत्मा शान्त हो जायगा और मैं अक्षय होकर अनन्त काल तक परम सुख से रहूँगा। योग के सिवा और कोई उपाय इस परम पद के प्राप्त करने का नहीं है। ज्ञानी मनुष्य कभी कर्मपाश में नहीं बँधता। अब मैं योग के बल से इस शरीर को त्यागकर, वायुरूप होकर, सूर्यमण्डल में प्रवेश करूँगा। चन्द्रमा देवताओं के साथ क्षीण होते रहते हैं; वे कभी पृथिवी पर गिरते, कभी स्वर्ग को जाते और हमेशा घटते-बढ़ते रहते हैं इसलिए चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होना ठीक नहीं। सूर्य न तो चन्द्रमा के समान पृथिवी पर गिरते और न घटते-बढ़ते हैं। वे अपनी तीक्ष्ण किरणों को फैलाकर सब लोकों को तपाते रहते हैं। अतएव मैं शरीर को छोड़कर—परमात्मा का आश्रय करके—वृक्षों, पर्वतों, पृथिवी, दिशाओं, आकाश, देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, पिशाचों, सर्पों और राक्षसों को देखता हुआ सूर्यमण्डल में प्रविष्ट होकर निःशङ्क भाव से निवास करूँगा। आज देवता, सिद्ध और महर्षिगण मेरे योग का बल देखें। योग के बल से मुझे श्रेष्ठ गति मिलेगी। महात्मा शुकदेव इस प्रकार निश्चय करके और लोक-प्रसिद्ध नारद की आज्ञा मानकर वेदव्यासजी के पास गये। प्रणाम और प्रदक्षिणा करने के बाद उनके सामने उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। भगवान् वेदव्यास ने पुत्र की यह बात सुनकर और उन्हें योगाभ्यास करने के लिए तैयार देखकर बड़ी प्रसन्नता से कहा—बेटा, तुम दम भर ठहर जाओ; मैं तुमको देखकर अपनी आँखें तृप्त कर लूँ। व्यासदेव की स्नेह-पूर्ण यह बात सुनकर शुकदेवजी रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए। वे पिता को त्यागकर, मोक्ष का उपाय सोचते हुए, सिद्धगण-सेवित कैलास पर्वत पर चले गये।

तीन सौ तेंतीस अध्याय

शुकदेवजी का कैलास पर्वत से आकाश-मार्ग को जाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! महात्मा शुकदेव कैलास पर्वत पर पहुँचकर, एक निर्जन समतल स्थान में, बैठ गये। वे सिर से पैर तक अपने शरीर में केवल आत्मा को देखने लगे। सूर्य का उदय होने पर, पूर्व की ओर मुँह करके, विनीत भाव से हाथ-पैर समेटकर बैठ गये। जिस स्थान पर वे योगाभ्यास करने के लिए बैठे थे वहाँ पक्षियों का कोलाहल और मनुष्यों का सञ्चार नहीं था। वे शीघ्र ही सब विषयों से मुक्त आत्मा का साक्षात्कार करके हँसने लगे। उस समय उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। तब वे देवर्षि नारद की प्रदक्षिणा करके अपने योग के विषय में उनसे कहने लगे—तपोधन, आपने मुझे योग का मार्ग दिखला दिया है। आपका कल्याण हो। अब मैं आपकी कृपा से अपने कर्म में लगकर अभीष्ट गति प्राप्त करूँगा। अब उन्होंने नारदजी को प्रणाम किया। उनकी आज्ञा लेकर फिर योग का अभ्यास करते हुए वे आकाश-मार्ग में जाकर वायु के समान विचरने लगे। उनको मन और वायु के समान १०
वेग से आकाश में चलते देखकर सबको आश्चर्य हुआ। सूर्य के समान तेजस्वी महात्मा शुकदेव, तीनों लोकों को आत्म-स्वरूप समझकर, धीरे-धीरे दूर बढ़ते गये। स्थावर-जङ्गम सब प्राणी उन्हें सावधानी और निर्भयता के साथ आकाश-मार्ग में विचरते देखकर उनकी पूजा करने लगे। देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की। महर्षि, सिद्ध, अप्सरा और गन्धर्वगण उनको देखकर विस्मित होकर कहने लगे कि तपोबल से सिद्धि प्राप्त करके यह कौन महात्मा आकाश में घूम रहा है और ऊपर को मुँह उठाये देख रहा है !

धर्मात्मा शुकदेव पूर्व की ओर मुँह करके, सूर्य की ओर देखकर, गम्भीर शब्द से आकाश-मण्डल को परिपूर्ण करते हुए विचरने लगे। उनको देखकर पञ्चचूड़ा आदि अप्सराएँ बहुत विस्मित हुईं और चकित होकर उन्हें देखती हुई आपस में कहने लगीं—यह कौन महात्मा श्रेष्ठ गति प्राप्त करके, मुक्त के समान निःस्पृह भाव से, इधर आ रहा है ? क्या यह कोई देवता है ? २०

इसके बाद शुकदेव उस स्थान से आगे बढ़कर मलय पर्वत की ओर चले। उस पर्वत पर उर्वशी और पूर्वचित्ति नाम की दो अप्सराएँ रहती थीं। शुकदेव को देखकर इन दोनों को भी बड़ा अचम्भा हुआ। उर्वशी ने पूर्वचित्ति से कहा—देखो, वेद का अभ्यास करनेवाले ब्राह्मणों की बुद्धि कैसी एकाग्र होती है ! पिता की सेवा करने से इन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया और शीघ्र ही चन्द्रमा के समान ये आकाश-मण्डल में घूमने लगे। ये अपने पिता के परम भक्त और उनको अत्यन्त प्रिय हैं। इनके पिता ने किस तरह इनको छोड़ा होगा ?

उर्वशी के यों कहते ही धर्मात्मा शुकदेव को पिता की याद आ गई। तब वे आकाश, चारों दिशाओं, पर्वतों, वनों, नदियों और तालाबों की ओर देखने लगे। उस समय हाथ

जोड़े हुए देवता, सम्मान के साथ, शुकदेव की ओर देख रहे थे। महात्मा शुकदेव ने पर्वत, वन आदि से कहा—हे आत्मीयगण, यदि पिताजी ज़ोर से मेरा नाम ले-लेकर मेरी ओर आवें तो तुम लोग सावधानी से उनकी बातों का उत्तर देना। आशा है कि तुम लोग मेरी बात अवश्य मानोगे। यह सुनकर दिशाएँ, नदी, वन, पर्वत और समुद्र, सब के सब बोल उठे—महात्मन्, आपकी आज्ञा का पालन हम लोग अवश्य करेंगे। आपके पिता महर्षि वेदव्यास जब आपको
३१ पुकारेंगे तब हम लोग उनको उत्तर देंगे।

तीन सौ चौंतीस अध्याय

शुकदेव के वियोग में व्यासजी को शोक होना और उन्हें महादेवजी का आश्वासन दिलाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! महातपस्वी शुकदेव पर्वत वन आदि से यों कहकर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य से उत्पन्न चार प्रकार के दोषों का और तम, रज तथा सत्त्वगुण का त्याग करके निराकार, निर्गुण ब्रह्म में आसक्त होकर दहकती हुई आग के समान रहने लगे। जिस समय ये महात्मा पृथिवी को छोड़कर आकाश की ओर जाने को उद्यत हुए थे उस समय चारों ओर उल्कापात होने लगा, दिशाएँ जलने लगीं और पृथिवी काँपने लगी थी। पेड़ों की डालियाँ और पहाड़ों की चोटियाँ टूट-टूटकर गिर पड़ी थीं। मालूम होता था कि घोर शब्द करता हुआ हिमालय फटा जा रहा है। सूर्य का तेज मन्द हो गया था, आग की शिखा धीमी हो गई थी और तालाब, नद, नदी, समुद्र आदि जलाशय उमड़ने लगे थे। तब महात्मा शुकदेव को सन्तुष्ट करने के लिए इन्द्र सुगन्धित जल बरसाने लगे। शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलने लगा।

महात्मा शुकदेव उत्तर की ओर हिमालय और मेरु पर्वत से मिले हुए, सफ़ेद और पीले रङ्ग के, सौ योजन विस्तीर्ण अत्यन्त मनोहर दो शिखरों को देखकर उसी ओर चले। वे दोनों शिखर महात्मा शुकदेव को अपनी ओर आते देखकर, उनका मार्ग न रोककर, सहसा गिर
१० पड़े—उन्होंने उनको मार्ग दे दिया। शुकदेवजी शीघ्र उसी मार्ग से निकल गये। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। स्वर्ग में देवता कोलाहल करने लगे। गन्धर्व, ऋषि, यक्ष, राक्षस और विद्याधरगण तथा हिमालय पर रहनेवाले सब प्राणी मुक्तकण्ठ से शुकदेवजी की प्रशंसा करने लगे। आकाश से दिव्य फूलों की वर्षा होने लगी। महात्मा शुकदेव आकाश-मार्ग से चलते-चलते, फूले हुए पेड़ों और सुन्दर बग़ीचों से शोभित, अति रमणीय मन्दाकिनी के पास पहुँचे। उस नदी में परम सुन्दरी अप्सराएँ नङ्गी क्रीड़ा कर रही थीं। शुकदेवजी को देखकर उनको तनिक भी लज्जा न आई।

आकाश-मार्ग में शुकदेवजी के चले जाने की बात जानकर महर्षि वेदव्यास, पुत्र-स्नेह के कारण, उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। महात्मा शुकदेव ममता को त्यागकर, वायु के ऊपर जाकर, अपनी तपस्या के प्रभाव से परमब्रह्म में लीन हो गये। महर्षि वेदव्यास योग के प्रभाव से दम-भर में उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ से शुकदेव आकाश-मार्ग को गये थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा २० कि शुकदेव पर्वत की शिखा तोड़कर वहाँ से चले गये हैं। उसी समय चारों ओर से महर्षिगण आकर उनको शुकदेव के अलौकिक काम बतलाने लगे। आकाशमार्ग से पुत्र के चले जाने की बात विशेष रूप से सुनकर 'हा शुकदेव' कहकर वे ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। तब ब्रह्मभाव को प्राप्त धर्मात्मा शुकदेव, सर्वव्यापी होकर, पर्वत आदि सब पदार्थों से 'भो' शब्द का उच्चारण करके उत्तर देने लगे। उस समय संसार भर में एक अक्षर का 'भो' शब्द गूँज उठा। उसी समय से पहाड़ की कन्दरा आदि स्थानों में बोलने से उसकी प्रतिध्वनि होने लगती है।

इस प्रकार शब्द आदि गुणों का त्याग करके, अन्तर्धान होकर, अपना प्रभाव दिखलाते हुए धर्मात्मा शुकदेव जब ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये तब महर्षि वेदव्यास महातेजस्वी पुत्र का प्रभाव देखकर उसी स्थान पर बैठकर उनके विषय में चिन्ता करने लगे। उन्हें देखकर मन्दाकिनी के किनारे क्रीड़ा करती हुई नङ्गी अप्सराएँ बहुत लज्जित हुईं। किसी ने तो पानी में डुबकी लगा ली, कोई झाड़ी में जा छिपी और कोई अपने कपड़े पहनने लगी। यह देखकर महर्षि वेदव्यास ने अपने पुत्र को मुक्त और अपने को विषयासक्त समझा। इससे उन्हें प्रसन्नता और लज्जा एक साथ उत्पन्न हुई।

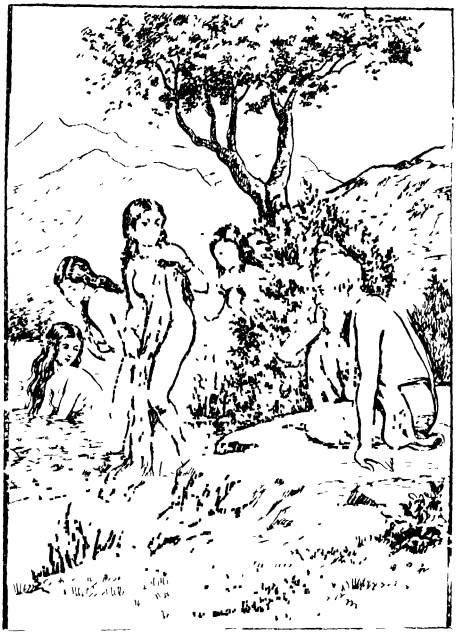

३१

इसके बाद महर्षियों के पूज्य भगवान् महादेव, देवताओं और गन्धर्वों के साथ, महर्षि वेदव्यास के पास आकर समझाने लगे—महर्षि! तुमने अग्नि, वायु, जल, पृथिवी और आकाश के समान वीर्यवान् पुत्र मुझसे माँगा था। मैंने तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार ही पुत्र तुमको दिया। इस समय तुम्हारे पुत्र ने वह गति प्राप्त की है जो देवताओं को भी दुर्लभ है। भला तुम शोक क्यों कर रहे हो? पृथिवी पर जब तक समुद्र और पहाड़ बने हुए

हैं तब तक तुम्हारी और तुम्हारे पुत्र की कीर्ति फैलेगी। अब मैं यह वर देता हूँ कि तुम इस पृथिवी पर सर्वदा सब स्थानों में अपने पुत्र के सदृश छाया देखते रहोगे। महादेवजी के वरदान से महर्षि वेदव्यास अपने पुत्र के सदृश छाया देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

हे धर्मराज, तुमने धर्मात्मा शुकदेव के जन्म और उनकी सद्गति का जो वृत्तान्त पूछा था वह विस्तार से मैंने बतला दिया। महायोगी वेदव्यास और देवर्षि नारद ने यह वृत्तान्त मुझे बतलाया था। मोक्ष-धर्म से युक्त परम पवित्र इस इतिहास को जो मनुष्य सुनेगा वह
४२ शान्ति प्राप्त करके परमगति पावेगा।

तीन सौ पैंतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से, देवताओं और पितरों के कर्मों के विषय में, नारायण और नारद का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! जो गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी सिद्धि प्राप्त करना चाहे उसे किस देवता की आराधना करनी चाहिए ? वह किसकी कृपा से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कर सकता है और उसे किस विधि के अनुसार देवताओं और पितरों के निमित्त होम करना चाहिए ? मुक्त होकर मनुष्य किस स्थान को जाता है ? मोक्ष क्या वस्तु है ? किस प्रकार के कर्म करने से स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होना पड़ता ? देवता और पितर किससे पैदा हुए हैं और देवताओं तथा पितरों के पिता से श्रेष्ठ कौन पुरुष है ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! तुमने जो गूढ़ प्रश्न किये हैं उनका उत्तर मैं भगवान् नारायण की प्रसन्नता तथा ज्ञान के बिना, तर्कशास्त्र के अनुसार, सौ वर्ष में भी नहीं दे सकता। इस विषय में नारायण और नारदजी का संवाद सुनो। पिताजी ने मुझे बतलाया था कि सत्ययुग में, स्वायम्भुव मनु के अधिकार के समय, विश्वात्मा सनातन नारायण ने धर्म के पुत्र होकर नर, नारायण, हरि और कृष्ण, ये चार अवतार लिये हैं। नर और नारायण बदरिकाश्रम में जाकर
१० घोर तपस्या करने लगे। तपोबल से उनका तेज इतना बढ़ गया कि देवता भी उनकी ओर देख नहीं सकते थे। वे जिन देवताओं पर प्रसन्न होते थे वही उनके दर्शन कर सकते थे।

एक बार देवर्षि नारद, उन्हीं दोनों महापुरुषों की इच्छा के अनुसार, सुमेरु पर्वत से गन्धमादन पर्वत पर आकर विचरने लगे और नर-नारायण के ब्रह्मयज्ञ आदि कर्म करने के समय बदरिकाश्रम में पहुँचे। उस स्थान को देखकर वे सोचने लगे कि अहा ! इस स्थान में देवता, गन्धर्व, असुर, किन्नर और सर्प आदि रहते हैं। यहीं पर भगवान् नर-नारायण विराजते हैं। भगवान् नारायण ने चार अंशों में विभक्त होकर धर्म के पुत्र-स्वरूप अवतार लिया है। आज उन भगवान् के अंश नर-नारायण, कृष्ण और हरि की कृपा से मेरी तपस्या सफल हुई। पहले

भगवान् कृष्ण और हरि इस स्थान में निवास करते थे। ये तेजस्वी दोनों महापुरुष इस समय ब्रह्मयज्ञ आदि कर रहे हैं। कैसे आश्चर्य की बात है! जो परब्रह्म-स्वरूप हैं उन्हें ब्रह्मयज्ञ आदि कर्म करने की आवश्यकता! जो सब प्राणियों के पिता और देवता-स्वरूप हैं वे किस देवता और किस पितर की आराधना करते हैं! देवर्षि नारद भक्ति-भाव से इस प्रकार सोचते-विचारते नर और नारायण के सामने पहुँचे। वे दोनों महापुरुष देवताओं और पितरों की पूजा कर चुके थे। उन्होंने देवर्षि नारद को देखकर उनका यथोचित सत्कार किया।

२०

महातपस्वी नारद सामने बैठकर प्रसन्नता से नारायण को प्रणाम करके कहने लगे—भगवन्! वेद, वेदाङ्ग और सब पुराणों में आपके गुणों का वर्णन है। आप अज, धाता, नित्य और अमृत-स्वरूप हैं। आपमें ही सम्पूर्ण जगत् स्थित है। चारों आश्रमों के मनुष्य हमेशा आपके अनेक रूपों की उपासना किया करते हैं। पण्डितों ने आपको ही जगत् का पिता-माता और गुरु बतलाया है। भला आप आज किस देवता और किस पितर की आराधना कर रहे थे?

भगवान् नारायण ने कहा—देवर्षि, तुमने अत्यन्त गूढ़ विषय पूछा है। यद्यपि उसका प्रकट करना किसी तरह उचित नहीं तो भी मैं विस्तार से उसका वर्णन करता हूँ; क्योंकि तुम्हारी भक्ति देखने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। जो सूक्ष्म, अज्ञेय, कर्महीन, अचल और नित्य है; जो इन्द्रियों, विषयों और सब भूतों से परे है; पण्डितों ने जिसे सब प्राणियों का आत्मा, क्षेत्रज्ञ और त्रिगुणातीत बतलाया है; जिससे सत्त्व आदि तीनों गुण उत्पन्न हुए हैं और जो अव्यक्त होने ३० पर भी व्यक्त भाव से स्थित रहता है, उसी परमात्मा से हम लोगों की उत्पत्ति हुई है। हम पिता और देवता मानकर उसी की पूजा करते हैं। उससे श्रेष्ठ पितर, देवता और ब्राह्मण कोई नहीं है। वही हम लोगों का आत्म-रूप है। उसी के द्वारा मनुष्यों की उत्पत्ति का नियम स्थिर किया गया है। उसी की आज्ञा के अनुसार देवताओं और पितरों की आराधना करना मनुष्य अपना कर्तव्य समझते हैं। ब्रह्मा, महादेव, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य,

पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्र, कर्दम, क्रोध, विक्रीत और प्रचेता, ये इक्कीस प्रजापति उसी परमात्मा की कृपा से देवताओं और पितरों के कर्मों को जानकर उसके सनातन नियमों का पालन करते हुए अपने-अपने अभीष्ट स्थान को गये हैं। स्वर्ग में रहनेवाले प्राणी उसी को नमस्कार करके उसी की कृपा से परम गति पाते हैं। जो मनुष्य पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि, इन सत्रह से युक्त लिङ्गशरीर का, पन्द्रह कलाओं से युक्त स्थूलशरीर
४० का, सत्त्व आदि तीनों गुणों और सब कर्मों का त्याग कर देता है उसी को मुक्त कहते हैं। मुक्त मनुष्य ही परमात्मा को प्राप्त करता है। परमात्मा निर्गुण होने पर भी माया के प्रभाव से सगुण हो जाता है। हम उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं और ज्ञान के प्रभाव से उसको देख करके उसी की आराधना करते हैं। वेद का अध्ययन करनेवाले ब्रह्मचारी और अन्य आश्रमवासी लोग बड़ी भक्ति से उसकी पूजा करके उसकी कृपा से परम गति प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य परमात्मा की भक्ति करता है वह अन्त को परमब्रह्म में लीन होकर मोक्षपद प्राप्त करता है। तुम्हारी भक्ति
४५ देखकर मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, इसी से यह गूढ़ विषय मैंने तुमको बतला दिया।

तीन सौ छत्तीस अध्याय

नर-नारायण की आज्ञा लेकर नारदजी का श्वेतद्वीप को जाना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, भगवान् नारायण के ये वचन सुनकर देवर्षि नारद ने उनसे पूछा—हे देव, आप स्वयम्भू होकर भी लोक का हित करने के लिए चार अंशों में विभक्त होकर धर्म के घर में अवतीर्ण हुए हैं। अब आप अपना कार्य सिद्ध कीजिए। मैं श्वेतद्वीप में स्थित आपकी आदिमूर्ति के दर्शन करने जाता हूँ। मैं सदा गुरुजनों की पूजा करता हूँ; किसी की गुप्त बात कभी प्रकट नहीं करता; वेद का पाठ और तपस्या करता रहता हूँ; कभी झूठ नहीं बोलता। अन्याय से प्राप्त द्रव्य से अपना पेट नहीं भरता; न किसी की स्त्री चुराता हूँ और न अपवित्र स्थान में घूमता हूँ। किसी से दान भी नहीं लेता। शत्रु और मित्र को समान समझता हूँ और हमेशा भक्ति के साथ परमात्मा की आराधना करता हूँ। जब इन कामों के द्वारा मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई है तब उन अनन्तदेव के दर्शन होना मेरे लिए असम्भव नहीं है।

यह सुनकर नित्य धर्म के रक्षक भगवान् नारायण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने नारदजी का यथोचित सत्कार करके कहा—तपोधन, अब तुम अपने अभीष्ट स्थान को जाओ।

तब नारायण की पूजा करके, उनसे बिदा होकर, देवर्षि नारद बड़े वेग से आकाश-मण्डल को चले गये। शीघ्र ही सुमेरु पर्वत पर पहुँचकर, उसके शिखर पर दम भर

ठहरकर, उन्होंने वायव्य कोण की ओर देखा कि क्षीर-समुद्र के उत्तर श्वेत नाम का विस्तीर्ण द्वीप है। वह सुमेरु पर्वत से बत्तीस हज़ार योजन ऊँचा है। उसी द्वीप में बहुत से ज्ञानी पुरुष रहते हैं। वे प्राकृतिक स्थूल-शरीर से मुक्त, शब्द आदि विषय-भोग से शून्य, निश्चेष्ट, पापहीन और परमात्मा के ध्यान में निरत हैं। उनकी ओर देखने से पापियों की आँखें चौंधिया जाती हैं। उनका शरीर वज्र के समान दृढ़ है, मस्तक छाते के आकार १०
का है और तलवों में सैकड़ों रेखाएँ हैं। वे मान और अपमान को समान समझते हैं। उनके चार मुख, साठ दाँत और आठ दाढ़ें हैं। ये सब अलौकिक स्वरूप और यौवन से युक्त, योग के प्रभाव से बल-वीर्यवान् महापुरुष उस विश्वस्रष्टा विश्वमुख सूर्य के समान तेजस्वी काल को भी ग्रास कर सकते हैं, जिससे कि वेद, धर्म, शान्तचित्त मुनियों, देवताओं और अन्य प्राणियों की उत्पत्ति हुई है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! इन्द्रियशून्य, निराहार, निश्चेष्ट, सुगन्धयुक्त श्वेतद्वीप-निवासी पुरुष किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और उनको किस प्रकार की सद्गति मिलेगी? इस लोक में जो कोई मुक्ति पाता है वह क्या श्वेतद्वीप के पुरुषों के लक्षणों से युक्त हो जाता है? आप सब विषयों के जानकार हैं, अतएव मेरा यह सन्देह दूर कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, पिताजी से मैंने जो विस्तृत कथा सुनी है वही तुम्हें सुनाता हूँ। प्राचीन समय में परमात्मा के भक्त परम धार्मिक उपरिचर नाम के एक राजा थे। उनके समान पितृभक्त और आलस्यहीन राजा दूसरा नहीं था। इन्द्र के साथ उनकी मित्रता थी। नारायण के वरदान से वे सम्राट् हो गये थे। वे सूर्य के मुँह से निकले हुए पञ्चरात्रशास्त्र का अवलम्बन करके पहले विष्णु की पूजा और उसके बाद पितरों की पूजा करते थे। फिर ब्राह्मण और आश्रित लोगों को भोजन देकर स्वयं भोजन करते थे। वे सत्यवादी, दयावान् राजा अनादि, अनन्त, लोकस्रष्टा, भगवान् विष्णु के बड़े भक्त थे। विष्णु में उनकी भक्ति देखकर इन्द्र उन पर २१
बहुत प्रसन्न थे। वे उनके साथ एक शय्या पर सोते और एक आसन पर बैठते थे। राजा उपरिचर अपना राज्य, धन-सम्पत्ति, स्त्री और सवारी आदि सब भोग्य वस्तुएँ विष्णु की कृपा से प्राप्त समझकर सब उन्हीं को समर्पण करते थे। वे पञ्चरात्रशास्त्र के अनुसार काम्य और नैमित्तिक यज्ञ करते थे। उनके घर में पञ्चरात्रशास्त्र के विद्वान् श्रोत्रिय प्रसन्नता के साथ सबसे पहले शास्त्र-विहित भोजन करते थे। राजा उपरिचर जिस समय धर्म के अनुसार राज-काज करते थे उस समय उनके मुँह से मिथ्या बात नहीं निकलती थी और मन में कोई अनुचित विचार नहीं उत्पन्न होता था। वे रत्ती भर भी पाप नहीं करते थे। उन्होंने बृहस्पति से नीतिशास्त्र पढ़ा था। उसी के अनुसार वे प्रजा का पालन करते थे। इस नीति-शास्त्र की जिस तरह उत्पत्ति हुई है सो भी सुनो।

सुमेरु पर्वत पर मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठ, ये सात महर्षि रहते थे। ये सप्त ऋषि चित्रशिखण्डी नाम से प्रसिद्ध हैं। स्वायम्भुव मनु उनके अष्टम हैं। ये सब एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, संयमी, त्रिकालज्ञ, सत्यधर्मपरायण महर्षि सब मनुष्यों
३१ को अपने-अपने नियम में स्थित रखते हैं। इन ऋषियों ने एकमत होकर, मनुष्यों के हित के लिए, चारों वेदों के अनुसार धर्मशास्त्र तैयार किया। इस शास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का विषय है और मृत्युलोक तथा स्वर्गलोक के अनेक प्रकार के नियम निर्दिष्ट हैं। इन महर्षियों ने अन्य तपस्वियों के साथ, देवताओं के हज़ार वर्ष तक, विष्णु की आराधना की थी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने देवी सरस्वती को उनके शरीर में प्रविष्ट होने की आज्ञा दी। लोक का हित करने के लिए सरस्वती उनके शरीर में प्रविष्ट हो गईं। सरस्वती की सहायता से उन ऋषियों ने शब्द, अर्थ और हेतु से पूर्ण उस शास्त्र का प्रणयन किया। वही सर्वश्रेष्ठ नीतिशास्त्र सब शास्त्रों के पहले तैयार हुआ है। महर्षियों ने ओंकार स्वर से अलङ्कृत इस शास्त्र को बनाकर सबसे पहले इसे परमदयालु विष्णु को सुनाया। इस शास्त्र को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अदृश्य भाव से कहा—महर्षियो, तुमने जो एक लाख श्लोकों का यह नीति-शास्त्र बनाया है इससे सब मनुष्यों का धर्म प्रवर्तित होता है। यह वेदों के अनुकूल है,
४० इसलिए यह मनुष्यों की प्रवृत्ति और निवृत्ति के विषय में प्रमाण-स्वरूप होगा। ब्रह्मा की प्रसन्नता, रुद्रदेव के क्रोध, तुम लोगों की प्रजासृष्टि, सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी, जल, अग्नि, नक्षत्र और अन्यान्य प्राणियों के अपने-अपने अधिकार में तथा ब्रह्मवादी पुरुषों के आत्म-विषय में जिस तरह किसी को सन्देह नहीं होता उसी तरह तुम लोगों के इस शास्त्र में किसी को सन्देह न होगा। यह मेरी आज्ञा है। स्वायम्भुव मनु इसी शास्त्र के अनुसार नियम बनावेंगे। बृहस्पति और शुक्र उत्पन्न होकर इसी नीति-शास्त्र के अनुसार सबको उपदेश देंगे। वे इस शास्त्र का प्रचार सर्वत्र करेंगे; बृहस्पति से राजा उपरिचर को यह शास्त्र प्राप्त होगा। राजा उपरिचर सदाचारी और मेरे परम भक्त होंगे। वे तुम्हारे इस शास्त्र के अनुसार सब काम करेंगे। यह शास्त्र सब शास्त्रों से श्रेष्ठ है। इसमें धर्म, अर्थ और सब गुप्त विषय विशेष रूप से वर्णित हैं। इस नीति-शास्त्र का प्रचार करके तुम लोग पुत्र प्राप्त करोगे और राजा उपरिचर इसके प्रभाव से बड़े समृद्धिशाली
५० होंगे। उपरिचर के इस लोक से चले जाने पर यह सनातन नीति-शास्त्र अन्तर्हित हो जायगा।

यह कहकर पुरुषोत्तम विष्णु अन्तर्धान हो गये। उसके बाद सत्ययुग में बृहस्पति का जन्म होने पर महर्षि लोग उस वेद-वेदाङ्ग-मूलक नीति-शास्त्र को, प्रचार करने के लिए, उन्हें
५५ सौंपकर तपस्या करने के निमित्त चले गये।

———

तीन सौ सैंतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से उपरिचर वसु का चरित कहना। उपरिचर के यज्ञ में परोक्ष भाव से अपना भाग ग्रहण करने पर विष्णु के ऊपर बृहस्पति का क्रोध करना और एकत आदि ऋषियों का श्वेतद्वीप का वर्णन करके विष्णु का माहात्म्य बतलाना

भीष्म ने कहा—बेटा, महाकल्प के अन्त में अनेक गुणों से सम्पन्न अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति का जन्म हुआ। बृहस्पति देवताओं के पुरोहित हुए, इससे देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके शिष्य होकर महाराज उपरिचर ने उनसे, ऋषियों के बनाये हुए, नीति-शास्त्र का अध्ययन किया। राजा उपरिचर दैव विधि के अनुसार इन्द्र के समान राज्य करने लगे। उन्होंने बड़े समारोह से अश्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ में बृहस्पति होता और प्रजापति के पुत्र एकत, द्वित और त्रित, महर्षि धनुष, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, ताण्ड्य, शान्ति, वेदशिरा, शालिहोत्र के पिता कपिल, आद्य कठ, वैशम्पायन के बड़े भाई तैत्तिरि, महर्षि कण्व और देवहोत्र सदस्य हुए थे। राजा की आज्ञा से यज्ञभूमि में यज्ञ की सब सामग्री एकत्र की गई। महाराज उपरिचर ऐसे अहिंसा-परायण थे कि उन्होंने इस यज्ञ में भी पशुहत्या नहीं की थी; जङ्गली वस्तुओं से ही यज्ञ के भाग कल्पित किये थे। भगवान् विष्णु ने राजा उपरिचर पर ११
प्रसन्न होकर आकाश-मार्ग से यज्ञभूमि में आकर केवल राजा को ही दर्शन देकर यज्ञ का भाग ग्रहण किया था। उस समय और किसी को उनके दर्शन नहीं हुए। अलक्षित रूप से भगवान् विष्णु को यज्ञ का भाग ग्रहण करते देखकर बृहस्पति को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने फिर विष्णु का भाग लगाकर, स्रुक् को बड़े वेग से ऊपर उठाकर, क्रोध के मारे आँखों में आँसू भरकर राजा से कहा—महाराज, मैंने विष्णु भगवान् के लिए यह भाग स्थापित किया है। वे मूर्तिमान् होकर मेरे सामने इसे ग्रहण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, उपरिचर के यज्ञ में सब देवताओं ने तो मूर्तिमान् होकर अपना-अपना भाग ग्रहण किया था किन्तु भगवान् विष्णु अलक्षित भाव से क्यों अपना भाग उठा ले गये?

भीष्म ने कहा कि बेटा, महाराज उपरिचर और सब सदस्य बृहस्पति का क्रोध शान्त करने के लिए उनसे कहने लगे—भगवन्, क्रोध करना सत्ययुग का धर्म नहीं है अतएव आप क्रोध न करें। आप जिनके लिए यह भाग कल्पित कर रहे हैं वे क्रुद्ध नहीं हैं। वे महात्मा जिस पर प्रसन्न होते हैं उसी को दर्शन देते हैं। उसके सिवा और कोई उनके दर्शन नहीं पा सकता। २०
तब सब शास्त्रों के विद्वान् महात्मा एकत, द्वित और त्रित ने बृहस्पति से कहा—देवगुरु, हम लोग ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। हम लोगों ने सनातन विष्णु के दर्शन करने के लिए क्षीर-सागर के समीप सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग में, एक रमणीय स्थान पर जाकर, सावधानी से एक पैर पर काठ के समान निश्चल भाव से खड़े रहकर हज़ार वर्ष तक कठिन तपस्या की थी। तपस्या

समाप्त होने पर हम लोगों के अवभृथ स्नान के समय गम्भीर स्वर से यह आकाश-वाणी हुई—ब्राह्मणो, तुम लोगों ने भगवान् विष्णु के दर्शन करने के लिए बड़ी भक्ति से कठिन तपस्या की है; किन्तु उनके दर्शन तुम लोगों के लिए दुर्लभ हैं। क्षीर-समुद्र के उत्तर श्वेतद्वीप नाम का एक प्रभा-सम्पन्न प्रसिद्ध स्थान है। उस द्वीप में चन्द्रमा के समान तेजस्वी बहुत से महात्मा रहते हैं। वे सब इन्द्रियों से हीन, निराहार, निश्चेष्ट, ध्यानी और नारायण के परमभक्त हैं। उन्हीं महात्माओं को भगवान् के दर्शन होते हैं। उस स्थान पर भगवान् विष्णु प्रकट रहते हैं। यदि तुम लोग वहाँ जा सको तो शायद उनके दर्शन पा जाओ। उस आकाश-वाणी को सुनकर हम लोग व्यग्र हो उठे और भगवान् के दर्शन करने की इच्छा से देवताओं के निर्दिष्ट मार्ग द्वारा श्वेतद्वीप को चले; किन्तु वहाँ पहुँचने पर हम लोग अन्धे हो गये। भगवान् के दर्शन होना तो दूर रहा, वहाँ के निवासियों को भी हम लोग न देख सके। कुछ देर बाद हम लोगों को ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब हम लोगों ने सोचा कि तपस्या किये बिना भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते। अब हम लोगों ने फिर सौ वर्ष तक घोर तपस्या की। तब हम लोगों ने देखा कि चन्द्रमा के समान परम सुन्दर, सब लक्षणों से युक्त, बहुत से महात्मा, कोई पूर्व की ओर और कोई उत्तर की ओर मुँह किये, हाथ जोड़े, ब्रह्ममन्त्र जप रहे हैं। वे लोग एकाग्र चित्त से विष्णु की उपासना करते हैं इसी से भगवान् उन पर प्रसन्न रहते हैं। युग के अन्त में जैसी सूर्य की प्रभा होती है वैसी ही प्रभा श्वेतद्वीप-निवासी प्रत्येक व्यक्ति की है। हम लोगों ने वहाँ के सभी पुरुषों को एक समान तेजस्वी देखकर उस द्वीप को तेज का घर समझा। उसके बाद हज़ारों सूर्यों के समान एक तेज हम लोगों को देख पड़ा। उस समय श्वेतद्वीप के निवासी महात्मा हाथ जोड़कर, भगवान् नारायण को नमस्कार करते हुए, उस तेज की ओर वेग से दौड़े और उसे भेंट देने लगे। उस समय उस अलौकिक तेज के प्रभाव से सहसा हम लोगों की दृष्टि, बल और इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो गई। हम लोगों को केवल ये शब्द सुन पड़े—'हे पुण्डरीकाक्ष, तुम्हारी जय हो। हे हृषीकेश! तुम संसार के सृष्टिकर्ता, महापुरुष और सबके आदि हो, तुमको नमस्कार है।' उस समय अनेक प्रकार के गन्ध से युक्त पवित्र वायु, दिव्य पुष्प और ओषधियाँ लेकर, चलने लगा। उसके बाद उन तेजस्वी पुरुषों ने बड़ी भक्ति के साथ मन-वचन-कर्म से उस तेज की पूजा की। उन महात्माओं के उन शब्दों के सुनने से हम लोगों को मालूम हो गया था कि निस्सन्देह भगवान् विष्णु यहाँ उपस्थित हैं; किन्तु हम लोग उनकी माया से मोहित हो गये थे इसलिए उनके दर्शन न कर सकते थे। जब पूजा समाप्त हो गई और वायु का चलना भी बन्द हो गया तब हम लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। वहाँ के निवासी महात्माओं में से किसी ने हम लोगों की ओर न तो देखा और न ध्यान दिया। वे लोग ब्रह्म के ही ध्यान में मग्न थे।

उस समय हम लोग अपना कर्तव्य निश्चित न कर सके। क्षण भर के बाद फिर आकाश-वाणी हुई—हे मुनियो, तुम लोगों ने श्वेतद्वीप के निवासी इन पुरुषों को देखा? इनके इन्द्रियाँ नहीं हैं। ये भगवान् विष्णु का साक्षात्कार करने योग्य हैं। तुम लोग लौट जाओ। भक्तिहीन मनुष्य कभी भगवान् का साक्षात्कार नहीं कर सकता। बहुत समय तक तपस्या करते-करते उन्हीं में तन्मय हो जाने पर किसी समय उनके दर्शन हो जाते हैं। अभी तुम लोगों ने कर्म का पूरा-पूरा त्याग नहीं किया। कुछ दिनों बाद तुम लोगों का यह महान् कार्य सिद्ध होगा। सत्ययुग बीतने पर वैवस्वत कल्प में त्रेतायुग आवेगा तब देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए तुम लोग उनके सहायक होगे।

हे देवताओं के आचार्य, यह अमृत-तुल्य अद्भुत आकाश-वाणी सुनकर भगवान् नारायण की कृपा से हम लोग अपने स्थान को लौट आये। जब हम लोग इस तरह कठिन तपस्या करके और हव्य-कव्य देकर भी नारायण का साक्षात्कार नहीं कर सके तब तुम किस तरह उनके दर्शन पाओगे? भगवान् नारायण संसार के सृष्टिकर्ता, हव्य-कव्य-भोजी, जरा-मृत्युहीन, सूक्ष्म और देव-दानवों के पूज्य हैं। ६०

हे धर्मराज! एकत, द्वित, त्रित और अन्य सदस्यों के समझाने पर बुद्धिमान् महात्मा बृहस्पति ने देवताओं की पूजा करके यज्ञ समाप्त कर दिया। यज्ञ समाप्त हो जाने पर सत्यधर्म-परायण राजा उपरिचर बड़े सुख से राज्य करने लगे। अन्त को शरीर त्यागकर वे स्वर्गलोक को चले गये। बहुत दिनों तक स्वर्ग में निवास करके ब्रह्मशाप से उन्हें फिर मृत्युलोक में आना पड़ा। फिर भी उनकी धर्म-बुद्धि में अन्तर नहीं पड़ा। वे बड़ी भक्ति के साथ नारायण का मन्त्र जपकर उनकी कृपा से ब्रह्मलोक को चले गये। ६५

तीन सौ अड़तीस अध्याय

उपरिचर वसु को शाप और उससे मुक्त होने का वृत्तान्त

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! राजा उपरिचर तो विष्णु के परमभक्त थे, फिर उन्हें देवलोक से भ्रष्ट होकर मर्त्यलोक में कैसे आना पड़ा?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम्हें महर्षियों और देवताओं का संवाद सुनाता हूँ। एक बार देवताओं ने महर्षियों से कहा कि अज का बलिदान करके यज्ञ करना चाहिए। बकरे को अज कहते हैं। महर्षियों ने उत्तर दिया—वेद में बतलाया है कि बीज के द्वारा यज्ञ करना चाहिए। बीज का ही नाम अज है। अतएव यज्ञ में बकरा काटना उचित नहीं। जिस धर्म में पशु का वध किया जाता हो वह सज्जनों का धर्म नहीं है और यह तो सबसे श्रेष्ठ सत्ययुग है। इस युग में पशु की हिंसा किस तरह उचित समझी जा सकती है?

देवताओं और ऋषियों में इस तरह विवाद हो रहा था कि महाराज उपरिचर अपने फ़ौज-फाँटे समेत आकाश-मार्ग से उसी ओर आ निकले। ब्राह्मणों ने महाराज उपरिचर को आते देखकर कहा—हे देवताओ, यही महात्मा हम लोगों का सन्देह दूर करेंगे। ये राजा याज्ञिक, दानी और सब प्राणियों के हितैषी हैं। सारांश यह कि ये सब तरह श्रेष्ठ हैं, अतएव ये हम लोगों के प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देंगे।

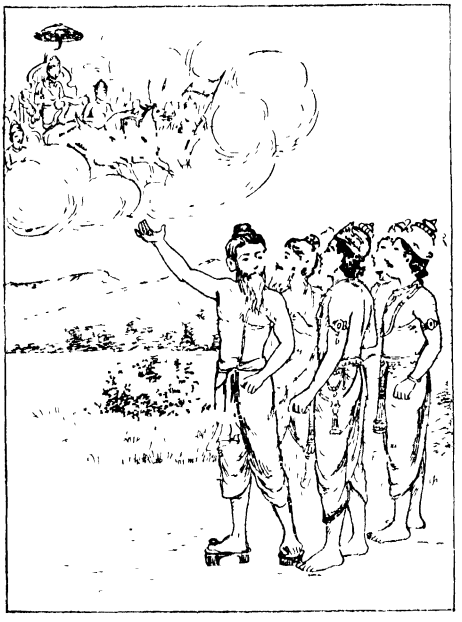

देवता और महर्षिगण आपस में यह निश्चय करके महाराज उपरिचर के पास जाकर कहने लगे—महाराज! यज्ञ में बकरे का बलिदान दिया जाय अथवा ओषधि का? हम लोगों को इस विषय में बड़ा सन्देह है। हम लोग आपके उत्तर को प्रामाणिक मानेंगे। महाराज उपरिचर ने हाथ जोड़कर कहा—पहले मुझे बतलाइए कि आप लोगों में किस की क्या राय है। महर्षियों ने कहा—महाराज, हम लोगों की राय में तो अज (ओषधि) से ही यज्ञ करना ठीक है; किन्तु देवता कहते हैं कि यज्ञ में बकरा काटना चाहिए। इस विषय में आप अपना मत दीजिए। महाराज उपरिचर ने देवताओं का अभिप्राय समझकर, उन्हीं का पक्ष लेकर, कहा—हे ब्राह्मणो, बकरे का बलिदान देकर यज्ञ करना ठीक है। तब सूर्य के समान तेजस्वी महर्षियों ने महाराज उपरिचर का उत्तर अपने विरुद्ध सुनकर, क्रोध में आकर, कहा—महाराज, आपने देवताओं का पक्ष लेकर यह बात कही है अतएव आप देवलोक से भ्रष्ट हो जायँ। आज से आप देवलोक को न आ सकेंगे। हमारे शाप से आप पृथिवी में धँस जायँगे। महर्षियों के शाप देने पर महाराज उपरिचर, पृथिवी में प्रवेश कर जाने के लिए, आकाश-मण्डल से गिरने लगे; किन्तु उस समय भगवान् नारायण की कृपा से उनकी स्मरणशक्ति बनी रही। सब देवता मिलकर उपरिचर को उस शाप से छुटकारा दिलाने का उपाय सोचने लगे। देवताओं ने कहा—इन महात्मा को हमारे ही कारण शाप मिला है, अतएव हमें इनको शाप से बचाने का उपाय सोचना चाहिए। यह निश्चय करके देवताओं ने उपरिचर से कहा—महाराज, आप विष्णु के परम भक्त हैं। भगवान् विष्णु देव-दानव सभी के पूज्य हैं। उन्हीं की कृपा से आप इस शाप से छूटेंगे।

आप महात्मा ब्राह्मणों का सम्मान करें। उनकी तपस्या के प्रभाव से उनके वचन झूठ नहीं होते। अब आप निस्सन्देह देवलोक से भ्रष्ट होकर पृथिवी में धँस जायँगे, अतएव आपके भले के लिए हम यह वर देते हैं कि शाप के दोष से आप जब तक भूगर्भ में रहें तब तक यज्ञ के समय ब्राह्मण लोग जो घी की धारा (वसुधारा) बहावें उसी घी को पीकर आप अपनी भूख-प्यास शान्त करते रहें। आप खेद न करें। पृथिवी में रहते समय इस वसुधारा और हम लोगों के दिये हुए तेज के प्रभाव से आपको भूख-प्यास का दुःख न होगा। हम एक वर और देते हैं। भगवान् विष्णु अवश्य ही प्रसन्न होकर आपको ब्रह्मलोक ले जायँगे। महाराज उपरिचर को इस प्रकार वर देकर देवता, ऋषियों समेत, अपने स्थान को चले गये।

इसके बाद राजा उपरिचर भूगर्भ में प्रविष्ट हो गये। वहाँ वे विष्णु की पूजा, विष्णु-मन्त्र का जप और उन्हीं के उद्देश्य से पञ्चयज्ञ करने लगे। कुछ दिनों बाद भगवान् विष्णु ३०
राजा उपरिचर की भक्ति देखकर उन पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गरुड़ को आज्ञा दी—पक्षिराज! धर्मात्मा राजा उपरिचर वसु, कुपित ब्राह्मणों के शाप से, भूगर्भ में प्रवेश कर गये हैं। अब वे उन सब ब्राह्मणों का यथोचित सम्मान करते हैं, अतएव तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र जाकर उन्हें आकाश-मण्डल को ले आओ। आज्ञा पाकर पक्षिराज गरुड़, पङ्ख फैलाकर, वायु के समान वेग से भूगर्भ में प्रविष्ट हो गये और उपरिचर को लेकर लौट आये। आकाश में पहुँचकर महाराज उपरिचर फिर देवशरीर धारण करके ब्रह्मलोक को चले गये।

हे धर्मराज, इस प्रकार महाराज उपरिचर को वाक्य के दोष से ब्राह्मणों का शाप लगा। शाप के कारण उनकी अधोगति हुई और अन्त को देवताओं की कृपा से वे फिर ब्रह्मलोक को गये। वे भगवान् विष्णु के परम भक्त थे इसी से उन्हें शाप से छुटकारा मिला और ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई। यही राजा उपरिचर का वृत्तान्त है। नारदजी जिस तरह श्वेतद्वीप को गये सो सुनो। ४१

तीन सौ उनतालीस अध्याय

श्वेतद्वीप में पहुँचकर नारदजी का वहाँ के पुरुषों को देखना और नारायण के दर्शन करने की इच्छा से भगवान् की स्तुति करना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! श्वेतद्वीप में पहुँचकर देवर्षि नारद ने, पूर्ण चन्द्रमा के समान तेजस्वी, वहाँ के पुरुषों को देखकर बड़ी भक्ति से प्रणाम किया। उन लोगों ने भी मन में नारदजी का सम्मान किया। इसके बाद देवर्षि नारद भगवान् नारायण के दर्शन करने की इच्छा से, ऊपर को हाथ उठाकर, एकाग्रचित्त होकर उन निर्गुण विश्वमय नारायण की स्तुति करने लगे—हे देवदेवेश! तुम निष्क्रिय, निर्गुण, लोक-साक्षी, क्षेत्रज्ञ, पुरुषोत्तम, महापुरुष, अनन्त, त्रिगुणमय, अमृत, अमृताक्ष, अनन्तदेव, आकाश और नित्य-स्वरूप हो। कार्य और कारण द्वारा

कभी तो आपका स्वरूप ज्ञात हो जाता है और कभी नहीं होता। हे नारायण! आप सत्यमय, आदिदेव और सब कर्मों के फल देनेवाले हैं। आप प्रजापति, सुप्रजापति, महाप्रजापति, वनस्पति, ऊर्जस्पति, वाचस्पति, जगत्पति, मनस्पति, दिवस्पति, मरुत्पति, सलिलपति, पृथिवीपति और दिक्पति हैं। महाप्रलय उपस्थित होने पर आप संसार के आधार होते हैं। आप अप्रकाश हैं और ब्रह्मा के गुरु हैं। आप यज्ञ और अध्ययन-स्वरूप हैं। शास्त्र में आपको महाराजिक आदि चार गण बतलाया है। आप प्रकाशमान और महाप्रकाशमान हैं। आप यज्ञ के प्रधान सात भागों के अधिकारी हैं। आप चौदह यम, यमपत्नी और चित्रगुप्त-स्वरूप हैं। देवता आपको तुषित और महातुषित कहते हैं। आप रोग और आरोग्य, काम आदि के वशीभूत और जितेन्द्रिय तथा स्वाधीन और पराधीन हैं। आप अपरिमेय, यज्ञ, महायज्ञ, पञ्चयज्ञ, ऋत्विक्, वेद, अग्नि और यज्ञ के अङ्ग-स्वरूप हैं। यज्ञ में आपकी ही स्तुति की जाती है; यज्ञ के सब भागों के अधिकारी आप ही हैं। आप दिन, रात, ऋतु, महीना, अयन और संवत्, इन सबके विधाता के अधिपति हैं। पञ्चरात्र आगम में आपकी ही महिमा का वर्णन है। आप वैकुण्ठ, अपराजित और मानसिक हैं। आपके सभी नाम हो सकते हैं। आप ब्रह्मा के भी नियन्ता हैं। आपने वेदव्रत समाप्त करके अवभृथ स्नान किया है। संसार आपको हंस, परमहंस, महाहंस, परमयाज्ञिक, सांख्ययोग और सांख्यमूर्ति कहता है। आप जीव, हृदय, इन्द्रिय, समुद्र, देवता और ब्रह्माण्ड में शयन करते हैं इसी से आपको अमृतेशय, हिरण्येशय, देवेशय, कुशेशय, ब्रह्मेशय और पद्मेशय इन छः नामों से पुकारते हैं। आप विश्वेश्वर, विश्वक्सेन, जगत् के आदि कारण और प्रकृति हैं। अग्नि आपका मुख है। आप वडवानल, आहुति, सारथि, वषट्कार, ओङ्कार, तपस्या, मन, चन्द्रमा, चक्षु, घी, सूर्य, दिग्गज, दिग्भानु, विदिग्भानु, हयशिरा, ऋग्वेदोक्त प्रथम तीन मन्त्र, ब्राह्मण आदि वर्णों के रक्षक, गार्हपत्य आदि पाँच अग्नि, षडङ्ग वेद, प्राग्ज्योतिष, ज्येष्ठसाम, सामवेदोक्त व्रतधारी, अथर्वशिराः, पञ्चमहाकल्प, फेनपाचार्य, वालखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग, परिसंख्याविहीन, युगादि, युगमध्य, युगान्त, इन्द्र, प्राचीनगर्भ, कौशिक, पुरुष्टुत और पुरुहूत हैं। आप विश्व के कर्ता और विश्वरूप हैं। आपने नाचिकेत नामक अग्नि में तीन बार यज्ञ किया है। आपकी गति और आपके भोग की थाह नहीं है। न तो आपका आदि है, न अन्त और न मध्य। आप व्रतावास, समुद्राधिवास, यशोवास, तपोवास, दमावास, लक्ष्म्यावास, विद्यावास, कीर्त्यावास, श्रीनिवास और सर्वावास हैं। आप वासुदेव, सर्वछन्दक, हरिहय, अश्वमेध, यज्ञ का भाग लेनेवाले, वरप्रद, सुखप्रद और धनप्रद हैं। आप यम, नियम, महानियम, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, महाकृच्छ्र और सर्वकृच्छ्र हैं। आप नियमधर, भयहीन, ब्रह्मचारी, नैष्ठिक, वेदक्रिय, अज, सर्वगति, सर्वदर्शी, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य, अचल, महाविभूति, माहात्म्यमयशरीर, पवित्र, महापवित्र, हिरण्यमय, बृहत्, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय,

ब्रह्माग्रगण्य, प्रजा की सृष्टि और संहार के कर्ता, महामायाधर, चित्रशिखण्डी, वरप्रद और यज्ञ का भाग ग्रहण करनेवाले हैं। आप यज्ञ-स्वरूप हैं। आपमें तृष्णा और संशय का लेश भी नहीं है। आप सब कर्मों में प्रवृत्त और सबसे निवृत्त हैं। आप ब्राह्मणरूप, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ति, महामूर्ति, बान्धव और भक्तवत्सल हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। हे ब्रह्मण्यदेव, मैं आपका परम भक्त हूँ और आपके दर्शन पाने के लिए आतुर हो रहा हूँ। ४

तीन सौ चालीस अध्याय

नारदजी को नारायण के दर्शन होना और उनका नारदजी से अपना माहात्म्य और अपने अनेक अवतारों की कथा कहना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तपस्वियों में श्रेष्ठ देवर्षि नारद के इस प्रकार गुप्त नामों द्वारा विश्वरूप नारायण की स्तुति करने पर भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये। देवर्षि ने देखा कि हज़ारों आँखें, हज़ारों सिर, हज़ारों बाहु और हज़ारों पेट के एक महापुरुष उनके सामने खड़े हैं। उनके शरीर में कोई स्थान चन्द्रमा के समान, कोई स्थान सूर्य के समान, कोई स्थान तोते के रङ्ग का, कोई स्फटिक मणि के समान, कोई कज्जल के समान, कोई स्थान सोने के समान, कोई मूँगे के समान, कोई सफ़ेद वैदूर्य मणि के समान, कोई नील वैदूर्य मणि के समान, कोई स्थान इन्द्र नीलमणि के समान, कोई स्थान मोर के गले के रङ्ग का और कोई स्थान मोतियों के रङ्ग का है। कोई स्थान अव्यक्त है। वे एक मुँह से ओंकार सहित गायत्री का जप और अन्य मुखों से आरण्यक आदि वेद-मन्त्रों का गान कर रहे हैं। उनके हाथ में वेदी, कमण्डलु, सफ़ेद मणियाँ, कुश, मृगचर्म, दण्ड और दहकती हुई आग है। वे खड़ाऊँ पहने हैं। देवर्षि नारद भगवान् नारायण के उस रूप के दर्शन और उनको प्रणाम करके प्रसन्नता से भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे। ११

भगवान् विष्णु ने नारद से कहा—देवर्षि! महर्षि एकत, द्वित और त्रित मेरे दर्शन की लालसा से यहाँ आये थे; किन्तु उनको दर्शन नहीं हुए। हार्दिक भक्ति के बिना कोई मेरे दर्शन नहीं पा सकता। तुम मेरे परम भक्त हो, इसी से मेरे दर्शन पा सके हो। मेरी यह मूर्ति धर्म के घर में, चार अंशों में विभक्त होकर, उत्पन्न हुई है अतएव तुम उन मूर्तियों की आराधना करो। आज मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगना चाहो तो माँग लो।

नारदजी ने कहा—भगवन्! आज आपके दर्शन पाकर मुझे तपस्या, संयम और नियम का सम्पूर्ण फल मिल गया। जब मुझे आपके इस अपूर्व रूप के दर्शन हो गये हैं तब और वर से क्या काम?

भगवान् नारायण ने नारदजी से फिर कहा—बेटा! ये चन्द्रमा के समान देदीप्यमान जितेन्द्रिय भक्त, निराहार और एकाग्रचित्त होकर, मेरा ध्यान कर रहे हैं। इस स्थान पर तुम्हारे रहने से इनकी तपस्या में विघ्न होता है। अतएव तुम यहाँ से चले जाओ। ये महात्मा रजो-

गुण और तमोगुण से मुक्त हो गये हैं और मेरी भक्ति करके सिद्धि पा चुके हैं। ये अन्त को
२० ही रूप में लीन हो जायँगे। जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से हीन है; जो त्रिगुणातीत, प्राणियों का आत्मा और साक्षी-स्वरूप है; प्राणियों का शरीर नष्ट होने पर जिसका नाश न होता; जो अज, नित्य, निर्गुण, निराकार, चौबीस तत्त्वों से परे, क्रियाहीन और ज्ञानदृश्य क लाता है तथा ब्राह्मण लोग जिसमें लीन होकर मुक्त हो जाते हैं, उसी सनातन परमात्मा को वा देव कहते हैं। उसकी महिमा सब जगह फैली हुई है। परमात्मा शुभ-अशुभ कर्मों में कभी लि नहीं होता। सभी प्राणियों में सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण रहते हैं। जीवात्मा इन गु का भोक्ता है, किन्तु परमात्मा इन सबसे अलग है। परमात्मा निर्गुण, गुणों का रक्षक, गु का स्रष्टा और गुणातीत है। सम्पूर्ण जगत् जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आक
३० में, आकाश मन में, मन प्रकृति में और प्रकृति परब्रह्म में लीन हो जाती है। वह सनातन पर किसी में लीन नहीं होता, उससे श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं है। संसार में स्थावर-जङ्गम सभी प्रा अनित्य हैं, सब प्राणियों के आत्मभूत वासुदेव ही नित्य-स्वरूप हैं।

पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, यही पञ्चभूत एकत्र होकर शरीर के रूप परिणत हो जाते हैं। जैसे पाँच भूतों के बिना शरीर नहीं बनता वैसे ही जीव के बिना शरीर स्थित वायु सञ्चालित नहीं हो सकता। इसी से जब शरीर में जीवात्मा आ जाता है तभी प्राणि के शरीर चेष्टायुक्त होते हैं। पण्डितों ने जीवात्मा को भगवान्, अनन्त और सङ्कर्षण कहा है उसी सङ्कर्षण (जीव) से प्रद्युम्न की उत्पत्ति होती है। मन का ही नाम प्रद्युम्न है। प्रलयक में सब प्राणी उसी में लीन हो जाते हैं। प्रद्युम्न (मन) से अनिरुद्ध की उत्पत्ति होती है। अहङ्क का ही नाम अनिरुद्ध है। उससे कर्ता, कारण, कार्य और स्थावर-जङ्गम प्राणियों से परि जगत् की उत्पत्ति होती है। उसी को ईशान और सब कार्यों का प्रकाशक कहते हैं। पण्डि
४० ने निर्गुण परमात्मा को वासुदेव और जीवात्मा को सङ्कर्षण बतलाया है। सङ्कर्षण से प्रद्युम्न (म और प्रद्युम्न (मन) से अनिरुद्ध (अहङ्कार) उत्पन्न होता है। मैं इस स्थावर-जङ्गम रूप जगत् सृष्टि करता हूँ। सत्, असत्, क्षर और अक्षर, सब पदार्थ मुझी से उत्पन्न होते हैं। मेरे भक्त र होकर मेरे ही रूप में लीन हो जाते हैं। पण्डितों ने मुझे चौबीस तत्त्वों से परे, निर्गुण, निष्क्रि निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह पुरुष कहा है। तुम मुझे रूपवान् देख रहे हो, किन्तु वास्तव में मे कोई रूप नहीं है। मैं चाहूँ तो दम भर में इस रूप का संहार कर लूँ। तुम केवल मेरी म के प्रभाव से मेरा यह रूप देख रहे हो। हे देवर्षि, यह मैंने चार मूर्तियों का वृत्तान्त विस्त पूर्वक कहा। पण्डित लोग मेरे ही स्वरूप को जीव कहते हैं, जीव मेरे ही रूप में लीन जाता है। जीव दृश्य पदार्थ नहीं है, अतएव यह न समझो कि तुम जीवात्मा के दर्शन रहे हो। मैं सब स्थानों में और सब प्राणियों में रहता हूँ। शरीर के नष्ट होने पर मेरा न

नहीं होता। संसार के एकमात्र कारण, निरन्तर वेदपाठ करनेवाले, ब्रह्मा मेरे अनेक प्रकार के कर्मों को समझते हैं। कुपित होने पर मेरे मस्तक से रुद्रदेव उत्पन्न हुए हैं। यह देखो, ग्यारह ५०
रुद्र मेरी दाहनी ओर, बारह आदित्य बाईं ओर, अश्विनीकुमार मेरे पीछे और देवताओं में श्रेष्ठ आठ वसु मेरे सम्मुख स्थित हैं। यह देखो, दक्ष आदि प्रजापति, सप्तर्षि, वेद, यज्ञ, अमृत, ओषधि, तपस्या, यम-नियम, आठ प्रकार का ऐश्वर्य (सिद्धियाँ), श्री, लक्ष्मी, कीर्ति, पृथिवी, वेद-माता सरस्वती, ध्रुव नक्षत्र, बादल, समुद्र, तालाब, नदी, सत्त्व आदि तीनों गुण और मूर्तिमान् चार प्रकार के पितृगण, सब मुझी में निवास करते हैं। देवताओं और पितरों का मैं आदिपिता हूँ। मैं हयशिरा होकर श्रद्धा के साथ दिये हुए हव्य-कव्य को पश्चिमोत्तर समुद्र में खाता-पीता हूँ। मैं यज्ञरूप हूँ। पूर्व समय में मुझसे उत्पन्न ब्रह्मा ने यज्ञ करके मेरी आराधना की थी। ६०
तब प्रसन्न होकर मैंने उन्हें ये वर दिये थे—ब्रह्मन्, कल्प के आदि में तुम मेरे पुत्र होकर सब लोकों के अध्यक्ष होगे और अपने कार्यों के द्वारा अनेक नामों से विख्यात होगे। तुम जो नियम बना दोगे उसका कोई उल्लङ्घन न कर सकेगा। वर चाहनेवालों को तुम वर दे सकोगे। देवता, असुर, ऋषि, पितर और सब प्राणी तुम्हारी उपासना करेंगे। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए मैं जब पृथिवी पर अवतार लूँगा तब तुम पुत्र के समान मेरा शासन और मुझे कामों में नियुक्त करोगे। हे नारद, ब्रह्मा को इस प्रकार के वरदान देकर मैं निश्चिन्त हो गया।

सांख्य-शास्त्र के आचार्य मुझे, विद्या-शक्ति-सम्पन्न सूर्यमण्डल में स्थित, कपिल कहते हैं। मैं वेद में ब्रह्मा और योग-शास्त्र में योगप्रिय कहलाता हूँ। अभी तो मैं प्रकट रूप से स्वर्ग में रहता हूँ; किन्तु हज़ार युग बीतने पर संसार का संहार करके, स्थावर-जङ्गम सब जीवों को अपने में लीन करके, विद्या-शक्ति के साथ अकेला विहार करूँगा। इसके बाद मेरे प्रभाव से उस ७१
विद्या-शक्ति द्वारा फिर जगत् की सृष्टि होगी। मेरी आदिमूर्ति वासुदेव से अनन्तदेव सङ्कर्षण, सङ्कर्षण से प्रद्युम्न, प्रद्युम्न से अनिरुद्ध, अनिरुद्ध से ब्रह्मा और ब्रह्मा से चराचर जगत् उत्पन्न होता है। प्रत्येक कल्प में बार-बार इसी प्रकार सृष्टि होती है। जैसे सूर्य आकाश में उदय होकर अस्त हो जाते हैं और काल उन्हें फिर उनके स्थान पर ले आता है वैसे ही यह पृथिवी जब जल में डूब जायगी तब मैं, प्राणियों का हित करने के लिए, वराह का रूप धारण करके फिर उसका उद्धार करूँगा। मैं बलगर्वित हिरण्याक्ष को मारूँगा और नृसिंह का रूप धारण करके हिरण्य-कशिपु को मारूँगा। उसके मर जाने पर विरोचन के बलि नाम का महापराक्रमी पुत्र होगा। तीनों लोकों में उसे कोई न मार सकेगा। वह इन्द्र को स्वर्ग से निकाल देगा और तीनों लोकों का राज्य करेगा। जब महापराक्रमी बलि उपद्रव करने लगेगा तब मैं, कश्यप के वीर्य से ८०
अदिति के गर्भ में, जन्म लेकर देवताओं के न मार सकने योग्य दानवराज बलि को पाताल में भेजकर इन्द्र तथा अन्य देवताओं को उनके पद पर स्थापित करूँगा। इसके बाद त्रेतायुग में,

भृगुवंश में जन्म लेकर, परशुराम नाम से विख्यात होकर क्षत्रियों का संहार करूँगा। फिर त्रेता और द्वापर की सन्धि में दशरथ-पुत्र होकर राम नाम से विख्यात हूँगा। उसी समय एकत और द्वित नाम के दो महर्षि, त्रित महर्षि को मार डालने के लिए उद्यत होने के कारण, वानर हो जायँगे। उनके वंश में जो वानर पैदा होंगे वे इन्द्र के समान बलवान् होंगे। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए मैं, उन वानरों की सहायता से, पुलस्त्य-कुल के कलङ्क राक्षसराज रावण को वंश समेत नष्ट कर दूँगा। उसके बाद द्वापर और कलियुग की सन्धि में दुरात्मा कंस का नाश करने के लिए मथुरा में जन्म लूँगा। वहाँ देवताओं के शत्रु असुरों को मारकर फिर द्वारका को चला जाऊँगा। द्वारका में निवास करके मैं देवमाता अदिति का अहित करनेवाले नरकासुर, भौम, मुरु और पीठ नामक दानवों का नाश करूँगा। प्राग्ज्योतिष नगर की सम्पत्ति द्वारका को ले जाऊँगा। बाण नामक दैत्य का प्रिय करनेवाले लोकपूज्य महादेव और कार्त्तिकेय को परास्त करूँगा। उसके बाद बलि के पुत्र सहस्रबाहु बाण को जीतकर सौभनिवासी दैत्यों का संहार करूँगा। मेरी बुद्धि के प्रभाव से गर्ग का पुत्र कालयवन मारा जायगा। उसी समय सब राजाओं का विरोधी महापराक्रमी जरासन्ध नाम का एक असुर गिरिव्रज का राजा होगा। वह दुष्ट मेरा अप्रिय करेगा और मेरी चतुराई से मारा जायगा। जरासन्ध के मारे जाने पर, धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए पृथ्वी-भर के राजाओं के सामने, शिशुपाल को मारूँगा। इन कामों में महावीर अर्जुन मेरी सहायता करेंगे। इसके बाद भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर का मैं राज्याभिषेक करूँगा। उस समय लोग कहेंगे कि महात्मा नर और नारायण, संसार का हित करने के लिए, कृष्ण और अर्जुन के रूप से प्रकट हुए हैं। युधिष्ठिर को राज्य मिल जाने के बाद मैं, पृथ्वी का भार उतारने के लिए, अपनी इच्छा से द्वारका को नष्ट कर दूँगा। मेरे प्रभाव से यदुवंशी मोहान्ध होकर परस्पर लड़कर मर मिटेंगे। इस प्रकार मैं द्वापर और कलियुग की सन्धि में वासुदेव आदि चार मूर्तियाँ धारण कर, अनेक कार्य करके, अपने लोक को चला जाऊँगा। मैं हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण और कल्कि, ये दस अवतार लूँगा। वेदों का नाश होने पर मैं ही उनका उद्धार करूँगा। श्रुति और वेद को मैंने सत्ययुग में प्रस्तुत किया है। मैं बार-बार अवतार लेकर संसार का कार्य करके फिर अपनी प्रकृति को प्राप्त हो जाता हूँ। यह पुराणों में वर्णित है। शायद तुम्हें भी मालूम हो। हे नारद, आज तुमने मेरे जिस रूप के दर्शन किये हैं उसके दर्शन ब्रह्मा भी नहीं पा सके। तुम मेरे परम भक्त हो, इसी से मैंने भूत और भविष्य का सम्पूर्ण रहस्य तुमसे कह दिया।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! विश्वरूप अविनाशी नारायण, देवर्षि नारद से यों कहकर, अन्तर्धान हो गये। नारदजी भी सफलमनोरथ होकर नर-नारायण के दर्शन करने के लिए बदरिकाश्रम को चले। उन्होंने नारायण के मुँह से निकले चारों वेदों के सारभूत उपनिषद् ब्रह्माजी को सुनाये।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, ब्रह्माजी ने विष्णु का जो अचिन्तनीय माहात्म्य नारदजी के मुँह से सुना उसे क्या वे पहले नहीं जानते थे ? लोकपितामह ब्रह्मा तो विष्णु के समान हैं, फिर भला वे विष्णु की महिमा क्यों नहीं जानते थे ?

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर ! हज़ारों महाकल्प, हज़ारों सृष्टियाँ और हज़ारों प्रलयकाल हो गये हैं। सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ब्रह्मा प्रजा की सृष्टि करते हैं। वे पहले से ही परमात्मा विष्णु को अपने से श्रेष्ठ और अपना स्रष्टा समझते हैं। [किन्तु पहले नारायण का गूढ़ माहात्म्य उन्हें नहीं मालूम था।] नारदजी के मुँह से विष्णु का माहात्म्य सुनकर उन्होंने अपने पास आये हुए सिद्ध पुरुषों को उसे सुनाया था। उन सिद्ध पुरुषों से सूर्यदेव ने विष्णु का माहात्म्य सुनकर अपने आगे चलनेवाले साठ हज़ार ऋषियों को वह सुनाया। उसके बाद सूर्य के १२०
सहचर ऋषियों ने, सुमेरु पर्वत पर आये हुए, देवताओं को उसे सुनाया। देवताओं से असित देवल ने सुना और उन्होंने पितरों को सुनाया। मेरे पिता महाराज शान्तनु ने वह माहात्म्य मुझे सुनाया। वही माहात्म्य अब मैंने तुमसे कहा है। क्या देवता और क्या महर्षि, जिसने यह माहात्म्य सुना है उसी ने परमात्मा विष्णु की पूजा की है। जो मनुष्य विष्णु का भक्त न हो उसे तुम इस ऋषि-प्रणीत परम्परागत माहात्म्य को न सुनाना। तुमने अभी तक और जितने उपाख्यान मुझसे सुने हैं उन सबका यह सार है। जैसे देवताओं और दानवों ने समुद्र को मथकर अमृत निकाला है वैसे ही ब्राह्मणों ने अनेक उपाख्यानों से इस अमृतमय उपाख्यान का संग्रह किया है। जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर एकान्त में प्रतिदिन इस उपाख्यान को पढ़ेगा या सुनेगा वह श्वेतद्वीप को जाकर चन्द्रमा के समान प्रभावान् होकर परमात्मा में लीन हो जायगा। रोग से पीड़ित जो मनुष्य इस माहात्म्य को सुनेगा वह रोग से मुक्त हो जायगा। जो मनुष्य इस माहात्म्य को जानना चाहता है उसकी इच्छाएँ सफल होती हैं और वह विष्णु का परम भक्त हो जाता है। उस भक्त को अभीष्ट गति मिलती है। हे धर्मराज, तुम भक्ति के साथ पुरुषोत्तम नारायण की उपासना किया करो। वे सबके पिता, माता और सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं। वे ३०
ब्रह्मण्यदेव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय ! भीष्म के मुँह से भगवान् नारायण का यह माहात्म्य सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर, अपने भाइयों समेत, भक्तिपूर्वक बार-बार नारायण का जयजयकार करके विष्णु का मन्त्र जपने लगे। मेरे गुरु महर्षि वेदव्यास, नारायण का मन्त्र जपते हुए, आकाश-मार्ग से क्षीरसमुद्र में जाकर नारायण की पूजा करके फिर अपने आश्रम को लौट आये।

सौति ने कहा—हे महात्माओ, महर्षि वैशम्पायन से यह उपाख्यान सुनकर महाराज जनमेजय ने उसी के अनुसार काम किया था। आप लोग नैमिषारण्य के निवासी, तपस्वी और

व्रतपरायण हैं। आप लोग महर्षि शौनक के यज्ञ में परमेश्वर के उद्देश्य से होम आदि करें
१४० यह परम्परागत कथा मेरे पिताजी ने मुझे सुनाई थी।

तीन सौ इकतालीस अध्याय

देवताओं और महर्षियों समेत ब्रह्माजी का नारायण की तपस्या करना और
प्रसन्न होकर नारायण का उन सबके भाग निर्दिष्ट करना

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र! वेद-वेदाङ्ग के विद्वान् भगवान् नारायण किस प्रकार अवं यज्ञ के भोक्ता और कर्ता हुए और किस कारण उन्होंने स्व निवृत्ति-धर्म-निरत, क्षमाशील औ निवृत्ति-धर्म के स्रष्टा होकर देवताओं में कुछ को निवृत्ति-धर्मावलम्बी करके सब देवताओं प्रवृत्ति-धर्मानुयायी और यज्ञ का भाग लेनेवाला कर दिया है? नारायण की कथा तुमने विश रूप से सुनी है, अतएव मेरा यह सन्देह दूर करो।

सूतपुत्र ने कहा—महर्षि, जनमेजय के पूछने पर महात्मा वैशम्पायन ने उनसे जो क कही थी वही मैं आपको सुनाता हूँ। उसे सुनने से आपका सन्देह दूर हो जायग महात्मा वैशम्पायन से नारायण का माहात्म्य सुनकर महाराज जनमेजय ने पूछा—भगव आपने कहा है कि एकमात्र मोक्ष ही परम सुख का मूल है। जो पाप-पुण्यहीन होकर मुक्त जाता है वह महातेजस्वी भगवान् नारायण में लीन हो जाता है। किन्तु जब दानव और मनु प्रवृत्ति-धर्म में निरत होकर यज्ञ आदि करते हैं और ब्रह्मा आदि देवता मोक्ष-धर्म को त्यागकर प्रवृ धर्म का पालन करके हव्य-कव्य का भोजन करते हैं तब मुझे मालूम होता है कि मोक्ष-धर्म बड़
१० कठिन है। अथवा ब्रह्मा आदि देवता परमात्मा में लीन होने का उपाय न जानते होंगे। क इसी से वे शाश्वत मोक्षधर्म को त्यागकर प्रवृत्ति-मार्ग का आश्रय करके बार-बार स्थानच्युत हो हैं? जो हो, जब ब्रह्मा आदि देवता भी निवृत्ति-मार्ग को त्यागकर प्रवृत्ति-मार्ग का आश्रय कर हैं तब मोक्ष-धर्म को श्रेष्ठ कैसे कहा जा सकता है? हे महर्षि, यह सन्देह मेरे हृदय को उद्वि कर रहा है अतएव मुझे विस्तार से बतलाइए कि देवता क्यों यज्ञ का भाग लेते हैं और य में उनकी आराधना मनुष्य क्यों करते हैं; इसके सिवा जो देवता यज्ञ का भाग लेते हैं स्वयं यज्ञ करके किसको भाग देते हैं।

राजा जनमेजय के पूछने पर महर्षि वैशम्पायन कहने लगे—महाराज, तुमने बड़ा कठि प्रश्न किया है। बिना तपस्या किये, बिना वेदविद्या और पुराण को जाने कोई इस प्रश्न का उत्त नहीं दे सकता। एक बार हम लोगों ने अपने आचार्य महर्षि वेदव्यास से इसी प्रकार का प्र किया था। उन्होंने हम लोगों को जो उत्तर दिया था वह सुनाता हूँ। सिद्ध-चारण-सेवि रमणीय हिमालय पर्वत पर सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुकदेव और मैं, सब लोग महर्षि वेदव्यास

पढ़ते थे। हम लोग सदाचारी, जितेन्द्रिय और क्रोधहीन थे। महर्षि वेदव्यास ने हम लोगों २०
को महाभारत और चारों वेद पढ़ाये हैं। हम लोगों के पूछने पर अज्ञान को नष्ट कर देनेवाले महर्षि वेदव्यास ने कहा—हे शिष्यो, मैंने बड़ी कठिन तपस्या की है। इन्द्रियों का संयम करके घोर तपस्या करने पर क्षीरसमुद्र-निवासी भगवान् नारायण मुझ पर बहुत प्रसन्न हुए थे। उनकी प्रसन्नता से मुझे—भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों काल का ज्ञान हो गया। मैंने ज्ञान-दृष्टि द्वारा कल्प के पहले की जिन बातों को देखा है वे सब तुम्हें बतलाता हूँ। सांख्य और योगशास्त्र में पण्डितों ने जिसे परमात्मा कहा है, जो अपने कर्मों के प्रभाव से महापुरुष कहलाता है, उस महापुरुष से अव्यक्त प्रकृति पैदा हुई और उस अव्यक्त प्रकृति से तीनों लोकों की सृष्टि करने के लिए व्यक्त अनिरुद्ध उत्पन्न हुए। अनिरुद्ध को ही तेजोमय अहङ्कार कहते हैं। ३०
उन्होंने लोकपितामह ब्रह्मा को उत्पन्न किया। ब्रह्माजी से पृथिवी, जल, वायु, आकाश और तेज, ये पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए। पञ्चमहाभूतों के उत्पन्न होने पर उनके गुणों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के प्रभाव से इन्हीं पञ्चमहाभूतों द्वारा मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ और स्वायम्भुव मनु, ये आठ महर्षि पैदा हुए हैं। यही आठों महात्मा सृष्टि और स्थिति के कर्ता हैं। ब्रह्माजी ने लोकों की स्थिति के लिए अङ्गों समेत वेद और यज्ञ की सृष्टि की है। ब्रह्माजी के क्रोध से महारुद्र उत्पन्न हुए। उन्होंने दस रुद्र और पैदा किये। ये ग्यारह रुद्र ब्रह्माजी के अंश-स्वरूप हैं। इस प्रकार ग्यारह रुद्र और मरीचि आदि आठ महर्षि उत्पन्न होकर, संसार की सृष्टि करने के लिए, ब्रह्माजी के पास गये और उनसे कहने लगे—भगवन्! आपने हम लोगों को उत्पन्न किया है; अब आप हममें से किसे कौन-कौन सा काम सौंपते हैं, हम लोग किस तरह उसको करेंगे और किसमें किस प्रकार की योग्यता होगी, यह बतला दीजिए। ४१

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ! तुम लोगों ने वही बात पूछी है जो मैं सोच रहा था। मैं इस समय इसी चिन्ता में डूबा हुआ था कि तीनों लोकों का निस्तार किस तरह होगा और तुम लोगों के और मेरे बल की रक्षा किस प्रकार होगी। चलो, हम सब मिलकर लोकसाक्षी अव्यक्तरूपी नारायण के पास चलकर उनकी शरण लें। वही हम लोगों को सदुपदेश देंगे।

अब देवता और ऋषिगण ब्रह्माजी के साथ हो लिये। वे क्षीरसमुद्र के उत्तर किनारे पर जाकर, वेद के अनुसार, महानियम नाम का घोर तप करने लगे। एकाग्रचित्त, ऊर्द्ध्वदृष्टि और ऊर्द्ध्वबाहु होकर वे एक पैर पर खड़े हो गये। इस प्रकार तपस्या करते-करते जब देवताओं के हज़ार वर्ष बीत गये तब भगवान् नारायण की, वेद-वेदाङ्ग से भूषित, यह मधुर वाणी उनको सुन पड़ी—हे देवताओ, हे महर्षियो! मैं तुम लोगों को सदुपदेश देता हूँ। तुम लोगों ने तीनों लोकों का हितकर जो महान् कार्य करने का प्रण किया है वह मुझे मालूम है। अब तुम लोगों

को अपना बल बढ़ाना चाहिए। मेरी आराधना के लिए तुम लोगों ने घोर तपस्या की है, अतएव उसी के अनुसार उत्तम फल पाओगे। तुम लोग एकाग्र-चित्त होकर मेरे उद्देश्य से यज्ञ करके मेरा भाग लगाओ, इसी से मैं तुम लोगों का अधिकार निर्दिष्ट कर दूँगा।

यह सुनकर ब्रह्मा आदि देवताओं और महर्षियों ने वेदोक्त विधि के अनुसार वैष्णव यज्ञ आरम्भ किया। इस यज्ञ में ब्रह्मा आदि देवता और सब महर्षि उन मायातीत सर्वश्रेष्ठ, सर्व-व्यापी, सूर्य के समान महातेजस्वी परमपुरुष नारायण को भाग देने लगे। तब नारायण ने अलक्षित भाव से आकाश में स्थित होकर कहा – देवताओ, तुम लोगों ने जो-जो भाग दिये हैं वे मेरे पास पहुँच गये। मैं प्रसन्न होकर तुम लोगों को वर देता हूँ, सुनो। मेरे वरदान से तुम लोग प्रत्येक युग में दान-दक्षिणा समेत यज्ञ करके उसका फल पाओगे। तीनों लोकों में जो कोई यज्ञ करेगा वह वेद-विधि के अनुसार तुम लोगों को यज्ञ में भाग देगा। इस यज्ञ में तुम लोगों में से जिसने जिस प्रकार का भाग मुझे दिया है वह उसी तरह का भाग यज्ञ में पावेगा। वेद में मैंने इसी प्रकार की व्यवस्था कर दी है। तुम लोग सब लोकों का हित चाहते हो, अतएव अपने-अपने अधिकार के अनुसार सब लोकों का पालन करो। संसार में प्रवृत्ति-धर्म के जो कर्म प्रचलित होंगे उन्हीं के द्वारा तृप्त होकर तुम लोग संसार की रक्षा कर सकोगे। मनुष्यों के द्वारा सम्मानित होकर तुम लोग मेरा सम्मान करते रहो। वेद, यज्ञ और सब ओषधियाँ तुम्हीं लोगों की तृप्ति के लिए उत्पन्न की गई हैं। इन वस्तुओं का नियमानुसार व्यवहार होने से तुम लोगों को आनन्द होगा। जब तक कल्प का क्षय न होगा तब तक तुम लोग अपने-अपने अधिकार पर स्थित रहोगे। अब तुम लोग अपने-अपने अधिकार के अनुसार लोक की रक्षा करो। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये सात महर्षि ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुए हैं। ये सब वेद के विद्वान्, वेदाचार्य और प्रवृत्ति-मार्ग के अनुयायी हैं। ये प्रजा की सृष्टि करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। जो लोग यज्ञ-याग आदि कर्म करेंगे उनके लिए यह मार्ग है। अब निवृत्ति-मार्ग का विषय सुनो। सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और सनातन, ये सात महर्षि ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुए हैं। ये सब महर्षि विज्ञान-बल से युक्त और निवृत्तिधर्मावलम्बी हैं। ये योग और सांख्यशास्त्र के विद्वान्, मोक्ष-धर्म के आचार्य और प्रवर्तक हैं। प्रकृति से अहङ्कार, सत्त्व आदि तीनों गुण और महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ है। प्रकृति से क्षेत्रज्ञ श्रेष्ठ है। मैं वही क्षेत्रज्ञ हूँ। मैं कर्मनिष्ठ मनुष्यों का प्रवृत्ति-मार्ग और ज्ञानी पुरुषों का निवृत्ति-मार्ग हूँ। जो मनुष्य जिस मार्ग का अवलम्बन करता है उसी के अनुरूप उसे फल मिलता है।

हे देवताओ! ये ब्रह्मा सब लोकों के गुरु, जगत् के आदि-कर्ता और तुम लोगों के पिता-माता हैं। ये मेरी आज्ञा से जीवलोक का उपकार कर रहे हैं। रुद्रदेव इनके मस्तक से उत्पन्न

हुए हैं। वे ब्रह्मा की आज्ञा से लोक का कल्याण करेंगे। अब तुम लोग अपने-अपने स्थान को जाओ और अपने अधिकार के अनुसार काम करो। तीनों लोकों में यज्ञ आदि का प्रचार करके प्राणियों के कर्म, गति और उनकी आयु के विषय में विचार करो। यह सत्ययुग सब युगों से श्रेष्ठ है। इस युग के यज्ञ में पशु का वध करना निषिद्ध है। इस युग में धर्म के चारों चरण हैं। सत्ययुग के बाद त्रेतायुग आवेगा। उसमें धर्म के तीन चरण रह जायँगे। उस युग मे मन्त्र से पवित्र करके यज्ञ में पशुओं का वध किया जायगा। त्रेता के बाद द्वापर-युग आवेगा, तब धर्म के दो चरण रह जायँगे। उस समय पाप-पुण्य का पलड़ा बराबर हो जायगा। द्वापर के बाद कलियुग आवेगा। उस युग में केवल एकचरण धर्म रहेगा।

देवताओं ने पूछा—भगवन्, कलियुग में जब धर्म का केवल एक चरण रह जायगा तब हम लोग किस प्रकार के कर्म करेंगे ?

नारायण ने कहा—हे देवताओ ! उस समय जहाँ वेद, यज्ञ, तपस्या, सत्य, इन्द्रिय-निग्रह और अहिंसा रहें वहीं तुम लोग, धर्म-परायण होकर, निवास करना।

व्यासजी कहते हैं कि अब महर्षि और देवता नारायण की आज्ञा लेकर, उनको प्रणाम करके, अपने स्थान को चले गये। केवल ब्रह्माजी विष्णु के दर्शन करने की इच्छा से वहाँ रह गये। तब नारायण हयशिरा की मूर्ति धारण करके कमण्डलु और त्रिदण्ड हाथ में लेकर वेद-पाठ करते हुए ब्रह्माजी के सामने आ गये। ब्रह्माजी ने उन महापराक्रमी हयशिरा के दर्शन करके प्रणाम किया। हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये। नारायण ने उनको छाती से लगाकर कहा—ब्रह्मन्, तुम निर्दिष्ट नियम के अनुसार तीनों लोकों का कार्य-भार ग्रहण करो। तुम सब प्राणियों के सृष्टि-कर्ता और जगत् के नियन्ता हो। मैं तुमको सब भार सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ। जब देवताओं के किसी कार्य के करने में तुम असमर्थ होगे तब मेरे अंश का अवतार होगा। यह कहकर नारायण अन्तर्धान हो गये और ब्रह्माजी भी अपने स्थान को चले आये।

इस प्रकार नारायण ने यज्ञ का अग्रभाग लेकर और यज्ञ करने का उपदेश देकर स्वयं यज्ञ किया। उन्होंने स्वयं तो मुमुक्षु पुरुषों की प्रधान गति निवृत्ति-मार्ग का अवलम्बन किया और अन्यान्य लोगों के लिए प्रवृत्ति-मार्ग का उपदेश दिया है। वे आदि, मध्य और अन्त हैं। वे प्रजा के विधाता, ध्येय, कर्ता और कार्य हैं। वे युग के अन्त में तीनों लोकों का संहार करके सो रहते हैं और युग के आदि में जागकर फिर सम्पूर्ण जगत् की रचना करते हैं। वे निर्गुण, अज, विश्वरूप और देवताओं के तेज-स्वरूप हैं। वे पञ्चमहाभूत, ग्यारह रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, वायु, वेद, वेदाङ्ग, यज्ञ, तपस्या, तेज, यश, वाणी और नदियों के अधीश्वर हैं। वे समुद्रवासी, नित्य, मुञ्जकेशी और शान्त-स्वरूप हैं। जीव उन्हीं से मोक्ष-धर्म का

ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे कपर्दी, वराह, एकशृङ्ग, धीमान्, विवस्वान्, हयशिरा, चतुर्मूर्तिधारी, परम-गुह्य, ज्ञानदृश्य और क्षर तथा अक्षर हैं। वे अपनी अव्याहत गति के प्रभाव से सर्वत्र विचरते रहते हैं। केवल ज्ञानदृष्टि द्वारा परब्रह्म के दर्शन हो सकते हैं। हे शिष्यो, मुझे ज्ञान के प्रभाव से यह सब मालूम हुआ है। मैंने तुम लोगों के पूछने पर विस्तार से उसका वर्णन कर दिया। अब तुम लोग, मेरे कहने के अनुसार, वेद-पाठ द्वारा नारायण की स्तुति करो, उनकी पूजा और आराधना करो।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, महर्षि वेदव्यास के यों कहने पर उनके पुत्र शुक-
११ देव और हम लोग उनके साथ ऋग्वेद का पाठ करके परमात्मा की स्तुति करने लगे। तुमने जो पूछा था उसका वर्णन मैंने किया। आचार्य वेदव्यास ने हम लोगों से इसी प्रकार कहा था। जो मनुष्य नारायण को प्रणाम करके उनका माहात्म्य सुनता-सुनाता है उसे कोई रोग नहीं होता; वह रूपवान् और बलवान् हो जाता है। इस स्तोत्र का पाठ करने या इसे सुनने से रोगी रोग से और बँधुआ बन्धन से छूट जाता है। मनुष्य की इच्छाएँ पूरी होतीं और आयु बढ़ती है। वन्ध्या के सन्तान उत्पन्न होती है। ब्राह्मण सर्वज्ञ होते हैं, क्षत्रिय विजय पाते हैं, वैश्यों को अतुल धन मिलता है और शूद्र सुखी होते हैं। पुत्र-हीन मनुष्य पुत्र प्राप्त करता और कन्या मनचाहा पति पाती है। गर्भिणी स्त्री का गर्भ अटक जाय और वह इस स्तोत्र को सुने तो उसके शीघ्र प्रसव हो जायगा। यात्री मार्ग में इस स्तोत्र का पाठ करेंगे तो उनकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त होगी। सारांश यह कि जो मनुष्य जिस कामना से इस स्तोत्र का पाठ करेगा उसकी वह कामना पूरी होगी। भक्त लोग महर्षि वेदव्यास के कहे हुए नारायण के इस माहात्म्य और
११९ महर्षियों तथा देवताओं के एकत्र समागम का वृत्तान्त सुनकर बड़े सुख से जीवन बिताते हैं।

तीन सौ बयालीस अध्याय

वैशम्पायन का जनमेजय को श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन से कहे हुए नामों के अर्थ बतलाना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, महात्मा वेदव्यास ने और उनके शिष्यों ने जिन नामों से मधु-सूदन की स्तुति की थी उन नामों के सुनने की मेरी इच्छा है; आप उनका वर्णन कीजिए। उन नामों को सुनकर मैं शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाऊँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, भगवान् ने अर्जुन को अपने गुण और कर्म के अनुसार जिन नामों का जैसा अर्थ बतलाया है वह मैं कहता हूँ। एक बार महावीर अर्जुन ने कहा—हे केशव! तुम सब प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाले और भूत, भविष्य तथा वर्तमान, तीनों काल के अधीश्वर हो। तुम सबको अभयदान देते हो। महर्षियों ने वेद और पुराण में तुम्हारे, गुण और कर्म के अनुसार, जिन नामों का वर्णन किया है उनका अर्थ जानने की मेरी इच्छा है। कृपा करके मुझे बतलाइए। तुम्हारे सिवा और कोई उनका अर्थ नहीं बतला सकता।

वासुदेव ने कहा—अर्जुन ! महर्षियों ने वेद, उपनिषद्, पुराण, ज्योतिष, सांख्य, योग-शास्त्र और आयुर्वेद में मेरे अनेक नाम बतलाये हैं। उन नामों में कुछ तो गुण के अनुसार हैं और कुछ कर्म के अनुसार हैं। तुम मेरे आधे अङ्ग हो, अतएव कर्म के अनुसार नामों के अर्थ बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। उस निर्गुण और सगुण परमात्मा को नमस्कार है। उसकी १०
प्रसन्नता से ब्रह्मा और उसके क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए हैं। वह स्थावर-जङ्गम रूप संसार का कारण और अठारह गुणों से युक्त सत्त्व-स्वरूप है। वह मेरी उत्पत्ति का स्थान है। वही सब लोकों को धारण करता है। वही कर्मों का फल और चिन्मात्र-स्वरूप है। वह सब लोकों का आत्मा और आराध्य है। वही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता है। वह तप, यज्ञ, याज्ञिक, चिरन्तन पुरुष और विराट् है। वह सृष्टिकर्ता और संहारकर्ता अनिरुद्ध है। ब्रह्मा की रात बीत जाने पर उसकी कृपा से एक कमल उत्पन्न होता है और उसी की कृपा से उस कमल में ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। फिर ब्रह्मा का दिन बीत जाने पर उसी देवदेव अनिरुद्ध के क्रोध से लोक का संहार करने-वाले रुद्र पैदा होते हैं। इस प्रकार उसकी प्रसन्नता से ब्रह्मा और उसके क्रोध से रुद्र उत्पन्न होकर उसकी आज्ञा के अनुसार सृष्टि और संहार करते हैं। सारांश यह कि सृष्टि-संहार का कर्ता अनिरुद्ध ही है, ब्रह्मा और रुद्र तो निमित्त-मात्र हैं। जटाजूटधारी, श्मशान में रहनेवाले, व्रतधारी, २०
परमयोगी, भीषण-स्वरूप, दक्ष का यज्ञ ध्वंस करनेवाले, सूर्य के नेत्रों को नष्ट कर देनेवाले रुद्रदेव नारायण के ही अंश-स्वरूप हैं। मैं सबका आत्मा हूँ, रुद्रदेव भी मेरे आत्म-स्वरूप हैं, इसी से मैं उनकी पूजा करता हूँ। यदि मैं उनकी पूजा न करूँ तो कोई मेरा सत्कार न करे। मैंने जो नियम बना दिया है उसी का अनुसरण सब लोग करते हैं। सबको नियम का पालन करना चाहिए, इसी से मैंने सर्व-साधारण को आत्मा की पूजा में निरत रखने के लिए रुद्रदेव की पूजा का नियम बना दिया है। जो रुद्रदेव को जानता है वही मुझे जान सकता है, जो रुद्रदेव का भक्त है वही मेरा भक्त हो सकता है। रुद्र और मैं, दोनों एकरूप हैं। हम दोनों आत्मरूप से सब प्राणियों में स्थित होकर उनको कर्मों में लगाते हैं। रुद्र के सिवा और कोई मुझे वर नहीं दे सकता, इसी से पुत्र के लिए मैंने रुद्रदेव की आराधना की थी। अपने आत्म-रूप रुद्रदेव के सिवा मैं और किसी देवता को प्रणाम नहीं करता। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता और महर्षिगण सभी त्रिकालज्ञ सर्वश्रेष्ठ सबके पूज्य नारायण की पूजा करते हैं। अतएव ३०
तुम भी शरणागतवत्सल, हव्य-कव्यभोक्ता, वरदाता विष्णु को नमस्कार करो।

संसार में मेरे भक्त चार भागों में विभक्त हैं। उनमें जो एकमात्र मुझी में अनुरक्त रहते हैं वे सबसे श्रेष्ठ हैं। वे मेरे सिवा और किसी देवता की आराधना नहीं करते। मेरे सिवा उनकी और कोई गति भी नहीं है। वे इच्छाहीन होकर सब काम करते हैं। बाक़ी तीन प्रकार के भक्त, फल की इच्छा से, कर्म करते हैं इसलिए उन्हें अन्त को जन्म-मरण के चक्कर में आना

पड़ता है। ज्ञानी पुरुष ही मोक्षपद पा सकते हैं। वे बड़ी भक्ति से ब्रह्मा और महादेव आदि देवताओं की सेवा करके अन्त को मुझे प्राप्त होते हैं। यह भक्तों का विषय मैंने तुमसे कहा हम और तुम दोनों नर-नारायण हैं। हम दोनों पृथिवी का भार हलका करने के लिए मृत्युलोक में आये हैं। मैं जो हूँ और जिससे उत्पन्न हुआ हूँ सो विशेष रूप से जानता हूँ। अध्यात्मयोग मोक्षधर्म और मङ्गलजनक कर्म, कुछ भी मुझसे छिपा नहीं है। मैं मनुष्यों का एकमात्र आश्रय हूँ।

जल नर से उत्पन्न हुआ है इसलिए उसका नाम नार है। जल पहले मेरा अयन अर्थात्
४० आश्रय-स्थान था, इसी से मेरा नाम नारायण है। वासु शब्द का अर्थ निवास और देव शब्द का अर्थ प्रकाशक है। मैं सूर्यरूप होकर किरणों द्वारा संसार को प्रकाशित करता हूँ और सब प्राणी मुझी में निवास करते हैं, इसी से मेरा नाम वासुदेव है। विष्णु शब्द का अर्थ गति उत्पन्न करनेवाला, व्यापक, दीप्तिमान् और प्रवेश तथा निर्गम का स्थान है। मैं प्राणियों की गति और सबकी उत्पत्ति करनेवाला हूँ। मैं सम्पूर्ण संसार में व्याप्त रहता हूँ। मेरा तेज सबसे बढ़कर है। मुझी से सब प्राणी उत्पन्न होते और मुझी में लीन हो जाते हैं, इसी से मेरा नाम विष्णु है। मनुष्य दम गुण द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा से त्रिलोक-स्वरूप मेरी कामना करते हैं इसी से मेरा नाम दामोदर है। पृश्नि शब्द का अर्थ वेद, जल, अन्न और अमृत है। ये वेद आदि सब पदार्थ मेरे गर्भ में स्थित रहते हैं, इसी से मेरा नाम पृश्निगर्भ है। महर्षियों का कहना है कि एकत और द्वित, दोनों ने त्रित को कुएँ में ढकेल दिया था और त्रित 'हे पृश्निगर्भ मुझे उबारो' यह कहकर मेरा नाम लेते हुए कुएँ से निकले थे। सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाशित होती हैं वे मेरे केश-स्वरूप हैं, इसी से ब्राह्मण मुझे केशव कहते हैं महात्मा उतथ्य अपनी पत्नी में गर्भाधान करके चले गये। तब एक दिन बृहस्पति उतथ्य की
५० पत्नी से सहवास करने के लिए उसके पास पहुँचे। बृहस्पति को आया हुआ जानकर गर्भ में स्थित बालक ने कहा—महात्मन्, मैं अपनी माता के गर्भ में हूँ अतएव आप मेरी माता पर आक्रमण न कीजिए। गर्भ में स्थित बालक के यों कहने पर बृहस्पति को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने उस बालक को शाप दिया कि तूने मुझे सम्भोग-सुख से वञ्चित किया है इसलिए तू जन्मान्ध पैदा होगा। कुछ दिनों बाद उतथ्य के पुत्र, बृहस्पति के शाप से, अन्धे पैदा हुए। वे जन्मान्ध थे इसलिए पहले उनका नाम दीर्घतमा रक्खा गया, किन्तु बाद में वेद-वेदाङ्ग का अध्ययन कर चुकने पर बार-बार मेरा 'केशव' नाम लेने से उन्हें आँखें प्राप्त हुईं। तब से उनका नाम गौतम पड़ा। हे अर्जुन! देवता और ऋषि, जो कोई भक्तिभाव से मेरा 'केशव' नाम लेगा उसकी सब कामनाएँ सिद्ध होंगी। अग्नि और चन्द्रमा एक स्थान से उत्पन्न होकर चराचर विश्व की रक्षा करते हैं। वे गर्मी पहुँचाकर और प्रकाश करके लोकों को प्रसन्न करते हैं, इस कारण
५९ उनका नाम हृषी है। अग्नि और चन्द्रमा मेरे केश-स्वरूप हैं, इसलिए मेरा नाम हृषीकेश है।

तीन सौ तेंतालीस अध्याय

सृष्टि का प्रकार और ब्राह्मणों की महिमा का वर्णन

अर्जुन ने पूछा—हे श्रीकृष्ण, अग्नि और चन्द्रमा एक स्थान से किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं?

श्रीकृष्ण ने कहा—अर्जुन! मैं इस विषय में अपना पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। एक बार देवताओं के हज़ार वर्ष बीत जाने पर स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का महाप्रलय हो गया। उस समय अग्नि, वायु और पृथिवी, कुछ भी न रह गया। सर्वत्र अन्धकार हो गया। उस समय दिन, रात, कार्य, कारण, स्थूल, सूक्ष्म, कुछ भी नहीं देख पड़ता था। केवल ब्रह्म-स्वरूप जल ही जल रह गया था। ऐसी अवस्था में अजर, अमर, इन्द्रियों से हीन, इन्द्रियों से परे, अयोनिज, सत्य-स्वरूप, अहिंसक, चिन्तामणि-स्वरूप, सर्वव्यापी, सर्वस्रष्टा, ऐश्वर्य आदि गुणों के आश्रय, अविनाशी नारायण प्रकृति से उत्पन्न हुए। इस विषय में वेद का एक प्रमाण सुनो। महाप्रलय के समय दिन-रात, स्थूल-सूक्ष्म, कुछ नहीं था। केवल विश्वव्यापी प्रकृति ही थी, वह विश्वरूप नारायण की रात है।

उसके बाद नारायण से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने सृष्टि करने की इच्छा से अपनी आँखों से अग्नि और चन्द्रमा को उत्पन्न किया। फिर धीरे-धीरे प्रजा की सृष्टि हुई; ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण-विभाग हुआ। चन्द्रमा ब्राह्मण और अग्नि क्षत्रिय-स्वरूप हुए। क्षत्रिय से ब्राह्मण में जिन गुणों की प्रधानता है वे सबको विदित ही हैं। ब्राह्मण से श्रेष्ठ कोई प्राणी नहीं है। ब्राह्मण के मुँह में होम करना प्रज्वलित अग्नि में आहुति देने के समान है। इसी से ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते हैं। ब्राह्मण सब प्राणियों की सृष्टि करके तीनों लोकों का पालन करते हैं। जिस अग्नि को वेद में यज्ञ का मन्त्र, होता, कर्ता और देवता तथा मनुष्य आदि सब प्राणियों का हितैषी बतलाया है वही अग्नि ब्राह्मण कहलाता है। जैसे मन्त्र के बिना आहुति नहीं दी जाती और १२
पुरुष के बिना तपस्या नहीं होती उसी तरह अग्नि के बिना वेदों, देवताओं, मनुष्यों और ऋषियों की पूजा नहीं होती। इसी से अग्नि को होता कहते हैं। ब्राह्मण को ही होता का काम करने का अधिकार है, क्षत्रिय और वैश्य को अधिकार नहीं है; इसी कारण ब्राह्मण अग्निरूप हैं। यज्ञ करने से देवता सन्तुष्ट होते हैं और वे सन्तुष्ट होकर पृथिवी का पालन करते हैं; किन्तु यज्ञ न करके ब्राह्मणों के मुँह में आहुति देने से ही पृथिवी की रक्षा हो सकती है। जो ब्राह्मण के मुँह में आहुति नहीं देता उसे अग्नि में होम करने का कोई फल नहीं मिलता। इसी से ब्राह्मण अग्नि-स्वरूप कहलाते हैं। विद्वान् लोग अग्नि की आराधना करते हैं। विष्णुरूपी अग्नि सब प्राणियों में प्रविष्ट होकर सबको जीवित रखता है। इस विषय में सनत्कुमार का मत सुनो। सबके आदि-भूत ब्रह्माजी ने सब मनुष्यों की सृष्टि की है; किन्तु सबसे पहले ब्राह्मण ही वेद का पाठ करके स्वर्ग को गये हैं। जैसे शैक्य (सिकहर) पर गव्य (दूध, दही) आदि रक्खे जाते हैं वैसे ही ब्राह्मणों

द्वारा वाणी, कर्म, श्रद्धा, तपस्या, मृत्युलोक और स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। सत्य से बढ़कर धर्म, माता से बढ़कर गुरु और ब्राह्मण के समान श्रेष्ठ कोई मनुष्य नहीं है। जहाँ ब्राह्मण जीविका-हीन होकर रहते हैं वहाँ घोड़े, बैल आदि कोई वाहन किसी काम नहीं आते। न वहाँ कोल्हू चलते हैं और न गोरस ही होता है। वहाँ के सब मनुष्य दुखी होकर चोरी करने लगते हैं। वेद, पुराण और इतिहास में लिखा है कि सबके कर्ता, लोक के हितकारी, वर देनेवाले ब्राह्मण
२१ नारायण के मुँह से उत्पन्न हुए हैं। फिर ब्राह्मण से और-और वर्ण उत्पन्न हुए। ब्राह्मण ही देव-दानवों के सृष्टिकर्ता हैं। मैंने ब्रह्मरूप होकर ब्राह्मणों को उत्पन्न किया है और मैं ही देव-दानवों तथा महर्षियों पर कृपा करता और दण्ड देता हूँ।

ब्राह्मणों का प्रभाव बड़ा अद्भुत है। देखो, इन्द्र ने जब अहल्या का सतीत्व भङ्ग किया था तब गौतम के शाप से उनकी दाढ़ी के बाल हरे रङ्ग के हो गये थे और महर्षि कौशिक के शाप से उनके अण्डकोश गिर गये थे। अन्त को उनके भेड़ के जैसे अण्डकोश उत्पन्न हुए थे। महर्षि च्यवन ने शर्याति राजा के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को भाग देने का इरादा किया था, इस कारण कुपित होकर इन्द्र ने उन पर वज्र उठाया था किन्तु महर्षि च्यवन के शाप से उनकी भुजाएँ जकड़ गई थीं। जब रुद्र ने प्रजापति दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया था तब कुपित दक्ष ने तपस्या करके उनके माथे पर एक नेत्र उत्पन्न कर दिया था। जिस समय रुद्र त्रिपुरासुर का वध करने को उद्यत थे उस समय शुक्राचार्य ने अपने सिर से एक जटा उखाड़कर रुद्र पर फेंकी थी। उससे साँप पैदा हो गये। साँपों के काटने से रुद्र का कण्ठ नीला हो गया। कोई कहते हैं कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में नारायण ने हाथ से महादेवजी का गला पकड़ा था इसी से उनका गला नीले रङ्ग का हो गया।

बृहस्पति ने अमृत उत्पन्न करने के समय, पुरश्चरण करने के लिए, जब समुद्र के जल से आचमन किया और वह जल उन्हें ख़राब लगा तब कुपित होकर उन्होंने समुद्र को शाप दिया कि मैंने पुरश्चरण करने के लिए आचमन किया, किन्तु इस समय तुम स्वच्छ नहीं हो अतएव आज से मछली, कछुआ और मगर आदि जल-जन्तु तुमको गँदला करेंगे। उसी समय से समुद्र में अनेक प्रकार के जलजीव रहते हैं। पहले त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप देवताओं के पुरोहित थे। उनका दूसरा नाम त्रिशिरा था। वे दानवों के भानजे थे, किन्तु उन्होंने दानवों को तो छिपाकर और देवताओं को प्रकट रूप से यज्ञ में भाग दिया था। एक बार दानवों ने हिरण्यकशिपु को साथ लेकर विश्वरूप की माता के पास जाकर कहा—बहन, तुम्हारा पुत्र त्रिशिरा विश्वरूप देवताओं का पुरोहित होकर उनको तो प्रकट रूप से और हमको छिपाकर यज्ञ में भाग देता है। इससे हम लोगों का बल घटता और देवताओं का बढ़ता जा रहा है, अतएव तुम उससे कह दो कि वह देवताओं का पक्ष छोड़कर हम लोगों के पक्ष में आ जाय।

यह सुनकर विश्वरूप की माता को भाइयों पर दया आ गई। वे अपने पुत्र के पास नन्दन वन को गईं। उन्होंने विश्वरूप से कहा—बेटा, तुम शत्रुपक्ष का बल बढ़ाने और मातृपक्ष का नाश करने को क्यों उद्यत हो? ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं।

माता की बात का उल्लङ्घन करना ठीक न समझकर विश्वरूप ने देवताओं का पक्ष छोड़ दिया। वे दानवराज हिरण्यकशिपु से जा मिले। विश्वरूप के आने पर हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मपुत्र वसिष्ठदेव को हटाकर विश्वरूप को होता के पद पर नियुक्त कर दिया। तब वसिष्ठ ने ३०
क्रोध में आकर हिरण्यकशिपु से कहा—दानवराज, तुमने मुझे हटाकर दूसरे व्यक्ति को होता बनाया है इसलिए तुम्हारा यज्ञ सदा अधूरा रहेगा और तुम एक अपूर्व जन्तु के हाथ से मारे जाओगे। इसी शाप के कारण हिरण्यकशिपु नृसिंहरूप नारायण के हाथ से मारा गया।

हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर विश्वरूप, अपने मामा के कुल का बल बढ़ाने के लिए, तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या का प्रभाव देखकर इन्द्र को बड़ा भय हुआ। उन्होंने तपस्या में विघ्न डालने के लिए अप्सराओं को भेजा। अप्सराओं ने अपना सौन्दर्य दिखाकर विश्वरूप को मोहित कर लिया। कुछ दिनों बाद अप्सराओं ने विश्वरूप से कहा कि महात्मन्, अब हम अपने स्थान को जाती हैं। उनकी ये दुःखजनक बातें सुनकर विश्वरूप घबरा उठे और कहने लगे—जाओगी कहाँ, यहीं हमारे साथ सुख से रहो। तब अप्सराओं ने कहा—महर्षि! हम अप्सराएँ हैं, हम तो वरदानी इन्द्र की सेविकाएँ हैं।

यह सुनते ही विश्वरूप क्रोध के मारे अधीर हो उठे। उन्होंने अप्सराओं से कहा—अच्छा, जाओ। मैं आज ही इन्द्र आदि देवताओं को नष्ट कर दूँगा। महातेजस्वी त्रिशिरा अब चित्त को एकाग्र करके मन्त्र जपने लगे। मन्त्र के बल से उनका तेज इतना बढ़ गया कि वे एक मुँह से तो यज्ञ में लाये हुए सोमरस को पी लेते थे, दूसरे मुँह से अन्न खा लेते थे और तीसरे मुँह से देवताओं का तेज नष्ट करते थे। सोमरस पीने से विश्वरूप के पुलकित नेत्र और उनका बढ़ा हुआ तेज देखकर इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा—पितामह, विश्वरूप सब यज्ञों का सोमरस पी लेते हैं। हमको यज्ञ में भाग नहीं मिलता। इस समय दानवों की वृद्धि हो रही है और हम लोग निर्बल होते जा रहे हैं, अतएव आप हमारा शीघ्र उद्धार कीजिए। ब्रह्माजी ने कहा—देवताओ, महर्षि दधीचि घोर तपस्या कर रहे हैं। तुम लोग उनके पास जाकर उनसे शरीर त्यागने की प्रार्थना करो। प्रार्थना सुनकर वे शरीर त्याग देंगे। तब तुम लोग उनकी हड्डियों से वज्र बना लेना। उस वज्र से त्रिशिरा मारा जा सकेगा।

यह उपदेश पाकर इन्द्र आदि देवता महर्षि दधीचि के पास गये। देवताओं ने उनसे पूछा—भगवन्, आपकी तपस्या निर्विघ्न हो रही है न? दधीचि ने देवताओं का स्वागत करके कहा—देवताओ, मैं आप लोगों की क्या सेवा करूँ? आप लोग मुझसे जिस काम के लिए कहेंगे

उसे मैं करूँगा। देवताओं ने कहा—भगवन्, तीनों लोकों के हित के लिए आपको अपना शरीर छोड़ देना चाहिए। तब महायोगी दधीचि को कुछ खेद नहीं हुआ। उन्होंने समाधि लगाकर
४० शरीर त्याग दिया। धाता ने दधीचि की हड्डियों से वज्र बनाया और विष्णु उस वज्र में प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण की हड्डियों से बने हुए दुर्भेद्य वज्रास्त्र से इन्द्र ने विश्वरूप का सिर काट डाला। विश्वरूप का सिर कटने पर उनके शरीर से वृत्रासुर उत्पन्न हुआ। देवराज ने उसे भी वज्र से मार डाला।

इस प्रकार दुहरी ब्रह्महत्याएँ कर डालने पर इन्द्र डर के मारे स्वर्ग का राज्य छोड़कर अणिमा आदि सिद्धियों के प्रभाव से सूक्ष्म शरीर धारण करके, मानस सरोवर में, कमलिनी के मृणालसूत्र में जा छिपे। ब्रह्महत्या के डर से उनके भाग जाने पर संसार का कोई ईश्वर न रह गया। देवताओं में रजोगुण और तमोगुण उत्पन्न हो गया। महर्षियों में मन्त्र का प्रभाव न रहा। चारों ओर राक्षसों की वृद्धि होने लगी। वेदों का प्रचार उठ गया। तीनों लोक बल-वीर्यहीन होकर आसानी से जीत लेने योग्य हो गये।

संसार में इस प्रकार के उपद्रव होने लगने पर महर्षियों और देवताओं ने आयु के पुत्र नहुष को इन्द्रासन पर बैठा दिया। नहुष के मस्तक पर, सब प्राणियों का तेज हर लेनेवाली, प्रज्वलित पाँच सौ ज्योतियाँ थीं। उनके प्रभाव से वे स्वर्ग का राज्य करने लगे। अब सब लोकों में शान्ति हो गई। कुछ दिनों बाद नहुष ने सोचा कि इन्द्र की और सब वस्तुओं पर तो मेरा अधिकार है; किन्तु शची मुझे नहीं प्राप्त हुई, अतएव अब उसके पास चलना चाहिए। बस, उन्होंने इन्द्राणी के पास जाकर कहा—सुन्दरि, इन्द्र का पद मुझे प्राप्त हुआ है। इन्द्र का राज्य और रत्न आदि सब वस्तुएँ मेरे अधिकार में हैं, इसलिए अब तुम भी मुझ पर कृपा करो।

इन्द्राणी ने कहा—राजन्! आप धर्मात्मा हैं, चन्द्रमा के वंश में आपका जन्म हुआ है। पर-स्त्री को छूना आपको उचित नहीं। नहुष ने कहा—सुन्दरि, मैं इन्द्र की सब वस्तुओं का मालिक हूँ और तुम भी उन्हीं के भोग की वस्तु हो इसलिए तुमको अपने अधिकार में कर लेने से मुझे रत्ती भर भी अधर्म नहीं होगा। नहुष को अत्यन्त आतुर देखकर इन्द्राणी ने दुःखित होकर कहा—महात्मन्, मैं आज-कल एक व्रत कर रही हूँ। अभी वह समाप्त नहीं हुआ। उसके समाप्त होने में कई दिन की देरी है। उसके समाप्त होने पर मैं आपके पास आऊँगी। यह सुनकर नहुष शची के यहाँ से चले गये।

नहुष के डर से व्याकुल पतिव्रता इन्द्राणी, अपने स्वामी के मिलने का उपाय पूछने के लिए, बृहस्पति के पास गईं। उनको घबराई हुई देखकर और ध्यान के बल से उनका अभिप्राय समझकर बृहस्पति ने कहा—कल्याणी, तुम नियमपूर्वक 'उपश्रुति' देवी का आवाहन करो। उन्हीं की कृपा से तुमको इन्द्र के दर्शन होंगे। अब ज्योंही शची ने नियमपूर्वक मन्त्र पढ़कर उपश्रुति का आवाहन किया त्योंही उपश्रुति पास आकर बोलीं—इन्द्राणी, तुम्हारे बुलाने से मैं आई हूँ। बतलाओ, क्या चाहती हो।

शची ने प्रणाम करके कहा कि देवि, वह उपाय बतलाइए जिससे मैं अपने पति के दर्शन पा सकूँ। यह सुनते ही देवी उपश्रुति ने शची को मानस सरोवर में ले जाकर, मृणाल-तन्तु में प्रविष्ट, इन्द्र को दिखा दिया। अपनी पत्नी शची को दुर्बल और दुखी देखकर इन्द्र मन में कहने लगे कि हाय, बड़े दुःख की बात है, मैं पहले तीनों लोकों का स्वामी था और आज इस मृणाल-तन्तु में छिपा बैठा हूँ। शची मुझे ढूँढ़ती हुई यहाँ आ पहुँची। इस प्रकार सोच-विचारकर मृणाल-तन्तु से बाहर निकलकर देवराज ने कहा—देवि, क्या हाल है? शची ने कहा—नाथ! राजा नहुष मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं, मैंने उनसे कुछ दिन की मुहलत माँगी है। यह अप्रिय बात सुनकर देवराज ने कहा—प्रिये, तुम नहुष के पास जाकर कहो कि महाराज, इन्द्र के अनेक प्रकार के वाहन हैं और मैंने अनेक बार उन पर सवारी की है। अब आप ऋषियों से युक्त वाहन पर सवार होकर मेरे घर आइए। यह सलाह सुनकर शची प्रसन्नता से नहुष के पास चलीं और इन्द्र फिर उसी मृणाल-तन्तु में जा बैठे।

शची को देखकर नहुष ने कहा—सुन्दरि! तुमने जितनी मुहलत माँगी थी, क्या वह पूरी हो गई? शची ने कहा—महाराज, अब मैं आपकी पत्नी हूँगी; किन्तु मेरी एक अभिलाषा है, उसे आप पूरी करें। मैंने इन्द्र के साथ अनेक प्रकार के वाहनों पर सवारी की है, आज आप ऋषियों से अपनी पालकी उठवाकर उस पर सवार होकर मेरे घर आइए।

यों कहकर शची चली गईं। महाराज नहुष ऋषियों को पालकी में लगाकर उस पर सवार हो शची के घर को चले। चलते-चलते नहुष महर्षियों की चाल की निन्दा करने लगे और ५०
तेज़ चलने को कहते हुए उन्होंने महर्षि अगस्त्य के सिर पर लात से ठोकर मारी। तब कुपित होकर अगस्त्य ने कहा—रे नीच, तूने ऐसा अकार्य किया! अच्छा, ले, मैं तुझे शाप देता हूँ कि जब तक यह पृथिवी रहे तब तक के लिए तू साँप हो जा। बस, नहुष उसी दम पृथिवी पर गिर पड़े।

नहुष के गिर पड़ने पर इन्द्रासन फिर ख़ाली हो गया। तब देवताओं और ऋषियों ने इन्द्र के लिए विष्णु की शरण में जाकर कहा—भगवन्, इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी है। आप उनको इस पाप से मुक्त कीजिए। वरदानी विष्णु ने कहा—देवताओ, इन्द्र विष्णु के उद्देश्य से अश्वमेध यज्ञ करें। तब वे फिर अपना पद प्राप्त करेंगे। यह सुनकर देवता और महर्षि इन्द्र को ढूँढ़ने लगे; किन्तु उनका कहीं पता न लगा। तब उन लोगों ने शची से कहा कि तुम शीघ्र देवराज को लाओ। शची ने मानस सरोवर में जाकर इन्द्र से सब हाल कहा। शची की बात सुनकर इन्द्र मानस सरोवर से निकलकर बृहस्पति के पास आये। बृहस्पति ने इन्द्र के लिए एक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में काले रङ्ग का पवित्र घोड़ा उत्पन्न करके उस पर इन्द्र को सवार कराकर उनके स्थान को ले गये। तब इन्द्र ब्रह्महत्या से मुक्त हुए। देवताओं और महर्षियों ने उनकी स्तुति की और वे स्वतन्त्रता से देवलोक में रहने लगे। उनकी

ब्रह्महत्या का पाप चार भागों में विभक्त होकर स्त्री, अग्नि, वृक्ष और गाय में चला गया। इस प्रकार इन्द्र, ब्राह्मण के तेज से, शत्रु का वध करके फिर स्वर्ग का राज्य करने लगे।

एक बार महर्षि भरद्वाज आकाशगङ्गा में आचमन कर रहे थे। उसी समय भगवान् विष्णु, त्रिविक्रममूर्ति धारण किये, वहाँ आये। उनको देखकर महर्षि ने हाथ में जल लेकर उनकी छाती में मार दिया। जल का छींटा लगने से उनकी छाती में एक चिह्न बन गया। वह चिह्न अभी तक विष्णु की छाती में बना है। महर्षि भृगु के शाप से अग्निदेव सर्वभक्षी हो गये।

देवमाता अदिति ने देवताओं के लिए भोजन बनाया था कि देवता इसे खाकर दानवों का नाश करेंगे। उसी समय बुध, व्रत समाप्त करके, उनके पास भीख माँगने आये। अदिति ने सोचा कि देवताओं के भोजन किये बिना यह अन्न किसी को न खाना चाहिए, इसलिए बुध को भिक्षा नहीं दी। तब कुपित होकर बुध ने अदिति को शाप दे दिया कि तुम्हारे पेट में पीड़ा होगी।

प्रजापति दक्ष के साठ कन्याएँ थीं। उन्होंने उनमें से तेरह कश्यप को, दस धर्म को, दस मनु को और सत्ताईस चन्द्रमा को दी थीं। चन्द्रमा की सब स्त्रियाँ एक समान रूप-लावण्यवती थीं; किन्तु चन्द्रमा रोहिणी को अधिक प्यार करते थे। तब उनकी अन्य स्त्रियों ने ईर्ष्या के मारे अपने पिता के पास जाकर कहा—पिताजी, हम सब बहनें एक सी सुन्दरी हैं; किन्तु चन्द्रमा रोहिणी पर अधिक प्रेम करते हैं। कन्याओं के इस प्रकार दुःख प्रकट करने पर प्रजापति दक्ष ने कुपित होकर कहा—चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग हो जावे। दक्ष के शाप से जब चन्द्रमा को यक्ष्मा हो गया तब वे प्रजापति दक्ष के पास गये। दक्ष ने उनसे कहा—बेटा! तुमने मेरी कन्याओं पर एक समान प्रेम नहीं किया, इसलिए मैंने तुम्हें शाप दे दिया है। फिर चन्द्रमा को क्षीण होते देखकर ऋषियों ने उनसे कहा—तुम यक्ष्मा रोग के कारण क्षीण होते जा रहे हो अतएव पश्चिम समुद्र के पास हिरण्यसरोवर नाम के तीर्थ में स्नान करो। उसमें स्नान करने से तुम नीरोग हो जाओगे। ऋषियों के कहने से उन्होंने हिरण्यसरोवर में स्नान किया, इससे वे नीरोग हो गये। इस तीर्थ के जल में प्रवेश करते ही चन्द्रमा का शरीर प्रकाशमान हो गया था, तभी से उस तीर्थ का नाम प्रभास पड़ा। दक्ष के शाप से आज भी चन्द्रमा की, पौर्णमासी के बाद, प्रतिदिन एक-एक कला क्षीण होती रहती है। इस तरह अमावास्या को उनका प्रकाश बिलकुल नष्ट हो जाता है। उसी शाप से आज भी उनके शरीर में बादल की रेखा के समान, ख़रगोश के आकार की, कालिमा (शशलाञ्छन) देख पड़ती है।

प्राचीन समय में स्थूलशिरा नाम के महर्षि सुमेरु पर्वत के उत्तर-पूर्व ओर तपस्या कर रहे थे। उसी समय पवित्र वायु चलकर उनके शरीर को स्पर्श करने लगा। वे तपस्या के क्लेश से पीड़ित तो थे ही, ठण्डी हवा लगने से प्रसन्न हुए। उनको प्रसन्न देखकर वृक्षों को, वायु के प्रति, बड़ी ईर्ष्या हुई। तब वृक्षों ने महर्षि को फूलों की शोभा दिखानी आरम्भ की।

महर्षि ने वृक्षों के इस दुर्विचार को समझकर उन्हें शाप दे दिया कि अब तुम प्रत्येक समय फूलों की शोभा नहीं दिखा सकोगे।

भगवान् विष्णु, तीनों लोकों का हित करने के लिए, वडवामुख नाम के महर्षि होकर सुमेरु पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। एक दिन उन्होंने समुद्र को बुलाया; किन्तु समुद्र उनके पास नहीं गया। तब उन्होंने कुपित होकर समुद्र का जल स्थिर कर दिया और अपने शरीर के ताप से उसे पसीने के समान खारा करके कहा—आज से तुम्हारा जल पीने के लायक़ न ६० रहेगा। जिस समय वडवामुख अग्नि तुम्हारा जल पियेगा उसी समय तुम्हारा जल मीठा होगा। इस कारण आज भी केवल बडवामुख अग्नि ही समुद्र का पानी पीता है।

प्राचीन समय में रुद्रदेव ने हिमालय से कहा कि अपनी कन्या पार्वती का मेरे साथ विवाह कर दो। हिमालय ने उनकी बात मान ली। इसके बाद महर्षि भृगु उनके पास आकर कहने लगे—पर्वतराज, तुम अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह कर दो। हिमालय ने कहा कि महर्षि, मैंने तो रुद्रदेव को कन्या देने का निश्चय कर लिया है। यह सुनकर महर्षि भृगु ने कुपित होकर कहा—तुमने मेरा कहना नहीं माना इसलिए मेरे शाप से तुम आज से रत्न के भाजन नहीं रहोगे। उनके शाप से हिमाचल रत्नहीन हो गया। हे अर्जुन, ब्राह्मणों का माहात्म्य ऐसा अद्भुत और अकथनीय है। ब्राह्मणों की कृपा से ही क्षत्रिय राज्य करते हैं। इस प्रकार ब्रह्म-स्वरूप अग्नि और चन्द्रमा के द्वारा संसार की रक्षा होती है।

अग्नि-स्वरूप सूर्य और चन्द्रमा संसार को प्रसन्न करते हैं। वे मेरे नेत्र हैं; उनकी किरणों को मेरे केश समझो। इसी से मेरा नाम हृषीकेश है। मन्त्र द्वारा आवाहन किये जाने पर मैं यज्ञ का भाग हरण करता हूँ और हरे रङ्ग की मणि के समान मेरा वर्ण है, इसलिए मेरा नाम हरि है। मैं सब लोकों का धाम-स्वरूप हूँ और मुझी से ऋत अर्थात् सत्य का विचार निकला है, इसी से ब्राह्मणों ने मेरा नाम ऋतधामा रक्खा है। रसातल को चली गई गो (पृथिवी) का मैंने उद्धार किया है, इसी से देवता गोविन्द नाम से मेरी स्तुति करते हैं। मैं शिपि अर्थात् ७० तेज का प्रकाश करके सब पदार्थों में प्रवेश करता हूँ, इसी से मेरा नाम शिपिविष्ट है। महर्षि यास्क ने यज्ञ में मेरे इस गूढ़ नाम से मेरी स्तुति की थी और मेरी कृपा से उन्होंने पातालगत निरुक्त शास्त्र का उद्धार किया था। मैं प्राणियों के शरीर में आत्मा रूप से निवास करता हूँ। न तो कभी मैंने जन्म लिया है और न लूँगा, इसी से पण्डितों ने मेरा नाम अज रक्खा है। मैंने कभी क्षुद्र, अश्लील और झूठे शब्दों का उच्चारण नहीं किया और सत्, असत् सब मुझमें निविष्ट है, इसी से ब्रह्मलोकवासी महर्षियों ने मेरा नाम सत्य रक्खा है। मैंने कभी सत्त्वगुण का त्याग नहीं किया। मुझी से सत्त्वगुण उत्पन्न हुआ है। मैं निष्पाप रहकर सदा सत्त्वगुण की सहायता से निष्काम कर्म करता हूँ और ज्ञानवान् पुरुष ज्ञान द्वारा मुझे सत्त्वगुणमय देखते हैं, इसी से मैं सात्वत

नाम से विख्यात हूँ। मैं फालरूप होकर पृथिवी को जोतता हूँ और मेरा रङ्ग भी काला है, इसी से मेरा नाम कृष्ण है। मैं कुण्ठित न होकर जल के साथ पृथ्वी को, वायु के साथ आकाश को और तेज के साथ वायु को मिलाता हूँ, इसी से पण्डितों ने मेरा नाम वैकुण्ठ रक्खा है। मैं कभी निर्वाण (ब्रह्म) से च्युत नहीं होता, इसी से मेरा नाम अच्युत है। अधः शब्द का अर्थ पृथ्वी, अक्ष शब्द का अर्थ आकाश और ज शब्द का अर्थ धारणकर्ता है। मैं अपने तेज के प्रभाव से पृथिवी और आकाश को धारण करता हूँ, इससे मेरा नाम अधोक्षज है। वेद के विद्वान्, शब्दार्थ के ज्ञाता पण्डित लोग यज्ञशाला में बैठकर अधोक्षज नाम से मेरी स्तुति करते हैं। महर्षियों ने एकाग्र चित्त से कहा है कि नारायण के सिवा और किसी को अधोक्षज नहीं कहा जा सकता। मनुष्यों के जीवन का कारण-स्वरूप घृत मेरा तेज है इसी से पण्डितों ने मेरा नाम घृतार्चि रक्खा है। वात, पित्त और कफ, इन तीन धातुओं से प्राणियों का जीवन है। इन तीनों के नष्ट हो जाने पर प्राणियों का शरीर नष्ट हो जाता है। मैं इन्हीं धातुओं के रूप से प्राणियों के शरीर में रहता हूँ, इसी से आयुर्वेद के ज्ञाताओं ने मेरा नाम त्रिधातु रक्खा है। संसार में धर्म का नाम वृष प्रसिद्ध है, इसी कारण निघण्टु नामक वैदिक कोष में मेरा नाम वृष है। पण्डितों ने कपि शब्द को श्रेष्ठ वराह और वृष शब्द को धर्म कहा है, इसी से कश्यप प्रजापति ने मेरा नाम वृषाकपि रक्खा है। देव-दानव कोई भी मेरा आदि, मध्य और अन्त नहीं जान सकता, इसी से विद्वान् लोग मुझे अनादि, अमध्य और अनन्त कहते हैं। मैं पाप का स्पर्श न करके पवित्र वाक्य सुनता रहता हूँ, इसी से मेरा नाम शुचिश्रवा है। मैंने एक दाँत और तीन ककुद् वाले वराह का रूप धारण करके पृथिवी का उद्धार किया था, इसी से मेरा नाम एकशृङ्ग और त्रिककुद् है।

सांख्यशास्त्र के विद्वानों ने जिसे विरिञ्च कहा है वह सब प्राणियों को चैतन्य करनेवाला प्रजापति मैं ही हूँ। इन विद्वानों ने मुझे सूर्यमण्डल में स्थित ज्ञानवान् कपिल कहा है। जिसकी स्तुति वेद में की गई है और जिसकी पूजा भक्ति-योग द्वारा की जाती है, वह हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ। मैं इक्कीस हज़ार शाखाओं से युक्त ऋग्वेद, एक हज़ार शाखाओं से युक्त सामवेद, एक सौ एक शाखाओं से युक्त यजुर्वेद तथा मारण-उच्चाटन आदि आभिचारिक कार्यों से परिपूर्ण पञ्च-कल्पान्तक अथर्ववेद-स्वरूप हूँ। वेदों में जो शाखा का भेद है, उन शाखाओं में जितने गीत हैं और उन गीतों में स्वर और वर्ण उच्चारण करने की जितनी रीतियाँ हैं, वे सब मेरी बनाई हुई हैं। मैं वरदाता हयशिरा हूँ। मैं वेद के पद-विभाग और अक्षर-विभाग को विशेष रूप से जानता हूँ। महात्मा पाञ्चाल को मेरी कृपा से, वामदेव द्वारा, वेद के पद-विभाग की शिक्षा मिली है। वाभ्रव्य गोत्र में उत्पन्न महर्षि गालव ने मेरी आदिमूर्ति विष्णु से वर पाकर और श्रेष्ठ योग का अभ्यास करके सबसे पहले वेद का पद-विभाग और उसकी शिक्षा-प्रणाली स्थापित की है। महाराज ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्री कण्डरीक सात जन्म तक मृत्यु का दुःख भोगते रहे, फिर मेरी कृपा से

उनको योग की सिद्धि हुई। हम धर्म के पुत्र होकर नर और नारायण के नाम से, गन्धमादन पर्वत पर, धर्म के अनुसार तपस्या कर रहे थे। उसी समय प्रजापति दक्ष ने एक यज्ञ किया और उस यज्ञ में रुद्र का भाग नहीं लगाया। यह देखकर रुद्र को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने, दधीचि के कहने से, दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिए प्रज्वलित शूल फेंका। यह शूल दक्ष का यज्ञ विध्वंस करके बदरिकाश्रम में आकर नारायण की छाती पर बड़े ज़ोर से गिरा। उस शूल के १०
तेज से नारायण के केश मूँज (मुञ्ज) के समान हो गये। इसी से मेरा नाम मुञ्जकेश है। उसके बाद महात्मा नारायण के हुङ्कार से वह शूल रुद्र के पास चला गया। तब वे कुपित होकर नर-नारायण की ओर झपटे। विश्वात्मा नारायण ने रुद्र को बड़े वेग से आते देखकर हाथ से उनका गला पकड़ लिया। तभी से रुद्र का कण्ठ नीला हो गया। जब नारायण ने रुद्र का गला पकड़ा तब नर ने रुद्र को मार डालने की इच्छा से एक सींक लेकर उसे अभिमन्त्रित किया। अब वह सींक परशु के आकार की हो गई। नर ने वह परशु रुद्र पर फेंका और रुद्र ने उस परशु के खण्ड-खण्ड कर डाले। इसी से मेरा नाम खण्डपरशु है।

अर्जुन ने पूछा—वासुदेव, रुद्र और नर-नारायण के त्रैलोक्य-नाशक युद्ध में किसकी जीत हुई?

वासुदेव ने कहा—अर्जुन, जब रुद्र और नर-नारायण का युद्ध होने लगा तब तीनों लोक डर गये। उस समय अग्नि यज्ञ का हवि नहीं ग्रहण करते थे, महर्षिगण वेदों को भूल गये थे, देवताओं में रजोगुण और तमोगुण उत्पन्न हो गया, पृथिवी काँपने लगी, आकाश के सब पदार्थ पृथिवी पर गिरने लगे और सूर्य चन्द्रमा आदि सब ग्रह तथा नक्षत्र तेजहीन हो गये। ब्रह्मा का आसन डोल गया। समुद्र का पानी सूख गया और हिमालय पर्वत फट गया। ११
इस प्रकार के उत्पात होने पर पितामह ब्रह्मा, देवताओं और ऋषियों के साथ, युद्धभूमि में आये और हाथ जोड़कर रुद्र से कहने लगे—हे विश्वनाथ! आप अस्त्र-शस्त्र रख दीजिए, जिसमें तीनों लोकों का कल्याण हो। ये नर-नारायण उन अक्षर, अव्यक्त, कूटस्थ, कर्ता, अकर्ता, निर्द्वन्द्व

और लोक-स्रष्टा परमात्मा की मूर्ति हैं। ये धर्म के पुत्र होकर घोर तपस्या कर रहे हैं। मैं कारण-वश उन्हीं परमात्मा की प्रसन्नता से उत्पन्न हुआ हूँ और आप भी उन्हीं के क्रोध से उत्पन्न हुए हैं अतएव आप इन वरदानी नारायण को प्रसन्न कीजिए। देवता, महर्षि और मैं सभी इन्हें प्रसन्न करें। इससे शीघ्र तीनों लोकों में शान्ति होगी।

यह सुनकर रुद्रदेव क्रोध को छोड़कर आदिदेव सर्वश्रेष्ठ नारायण का प्रसन्न करने के
३० लिए उनकी शरण में गये। ब्रह्मा आदि देवता और महर्षिगण उनकी पूजा करने लगे। तब जितक्रोध नारायण ने प्रसन्न होकर कहा—हे रुद्र, जो तुमको जानता है वह मुझे जानता है और जो तुम्हारा भक्त है वही मेरा भक्त है। सारांश यह कि हम दोनों में किसी तरह का भेद नहीं है। इस विषय में तुम और कुछ न समझो। तुम्हारा शूल लगने से मेरी छाती में जो चिह्न हो गया है वह श्रीवत्स नाम से प्रसिद्ध होगा और मेरे पकड़ने से तुम्हारे गले में भी एक चिह्न पड़ गया है, इस कारण आज से तुम्हारा नाम श्रीकण्ठ होगा।

इस प्रकार रुद्र और नारायण की मित्रता हो जाने पर देवता और महर्षिगण नर-नारायण से बिदा होकर प्रसन्नता से अपने-अपने स्थान को गये। देवताओं के चले जाने पर तपस्वियों में श्रेष्ठ नर-नारायण फिर एकाग्रचित्त होकर घोर तपस्या करने लगे।

हे अर्जुन, यह मैंने रुद्र और नारायण के संग्राम में नारायण की विजय का वृत्तान्त और महर्षियों द्वारा अपने नामों का अर्थ बतला दिया। मैं इसी प्रकार अनेक रूप धारण करके पृथिवी, ब्रह्मलोक और गोलोक में विचरता हूँ। तुम मेरे ही बाहुबल से सुरक्षित रहकर संग्राम में विजयी हुए हो। युद्ध के समय जो तुम्हारे आगे-आगे दौड़ते थे वे देवदेव रुद्र हैं। मैं तुमको बतला चुका हूँ कि रुद्रदेव मेरे क्रोध से उत्पन्न कालरूप हैं। तुमने युद्ध में जिन शत्रुओं को मारा है उन सबको रुद्रदेव पहले ही मार चुके थे। तुम तो निमित्त-मात्र हो। जो मेरे क्रोध से उत्पन्न हुए हैं और जिनका प्रभाव मैंने तुमको सुनाया है, उन
१४१ देवदेव उमापति को नमस्कार करो।

तीन सौ चवालीस अध्याय

श्वेतद्वीप से लौटकर नारदजी का बदरिकाश्रम में आना और
वहाँ नर-नारायण से बातचीत करना

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र, तुम्हारे मुँह से यह उपाख्यान सुनकर महर्षिगण बड़े विस्मित हुए हैं। नारायण की कथा सुनने से जो फल मिलता है वह सब आश्रमों में निवास करने और सब तीर्थों में स्नान करने से नहीं मिल सकता। पापों का नाश करनेवाली परम पवित्र नारा-

यण की यह कथा सुनकर हम लोग पवित्र हो गये। ब्रह्मा आदि देवता और महर्षिगण के लिए, सब लोकों के नमस्कृत नारायण अगोचर हैं। उनकी कृपा से उनके दर्शन केवल देवर्षि नारद को मिल गये; किन्तु जब देवर्षि नारद को अनिरुद्ध के शरीर में स्थित नारायण के दर्शन हो गये थे तब फिर वे नर-नारायण के दर्शन करने को क्यों दौड़े गये ?

सूतपुत्र ने कहा कि महर्षि ! सर्पयज्ञ समाप्त हो जाने के बाद, और-और कामों का आरम्भ होने पर, महाराज जनमेजय ने व्यासदेव के समान महर्षि वैशम्पायन से कहा—भगवन्, देवर्षि नारद भगवान् विष्णु की बातों पर विचार करते हुए श्वेतद्वीप से लौटकर बदरिकाश्रम में नर-नारायण के साथ कितने दिनों तक रहे और उनसे क्या-क्या पूछा ? जैसे दही से मक्खन और मलय से चन्दन निकलता है, जैसे वेदों से आरण्यक और ओषधियों से अमृत उत्पन्न हुआ है वैसे ही आपने अनेक उपाख्यानों से परिपूर्ण महाभारत में से यह अमृत-स्वरूप नारायण की कथा निकालकर मुझे सुनाई है। नारायण सब प्राणियों के आत्म-स्वरूप हैं। मैं उनके अतुल तेज का वर्णन सुनकर चकित हो गया हूँ। जब कल्प के अन्त में ब्रह्मा आदि देवता, महर्षि, गन्धर्व और सब प्राणी नारायण में लीन हो जाते हैं तब उनका तेज अवश्य सबसे बढ़कर है। इस लोक और परलोक में उनके समान पवित्र और कोई नहीं है। मेरे प्रपितामह महात्मा अर्जुन का युद्ध में विजयी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। त्रिलोकीनाथ वासुदेव जिनके प्रिय सखा थे उनको तीनों लोकों में कुछ भी अप्राप्य नहीं था। तपोबल के बिना जिनके दर्शन नहीं हो सकते वही लोकपूज्य श्रीवत्स-लाञ्छन नारायण जब मेरे पूर्वजों का हित करते थे और उनकी आँखों के सामने मौजूद थे तब वे लोग निस्सन्देह धन्य हैं। महातेजस्वी देवर्षि नारद उन लोगों से भी बढ़कर धन्य हैं; क्योंकि उन्होंने नारायण की कृपा से श्वेतद्वीप में उनकी आदिमूर्ति के दर्शन किये थे। जो हो, देवर्षि नारद अनिरुद्ध की देह में स्थित नारायण के दर्शन करके फिर नर-नारायण के दर्शन करने को बदरिकाश्रम में क्यों गये, बदरिकाश्रम में जाकर उनके साथ क्या बातचीत की और वहाँ कितने दिन ठहरे ? यह सब विस्तार के साथ बतलाइए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महातेजस्वी वेदव्यासजी को नमस्कार करके उनकी कृपा से मैं आपके प्रश्न का उत्तर देता हूँ। देवर्षि नारद श्वेतद्वीप में अनादि अनन्त नारायण के दर्शन करके उनकी बातों पर विचार करते हुए सुमेरु पर्वत की ओर चले। वहाँ पहुँचकर 'मैं इतनी दूर जाकर कार्य सिद्ध करके निर्विघ्न लौट आया' यह सोचकर वे बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने वहाँ से आकाश-मार्ग द्वारा गन्धमादन को प्रस्थान किया और शीघ्र बदरिकाश्रम में पहुँचकर देखा कि महातपस्वी व्रतधारी आत्मनिष्ठ दो प्राचीन ऋषि वहाँ बैठे हैं। उनका तेज सब लोकों के प्रकाशक सूर्य से भी बढ़कर है। उनकी छाती में श्रीवत्स-चिह्न, उनके सिर पर जटाएँ, तलवों में चक्र-चिह्न, हाथों में हंस का चिह्न, भुजाएँ घुटनों तक लम्बी और छाती चौड़ी है। नर-नारायण

के चार-चार कोश और साठ दाँत तथा आठ दाढ़ें हैं। उनका स्वर मेघ की ध्वनि के समान गम्भीर, मुख अत्यन्त मनोहर, माथा चौड़ा, सिर छाते के समान विस्तीर्ण और भौंहें, ठुड्डी तथा नाक सुन्दर है। दोनों महापुरुषों को देखकर देवर्षि नारद ने प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया। उन्होंने भी नारदजी को प्रणाम करके, स्वागत करके, उनकी कुशल पूछी। देवर्षि नारद उन महापुरुषों को देखकर मन में कहने लगे कि श्वेतद्वीप में मैंने नारायण के जिस रूप के दर्शन
४० किये हैं वैसा ही रूप इन महापुरुषों का है। यह सोचते हुए उनकी प्रदक्षिणा करके वे कुशासन पर बैठ गये। इसके बाद तपस्या यश और तेज के आधार, शम-दम आदि गुणों से युक्त नर-नारायण प्रातःकाल की क्रिया समाप्त करके पाद्य और अर्घ्य द्वारा देवर्षि नारद की पूजा करके कुशासन पर बैठे। तीनों महात्माओं के बैठने से आश्रम की वैसी शोभा हुई जैसी कि आहुति देने पर अग्नि की प्रदीप्त शिखा द्वारा यज्ञभूमि की होती है।

अब नर-नारायण ने नारदजी से पूछा—देवर्षि, तुम श्वेतद्वीप में हम लोगों की आदि-मूर्ति सनातन परमात्मा का साक्षात्कार करके सन्तुष्ट हुए या नहीं?

नारदजी ने कहा—श्वेतद्वीप में मुझे विश्वरूपी सनातन महापुरुष के दर्शन हो गये। देवताओं और ऋषियों समेत सब लोक उनके शरीर में स्थित हैं। इस समय आप दोनों महा-पुरुषों के दर्शन करके जान पड़ता है कि यहाँ भी मुझे उन्हीं परमात्मा के दर्शन हो रहे हैं। मैंने श्वेतद्वीप में अव्यक्तरूप नारायण के जो लक्षण देखे हैं वे सब लक्षण यहाँ व्यक्तरूप आपमें भी दीख रहे हैं। मैंने वहाँ नारायण के दोनों और आप दोनों महापुरुषों को देखा है और आज
५० यहाँ भी आपका वही रूप देख रहा हूँ। आपके सिवा और कोई त्रिलोक में उनके समान श्रीमान्, तेजस्वी और यशस्वी नहीं है। उन्होंने तत्त्वज्ञानयुक्त सम्पूर्ण धर्म और स्वयं जिस-जिस रूप से पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं वह सब मुझको बतलाया है। श्वेतद्वीप में बाह्येन्द्रिय-शून्य श्वेत वर्ण के जो पुरुष रहते हैं वे सब तत्त्वज्ञ, नारायण-भक्त और सदा नारायण की पूजा तथा उनके साथ क्रीड़ा करते हैं। भगवान् नारायण भक्तवत्सल, ब्राह्मणप्रिय, विश्वसंहारक, सर्वव्यापी, कर्ता, कारण और कार्य हैं। उनके समान बल और तेज किसी में नहीं है। वे तपस्या-पूर्वक तेज के प्रभाव से अपने को श्वेतद्वीप से बढ़कर प्रकाशमान कर रहे हैं; उन्होंने त्रिलोक में शान्ति स्थापित की है। जिस स्थान पर उन्होंने तपस्या की है वहाँ न तो सूर्य और चन्द्रमा का उदय होता है और न वायु का ही प्रवेश हो सकता है। उन्होंने पृथिवी पर आठ अङ्गुल की वेदी बनाकर ऊर्द्ध्वबाहु होकर, एक पैर पर स्थित हो, वेद का अध्ययन करते हुए उत्तरमुख हो घोर
६० तपस्या की है। ब्रह्मा, रुद्र और अन्यान्य देवता, ऋषि, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, सिद्ध और राजर्षिगण आदि महात्मा जो हव्य-कव्य देते हैं वह सब उन्हीं परम पुरुष के चरणों में पहुँचता है। भक्त लोग और जो कुछ उनके अर्पण करते हैं उसको वे ग्रहण कर लेते हैं।

तत्त्वज्ञानी और भक्त से बढ़कर प्रिय उनको तीनों लोकों में और कोई नहीं है। यह विचार कर मैं भी उन्हीं की भक्ति करता हूँ। उन्होंने स्वयं मुझसे कहा है कि जो मेरा भक्त है वही मुझे सबसे अधिक प्रिय है। मैं इस प्रकार श्वेतद्वीप में नारायण के दर्शन करके उनके उपदेश से यहाँ आया हूँ। अब आप लोगों के साथ यहीं रहूँगा। ६७

तीन सौ पैंतालीस अध्याय

नर-नारायण का नारदजी से भगवान् की महिमा का वर्णन करना और बदरिकाश्रम में बहुत दिनों तक नारदजी का तप करना

नर-नारायण ने कहा—देवर्षि, तुमने श्वेतद्वीप में परमात्मा के दर्शन किये हैं अतएव तुम धन्य हो और तुम पर परमात्मा की बड़ी कृपा है। उनके दर्शन किसी को नहीं हुए, यहाँ तक कि प्रजापति ब्रह्मा भी उनका साक्षात्कार नहीं कर सके। उन अव्यक्तरूप नारायण के दर्शन बहुत दुर्लभ हैं। भक्त से बढ़कर उनका प्रिय कोई नहीं है। तुम उनके परमभक्त हो, इसी से उन्होंने तुमको दर्शन दिये हैं। परमात्मा जिस स्थान पर तप करते थे वहाँ हम दोनों के सिवा और कोई नहीं जा सकता और जिस स्थान पर वे विराजमान थे वह स्थान हज़ारों सूर्यों के समान प्रकाशमान था। उन्हीं विश्वपति से क्षमा गुण उत्पन्न हुआ है। यह पृथिवी उस क्षमा गुण से युक्त है। उन्हीं सर्वलोकहितैषी परमात्मा से रस उत्पन्न होकर जल का आश्रय करता है। रूपात्मक तेज उन्हीं से उत्पन्न हुआ है। सूर्यदेव उस तेज को प्राप्त करके प्रकाश फैलाते हैं। वायु उन्हीं पुरुषोत्तम से उत्पन्न होकर, स्पर्श गुण प्राप्त करके, चलता रहता है। शब्द उन्हीं से उत्पन्न होकर आकाश का आश्रय करता है और आकाश व्यापक है। मन भी परमात्मा १०
से ही उत्पन्न होकर, चन्द्रमा का आश्रय करके, उसको प्रकाशमय बनाता है। हव्यकव्य-भोजी भगवान् नारायण विद्या के साथ जिस स्थान में निवास करते हैं उस स्थान का नाम सद्भूतोत्पादक है। जो पुण्य और पाप से हीन है उसी श्रेयस्कर मार्ग का तुम अवलम्बन करो। अन्धकार का नाश करनेवाले सूर्य सब लोकों के द्वार-स्वरूप हैं। मुमुक्षु पुरुष सबसे पहले सूर्य-मण्डल में प्रवेश करता है। वहाँ शरीर को भस्म करके, परमाणु-रूप होकर, सूर्यमण्डल के मध्यवर्त्ती नारायण में जाता है। नारायण से निकलकर अनिरुद्ध में, उसके बाद मन-स्वरूप होकर प्रद्युम्न में, प्रद्युम्न से निकलकर जीवसंज्ञक सङ्कर्षण में और अन्त को सङ्कर्षण से निकलकर, त्रिगुणहीन होकर, निर्गुणात्मक सबके आधार क्षेत्रज्ञ वासुदेव मे लीन हो जाता है।

हे तपोधन! तीनों लोकों में उन देवदेव नारायण के जितने अवतार होंगे उन सबके कल्याण
के लिए हम लोग, धर्म के घर उत्पन्न होकर, इस रमणीय बदरिकाश्रम में तप कर रहे हैं। २१
हम लोगों ने, विधि के अनुसार, अनेक कष्टसाध्य व्रत किये हैं। हमने तुमको श्वेतद्वीप में देखा

है और नारायण के दर्शन करके तुमने जो सङ्कल्प किया है वह भी हम लोग जानते हैं। संसार में शुभ-अशुभ जो कुछ उत्पन्न हुआ है और होता है, वह सब वे तुम्हें बतला चुके हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि यह सुनकर देवर्षि नारद ने उनकी आज्ञा पाकर उसी स्थान पर, श्रद्धा और भक्ति के साथ अनेक मन्त्रों का जप और नारायण की पूजा करते हुए, देवताओं
२७ के एक हज़ार वर्ष तक निवास किया।

तीन सौ छियालीस अध्याय

नर-नारायण का नारदजी से पितृकर्म का वर्णन करना

वैशम्पायन कहते हैं कि एक बार देवर्षि नारद को देवकार्य समाप्त करके पितृकार्य करते देखकर धर्म के ज्येष्ठ पुत्र भगवान् नारायण ने कहा—महर्षि, तुम देवकार्य और पितृकार्य द्वारा क्या फल चाहते हो और किसकी आराधना करते हो ?

नारदजी ने कहा—भगवन्, आपने ही पहले कहा है कि देवताओं की आराधना करनी चाहिए; देवकार्य परम यज्ञ है और सनातन परमात्मा का स्वरूप है। मैं आपकी उसी आज्ञा के अनुसार नारायण की उपासना करता हूँ। ब्रह्माजी उन्हीं सनातन नारायण से उत्पन्न हुए हैं। मेरे पिता दक्ष प्रजापति उनके पुत्र हैं। मैं ब्रह्मा का मानस पुत्र होकर भी शाप के वश दक्ष का पुत्र हुआ हूँ। पितृयज्ञ में पिता, माता और पितामह-स्वरूप उन्हीं परमात्मा की उपासना मनुष्य करते हैं। वेद में बतलाया गया है कि देवगण अग्निष्वात्ता आदि को वेद पढ़ाकर दानवों के साथ युद्ध करने चले गये। बहुत दिनों तक युद्ध करते रहने के कारण देवताओं को वेद भूल गये। तब देवताओं ने अग्निष्वात्ता आदि से फिर वेद का अध्ययन किया। वेद पढ़ाने से अग्निष्वात्ता आदि देवताओं के पुत्र होने पर भी उनसे श्रेष्ठ और उनके पितर हो गये। देवताओं और पितरों ने पृथिवी पर कुश बिछाकर जो एक दूसरे की पूजा की थी वह तो आप लोग जानते ही
११ हैं। मुझे बतलाइए कि पितरों ने किस प्रकार पिण्ड संज्ञा प्राप्त की थी।

नर-नारायण ने देवर्षि नारद से कहा—हे तपोधन, प्राचीन समय में नारायण ने वराह का रूप धारण करके पृथिवी का उद्धार किया था। उन्होंने पृथिवी को यथास्थान रखकर मध्याह्न के समय देह में कीचड़ लगाये हुए, पूर्व की ओर मुँह करके, पृथिवी पर कुश बिछाकर उन पर तिल-रूप अपने पसीने की बूँदें छिड़कीं और दाँत से मिट्टी के तीन पिण्ड उठाकर उन कुशों पर रख करके संसार में नियम स्थिर करते हुए कहा था—मैं ही सबका सृष्टिकर्ता हूँ। मैं इस समय पितरों की सृष्टि कर रहा हूँ। मेरे दाँत से फेंके हुए मिट्टी के पिण्ड दक्षिण की ओर गिरे हैं, इसलिए आज से पिण्डों का नाम पितर होगा। मैंने ये जो तीन पिण्ड बना दिये हैं ये मेरी
२० आज्ञा से पितर हो जावें। मैं ही तीन पिण्डों में स्थित पिता, पितामह और प्रपितामह हूँ।

मुझसे श्रेष्ठ और पूज्य कोई नहीं है। मेरा पिता कोई नहीं है। मैं ही सबका पिता, पितामह और प्रपितामह हूँ। वराहरूप नारायण यह कहकर, वराह पर्वत पर पिण्डदान द्वारा अपनी पूजा करके, अन्तर्धान हो गये। उसी समय से पितृगण पिण्ड नाम से प्रसिद्ध होकर पूजा ग्रहण करते हैं। जो मनुष्य मन, वचन, कर्म से देवता, पितर, गुरु, अतिथि, ब्राह्मण, पृथिवी, गाय और माता की पूजा करता है उसे विष्णु की पूजा का फल मिलता है। सुख-दुःखहीन नारायण सब प्राणियों के शरीर में निवास करते हैं। २८

तीन सौ सैंतालीस अध्याय

नर-नारायण की आज्ञा से नारदजी का अपने आश्रम को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, नर-नारायण के ये वचन सुनकर देवर्षि नारद को परमात्मा पर और भी अधिक भक्ति हुई। वे नर-नारायण के आश्रम में हज़ार वर्ष रहकर उनसे नारायण की कथा सुनकर और वहाँ विश्वरूप भगवान् के दर्शन करके हिमालय पर्वत पर अपने स्थान को चले गये। विख्यात तपस्वी महर्षि नर-नारायण भी रमणीय बदरिकाश्रम में घोर तप करने लगे। आज तुम भी मुझसे यह प्राचीन कथा सुनकर पवित्र हो गये हो। जो मनुष्य अनादि अनन्त परमात्मा पर विश्वास रखता है उसका इस लोक और परलोक में भला होता है। जो मनुष्य देवश्रेष्ठ नारायण से द्वेष करता है वह सबका शत्रु है; उसके पूर्वज अनन्त काल तक घोर नरक में पड़े रहते हैं। नारायण सब प्राणियों के आत्म-स्वरूप हैं, अतएव उनसे द्वेष करनेवाला मनुष्य आत्मद्वेषी है। अपने गुरु महर्षि वेदव्यास से नारायण का जो माहात्म्य मैंने सुना था वह तुमको बतला दिया। देवर्षि नारद ने साक्षात् नारायण से उनका माहात्म्य सुना था। १०
मैंने भगवद्गीता कहते समय संक्षेप में इस माहात्म्य का वर्णन किया है। वेदव्यासजी नारायण-स्वरूप हैं। उनके सिवा न तो कोई महाभारत की रचना कर सकता है, न अनेक धर्मों का उपदेश दे सकता है। तुमने अश्वमेध करने का जो सङ्कल्प किया है उसका आरम्भ करो।

सूतपुत्र ने कहा—हे शौनक, नारायण का यह माहात्म्य सुनकर महाराज जनमेजय अश्वमेध यज्ञ की तैयारी करने लगे। आपने और महर्षियों ने नारायण का जो माहात्म्य पूछा था उसका मैंने वर्णन कर दिया। प्राचीन समय में देवर्षि नारद ने श्रीकृष्ण, भीष्म, पाण्डव और महर्षियों के सामने देवगुरु बृहस्पति से इस माहात्म्य का वर्णन किया था। नारायण सब महर्षियों के और तीनों लोकों के अधीश्वर हैं। वे वेद के विधाता हैं। वही इस विस्तीर्ण भूमण्डल को धारण किये रहते हैं। शम-दम आदि सब नियम उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण लोग उनकी पूजा करते हैं। वे देवताओं का हित करने के लिए असुरों का नाश करते हैं। वे तपोनिधि, यश के पात्र, मधु-कैटभ के नाशक तथा धर्मात्माओं की एकमात्र गति और उनके अभयदाता हैं। वे

सगुण, निर्गुण, वासुदेव आदि चार मूर्तिधारी और यज्ञ का भाग ग्रहण करनेवाले हैं। वही दुर्जय महापराक्रमी नारायण पुण्यात्मा महर्षियों को श्रेष्ठ गति देते हैं। सांख्यमतावलम्बी विद्वान् और योगी महात्मा उनको तीनों लोकों का आदि-कारण, मोक्ष का आधार, सूक्ष्म, अचल और सनातन पुरुष कहते हैं। ब्रह्माजी उन त्रिलोकसाक्षी जन्महीन आदिपुरुष नारायण को नमस्कार करते
२२ हैं अतएव आप लोग भी एकाग्रचित्त होकर उन त्रैलोक्यनाथ को नमस्कार कीजिए।

तीन सौ अड़तालीस अध्याय

नारायण द्वारा ब्रह्मा और मधु-कैटभ की उत्पत्ति तथा मधु-कैटभ का वध

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र! मैंने तुम्हारे मुँह से परमात्मा का माहात्म्य, धर्म के घर में नर-नारायण रूप से उनकी उत्पत्ति, वराह द्वारा सबसे पहले पिण्ड की उत्पत्ति और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति-धर्म का विषय सुना। तुमने महासागर के समीप, ईशान कोण में, हव्य-कव्यभोजी भगवान् विष्णु की मूर्ति हयशिरा का जो वृत्तान्त कहा है और ब्रह्माजी ने जिन हयशिरा के दर्शन किये थे, उन लोकरक्षक का रूप और प्रभाव किस प्रकार का है? ब्रह्माजी ने उस अद्भुत पवित्र मूर्ति के दर्शन करके फिर क्या किया? ब्रह्मन्, इस विषय में हम लोगों को बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ है अतएव तुम इस विषय का वर्णन करो। तुमने परम पवित्र प्राचीन कथा सुनाकर हम लोगों को पवित्र किया है।

सूतपुत्र ने कहा कि महात्मन्, वैशम्पायनजी ने महाराज जनमेजय से जो कथा कही थी वही वेदमूलक कथा मैं सुनाता हूँ। देवादिदेव विष्णु की हयग्रीव मूर्ति का हाल सुनकर महाराज जनमेजय को बड़ा सन्देह हुआ। उन्होंने वैशम्पायन से पूछा—महर्षि, ब्रह्माजी को जिस
११ मूर्ति के दर्शन हुए थे उस मूर्ति के उत्पन्न होने का क्या कारण है?

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, संसार में शरीर आदि जितने पदार्थ देख पड़ते हैं वे सब परमात्मा की इच्छा से उत्पन्न पञ्चभूतमय हैं। अन्तर्यामी ईश्वर इस विश्व की सृष्टि करता और उसी के द्वारा प्रलय हो जाता है। अब प्रलय का वर्णन सुनो। सबसे पहले पृथिवी जल में लीन हो जाती है, उसके बाद जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश मन में, मन महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व प्रकृति में, प्रकृति जीवात्मा में और जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। तब सर्वत्र घोर अन्धकार हो जाता है। उस समय कुछ भी अनुभव नहीं होता।

अब सृष्टि का भी वर्णन सुनो। तमोरूप प्रकृति द्वारा जगत् के कारण ब्रह्म का प्रकाश होता है। वही ब्रह्म प्रकृति का मूल और अमृत-स्वरूप है। वह विश्वभाव को प्राप्त होकर पुरुष-शरीर का आश्रय करता है। ब्रह्म ही अनिरुद्ध, प्रधान, अव्यक्त और त्रिगुणात्मक है। वही अनिरुद्ध नामक हरि योगनिद्रा को प्राप्त होकर जल के ऊपर शयन करके संसार की सृष्टि

के विषय में चिन्ता करने लगे। उसी समय उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। उस २०
कमल से अहङ्कार-स्वरूप चतुर्मुख ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। वे उसी कमल पर बैठकर चारों ओर जल ही जल देखने लगे। तब उन्होंने सत्त्वगुण का अवलम्बन करके पञ्चमहाभूत उत्पन्न करने की इच्छा की। ब्रह्माजी जिस कमल पर बैठे थे उस कमल के पत्ते पर नारायण के फेंके हुए जल की दो बूँदें गिरीं। उनमें एक बूँद मधु के समान थी। उसे देखकर अनादि अनन्त नारायण ने कहा--इस जलबिन्दु से मधु नाम का तमोगुणी दैत्य उत्पन्न हो। यह कहते ही उस बूँद से मधु दैत्य उत्पन्न हो गया। दूसरी बूँद कड़ी थी। इस बूँद से, नारायण की आज्ञा के अनुसार, रजोगुणावलम्बी कैटभ उत्पन्न हुआ। इसके बाद वे रजोगुणी और तमोगुणी महापराक्रमी गदाधारी दोनों दानव उस कमल पर घूमने लगे। उन दोनों ने देखा कि उसी कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी चार वेदों की रचना कर रहे हैं। उनको वेदों की रचना करते देखकर उन दानवों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। तब वे दोनों ब्रह्माजी से वेद छीनकर समुद्र में कूद पड़े और रसातल को चले गये। वेद छिन जाने पर ब्रह्माजी ने दुखी होकर नारायण से कहा—भगवन्! ३०
वेद ही मेरे दिव्य चक्षु, बल, तेज और उपास्य वस्तु हैं। मधु और कैटभ नाम के दैत्यों ने उन्हें छीन लिया है। बिना वेद के मेरे लिए सब कुछ अन्धकारमय है। वेद के बिना मैं किस प्रकार लोकों की सृष्टि करूँगा? वेद नष्ट होने से मेरा हृदय फटा जा रहा है। आज कौन उन वेदों को लाकर इस शोक-सागर से मेरा उद्धार करेगा! इस प्रकार नारायण के सामने अपना दुःख कहकर ब्रह्माजी हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—भगवन्, आप ब्रह्मस्वरूप और मेरे पूर्वज हैं। आप लोकों के आदि, सर्वश्रेष्ठ और सांख्ययोग के निधि हैं। आप महत्तत्त्व और प्रकृति के स्रष्टा हैं। आप अचिन्तनीय हैं और कल्याण-मार्ग का अवलम्बन करते हैं। आप विश्व का संहार करनेवाले, सब प्राणियों के अन्तरात्मा और स्वयम्भू हैं। आपको नमस्कार है। आपकी ही कृपा से मेरा जन्म हुआ है। पहली बार आपके मन से और दूसरी बार आपकी आँख से मेरा जन्म हुआ था। तीसरी बार वाणी से, चौथी बार कान से, पाँचवीं बार नाक ४०
से और छठी बार अण्ड से मेरी उत्पत्ति हुई थी। यह मेरा सातवाँ जन्म है। इस बार आपके नाभि-कमल से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष, मैं प्रत्येक कल्प में सृष्टि के समय सत्त्वगुण-सम्पन्न आपका ज्येष्ठ पुत्र होता हूँ। आप ईश्वर हैं। मैं आपसे उत्पन्न हुआ हूँ। वेद मेरे नेत्र-स्वरूप हैं। दुरात्मा दानवों ने मेरी आँखें छीन ली हैं। मैं अन्धा हो गया हूँ, अतएव आप निद्रा छोड़कर मेरी आँखें ला दीजिए। आप मुझ पर स्नेह करते हैं और मैं आपका भक्त हूँ।

यह स्तुति सुनकर भगवान् नारायण जाग पड़े और वेद का उद्धार करने को तैयार हो गये। उन्होंने (अणिमा आदि) ऐश्वर्य के द्वारा एक और शरीर धारण कर लिया। उसी मूर्ति का नाम हयशिरा है। हयशिरा का शरीर और नाक आदि उनके सब अङ्ग चन्द्रमा के समान सुन्दर थे।

नक्षत्र और तारागण से युक्त स्वर्ग उनका सिर, सूर्य की किरणें उनके बाल, आकाश और पाताल उनके कान, पृथिवी उनका मस्तक, गङ्गा और सरस्वती नितम्ब और महासमुद्र उनकी भौंहें हुए। चन्द्रमा और सूर्य उनके नेत्र, सन्ध्या नाक, ओंकार संस्कार, बिजली जीभ, सोमपायी पितृगण उनके दाँत, गोलोक और ब्रह्मलोक उनके होठ और अधर तथा कालरात्रि उनका गला हुआ। नारायण इस प्रकार अनेक मूर्तियों से परिवृत हयशिरा का रूप धारण करके, वहाँ से अन्तर्धान होकर, रसातल में पहुँचे। वहाँ योग का अभ्यास करके, उदात्त आदि स्वर समेत सामवेद का गान करते हुए उन्होंने रसातल को प्रतिध्वनित कर दिया। वह शब्द सुनकर मधु और कैटभ दोनों दैत्य क्षुब्ध हो उठे और वेदों को फेंककर उसी शब्द की ओर दौड़े। तब हयशिरा-मूर्तिधारी नारायण ने वेदों को उठा लिया और अपने स्थान पर आकर ब्रह्मा को दे दिया। फिर अपनी उस मूर्ति को महासमुद्र के ईशान कोण में स्थापित कर दिया और स्वयं पहले की तरह पूर्व-रूप धारण करके सो रहे।

उधर मधु-कैटभ दानव बहुत देर तक उस शब्द के कारण का पता लगाते रहे। जब उस शब्द का कहीं पता न लगा तब वे उस स्थान पर गये, जहाँ उन्होंने वेदों को फेंक दिया था; किन्तु वेदों को लेकर भगवान् तो पहले ही चले गये थे इसलिए वहाँ वेदों का पता न चला। तब उन दानवों ने रसातल से ऊपर आकर देखा कि, पूर्ण चन्द्रमा के समान तेजस्वी महापराक्रमी शुक्लवर्ण, आदिपुरुष नारायण जल के ऊपर किरणें फैलाये हुए अपने शरीर के बराबर अनन्त-शय्या पर सो रहे हैं। उनको देखकर कुपित हो दोनों दानव हँसते हुए कहने लगे—यह जो श्वेत वर्ण का पुरुष सो रहा है, यही रसातल से वेदों को उठा लाया है। दुरात्मा दानवों ने यह सोचकर भगवान् के पास जाकर 'यह कौन है और अनन्त-शय्या पर क्यों सो रहा है?' यों कहकर उनको जगा दिया। नारायण ने जागकर देखा कि दोनों दानव युद्ध करने के लिए खड़े हैं तो वे झट उठकर उनसे युद्ध करने लगे। थोड़ी देर घोर संग्राम करके नारायण ने, ब्रह्मा की रक्षा के लिए, मधु और कैटभ को मार डाला। दोनों दैत्यों का नाश और वेदों का उद्धार होने पर ब्रह्माजी का शोक दूर हो गया। वेद तथा नारायण की सहायता से वे स्थावर-जङ्गमरूपी विश्व की सृष्टि करने लगे।

मधु-कैटभ का संहार करके और ब्रह्माजी को संसार की सृष्टि करने की बुद्धि देकर भगवान् वहाँ से अन्तर्धान हो गये। परमात्मा ने इस प्रकार हयशिरा की मूर्ति धारण की थी। जो ब्राह्मण नारायण के इस वृत्तान्त को पढ़ेगा या सुनेगा उसके वेदाध्ययन में कभी विघ्न न पड़ेगा। पाञ्चालराज ने देववाणी के अनुसार घोर तपस्या द्वारा नारायण की हयशिरा-मूर्ति की आराधना करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। महाराज, आपने नारायण की हयशिरा-मूर्ति का जो वृत्तान्त पूछा था वह मैंने आपको सुना दिया। नारायण जब जिस कार्य का साधन करने के लिए जैसी मूर्ति धारण करना चाहते हैं तब वैसी मूर्ति धारण कर लेते हैं। परमात्मा वेद और तपस्या के निधि हैं। वे सांख्य, योग और परमब्रह्म हैं। सम्पूर्ण वेद उन्हीं का रूप है। सम्पूर्ण

यज्ञ उन्हीं के उद्देश से किये जाते हैं। वही सबकी परम गति, सत्य और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति-धर्म-स्वरूप हैं। पृथिवी का गन्धगुण, जल का रस, तेज का रूप, वायु का स्पर्श, आकाश का शब्द और प्रकृति का मन, ये सब उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं। ग्रह-नक्षत्र आदि के चलने से जो काल उत्पन्न होता है वह भी नारायण का रूप है। कीर्ति, श्री और लक्ष्मी आदि सब देवियाँ परमात्मा का ही आश्रय करती हैं। परमात्मा ही सब पदार्थों का प्रधान कारण और कार्यरूप है। वही अधिष्ठान, कर्ता, नाना प्रकार के करण (साधन), विविध चेष्टा और दैव है। जो लोग हेतुवाद दिखलाकर जिन तत्त्वों के जानने की इच्छा करते हैं, उन लोगों के उन तत्त्वों का रूप महायोगी परमात्मा ही है। वह ब्रह्मा आदि देवताओं, ऋषियों, सांख्यमतावलम्बियों, ८०
योगियों और आत्मज्ञ संन्यासियों की इच्छाओं को जानता रहता है; किन्तु ये सब महात्मा उसके अभीष्ट को नहीं जान सकते। तीनों लोकों में जो कोई देवताओं और पितरों की आराधना, दान और तपस्या करते हैं उन सबका आश्रय नारायण ही हैं। वे सबके वासस्थान हैं, इसलिए महर्षियों ने उनका नाम वासुदेव रक्खा है। वे नित्य, परम महर्षि, महान् ऐश्वर्य और निर्गुण हैं। जिस तरह वसन्त आदि ऋतुओं में काल ऋतुओं के चिह्न धारण करता है उसी तरह परमात्मा सगुण होकर रूप आदि धारण करता है। महात्मा लोग उसकी गति को नहीं जान सकते। ज्ञानवान् महर्षि ही हृदय में उसके दर्शन कर सकते हैं। ९६

तीन सौ उनचास अध्याय

वैशम्पायन का जनमेजय से एकान्त-धर्म और उसके प्रचार का वर्णन करना

जनमेजय ने कहा—भगवन्, नारायण अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर उनकी विधिपूर्वक की हुई पूजा स्वयं ग्रहण करते हैं। आपने पुण्य-पापहीन निर्गुण पुरुषों की गति का विषय बतलाया, किन्तु उनके साथ निष्काम भक्तों की विशेष विलक्षणता देख पड़ती है। जब निष्काम भक्ति करनेवाले महात्मा, अनिरुद्ध आदि तीनों देवताओं की उपासना न करके, चौथी मूर्ति वासुदेव में लीन हो जाते हैं तब निष्काम भक्ति के समान श्रेष्ठ और नारायण का प्रिय और कुछ नहीं है। जो ब्राह्मण संन्यास-धर्म का आश्रय करते हैं और जो सदा वेद-वेदाङ्ग का पठन-पाठन करते हैं उनसे भी श्रेष्ठ गति निष्काम भक्तों को मिलती है। यह निष्काम धर्म किस देवता या किस महर्षि का बतलाया हुआ है, इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और इसका पालन किस तरह करना चाहिए ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कौरव-पाण्डवों के युद्ध में महावीर अर्जुन के उत्साहहीन होने पर महात्मा वासुदेव ने जिस प्रकार निष्काम धर्म का वर्णन किया था वह मैं पहले ही तुमको सुना चुका हूँ। यह धर्म दुर्बोध है। मूढ़ मनुष्य इसे नहीं जान सकते। सत्ययुग में नारायण ने इस सामवेद-सम्मत निष्काम धर्म को उत्पन्न करके स्वयं धारण कर रक्खा था। एक १०

बार धर्मात्मा युधिष्ठिर ने ऋषियों के समाज में, वासुदेव और भीष्म के सामने, तपस्वियों में श्रेष्ठ नारद से यही धर्म पूछा था। महर्षि नारद ने इस धर्म के विषय में जो कुछ कहा था वह सब गुरु वेदव्यास ने मुझे बतलाया है। अब उसका वर्णन सुनिए। नारायण की इच्छा के अनुसार ब्रह्माजी उनके मुँह से उत्पन्न होकर, इसी धर्म के अनुसार, पितरों और देवताओं की आराधना करने लगे। उसके बाद फेनप नाम के महर्षियों ने उस धर्म को सीखा। फिर उनसे वैखानस महर्षियों ने उसे ग्रहण करके चन्द्रमा को दिया। उसके बाद इस धर्म का लोप हो गया।

ब्रह्माजी ने नारायण के नेत्र से दूसरी बार जन्म लेकर, चन्द्रमा से इस धर्म को सीखकर, रुद्रदेव को दिया। फिर वालखिल्य महर्षियों ने समाधिस्थ महादेव से उक्त धर्म प्राप्त किया। उसके बाद सनातन नारायण की माया से उस धर्म का लोप हो गया।

तीसरी बार नारायण की वाणी से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। तब नारायण ने इस धर्म को फिर उत्पन्न किया। तपस्या, नियम और शम-दम के प्रभाव से महर्षि सुपर्ण उक्त धर्म को
२० नारायण से प्राप्त करके प्रतिदिन तीन बार इसका पाठ करते थे। इसी से पण्डितों ने इस धर्म का नाम त्रिसौपर्ण रक्खा है। यह धर्म ऋग्वेद में बतलाया गया है। इस धर्म का पालन करना बहुत कठिन है। सब प्राणियों के प्राण-स्वरूप वायु ने महर्षि सुपर्ण से इस धर्म को प्राप्त करके विघसाशी महर्षियों को और महर्षियों ने महासमुद्र को दिया था। उसके बाद यह धर्म भगवान् नारायण में लीन हो गया।

चौथी बार नारायण के कान से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। ब्रह्माजी के उस जन्म का वृत्तान्त सुनो। देवदेव नारायण, सृष्टि करने की इच्छा करके, सृष्टिकर्ता की उत्पत्ति करने के विषय में सोचने लगे। उसी समय ब्रह्माजी उनके कान से उत्पन्न हुए। उनको देखकर नारायण ने कहा—बेटा! हम तुमको तेज, बल और सनातन धर्म देते हैं। तुम यह सब लेकर अपने अङ्गों से प्रजा की सृष्टि करके सत्ययुग स्थापित करो। हम तुम्हारा कल्याण करेंगे। ब्रह्माजी ने उनको नमस्कार किया और उनके मुँह से निकले हुए, आरण्यक तथा वेदों समेत, सरहस्य श्रेष्ठ
३० धर्म को ग्रहण किया। इसके बाद नारायण, ब्रह्मा को धर्म का उपदेश देकर, मायातीत परम स्थान को चले गये। तब लोक-पितामह ब्रह्मा ने स्थावर-जङ्गम आदि की सृष्टि की। उस समय सबसे पहले सत्ययुग उपस्थित हुआ और सर्वत्र सनातन धर्म का प्रचार हुआ। तब ब्रह्माजी ने नारायणोपदिष्ट धर्म के अनुसार उनकी आराधना करके, उस धर्म का प्रचार करने के लिए, स्वारोचिष मनु को उसका अध्ययन कराया। शङ्खपद ने अपने पिता स्वारोचिष मनु से उस धर्म को सीखकर अपने पुत्र दिक्पाल सुवर्णाभ को उसकी शिक्षा दी। त्रेतायुग आने पर वह धर्म फिर लुप्त हो गया।

पाँचवीं बार नारायण की नाक से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। नारायण ने ही ब्रह्माजी को यह धर्म बतलाया। उनसे सनत्कुमार ने उस धर्म को सीखा और सनत्कुमार ने प्रजापति वीरण

को उसका अध्ययन कराया। महात्मा वीरण ने अपने पुत्र रैभ्य को और रैभ्य ने अपने पुत्र दिक्- ४१
पति कुक्षि को वह धर्म प्रदान किया। उसके बाद इस धर्म का फिर लोप हो गया।

छठी बार ब्रह्माजी अण्ड से उत्पन्न हुए। तब नारायण के मुँह से फिर यह धर्म उत्पन्न हुआ। इसे पहले ब्रह्माजी ने ग्रहण किया; फिर उन्होंने बर्हिषद नामक महर्षियों को इसका अध्ययन कराया। उसके बाद सामवेद के विद्वान् ज्येष्ठ नामक ब्राह्मण ने उस धर्म को प्राप्त करके उसे महाराज अविकम्पन को दिया। अन्त को इस धर्म का फिर लोप हो गया।

सातवीं बार नारायण की नाभि से उत्पन्न कमल से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। नारायण ने फिर यह धर्म उनको बतलाया। उन्होंने दक्ष को, दक्ष ने अपने बड़े नाती आदित्य को और आदित्य ने विवस्वान् को उसका अध्ययन कराया। फिर त्रेतायुग के आरम्भ में विवस्वान् ने मनु ५०
को और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को यह धर्म सिखाया। इक्ष्वाकु ने तीनों लोकों में इस धर्म का प्रचार किया। तब से आज तक यह धर्म प्रचलित है। प्रलय होने पर फिर वह नारायण में लीन हो जायगा। महाराज, गीता में संन्यासियों का धर्म कहते समय मैंने संक्षेप में इस धर्म का वर्णन तुमसे किया था। देवर्षि नारद ने नारायण से इस धर्म को प्राप्त किया है। यह सनातन सत्य ही सबका आदि, दुर्ज्ञेय और सब धर्मों से कठिन है। संन्यासधर्मावलम्बी पुरुष ही इसका पालन कर सकते हैं। निष्काम-धर्म और अहिंसा-धर्म से युक्त शुभ कर्म करने से नारायण प्रसन्न होते हैं। नारायण की कोई तो केवल अनिरुद्ध-मूर्ति से, कोई अनिरुद्ध और प्रद्युम्न-मूर्ति से, कोई अनिरुद्ध-प्रद्युम्न और सङ्कर्षण-मूर्ति से और कोई अनिरुद्ध-प्रद्युम्न-सङ्कर्षण और वासुदेव-मूर्ति से उपासना करता है। वे ममता-हीन, परिपूर्ण और आत्म-स्वरूप हैं। उनमें पृथिवी आदि पञ्चभूतों के गुण नहीं हैं। वे मन और पञ्चेन्द्रिय-स्वरूप हैं। वे तीनों लोकों के नियन्ता, सृष्टिकर्ता, अकर्ता, कार्य और कारण हैं। वे अपनी इच्छा से संसार के साथ क्रीड़ा करते हैं। ६०

महाराज, मैंने अपने गुरु वेदव्यास की कृपा से यह दुर्ज्ञेय निष्काम-धर्म आपको सुनाया है। निष्कामधर्मावलम्बी पुरुष संसार में बहुत कम हैं। जब संसार में सब मनुष्य हिंसा-रहित, सब प्राणियों के हितैषी, तत्त्वज्ञानी और निष्काम-धर्मावलम्बी होते हैं तभी सत्ययुग होता है; तभी सारा संसार निष्काम कर्म करता है। महाराज, महर्षि वेदव्यास ने श्रीकृष्ण और भीष्मदेव के सामने ऋषियों से इस धर्म का वर्णन किया था। महर्षि वेदव्यास को देवर्षि नारद से इस धर्म का उपदेश मिला था। निष्काम-धर्मावलम्बी नारायण के भक्त अन्त को चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के नारायण को प्राप्त करते हैं।

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, ज्ञानी पुरुष जिस धर्म का अवलम्बन करते हैं उस धर्म का पालन अन्यान्य व्रतधारी ब्राह्मण क्यों नहीं करते ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! मनुष्यों की तीन प्रकार की (सात्त्विकी, राजसी और तामसी) प्रकृतियाँ होती हैं। सात्त्विक प्रकृति के पुरुष सबसे श्रेष्ठ होते और मोक्ष प्राप्त करने का उद्योग करते हैं। वे सत्त्वगुण के प्रभाव से नारायण का ज्ञान प्राप्त करते और अच्छी तरह
७० जानते हैं कि नारायण की कृपा के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। इसी से वे सात्त्विक कहलाते हैं। वे बड़ी भक्ति के साथ नारायण का ध्यान करके अपने मनोरथों को पूर्ण करते हैं। जो संन्यासी मोक्ष-धर्म के अभिलाषी होते हैं उनके 'योगक्षेम' की रक्षा नारायण करते हैं। नारायण कृपा करके जिसके जन्म-मरण का दुःख निवारण कर देते हैं वही सात्त्विक होता और वही मोक्ष प्राप्त करने का निश्चय करता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए नारायण-स्वरूप निष्काम धर्म वैसा ही है जैसा कि सांख्य और योग धर्म। ज्ञानी पुरुष ऐकान्तिक (निष्काम) धर्म के प्रभाव से श्रेष्ठ गति पाते हैं। जन्म-मृत्यु का दुःख भोगता हुआ मनुष्य नारायण की कृपा से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उनकी कृपा के बिना कोई ज्ञानी नहीं हो सकता। राजस और तामस प्रकृति को दूषित प्रकृति कहते हैं। रजोगुणी और तमोगुणी प्रवृत्ति-धर्मावलम्बी पुरुषों को बार-बार जन्म-मृत्यु का दुःख भोगते देखकर भी नारायण उन पर कृपा नहीं करते। ऐसे मनुष्य ब्रह्माजी के ही कृपा-पात्र होते हैं। देवता और ऋषिगण सात्त्विक अहङ्कार से जन्म लेकर सत्त्वगुण से रत्ती भर भी भ्रष्ट हो जायँ तो उनको बड़ी कठिनाई से मोक्ष मिलता है।

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, अहङ्कार से उत्पन्न सात्त्विक पुरुष पुरुषोत्तम को कैसे प्राप्त करते हैं?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! पुरुष जब मोक्षार्थी होकर अहङ्कार को त्याग देता है तब
८० सूक्ष्म-स्वरूप, सृष्टि-स्थिति और प्रलय करनेवाले, पुरुष को प्राप्त कर सकता है। सांख्य, योग, आरण्यक, वेद और पञ्चरात्र (भक्तिमार्ग), ये सब शास्त्र एक-दूसरे के अङ्ग-स्वरूप हैं। सबका लक्ष्य एक ही है। इन्हीं शास्त्रों के अनुसार कर्तव्य करने पर मनुष्य ऐकान्तिक धर्म का पालन कर सकता है। जिस तरह नदियाँ महासमुद्र में मिलती हैं उसी तरह सम्पूर्ण ज्ञान नारायण से उत्पन्न होते और उन्हीं में लीन हो जाते हैं। महाराज, यह मैंने ऐकान्तिक-धर्म का वर्णन कर दिया। आपसे हो सके तो शास्त्र के अनुसार इसका पालन कीजिए। देवर्षि नारद ने मेरे गुरु व्यासदेव से गृहस्थों और संन्यासियों के अक्षय ऐकान्तिक धर्म का वर्णन ऐसा ही किया था। फिर व्यासजी ने राजा युधिष्ठिर को इस धर्म का उपदेश दिया था। वही धर्म मैंने तुमको सुनाया। इस धर्म का पालन करना बहुत कठिन है, इसी से बहुत लोग इसका आचरण नहीं करते। महात्मा
८८ वासुदेव संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं; आप उन्हीं की भक्ति कीजिए।

तीन सौ पचास अध्याय

वैशम्पायन का जनमेजय से व्यासदेव की उत्पत्ति का वर्णन करना

जनमेजय ने कहा—भगवन्! सांख्य, योग, पञ्चरात्र और आरण्यक-वेद, इन तत्त्वों का लोकों में प्रचार है। तो इन सबका लक्ष्य एक ही है या अलग-अलग?

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, भगवान् वेदव्यासजी को मैं नमस्कार करता हूँ। विद्वान् लोग उन्हें नारायण के अंश से उत्पन्न, तेजस्वी, वेदनिधि द्वैपायन कहते हैं। सत्ययुग में नारायण से इन महात्मा का जन्म हुआ था।

जनमेजय ने कहा—भगवन्! आप पहले बतला चुके हैं कि वसिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर और पराशर के पुत्र वेदव्यास हैं; किन्तु अब आप वेदव्यासजी को नारायण का पुत्र बतलाते हैं। अतएव मुझे बतलाइए कि नारायण से वेदव्यासजी का जन्म किस प्रकार हुआ।

वैशम्पायन ने कहा—महाराज! प्राचीन समय में हम लोगों के गुरु धर्मात्मा वेदव्यास, वेद का अर्थ जानने के लिए, हिमालय पर्वत पर एक स्थान में रहते थे। उस समय सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुकदेव और मैं, ये पाँच उनके शिष्य थे। गुरुजी ने यह महाभारत ग्रन्थ तैयार करके हम लोगों को सुनाया था। वे हम लोगों के साथ वेद और महाभारत का पाठ करते समय गणों से घिरे हुए महादेवजी के समान शोभित होते थे। १२

एक दिन अवसर पाकर हम लोगों ने गुरु वेदव्यास से पूछा—भगवन्! आप हम लोगों को सम्पूर्ण वेद, महाभारत का अर्थ और नारायण से अपने जन्म का वृत्तान्त बतलाइए। तब श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानी वेदव्यासजी ने हम लोगों को वेद और महाभारत का अर्थ सुनाकर कहा—हे शिष्यो! सत्ययुग में नारायण से जिस तरह मेरा जन्म हुआ है वह, तपस्या के बल से, मुझे मालूम है। अब मैं अपने जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूँ। पितामह ब्रह्मा सातवीं बार नारायण की नाभि से उत्पन्न हुए। उनसे नारायण ने कहा कि बेटा, तुम स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों की सृष्टि करो। यह सुनकर ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने नारायण को प्रणाम करके कहा कि भगवन्! २० मैं बड़ा अज्ञानी हूँ, प्रजा की सृष्टि करने की योग्यता मुझमें कहाँ? आप ही उपाय बतलाइए। यह सुनकर नारायण अन्तर्धान होकर बुद्धि का स्मरण करने लगे। स्मरण करते ही बुद्धि सामने आ गई। नारायण ने उसे योग-ऐश्वर्य देकर कहा कि प्रजा की सृष्टि करने के लिए तुम ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश करो। आज्ञा पाकर बुद्धि शीघ्र ब्रह्माजी के हृदय में प्रविष्ट हो गई। तब नारायण ने ब्रह्माजी से फिर कहा कि बेटा, अब तुमको ज्ञान प्राप्त हो गया है अतएव स्थावर-जङ्गम प्राणियों की सृष्टि करो। नारायण के यों कहने पर ब्रह्माजी ने उनकी बात मान ली। अब नारायण अन्तर्धान हो गये। कुछ समय बाद नारायण ने सोचा कि ब्रह्मा ने सब लोकों की सृष्टि कर दी है। इस समय पृथिवी दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों और राक्षसों के भार से दबी जा रही

है। दैत्य, दानव और राक्षसगण तपस्या के प्रभाव से वर पाकर महापराक्रमी और दर्पित होकर देवताओं और ऋषियों पर अत्याचार करेंगे, अतएव पृथिवी पर अवतार लेकर दुष्टों का दमन और सज्जनों की रक्षा करके पृथिवी का भार उतारना चाहिए। मैं सर्प का रूप धारण करके, रसातल में स्थित होकर, पृथिवी को धारण करूँगा तब पृथिवी इस संसार का बोझ सँभाल सकेगी अतएव रसातल में जाकर पृथिवी की रक्षा करनी चाहिए। मुझे वराह, नृसिंह, वामन और मनुष्य आदि अनेक रूप धारण करके देवताओं के शत्रुओं का नाश करना पड़ेगा।

अब नारायण ने 'भोः' शब्द का उच्चारण किया। उस शब्द से अपान्तरतमा नाम के एक महर्षि उत्पन्न हुए। वे त्रिकालज्ञ और बड़े सत्यवादी थे। अपान्तरतमा के उत्पन्न होते ही नारायण ने उनसे कहा कि सौम्य, तुम वेद का विभाग करो। यह आज्ञा पाकर महर्षि अपान्तरतमा ने वेद का विभाग किया। उनके इस काम को देखकर और उनकी तपस्या, नियम और संयम से सन्तुष्ट होकर नारायण ने कहा—तुम प्रत्येक मन्वन्तर में इसी प्रकार जन्म लेकर वेद का विभाग करोगे। कलियुग आने पर भरत-वंश में कौरव नाम से प्रसिद्ध महावीर राजा तुमसे उत्पन्न होंगे। तुम उनके पास न रहोगे इसलिए वे आपस में युद्ध करके मर मिटेंगे। उस युग मे तुम कृष्णवर्ण, अनेक धर्मों के प्रवर्तक, उपदेष्टा और तपस्वी होकर वेद का विभाग करोगे; किन्तु तुम विषय-राग से मुक्त न होगे। शङ्कर की कृपा से तुम्हारे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह विषय-रागहीन होगा। ब्राह्मण लोग जिन वसिष्ठदेव को ब्रह्मा का मानसपुत्र और तपस्वियों में श्रेष्ठ कहते हैं, जिनके तेज के आगे सूर्य का तेज फीका पड़ जाता है उन्हीं वसिष्ठ के वंश में महाप्रभावशाली पराशर नाम के महर्षि उत्पन्न होंगे। वे वेद के विद्वान् और महातपस्वी होंगे। तुम उनके वीर्य से, अविवाहिता सत्यवती के गर्भ से, जन्म लोगे। भूत, भविष्य, वर्तमान कुछ भी तुमसे छिपा न रहेगा और किसी विषय में तुमको सन्देह न होगा। तपस्या के बल से तुम पहले के सब युगों का वृत्तान्त जान सकोगे और उस कलियुग से लेकर अनेक युगों तक जीवित रहोगे। उस कलियुग में चक्र धारण करके मैं तुमको दर्शन दूँगा। तुम्हारा यश संसार भर में फैलेगा। जिस मन्वन्तर में सूर्य के पुत्र शनैश्चर सावर्णि मनु नाम से विख्यात होंगे उस मन्वन्तर में तुम मन्वादि गणों में श्रेष्ठ गिने जाओगे। तीनों लोकों के सब पदार्थ हमीं से उत्पन्न हैं। जो जैसी इच्छा करता है उसकी वैसी ही इच्छा को मैं पूर्ण कर देता हूँ। नारायण ने अपान्तरतमा से यों कहकर उनको आज्ञा-पालन करने का आदेश दिया।

हे शिष्यो, स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार नारायण के प्रभाव से उत्पन्न होकर मैं अपान्तरतमा नाम से विख्यात हुआ था। अब वैवस्वत मन्वन्तर में वसिष्ठ-वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने समाधि लगाकर घोर तपस्या की है। यही मेरे पूर्व जन्म का और भविष्य का वृत्तान्त है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, यह मैंने अपने आचार्य वेदव्यास के जन्म का हाल तुमसे कहा। इसके सिवा तुमने और जो कुछ पूछा है वह भी बतलाता हूँ। सांख्य, योग,

पाञ्चरात्र, वेद और पाशुपत आदि जो अनेक शास्त्र हैं, उनमें महर्षि कपिलदेव सांख्य शास्त्र के, पुरातन पुरुष ब्रह्माजी योग के, अपान्तरतमा वेद के, ब्रह्माजी के पुत्र महादेवजी पाशुपत के और नारायण स्वयं सम्पूर्ण पाञ्चरात्र शास्त्र के प्रणेता हैं। सांख्य-योग आदि सब शास्त्र एकमात्र नारायण की ही उपासना करने का उपदेश देते हैं। अज्ञानी मनुष्य परमात्मा रूप इन शास्त्रों को कभी नहीं जान सकता। शास्त्रकर्ताओं ने नारायण को ही अद्वितीय पुरुष परमात्मा बतलाया है। वेद और अनुमान आदि के द्वारा जो मनुष्य सन्देहहीन हो जाता है उसके हृदय में नारायण सदा प्रकाशित रहते हैं और जो कुतर्क किया करता है उसे कभी उनके दर्शन नहीं होते। ७०
पाञ्चरात्र शास्त्र के जानकार, नारायण के भक्त, अन्त को नारायण में लीन हो जाते हैं। महर्षियों ने सांख्य, योग और वेद आदि में इस संसार को नारायणमय बतलाया है। तीनों लोकों में जो शुभ-अशुभ काम होते हैं उन सबको नारायण से ही उत्पन्न समझना चाहिए। ७४

तीन सौ इक्यावन अध्याय

ब्रह्मा और रुद्र का संवाद

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन्, पुरुष अनेक हैं या एक है? कौन पुरुष सबसे श्रेष्ठ और सबकी उत्पत्ति का स्थान है?

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, सांख्य और योग-शास्त्र के मत में पुरुष अनेक हैं; किन्तु मेरे मत में जिस तरह घड़ा आदि छोटे-छोटे पदार्थों के आकाश का कारण एकमात्र महान् आकाश है उसी तरह परमात्मा सब पुरुषों का कारण है। कपिल आदि महर्षियों ने अध्यात्म-तत्त्व का निरूपण करते समय जो परमात्मा का एकत्व सिद्ध किया है और जिसका वर्णन मेरे गुरु व्यासजी ने संक्षेप में किया है उसे सुनो। वह वेदों में सत्य माना गया है। इस विषय में रुद्र और ब्रह्मा का संवाद सुनाता हूँ। उसे सुनकर इस विषय को तुम अच्छी तरह समझ जाओगे।

क्षीर-समुद्र में सुवर्ण के समान चमकीला वैजयन्त नाम का एक पर्वत है। प्रजापति ब्रह्मा उसी पर्वत पर अध्यात्म-तत्त्व का विचार करते थे। वे एक दिन वहीं बैठे थे कि—उनके १०
ललाट से उत्पन्न—महादेव आकाशमार्ग से वहाँ आये। उन्होंने सामने आकर प्रसन्नता से ब्रह्माजी को प्रणाम किया। ब्रह्माजी ने पैरों पर पड़े हुए महादेव को बाँयें हाथ से उठा लिया और उन्हें बड़ी देर का आया हुआ जानकर बड़ी प्रसन्नता से कहा—महाबाहु, बड़ी अच्छी बात है कि आज तुम मेरे पास आये। तुम्हारे वेदाध्ययन और तप में कोई विघ्न तो नहीं है? तुम हमेशा कठिन तपस्या करते रहते हो, इसी से मैं पूछता हूँ।

रुद्र ने कहा—भगवन्, आपकी कृपा से मेरे तप और वेदाध्ययन में कोई विघ्न नहीं है। संसार में भी सर्वत्र कुशल है। ब्रह्मलोक में आपके दर्शन न पाने के कारण मैं इस पर्वत पर आया

हूँ। आपको इस निर्जन स्थान में देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जान पड़ता है कि इस पर्वत पर आपके रहने का कोई विशेष कारण है। देव-दानवों से सेवित, ऋषियों गन्धर्वों और अप्सराओं
२१ से परिपूर्ण, भूख-प्यास से रहित श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को छोड़कर आप इस पर्वत पर अकेले क्यों रहते हैं?

ब्रह्माजी ने कहा—रुद्र, मैं इस वैजयन्त पर्वत पर रहकर एकाग्र चित्त से विराट् पुरुष का ध्यान किया करता हूँ।

रुद्र ने कहा—भगवन्, आप अनेक पुरुषों को उत्पन्न कर चुके और करते हैं; फिर आप किस विराट् पुरुष का ध्यान करते हैं?

ब्रह्माजी ने कहा—हे रुद्र! यह ठीक है कि मैंने अनेक पुरुषों की उत्पत्ति की है और वेद में भी इसके प्रमाण हैं, किन्तु जिस विराट् पुरुष का मैं ध्यान करता हूँ वह सब पुरुषों का कारण है। सब पुरुष उसी विराट् पुरुष से उत्पन्न हुए हैं और साधन के बल से निर्गुण होने पर
२७ उसी निर्गुण विश्वव्यापी पुरुष में लीन हो जाते हैं।

तीन सौ बावन अध्याय

ब्रह्माजी का रुद्र से नारायण की महिमा का वर्णन करना

ब्रह्माजी ने कहा—बेटा! विद्वानों ने नारायण को अनादि, अनन्त, परिणामशून्य, वाणी और मन से परे तथा सर्वव्यापी बतलाया है। क्या तुम, क्या मैं और क्या कोई और, उनके दर्शन नहीं कर सकता। केवल ज्ञान के द्वारा उनके दर्शन हो सकते हैं। वे निराकार पुरुष सब प्राणियों के शरीर में रहते और शुभ-अशुभ कर्मों से निर्लिप्त रहते हैं। वे हम सबके अन्तरात्मा और साक्षी हैं। हम लोग उनको पूर्ण रूप से नहीं जान सकते। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनका सिर, हाथ, पैर और नासिका-स्वरूप है। वे अपनी इच्छा के अनुसार परम सुख से सब प्राणियों में विचरते हैं। शरीर-रूप क्षेत्र और शुभाशुभ कर्म-रूप बीज उनको विदित है, इसी से वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। कोई नहीं जानता कि वे किस तरह प्राणियों के शरीर में रहते और किस तरह शरीर को त्यागते हैं। मैं सांख्य और योग की सहायता से आत्म-तत्त्व का चिन्तन करता हूँ; किन्तु किसी तरह उस परम तत्त्व का ज्ञान मुझे नहीं होता। अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उस सनातन पुरुष के एकत्व और महत्त्व का वर्णन करता हूँ। पण्डितों ने उसे अद्वितीय पुरुष कहा है। महापुरुष शब्द का प्रयोग केवल उसी के लिए किया जाता है। जैसे एक अग्नि अनेक रूपों से प्रज्वलित होता है वैसे ही एक परमात्मा अनेक रूपों में प्रकाशित होता है। जैसे एक सूर्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही केवल परमात्मा से सारा संसार प्रकाशित है। जैसे एक वायु संसार भर में बहता है किन्तु किसी में लिप्त नहीं होता वैसे ही अकेला परमात्मा सर्वत्र विचरता है और निर्लिप्त बना रहता है। जैसे समुद्र जल

की उत्पत्ति और लय का स्थान है वैसे ही एकमात्र पुरुष सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का कारण है। जो मनुष्य देह और इन्द्रिय आदि के अभिमान, शुभ-अशुभ कर्म और सच १०
तथा झूठ का त्याग कर सकता है वही निर्गुण हो सकता है। जो महात्मा योग के बल से अचिन्त्य परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके अनिरुद्ध को प्रद्युम्न में, प्रद्युम्न को सङ्कर्षण में और सङ्कर्षण को वासुदेव में मिलाकर समाधि लगाते हैं वही उस परमपुरुष में लीन हो सकते हैं। योग के जानकारों ने उस परमपुरुष को जीवात्मा से श्रेष्ठ बतलाया है। सांख्य के विद्वान् परमात्मा और जीवात्मा में कोई भेद नहीं मानते। आत्मज्ञानियों ने परमात्मा को ही निर्गुण, सर्वव्यापी और नारायण कहा है। जैसे कमल का पत्ता पानी में रहकर भी लिप्त नहीं होता वैसे ही परमात्मा हमेशा कर्म के फल से अलिप्त रहता है। जीवात्मा कभी तो मोक्ष प्राप्त करना चाहता है और कभी विषयों में आसक्त हो जाता है। वह लिङ्ग-शरीर में स्थित होकर देवता और मनुष्य आदि के अनेक रूप धारण करता है। इसी कारण पण्डितों ने पुरुष के अनेक रूप माने हैं; किन्तु वास्तव में पुरुष है एक ही। वही सर्वप्रकाशक पुरुष मन्ता और मन्तव्य, भोक्ता और भोग्य, रसास्वादनकर्ता और रसनीय, घ्राता और घ्रेय, स्पर्शकर्ता और स्पर्शनीय, द्रष्टा और दर्शनीय, श्रोता और श्रवणीय, ज्ञाता और ज्ञेय तथा सगुण और निर्गुण कहलाता है। उसी शाश्वत अव्यय पुरुष से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मज्ञानी लोग उसी पुरुष को अनिरुद्ध कहते हैं। वही सब वैदिक कर्मों का अधिष्ठाता है। संसार उसी को प्रसन्न करने के लिए काम्य कर्म करता है। जितेन्द्रिय महर्षिगण और सब देवता उसी को यज्ञ का भाग देते हैं। उसी से उत्पन्न होकर मैंने तुमको उत्पन्न किया है और तुमसे सब स्थावर-जङ्गम प्राणियों तथा साङ्गोपाङ्ग वेद की सृष्टि हुई है। वही नारायण (परमात्मा, जीवात्मा, बुद्धि और मन) चार प्रकार से विभक्त होकर शरीर में क्रीड़ा करते हैं। जीवात्मा को जब आत्मज्ञान हो जाता है तब वह परमात्मा में लीन हो जाता है। हे पुत्र, सांख्य और योग-शास्त्र में जिस प्रकार परम तत्त्व का वर्णन किया गया है उसे विस्तार के साथ मैंने कह सुनाया। २३

तीन सौ तिरपन अध्याय

युधिष्ठिर का भीष्म से आश्रमवासियों के धर्म पूछना

धर्मराज ने भीष्म से कहा—पितामह, आपने विस्तार से मङ्गलमय मोक्ष-धर्म का वर्णन किया। अब आश्रमवासियों के श्रेष्ठ धर्म का वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, सब आश्रमों में स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले अनेक धर्मों का विधान है। यज्ञ आदि अनेक उपायों से धर्म किया जाता है। धर्म-कर्म कभी निष्फल नहीं होता। जिसकी जिस धर्म में रुचि होती है वह उसी धर्म की विशेष प्रशंसा करता है। प्राचीन समय में

देवर्षि नारद ने इन्द्र से जो कहा था वह सुनो। एक बार देवर्षि नारद, वायु के समान अव्याहत गति से, तीनों लोकों में घूमते-घामते इन्द्रलोक में पहुँचे। इन्द्र ने उनका यथोचित सम्मान करके अपने पास बैठाकर पूछा—देवर्षि, आप तो साक्षी के समान विश्व में विचरते रहते हैं। संसार की कोई बात आपसे छिपी नहीं है। आपने कहीं कोई आश्चर्य-जनक घटना देखी-सुनी हो
११ तो बतलाइए। यों पूछे जाने पर देवर्षि नारद ने जो कुछ कहा था उसको सुनो।

तीन सौ चौवन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से धर्मारण्य नामक ब्राह्मण का इतिहास कहना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! प्राचीन समय में, अति समृद्धिशाली महापद्मनगर में, भागीरथी के दक्षिण तट पर अत्रिवंशी एक सौम्य ब्राह्मण रहते थे। वे वेद के पारङ्गत, सत्यवादी, सच्चरित्र, क्रोधहीन, सन्तोषी, जितेन्द्रिय, कुल के धर्म का पालन करनेवाले और तपस्वी थे। वे वेद का अध्ययन करते और धर्मानुसार धन उपार्जन करके कुटुम्ब का भरण-पोषण करते थे। उन ब्राह्मण देवता के कई पुत्र थे। पुत्रों के योग्य हो जाने पर ब्राह्मण देवता धर्म करने के लिए व्यग्र होकर सोचने लगे कि वेदोक्त धर्म, शास्त्रोक्त धर्म और सज्जनों का आचरित धर्म, ये तीन प्रकार के धर्म हैं; इनमें से कौन सा धर्म मेरे लिए श्रेयस्कर है। मैं किस धर्म का अवलम्बन करूँ? वे बहुत दिनों तक इसी प्रकार सोच-विचार करते रहे, किन्तु कुछ निर्णय न कर सके। कुछ दिनों बाद एक ब्राह्मण अतिथि उनके घर आया। ब्राह्मण ने श्रद्धा के साथ उसका सत्कार किया। अतिथि
९ भी ब्राह्मण के सत्कार से बड़ा प्रसन्न हुआ और आराम से बैठकर अपनी थकावट दूर करने लगा।

तीन सौ पचपन अध्याय

अतिथि से धर्मारण्य ब्राह्मण की बातचीत

[अतिथि के विश्राम कर चुकने पर] ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन्, आपकी मीठी बातें सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब आपसे मित्रभाव से कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिए। पुत्र को घर-द्वार सौंपकर मैं संन्यास लेकर आत्म-चिन्तन करना चाहता हूँ; किन्तु विषयों में फँसे रहने के कारण मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं चाहता हूँ कि अवशिष्ट जीवन को अध्यात्म-चिन्तन में बिताऊँ। संसार-सागर को पार करने के लिए मेरी बुद्धि तो शुद्ध हो गई है; किन्तु अब मुझे धर्मरूप नाव किस आश्रम में मिलेगी? देवता आदि सब, धर्म के फल से, स्वर्ग को जाते और फिर मृत्युलोक में आ जाते हैं। यमराज की ध्वजा-पताका के समान रोग-शोक आदि हमेशा प्राणियों में घूमा करते हैं और संन्यासी लोग भोजन-वस्त्र के लिए गृहस्थों के द्वार-

द्वार पर भटकते रहते हैं। यह सब देख-सुनकर मेरा मन किसी धर्म पर स्थिर नहीं होता, अतएव आप बुद्धि-बल से मुझे किसी श्रेष्ठ धर्म में नियुक्त कर दीजिए।

धर्मार्थी ब्राह्मण के यों कहने पर चतुर अतिथि ने कहा—ब्रह्मन्, आपकी तरह श्रेष्ठ धर्म प्राप्त करने की मेरी भी इच्छा है; किन्तु मैं यह निर्णय नहीं कर सकता कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ है। संसार में कोई तो मोक्ष की और कोई यज्ञ के फल की प्रशंसा करते हैं; कोई गृहस्थ-धर्म और कोई वानप्रस्थ-धर्म का अवलम्बन करते हैं। कोई राजधर्म, कोई संन्यासधर्म, कोई गुरु-सेवा १०
आदि धर्म और कोई मौन-व्रत का पालन करना पसन्द करते हैं। कुछ मनुष्य केवल माता-पिता की सेवा, कोई अहिंसा-धर्म, कोई सत्य का पालन, कोई सम्मुख-युद्ध में शरीर का त्याग, कोई उञ्छवृत्ति, कोई वेदव्रत-परायण और जितेन्द्रिय होकर निरन्तर वेद का अध्ययन करके स्वर्ग प्राप्त करते हैं। कोई-कोई भोले-भाले महात्मा कुटिल मनुष्यों द्वारा ठगे जाने पर भी देवलोक में निवास करते हैं। इस प्रकार अनेक धर्मों के द्वार खुले हुए हैं; किन्तु मेरा मन यह निश्चय नहीं कर सकता कि किस धर्म का अवलम्बन करने से कल्याण होगा। १६

तीन सौ छप्पन अध्याय

अतिथि का धर्मारण्य को नैमिषारण्य में नागराज के पास जाने की सलाह देना

अतिथि ने कहा—हे विप्र, धर्म का मार्ग बहुत कठिन है। इस विषय में गुरुजी ने मुझे जो उपदेश दिया था वह मैं सुनाता हूँ। प्राचान समय में जिस स्थान पर प्रजापति ब्रह्मा का धर्मचक्र प्रवर्तित हुआ था, जिस स्थान पर देवताओं ने यज्ञ किया था और जिस स्थान पर महाराज मान्धाता ने इन्द्र को अतिक्रम किया था उसी स्थान पर, गोमती नदी के किनारे, नैमिषारण्य में नागपुर है। उस नगर में पद्मनाभ नाम से प्रसिद्ध एक धर्मात्मा महानाग रहता है। वह मन-वचन-कर्म से प्राणियों का हित करता तथा साम, दान, भेद और दण्ड द्वारा दुष्टों का दमन और सज्जनों की रक्षा करता है। वह कुलीन, बुद्धिमान्, विद्वान्, गुणवान्, निर्दोष, अध्ययन-निरत, अतिथिसेवी, तपस्वी, दमगुण-सम्पन्न, सच्चरित्र, याज्ञिक, दानी, क्षमाशील, सत्यवादी, ईर्ष्याहीन, सन्तोषी और बड़ा विचारशील है। वह अतिथि आदि को भोजन कराकर ही भोजन करता है। आप उसके पास जाकर अपना सन्देह दूर कीजिए। ११

तीन सौ सत्तावन अध्याय

नागराज पद्मनाभ के पास जाने के लिए धर्मारण्य का घर से प्रस्थान

धर्मारण्य ब्राह्मण ने अतिथि से कहा—ब्रह्मन्! बोझा उतर जाने से जिस तरह लदा हुआ मनुष्य, सो जाने से थका हुआ मनुष्य, बैठने से खड़ा हुआ मनुष्य, पानी पीने से प्यासा, समय

पर अभीष्ट भोजन पाने से अतिथि और पुत्र तथा मनचाही वस्तु की प्राप्ति से पुत्रार्थी वृद्ध मनुष्य और जिससे भेंट करनी थी उसके दर्शन हो जाने से दर्शनेच्छु मनुष्य सन्तुष्ट होता है उसी तरह आपकी बातें सुनने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने जैसा कहा है, मैं वैसा ही करूँगा। देखिए, अब शाम हो रही है, अतएव आज यहीं रह जाइए। सबेरे चले जाइएगा।

भीष्म कहते हैं—रात बिताने का प्रस्ताव स्वीकार करके उस अतिथि ने धर्मारण्य का आतिथ्य ग्रहण किया और उसके साथ संन्यास-धर्म की बातें करते-करते, दिन की तरह, बड़े सुख से रात बिता दी। सबेरा होते ही अतिथि, धर्मारण्य द्वारा सम्मानित होकर, वहाँ से चला गया। तब धर्मारण्य ब्राह्मण भी अपने कुटुम्बियों से आज्ञा लेकर, अतिथि के उपदेशानुसार, उस नाग-
११ राज के पास जाने के लिए नैमिष की ओर चल पड़ा।

तीन सौ अट्ठावन अध्याय

धर्मारण्य का पद्मनाभ के घर पहुँचना और नाग की स्त्री से बातचीत करना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! वह ब्राह्मण घर से चलकर मार्ग में अनेक वन, तीर्थ और सरोवर आदि देखता हुआ एक महर्षि के आश्रम पर पहुँचकर उनसे उस नाग का हाल पूछने लगा। महर्षि ने नागराज का पता बतला दिया। तब ब्राह्मण नाग के दरवाज़े पर पहुँचकर पुकारने लगा। उस समय नाग-राज घर में नहीं था। उसकी धर्मपरायणा पत्नी ब्राह्मण के पास आ गई। कुशल पूछकर, यथोचित सम्मान करके, उसने पूछा—भगवन्! कहिए, क्या आज्ञा है?

ब्राह्मण ने नाग-पत्नी से कहा—देवि, तुमने यथोचित सत्कार करके और मीठी-मीठी बातों से मेरी थकावट दूर कर दी है। मैं नागराज के दर्शन करने आया हूँ। उनसे भेंट होने पर मेरी इच्छा पूरी हो जायगी।

नाग की स्त्री ने कहा—भगवन्, मेरे पति को वर्ष में महीने भर सूर्य का रथ हाँकना पड़ता है। वे आजकल सूर्य का रथ हाँकने गये हुए हैं। आप पन्द्रह दिन यहाँ ठहरिए, तब उनके दर्शन होंगे। और कुछ आज्ञा हो तो कहिए।

धर्मारण्य ब्राह्मण ने कहा—देवि, मैं केवल नागराज के दर्शन करने आया हूँ अतएव इस गोमती नदी के किनारे, परिमित भोजन करता हुआ, मैं उनकी बाट जोहूँगा। जब वे घर आ जावें तब उन्हें मेरे आने की ख़बर दे देना। नाग की स्त्री से बार-बार यों कहकर ब्राह्मण गोमतीतट पर जाकर ठहर गया। १३

तीन सौ उनसठ अध्याय

ब्राह्मण का पद्मनाभ की प्रतीक्षा में गोमती-किनारे निराहार ठहरना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! अब नागराज की स्त्री, उनके भाई और कुटुम्ब के सब लोग ब्राह्मण के पास गये। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण देवता, गोमती के किनारे, निर्जन स्थान में निराहार बैठे हुए जप कर रहे हैं। ब्राह्मण की यथोचित पूजा करके उन लोगों ने कहा—भगवन्, आपको यहाँ आये छः दिन हो गये; किन्तु आज तक आपने कुछ भोजन नहीं किया। हम लोग गृहस्थ हैं, अतिथि-सत्कार करना हमारा प्रधान धर्म है। आप हमारे घर आये हैं, हमारे यहाँ ठहरे हैं, इसलिए आपको हमारा दिया हुआ पानी पीना और फल-मूल, पत्ता या अन्न खाना चाहिए। इस निर्जन स्थान में निराहार रहकर हमारे कुटुम्ब भर को पाप में डालना आपको उचित नहीं। हमारे वंश में किसी ने कभी भ्रूण-हत्या नहीं की, किसी की सन्तान पैदा होते ही नहीं मर जाती और बिना देवताओं की पूजा किये तथा अतिथियों और कुटुम्बियों को भोजन दिये, कोई कभी भोजन नहीं करता।

ब्राह्मण ने कहा—नागगण, आप लोगों की बातों से ही मैं तृप्त हो गया। नागराज के आने में अभी आठ दिन बाक़ी हैं। यदि नवें दिन नागराज न आवेंगे तो मैं अवश्य भोजन करूँगा। उन्हीं के आने के लिए मैं यह कठोर व्रत कर रहा हूँ। आप लोग शोक छोड़कर घर जायँ। मेरे इस व्रत में आप विघ्न न डालें। ब्राह्मण की यह बात सुनकर विफल-मनोरथ नागगण घर को लौट गये। १३

तीन सौ साठ अध्याय

घर आने पर नागराज पद्मनाभ को ब्राह्मण के आने का समाचार मिलना

भीष्म ने कहा—धर्मराज! पन्द्रह दिन पूरे हो जाने पर नागराज अपना काम करके, सूर्य की आज्ञा से, घर लौट आये। उसी दम उनकी स्त्री, पैर धोने के लिए, उनके पास आ गई।

नागराज ने पतिव्रता स्त्री को अपने पास आई देखकर कहा—प्रिये! देवता और अतिथि की पूजा करने की जो आज्ञा मैं तुमको दे गया था उसका पालन करने में, स्त्री-स्वभाव के कारण, तुमने कुछ त्रुटि तो नहीं की?

स्त्री ने कहा—नाथ ! गुरु की सेवा करना शिष्यों का, वेद पढ़ना ब्राह्मणों का, स्वामी की आज्ञा मानना नौकरों का, प्रजा का शासन करना राजा का, विपत्ति में पड़े हुए की रक्षा करना क्षत्रियों का, यज्ञ आदि कर्म और अतिथि की सेवा करना वैश्यों का, तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का और सब प्राणियों का हित करना गृहस्थों का प्रधान धर्म है; परिमित भोजन, नियमानुसार व्रत और इन्द्रियों का संयम करना सब वर्णों का; मैं किसका हूँ, किससे उत्पन्न हुआ हूँ, किसके साथ मेरा सम्बन्ध है, यह विचार करना संन्यासी का और पातिव्रत स्त्री का प्रधान धर्म है। नागराज ! आप मुझे जो उपदेश दे गये थे, मैं उसी को यथार्थ धर्म समझती हूँ अतएव मैं सुमार्ग
११ को छोड़कर कुमार्ग में क्यों पैर रक्खूँगी ? मैं आलस्य छोड़कर प्रतिदिन देवताओं की पूजा और अतिथि-सत्कार करती रही हूँ। आज पन्द्रह दिन हुए, एक ब्राह्मण देवता किसी काम से यहाँ आये हुए हैं। उन्होंने बहुत पूछने पर भी अपना अभिप्राय मुझे नहीं बतलाया। वे आपके दर्शन करना चाहते हैं। वे आपकी प्रतीक्षा में गोमती के किनारे ठहरे हुए हैं। यहाँ से जाते समय कह गये हैं कि आने पर नागराज को ख़बर दे देना। मैंने इसका उनसे वादा कर लिया
१६ है, अतएव आप शीघ्र गोमती-किनारे जाकर उनसे मिल लीजिए।

तीन सौ इकसठ अध्याय

पद्मनाभ का अपनी स्त्री से आगन्तुक ब्राह्मण के विषय में प्रश्न

नागराज ने कहा—प्रिये, तुमने उन ब्राह्मण देवता को देखकर क्या समझा है ? वे मनुष्य हैं या ब्राह्मण का रूप धारण करके कोई देवता आये हैं ? मैं समझता हूँ कि वे मनुष्य न होंगे; क्योंकि मनुष्य, दर्शन करने के लिए, मुझे कभी अपने पास नहीं बुला सकता। देवताओं, दानवों और देवर्षियों की अपेक्षा नाग महापराक्रमी, वरदानी और पूजनीय हैं। मनुष्यों के दर्शन योग्य हम लोग नहीं हैं।

नाग की स्त्री ने कहा—नाथ, उनकी सरलता से जान पड़ता है कि वे देवता नहीं हैं। वे आपके परमभक्त हैं। वे किसी प्रयोजन से, प्यासे चातक की तरह, आपके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा न हो कि आपके दर्शन न होने से उनका कुछ अमङ्गल हो जाय। कोई सद्गृहस्थ अतिथि का अनादर नहीं करता। अतएव उनसे मिलना आपका कर्तव्य है जिसमें आज ब्राह्मण के निराश हो जाने से आपको शोक न करना पड़े। जो राजा या राजपुत्र आशायुक्त व्यक्ति की आशा नहीं पूरी करता उसे ब्रह्महत्या लगती है। मौन रहने से ज्ञान, दान देने से
१० यश और सच बोलने से वाक्चातुर्य तथा परलोक में सम्मान प्राप्त होता है। भूमिदान करने से शुभ फल मिलता है। शुभ कर्म करने से सद्गति होती है।

नागराज ने कहा—प्रिये, मुझे अपनी जाति का अभिमान नहीं है। दूसरे नागों की तरह मैं क्रोध से मूर्खता भी नहीं कर बैठता हूँ। मुझमें जो स्वाभाविक थोड़ा क्रोध था भी

वह तुम्हारे वचनों की आग में भस्म हो गया। क्रोध के समान दूसरा शत्रु नहीं है। देखो, इन्द्र का प्रतिद्वन्द्वी महाप्रतापी रावण, क्रोध के वश होने से, रामचन्द्र के हाथ से मारा गया। इन्द्र के समान महापराक्रमी कार्तवीर्य को, पुत्रों समेत, कुपित परशुराम ने—अन्तःपुर से कामधेनु छीन ले जाने की बात सुनकर—युद्ध में मार डाला था। मैंने तुम्हारी बातें सुनकर कल्याण का नाश करनेवाले, तपस्या के प्रधान शत्रु, क्रोध को त्याग दिया है। आज तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। तुम जैसी स्त्री पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। अब मैं गोमती के किनारे ब्राह्मण के पास जाता हूँ। मैं उनका मनोरथ पूरा करूँगा और वे कृतकार्य होकर अपने घर जायँगे। २०

तीन सौ बासठ अध्याय

नागराज का गोमती के किनारे ब्राह्मण के पास जाकर बातचीत करना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज! इसके बाद नागराज, ब्राह्मण के सम्बन्ध में, सोच-विचार करता हुआ गोमती के किनारे ब्राह्मण के पास जाकर बोला—हे विप्र, कृपा कर बतलाइए कि आप किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं और इस निर्जन स्थान में नदी-किनारे किसकी उपासना कर रहे हैं।

ब्राह्मण ने कहा—महात्मन्, मेरा नाम धर्मारण्य है। मैं एक काम से नागराज पद्मनाभ से मिलने आया हूँ। मैंने उनके घर में सुना कि वे सूर्य के पास गये हैं। जिस तरह किसान बादलों की राह देखा करते हैं उसी तरह मैं उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ और उन्हीं के भले के लिए एकाग्रचित्त होकर वेदपाठ करता हूँ।

नागराज ने कहा—ब्रह्मन्, आप सच्चरित्र और बड़े सत्सङ्गी हैं। उस नाग पर सचमुच आपकी बड़ी कृपा है। आप जिसके पास आये हैं वह नाग मैं ही हूँ। बेधड़क आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ। घर के लोगों से आपके आने की ख़बर पाकर मैं आपके दर्शन करने आ गया हूँ। विश्वास रखिए, आप मुझे जिस काम के करने की आज्ञा १०
देंगे, उसे मैं अवश्य करूँगा। जब आप अपना हित छोड़कर मेरा भला मना रहे हैं तब आप निस्सन्देह प्रशंसनीय हैं।

धर्मारण्य ने कहा—नागराज, मैं आपसे कुछ पूछने के लिए आया हूँ और आपके दर्शन की आशा से यहाँ ठहरा हुआ हूँ। परमात्मा को जानने के लिए मैं उत्सुक हो रहा हूँ। संसार से न तो मुझे वैसा अनुराग है, न विराग ही। आप अपने यश द्वारा चन्द्रमा के समान प्रसिद्ध हो गये हैं। आपके सूर्य-लोक जाने का वृत्तान्त सुनकर आपसे एक और बात पूछने की इच्छा हुई है। आप पहले इसी का उत्तर दीजिए। फिर मैं बतलाऊँगा कि यहाँ क्यों आया हूँ। १६

तीन सौ तिरसठ अध्याय

नागराज का धर्मारण्य से उञ्छवृत्ति-धर्मावलम्बी एक महात्मा के सूर्यमण्डल में प्रविष्ट होने का वृत्तान्त कहना

ब्राह्मण ने कहा—नागराज, आप हर साल महीने भर सूर्य का रथ हाँकते हैं। यदि वहाँ आपने कोई अद्भुत वस्तु देखी हो तो बतलाइए।

नाग ने कहा—ब्रह्मन्, सूर्यदेव तो अनेक अद्भुत वस्तुओं की खान हैं। उन्हीं से सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं। वायु उन्हीं से उत्पन्न होकर, उन्हीं की किरणों का आश्रय करके, आकाश-मण्डल में भ्रमण करता है। क्या यह थोड़ा आश्चर्य है? सूर्यदेव वायु का कई भागों में विभक्त करके, प्रजा का हित करने के लिए, वर्षा ऋतु में पानी बरसाते हैं। क्या यह थोड़ा आश्चर्य है? जिस तरह पेड़ की डालियों पर चिड़ियाँ बसेरा लेती हैं उसी तरह सूर्य की किरणों में देवता और महर्षिगण निवास करते हैं। क्या यह थोड़ा आश्चर्य है? परमात्मा अपने तेज से सूर्यमण्डल को प्रदीप्त करके सब लोकों को प्रत्यक्ष करता है। सूर्य की शुक्र नाम की, कृष्ण वर्ण की, एक किरण है। यही किरण, बादल-रूप से आकाश-मण्डल में उत्पन्न होकर, बरसात में पानी बरसाती है। इससे बढ़कर क्या आश्चर्य होगा? सूर्यदेव बरसात में पृथ्वी पर जो पानी बरसाते हैं उसे, आठ महीने में, अपनी किरणों से खींच लेते हैं। इससे अधिक क्या आश्चर्य होगा? वे बीज उत्पन्न करते और पृथ्वी का पालन करते हैं। अनादि अनन्त नारायण स्वयं उनमें निवास करते हैं। इससे अधिक क्या आश्चर्य होगा? निर्मल आकाश में सूर्य के पास रहकर मैंने एक बड़ी अद्भुत घटना देखी है। एक बार सूर्यदेव मध्याह्न के समय किरणें फैलाकर सब लोकों को तपा रहे थे, उसी समय एक सूर्य के समान महातेजस्वी पुरुष देख पड़ा। वह पुरुष अपने तेज के प्रभाव से सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ, आकाश-मण्डल को विदीर्ण करता सा, सूर्य के सामने आ गया। तब सूर्यदेव ने उस पुरुष का स्वागत करने के लिए अपने दोनों हाथ फैला दिये। उस पुरुष ने भी

१०

सूर्य का सम्मान करने के लिए अपना दाहिना हाथ बढ़ाया। इसके बाद वह आकाश-मण्डल को भेद कर सूर्य की किरणों में प्रविष्ट हो गया। तब सूर्य और उस पुरुष में कोई भेद न रह गया। उस समय हम लोगों को बड़ा सन्देह हुआ कि इन दोनों में सूर्यदेव कौन हैं। मैंने सूर्यदेव से पूछा कि भगवन्, यह जो पुरुष आकाश-मण्डल में दूसरे सूर्य के समान देख पड़ा था, वह कौन है। १८

तीन सौ चौंसठ अध्याय

नागराज का धर्मारण्य ब्राह्मण से उञ्छवृत्ति का माहात्म्य कहना

सूर्यदेव ने कहा—तुमने जिस महातेजस्वी पुरुष को देखा है यह देवता, अग्नि, सर्प या असुर नहीं है। यह एक उञ्छवृत्ति करनेवाला सिद्ध महर्षि है। इसने उञ्छवृत्ति का अवलम्बन करके फल, मूल, सूखे पत्ते और हवा खाकर—जल पीकर—स्वर्ग की इच्छा से संहिता का पाठ करके महादेवजी को प्रसन्न किया और स्वर्ग-फल प्राप्त किया है यह ब्राह्मण सब प्राणियों का हितैषी था। देवता, गन्धर्व, असुर और नाग आदि जितने लोग सद्गति प्राप्त करके सूर्य-मण्डल में आये हैं उनमें कोई भी इस ब्राह्मण की बराबरी का नहीं है।

ब्रह्मन्, सूर्य के पास रहकर मैंने यह अद्भुत घटना देखी है। उञ्छवृत्ति करनेवाला वह ब्राह्मण आज भी सूर्य के साथ पृथ्वी-पर्यटन कर रहा है। ६

तीन सौ पैंसठ अध्याय

उञ्छवृत्ति का माहात्म्य सुनकर धर्मारण्य का नागराज से विदा मांगना

ब्राह्मण ने कहा—नागराज, आपने सचमुच बड़े आश्चर्य की बात सुनाई है। आपकी बातें सुनने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मेरा कार्य सिद्ध हो गया। आपका भला हो, अब मैं जाता हूँ। आप मेरी ख़बर लेते रहिएगा।

नाग ने कहा—भगवन्, अपना प्रयोजन बतलाये बिना यहाँ से चला जाना आपको उचित नहीं। बतलाइए, आप यहाँ किस काम से आये हैं। जब आपका कार्य सिद्ध हो जाय तब मुझसे पूछकर आपको जाना चाहिए। अब हम दोनों में मित्रता हो गई है इसलिए, वृक्ष के नीचे बैठे हुए पथिक के समान, उदासीन भाव से केवल मुझे देखकर चल देना आपका कर्त्तव्य नहीं। मुझ पर आपकी जैसी भक्ति है वैसी ही भक्ति आप पर मेरी है। जब मेरे साथ आपकी मित्रता हो गई है तब मेरे घर ठहरने में आपको क्या संकोच है? आपके और मेरे बीच कोई भेद-भाव नहीं है। मेरा परिवार आपके अधीन है।

ब्राह्मण ने कहा—नागराज, आपका कहना ठीक है। देवता भी आपसे बढ़कर नहीं हैं। जब हम, आप और सभी प्राणी परब्रह्म में लीन हो जायँगे तब आपमें और मुझमें अभेद हो

जाना कोई सन्देह की बात नहीं है। जो हो, पहले मैं पुण्य-सञ्चय करने का कोई उपाय निश्चित नहीं कर सकता था। आपकी कृपा से अब मैंने उपाय का निश्चय कर लिया है। अब आप सुख से घर में रहें, मैं जाता हूँ। परमार्थ प्राप्त करने के लिए अब मैं उञ्छवृत्ति का अवलम्बन करूँगा।

तीन सौ छाछठ अध्याय

धर्मारण्य ब्राह्मण का महर्षि च्यवन के पास जाना और उनसे दीक्षा लेकर उञ्छवृत्ति का अवलम्बन करना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस प्रकार वह ब्राह्मण नागराज से बिदा होकर वहाँ से चल दिया। फिर वह दीक्षा लेने के लिए भृगुनन्दन च्यवन के पास गया। उसने अपना सब वृत्तान्त उनसे कहा। महात्मा च्यवन ने, उसका संस्कार करके, उसे उञ्छवृत्ति की दीक्षा दी। तब वह ब्राह्मण धर्म में श्रद्धा रखकर, संयम और नियम का पालन करता हुआ, उञ्छवृत्ति द्वारा अपना निर्वाह करने और वन में विचरने लगा। पहले महर्षि च्यवन ने महाराज जनक के यहाँ देवर्षि नारद को यह कथा सुनाई थी। उसके बाद नारदजी ने इन्द्र को और इन्द्र ने अन्य ब्राह्मणों को यह वृत्तान्त सुनाया। परशुरामजी के साथ जिस समय मेरा युद्ध हो रहा था उस समय वसुगण ने यह पवित्र कथा मुझे सुनाई थी। अब तुमने मुझसे आश्रमवासियों का धर्म पूछा है इसलिए मैंने यह उपाख्यान कह सुनाया।

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

अनुशासनपर्व

आनुशासनिकपर्व

पहला अध्याय

भीष्म का प्राणियों को कर्मों के अधीन बतलाकर गौतमी और व्याध का संवाद सुनाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने शमगुण की बारीकियाँ समझाई तो हैं; किन्तु फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। भूल से यदि कोई पाप हो जाय तो उसके लिए बुद्धिमान् मनुष्य को सोच न करना चाहिए, परन्तु जान-बूझकर पाप किया गया हो तो किस प्रकार शान्ति मिल सकती है? आपका शरीर बाणों से घायल होकर, पानी की धारा बहा रहे पर्वत के समान, रक्त की वर्षा करके मेरी करनी का परिचय दे रहा है। यह देखकर मुझे बड़ा खेद हो रहा है। मेरे कारण ही आपकी यह दशा हुई है। अपनी आँखों आपकी यह दशा देखकर मैं, बरसाती कमल की तरह, दुखी हो रहा हूँ। ये सब राजा मेरे ही कारण, पुत्रों और मित्रों समेत, समर-भूमि में मरे पड़े हैं। इनकी यह दुरवस्था देखकर शोक के मारे मेरा हृदय फटा जा रहा है। काल और क्रोध के वश होकर हम दोनों पक्षों के लोगों ने यह निन्दित काम किया है। इस पाप से हम लोगों की न मालूम कैसी दुर्गति होगी। आपकी यह दुर्दशा दुर्योधन को नहीं देखनी

पड़ी। वह बड़ा भाग्यवान् है। आपकी और अन्य सुहृदों की मृत्यु का कारण मैं ही हूँ। आपको शरशय्या पर देखकर मुझे शान्ति नहीं मिलती। दुर्योधन यद्यपि कुरुकुल का द्रोही था तो भी वह भाइयों और सैनिकों समेत, क्षत्रियधर्म के अनुसार, युद्ध में प्राण त्यागकर मेरी अपेक्षा सुखी है। अब तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। यदि मैं भाइयों समेत शत्रुओं द्वारा मारा गया होता तो, बाणों से पीड़ित, आपकी यह दशा मुझे न देखनी पड़ती। जान पड़ता है कि विधाता ने पाप करने के लिए ही हम लोगों को उत्पन्न किया है। अब आप वह उपदेश दीजिए जिससे हम लोगों को परलोक में इस पाप से छुटकारा मिले।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! तुम काल, शुभ-अशुभ कर्म और ईश्वर के अधीन आत्मा को पाप-पुण्य का कारण क्यों समझते हो? आत्मा किसी कर्म का कारण नहीं है। इस विषय में काल, बहेलिया और साँप के साथ मृत्यु तथा गौतमी की जो बातचीत हुई थी वह सुनो। प्राचीन समय में गौतमी नाम की शान्तिपरायणा एक वृद्धा ब्राह्मणी थी। अन्धे की लाठी के समान एक मात्र आधार उसका पुत्र था। एक दिन उसके पुत्र को साँप ने डस लिया जिससे वह मर गया। यह देखकर अर्जुनक नाम के बहेलिये को क्रोध आ गया। उसने ताँत से साँप को बाँधकर, गौतमी के पास ले जाकर, कहा—हे कल्याणी, इसी साँप ने तुम्हारे पुत्र को काट लिया है। तुम जिस तरह कहो उस तरह इसे मार डालूँ। तुम्हारे बेटे को काटनेवाले इस पापी को जीवित रहने देना उचित नहीं। इसे आग में जला दूँ या टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दूँ?

गौतमी ने कहा—अर्जुनक! तुम बड़े नासमझ हो, इसे छोड़ दो। कौन बुद्धिमान् मनुष्य, श्रेष्ठ गति पाने की आशा छोड़कर, सिर पर पाप का बोझा लादेगा? धर्मात्मा मनुष्य दुःखसागर को वैसे ही पार कर लेता है जैसे कि नाव सरोवर के पार पहुँच जाती है; किन्तु जो मनुष्य पाप के भार से दबा रहता है वह, पानी में गिरे शस्त्र की तरह, दुःखसागर में डूब जाता है। इस साँप के मार डालने से मेरा पुत्र जीवित नहीं हो सकता और इसको छोड़ देने से भी मेरी कोई हानि न होगी, अतएव ऐसे अवसर पर इसके प्राण लेकर कौन अनन्त काल तक नरक भोगे?

बहेलिये ने कहा—देवि, मैं जानता हूँ कि बड़े-बूढ़े लोग स्वभाव से ही दूसरों के दुःख में दुखी होते हैं; किन्तु तुम्हारा यह उपदेश तो शोकहीन मनुष्यों को देने योग्य है। इस दुष्ट साँप को इसी दम मार डालने की आज्ञा मुझे दो। जिनका स्वभाव शान्त है वही अप्रिय घटना को काल के द्वारा हुई मानकर उसके लिए शोक नहीं करते; किन्तु बदला लेनेवाले मनुष्य बदला लिये बिना नहीं मानते। तीसरी श्रेणी के लोग मोह के वश लगातार अप्रिय घटना का शोक किया करते हैं। अतएव तुम इस साँप को मरवाकर पुत्र-शोक करना छोड़ दो।

गौतमी ने कहा—अर्जुनक, हम जैसों को कभी शोक नहीं होता। सज्जनों को सदा धर्म का ध्यान रहता है। मेरे पुत्र की मौत आ गई थी इसी से साँप ने उसे डस लिया, इसलिए इस

साँप के प्राण लेना व्यर्थ है। ब्राह्मण में तो क्रोध होता ही नहीं, फिर क्रोध करने से होनेवाला दुःख ही कहाँ ? अतएव मुझे इस साँप पर रत्ती-भर भी क्रोध नहीं है। तुम इसको छोड़ दो।

व्याध ने कहा—हे कल्याणी, शत्रुओं को मार डालने से तीनों लोकों में कीर्ति होती है। इससे शत्रु के मारने में देर न करें। बलवान् शत्रु को मारकर अपनी कीर्ति फैलाना ही श्रेष्ठ काम है। यदि यह साँप बिना मारे ही मर जाय तो शत्रु का मर जाना अच्छा है सही, किन्तु वह कोई प्रशंसनीय काम नहीं है।

गौतमी ने कहा—व्याध, इस साँप को मार डालने या बाँध रखने से ही मेरा क्या लाभ है ? अतएव इसको क्षमा कर देना ही भला है। मेरा कर्तव्य तो मोक्ष पाने के लिए यत्न करना है।

व्याध ने कहा—कल्याणी, इस साँप को मार डालने से अनेक प्राणियों की रक्षा होगी। अतएव अनेकों की रक्षा न करके केवल इसकी रक्षा करना युक्तिसङ्गत नहीं है। धर्मात्मा मनुष्य अपराधी को दण्ड देते हैं, इसलिए इस पापी को मार डालना ही ठीक है। ३०

गौतमी ने कहा—व्याध, इस साँप को मार डालने से मेरा पुत्र जी नहीं सकता। इसके सिवा इसे मारने से कोई पुण्य भी नहीं है। इसलिए तुम इसको झटपट छोड़ दो।

व्याध ने कहा—गौतमी, इन्द्र ने वृत्रासुर को मार करके महत्त्व प्राप्त किया था और रुद्र ने यज्ञ का विध्वंस करके यज्ञ में भाग पाया है। अतएव तुम देवताओं का अनुकरण करके, बिना आगा-पीछा किये, इस शत्रु को मार डालो।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, व्याध ने साँप को मार डालने के लिए बार-बार गौतमी से कहा; किन्तु गौतमी ने किसी तरह उसकी बात न मानी।

उसी समय रस्सी में बँधे हुए साँप ने, धैर्य धरकर, मनुष्य की बोली में कहा—अरे व्याध, इसमें मेरा क्या अपराध है ? मैं तो पराधीन हूँ; मृत्यु की प्रेरणा से मैंने इस बालक को काटा है। अतएव इस बालक की हत्या का यदि कोई दोषी हो सकता है तो वह मृत्यु है।

व्याध ने कहा—साँप, तुमने दूसरे के कहने से ही इस काम को भले किया हो तो भी इस पाप के प्रधान अपराधी तुम्हीं हो। जैसे मिट्टी का बर्तन बनाने के साधन चाक और डण्डा हैं वैसे ही तुम इस बालक की मृत्यु का कारण हो। जब तुम दोषी हो तब तुम्हारा मारा जाना ही ठीक है।

साँप ने कहा—व्याध, जैसे चाक और डण्डा पराधीन हैं वैसे ही मैं भी हूँ। इसलिए मुझे दोषी क्यों बनाते हो ? यदि तुम मुझे इसका कारण मानते हो तो मैं अकेला ही अपराधी नहीं हूँ। जैसे चाक और डण्डा एक-दूसरे के सहायक हैं वैसे ही मैं, काल और मृत्यु, ये सब एक-दूसरे के प्रेरक हैं। इस प्रकार परस्पर प्रेरक होने के कारण सबके साथ सबका कार्य-कारण भाव हो गया। इसलिए मैं अकेला अपराधी और वध के योग्य नहीं समझा जा सकता। यदि दोषी हैं तो हम सब हैं। ४०

व्याध ने कहा—साँप ! मृत्यु यद्यपि इस घटना का प्रधान कारण है तो भी वह इस बालक का विनाशक नहीं है। इसके विनाश के प्रधान कारण तुम्हीं हो इसलिए तुमको मार डालना चाहिए। संसार में यदि दुष्कर्म करने से पाप न लगे तो सब शास्त्र झूठे हो जायँ और चोर आदि को राजा दण्ड न दे सके।

साँप ने कहा—व्याध, कर्ता के होने पर भी कारण के बिना कोई काम नहीं होता इसी से कारण कार्य का साधक समझा जाता है। इस बालक की मृत्यु का कारण मैं हूँ इसलिए तुम मुझे दोषी समझते हो; किन्तु अच्छी तरह विचार करोगे तो मुझे दोषी न समझकर मुझे कारण और मृत्यु को दोषी समझोगे।

व्याध ने कहा—अरे नीच ! तू बड़ा मूर्ख, निठुर और बाल-घातक है। मैं तुझे छोड़ने-वाला नहीं। तू क्यों बकवाद करता है ?

साँप ने कहा—व्याध, यजमान से प्रेरित होकर जैसे ऋत्विक् होम तो करते हैं किन्तु उसके फल के अधिकारी नहीं होते वैसे ही मृत्यु की प्रेरणा से मैंने इस बालक को काटा है इस-लिए मैं अपराधी नहीं हो सकता।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज ! साँप और बहेलिया इस तरह बातें कर रहे थे कि मौत वहाँ आकर कहने लगी—साँप, काल की प्रेरणा से मैंने तुमको प्रेरित किया है इसलिए इस बालक के
५० वध का कारण हम दोनों में कोई नहीं है। जैसे बादल वायु के अधीन हैं वैसे ही मैं काल के वश में हूँ। संसार में सात्त्विक, राजस और तामस जितने जीव हैं वे सब काल के वश हैं। स्वर्ग और मृत्युलोक में जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं वे सब काल के अधीन हैं। सारा संसार काल के वश में है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही काल के अधीन हैं। काल बारम्बार सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, इन्द्र, जल, वायु, अग्नि, आकाश, पृथिवी, मित्र, वसुगण, अदिति, नदी, समुद्र, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य, सबकी सृष्टि तथा संहार किया करता है। हे सर्प, तुम यह सब जानते हो तो फिर मुझे दोषी क्यों कहते हो ? यदि मुझे दोषी ठहराते हो तो तुम्हीं निर्दोष कैसे बने रहोगे ?

साँप ने कहा—हे मृत्यु, मैं तुम्हें दोषी या निर्दोषी कुछ भी नहीं कहता। मैंने तो इतना ही कहा है कि तुम्हारी प्रेरणा से मैंने इस बालक को काटा है। काल का दोष है या नहीं, इसका
६० भी विचार मैं नहीं कर सकता। इसकी जाँच-पड़ताल का मुझे अधिकार ही कहाँ ?

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इसके बाद साँप ने फिर बहेलिये से कहा—मृत्यु का कहना तो तुमने सुन ही लिया। अब मुझ निरपराध को छोड़ दो।

व्याध ने कहा—साँप, मैंने मौत की और तुम्हारी बातें सुन लीं; फिर भी तुम्हारी निर्दो-षिता सिद्ध नहीं हुई। तुम दोनों इस बालक की मृत्यु का कारण हो। सज्जनों को सताने के लिए तुम दोनों के समान क्रूर कोई नहीं है। तुम्हें धिक्कार है ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगा।

मृत्यु ने कहा—व्याध, हम दोनों ने काल के वशीभूत होकर यह काम किया है अतएव हम दोनों को दोषी समझना तुम्हें उचित नहीं।

व्याध ने कहा—मृत्यु, यदि मैं तुम लोगों को काल के अधीन समझकर तुम लोगों पर क्रोध न करूँ तो फिर किसी मनुष्य को उपकारी की प्रशंसा और अपकारी की निन्दा न करनी चाहिए।

मौत ने कहा—बहेलिया, मैं तुमको पहले ही बतला चुकी हूँ कि प्राणी वही काम करते हैं जिसके लिए उनको काल प्रेरित करता है। संसार में सब काम काल के प्रभाव से ही होते हैं अतएव बुद्धिमान् को उपकारी की प्रशंसा और अपकारी की निन्दा करनी चाहिए। काल द्वारा प्रेरित होकर हम लोगों ने यह काम किया है। हम लोगों को तुम व्यर्थ दोषी समझते हो।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इस प्रकार मौत और व्याध की बातें हो रही थीं कि काल वहाँ आकर कहने लगा—व्याध! मौत, साँप और मैं, इनमें से कोई भी इस बालक के मारने का अपराधी नहीं है। इसके पूर्वजन्म के कर्मों ने हम लोगों से यह काम करा लिया है। यह ७०
बालक अपने पूर्वजन्म के कर्मों के प्रभाव से अकाल में मर गया है, अतएव इसके मरने का कारण इसके कर्म ही हैं। कर्म, पुत्र के समान, मनुष्य को पाप से उबारता है और कर्म ही मनुष्य के पुण्य-पाप को प्रकट कर देता है। जैसे मनुष्य कर्मों के वशीभूत है वैसे ही कर्म भी मनुष्यों के अधीन हैं। जैसे कुम्हार अपनी इच्छा के अनुसार मिट्टी के बर्तन बनाता है वैसे ही मनुष्य अपनी इच्छा से सब काम करता है। छाया और धूप के समान कर्म और कर्ता का नित्य सम्बन्ध है। अतएव मौत, साँप, तुम, ब्राह्मणी और मैं, इनमें से कोई भी इस बालक के मरने का कारण नहीं है। यह बालक स्वयं अपने मरने का कारण है।

काल की ये बातें सुनकर गौतमी ने सब प्राणियों को उनके कर्मों के अधीन समझकर व्याध से कहा—अर्जुनक! काल, साँप या मृत्यु मेरे पुत्र के मरने का कारण नहीं हैं। वह तो अपने कर्म के दोष से मरा है। मुझे भी अपने कर्म के दोष से पुत्र का शोक सहना पड़ा है। अब काल और मौत अपने-अपने स्थान को जावें; तुम इस साप को छोड़ दो।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, ब्राह्मणी के यों कहने पर मृत्यु और काल वहाँ से चले गये। अर्जुनक ने साँप को छोड़ दिया और ब्राह्मणी भी पुत्र का शोक त्यागकर शान्त हो गई। अतएव ८०
तुम भी मनुष्यों को कर्म के अधीन समझकर शोक न करके शान्त हो जाओ। संसार में सब प्राणी अपने कर्मों के प्रभाव से मरते हैं। ये जो राजा युद्ध में मरे हैं, इसमें तुम्हारा या दुर्योधन का कोई दोष नहीं। अपने कर्मों के प्रभाव से, काल के वश होकर, लोग मारे गये।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पितामह भीष्म के इन वचनों को सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर को कुछ शान्ति प्राप्त हुई। ८३

दूसरा अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गृहस्थाश्रम में अतिथि-सत्कार की प्रशंसा करते हुए सुदर्शन का उपाख्यान कहना

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह, आप सब शास्त्रों के विद्वान् और बड़े बुद्धिमान् हैं। आपसे यह उपाख्यान सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब आप विस्तार से बताइए कि गृहस्थ मनुष्य, धर्म का पालन करके, किस तरह मौत को जीत सकता है।

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में एक आख्यान सुनाता हूँ। प्रजापति मनु के पुत्र, सूर्य के समान तेजस्वी, महाराज इक्ष्वाकु ने सौ पुत्र पैदा किये। उनके दसवें पुत्र पराक्रमी महाराज दशाश्व हुए। उनका राज्य माहिष्मती में था। दशाश्व के पुत्र मदिराश्व हुए। वे सत्यवादी, तपस्वी, दानी, स्वाध्यायशील और धनुर्वेद के ज्ञाता थे। मदिराश्व के पुत्र महापराक्रमी महाराज द्युतिमान्, द्युतिमान् के पुत्र लोकप्रसिद्ध धर्मात्मा सुवीर, सुवीर के पुत्र शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ वीर सुदुर्जय और सुदुर्जय के पुत्र महाबलवान् दुर्योधन हुए। दुर्योधन के राज्य में खूब पानी बरसता था। इनका राज्य हमेशा धन-धान्य, रत्नों और पशुओं से परिपूर्ण रहता था। इनके राज्य में कोई मनुष्य कृपण, दरिद्र, रोगी या दुर्बल नहीं था। सभी मनुष्य सदाचारी, प्रियवादी, ईर्ष्याहीन, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, दयालु, पराक्रमी, अनिन्दित, याज्ञिक, दमगुणसम्पन्न, मेधावी, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ, दूसरों का अपमान न करनेवाले, दानी और वेद-वेदाङ्ग के विद्वान् थे। देवनदी नर्मदा ने इन महाराज दुर्योधन को अपना पति बनाया। उसके गर्भ से महाराज दुर्योधन के एक परमसुन्दरी कन्या पैदा हुई। उसका नाम सुदर्शना था।

एक दिन भगवान् अग्निदेव उस राजकुमारी का रूप-लावण्य देखकर लट्टू हो गये। उन्होंने ब्राह्मण का वेश धारण करके, उस कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा से, महाराज दुर्योधन के पास जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया। उनको दरिद्र और अपना असवर्ण समझकर राजा ने उनकी बात नहीं मानी। इससे दुखी होकर अग्निदेव अपने स्थान को लौट गये। कुछ दिनों बाद महाराज दुर्योधन ने यज्ञ किया; किन्तु उनके यज्ञ में अग्निदेव प्रज्वलित न हुए। तब राजा ने बड़े खेद के साथ ऋत्विजों से कहा कि ब्राह्मणो! मेरे यज्ञ में अग्निदेव प्रज्वलित नहीं होते, इससे जान पड़ता है कि मेरा या आप लोगों का कोई भारी पाप है। आप लोग इसका कारण बताइए। तब ब्राह्मण लोग मौन होकर, इन्द्रियों का संयम करके, अग्निदेव की शरण में गये। रात में अग्निदेव ने, शरद् ऋतु के सूर्य के समान महातेजस्वी रूप धारण करके, कहा—हे ब्राह्मणो, मैं महाराज दुर्योधन की कन्या सुदर्शना के साथ विवाह करना चाहता हूँ। वे मुझे अपनी कन्या देने को राज़ी होंगे तो मैं उनके यज्ञ में प्रज्वलित हूँगा। यह सुनकर ब्राह्मणों को बड़ा विस्मय हुआ। सबेरे उठकर उन लोगों ने राजा से सब हाल कहा। ब्राह्मणों

ब्राह्मण ने कहा—हे सुन्दरी !..... यदि गृहस्थाश्रम में तुम्हें विश्वास है तो मेरे साथ .....मुझे प्रसन्न करो—पृ० ३१४१

के मुँह से अग्नि का यह प्रस्ताव सुनकर महाराज दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अग्नि से कहा कि भगवन्, मैं आपको कन्या देने के लिए तैयार हूँ किन्तु आपको हमेशा मेरे घर रहना पड़ेगा। अग्निदेव ने राजा की यह शर्त मञ्जूर कर ली। महाराज दुर्योधन ने बड़ी प्रसन्नता से सुदर्शना को अलङ्कृत करके अग्निदेव को सौंप दिया। अग्निदेव, यज्ञ में दी हुई वेद-विहित घी की धारा के समान, उस कन्या को ग्रहण करके उसके रूप-लावण्य, आयु और कुल-शील आदि के कारण उससे प्रेम करते हुए दुर्योधन के घर में रहने लगे। उस समय से लेकर आज तक माहिष्मती पुरी में अग्निदेव विद्यमान हैं। तुम्हारे छोटे भाई सहदेव ने, दिग्विजय करते समय, माहिष्मती में जाकर अग्निदेव के दर्शन किये हैं।

कुछ दिनों बाद सुदर्शना के गर्भ से पूर्ण चन्द्रमा के समान एक कुमार उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुदर्शन रक्खा गया। सुदर्शन ने बाल्यावस्था में ही सम्पूर्ण वेद-शास्त्र पढ़ लिये। उसी समय नृग के पितामह राजा ओघवान् के ओघवती नाम की एक कन्या और ओघरथ नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ओघवान् ने देवकन्या के समान सुन्दरी कन्या ओघवती का विवाह सुदर्शन के साथ कर दिया। बुद्धिमान् सुदर्शन गृहस्थाश्रम में अनुरक्त होकर ओघवती के साथ सुख से कुरुक्षेत्र में रहने लगे। एक बार सुदर्शन ने यह प्रतिज्ञा करके कि 'गृहस्थाश्रम में रहकर मौत को जीतूँगा' ओघवती से कहा—प्रिये, तुम कभी अतिथि-सेवा से विमुख न होना। बिना आगा-पीछा किये वही काम किया करना जिससे अतिथि सन्तुष्ट हो। अधिक क्या, यदि अतिथि आत्म-समर्पण से सन्तुष्ट हो तो उससे भी मुँह न मोड़ना। गृहस्थों के लिए अतिथि-सेवा से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। यदि तुम मेरे कहे में हो तो मन लगाकर मेरी आज्ञा का पालन करना। मैं चाहे घर में रहूँ चाहे बाहर, तुम अतिथि का अपमान न करना। ओघवती ने हाथ जोड़कर कहा कि नाथ, आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। सुदर्शन ने मौत को जीतने की इच्छा से जब स्त्री को यह आज्ञा दी तब मौत, उनको जीतने के लिए, उनके पीछे-पीछे घूमने लगी।

एक दिन सुदर्शन ईंधन लेने के लिए बाहर गये थे उसी समय धर्म, ब्राह्मण का वेष धरकर, उनके घर आये। धर्म ने ओघवती से कहा—हे कल्याणी, आज मैं तुम्हारा अतिथि हूँ। यदि तुमको गृहस्थ-धर्म में श्रद्धा है तो मेरी सेवा करो।

यह सुनकर राजकन्या ओघवती ने आसन और पाद्य आदि देकर कहा—भगवन्, बतलाइए आपकी क्या सेवा करूँ।

ब्राह्मण ने कहा—हे सुन्दरी, मैं तुम्हारे साथ भोग करना चाहता हूँ। यदि गृहस्थाश्रम में तुम्हें विश्वास है तो मेरे साथ भोग करके मुझे प्रसन्न करो। अतिथि का यह अनुचित प्रस्ताव सुनकर राजकुमारी उसको और-और चीज़ें देकर समझाने लगी। किन्तु अतिथि किसी बात

पर राज़ी न हुआ। तब ओघवती ने स्वामी की बात याद करके, लज्जित भाव से, अतिथि का प्रस्ताव मान लिया। अतिथि हाथ पकड़कर उसको घर में ले गया।

इसी समय सुदर्शन लकड़ियाँ लेकर आ गये। स्त्री को सामने न पाकर वे बार-बार उसे पुकारने लगे; किन्तु ओघवती ने उत्तर न दिया। अतिथि ने उसका हाथ पकड़ लिया था, इससे
६१ वह अपने को अशुद्ध समझकर बहुत लज्जित हो गई थी। सुदर्शन फिर कहने लगे—मेरी प्रिया कहाँ गई? वही तो मेरे लिए सब कुछ है। वह सरल स्वभाववाली पतिव्रता ओघवती, पहले की तरह, मुसकुराती हुई आज मेरे सामने क्यों नहीं आती?

सुदर्शन जब बार-बार स्त्री को पुकारने लगे तब भीतर से अतिथि ब्राह्मण बोला—ब्रह्मन्! मैं एक ब्राह्मण हूँ, आपके घर अतिथि-रूप से आया हूँ। आपकी स्त्री ने अतिथि-सत्कार करके मुझे सन्तुष्ट किया है। वह मेरी इच्छा के अनुसार काम कर रही है। अब जो उचित समझिए सो कीजिए।

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, सुदर्शन लकड़ियाँ लेकर घर आ रहे थे और मौत भी उनके पीछे-पीछे आई थी। वह सोच रही थी कि अतिथि की बातें सुनने से सुदर्शन को क्रोध आ जायगा और जब वे अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के पाप से दूषित होंगे तब मैं उनको मार डालूँगी। इसी विचार से वह लोहे का मूसल ताने उनके पीछे खड़ी थी। किन्तु अतिथि की बातें सुनकर सुदर्शन को मन-वचन-कर्म से रत्ती भर भी न तो क्रोध हुआ और न ईर्ष्या हुई। उन्होंने मुसकुराकर अतिथि से कहा—ब्रह्मन्, आप अपनी इच्छा पूरी कर लीजिए। अतिथि-सत्कार करना गृहस्थों
७० का परम धर्म है। मैंने तो प्रतिज्ञा की है कि अतिथि को अपने प्राण, भार्या और जो कुछ मेरा है वह सब दे दूँगा। मेरी बात में रत्ती भर सन्देह न कीजिएगा। पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, बुद्धि, आत्मा, मन, काल और दिशाएँ, ये सब प्राणियों के शरीर में स्थित रहकर उनके पाप-पुण्य को निरन्तर देखा करते हैं। अतएव यदि

मेरी प्रतिज्ञा सत्य हो तो वे मेरी रक्षा करें; नहीं तो मुझे इसी दम भस्म कर डालें। सुदर्शन के यों कहने पर आकाशवाणी होने लगी कि हे ब्रह्मन्, तुम्हारी प्रतिज्ञा कभी मिथ्या न होगी।

अब वह अतिथि अपने तेज से पृथिवी और आकाश को व्याप्त करता हुआ, वायु के समान वेग से, सहसा उस घर से निकला और सुदर्शन के पास आकर गम्भीर स्वर से तीनों लोकों को प्रतिध्वनित करता हुआ बोला—हे सुदर्शन, मैं धर्म हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने आया हूँ। तुम्हारी सच्ची प्रतिज्ञा देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। यह जो मौत तुम्हारे पीछे खड़ी है इसे, अपनी प्रतिज्ञा के बल से, तुमने जीत लिया है। यह मौत तुम्हारे दोष ढूँढ़ रही थी; किन्तु आज तुमने अपने धैर्य से इसे वश में कर लिया है। तुम्हारी इस पतिव्रता भार्या पर ८०
कुदृष्टि डालनेवाला त्रैलोक्य में कोई नहीं है। यह तुम्हारे गुणों और अपने पतिव्रत-धर्म के प्रभाव से हमेशा सुरक्षित रहेगी। इसके व्रत को कोई नष्ट नहीं कर सकता। आज से इसकी बात कभी मिथ्या न होगी। यह ब्रह्मवादिनी स्त्री अपने तपोबल से, सब लोकों को पवित्र करने के लिए, ओघवती नदी के नाम से उत्पन्न होगी। इसका आधा शरीर तो नदी हो जायगा और आधा तुम्हारे साथ रहेगा। जिन लोकों को जाने से लौटना नहीं पड़ता उन नित्य लोकों को तुम, स्त्री समेत, इसी देह से प्राप्त करोगे। तुमने गृहस्थ-धर्म के प्रभाव से काम, क्रोध और मृत्यु को जीत लिया है और तुम्हारी स्त्री ने भी सदा तुम्हारी सेवा करके स्नेह, अनुराग, आलस्य और मोह को अपने अधीन कर लिया है। अतएव निस्सन्देह तुमको और तुम्हारी धर्मपत्नी को श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति होगी। धर्म के यों कह चुकने पर इन्द्र हज़ार सफ़ेद घोड़ों से युक्त रथ लाकर सुदर्शन और उनकी स्त्री को उस पर सवार कराकर देवलोक को ले गये।

हे धर्मराज! सुदर्शन ने इस प्रकार अतिथि-सत्कार द्वारा गृहस्थ-धर्म का पालन करके मृत्यु, आत्मा, सम्पूर्ण लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, आकाश, काम और क्रोध को अपने अधीन कर लिया था। तुम विचारकर देखो कि गृहस्थ के लिए अतिथि से बढ़कर कोई देवता नहीं ९०
है। सेवा से प्रसन्न होकर अतिथि जिस गृहस्थ का भला चाहे उसे सौ यज्ञों से भी बढ़कर फल मिल सकता है। यदि कोई गृहस्थ सच्चरित्र अतिथि का यथोचित सम्मान नहीं करता तो वह अतिथि अपने सब पाप उसे देकर उसके पुण्य ले जाता है। गृहस्थ ने जिस तरह मौत को जीत लिया था वह कथा मैं सुना चुका। इस कथा के सुनने से आयु और यश की वृद्धि होगी तथा पाप का नाश हो जायगा। धन चाहनेवाले मनुष्य इस कथा को सुनें। जो मनुष्य प्रति-दिन इस कथा को पढ़ेगा उसे पवित्र लोक प्राप्त होंगे। ९६

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर का भीष्म से विश्वामित्र के ब्राह्मण होने का कारण पूछना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! यदि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का अधिकार नहीं है तो फिर क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न महात्मा विश्वामित्र किस प्रकार ब्राह्मण हो गये ? महापराक्रमी विश्वामित्र ने तपोबल से महर्षि वसिष्ठ के सौ पुत्रों को मार डाला और कुपित होकर, यम के समान, असंख्य राक्षस उत्पन्न कर दिये। विश्वामित्र से पवित्र कुशिक वंश स्थापित हुआ है, जिसमें सैकड़ों ब्रह्मर्षि हैं। ऋचीक (अजीगर्त) के पुत्र महातपस्वी शुनःशेप जब महाराज अम्बरीष के यज्ञ में पशु-रूप से परिगणित हुए थे तब इन्हीं महात्मा ने उनको छुड़ाया था। यज्ञ में देवताओं को सन्तुष्ट करके शुनःशेप, छुटकारा पाकर, इन महर्षि के पुत्र हुए थे। विश्वामित्र के पचास पुत्र अपने को देवरात (देवताओं के दिये हुए = शुनःशेप) के ज्येष्ठ भाई कहकर उनको प्रणाम नहीं करते थे। तब देवरात के शाप से वे सब चाण्डाल हो गये थे। इक्ष्वाकुवंशी महाराज त्रिशङ्कु, गुरु के शाप से, भाई-बन्धुओं द्वारा परित्यक्त होकर दक्षिण दिशा में उलटे लटके हुए थे। उनको इन्हीं विश्वामित्र ने स्वर्गलोक पहुँचाया था। ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों
१० और देवताओं से सेवित पवित्र कौशिकी नदी इनकी बदौलत तीर्थ हो गई है। रम्भा नाम की अप्सरा, इन महात्मा की तपस्या भङ्ग करने के लिए, इनके तपोवन में गई थी। वह इनके शाप से शिला हो गई। महर्षि वसिष्ठ इनके डर से अपने हाथ-पैर बाँधकर नदी में कूद पड़े थे, फिर बहुत दिनों बाद नदी से निकले थे। वह नदी अब विपाशा नाम से विख्यात है। त्रिशङ्कु का यज्ञ करा देने से महर्षि विश्वामित्र को वसिष्ठ के पुत्रों ने, चाण्डाल हो जाने का, शाप दे दिया था। इन्द्र की स्तुति करने पर उनको उस शाप से छुटकारा मिला था। महात्मा विश्वामित्र उत्तर दिशा में, ध्रुव और ब्रह्मर्षियों के साथ, नक्षत्र-रूप से शोभित हैं। उनके सब कामों पर विचार करने से मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। महात्मा विश्वामित्र क्षत्रिय-वंश में जन्म लेकर उसी देह से किस तरह ब्राह्मण हो गये, जब कि शूद्र के वीर्य और ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न मतङ्ग चाण्डाल
१९ हुए थे। अनेक यत्न करने पर भी मतङ्ग ब्राह्मण न हो सके।

चौथा अध्याय

विश्वामित्र की उत्पत्ति और उनको ब्राह्मणत्व की प्राप्ति

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, विश्वामित्र जिस तरह ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हुए हैं वह वृत्तान्त सुनो। भरतवंश में अजमीढ़ नाम के एक धर्मात्मा याज्ञिक राजा थे। उनके पुत्र का नाम जह्नु था। गङ्गा ने महाराज जह्नु को पिता मान लिया था इसी से गङ्गा का नाम जाह्नवी पड़ा। जह्नु के पुत्र गुणवान् सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीप से महापराक्रमी बलाकाश्व का जन्म हुआ। बलाकाश्व

के पुत्र वल्लभ साक्षात् धर्म के समान हुए। इन्द्र के समान प्रभावशाली महाराज कुशिक उन्हीं वल्लभ के पुत्र थे। कुशिक के पुत्र श्रीमान् गाधि हुए। महाराज गाधि के कोई सन्तान न थी। सन्तान की इच्छा से वे वन में तप करने चले गये। वहाँ उनके सत्यवती नाम की परम सुन्दरी एक कन्या उत्पन्न हुई। कुछ दिनों बाद जब वह कन्या युवती हुई तब महर्षि च्यवन के पुत्र ऋचीक ने गाधि के पास आकर प्रार्थना की कि अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर दीजिए। किन्तु महाराज गाधि ने ऋचीक को, दरिद्र समझकर, अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं किया। गाधिराज के इनकार कर देने पर महात्मा ऋचीक कुपित होकर वहाँ से लौटने लगे। तब महाराज गाधि ने उनसे कहा—तपोधन, यदि आप मेरी कन्या का शुल्क दे सकें तो मैं आपको अपनी कन्या दे सकता हूँ। ऋचीक ने पूछा—महाराज, मुझसे आप क्या शुल्क चाहते हैं? गाधि ने कहा— १०
भार्गव! आप मुझे बिलकुल सफ़ेद रङ्ग के, हवा के समान फुर्तीले, ऐसे हज़ार घोड़े दीजिए जिनका एक कान काले रङ्ग का हो। घोड़े मिलते ही मैं आपको कन्या सौंप दूँगा।

यह सुनकर महात्मा ऋचीक जल के स्वामी वरुण के पास जाकर बोले—देव! आप कृपा करके मुझे बिलकुल सफ़ेद, हवा के समान तेज़ चलनेवाले, एक हज़ार श्यामकर्ण घोड़े दीजिए। वरुण ने कहा—हे तपोधन, तुम जहाँ चाहोगे वहीं हज़ार घोड़े तुमको मिल जायँगे। महर्षि ऋचीक प्रसन्नतापूर्वक वरुण से बिदा होकर, कान्यकुब्ज देश के समीप, गङ्गा-किनारे आये। वहाँ उन्होंने इच्छा की कि यहीं हज़ार घोड़े मिलें। उसी समय गङ्गाजी से हज़ार घोड़े निकल आये। जिस स्थान पर ये घोड़े गङ्गाजी से निकले थे वह स्थान आज तक अश्वतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

महर्षि ऋचीक ने वे घोड़े प्रसन्नता से गाधि को शुल्क में दे दिये। यह देखकर महाराज गाधि बड़े विस्मित हुए। उन्होंने शाप से डरकर अलङ्कारों से अलङ्कृत कन्या सत्यवती ऋचीक को दे दी। महर्षि ऋचीक ने विधिपूर्वक सत्यवती का पाणिग्रहण किया। महर्षि को पति पाकर सत्यवती बड़ी प्रसन्नता से उनकी सेवा करने लगी। २०

एक दिन महर्षि ऋचीक ने सत्यवती के आचरण से प्रसन्न होकर कहा—प्रिये! मैं तुमको वर देता हूँ, तुम्हारे शीघ्र एक पुत्र होगा। सत्यवती ने माता के पास जाकर, लज्जित भाव से कुछ सिर झुकाकर, पति के वरदान का वृत्तान्त कहा। गाधिराज की रानी ने कन्या की बातें सुनकर कहा—बेटी, तुम्हारे पति मुझे भी एक पुत्र देने की कृपा करें। वे महातपस्वी निस्सन्देह मुझे पुत्र देने में समर्थ हैं। तब सत्यवती ने पति के पास जाकर माता की कही हुई बातें कहीं। महर्षि ऋचीक ने पत्नी से कहा—प्रिये! तुम्हारी माता के भी, मेरी कृपा से, शीघ्र एक गुणवान् पुत्र पैदा होगा। मैं सच कहता हूँ, तुम्हारे गर्भ से मेरा वंशधर एक गुणवान् श्रीमान् पुत्र पैदा होगा। तुम्हारी माता ऋतुमती होकर स्नान करने पर पीपल के वृक्ष का आलिङ्गन करे और तुम ऋतुस्नान करके गूलर के पेड़ का आलिङ्गन करना। मैं मन्त्र से पवित्र करके ये दो चरु देता

हूँ, इनमें से एक को तुम्हारी माता खा ले और एक को तुम खा लेना। इससे तुम दोनों गर्भवती हो जाओगी। अब महर्षि ने बतला दिया कि कौन चरु किसे खाना चाहिए।

दोनों चरु लेकर सत्यवती प्रसन्नता से माता के पास जाकर बोली—माता, महर्षि ने मुझे ये दो चरु दिये हैं। इनमें से एक को तुम खा लेना, एक को मैं खाऊँगी। ऋतु-स्नान के बाद तुमको पीपल के वृक्ष का और मुझे गूलर के वृक्ष का आलिङ्गन करने को कहा है। यह सुनकर माता ने कहा—बेटी, मैं तुम्हारे स्वामी की अपेक्षा तुम्हारे लिए अधिक पूज्य हूँ अतएव तुम मेरी बात
३० मानो। तुम्हारे स्वामी ने जो ये दो चरु, मन्त्र से पवित्र करके, दिये हैं उनमें से तुम अपना चरु मुझे दे दो और मेरा चरु तुम खाओ। जिस वृक्ष का आलिङ्गन करने को मुझे बतलाया है उसका आलिङ्गन तुम करो और जो तुम्हें बतलाया है उसका मैं करूँ। दुनिया अपनी सन्तान अच्छी ही चाहती है, इसलिए महर्षि ने भी तुमको श्रेष्ठ चरु दिया होगा और श्रेष्ठ वृक्ष का आलिङ्गन करना बतलाया होगा। तुम्हारा चरु खाने से और तुम्हारे वृक्ष का आलिङ्गन करने से मेरे श्रेष्ठ पुत्र पैदा होगा। तुम भी बहुत दिनों बाद मनोहर भाई को देखकर प्रसन्न होगी।

बस, सत्यवती और उसकी माता ने चरु बदलकर खा लिया और माता ने गूलर के वृक्ष का तथा सत्यवती ने पीपल के वृक्ष का आलिङ्गन किया। कुछ दिनों बाद मा और बेटी दोनों के गर्भ रह गया। एक दिन महर्षि ऋचीक ने अपनी पत्नी के गर्भ के लक्षण देखकर उससे कहा—प्रिये, मुझे जान पड़ता है कि तुमने अपनी माता से चरु और वृक्ष बदल लिये हैं। मैंने चरु तैयार करते समय तुम्हारे गर्भ से, तीनों लोकों में प्रसिद्ध, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न करने के लिए तुम्हारे चरु में ब्रह्मतेज और तुम्हारी माता के गर्भ से महापराक्रमी क्षत्रिय उत्पन्न करने का इरादा करके उनके चरु में क्षत्रिय-तेज प्रविष्ट कर दिया था। किन्तु चरु और वृक्ष के बदल लेने से अब मुझे निश्चय है कि तुम्हारी माता के गर्भ से श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न होगा और तुम अति उग्रकर्मा क्षत्रिय कुमार पैदा करोगी। जो हो, तुमने अपनी माता के स्नेह-वश उनसे चरु और
४१ वृक्ष बदलकर अच्छा काम नहीं किया।

ये बातें सुनकर पतिव्रता सत्यवती दुःख के मारे अधीर होकर, कटी हुई लता के समान, गिर पड़ी। कुछ देर बाद होश आने पर वह पति के पैर पकड़कर बोली—नाथ, कृपा करके मुझे यह वर दीजिए कि मेरे गर्भ से क्षत्रिय कुमार तो उत्पन्न हो किन्तु वह उग्रकर्मा न हो; मेरा पौत्र उग्रकर्मा भले ही हो। महातपस्वी ऋचीक ने कहा—ऐसा ही होगा।

इसके बाद गर्भ के दिन पूरे होने पर सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का और गाधिराज की रानी के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ।

भीष्म कहते हैं—महाराज, इसी कारण महातपस्वी विश्वामित्र क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न होने पर भी वेदज्ञ ब्राह्मण और ब्राह्मण-वंश के प्रवर्तक हुए। उनके पुत्र भी विप्रकुल के बढ़ानेवाले

तपस्वी, वेदज्ञ और गोत्रकर्ता हुए हैं। भगवान् मधुच्छन्दस्, देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्रु, ४९
कालपथ, याज्ञवल्क्य, स्थूण, उलूक, यमदूत, सैन्धवायन, वल्गुजङ्घ, गालव, वज्र, सालङ्कायन, लीलाढ्य, नारद, कूर्चामुख, बाहुलि, मुषल, वक्षोग्रीव, अनेक आँखोंवाले आंध्रिक, शिलायूप, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जाबालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर, पौरव, तन्तु, कपिल, ताडकायन, उपगहन, आसुरायणि, मार्गमर्षि, हिरण्याक्ष, जङ्घारि, बाभ्रवायणि, सूति, विभूति, सूत, सुरकृत्, आराणि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु, वकनख, सयन, यति, अम्भोरुह, मत्स्याशी, शिरीषी, गार्दभि, ऊर्ज्जयोनि, उदापेक्षी और नारदी आदि महात्मा विश्वामित्र के पुत्र हुए। वे सब वेदज्ञ थे। महातपस्वी विश्वामित्र क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न होकर, महर्षि ऋचीक की कृपा से, ब्राह्मण हो गये थे। यह मैंने महर्षि विश्वामित्र के जन्म का वृत्तान्त कहा। अब तुमको जिस विषय में सन्देह हो वह पूछो। ६२

पाँचवाँ अध्याय

भीष्म का अनृशंसता की प्रशंसा करते हुए दृष्टान्त-स्वरूप इन्द्र और तोते का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! अनृशंसता धर्म और भक्त जनों के गुण सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। आप कृपा करके वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—बेटा, इस विषय में इन्द्र और तोते का आख्यान सुनो। प्राचीन समय में काशिराज के राज्य में एक बहेलिया, विषैले बाण लेकर, गाँव से बाहर जाकर शिकार किया करता था। वह बहेलिया एक बार शिकार की खोज करते-करते घने वन में गया। वहाँ मृग को देखकर उसने विषैला बाण मारा; किन्तु वह बाण मृग को न लगकर एक बड़े वृक्ष में जाकर धँस गया। विषैले बाण के बिँध जाने से वह वृक्ष सूखने लगा। धीरे-धीरे उसके फल और पत्ते गिर गये।

उस वृक्ष के खोड़र में बहुत दिनों से एक धर्मात्मा कृतज्ञ तोता रहता था। वह तोता अपने आश्रयदाता वृक्ष को सूखते देखकर, उसका त्याग न करके, उस पर भूखा-प्यासा निवास करता हुआ उसके साथ सूखने लगा। तोते का यह अलौकिक काम देखकर इन्द्र बड़े विस्मय से सोचने लगे कि यह पक्षी अपने आश्रयदाता वृक्ष के दुःख से बड़ा दुखी है। क्या पशु-पक्षियों में भी इस प्रकार का ममता-पूर्ण व्यवहार होता है अथवा मनुष्य आदि प्राणियों में ही सद्गुण होने की सम्भावना है? यों सोचकर इन्द्र ने, ब्राह्मण का वेष धारण करके, तोते के पास आकर कहा— ११
पक्षिराज, तुम अपनी माता के सुपुत्र हो। अब तुम इस वृक्ष को छोड़कर चले क्यों नहीं जाते?

ब्राह्मणरूपी इन्द्र के यों कहने पर धर्मात्मा तोते ने उनको प्रणाम करके कहा—देवराज, मैंने ज्ञानदृष्टि द्वारा आपको पहचान लिया है। आप सकुशल हैं न? यह सुनकर देवराज ने, मन ही मन उसके विज्ञान की प्रशंसा करके, कहा—पक्षिराज, इस वन में असंख्य फूले-फले वृक्ष

हैं और उनमें बहुत से खोंड़र हमेशा पत्तों से ढके रहते हैं, तो फिर तुम क्यों इस सूखे पेड़ पर रहते हो ? इस जीर्ण-शीर्ण, निस्तेज वृक्ष को तुम्हें छोड़ देना चाहिए।

२० इस पर धर्मात्मा तोते ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—देवराज, देवताओं की आज्ञा का उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता; किन्तु आपने मुझसे जो पूछा है उसका उत्तर सुनिए। मैं इसी वृक्ष पर पैदा हुआ और अनेक सद्गुणों को सीखकर जन्म से इसी पर रहता हूँ। इस वृक्ष ने मुझे बालक की तरह पाला-पोसा है। यहाँ मेरे शत्रु कभी मुझे नहीं सता सके। इसी कारण इस वृक्ष पर मेरी भक्ति है और मैं अनृशंसता-धर्म का पालन कर रहा हूँ। भला आप मेरे ऊपर दया करके मुझे अधर्म करने के लिए क्यों उत्तेजित कर रहे हैं ? सज्जनों का परम धर्म दया ही है। दया करने में ही सज्जन सदा प्रसन्न रहते हैं। धर्म के विषय में कोई सन्देह होने पर देवता आपसे ही उसका निर्णय करते हैं, इसी से आप देवताओं के राजा हुए हैं। अतएव इस वृक्ष के छोड़ देने का मुझे उपदेश देना आपको उचित नहीं। मैं जिसके आश्रय में रहकर अभी तक जीवित हूँ, आज उसको—सङ्कट में देखकर—कैसे छोड़ दूँ ?

तोते की ये बातें सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उससे बोले—हे धर्मात्मा ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँग लो। तोते ने कहा कि देवराज, यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिए कि यह वृक्ष पहले की तरह हरा-भरा हो जाय। यह सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वृक्ष पर अमृत छिड़क दिया। वृक्ष पहले की तरह हरा-भरा होकर फल-
३० फूल-पल्लवों से शोभित हो गया। धर्मात्मा तोता बड़े सुख से उस वृक्ष के खोंड़र में बहुत दिनों तक रहकर, अन्त को देह त्याग करके, अनृशंसता-धर्म के प्रभाव से इन्द्रलोक को चला गया। हे धर्मराज, जिस तरह तोते के द्वारा वृक्ष का हित हुआ था उसी तरह सज्जनों द्वारा
३२ मनुष्यों के सब काम सिद्ध होते हैं।

छठा अध्याय

भाग्य की अपेक्षा उद्योग की श्रेष्ठता का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप महाप्राज्ञ और सब शास्त्रों के पण्डित हैं। मुझे बतलाइए कि भाग्य श्रेष्ठ है या उद्योग।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इस विषय में ब्रह्मा और वसिष्ठ का संवाद सुनो। एक बार महर्षि वसिष्ठ ने ब्रह्माजी के पास जाकर यही प्रश्न किया था। ब्रह्माजी ने मधुर वचनों में उनसे कहा—महर्षि, बीज के बिना न तो कोई वस्तु उत्पन्न हो सकती है और न कोई फल मिल सकता है। बीज से बीज और बीज से फल पैदा होते हैं। किसान खेत में जैसे बीज बोता है वैसे ही फल उसे मिलते हैं। इसी तरह मनुष्य जैसे शुभ-अशुभ कर्म करता है उसी के अनुसार फल

भोगता है। जैसे बीज को अच्छे खेत में न बोने से उसका कोई फल नहीं मिलता वैसे ही उद्योग के बिना भाग्य से कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। पण्डितों ने उद्योग को खेत और भाग्य को बीज बतलाया है। खेत और बीज दोनों के संयोग से फल उत्पन्न होता है। कर्ता को ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है। मनुष्यों को शुभ-अशुभ कर्मों के द्वारा सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं. इसका प्रमाण संसार में प्रत्यक्ष मिलता है। कर्म करने पर अवश्य ही उसका फल मिलेगा, कर्म न करने से कुछ भी फल मिलने का नहीं। उद्योगी मनुष्य का सर्वत्र सम्मान होता है; किन्तु १०
निकम्मे मनुष्य की कहीं प्रतिष्ठा नहीं होती; उसे तो असह्य दुःख उठाने पड़ते हैं। प्रसिद्ध ही है कि तप करने से सौभाग्य और अनेक रत्न आदि प्राप्त होते हैं। सारांश यह कि कर्म करने से संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, किन्तु केवल भाग्य के भरोसे बैठे रहने से कुछ नहीं मिल सकता। उद्योग के बल से स्वर्ग, सुख, सदाचार और विद्वत्ता आदि सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। नक्षत्र, नाग, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य और वायु आदि देवता केवल उद्योग से मृत्युलोक को छोड़कर देवलोक को गये हैं। निकम्मा मनुष्य धन, ऐश्वर्य, लक्ष्मी और मित्र, कुछ भी नहीं पा सकता। ब्राह्मण पवित्रता से, क्षत्रिय पराक्रम से, वैश्य पौरुष से और शूद्र सेवा के द्वारा धन प्राप्त कर सकता है। कृपण, आलसी, निकम्मा, बेढङ्गा काम करनेवाला, पराक्रमहीन और तप न करनेवाला मनुष्य धन नहीं पा सकता। देखो, जिन भगवान् विष्णु ने देव-दानव आदि त्रैलोक्य की सृष्टि की है उन्होंने स्वयं समुद्र में तप किया है। यदि कर्म करने से उसका कोई फल न मिलता तो कोई भी कर्म न करता। सब लोग भाग्य के भरोसे निश्चिन्त बैठे रहते। जो मनुष्य उद्योग न करके भाग्य के भरोसे बैठा रहता है उसके सब काम, नपुंसक पति के साथ स्त्री के सहवास की तरह, व्यर्थ हो जाते हैं। भाग्य प्रतिकूल होने से इसी लोक में अनेक प्रकार के कष्ट २०
मिलते हैं; किन्तु उद्योग के बिना परलोक में कल्याण नहीं हो सकता। उद्योग करने पर भाग्य भी साथ देता है। उद्योग न करने से, भाग्य के भरोसे, कोई काम नहीं हो सकता। जब इन्द्रलोक आदि भी अनित्य माने जाते हैं तब देवता जिन कर्मों के अधीन हैं उनके अनित्य होने में क्या सन्देह है? संसार में प्रायः आसानी से भाग्य अनुकूल नहीं होता, बल्कि पराभव की शङ्का से कर्म में विघ्न उत्पन्न करता है। देवता लोग महर्षियों की तपस्या में विघ्न करना चाहते हैं; किन्तु महर्षि लोग अपनी तपस्या के बल से देवताओं को जीत लेते हैं। यद्यपि उद्योग को प्रधानता प्राप्त है तो भी भाग्य को बिलकुल तुच्छ समझना ठीक नहीं। भाग्य मनुष्यों को कर्म में लगाने का कारण है। मनुष्य दैव के प्रभाव से कर्म में लगकर परलोक में सुख भोगता है।

भाग्य के भरोसे बैठे रहना उचित नहीं। जहाँ तक बने, उद्योग करना ही सबके लिए अच्छा है। आत्मा ही मनुष्यों का मित्र और शत्रु है। मनुष्यों के शुभ और अशुभ कर्मों का साक्षी आत्मा ही है। जिस मनुष्य के पुण्य द्वारा पाप और पाप द्वारा पुण्य नष्ट हो जाते

हैं उसे स्वर्ग और नरक-रूप पुण्य-पाप का फल नहीं भोगना पड़ता। मनुष्य पुण्य के बल से सम्पूर्ण देवलोकों को प्राप्त कर सकता है। पुण्यवान् मनुष्य के प्रभाव से भाग्य पलटा जा
३० सकता है। देखो, महाराज ययाति स्वर्ग से भ्रष्ट होकर अपने नातियों द्वारा स्वर्ग को गये हैं। राजर्षि पुरूरवा ब्राह्मणों के प्रभाव से, ऐल नाम से विख्यात होकर, स्वर्ग को गये थे। कोशल के राजा सौदास अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ करने पर भी, महर्षि वसिष्ठ के शाप से, राक्षस हो गये थे। महाधनुर्द्धर परशुराम और अश्वत्थामा अपने कर्म के दोष से स्वर्ग को नहीं जा सके। सौ यज्ञ करने पर भी इन्द्र की बराबरी के महाराज वसु को केवल एक बार झूठ बोलने के कारण पाताल लोक को जाना पड़ा था। महाराज बलि, विष्णु के उद्योग से, धर्मपाश में बँधकर पाताल को चले गये हैं। महाराज जनमेजय ने इन्द्र को लात मारने का इरादा और ब्राह्मणों की स्त्रियों का वध किया था; महर्षि वैशम्पायन ने अज्ञानवश बालहत्या और ब्रह्महत्या कर डाली थी, तो भी दैव इन लोगों को दण्ड नहीं दे सका! महाराज नृग ने यज्ञ में एक ब्राह्मण को दी हुई गाय का भ्रम से फिर दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया था, इस पाप से उन्हें गिरगिट होना पड़ा। महाराज धुन्धुमार गिरिव्रज नगर में यज्ञ करते-करते बूढ़े हो गये; किन्तु देवताओं का दिया हुआ
४० वर न लेने से उनको उन यज्ञों का कुछ फल न मिला।

तपस्वी व्रतधारी महर्षि तपस्या के बल से शाप दे सकते हैं, भाग्य के बल से नहीं। दुर्लभ ऐश्वर्य आदि पापियों के अधिकार में आ जाने पर भी शीघ्र उन्हें त्याग देते हैं। लोभ-मोह के वशीभूत नराधम मनुष्य भाग्य के बल से कभी सुरक्षित नहीं रह सकते। जैसे चिनगारी वायु की सहायता से बढ़ जाती है वैसे ही उद्योग करने पर भाग्य की वृद्धि होती है। जैसे तेल चुक जाने पर दीपक बुझ जाता है वैसे ही कर्म का नाश होने पर भाग्य नष्ट हो जाता है। कर्महीन मनुष्य धन-सम्पत्ति और स्त्री आदि भोग की अनेक वस्तुओं के प्राप्त होने पर भी उनका उपभोग नहीं कर सकता; किन्तु उद्योगी मनुष्य उद्योग के प्रभाव से पाताल में स्थित, देवताओं से सुरक्षित, रत्न भी प्राप्त कर सकता है। दानी मनुष्य निर्धन होने पर भी देवताओं की कृपा से स्वर्गलोक का फल पाता है। [जिन घरों में दान नहीं होता] उन घरों को, अनेक रत्नों से भूषित होने पर भी, देवता श्मशान के समान समझते हैं। देवलोक मृत्युलोक से श्रेष्ठ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उद्योगहीन मनुष्य भाग्य के बल से कभी कृतकार्य नहीं हो सकता। जो मनुष्य कुमार्ग पर चलने लगता है उसे, उद्योग की सहायता के बिना, भाग्य सुमार्ग पर नहीं ला सकता। इसलिए भाग्य को श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। जैसे शिष्य गुरु का अनुगामी होता है वैसे ही भाग्य सदा उद्योग के पीछे चलता है। हे महर्षि, यह मैंने योग के बल से उद्योग का फल कहा। मनुष्यों को (पूर्व जन्म के कर्मों से उत्पन्न) भाग्य के प्रभाव से सांसारिक सुख मिलता है और इस
४९ जन्म में शास्त्र के अनुसार सत्कर्म करने से स्वर्गलोक प्राप्त होता है।

सातवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से शुभाशुभ कर्म का फल कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, संसार में जितने शुभ कर्म किये जाते हैं उनके फल बतलाइए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, तुमने जो मुझसे पूछा है उस विषय को महर्षि भी कठिनाई से समझ पाते हैं। मरने के बाद जिसे जो गति मिलती है उसका विस्तृत वर्णन सुनो। मनुष्य जिस शरीर (योनि) से जिस अवस्था में जो कर्म करता है उसे दूसरे जन्म में उसी शरीर से उसी अवस्था में उस कर्म का फल मिलता है। फल भोगे बिना कर्म का नाश नहीं होता। आत्मा और पाँचों इन्द्रियाँ कर्मों की साक्षी हैं। अतिथि का काम सिद्ध कर देने के लिए उसकी ओर आँखें और मन लगाना, उसे सन्तुष्ट करने के लिए मीठी बातें करना, उसके पीछे चलना और उसकी सेवा-शुश्रूषा करना गृहस्थ का कर्तव्य है। जो गृहस्थ ये पाँच कर्म करता है वह पञ्चदक्षिण-यज्ञ करता है। थके हुए अपरिचित पथिक को स्वादिष्ठ भोजन देने से बड़ा पुण्य होता है। स्थण्डिलशायी (व्रत धारण करके चबूतरे पर सोनेवाले) को घर, शय्या, चीर-वल्कल आदि वस्त्र और आभूषण देने से; योगी तपस्वियों को सवारियाँ देने से तथा तीनों अग्नियों के पास रहने से राजा का पौरुष बढ़ता है। रसों का त्याग करने (जीभ को वश में रखने) से भाग्य की वृद्धि और मांस खाना छोड़ देने से पशु और पुत्र की प्राप्ति होती है। जो उलटा होकर वृक्ष १०
में लटकता है, जो जल में खड़ा रहता है और जो सदा ब्रह्मचारी रहता है उसे श्रेष्ठ गति मिलती है। सत्कार करके अतिथि को पाद्य, आसन, प्रदीप, अन्न और ठहरने के लिए स्थान देने को ही पञ्चयज्ञ कहते हैं। रणभूमि में युद्ध करके प्राणत्याग देने से अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। दान करने से धन की प्राप्ति होती और मौनव्रत धारण करने से वाक्सिद्धि हो जाती है। तपस्या से भोग-सामग्री, ब्रह्मचर्य से दीर्घजीवन और अहिंसा से रूप ऐश्वर्य तथा आरोग्य प्राप्त होता है। जो केवल फल-मूल खाता है उसे राज्य, जो पत्ते खाकर रहता है उसे स्वर्ग और जो भोजन आदि सब कुछ त्यागकर प्रायोपवेशन करता है उसे सर्वत्र सुख मिलता है। केवल शाक खाने से गो-धन मिलता है, तृण खाने से स्वर्ग प्राप्त होता और स्त्री का त्याग करके तीन बार स्नान तथा वायु का भक्षण करने से यज्ञ का फल मिलता है। सत्य बोलने से स्वर्ग और यज्ञ की दीक्षा लेने से श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। केवल जल पीकर अग्निहोत्र करने से राज्य और अनशन व्रत करके गायत्री आदि का जप करने से स्वर्गलोक प्राप्त होता है। द्वादशवार्षिक यज्ञ में उपवास करने, व्रत साधन करने के लिए दूध आदि पीने, बारह वर्ष तीर्थयात्रा करने और वेदपाठ करने से सब दुःखों का नाश तथा मानस धर्म करने से देवलोक प्राप्त होता है। अविवेकी मनुष्य जिसे नहीं छोड़ सकते, मनुष्य २०
के बूढ़े हो जाने पर भी जो नहीं बुढ़ाती और जो प्राण ले लेनेवाला विशेष रोग है, उस तृष्णा का त्याग कर देने से सुख मिलता है। जैसे बछड़ा हज़ारों गायों के बीच अपनी माता को ढूँढ़ लेता

है वैसे ही पूर्वजन्म के कर्म कर्ता को प्राप्त होते हैं। जैसे फूल और फल समय आने पर अपने-आप फूलते और फलते हैं वैसे ही पूर्वजन्म के कर्म ठीक समय पर कर्ता को प्राप्त हो जाते हैं। बूढ़े होने पर मनुष्य के बाल पक जाते, दाँत गिर जाते और इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं; किन्तु तृष्णा उसका पीछा नहीं छोड़ती। पिता को सन्तुष्ट रखना प्रजापति ब्रह्मा को और माता का प्रसन्न रखना पृथिवी को सन्तुष्ट करने के समान है। गुरु को प्रसन्न करना मानों परमात्मा का सत्कार करना है। जो ये तीन काम करता है वही वास्तविक धर्मात्मा है और जो इन कामों की उपेक्षा करता है उसके सब काम निष्फल हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, भीष्म का यह उपदेश सुनकर युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े विस्मित हुए और प्रसन्नता से इन वचनों की प्रशंसा करने लगे। विजय आदि के लिए मन्त्र का प्रयोग, बिना दान-दक्षिणा का सोमयज्ञ और बिना मन्त्र का होम करने से जो पाप लगता है वही पाप झूठ बोलने से लगता है। व्यासजी का कहा हुआ यह शुभाशुभ-प्राप्ति का विषय मैंने
२९ तुमसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो?

आठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से ब्राह्मणों की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, संसार में कौन पुरुष पूजनीय हैं और किन्हें नमस्कार करना चाहिए? आप किसका प्रिय करते हैं और विपत्ति पड़ने पर किसका आश्रय लेते हैं?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! ब्रह्म ही जिनका परम धन है, जो विद्या के द्वारा प्राप्त आत्म-ज्ञान में प्रसन्न रहते हैं और जिनके कुल में बालक तथा बूढ़े सब परम्परागत कार्य-भार को प्रसन्नता से सँभालते हैं उन्हीं ब्राह्मणों को मैं अपना प्रिय समझता हूँ। विद्वान् विनीत जितेन्द्रिय मृदु-भाषी सच्चरित्र ब्रह्मज्ञ और वाग्मी ब्राह्मणों के गम्भीर स्वर से संयुक्त, कानों को प्रसन्न करनेवाले, मङ्गल-जनक वचन सभा में राजा के सामने ही उच्चरित होते हैं। उन वचनों को सुनने से इस लोक और परलोक में सुख-समृद्धि की वृद्धि होती है। राजसभा में बैठकर उन वचनों के सुननेवाले गुणवानों को मैं अपना प्रिय समझता हूँ। जो मनुष्य ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए शुद्ध मन से स्वादिष्ट भोजन देता है वह मेरा प्रिय है। युद्ध में वीरता दिखाना आश्चर्य का
१० काम नहीं है; किन्तु ईर्ष्याहीन होकर दान करना बहुत कठिन है। संसार में महापराक्रमी शूर-वीर तो अनेक हैं; किन्तु दानवीर सबसे श्रेष्ठ हैं। हे युधिष्ठिर! कुलीन धर्मात्मा तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण होने की कौन कहे, मैं यदि एक साधारण ब्राह्मण भी होता तो भी अपने को कृतार्थ समझता। तुम मुझे सबसे बढ़कर प्रिय हो; किन्तु मुझे ब्राह्मण तुमसे भी प्रिय हैं। अधिक क्या, पिता, पितामह और अन्यान्य सुहृद्गण को भी मैं उतना प्रिय नहीं समझता जितना कि ब्राह्मणों को।

ब्राह्मणों की सेवा करने से महाराज शान्तनु जिन लोकों में विराजमान हैं उन्हीं लोकों को मैं भी जाऊँगा। मैंने कभी ब्राह्मणों का अपकार नहीं किया। मैंने मन-वचन-कर्म से ब्राह्मणों का जो थोड़ा बहुत उपकार किया है उसी के प्रभाव से आज शर-शय्या पर पड़े रहने पर भी मेरे हृदय में किसी तरह का सन्ताप नहीं होता। लोग मुझे ब्राह्मण-प्रिय कहते हैं, इससे मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रखने से बढ़कर पवित्र काम नहीं है। मैं ब्राह्मणों का सेवक हूँ, इसी पुण्य से मुझे अनन्तकाल के लिए पवित्र लोक प्राप्त होंगे। संसार में जिस तरह स्त्रियों के लिए पति की सेवा परम धर्म है, पति ही परम देवता और पति ही परम गति है उसी तरह क्षत्रियों के लिए ब्राह्मणों की सेवा परम धर्म, ब्राह्मण ही परम देवता और ब्राह्मण ही परमगति हैं। यदि २०
क्षत्रिय सौ वर्ष का हो और ब्राह्मण दस वर्ष का, तो भी उन दोनों में ब्राह्मण को पिता और क्षत्रिय को पुत्र कहा जायगा। पति के मरने पर जैसे स्त्री देवर को पति मान लेती है वैसे ही पृथिवी ब्राह्मण के अभाव में क्षत्रिय को अपना स्वामी बना लेती है। अतएव तुम ब्राह्मणों की पुत्र के समान रक्षा करो, गुरु के उपदेश के समान उनके उपदेश को मानो और अग्नि के समान उनकी पूजा करो। सरलस्वभाव, सत्यवादी, सज्जन, सब प्राणियों के हितैषी ब्राह्मणों से—क्रोधी साँप की तरह—डरता रहे। उनको अपना क्रोध या तेज न दिखावे। तपोबल ही ब्राह्मण का और क्रोध क्षत्रिय का सबसे श्रेष्ठ बल है। ये दोनों बल बड़े भयङ्कर हैं। तपस्वी ब्राह्मण कुपित होकर आसानी से शत्रु का नाश कर सकता है। उपकारी शान्तस्वभाव ब्राह्मण क्षत्रिय के तेजोबल और तपोबल दोनों को व्यर्थ कर सकता है। जिस तरह चरवाहा लाठी लेकर गायों की रखवाली करता है उसी तरह क्षत्रिय को दण्ड धारण करके वेद और ब्राह्मणों की रक्षा करनी चाहिए। जिस तरह पिता पुत्र का पालन-पोषण करता है उसी तरह ब्राह्मणों की रक्षा के लिए उनकी देख-रेख करना तुम्हारा कर्तव्य है। २९

नवाँ अध्याय

ब्राह्मण को धन देने का वादा करके फिर न देने के विषय में गीदड़ और वानर की कथा

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जो मनुष्य ब्राह्मणों को दान देने की प्रतिज्ञा करके दान नहीं देते उन दुरात्माओं की क्या गति होती है ?

भीष्म कहते हैं—बेटा ! जो मनुष्य ब्राह्मण को, थोड़ा या बहुत, देने की प्रतिज्ञा करके फिर मुकर जाता है उसकी आशाएँ वैसे ही निष्फल हो जाती हैं जैसे कि नपुंसक के सन्तान होने की आशा। उसके जीवन-भर के तप, दान और यज्ञ आदि शुभ कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। धर्मशास्त्र के विद्वानों का कहना है कि हज़ार श्यामकर्ण घोड़े दान करने के सिवा इस पाप से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय नहीं है। इस विषय में गीदड़ और वानर का संवाद सुनो।

एक बार श्मशान में गीदड़ को मुर्दे का सड़ा मांस खाते देखकर एक वानर ने पूछा—गीदड़, तुमने पूर्व जन्म में कौन सा पाप किया है जिससे तुम्हें श्मशान में सड़े-गले मुर्दे का मांस खाना पड़ता है ?

गीदड़ ने कहा—वानर ! मैंने पूर्व जन्म में ब्राह्मण को धन देने का वादा करके पूरा नहीं किया था उसी पाप के कारण मुझे इस नीच योनि में जन्म लेकर, भूख के मारे, मुर्दे का मांस खाना पड़ता है। मैंने तो अपने गीदड़ होने का कारण तुमको बतला दिया, अब अपना हाल बताओ कि तुम्हें वानर योनि में क्यों जन्म लेना पड़ा।

वानर ने कहा—गीदड़, मैं पूर्वजन्म में लोभ के वश हमेशा ब्राह्मणों का धन हर लेता था इसी से मुझे वानर की योनि में आना पड़ा।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, वानर और गीदड़ दोनों ही पूर्वजन्म में मनुष्य थे और दोनों में मित्रता थी। अपनी करनी से ये दोनों तिर्यग्योनि में उत्पन्न हुए; किन्तु किसी पुण्य के प्रभाव से दोनों को पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण था। मैंने महर्षि वेदव्यास के मुँह से या श्रीकृष्ण से यह इतिहास सुना है। ब्राह्मणों ने मुझे यही उपदेश दिया है कि ब्राह्मणों का धन हर लेना अनुचित है। ब्राह्मण हमेशा क्षमा-पात्र हैं। बालक दरिद्र या कृपण कैसा भी ब्राह्मण हो, उसका अपमान न करे। ब्राह्मण को देने के लिए जो कुछ स्वीकार कर ले वह उसी दम दे दे। ब्राह्मण को निराश न करे। आशा देकर निराश कर देने से ब्राह्मण कुपित होकर आग की तरह प्रज्वलित हो उठते हैं। वे निराश करनेवाले को क्रोध भरी दृष्टि से एक बार देखकर ही भस्म कर देते हैं। सन्तुष्ट ब्राह्मण हमेशा प्रसन्न रहते हैं और राज्य के हितचिन्तक बने रहते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणों को प्रसन्न रखता है उसके पुत्र, पौत्र, भाई-बन्धु, मन्त्री, पशु, नगर और देश आदि सब सुखी रहते हैं। ब्राह्मणों का तेज सूर्य की किरणों के समान तीव्र है। अतएव ब्राह्मणों को जो कुछ देने का वादा करे उसे अवश्य पूरा करे। ब्राह्मणों को दान देने से स्वर्ग प्राप्त होता है और उत्तम कुल में जन्म मिलता है। दान से बढ़कर श्रेष्ठ काम दूसरा नहीं है। ब्राह्मणों को दान देने से देवता और पितर सन्तुष्ट होते हैं। ब्राह्मण ही दान के श्रेष्ठ पात्र हैं। ब्राह्मण किसी भी समय घर आ जायँ तो सम्मान किये बिना उन्हें न जाने दे।

दसवाँ अध्याय

शूद्र को उपदेश देने से जो अनर्थ होता है उसके दृष्टान्त में एक मुनि और शूद्र की कथा

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है; धर्म के विषय में मनुष्य प्रायः भूलें कर बैठते हैं। नीच जाति के साथ मित्रता करके उसे उपदेश देने पर मनुष्य को दोष लगता है या नहीं ?

भीष्म कहते हैं—बेटा, इस विषय में महर्षियों के मुँह से जो कथा मैंने सुनी है वह विस्तार के साथ सुनाता हूँ। नीच जाति को उपदेश देना उचित नहीं। जो मनुष्य नीच जाति-वालों को उपदेश देता है वह, शास्त्र के अनुसार, अपराधी होता है। प्राचीन समय में हिमालय के पास, ब्रह्माजी के आश्रम के समीप, सिद्ध-चारण-सेवित सुन्दर बगीचे से शोभित, अनेक वृक्षों और लताओं से युक्त एक पवित्र आश्रम था। उस आश्रम में सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी नियमव्रतधारी महात्मा, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी और बालखिल्य महर्षि निवास करते और सदा वेदपाठ किया करते थे। एक बार एक दयावान् शूद्र उस आश्रम में गया और १० वहाँ अनेक नियमों का पालन करनेवाले महातेजस्वी देवतुल्य मुनियों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भी तपस्या करने के विचार से उस आश्रम के कुलपति को प्रणाम करके कहा—भगवन्! मैं शूद्र हूँ, तपस्या करने को आपकी शरण में आया हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे [संन्यास धर्म की दीक्षा देकर] कृतार्थ कीजिए।

कुलपति ने कहा कि बेटा, संन्यास धर्म में शूद्र का अधिकार नहीं है। यदि धर्म में तुम्हारी श्रद्धा है तो इस स्थान पर रहकर हम लोगों की सेवा किया करो। इससे तुम श्रेष्ठ गति पा सकोगे। यह सुनकर शूद्र सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए, मेरी इच्छा तो संन्यास ग्रहण करने की है। अच्छा, तो अब कुछ दिन ठहरकर विशेष रूप से यह विचार कर लूँ कि संन्यास धर्म का पालन करना मुझे उचित है या नहीं, फिर जैसा ठीक होगा वैसा करूँगा। यह निश्चय करके वह धर्मात्मा शूद्र उसी आश्रम के समीप कुटी बना करके उसमें वेदी, सोने का स्थान और देवस्थान बनाकर—नियम का पालन करता हुआ जितेन्द्रिय और तपःपरायण होकर—रहने लगा। वह बहुत दिनों तक देवस्थान में तीन बार जल चढ़ाता, बलि देता, होम करता और देवताओं की पूजा तथा फल-मूल आदि द्वारा अतिथियों की सेवा करता रहा। २३

इस तरह बहुत दिन बीतने पर एक बार एक महर्षि उस शूद्र की कुटी में आये। शूद्र ने यथोचित सत्कार करके उन्हें सन्तुष्ट किया। उसकी भक्ति देखकर महर्षि बहुत प्रसन्न हुए। उस बार तो वे उससे मीठी बातें करके चले गये, किन्तु थोड़े दिनों बाद फिर उसके यहाँ आये। धीरे-धीरे उस शूद्र के साथ महर्षि की गहरी मित्रता हो गई। तब तो वे प्रतिदिन उसके यहाँ आने लगे।

एक दिन उस शूद्र ने महर्षि से कहा कि तपोधन, मैं श्राद्ध करना चाहता हूँ। आप कृपा करके यह काम करा दीजिए। महर्षि ने बिना किसी संकोच के उसकी बात मान ली। तब शूद्र पवित्र होकर, महर्षि को पैर धोने के लिए जल देकर, श्राद्ध के लिए कुश आदि सामान ले आया। उसने श्राद्धीय ब्राह्मण का आसन, दक्षिण दिशा में, पश्चिम-मुख बिछा दिया। शास्त्र के विरुद्ध आसन बिछा देखकर महर्षि ने कहा कि तपस्वी, यह आसन पूर्व-मुख कर दो और तुम ३० उत्तर-मुख बैठो। आज्ञा पाकर वह उत्तर-मुख बैठ गया और यथास्थान कुश और अर्घ्य

आदि सामग्री रखकर उसने श्राद्ध किया। पितृकार्य समाप्त होने पर महर्षि उससे बिदा होकर अपने स्थान को चले गये। इस प्रकार बहुत दिनों तक तपस्या करने के बाद वह शूद्र मर गया और अपने पुण्य के प्रभाव से राजा के घर में पैदा हुआ। महर्षि भी शरीर त्यागकर पुरोहित के घर उत्पन्न हुए।

अब शूद्र और महर्षि दोनों का, आयु-क्रम के अनुसार, विद्यानुराग बढ़ने लगा। ब्राह्मण क्रमशः सम्पूर्ण वेद, कल्प, ज्योतिष और सांख्य शास्त्र का विद्वान् हो गया। कुछ दिनों बाद बूढ़े राजा का देहान्त हो गया। तब प्रजा ने राजकुमार का राजतिलक किया। राजा होकर राजकुमार ने उन्हीं ब्राह्मण देवता को अपना पुरोहित बनाया। राजकुमार बड़े सुख से
४० राज्य का शासन और प्रजा का पालन करने लगा। वह पुरोहित जब पुण्याहवाचन या और कोई धर्म का कार्य करने लगता था तब, उसे देखकर, राजा हँसने लगता था।

इस तरह अनेक बार राजा के हँसने पर पुरोहित को क्रोध हो आया। उसने एक दिन एकान्त में राजा से कहा—महाराज, मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ। आप साफ़-साफ़ बता दें तो पूछूँ।

राजा ने कहा—पुरोहितजी! आप जितनी बातें पूछेंगे, वे सब मैं बता दूँगा। स्नेह और सम्मान के कारण मैं कोई बात आपसे न छिपाऊँगा।

पुरोहित ने कहा—महाराज, मैं एक ही बात पूछना चाहता हूँ। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो सच्चा-सच्चा उत्तर देने की प्रतिज्ञा कीजिए।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, आपकी पूछी हुई बात मुझे मालूम होगी तो मैं अवश्य बताऊँगा।

पुरोहित ने कहा—स्वस्तिवाचन, शान्ति और होम आदि धर्म-कार्य करते समय मेरी ओर देखकर आप हँसने लगते हैं, इसका क्या कारण है? आपके हँसने से मैं लज्जित हो जाता हूँ। आपके हँसने का कोई गूढ़ कारण अवश्य है। वह कारण जानने के लिए मैं उत्सुक हो रहा हूँ अतएव अपने हँसने का कारण मुझे बतलाइए। आपने मुझसे सत्य कहने की प्रतिज्ञा
५१ की है, अब उसके विरुद्ध न कीजिए।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! आपका जब इतना आग्रह है तब यह बात, बतलाने योग्य न होने पर भी, बतलाये देता हूँ। हँसने के कारण को सावधान होकर सुनिए। मैं 'जातिस्मर' हूँ; अपने पूर्व जन्म का हाल जानता हूँ। मैं पूर्व जन्म में शूद्र तपस्वी था और आप महा-तपस्वी महर्षि थे। पितरों का श्राद्ध करते समय मुझे आपने कृपा करके कुशासन, कुश और हव्य-कव्य के विषय में उपदेश दिया था। इसी कारण आप इस जन्म में पुरोहित हुए हैं और मुझे राजा के घर में जन्म मिला है। काल की कैसी अद्भुत महिमा है कि मुझे श्राद्ध में उप-देश देने से आपको यह फल मिला। हे द्विजवर, इसी कारण आपको देखकर मुझे हँसी

एक बार कामदेव की माता रुक्मिणी ने असाधारण रूप-लावण्यवती लक्ष्मी को नारायण की गोद में बैठी हुई देखकर प्रसन्नता से उनसे पूछा—पृ० ३६५७

आती थी। आप मेरे गुरु हैं, मैं आपका अनादर करने के लिए नहीं हँसता था। मैं शूद्र होने पर भी जातिस्मर हूँ और आप महर्षि होकर भी पुरोहित हुए। इससे मुझे बड़ा दुःख है। जो हो, अब आप पुरोहिताई छोड़कर फिर श्रेष्ठ वंश में जन्म पाने के लिए यत्न कीजिए, जिसमें आपको इससे भी बढ़कर अधम योनि में जन्म न लेना पड़े। आप ६०
यह धन लेकर धर्म-पुण्य कीजिए।

भीष्म कहते हैं—अब ब्राह्मण राजा से बिदा होकर अपने घर आया और ब्राह्मणों को भूमि, ग्राम और बहुत सा धन देकर उनकी आज्ञा से शुभ कर्म करने लगा। उसके बाद अनेक तीर्थों में जाकर, वहाँ ब्राह्मणों को गोदान करके और बहुत सा धन देकर, परम पवित्र हो गया। अन्त को अपने आश्रम में जाकर घोर तपस्या करके वह आश्रमवासियों द्वारा सम्मानित हुआ।

हे धर्मराज, शूद्र को उपदेश देने से महर्षि को ऐसा कष्ट सहना पड़ा था अतएव नीच जाति को ब्राह्मण उपदेश न दे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को उपदेश देने से ब्राह्मण दूषित नहीं होता। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है, पापी मनुष्य उसे नहीं जान सकता। दुर्वचन निकलने के ७०
डर से मुनि लोग मौन व्रत धारण कर लेते हैं। मनुष्य धार्मिक और सत्य-सरलता आदि गुणों से युक्त होने पर भी दुर्वचन बोलने से घोर पाप का भागी होता है। बिना सोचे-समझे चाहे जिसको उपदेश न दे बैठे; क्योंकि उपदेश ग्रहण करनेवाला मनुष्य यदि पाप-कर्म करता है तो उपदेष्टा को उस पाप का हिस्सा मिलता है। बुद्धिमान् धर्मज्ञ मनुष्यों को सोच-समझकर काम करना चाहिए। धन के लोभ से उपदेश देने पर धर्म का नाश हो जाता है। किसी के प्रश्न करने पर, अच्छी तरह विचार करके ऐसा उपदेश देना चाहिए जिसमें धर्म की हानि न हो। नीच जाति को उपदेश देने से उपदेश-कर्ता को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, अतएव नीच जाति को उपदेश देना उचित नहीं। ७६

ग्यारहवाँ अध्याय

लक्ष्मी का रुक्मिणी को अपने निवास-स्थान बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किस प्रकार के पुरुषों और किस तरह की स्त्रियों के पास लक्ष्मी रहती है?

भीष्म ने कहा कि बेटा, एक बार कामदेव की माता रुक्मिणी ने असाधारण रूप-लावण्य-वती लक्ष्मी को नारायण की गोद में बैठी हुई देखकर प्रसन्नता से उनसे पूछा—हे त्रिलोकेश्वरी, तुम किस स्थान पर और कैसे मनुष्यों के पास रहती हो? तब चन्द्रमुखी कमला, नारायण के सामने, रुक्मिणी से मधुर वचन बोलीं—सुन्दरी! मैं वाग्मी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उदार मनुष्यों के पास रहती हूँ। जो अकर्मण्य, नास्तिक, कृतघ्न, आचार-भ्रष्ट, नृशंस,

चोर, गुरुद्रोही, उद्धत तथा कपटी हैं और जो बल, वीर्य तथा बुद्धि से हीन हैं उनके पास मैं नहीं रहती; जो हर्ष और क्रोध करने का स्थान नहीं जानते; जो धन प्राप्त करने की आशा नहीं करते और जो थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं ऐसे तुच्छ मनुष्यों के पास मैं कभी नहीं रहती। जो सदाचारी, धर्मज्ञ, बड़े-बूढ़ों की सेवा में तत्पर, पुण्यात्मा, क्षमाशील और बुद्धिमान् होते हैं उनके
१० पास मैं हमेशा रहती हूँ। जो फूहड़ स्त्रियाँ घर की चीज़-वस्तुओं को इधर-उधर पड़ी रहने देती हैं, काम करते समय जिन्हें कुछ विचार नहीं रहता, जो हमेशा पति के प्रतिकूल बातें करती हैं, दूसरों के घर में रहना जिन्हें बहुत पसन्द है, जिनमें धैर्य और लज्जा रत्ती-भर भी नहीं है, जो निर्दय और अपवित्र होती हैं, काम करने में जिनका मन नहीं लगता, जो हमेशा लड़ाई-झगड़ा करती और अधिक सोती हैं, उनके पास मैं कभी नहीं रहती। जो स्त्रियाँ पति की सेवा करती हैं; जो क्षमाशील, सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, सत्य-सरलता आदि गुणों से युक्त, देवताओं और ब्राह्मणों में श्रद्धा रखनेवाली, सुलक्षणी और सुन्दरी होती हैं उनके पास मैं हमेशा रहती हूँ। सवारी, कन्या, आभूषण, यज्ञ, जल से पूर्ण बादल, फूले हुए कमल, शरद ऋतु के नक्षत्र, हाथी, गायों के रहने के स्थान, आसन, फूले हुए कमलों से शोभित तालाब, मतवाले हाथी, साँड़, राजा, सिंहासन, सज्जन पुरुष, विद्वान् ब्राह्मण, प्रजा का पालन करनेवाले क्षत्रिय, खेती करनेवाले वैश्य और सेवा-निरत शूद्र मेरे प्रधान निवासस्थान हैं। मैं उस नदी में भी रहती हूँ जो हंस-बगला आदि पक्षियों के स्वर से परिपूर्ण और वृक्षों से शोभित रहती है और जिसमें हाथी क्रीड़ा करते हैं तथा जो सिद्ध तपस्वियों से सेवित रहती है। जिस घर में हमेशा होम होता और देवता तथा गो-ब्राह्मण की पूजा होती है उस घर को मैं कभी नहीं छोड़ती। भगवान् नारायण धर्म, ब्राह्मणत्व और संसार के एकमात्र आधार हैं इसी से मैं इनके शरीर में एकाग्रचित्त और अभिन्न रूप से रहती हूँ। नारायण के सिवा और कहीं मैं शरीर धारण करके नहीं रहती। मैं दया-
२१ भाव से जिसके पास रहती हूँ उसका धर्म, अर्थ और यश बढ़ता है।

बारहवाँ अध्याय

सम्भोग में स्त्री को ही अधिक सुख मिलने के सम्बन्ध में भङ्गास्वन का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, सम्भोग में अधिक आनन्द किसे मिलता है ? स्त्री को या पुरुष को ?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में राजा भङ्गास्वन का आख्यान सुनाता हूँ। प्राचीन समय में भङ्गास्वन नाम के एक धर्मात्मा राजा थे। उनके कोई सन्तान न थी। पुत्र की इच्छा से उन्होंने, इन्द्र के विरुद्ध, अग्निष्टुत नामक यज्ञ किया। यह यज्ञ करने से उनके सौ पुत्र

पैदा हुए। राजा भङ्गास्वन को पुत्र की इच्छा से अग्निष्टुत यज्ञ करते देखकर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया। वे राजा के दोष ढूँढ़ने लगे; किन्तु उन्हें बहुत दिनों तक कोई मौक़ा न मिला।

एक दिन महाराज भङ्गास्वन शिकार खेलने के लिए राजधानी से बाहर निकले। उस दिन मौक़ा पाकर इन्द्र ने उन्हें अपने मायाजाल से मोहित कर दिया। माया से मोहित राजा भङ्गास्वन को दिशाओं का ज्ञान न रह गया। वे भूख-प्यास से व्याकुल होकर घोड़े पर सवार इधर-उधर भटकने लगे। कुछ देर बाद जल से परिपूर्ण बड़ा सुन्दर तालाब उनको देख पड़ा। तब वे घोड़े से उतर पड़े। उन्होंने घोड़े को पानी पिलाकर वृक्ष में बाँध दिया। फिर वे स्नान करने के लिए तालाब में घुसे। स्नान करते ही वे स्त्री हो गये। अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग देखकर वे बहुत झेंपे। वे व्याकुल होकर सोचने लगे कि अब मैं किस तरह घोड़े पर सवार हूँगा और अपनी राजधानी को किस प्रकार जाऊँगा। अग्निष्टुत यज्ञ करने से मेरे जो सौ महापराक्रमी पुत्र पैदा हुए हैं उनसे, घर जाकर, मैं क्या कहूँगा? इसके सिवा मेरी स्त्री, पुरवासी और गाँव के लोग जब मुझसे पूछेंगे तब उन्हें क्या उत्तर दूँगा? धर्मज्ञ महर्षि कह गये हैं कि मृदुता, दुर्बलता और भीरुता, ये तीन स्त्रियों के और परिश्रम-शीलता तथा वीर्यवत्ता ये दो पुरुषों के प्रधान गुण हैं। इस समय मेरा पुरुषत्व नष्ट हो गया है और मुझमें स्त्रियों के सब गुण आ गये हैं। अब किस प्रकार पुरुषों की तरह घोड़े पर सवार हूँगा?

१०

यह सोचकर, किसी तरह ढाढ़स बाँधकर, महाराज भङ्गास्वन तालाब से निकले और घोड़े पर सवार होकर अपने नगर को गये। उनको देखकर उनके पुत्रों, स्त्री, नौकरों और नगरवासियों को बड़ा अचम्भा हुआ। उन सबको विस्मित देखकर महाराज भङ्गास्वन ने कहा—मैं सैनिकों के साथ शिकार खेलने गया था; दैववश एक घने वन में जा पहुँचा। वहाँ घोड़े पर सवार अकेले, प्यास से व्याकुल, घूमते-घूमते मुझे एक सुन्दर तालाब देख पड़ा। घोड़े से उतरकर ज्योंही मैं तालाब में घुसा त्योंही मुझे स्त्रीत्व प्राप्त हो गया। अब महाराज भङ्गास्वन ने अपने मन्त्री और पुत्रों को विश्वास दिलाने के लिए अपना नाम और गोत्र

बतलाया। इसके बाद पुत्रों से कहा—पुत्रो, तुम सब भाई आपस में मेल रखकर इस राज्य को सँभालो। मैं वन को जाता हूँ।

स्त्री-रूपी महाराज भङ्गास्वन पुत्रों से यह कहकर वन को चले गये और वहाँ एक तपस्वी के आश्रम में रहने लगे। कुछ दिनों बाद उस तपस्वी के वीर्य से उनके सौ पुत्र पैदा हुए। उन सबके बड़े होने पर महाराज भङ्गास्वन उनको लेकर अपने नगर में आये। उन्होंने अपने पहले के पुत्रों से कहा—पुत्रो! तुम लोग मेरी पुरुषावस्था में पैदा हुए हो और ये सब मेरी इस अवस्था में उत्पन्न हुए हैं, अतएव इन लोगों के साथ भी मेल करके तुम सब लोग राज्य करो।

भङ्गास्वन की आज्ञा मानकर उनके पहले के पुत्रों ने उन पीछेवालों को भी अपने यहाँ रख लिया। वे सब बड़े स्नेह के साथ राज्य करने लगे। यह देखकर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया। वे सोचने लगे कि भङ्गास्वन को स्त्री बनाकर मैं कोई अपकार न कर सका, इससे तो उनका उपकार ही हो गया। जो हो, अब वह उपाय करना चाहिए जिससे उनका अनिष्ट हो। यह सोचकर इन्द्र, ब्राह्मण का वेष बनाकर, भङ्गास्वन के पूर्व पुत्रों के पास जाकर कहने लगे—हे राजकुमारो, एक पिता से पैदा हुए भाइयों में भी भ्रातृ-स्नेह नहीं रहता। देखो, देवता और दानव दोनों महर्षि कश्यप के पुत्र हैं; किन्तु राज्य के लोभ से उनमें घोर युद्ध हुआ है। तुम सौ भाई भङ्गास्वन के पुत्र हो और दूसरे एक सौ पुत्र एक तपस्वी के लड़के हैं, तो फिर उनके साथ
३० तुम लोगों का भ्रातृ-स्नेह होने का क्या कारण है? तुम लोगों के लिए यह बड़ी निन्दा की बात है कि ये तपस्वी के लड़के तुम लोगों के पैतृक राज्य में हिस्सेदार हैं।

ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र की बातें सुनकर वे सब ईर्ष्या के मारे आपस में लड़ मरे। यह हाल सुनकर स्त्री-रूपी भङ्गास्वन को बड़ा शोक हुआ। वे दुःख के मारे विलाप करने लगे। तब इन्द्र, ब्राह्मण का वेष बनाकर, उनके पास पहुँचे और कहने लगे कि सुन्दरी, तुम इस तरह क्यों रो रही हो। ब्राह्मण को सामने देखकर और उसकी बातें सुनकर भङ्गास्वन ने कहा—ब्रह्मन्, काल के प्रभाव से मेरे दो सौ पुत्र मर गये। मैं पहले पुरुष था और राज्य करता था। उस अवस्था में मुझसे सौ पुत्र पैदा हुए। एक दिन मैं शिकार खेलने के लिए वन को गया। वहाँ दिशा का भ्रम हो जाने से इधर-उधर भटकने लगा। थोड़ी देर बाद मुझे एक तालाब देख पड़ा। उस तालाब में पैठते ही मैं स्त्री हो गया। दैव के कोप से स्त्री हो जाने पर मुझे बड़ा दुःख हुआ। तब मैं अपनी राजधानी में जाकर, पुत्रों को राज्य सौंपकर, इस तपोवन को चला आया। यहाँ एक तपस्वी के वीर्य से मेरे सौ पुत्र पैदा हुए। जब वे पुत्र बड़े हुए तब उनको लेकर मैं अपनी राजधानी को गया और अपने पहले के पुत्रों से उनका स्नेह करा आया। वे मेरे दो सौ पुत्र सुख से राज्य करते थे। समय के फेर से उनमें विरोध हो गया और वे सब आपस में युद्ध करके मर गये। इसी दुःख के मारे मैं रो रही हूँ।

दीन भाव से भङ्गास्वन के यों कहने पर इन्द्र ने घुड़ककर कहा—रे मूर्ख, मैं इन्द्र हूँ। तूने मेरा अनादर करके मेरे विरुद्ध अग्निष्टुत यज्ञ किया था, इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। इसी से कुपित होकर मैंने तेरे पुत्रों का नाश करा दिया है। ४०

महाराज भङ्गास्वन ने इन्द्र को प्रणाम करके विनीत भाव से कहा—देवराज, मुझ पर कृपा कीजिए। मैंने पुत्र की इच्छा से अग्निष्टुत यज्ञ किया था, अतएव इसमें मेरा जो अपराध हो वह क्षमा कर दीजिए। भङ्गास्वन की प्रार्थना सुनकर इन्द्र ने कहा—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। बताओ, तुम्हारे किन पुत्रों को जीवित कर दूँ? कहो तो तुम्हारे वीर्य से उत्पन्न पुत्रों को जिला दूँ या तुम्हारे गर्भ से पैदा हुए बेटों को जीवित कर दूँ?

स्त्री-रूपधारी भङ्गास्वन ने हाथ जोड़कर कहा—देवराज, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे गर्भ से उत्पन्न पुत्रों को जिला दीजिए।

यह सुनकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—भद्रे, तुम्हारी पुरुषावस्था में तुम्हारे वीर्य से जो पुत्र पैदा हुए हैं उनसे तुम्हारी क्या शत्रुता है और गर्भ से उत्पन्न पुत्रों पर तुम्हारा इस प्रकार का स्नेह क्यों है? भङ्गास्वन ने कहा—देवराज, पुरुषों में स्त्रियों के समान स्नेह नहीं होता। इसी कारण गर्भ से उत्पन्न पुत्रों पर मुझे अधिक स्नेह है। कृपा करके उन्हीं को जिला दीजिए।

यह सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—मैं तुमको वर देता हूँ, तुम्हारे सब पुत्र जीवित हो जावें। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम पुरुष होना चाहते हो या स्त्री रहना ही तुम्हें पसन्द है। तुम जिस अवस्था में रहना चाहो, उसी में तुमको कर दूँ। भङ्गास्वन ने कहा कि देवराज, अब मैं पुरुष होना नहीं चाहता। मुझे स्त्रीत्व में ही सुख है। इन्द्र ने कहा ५० कि राजन्, तुम पुरुषत्व की उपेक्षा करके स्त्री रहना क्यों पसन्द करते हो। भङ्गास्वन ने कहा कि देवराज, संभोग में स्त्री को ही विषय-सुख अधिक मिलता है। इसी से अब मुझे स्त्री रहना ही पसन्द है। मैं सच कहता हूँ, स्त्रीत्व प्राप्त करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है और स्त्रीत्व

त्यागने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है। अब आप जाइए। भङ्गास्वन के यों कहने पर इन्द्र उन्हें वरदान देकर देवलोक को चले गये। हे धर्मराज, इसी दृष्टान्त से मैं विश्वास करता हूँ
५४ कि पुरुष और स्त्री के संयोग में पुरुष की अपेक्षा स्त्री को विषय-सुख अधिक मिलता है।

तेरहवाँ अध्याय

मन-वचन-शरीर से दुष्कर्मों के त्याग को ही श्रेष्ठ बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मनुष्य किस प्रकार के आचरण करने से दोनों लोकों में अपना कल्याण कर सकता है ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! हिंसा, चोरी और परस्त्रीगमन, ये तीन प्रकार के शारीरिक पाप हैं; झूठ बोलना, निठुर वचन कहना, चुग़ली खाना और अण्ट-शण्ट बातें करना, ये चार वाचनिक दोष हैं तथा दूसरों की वस्तु ले लेने की इच्छा करना, दूसरों का बुरा चेतना और वेद-वचनों में श्रद्धा न करना, ये तीन प्रकार के मानसिक पाप हैं। इनके न करने से दोनों लोकों में कल्याण हो सकता है। अतएव मन-वचन-कर्म से दूसरों का बुरा न चेतना ही सबके लिए श्रेष्ठ है। सारांश यह कि इस लोक में जो मनुष्य शुभ कर्म करता है उसे शुभ फल और जो अशुभ कर्म
६ करता है उसे अशुभ फल मिलते हैं।

चौदहवाँ अध्याय

भीष्म की आज्ञा से श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से महादेव का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आप विश्वरूप, सबके अन्तर्यामी, भूतभावन, देवताओं और दानवों के गुरु, भगवान् महादेव का ऐश्वर्य और उनके सब नाम जानते हैं। वह सब विस्तार के साथ मुझे सुनाइए।

भीष्म ने कहा—बेटा, भगवान् शङ्कर के गुणों का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सब देवताओं के सृष्टिकर्ता भगवान् शङ्कर सब स्थानों में व्याप्त रहने पर भी सर्वत्र नहीं देख पड़ते। वे प्रकृति और पुरुष से परे हैं। ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक सभी उनकी उपासना करते हैं। तत्त्वज्ञानी योगी महर्षि उन्हीं सूक्ष्म और स्थूल, अक्षर, परब्रह्म-स्वरूप महादेव का ही ध्यान करते हैं। देवदेव शङ्कर ने पहले अपने तेज से प्रकृति और पुरुष को उत्पन्न करके उनके द्वारा प्रजापति ब्रह्मा को उत्पन्न किया। जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु के वशीभूत मेरे जैसे मनुष्य उन महेश्वर के गुणों का वर्णन नहीं कर सकते। केवल ये यदुकुल-श्रेष्ठ शङ्ख-चक्र-गदाधर वासुदेव ही दिव्य दृष्टि द्वारा उनके दर्शन करते हैं। महात्मा वासुदेव बदरिकाश्रम में हज़ार वर्ष तक केवल इन्हीं सनातन महादेव की आराधना करके, इन्हीं की कृपा

से, सर्वव्यापी और सब प्राणियों के प्रिय हुए हैं। ये प्रत्येक युग में बड़ी भक्ति के साथ देवदेव १२
महादेव की आराधना करते हैं। इन्होंने पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से उन देवदेव की आराधना करके उनका ऐश्वर्य प्रत्यक्ष देखा है। भगवान् शङ्कर के समान श्रेष्ठ कोई नहीं है। महाबाहु वासुदेव ही उन सनातन महादेव के नाम, गुण और उनके माहात्म्य का विस्तार के साथ वर्णन कर सकते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब महात्मा भीष्म ने श्रीकृष्ण से कहा—महात्मन्, महाराज युधिष्ठिर भगवान् शङ्कर का माहात्म्य सुनना चाहते हैं अतएव आप इनको सुनाइए। प्राचीन समय में ब्रह्मयोनि महातपस्वी तण्डी ने ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी को भगवान् भूतनाथ के हज़ार नाम बतलाये थे। इस समय वेदव्यास आदि महर्षियों को आप उन सनातन, आनन्दमय, ज्ञानस्वरूप, जगत्पति शङ्कर का माहात्म्य सुनाइए। २१

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भीष्म, जब ब्रह्मा आदि देवता और तत्त्वदर्शी महर्षि महादेवजी का माहात्म्य और उनका आदि-अन्त नहीं जान सकते तब मनुष्य कैसे जान सकेंगे? अच्छा, अब मैं उन असुरनाशन भगवान् यज्ञपति के कुछ गुणों का वर्णन करता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! अब श्रीकृष्ण आचमन करके शुद्धचित्त होकर महात्मा भीष्म, युधिष्ठिर और महर्षियों से कहने लगे—महाशयो, मैंने साम्ब को प्राप्त करने के लिए जिस तरह समाधि लगाकर भगवान् शङ्कर का साक्षात्कार किया था वह पहले आप लोगों को सुनाता हूँ। उसके बाद उनके गुणों का वर्णन करूँगा। महाबली प्रद्युम्न द्वारा शम्बर दैत्य के मारे जाने पर, बारह वर्ष बाद, एक दिन रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न प्रद्युम्न और चारुदेष्ण आदि पुत्रों को देखकर जाम्बवती पुत्र की इच्छा से मेरे पास आई और कहने लगी—नाथ, आप मुझे महा-पराक्रमी गुणवान् परमसुन्दर अपने समान एक पुत्र दीजिए। आपके लिए तीनों लोकों में कोई ३०
काम असाध्य नहीं है। आप चाहें तो दूसरी दुनिया बना सकते हैं। आपने पहले जिस प्रकार बारह वर्ष तक कठोर नियम का पालन करते हुए भगवान् शङ्कर की आराधना करके उनकी कृपा से रुक्मिणी के गर्भ से चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और शम्भु, इन महापराक्रमी पुत्रों को उत्पन्न किया है, उसी प्रकार अब मुझे भी एक पुत्र दीजिए। मैंने जाम्बवती से कहा—देवि, मैं तुम्हारे कहने से महादेवजी की आराधना करने जाता हूँ। जाम्बवती ने कहा—नाथ, आप भगवान् शङ्कर की आराधना करने जाइए। ब्रह्मा, शिव, काश्यप, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, सावित्री, ब्रह्मविद्या तथा नदी, क्षेत्र, ओषधि, यज्ञवाह, वेद, ऋषि, यज्ञ, समुद्र, दक्षिणा, स्तोभ, नक्षत्र, पितर, ग्रह, देवस्त्रियाँ, देवकन्याएँ, देवमाताएं, मन्वन्तर, गौ, ऋतु, वत्सर, क्षण, पल, मुहूर्त, निमेष और युग आपकी रक्षा करें। किसी स्थान पर आप पर कोई विपत्ति न आवे। ४०

जाम्बवती के इस प्रकार कुशल-कामना करने पर मैंने पिता, माता और मातामह उग्रसेन के पास जाकर उनसे आज्ञा ली। फिर गद और बलदेव के पास जाकर मैंने उनसे यह हाल कहा। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—भैया, जाओ, तुम्हारी तपस्या फलीभूत हो।

इस प्रकार गुरुजनों की आज्ञा लेकर मैंने गरुड़ का स्मरण किया। स्मरण करते ही वे मेरे पास आ गये और आज्ञा पाकर मुझे हिमालय पर्वत पर ले गये। वहाँ उतरकर मैंने गरुड़जी को बिदा कर दिया। मैं उस स्थान की विचित्रता देखने लगा। उसी स्थान पर महात्मा उपमन्यु का आश्रम देख पड़ा। वह आश्रम वेद-पाठ से प्रतिध्वनित, देवताओं और गन्धर्वों से परिपूर्ण तथा फल-फूलों से शोभित धव, अर्जुन, कदम्ब, नारिकेल, कुरुवक, केतकी, जामुन, पाटल, बरगद, वरुण, वत्सनाभ, बिल्व, सरल, कैथ, प्रियाल, शाल, ताल, बेर, कुन्द, पुन्नाग, अशोक, आम, चमेली, महुवा, कोविदार, चम्पक, कटहल आदि अनेक प्रकार के जङ्गली पेड़ों से शोभायमान था। किसी स्थान पर वृक्ष और लताएँ, किसी स्थान पर केले के वन, कहीं पक्षियों के खाने के लिए तरह-तरह के फलों से युक्त वृक्ष, किसी स्थान पर राख के ढेर, कहीं सुन्दर तालाब और कहीं विशाल अग्निकुण्ड शोभा दे रहे थे। रुरु (हिरन), वानर, बाघ, सिंह, लेंदुआ,
५० हरिण, मोर, बनबिलाव, साँप, भैंसा, रीछ और मतवाले हाथी आदि अनेक प्रकार के पशु वहाँ थे। वहाँ तरह-तरह के पक्षी थे। अनेक प्रकार के फूलों और मतवाले हाथियों के गण्डस्थल से निकले हुए मद के गन्ध से सुगन्धित वायु धीरे-धीरे चलता था। अप्सराएँ मधुर स्वर से गाती थीं। झरनों से झर्झर शब्द, हाथियों की चिग्घाड़, किन्नरों के मधुर गान का शब्द और वेद-ध्वनि सुनाई देती थी। स्वच्छ जलवाली गङ्गाजी वहाँ हमेशा रहती हैं। कौपीन, मृगछाला और वल्कल धारण करनेवाले, अग्नि के समान तेजस्वी, परम धार्मिक, वायु भक्षण करनेवाले, केवल जल पीनेवाले, जप करनेवाले, मैत्री आदि वृत्तियों के अभ्यासी, ध्याननिष्ठ, धूमप्राश, ऊष्मप, क्षीरप, बिना हाथ लगाये खाने-पीनेवाले, अश्मकुट्ट, दन्तोलूखल, मरीचिप, फेनप, मृगचारी, पीपल के फल खानेवाले और जल में सोनेवाले तपस्वी सदा उस स्थान पर तपस्या किया करते हैं। शिव
६० आदि देवता हमेशा वहाँ विद्यमान रहते हैं। उन महात्माओं के प्रभाव से न्योले साँपों के साथ और बाघ मृगों के साथ मित्र भाव से क्रीड़ा करते हैं।

इस प्रकार वेद-वेदाङ्ग के पारदर्शी नियम-परायण महर्षियों से सेवित, परम रमणीय, उस आश्रम के अनेक पदार्थों को देखकर मैंने उस आश्रम पर जाकर जटा-जूटधारी तपस्वी तेजस्वी शान्तस्वभाव युवा उपमन्यु को प्रणाम किया। शिष्य उन्हें घेरे हुए थे। महात्मा उपमन्यु ने मुझे देखकर प्रसन्न हो मुझसे कहा—वासुदेव, आओ। तुम स्वयं पूज्य होकर जो मेरी पूजा करते हो और दूसरों के दर्शनीय होकर जो तुम मेरे दर्शन करने आये हो, इससे जान पड़ता है कि मेरी तपस्या सफल हो गई। तब हाथ जोड़कर मैंने उनसे कुशल पूछकर कहा—भगवन्,

आपके शिष्य और आश्रम में रहनेवाले पशु-पक्षी सब कुशल से हैं न ? आपका धर्म और तीनों अग्नि तो सुरक्षित हैं ?

महात्मा उपमन्यु ने मेरी बातों का उत्तर देकर कहा—वासुदेव, तुम अपने अनुरूप पुत्र अवश्य प्राप्त करोगे। इस तपोवन में भगवान् शङ्कर देवी पार्वती समेत सदा निवास करते हैं। तपस्या करके तुम उनको प्रसन्न करो, इसी से तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। देवताओं और महर्षियों ने तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य और इन्द्रिय-निग्रह द्वारा उन देवदेव को प्रसन्न करके अभीष्ट वर प्राप्त किया है। वे तेज और तपस्या की खान हैं। वे अचिन्त्य-स्वभाव होकर शुभ-अशुभ ७०
सब भावों की उत्पत्ति और नाश करते हैं। महापराक्रमी दानवराज हिरण्यकशिपु इन्हीं शङ्कर के वरदान से स्वर्ग पर अधिकार करके दस करोड़ वर्ष तक राज्य करता रहा। उसके पुत्र मन्दार ने इन्हीं भगवान् के वरदान से इन्द्र के साथ दस करोड़ वर्ष तक युद्ध किया था। उस मन्दार के शरीर पर तुम्हारा सुदर्शन चक्र और इन्द्र का भयङ्कर वज्र, सड़े तिनके के समान, व्यर्थ हो गया था। भगवान् शङ्कर ने सुदर्शन चक्र से, जल में स्थित, एक दानव को मारा था। उसी दानव को मारने के लिए वह चक्र बनाया गया था। सुदर्शन चक्र अग्नि के समान तेजस्वी है। रुद्रदेव के सिवा और कोई उसकी ओर देख तक नहीं सकता। उस चक्र को महातेजस्वी देखकर उमापति ने उसका नाम सुदर्शन रक्खा, उसी समय से वह संसार में सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् शङ्कर के वरदान से मन्दार, वज्र आदि, तीक्ष्ण अस्त्रों की चोट को सह लेता था। देवता, मन्दार से पीड़ित होकर, दानवों के साथ बहुत दिनों तक संग्राम करते रहे। ८१

भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर विद्युत्प्रभ को एक करोड़ पुत्र देकर तीनों लोकों का राज्य दिया था। तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त करके विद्युत्प्रभ एक लाख वर्ष तक आनन्द करता रहा। कुशद्वीप में उसकी राजधानी थी।

ब्रह्माजी ने शतमुख नाम का एक असुर पैदा किया था। वह महापराक्रमी असुर महादेवजी को प्रसन्न करने के लिए सौ वर्ष से अधिक समय तक अग्नि में अपने मांस की आहुति देता रहा। उसकी यह भक्ति देखकर उमापति ने प्रसन्न होकर कहा—शतमुख, हम तुम्हारा क्या उपकार करें ? शतमुख ने कहा—भगवन्, आपकी कृपा से मुझमें सृष्टि उत्पन्न करने की योग्यता हो जावे और मेरे हृदय में सनातन ब्रह्मविद्या का प्रकाश हो जाय। शूलपाणि ने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया। ब्रह्माजी ने, पुत्र की इच्छा से, तीन सौ वर्ष में समाप्त होनेवाला एक यज्ञ किया था। भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर उन्हें यज्ञशील एक हज़ार पुत्र दिये। देवताओं से प्रशंसित परम धार्मिक योगेश्वर याज्ञवल्क्य और महर्षि वेदव्यास, महादेव की आराधना करके, उनकी कृपा से महायशस्वी हुए हैं। ९०

एक बार इन्द्र ने बालखिल्यों का अनादर किया था। इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने दूसरा इन्द्र उत्पन्न करने की इच्छा से, तपस्या करके, महादेवजी को सन्तुष्ट किया। शङ्करजी ने प्रसन्न

होकर बालखिल्यों से कहा—तुम्हारे तपोबल से एक पक्षी उत्पन्न होगा [वह इन्द्र को परास्त करेगा]। प्राचीन समय में एक बार महादेवजी के क्रोध से सम्पूर्ण जल नष्ट हो गया था। यह देखकर देवताओं ने सप्तकपाल यज्ञ करके महादेवजी को मनाया। उनकी कृपा से पृथिवी पर फिर जल आ गया।

महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया ने पति को त्यागकर यह प्रतिज्ञा की कि अब मैं इनके अधीन न रहूँगी। महादेवजी को प्रसन्न करने के लिए वे तीन सौ वर्ष तक तपस्या करती हुई मूसलों पर भूखी सोई थीं। अनसूया की भक्ति देखकर शङ्करजी बहुत प्रसन्न हुए और उनके पास आकर मुसकुराते हुए बोले—अनसूया! हमारे वरदान से तुमको, पति का सहवास किये बिना ही, चरु पीने से एक पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होकर बड़ा यशस्वी होगा। महात्मा विकर्ण ने भक्तवत्सल भवानीपति को प्रसन्न करके सिद्धि प्राप्त की थी।

१०० जितेन्द्रिय शाकल्य ने नव सौ वर्ष तक महादेवजी की आराधना की थी। तब प्रसन्न होकर उन्होंने शाकल्य से कहा—बेटा, तुम ग्रन्थकर्ता होगे। तीनों लोकों में तुम्हारा नाम होगा। तुम्हारे वंश में अनेक महर्षि उत्पन्न होंगे, जिनके द्वारा तुम्हारा वंश उज्ज्वल और अक्षय होगा। तुम्हारा पुत्र सूत्रकर्ता होगा।

सत्ययुग में सावर्णि नाम के एक विख्यात महर्षि थे। उन्होंने साठ हज़ार वर्ष तक महादेवजी की तपस्या की थी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा—बेटा, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम इस लोक में अजर, अमर और विख्यात ग्रन्थकर्ता होगे। काशीपुरी में भगवान् भूतनाथ की आराधना करके उनकी कृपा से इन्द्र देवताओं के राजा हुए हैं। देवर्षि नारद ने बड़ी भक्ति से महादेवजी की तपस्या की थी। शङ्करजी ने प्रसन्न होकर उनसे कहा—नारद! इस लोक में तुम्हारे समान तेजस्वी, तपस्वी और यशस्वी कोई न होगा। तुम हमेशा गा-बजाकर मुझे सन्तुष्ट रक्खोगे।

हे माधव, मैंने भी जिस तरह महादेवजी के दर्शन किये और उनसे जो कुछ प्राप्त किया
१० है वह सब, विस्तार के साथ, तुम्हें सुनाता हूँ। सत्ययुग में व्याघ्रपाद नाम के वेद-वेदाङ्ग-पारदर्शी महातपस्वी महर्षि थे। उनके वीर्य से मेरा और मेरे छोटे भाई धौम्य का जन्म हुआ। एक दिन हम दोनों भाई खेलते-खेलते एक आश्रम में पहुँचे। वहाँ गायें दुही जा रही थीं। उनको दुही जाती देखकर बालकस्वभाव-वश हम लोगों की इच्छा दूध पीने की हुई। हम दोनों भाइयों ने घर आकर अपनी माता से खाने के लिए दूध-भात माँगा; किन्तु दूध न होने के कारण माता का बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पानी में आटा घोलकर और उसी को दूध बताकर हम लोगों को दे दिया। एक बार हम दोनों भाई, पिताजी के साथ, अपने एक सजातीय के यज्ञ में गये थे। वहाँ हम लोगों ने सुर-नन्दिनी गौ का, अमृत के समान स्वादिष्ट, दूध पिया था।

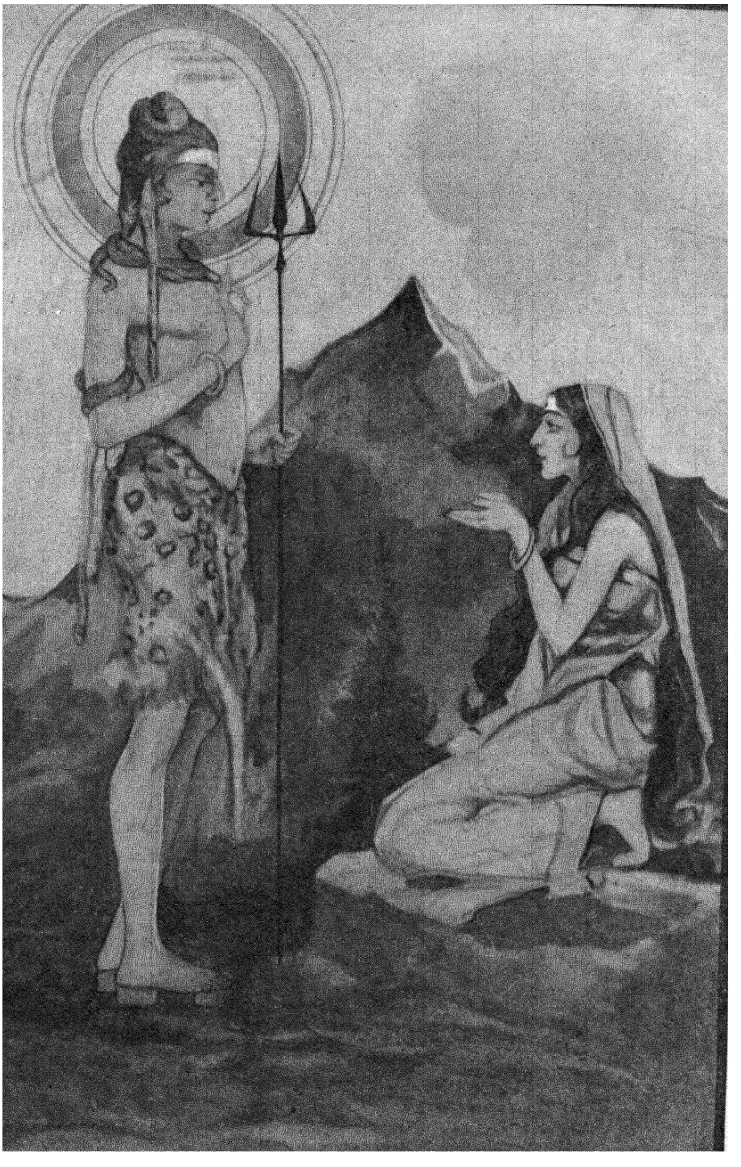

अनसूया की भक्ति देखकर शङ्करजी बहुत प्रसन्न हुए और उनके पास आकर मुसकुराते हुए बोले—पृ० ३९६६

इससे हमें दूध का स्वाद मालूम था। इसी कारण हमको माता का दिया हुआ वह पानी में घुला हुआ आटा पसन्द नहीं आया। हमने कहा कि माताजी, तुमने जो दिया है यह दूध-भात नहीं १२०
है। यह सुनकर दुःख से व्याकुल माता ने हम दोनों को छाती से लगाकर, माथा सूँघकर, कहा—बेटा, हम लोग वन में रहते और फल-मूल खाकर निर्वाह करते हैं। बालखिल्य आदि मुनि जिस नदी के किनारे रहते हैं वहीं हम लोग भी रहते हैं। वन में और गुफाओं में रहनेवाले मुनियों को दूध कहाँ मिल सकता है? गाँव में रहनेवाले मनुष्यों की तरह भोजन का सुख मुनियों को नहीं मिल सकता। वे तो केवल वन के फल-मूल खाकर निर्वाह करते हैं। नदी के किनारे, पहाड़ की गुफा में या तीर्थस्थानों पर निवास करके जप-तप करना ही हमारा प्रधान कर्म है। भगवान् शङ्कर ही हमारे एकमात्र अवलम्बन हैं। उनको प्रसन्न किये बिना हमें दूध, भोजन, वस्त्र या और कोई सुख नहीं मिल सकता। उन्हीं को प्रसन्न करने से तुम्हें अभीष्ट फल मिलेगा।

माता की ये बातें सुनकर मैंने हाथ जोड़कर पूछा—माता, महादेव कौन हैं? वे किस तरह प्रसन्न होते हैं? वे कहाँ रहते हैं? उनके दर्शन किस तरह होंगे? उनका रूप कैसा है और उनकी प्रसन्नता किस तरह मालूम होती है? ३१

मेरा माथा सूँघकर मेरे शरीर पर हाथ फेरती हुई माता आँखों में आँसू भरकर कहने लगी—बेटा! उन दुराराध्य, दुर्बोध्य, दुर्लक्ष्य महादेवजी को मूढ़ मनुष्य नहीं जान सकते। विद्वानों ने उनके असंख्य रूप, अनेक स्थान और उनको प्रसन्न करने के अनेक उपाय बतलाये हैं। उन्होंने जितने रूप धारण किये हैं, वे जिस तरह प्रसन्न होते और क्रीड़ा करते हैं उसे कोई विशेष रूप से नहीं जान सकता। अन्तर्यामी विश्वरूप शूलपाणि ने भक्तों पर कृपा करने के लिए जितने रूप धारण किये हैं उन सबका वर्णन देवताओं ने, कृपा करके, ब्राह्मणों से किया है। वह मैं तुम्हें संक्षेप में बतलाती हूँ। १३९

भगवान् भवानीपति अपनी इच्छा से ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेवा, मनुष्य, देवनारी, प्रेत, पिशाच, किरात, शबर, कूर्म, मत्स्य, शङ्ख, यक्ष, राक्षस, सर्प, दैत्य, दानव, जन्तु, गर्भवासी जन्तु, जलजन्तु, बाघ, सिंह, मृग, तरक्षु, रीछ, उलूक, कुत्ता, गीदड़, गिरगिट, हंस, कौआ, मोर, बगला, सारस, गिद्ध, चक्रवाक, नीलकण्ठ, पर्वत, गाय, घोड़ा, हाथी, ऊँट, गधा और बकरी का रूप धारण करते हैं। वे कभी दण्डधारी, कभी छत्रधारी, कभी कमण्डलुधारी, कभी ब्राह्मण, कभी षट्मुख, कभी बहुमुख, कभी त्रिनेत्र और कभी बहुशीर्ष होते हैं। वे कभी असंख्य कटि, पाद, उदर, मुख, हाथ और पार्श्वों द्वारा विभूषित और असंख्य गणों से घिरे रहते हैं। वे कभी-कभी ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध और चारणगण का रूप धारण करते हैं। वे कभी भस्माच्छादित और अर्धचन्द्र से भूषित रहते हैं। सब प्राणियों का नाश करनेवाले, सबके ५०
अन्तर्यामी, सर्ववादी, भूतभावन महादेवजी इन रूपों से सर्वत्र निवास करते हैं। पण्डितों ने

उनके असंख्य नाम बतलाये हैं और अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की है। जो मनुष्य जिस प्रकार की इच्छा और जो प्रार्थना करता है वह सब वे जानते रहते हैं। अतएव यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो उन्हीं शङ्कर की शरण में जाओ। वे कभी प्रसन्न होते, कभी क्रुद्ध होते और कभी क्रीड़ा करते हैं। वे कभी चक्र, कभी शूल, कभी गदा, कभी मूसल, कभी तलवार और कभी पट्टिश धारण करते हैं। वे कभी साँप की मेखला, साँप के कुण्डल और साँप का यज्ञोपवीत पहनते हैं; कभी साँप का चमड़ा बिछाते हैं। वे कभी अपने गणों के साथ नाचते, गाते, बजाते और हँसते हैं। वे कभी उन्मत्त होकर जमुहाई लेते, इधर-उधर घूमते और रोते-रुलाते हैं। वे कभी प्रचण्ड मूर्ति धारण करके प्राणियों को डराते हुए खिलखिलाकर हँसते हैं; कभी जागते और कभी सोते हैं। वे कभी स्वयं जप और तपस्या करते हैं तथा कभी दूसरों से अपने नाम का जप और अपनी तपस्या कराते हैं। वे कभी दान, ग्रहण, योग और ध्यान करते हैं; कभी वेदी, यूप, गोष्ठ और अग्नि में निवास करते हैं। वे कभी बालक, कभी वृद्ध और कभी युवारूप देख
१६० पड़ते हैं; कभी मुनि-पत्नियों और मुनि-कन्याओं के साथ क्रीड़ा करते हैं। वे कभी खड़े बाल और महालिङ्ग से युक्त होकर नङ्गे घूमते हैं; कभी विकृतलोचन रहते हैं; कभी गौरवर्ण, कभी श्यामवर्ण, कभी पाण्डुवर्ण, कभी नील-लोहितवर्ण, कभी विकृताक्ष और कभी विशालाक्ष रहते हैं। वे स्वयं दिगम्बर रहकर भी सबको वस्त्र देते हैं। उन आदिरूपी निराकार परम पुरुष का आदि-अन्त कोई नहीं जानता। वे सूक्ष्म मनोवृत्ति के विषयीभूत योगस्वरूप महात्मा महेश्वर सब प्राणियों में प्राण, मन और जीव-रूप से निवास करते हैं। वे कभी वादक, कभी गायक, कभी असंख्य नेत्र, कभी एक-मुख, कभी द्विमुख और कभी बहुमुख रहते हैं। अब तुम उन्हीं भगवान् शूलपाणि में मन लगाकर भक्ति के साथ उनकी आराधना करो। इसी से तुम्हारे सब मनोरथ सफल होंगे।

यह सुनकर महादेवजी के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा हुई और तपस्या करके उनको प्रसन्न करने की मेरी इच्छा हुई। मैंने देवताओं के सौ वर्ष तक बायें अँगूठे पर खड़े रहकर फलाहार करके, सौ वर्ष तक सूखे पत्ते खाकर, फिर सौ वर्ष जल पीकर, उसके बाद सात सौ वर्ष वायु-भक्षण
१७० करके महादेवजी की आराधना की। इस प्रकार देवताओं के हज़ार वर्ष तक तपस्या करने पर महादेवजी मुझ पर प्रसन्न हुए और मेरी परीक्षा लेने के लिए देवताओं को साथ लेकर, इन्द्र का रूप धारण करके, चार दाँतों और लाल आँखोंवाले मतवाले हाथी पर सवार होकर मेरे पास आये। उस समय उनके शरीर से तेज की छटा निकल रही थी। उनके सिर पर मुकुट, गले में हार और भुजाओं में बिजायठ शोभित था। अप्सराएँ उनके सिर पर सफ़ेद छाता लगाये हुए थीं। गन्धर्व उनके सामने गा रहे थे। उन्होंने मेरे पास आकर कहा—हे द्विजवर, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वह वर माँगो। ये वचन सुनने से मुझे सन्तोष न हुआ।

मैंने उनसे कहा—देवराज, महादेवजी के सिवा और किसी देवता से मैं वर नहीं माँगूँगा। मैं सत्य कहता हूँ, मुझे महादेवजी के सिवा और किसी देवता की कथा भी नहीं रुचती। महादेवजी की आज्ञा से मैं अनेक शाखाओं से युक्त वृक्ष और कीड़ा होने को भी तैयार हूँ; किन्तु दूसरे के वरदान से मिले हुए तीनों लोकों के राज्य को भी तृण के समान समझता हूँ। महा- १८०
देवजी का भक्त होकर यदि मुझे चण्डाल के घर जन्म लेना पड़े तो उसे भी मैं अच्छा समझता हूँ। उनसे विमुख होकर मुझे स्वर्ग भी मिले तो पसन्द नहीं है। जो मनुष्य महादेवजी का भक्त नहीं है वह जल या वायु भक्षण करने से दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकता। जो मनुष्य सदा शङ्कर के चरणों का स्मरण किया करता है उससे अन्य धर्म की प्रशंसा करना निरर्थक है। कलियुग में महादेवजी की भक्ति करना सर्वथा उचित है। उनकी भक्ति करने से सांसारिक भय से छुटकारा मिल जाता है। महादेवजी जिस पर प्रसन्न नहीं होते उसे उनकी भक्ति नहीं मिल सकती। हे देवराज, मैं महादेवजी की आज्ञा से कीट-पतङ्ग और कुत्ता होने को भी तैयार हूँ; किन्तु आप यदि मुझे अपना राज्य भी दें तो मैं न लूँगा। सारांश यह कि स्वर्ग, देवलोक, ब्रह्मलोक और अन्य कोई भी ऐश्वर्य मुझे न चाहिए, मैं तो भगवान् शङ्कर का सेवक होना चाहता हूँ। जब तक महादेवजी मुझ पर प्रसन्न न होंगे तब तक मुझे जन्म, मौत और बुढ़ापे से सैकड़ों दुःख मिलते रहेंगे। संसार में सूर्य चन्द्रमा और अग्नि के समान तेजस्वी, तीनों लोकों में सर्व- १९०
श्रेष्ठ, जन्म-मृत्यु-हीन, अद्वितीय पुरुष शङ्कर को प्रसन्न किये बिना कोई शान्ति नहीं पा सकता। अपने कर्म के दोष से यदि मुझे इस लोक में बार-बार जन्म लेना पड़े तो उन जन्मों में महादेवजी की दृढ़ भक्ति मुझमें बनी रहे।

इन्द्र ने कहा—उपमन्यु, तुम दूसरे देवताओं की उपेक्षा करके केवल महादेव से ही वर माँगना चाहते हो। इसका क्या प्रमाण कि महादेव सब कारणों के कारण और संसार के सृष्टिकर्ता हैं?

मैंने कहा—देवराज! ब्रह्मवादी महर्षियों का कहना है कि देव-देव महादेव नित्य और अनित्य, व्यक्त और अव्यक्त तथा एक और बहु हैं; वही सब कारणों के कारण और संसार के सृष्टिकर्ता हैं। मैं उनकी महिमा जानता हूँ, इसलिए उन्हीं से वर माँगूँगा। उनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। वे अचिन्तनीय, ज्ञानरूप, ऐश्वर्यवान् और परमात्मा हैं। उन्हीं से नित्यसिद्ध अविनाशी सब ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं। वे किसी बीज से उत्पन्न नहीं हैं, उन्हीं से सब बीज उत्पन्न हैं। वे प्रकृति से परे ज्योति-स्वरूप हैं। उनका स्वरूप बुद्धि आदि सब वृत्तियों से दुर्ज्ञेय है। उनकी महिमा जान लेने से शोक-सन्ताप दूर हो जाते हैं। वे सब प्राणियों के सृष्टिकर्ता, सबके रक्षक, अन्तर्यामी और सर्वदाता हैं। निरी युक्तियों से उनके स्वरूप का निर्णय नहीं किया जा सकता। वे मुक्ति देनेवाले और तत्त्व-ज्ञानियों के उपास्य हैं। वे ही तुम्हारे आत्मा, सब देवताओं के अधीश्वर और सब प्राणियों के गुरु हैं। उन्होंने अपनी

महिमा से ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके ब्रह्मा को उत्पन्न किया है। उनके सिवा दूसरा कोई अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, बुद्धि, मन, अहङ्कार और महत्तत्त्व की सृष्टि नहीं कर सकता। भगवान् महादेव मन, बुद्धि, अहङ्कार, रूप-रस आदि विषयों और इन्द्रियों के आश्रय-स्थान हैं। संसार के सृष्टिकर्ता पितामह ब्रह्मा ने उन्हीं देव-देव की आराधना करके सृष्टि करने की योग्यता प्राप्त की है। उन्हीं के प्रभाव से ब्रह्मा और विष्णु को श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। उन त्रैलोक्यनाथ के सिवा देवताओं और दानवों का अधिकार छीननेवाला और शासन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दिशा, काल, वायु, सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह-नक्षत्र आदि सब उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं। वही महादेव यज्ञ और त्रिपुरासुर की उत्पत्ति तथा विनाश के कारण हैं। वे सबके स्रष्टा, सब कामों के सिद्धिदाता और दानवों का राज्य हर लेनेवाले हैं। देवराज! उनकी महिमा और क्या कहूँ, उन्हीं की कृपा से सिद्ध, गन्धर्व, देवता और महर्षिगण तुम्हारी आराधना करते हैं। उन्हीं के प्रभाव से सब प्राणियों के लिए यह स्थावर-जङ्गम-रूपी विश्व उत्पन्न हुआ है। वे सब लोकों में ओत-प्रोत भाव से निवास करते हैं। दानवों से पीड़ित देवता यदि शिव के समान और किसी देवता को देखते तो अवश्य ही उसकी शरण में जाते। वे भयङ्कर संग्राम में देवताओं, यक्षों, राक्षसों और नागों का राज्य छिन जाने पर फिर उनको लौटा देते हैं। उन्होंने अन्धक, शुक्र, दुन्दुभि, महिष, राक्षस और निवात-कवच आदि को पहले ऐश्वर्य देकर फिर उनका संहार किया था। उन्हीं का वीर्य अग्नि में गिरा था, जिससे सुवर्णमय पर्वत उत्पन्न हो गया। वे तीनों लोकों में दिगम्बर और ऊर्ध्वरेता नाम से प्रसिद्ध हैं उनके आधे अङ्ग में पार्वती स्थित हैं और वही कामदेव के विजयी हैं। देवता उनकी प्रशंसा करते हैं। वे श्मशान में भूतगणों के साथ क्रीड़ा और नृत्य करते हैं। उनके सिवा और किसी का ऐश्वर्य अविनाशी नहीं है। उनके अनुचरगण उन्हीं के समान ऐश्वर पाकर गर्वित हुए हैं। उनके सिवा दूसरा कौन देवता पानी बरसा सकता और अपने तेज से प्रज्वलित होकर गरमी पहुँचा सकता है? उन्हीं से सब ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। वही सब धन-सम्पत्ति के स्थान हैं। उनके सिवा दूसरा कौन इस स्थावर-जङ्गम-रूपी संसार में अपनी इच्छा के अनुसार विहार कर सकता है? महर्षि, गन्धर्व, सिद्ध और योगीगण ज्ञान और यज्ञ आदि द्वारा उन्हीं देव-देव की आराधना करते हैं। वे कर्मों का फल नहीं भोगते। मैं तो उन्हीं को इस संसार का कारण समझता हूँ। वे स्थूल, सूक्ष्म, अनुपम, इन्द्रियों से अग्राह्य, सगुण और निर्गुण हैं। वे सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं; वे तीनों काल-स्वरूप और सबके कारण हैं। वे क्षर, अक्षर और प्रकृति हैं। उन्हीं से विद्या, अविद्या, कार्य, अकार्य, धर्म और अधर्म उत्पन्न होते हैं। मैं उन्हीं देव-देव को सबका कारण समझता हूँ। देखो, रुद्रदेव ने सृष्टि और संहार करने के लिए लिङ्ग के साथ भग का संयोग कर दिया

है। मेरी माता ने बतलाया है कि महादेव ही सब लोकों की उत्पत्ति के कारण हैं। उनसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। आपकी इच्छा हो तो उनकी शरण में जाइए। ब्रह्मा आदि देवताओं समेत ये तीनों लोक उन्हीं के प्रभाव से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा आदि देवता और दानव, उन्हीं की कृपा से सफल-मनोरथ होकर, उनसे श्रेष्ठ और किसी को नहीं समझते। मैं इस लोक में सुख और परलोक में मोक्ष प्राप्त करने के लिए उन रुद्रदेव की उपासना करता हूँ। जब सम्पूर्ण देवता उन महादेव के लिङ्ग की पूजा करते हैं तो उनके सब कारणों का कारण होने में सन्देह ही कैसा? ३०
ब्रह्मा, विष्णु, आप और अन्यान्य देवता उन देव-देव के लिङ्ग की पूजा करते हैं, इसलिए वही सब देवताओं से श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा का चिह्न पद्म है, विष्णु का चिह्न चक्र और आपका चिह्न वज्र है; किन्तु आप लोगों में से किसी का चिह्न प्रजा में नहीं है। वह शिव पार्वती का लिङ्ग और योनि चिह्न धारण करती है, इसलिए शिव और पार्वती से प्रजा के उत्पन्न होने में कोई सन्देह नहीं है। स्त्री-जाति पार्वती के अंश से उत्पन्न है, इसलिए उसमें योनि-चिह्न और पुरुष महादेव के अंश से उत्पन्न हैं इस कारण इनमें लिङ्ग-चिह्न है। इनमें से कोई चिह्न जिनमें नहीं होता वे क्लीब हैं। संसार में जितने पुरुष हैं वे सब शिव का अंश और जितनी स्त्रियाँ हैं वे सब पार्वती का अंश हैं। सारा जगत् शिव और पार्वती से व्याप्त है। उन्हीं महादेव से मुझे श्रेष्ठ वर मिले अथवा उन्हीं के द्वारा मेरा नाश हो जाय, ये दोनों बातें मुझे स्वीकार हैं। महादेव के सिवा दूसरे देवता में मेरी श्रद्धा नहीं है। हे देवराज, आप चाहे यहाँ ठहरें चाहे अपने स्थान को चले जायँ।

अब मैं यह चिन्ता करके बड़ा दुखी हुआ कि भगवान् शङ्कर अभी तक मुझ पर प्रसन्न नहीं हुए, इसका क्या कारण है। मैंने उसी समय देखा कि जिस ऐरावत हाथी पर इन्द्र सवार थे वह क्षण भर में हंस, कुन्द, चन्द्रमा, मृणाल और चाँदी के रङ्ग का क्षीर-समुद्र के समान सफ़ेद, काली पूँछ और कुछ लाल आँखोंवाला, बैल होकर अपने सींगों से पृथ्वी खोद रहा है। उसके सींग वज्र के समान दृढ़, तपाये हुए सोने के रङ्ग के, आगे को कुछ टेढ़े और पैने २४०
थे। वह सोने की ज़ञ्जीरें पहने हुए था। मुँह, नाक, कान, पेट और खुर आदि उसके सब अङ्ग बहुत सुन्दर थे। उसका कन्धा और ककुद् भारी था। भगवान् शूलपाणि पार्वती समेत उस—बरफ़ के पहाड़ के समान, सफ़ेद बादलों के सदृश—बैल पर सवार पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित थे। उनके तेज से अग्नि उत्पन्न होकर हज़ारों सूर्यों के समान प्रज्वलित हो रहा था। उस समय उनको देखकर जान पड़ता था कि प्रलय-काल का संवर्तक अग्नि सब प्राणियों का संहार करने को उद्यत है। भगवान् शङ्कर के उस विश्वव्यापी दुर्निरीक्ष्य तेज को देखकर मैं चिन्ता से व्याकुल होकर घबरा गया।

कुछ देर बाद उस तेज को सब दिशाओं में व्याप्त करके महादेवजी ने शान्त रूप धारण कर लिया। तब मैंने देखा कि महातेजस्वी भगवान् भूतनाथ अठारह भुजाओं से युक्त अनेक

आभूषणों से भूषित हैं; वे सफ़ेद वस्त्र, सफ़ेद माला और सफ़ेद यज्ञोपवीत पहने हैं। उनकी ध्वजा पर सफ़ेद बैल बना हुआ है। उन्हीं के समान महापराक्रमी अनुचर गण उनके चारों ओर नाचते, गाते और बजाते हैं। उनके मस्तक पर स्थिर चन्द्रमा, तीन सूर्यों के समान, तीनों नेत्रों द्वारा अधिक प्रकाशमान हो रहा है। वे रत्नजटित सुवर्णमय पद्मों की सुन्दर माला और तेजोमय अस्त्र धारण किये हुए हैं। उनके एक हाथ में वज्र के समान भीषण पिनाक है। सात फनों और तेज़ दाँतोंवाला विषैला साँप ही उस पिनाक की प्रत्यञ्चा है। दूसरे हाथ में पाशुपत नाम का दिव्य अस्त्र, प्रलय-काल के अग्नि के समान, प्रचण्ड सूर्य के सदृश शोभा दे रहा है। इस अस्त्र में एक पैर, बड़े-बड़े दाँत, हज़ार सिर, हज़ार पेट, इतनी ही भुजाएँ, इतनी ही जीभें और इतने ही नेत्र हैं। उसे देखकर मालूम होता था कि वह आग उगल रहा है। वह अस्त्र ब्राह्म, नारायण, ऐन्द्र, आग्नेय और वारुण अस्त्र से श्रेष्ठ है। वह सब अस्त्रों को व्यर्थ कर सकता है। महादेवजी ने इसी अस्त्र से त्रिपुर को भस्म कर दिया था। वे चाहें तो इस अस्त्र से दम भर में तीनों लोकों का नाश कर डालें। ऐसा कोई नहीं जो इस अस्त्र से न मर सके। मैंने उनके हाथ में एक और अद्भुत अस्त्र त्रिशूल देखा है। महादेवजी उसी अस्त्र से स्वर्ग और मृत्युलोक को विदीर्ण कर सकते, महासमुद्र को सोख सकते और सम्पूर्ण संसार को नष्ट कर सकते हैं। महाबली राक्षस लवण ने उसी त्रिशूल के द्वारा, इन्द्र के समान पराक्रमी, त्रैलोक्य-विजयी युवनाश्व के पुत्र मान्धाता को सैन्य समेत मार डाला था। वह शूल उस समय ऐसा मालूम होता था मानों भृकुटी टेढ़ी करके गरज रहा है। वह महादेव के हाथ में प्रलय-काल के सूर्य के समान और पाश धारण किये हुए यमराज के समान जान पड़ता था। भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर जमदग्नि के पुत्र परशुराम को जो परशु दिया था और जिस परशु द्वारा संग्राम में महापराक्रमी कार्तवीर्य मारा गया था तथा जिससे परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश किया था वह प्रज्वलित अग्नि के समान भयङ्कर कुठार भी उस समय महादेव के पास था। हे माधव, इनके सिवा और भी अनेक अस्त्र उनके पास थे। मैंने तो केवल इन प्रधान अस्त्रों के नाम गिनाये हैं।

उस समय ब्रह्माजी हंस जुते हुए—मन के समान शीघ्रगामी—दिव्य विमान पर सवार होकर महादेवजी की दाहिनी ओर, गरुड़ पर सवार शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु उनकी बाईं ओर, शक्ति और घण्टा धारण किये हुए मोर पर सवार कार्त्तिकेय महादेवजी के सामने और उन्हीं के समान प्रभावशाली नन्दी शूल धारण किये महादेवजी के सामने खड़े थे। स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि महर्षि और इन्द्र आदि देवता उनके पास खड़े थे। मातृगण और प्रमथ-गण उनको चारों ओर से घेरकर स्तुति कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णु सामवेद गाते थे और इन्द्र शतरुद्रीय का पाठ कर रहे थे। इन तीनों महात्माओं को देखने से जान पड़ता था कि मानों गार्हपत्य आदि तीनों अग्नि इस स्थान पर मौजूद हैं। उनके बीच में महादेवजी शरद्

ऋतु के बादलों से निकले हुए सूर्य के समान शोभायमान थे। मुझे आकाश में प्रकाश ही प्रकाश देख पड़ता था।

हे केशव, उन जगत्पति महादेव को देखकर मैं उनकी स्तुति इस प्रकार करने लगा—हे देवादिदेव महादेव, आप इन्द्र-स्वरूप वज्रधारी तथा पिङ्गल और अरुणवर्ण हैं। आप पिनाक, शङ्ख और शूल धारण करते हैं। काले घुँघराले आपके बाल हैं। काली मृगछाला आपका दुपट्टा है। कृष्णपक्ष की अष्टमी आपको बहुत प्रिय है। आप शुक्लवर्ण, शुक्लवस्त्रधारी और शुद्ध कर्म में अनुरक्त हैं। आप सफ़ेद भस्म धारण करते हैं। आपका रक्तवर्ण, रक्ताम्बर और रक्त ध्वज है; आप रक्त- ९०
पताका और रक्तमाला धारण करते हैं। आप पीतवर्ण, पीताम्बर और किरीटधारी हैं। आपका छत्र विशाल है। आप गले में अर्धहार, भुजाओं में अर्धकेयूर और कानों में अर्धकुण्डल पहनते हैं। आप पवन के समान वेगवान् हैं। आप सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हैं। आप लाल और सफ़ेद कमलों की आधी माला पहने हैं। आपका आधा शरीर चन्दन से और आधा मालाओं से शोभित है। आपका मुख, रङ्ग और आपकी आँखें सूर्य के सदृश हैं। आपका शरीर, मुख और दाँत चन्द्रमा के सदृश और सर्वश्रेष्ठ हैं। आप श्यामवर्ण, गौरवर्ण और पीले तथा पाण्डु रङ्ग के हैं। आप अर्धनारीश्वर, वृषभवाहन और गजेन्द्र-गमन हैं। आप स्वयं तो दुष्प्राप्य हैं, किन्तु आपके लिए कोई स्थान अगम्य नहीं है। प्रमथ गण आपके गुण गाते और आपका अनुगमन करते हैं। आप उन पर बहुत प्रसन्न रहते हैं और उनके व्रतस्वरूप हैं। आपका ३००
रङ्ग कभी सफ़ेद बादलों के समान और सन्ध्या-राग के सदृश रहता है। आपके नामों का वर्णन कोई नहीं कर सकता। आपका मस्तक विचित्र मालाओं और फूलों द्वारा तथा ललाट अर्धचन्द्र द्वारा शोभित है। आप अग्निमुख, अग्निरूपी, अग्निनेत्र, मनोहरमूर्ति और अति दुष्प्राप्य हैं। आप आकाशचारी, विषयों में निरत, तीनों लोक-स्वरूप और स्थावर-जङ्गम-रूप हैं। आप दिगम्बर, सुगन्धित वस्त्रधारी, जगन्निवास तथा ज्ञान और सुख-स्वरूप हैं। आपके सिर पर मुकुट, हाथों में सुन्दर बिजायठ और गले में साँपों का हार शोभित रहता है। आप विचित्र आभूषणों से भूषित हैं। आप त्रिनेत्र, असंख्यनेत्र, योगी, सांख्यशास्त्र और स्त्री-पुरुष-नपुंसक-स्वरूप हैं। आप यज्ञ करनेवाले देवता और अथर्ववेद-स्वरूप हैं। आप शोक-सन्ताप को दूर करनेवाले और बहुमायाधारी हैं। आपका स्वर बादल के समान गम्भीर है। आप बीज और खेत के रक्षक तथा सृष्टिकर्ता हैं। आप देव-देव, विश्वपति, पवन के समान वेगवान् और पवन-स्वरूप हैं। १०
आप सोने की माला पहनते, दानवों के पूज्य और प्रचण्ड हैं। आप पर्वत पर क्रीड़ा करते हैं। आपने ब्रह्माजी का एक सिर काट लिया था। आप महिष का नाश करनेवाले, स्त्री-रूपधारी और सर्वरूपमय हैं। आप त्रिपुर-हन्ता, यज्ञ का ध्वंस करनेवाले, काम के नाशक और काल-दण्डधारी हैं। आप कार्त्तिकेय, विशाख और ब्रह्मदण्ड-स्वरूप हैं। आप भव, शर्व, विश्वरूप,

ईशान, संसार के संहारक और अन्धकघाती हैं। आप चिन्त्य, अचिन्त्य, मायावी, जीवों की परमगति और हृदय-स्वरूप हैं। पण्डित लोग आपको देवताओं में ब्रह्मा और इन्द्र, रुद्रगण में नीललोहित, सब प्राणियों में आत्मा, सांख्यशास्त्र में परमपुरुष, पवित्रों में ऋषभदेव, आश्रम-वासियों में गृहस्थ, ईशगण में महेश, यक्षों में कुबेर, यज्ञ के अधिष्ठाता देवताओं में विष्णु, पर्वतों
३२० में सुमेरु और हिमालय, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ऋषियों में वसिष्ठ और ग्रहों में सूर्य कहते हैं। आप जङ्गली पशुओं में सिंह, ग्राम्य पशुओं में बैल, आदित्यगण में विष्णु, वसुगण में पावक, पक्षियों में गरुड़, सांपों में अनन्त, वेदों में सामवेद, यजुर्वेद में रुद्राध्याय, परमहंसों में सनत्कुमार, सांख्य-शास्त्र के विद्वानों में कपिल, पितरों में धर्मराज, लोकों में ब्रह्मलोक, सब गतियों में मोक्ष, समुद्रों में क्षीरसमुद्र, चारों वर्णों में ब्राह्मण और ब्राह्मणों में दीक्षित ब्राह्मण हैं। आप सब प्राणियों के आदि, अन्त और काल-स्वरूप हैं। आप सब तेजों से श्रेष्ठ हैं। आप भक्तवत्सल और योगेश्वर हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। मैं ऐश्वर्य-हीन और बहुत दुखी होकर भक्तिभाव से आपकी आराधना करता हूँ। आप प्रसन्न होकर मेरी इच्छा पूरी कीजिए। अज्ञानवश मुझसे जो अपराध हुआ हो उसे आप, मुझे अपना भक्त समझकर, क्षमा कर दीजिए। आपका
३० विपरीत रूप देखकर मैं मोहित हो गया था, इसी से मैंने आपको पाद्य-अर्घ्य नहीं दिया था।

इस प्रकार बड़ी भक्ति से महादेवजी की स्तुति करके हाथ जोड़कर मैंने उनको पाद्य और अर्घ्य आदि दिया। उस समय मेरे ऊपर शीतल जल और दिव्य फूलों की वर्षा होने लगी। देवता आकाश में नगाड़े बजाने लगे। शीतल-मन्द वायु चलने लगा। पार्वती समेत शङ्करजी मुझ पर प्रसन्न होकर देवताओं से कहने लगे कि देवताओ! देखो, महात्मा उपमन्यु बड़ी भक्ति से मेरी स्तुति कर रहे हैं। तब देवताओं ने भगवान् शूलपाणि को प्रणाम करके कहा—आप सब लोकों के ईश्वर और जगत्पति हैं। हम लोग प्रार्थना करते हैं कि आपकी कृपा से उपमन्यु की सब कामनाएँ पूरी हों।

अब शङ्करजी ने मुसकुराकर कहा—बेटा, तुम मेरे दर्शन करो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मेरे परमभक्त हो। तुम्हारी परीक्षा लेकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब तुम वर
३४० माँग लो। मैं तुम्हारे सब मनोरथ सफल करूँगा।

ये वचन सुनकर, खुशी के मारे आँखों में आँसू भरकर, पृथिवी पर घुटने टेककर मैंने उनको प्रणाम करके गद्गद स्वर से कहा—भगवन्, आज आपको सामने देखकर मुझे जान पड़ता है कि मैंने जीवलोक में नया जन्म लिया है। आज मेरा जन्म सफल हुआ। जिन महापराक्रमी परमपूज्य आराध्य महात्मा के दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ हैं उन्हीं को आज मैं सामने देख रहा हूँ, अतएव मेरे समान धन्य और पुण्यात्मा मनुष्य संसार में दूसरा कोई नहीं है। परमतत्त्व, नित्य, छब्बीसवाँ तत्त्व, अज, ज्ञान-स्वरूप और अविनाशी कहकर योगी महात्मा जिनका

ध्यान करते हैं, वही आप सर्वज्ञ और सबके आदिदेवता हैं। आप सृष्टि के आरम्भ में अपने दाहिने अङ्ग से प्रजापति ब्रह्मा को और बाँयें अङ्ग से लोकों की रक्षा के लिए विष्णु को उत्पन्न करते हैं। प्रलय-काल आने पर लोकों का संहार करने के लिए आपसे ही रुद्रदेव उत्पन्न होते हैं। वही महातेजस्वी रुद्रदेव, कालमूर्ति धारण करके, सब प्राणियों का नाश कर देते हैं। आप स्थावर-जङ्गमरूपी संसार की सृष्टि करके प्रलयकाल में प्राणियों की स्मरण-शक्ति नष्ट कर देते हैं। ५०
आप सर्वव्यापी, सब प्राणियों के अन्तरात्मा, सब कारणों के कारण और अदृश्य हैं। अब आप प्रसन्न होकर यदि वर देना चाहते हैं तो यही वर दीजिए कि आपमें सदा मेरी भक्ति बनी रहे। आपकी कृपा से मैं त्रिकालज्ञ हो जाऊँ और बन्धु-बान्धवों समेत मुझे हमेशा खाने को दूध-भात मिलता रहे। आप हम लोगों के इस आश्रम में हमेशा निवास करें।

तब महेश्वर ने मुझसे कहा—बेटा! तुम मेरे वरदान से अजर, अमर, यशस्वी, तेजस्वी, शोक-दुःख-हीन और दिव्यज्ञानी हो जाओ। महर्षि लोग तुम्हारे दर्शन करने यहाँ आया करेंगे। तुम सुशील, गुणवान्, सर्वज्ञ और प्रियदर्शन होगे; जवान और अग्नि के समान तेजस्वी बने रहोगे। तुम जहाँ क्षीरसमुद्र को बुलाओगे वहीं वह उत्पन्न हो जायगा। तुम हमेशा बन्धु-बान्धवों समेत इच्छानुसार अमृत के तुल्य दूध-भात खाते रहोगे। एक कल्प बीतने पर तुम मेरे पास आओगे। तुम्हारा कुल, गोत्र और तुम्हारे बन्धु-बान्धव अक्षय होंगे। मुझमें तुम्हारी ३६०
भक्ति दृढ़ बनी रहेगी। मैं हमेशा तुम्हारे इस आश्रम पर रहूँगा। अब तुम आनन्द करो, किसी प्रकार की चिन्ता न करो। तुम जब कभी मेरा स्मरण करोगे तब तुमको दर्शन मिलेंगे। करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी उमापति मुझे इस प्रकार वर देकर अन्तर्धान हो गये। हे वासुदेव, मैंने इस प्रकार समाधि के बल से महादेवजी के दर्शन किये थे। उन्होंने मुझे जो वरदान दिये हैं, मैं उन्हीं के अनुसार फल पा रहा हूँ। इस स्थान पर सिद्ध, महर्षि, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराएँ बनी रहती हैं। वृक्षों में सदा सब ऋतुओं के फल-फूल लगे रहते हैं और भगवान् शङ्कर की कृपा से आश्रम के सब पदार्थ दिव्य बने रहते हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा कि हे धर्मराज, महर्षि उपमन्यु की बातें सुनकर, विस्मित हो, मैंने उनसे कहा—तपोधन, आपके आश्रम पर जब स्वयं महादेवजी निवास करते हैं तब आपसे बढ़कर धन्य और पुण्यात्मा कोई नहीं है। त्रिलोकीनाथ महादेव क्या मुझे दर्शन देने की कृपा करेंगे? ७०

उपमन्यु ने कहा—वासुदेव, तुम्हें शीघ्र ही मेरी तरह उन देव-देव के दर्शन मिलेंगे। मैं दिव्य दृष्टि द्वारा उनके दर्शन किया करता हूँ। केवल छः महीने उनकी आराधना करने पर उनके दर्शन पाकर तुम कृतकार्य हो जाओगे। तुम्हें शङ्कर से आठ वर और देवी पार्वती से सोलह वर मिलेंगे। मैं उन्हीं की कृपा से त्रिकालज्ञ हूँ। उन्होंने जब इन महर्षियों पर कृपा-दृष्टि की है तब तुम पर कृपा क्यों न करेंगे? तुम ब्रह्मनिष्ठ, अनृशंस और श्रद्धावान् हो, इसलिए

तुम्हारे समान मनुष्यों का समागम देवता भी चाहते हैं। अब मैं तुमको एक मन्त्र बतलाता हूँ। उस मन्त्र के प्रभाव से तुम्हें शीघ्र महादेवजी के दर्शन होंगे। तब मैंने महात्मा उपमन्यु से कहा—ब्रह्मन्, जब आप मुझ पर प्रसन्न हैं तब मैं निस्सन्देह देवादिदेव के दर्शन पाकर कृतकार्य हूँगा।

हे धर्मराज, इस प्रकार महात्मा उपमन्यु के साथ महादेव-विषयक बातें करते-करते पल भर के समान आठ दिन बीत गये। आठवें दिन उन्होंने मेरा सिर मुड़ा दिया और मुझे दण्ड, कुश, चीर, मेखला देकर शास्त्र के अनुसार दीक्षित कर दिया। फिर मैं एक महीने तक फल खाकर, दूसरे महीने में पानी पीकर और तीन महीने केवल वायु का भक्षण करके, ऊपर को हाथ
३८१ उठाये, एक पैर पर खड़ा रहा। अब मैंने आकाशमण्डल में हज़ारों सूर्यों के समान एक तेज देखा। उस तेजोराशि के बीच नीलपर्वत के समान बादल का एक टुकड़ा मुझे देख पड़ा।

उस बादल में बिजली और इन्द्रधनुष की शोभा हो रही थी। महादेवजी पार्वती समेत उस बादल में, सूर्य और चन्द्रमा के समान, शोभित थे। यह देखकर मैं आनन्द से पुलकित हो गया; और देवताओं की एकमात्र गति, दीन-दुखियों के रक्षक, महादेवजी को देखने लगा। वे किरीट, गदा, शूल, व्याघ्रचर्म, जटा, दण्ड, पिनाक, वज्र, बिजायठ, साँप का यज्ञोपवीत और अनेक रङ्गों की बहुत लम्बी दिव्य माला धारण किये हुए थे। उस समय वे शरद् ऋतु के चन्द्रमा और सूर्य के समान जान पड़ते थे। प्रमथ गण चारों ओर से उनको घेरे हुए थे। ग्यारह सौ रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार और विश्वेदेवा उनकी स्तुति
९१ कर रहे थे। ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र उनके पास सामवेद का पाठ कर रहे थे। देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, योगीश्वर, पृथिवी, आकाश, नदी, पर्वत, सर्प, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र, मास, पक्ष, ऋतु, रात्रि, संवत्सर, मुहूर्त, निमेष, युग, विद्या, वेद, इतिहास, यज्ञ, दीक्षा, दक्षिणा, अग्नि, हवि, यज्ञ की सामग्री, सनत्कुमार, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, सातों मनु, चन्द्रमा, अथर्वा, बृहस्पति, भृगु, दक्ष, कश्यप, वसिष्ठ, काश्य, प्रजापालक, मातृगण, देवकन्या, देवपत्नी, विद्याधर, दानव, गुह्यक, राक्षसगण, गाने-बजाने में निपुण अप्सराएँ, गन्धर्वगण और स्थावर-जङ्गम सब प्राणी

उनकी स्तुति कर रहे थे। उस समय भवानीपति को मेरे पास देखकर ब्रह्मा और इन्द्र आदि ४०१
सब देवता मुझे देखने लगे। शङ्कर के तेज के प्रभाव से मैं उनकी ओर देख नहीं सकता था।

तब उमापति ने मुझसे कहा—वासुदेव, अब तुम अपना अभिप्राय प्रकट करो। तुम हज़ारों बार मेरी आराधना कर चुके हो। तुम्हारे समान मेरा भक्त तीनों लोकों में कोई नहीं है।

यह सुनकर मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। जगन्माता पार्वती मुझे शङ्कर के चरणों में प्रणाम करते देखकर मुझ पर बहुत प्रसन्न हुईं। तब मैं ब्रह्मा आदि देवताओं के पूज्य महेश्वर की भक्तिभाव से स्तुति करने लगा—हे शाश्वत विश्वयोनि! महर्षिगण आपको वेदों के अधिपति, तपस्या, सत्य तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण-स्वरूप कहते हैं। आप ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, भव, विश्वकर्मा, धाता और विधाता-स्वरूप हैं। आपसे ही स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों की सृष्टि हुई है। तीनों लोक आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। महर्षियों ने आपको इन्द्रिय, मन, पञ्च-प्राण और सप्त-अग्नि-स्वरूप तथा इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और स्तुति करने योग्य देवताओं में श्रेष्ठ बतलाया। आप सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, सोमरस, दक्षिणा, अग्नि, हवि, यज्ञ की सामग्री, १०
दान, अध्ययन, व्रत, नियम, लज्जा, कीर्ति, श्री, धृति, तुष्टि, मोक्ष देनेवाली सिद्धि, काम, क्रोध, भय, लोभ, मद और मत्सर-स्वरूप हैं। आपसे ही सब आधि-व्याधियाँ उत्पन्न हुई हैं। आप ही क्रिया हर्ष आदि मन के विकार, नम्रता, वासनाओं के कारण, मन के उत्पत्ति-स्थान, नित्य-सिद्ध ऐश्वर्य, अव्यक्त परब्रह्म, अचिन्त्य, सूर्य, ज्योतिर्मय, सब गुणों के आदि और सब जीवों के लय-स्थान हैं। वेद के विद्वान् लोग आपको महत्तर, आत्मा, मति, ब्रह्मा, विश्व, शम्भु, स्वयम्भू, बुद्धि, प्रज्ञा, चेतना, ज्ञान, ख्याति, धृति और स्मृति-स्वरूप कहकर आपका ध्यान करते हैं। विद्वान् ब्राह्मण इस प्रकार आपको जानकर (संसार के कारण) अज्ञान से छुटकारा पाते हैं। आप सब प्राणियों के हृदय में स्थित जीवात्मा हैं। महर्षि लोग सदा आपकी स्तुति करते हैं। आपके हाथ, पैर, मुँह, आँखें, कान और मस्तक सर्वत्र विद्यमान हैं। आप सब लोकों में व्याप्त रहते हैं। आप स्वर्ग का सुख, सूर्य की प्रभा और किरणें हैं। आप सब प्राणियों के अन्तरात्मा, अणिमा आदि अष्ट सिद्धि, ईशान, ज्योति और अव्यय-स्वरूप हैं। आपमें बुद्धि ४२०
और सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। सत्य-सङ्कल्प, जितेन्द्रिय, योगी महात्मा सदा आपकी शरण में रहते हैं। यथार्थ बुद्धिमान् वही हैं जो आपको सब प्राणियों में स्थित, परम पुरुष, विश्वव्यापी, ज्योतिर्मय और बुद्धिमान् पुरुषों की परमगति समझते हैं। महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्च तन्मात्रा इन सात गुणों, सर्वज्ञता आदि आपके छः गुणों और योग की विधि को विशेष रूप से जानकर मनुष्य आपमें लीन हो सकता है।

इस प्रकार महादेवजी की स्तुति करने पर संसार के चर-अचर सब प्राणी सिंहनाद करने लगे। ब्राह्मण, देवता, दैत्य, नाग, पिशाच, पक्षी, राक्षस, भूत, महर्षि और पितृगण उनको

नमस्कार करने लगे। मन्द-सुगन्ध पवन चलने लगा; मेरे सिर पर फूलों की वर्षा होने लगी। इसके बाद उमापति ने पार्वती और इन्द्र की ओर देखकर मुझसे कहा—वासुदेव! तुम मेरे परम भक्त हो, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे इच्छानु-
४२९ सार आठ वर माँग लो।

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का महादेव-पार्वती से वर पाना

श्रीकृष्ण ने कहा कि हे धर्मराज! भगवान् शङ्कर के ये वचन सुनकर, उनको प्रणाम करके, मैंने बड़ी प्रसन्नता से कहा—भगवन्! मुझे धर्म में दृढ़ता, युद्ध में शत्रु का नाश करने की योग्यता, श्रेष्ठ यश, बल, योग, लोकप्रियता, अपना सन्निकर्ष और सैकड़ों पुत्र दीजिए। यह सुनकर शङ्कर ने कहा कि वासुदेव, तुमने जो माँगा है वह मेरे वरदान से अवश्य मिलेगा।

इसके बाद जगन्माता पार्वती ने मुझसे कहा—वासुदेव, शङ्करजी के वरदान से तुम्हें साम्ब नामक पुत्र मिला है। अब तुम आठ वर मुझसे माँगो, मैं दूँगी।

तब मैंने उनको प्रणाम करके ब्राह्मणों की प्रसन्नता, पिता की कृपा, सौ पुत्र, श्रेष्ठ भोग, कुल में अनुराग, माता की प्रसन्नता, शान्ति और कार्य-कुशलता ये आठ वर माँगे। पार्वतीजी ने कहा—बेटा, तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सिद्ध होगी। इसके सिवा तुम देवताओं के समान प्रभाव, सोलह हज़ार स्त्रियाँ, उन स्त्रियों पर प्रेम, अक्षय धन-धान्य, बन्धुओं से स्नेह और शरीर-सौन्दर्य प्राप्त करोगे। तुम्हारे घर में प्रतिदिन सात हज़ार अतिथि भोजन करेंगे।

हे धर्मराज, महादेव और पार्वती मुझे इस प्रकार वर देकर प्रमथ गण समेत अन्तर्धान हो गये। इसके बाद मैंने जाकर तेजस्वी ब्राह्मण-श्रेष्ठ उपमन्यु को यह सब हाल कह सुनाया। उन्होंने महादेवजी को नमस्कार करके मुझसे कहा—भगवान् शङ्कर के समान देवता, आश्रय-
११ दाता, वरदानी और योद्धा दूसरा नहीं है।

सोलहवाँ अध्याय

उपमन्यु और श्रीकृष्ण की बातचीत। महात्मा तण्डि द्वारा की गई महादेवजी की स्तुति

महात्मा उपमन्यु ने कहा—माधव, सत्ययुग में तण्डि नाम के एक विख्यात महर्षि थे। उन्होंने दस हज़ार वर्ष तक समाधि लगाकर शङ्कर की आराधना करके जो फल प्राप्त किया था सो कहता हूँ। महात्मा तण्डि दस हज़ार वर्ष तक महादेवजी की तपस्या करके अन्त को स्तुति करने लगे कि सांख्य के विद्वान् जिन प्रधान पुरुष अव्यय महादेव की स्तुति करते हैं, योगी लोग जिनका ध्यान करते हैं, जो सृष्टि और संहार के कारण हैं, देवताओं दानवों और मुनियों में जिनसे

श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, मैं उन्हीं अनादि अनन्त परमसुखी देवादिदेव महादेव की शरण हूँ। महात्मा तण्डि के इस प्रकार स्तुति करते ही भगवान् भूतनाथ उनके सामने प्रकट हो गये। वे अक्षय, अचिन्त्य, नित्य, पूर्णब्रह्म, निर्गुण, सगुण और योगियों के परमानन्द तथा मोक्ष-स्वरूप हैं। वे इन्द्र अग्नि वायु ब्रह्मा और संसार की एकमात्र गति, अचल, शुद्ध, बुद्धि द्वारा ग्राह्य, मन-स्वरूप, दुर्ज्ञेय और अपरिमेय हैं। दुष्ट लोग कभी उनको प्राप्त नहीं कर सकते। वे संसार के उत्पत्ति-स्थान और तमोगुणातीत हैं। १०

भगवान् शङ्कर के दर्शन करके महात्मा तण्डि उनकी स्तुति करने लगे—हे परमात्मन्! आप पवित्रों में पवित्र, गतिमान् पुरुषों की परमगति, तेजस्वियों का तेज और तपस्वियों की तपस्या हैं। इन्द्र आपको नमस्कार करते हैं। आप विश्वावसु, हिरण्याक्ष, सहस्रांशु, सब सुखों के आधार और परम सत्यस्वरूप हैं। मोक्ष चाहनेवालों को आप मुक्ति देते हैं। जब ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेवा और महर्षिगण आपको विशेष रूप से नहीं जान सकते तब मैं किस प्रकार आपको जानूँगा? सम्पूर्ण संसार आपसे ही उत्पन्न हुआ है और आपमें ही स्थित है। आप कालपुरुष और ब्रह्मस्वरूप हैं। पुराणज्ञ देवर्षिगण आपको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-रूप कहते हैं। आप जीव, देह, इन्द्रिय, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता, स्वर्ग आदि लोक, अनुभवात्मक ज्ञान और यज्ञ के अधिष्ठाता देवता-स्वरूप हैं। आप देवताओं से भी दुर्ज्ञेय और सबके अन्तर्यामी हैं। तत्त्वदर्शी लोग आपकी महिमा जानकर, मुक्त होकर, अनामय परमपद को प्राप्त करते हैं। जो आपको जानने का उद्योग नहीं करता उसे बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। आप मोक्ष और स्वर्ग के द्वार-स्वरूप हैं। आपकी कृपा से ही मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष पाते हैं। आप स्वर्ग, मोक्ष, काम, क्रोध, सत्त्व, रज, तम, अधः और ऊर्ध्व-स्वरूप हैं। आप २० ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कार्त्तिकेय, इन्द्र, सविता, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता, कुबेर, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, शब्द, बुद्धि, स्थिति, मति, कर्म, सत्य, मिथ्या, सत्ता, असत्ता, इन्द्रिय, रूप-रस आदि विषय, प्रकृति से परे, कार्य-कारण से भिन्न, चिन्त्य और अचिन्त्यरूप हैं। आप परब्रह्म, परमपद, सांख्यमतावलम्बियों और योगियों की परम गति हैं। तत्त्वदर्शी महात्मा लोग जो गति चाहते हैं वही गति मैं आज आपकी कृपा से पाकर कृतकार्य हो गया हूँ। तत्त्वज्ञानी जिसे सनातन परम पुरुष कहते हैं उसको अभी तक न जानकर मैं मोह में पड़ा हुआ था। जिनका ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मोक्ष पद मिल सकता है, उन भक्तवत्सल भूतनाथ के दर्शन आज अनेक जन्मों के बाद पाकर मैं कृतार्थ हुआ हूँ। देवादिदेव महेश्वर देवताओं, दानवों और मुनियों के हृदय में स्थित सनातन परब्रह्म रूप हैं। आप सब पदार्थों के सृष्टिकर्ता, सब प्राणियों के आत्मा, सर्वदर्शी और सर्वगामी हैं। आपका मुँह सब स्थानों में व्याप्त है। संसार में कुछ भी आपसे छिपा नहीं है। आप देहकर्ता (यज्ञ आदि), देहपोषक ३०

(अन्न आदि), देही (जीव), संहारकर्ता, देहीगण की गति, प्राण की उत्पत्ति और पालन करनेवाले, प्राणी, प्राणदाता, अध्यात्मनिष्ठ, आत्मतत्त्वज्ञ और जीवन्मुक्त योगियों के गति-स्वरूप हैं। कर्म के अनुसार आप प्राणियों को शुभ-अशुभ गति देते हैं। आप जीवों को जन्म-मृत्यु और महर्षियों को सिद्धि देते हैं। पृथिवी आदि सब लोकों को उत्पन्न करके आठ प्रकार की मूर्तियों द्वारा आप संसार का धारण और उसका पालन करते हैं। सब पदार्थ आपसे ही उत्पन्न होते, आपमें ही स्थित और आपमें ही लीन हो जाते हैं। आप अद्वितीय सनातन पुरुष हैं। आप सत्यवादियों के सत्यलोक, योगियों के मोक्ष और अध्यात्मवेत्ताओं के कैवल्य-स्वरूप हैं। आप देवताओं, दानवों और मनुष्यों में अप्रकाशित रूप से रहते हैं, इसी से ब्रह्मा आदि सिद्धगण आपको शास्त्र में गुप्त भाव से रखते हैं। इसी कारण देवता, दानव और मनुष्य अज्ञानरूपी अन्धकार में मोहित होकर आपका यथार्थ तत्त्व नहीं समझ पाते। जो भक्तिभाव से आपकी शरण में जाता है उसे अन्तर्यामी भगवान् दर्शन देते हैं। आपके दर्शन हो जाने पर जन्म-
४० मृत्यु का भय और ज्ञातव्य विषय कुछ नहीं रह जाता। विद्वान् लोग आपके दर्शन पा जाने पर फिर और वस्तु प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते। सांख्य-शास्त्र के विद्वान् सूक्ष्मस्वरूप आपको प्राप्त करके सब बन्धनों से छूट जाते हैं। आत्मज्ञानी लोग प्राणायाम करके, ओंकार-रूप रथ पर सवार होकर, वेद-प्रतिष्ठित महेश्वर में लीन हो जाते हैं। आप देवयान के आदित्यरूप द्वार और पितृयान के चन्द्रमारूप द्वार कहलाते हैं। आप काष्ठा, दिशा, संवत्सर, युगादि, इन्द्रपद, सार्वभौमपद, दक्षिणायन और उत्तरायण-स्वरूप हैं। प्रजापति ब्रह्मा ने, सृष्टि करने के लिए, नीललोहित की अनेक प्रकार से स्तुति करके आपसे वर माँगा था। ऋग्वेद के विद्वान् ऋग्वेद द्वारा आपकी महिमा का वर्णन करते हैं और ऋत्विक्गण यजुर्वेदमय महेश्वर के उद्देश्य से आहुति देते हैं। विशुद्धबुद्धिवाले सामवेद के विद्वान् सामवेद गाते हैं और अथर्ववेद के विद्वान् ब्राह्मण अथर्ववेद द्वारा सत्यस्वरूप परमब्रह्म की स्तुति करते हैं। आप यज्ञ के आदिकारण और ईश्वर हैं। दिन और रात आपकी आँखें और कान-स्वरूप हैं; पक्ष और मास आपके मस्तक और बाहु हैं; ऋतु आपका वीर्य है, तपस्या आपका धैर्य और वर्ष गुह्य, जङ्घा
५० तथा पैर है। आप मृत्यु, यम, अग्नि, काल, काल के उत्पत्ति-स्थान, चन्द्रमा, आदित्य, ग्रह, नक्षत्र, वायु, ध्रुव, सप्तर्षि, सप्तभुवन, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पृथिवी-स्वरूप हैं। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब आपमें स्थित हैं। पृथिवी आदि आठ प्रकृति और प्रकृति से श्रेष्ठ जीव महादेव का अंशस्वरूप है। आप शाश्वत परमानन्द-स्वरूप हैं। आप निःस्पृह सज्जनों की एकमात्र गति और श्रेष्ठ भाव हैं। आप शान्त-स्वभाव सनातन ब्रह्म और वेदवेत्ताओं के उत्कृष्ट ध्यान हैं। आप पराकाष्ठा, श्रेष्ठ कला, परमसिद्धि, परमगति, शान्ति, सुख, सन्तोष, वेद और स्मृति-स्वरूप हैं। योगी महात्मा आपको प्राप्त करके फिर जन्म नहीं लेते।

आज आपके दर्शन करके मैं कृतकार्य हो गया हूँ। हे देवदेव महादेव! यज्ञशील मनुष्य बहुत सी दक्षिणा समेत यज्ञ करके जिन स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त करते हैं वे लोक आप ही हैं। शान्ति, ६०
योग, जप और कठोर नियमों का पालन करके तपस्वी जिस नक्षत्रलोक को जाते हैं वह नक्षत्र-लोक आप ही हैं। निवृत्ति-मार्ग के लोग जिस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं वह ब्रह्मलोक आप ही हैं। निःस्पृह मुमुक्षुओं को जिस मोक्ष की प्राप्ति होती है वह मोक्ष आप ही हैं और तत्त्व-ज्ञानी महात्मा जो निर्वाण मुक्ति प्राप्त करते हैं वह निर्वाण आप ही हैं। वेद और पुराण आदि में जो पाँच प्रकार की गतियाँ निर्दिष्ट हैं वे आपकी प्रसन्नता से ही मिलती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेवा और महर्षिगण आपका माहात्म्य नहीं जान सकते।

महर्षि तण्डि के इस प्रकार महादेवजी की स्तुति करके वेदपाठ करने पर पार्वती और शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए। उमापति ने तण्डि से कहा—बेटा, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी कृपा से तुमको एक पुत्र प्राप्त होगा। वह पुत्र यशस्वी, तेजस्वी, दिव्यज्ञान-सम्पन्न, अजर और कल्प-सूत्रकार होगा। तुम्हारी और कुछ इच्छा हो तो कहो, उसे भी मैं पूर्ण करूँगा। तण्डि ने ७०
हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, आपमें मेरी अटल भक्ति बनी रहे। महात्मा तण्डि के यह कहने पर भूतनाथ 'तथास्तु' कहकर अनुचरों समेत अन्तर्धान हो गये।

श्रीकृष्ण ने कहा कि हे धर्मराज, महात्मा उपमन्यु ने इस प्रकार तण्डि द्वारा की हुई शिव की आराधना और उनके वर पाने का हाल कहकर फिर मुझसे कहा—केशव, इस प्रकार तण्डि को वरदान देकर और देवताओं तथा महर्षियों द्वारा की हुई स्तुति सुनकर शङ्कर के अन्तर्धान होने पर महात्मा तण्डि मेरे आश्रम में आये। उन्होंने मुझसे अपना सब हाल कहा। ब्रह्माजी ने देवताओं से महादेवजी के जिन दस हज़ार नामों का वर्णन किया था और शास्त्र में उनके जिन एक हज़ार नामों का उल्लेख है, उन सब का वर्णन महात्मा तण्डि ने मुझसे किया। तण्डि के बतलाये हुए उन नामों में से कुछ नाम मैं तुमको सुनाता हूँ। ७६

सत्रहवाँ अध्याय

उपमन्यु का श्रीकृष्ण से महादेवजी के एक हज़ार आठ नामों का वर्णन करना

श्रीकृष्ण ने कहा कि धर्मराज, इसके बाद महात्मा उपमन्यु ने महादेवजी के नामों का वर्णन करने की इच्छा से मुझसे कहा—वासुदेव, तुम भूतनाथ के भक्त हो। अतएव अब मैं महर्षि तण्डि और तत्त्वदर्शी अन्यान्य विद्वानों के कहे हुए, वेद-वेदाङ्ग-निर्दिष्ट, सर्वार्थसाधक, जगद्विख्यात कुछ नामों द्वारा उन सर्वभूतहितैषी त्रिलोकीनाथ सनातन परमब्रह्म महादेव की स्तुति करता हूँ। ध्यान देकर सुनो। अणिमा आदि ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य सौ वर्ष में भी विस्तृत रूप से देवादिदेव का माहात्म्य नहीं कह सकता। जब देवता भी महादेवजी का आदि,

अन्त और मध्य नहीं जान सकते तब दूसरा कौन विस्तार के साथ उनकी महिमा कह सकेगा ? मैं उनकी कृपा से यथाशक्ति संक्षेप में उनके नाम कहूँगा। उनकी आज्ञा के बिना कोई उनकी
१० स्तुति नहीं कर सकता। कमलयोनि ब्रह्मा ने अनादि अनन्त जगत् के आदि-कारण विश्वरूपी वर-दाता महेश्वर के जिन दस हज़ार नामों का वर्णन किया था, उनमें से एक हज़ार आठ श्रेष्ठ नाम मैंने चुन लिये हैं। जैसे घी दही का, सोना पर्वत का, शहद फूलों का और मण्ड घी का सार है वैसे ही एक हज़ार आठ नाम ब्रह्माजी के कहे हुए दस हज़ार नामों के सार-रूप हैं। इन नामों को मन लगाकर सुनना और इनका ध्यान रखना चाहिए। ये सब नाम कल्याण करने-वाले, सन्तोष देनेवाले, विघ्न के नाशक और परम पवित्र करनेवाले हैं। श्रद्धावान् भक्त मनुष्य को ही ये नाम सुनाना चाहिए। अजितेन्द्रिय श्रद्धाहीन नास्तिक को ये नाम न बतावे। जो व्यक्ति महादेवजी की निन्दा करता है वह अपने बड़े-बूढ़ों और सन्तान समेत नरक को जाता है। ये नाम उत्तम ध्यान, योग, ध्येय वस्तु, जप्य मन्त्र, ज्ञान और गूढ़ हैं। मनुष्य अन्तकाल में भी इन पापनाशक, यज्ञ आदि फलप्रद, मङ्गलमय परमानन्द-स्वरूप नामों को जान ले तो परमगति
२० पाता है। ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण दिव्य स्तोत्रों में इन नामों को श्रेष्ठ माना है। तब से महादेवजी का यह देवपूजित श्रेष्ठ स्तोत्र स्तवराज नाम से प्रसिद्ध है। पहले यह स्तोत्र ब्रह्मलोक से स्वर्ग-लोक में आया, उसके बाद महात्मा तण्डि ने स्वर्ग से लाकर पृथिवी पर इसका प्रचार किया। इसी से यह स्तोत्र तण्डिकृत कहलाता है। वेदों में जो भूतभावन भगवान् ब्रह्म-रूप से प्रतिपादित हैं; जो सबसे बढ़कर तेजस्वी, पवित्र, द्युतिमान्, प्रशान्त, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् हैं; जो देवताओं के भी देवता, ऋषियों के भी ऋषि, श्रेष्ठ यज्ञ, उत्कृष्ट कल्याण, ब्रह्मा आदि के ध्येय और सब कारणों के कारण हैं तथा जिनके द्वारा सब लोकों की सृष्टि और सबका संहार होता है मैं उन
३० देवदेव के एक हज़ार आठ नाम कहता हूँ। उनको सुनकर तुम अभीष्ट फल पाओगे।

वे स्थिर, स्थाणु, प्रभु, भीम, प्रवर, वरद, वर, सर्वात्मा, सर्वविख्यात, शर्व, सर्वकर, भव, जटाधारी, व्याघ्रचर्मधारी, शिखण्डी, विराट् मूर्तिधारी, विश्वकर्ता, हर, हरिणाक्ष, सर्वभूतविनाशक, प्रवृत्ति, निवृत्ति, शाश्वत और ध्रुव नाम से विख्यात हैं; वे श्मशानवासी, भगवान्, खेचर, विषय-गोचर, पापियों के नाशकर्ता, अभिवाद्य, महाकर्मा, तपस्वी, भूतभावन, उन्मत्तवेश, प्रच्छन्न, सर्व-लोक-प्रजापति, महारूप, महाकाय, वृषरूप, महायश, महात्मा, सर्वभूतात्मा, विश्वरूप, महाहनु और लोकपाल नाम से विख्यात हैं; वे अन्तर्हितात्मा, आनन्दमय, हयगर्दभि, पवित्र, महान्, नियम, नियमाश्रित, सर्वकर्मा, स्वयम्भूत, आदि, आदिकर, निधि, सहस्राक्ष, विशालाक्ष, सोमरस, नक्षत्रसाधक, चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु, राहु, मङ्गल, बृहस्पति, बुध, अत्रि, अनसूया के नमस्कर्ता, मृगरूपधारी यज्ञ को बाण मारनेवाले, निष्पाप, महातपा और घोरतपा नाम से विख्यात हैं; वे अदीन, दीनसाधक, संवत्सरकर्ता, मन्त्र, प्रमाण, परमतपस्या, योगी, योज्य, महाबीज, महारेता,

महाबल, सुवर्णरेता, सर्वज्ञ, सुबीज, बीजवाहन, दशबाहु, अनिमेष, नीलकण्ठ, उमापति, विश्वरूप, स्वयंश्रेष्ठ, बलवीर, बल, गण, गणकर्ता, गणपति, दिगम्बर, काम, मन्त्रवित्, परममन्त्र, जगत्कारण, संहारकर्ता, कमण्डलुधारी, धनुर्धर, बाणहस्त, कपालधारी, अशनिधारी, शतघ्नीधारी, खड्गपाणि, पट्टिशधारी और शूलपाणि नाम से प्रसिद्ध हैं; वे पूज्य, स्रुवहस्त, स्वरूप, तेज, तेजस्कर, निधि, उष्णीषधारी, सुवक्त्र, ऊर्जितस्वरूप, विनत, दीर्घ, हरिकेश, सुतीर्थ, कृष्ण, शृगालरूपी, सिद्धार्थ, मुण्ड, सर्वशुभङ्कर, अज, बहुरूप, गन्धधारी, कपर्दी, ऊर्ध्वरेता, ऊर्ध्वलिङ्ग, ऊर्ध्वशाया, नभस्थल, त्रिजटी, चीरवासा, रुद्र, सेनापति, सर्वव्यापी, अहश्चर, रात्रिचर, तीक्ष्णक्रोध, सुवर्चा, गजासुर-हन्ता, दानवघाती, काल, लोकविधाता और गुणाकर नाम से प्रसिद्ध हैं; वे सिंह-शार्दूलरूपी, आर्द्रचर्मावृत, कालयोगी, महानाद, सर्वकाम, चतुष्पथ, निशाचर, प्रेतचारी, भूतचारी, महेश्वर, बहुभूत, बहुधर, अनन्त, गति, नृत्यप्रिय, नित्यनृत्य, नर्तक, विश्वबन्धु, घोररूपी, महातपा, माया-पाशधारी, ध्वंस-रहित, पर्वतारूढ़, निःसङ्ग, सहस्रहस्त, विजय, व्यवसाय, अतन्द्रित, अप्रकम्प्य, भयस्वरूप, यज्ञहन्ता, कामनाशन, दक्षयज्ञापहारी, सौम्य, ईषत् सौम्य, अतिक्रूर, बलसूदन और नित्यानन्दमय नाम से प्रसिद्ध हैं; वे अर्थनीय, अजित, अवर, गम्भीरघोष, गम्भीर, गम्भीरबल-वाहन, न्यग्रोधरूपी, न्यग्रोध या अश्वत्थवृक्षस्वरूप, वृक्षपत्रस्थित, भक्तवत्सल, सुतीक्ष्णदशन, महाकाय, महानन, विष्वक्सेन, सर्वसंहर्ता, सृष्टि के बीज-स्वरूप, वृषवाहन, तीक्ष्णताप, हर्यश्व, सहाय, कर्मकालवेत्ता, विष्णु-प्रसादित, यज्ञ, समुद्र, बड़वामुख, वायु, प्रशान्तात्मा, हुताशन, उग्रतेजा, महातेजा, संग्रामनिपुण, विजयकालवेत्ता और ज्योतिषशास्त्र नाम से प्रसिद्ध हैं; वे विजय, सर्वविग्रह, शिखी (गृहस्थ), मुण्डी (संन्यासी आदि), जटाधारी (वानप्रस्थी), ज्वालावृत, मूर्तिज, मूर्द्धग, बली, वेणवी, पणवी, ताली, खली, ईश्वरी माया के नाशक, कालचक्र के परिचालक, जीव, ईश्वर, कूटस्थ, प्रजापति, विश्वबाहु, विभागकर्ता, सर्वग, अमुख, संसारमोचक, सुशरण, देह में उत्पन्न, मेढ्रज, वनचारी, महीचारी, सर्वव्यापी, सर्वतूर्यनिनादी, पशुपति, व्यालरूप, गुहा-वासी, गुह, वनमाली, विषय-सुख के रसज्ञ, त्रिदश, अखिल-पदार्थधारी, सर्व-बन्ध-विमोचन और दानवों के नाशक नाम से विख्यात हैं; वे युद्ध में शत्रुनाशक, सांख्य-ज्ञानप्रद, दुर्वासा, सर्व-सज्जन-सेवित, प्रस्कन्दन, कर्मफलविभाजक, सर्वश्रेष्ठ, यज्ञभागवित्, सर्वस्थानगत, सर्वस्थान-चारी, वासनाहीन, वासव, अमर, हिमालयरूपी, हेमकर, निष्कर्मा, कर्म-फल के आधार, सबके अवलम्बन, लोहिताक्ष, महाक्ष, विजयाक्ष, पण्डित, संग्रहीता, निग्रहीता, कर्ता, सर्पवेष्टित, वस्त्रधारी, उत्कृष्ट, अपकृष्ट, अतिशय पुष्ट, काहल(वाद्य)धारी, सर्वकामप्रद, सर्वकालप्रसन्न, महाबली और बलदेव-रूपधारी नाम से प्रसिद्ध हैं; वे मोक्ष-स्वरूप, सर्वप्रद, सर्वतोमुख, आकाश के समान सर्व-व्यापी, सर्वसंहारक, अनायत्त, हृदयाकाशगत, महाभैरव, अंशु (देवता), सूर्य, बहुरश्मि, अतुल तेजस्वी, वायु के समान वेगवान्, महावेगवान्, मन से बढ़कर वेगवान्, विषयभोग-निरत, सर्वदेह-

वासी, श्रीमान्, उपदेष्टा, मौनी, मुनि, जीवों के शुभाशुभ विचारकर्ता, सर्वसेव्य, दानी, गरुड़, मित्ररूपी, अतिदीप्त, प्रजापति, उन्माद, मदन, काम्य विषय, संसारवृक्ष, सम्पत्ति के आधार, ७० कीर्तिदाता, वामदेव, कर्मफलस्वरूप, सबके आदि, तीनों लोकों के आक्रमण करने में समर्थ और वामन नाम से प्रसिद्ध हैं; वे सिद्ध योगी, महर्षि, सिद्ध पुरुष, ज्ञानवान् संन्यासी, भिक्षु, दण्डधारी, परमहंस, व्यवहार से परे, मृदु, अव्यय, महासेन, विशाख, जाग्रत् अवस्था आदि साठ तत्त्वों के ईश्वर, इन्द्रियों के अधिष्ठाता, वज्रहस्त, विस्तृत, दानवों की सेना का स्तम्भन करनेवाले, समर-विजयी, संसाराश्रयवेत्ता, वसन्त, पिङ्गललोचन, पुरोहित-कर्मकर्ता, अध्वर्यु-कर्मकर्ता, आश्रमपूजित, ब्रह्मचारी, लोकचारी, सर्वचारी, विचारवित्, ईशान, ईश्वर, काल, महाप्रलय में स्थित, पिनाकधारी, सर्वकारणस्थ और कारण नाम से प्रसिद्ध हैं; वे समृद्धि, सम्पत्ति के उत्पादक, हरि, नन्दीश्वर, नन्दी, आनन्दवर्धन, ऐश्वर्यहर्ता, हन्ता, काल, ब्रह्मा, पितामह, चतुर्मुख, महालिङ्ग, चारुलिङ्ग, लिङ्गाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, योगाध्यक्ष, युगावह, बीजाध्यक्ष, बीजकर्ता, अध्यात्म, साधक, बलवान्, इतिहास, कल्प, गौतम, चन्द्र, दम्भ, अदम्भ, दम्भहीन, व्यक्तियों के प्राप्य, भक्तों के अधीन, वशीकरण, समर्थ, कलि, लोक-रचयिता, पशुपति, पञ्चतत्त्वों के स्रष्टा, भोगहीन, अक्षर, परब्रह्म, ८० बलशाली, शक्र, नीति, अनीति, निर्मलचित्त, दोषहीन, मान्य, संसार-स्वरूप, प्रसाद-गुण-सम्पन्न और स्वप्नाभिमानी नाम से प्रसिद्ध हैं; वे परम विराट्, बाह्याभ्यन्तर-शत्रुविजयी, वेदकर्ता, मन्त्र-कर्ता, विद्वान्, समरमर्दन, महामेघनिवासी, महाघोर, अग्निप्रभ, महातेजस्वी, कालाग्नि, हवन करके मनाये गये, हवनीय द्रव्य, धर्मरूपी, शङ्कर, तेजस्वी, वह्निस्वरूप, नील, स्वलिङ्गस्थित, कल्याण-हेतु, प्रतिबन्धशून्य, स्वस्तिदाता, स्वस्तिभाव, यज्ञभाग-विशिष्ट, विभाजक, शीघ्रगामी, सङ्गहीन, महालिङ्ग, कन्दर्प, कृष्णवर्ण, सुवर्ण, इन्द्रिय, महापाद, महाहस्त, महाकाय, महायशा, महामूर्धा, महामात्र, महानेत्र, अविद्यानाशस्थान, यमान्तक, महाकर्ण, महौष्ठ, महाहनु, बड़ी नाकवाले, महाकण्ठ, महाग्रीव, महावक्षा और महाहृदय नाम से प्रसिद्ध हैं; वे श्मशानवासी, अन्तरात्मा, मृगचिह्नधारी, ब्रह्माण्ड के आश्रय, प्रलम्बितोष्ठ, क्षीरसमुद्र, महाकाय, महादन्त, महादंष्ट्र, महा-जिह्व, महामुख, महानख, महारोम, महाकेश, दीर्घ जटाधारी, सुप्रसन्न, प्रसन्न, अनुभव, गिरि-९० धन्वा, स्नेही, स्नेहहीन, अजित, महामुनि, संसार-वृक्षस्वरूप, वृक्षकेतु, अनल, वायुवाहन, क्षुद्र पर्वतगामी, सुमेरु-निवासी, देवाधिपति, अथर्वशीर्ष और साममुख नाम से प्रसिद्ध हैं; वे ऋक्सहस्रामितलोचन, यजुःपादभुज, उपनिषदों के स्वरूप, कर्मकाण्ड-स्वरूप, प्राणिरूप, प्रार्थना-पूरक, दयालु, सुखप्राप्य, सुदर्शन, उपकारी, प्रिय, सर्व, सुवर्णवर्ण, स्वर्णादि प्रियवस्तु-रूप, यज्ञरूप, यज्ञफल-समृद्धिकर्ता, यज्ञश्रद्धारूप, ब्रह्माण्डनिर्माता, स्थिर, संसारापेक्षी मोक्ष-स्वरूप, भयजनक, आद्य, योगस्वरूप, यज्ञलभ्य, महामोह, कामक्रोधादि-रूप, काल, मकर, कालपूजित, सगण, गणकर्ता, ब्रह्मसारथि, भस्मशायी और भस्मरक्षक नाम से प्रसिद्ध हैं; वे भस्मभूत, कल्पवृक्ष, गण, लोकपाल,

लोकातीत, महात्मा, सर्वपूजित, शुद्ध, शुद्धस्वरूप, नित्यमुक्त, पवित्र, भूतनिषेवित, आश्रमवासी, क्रियावस्थित, विश्वकर्मा, लक्ष्मीस्वरूप, दीर्घबाहु, ताम्रोष्ठ, अर्णव, निश्चल, कपिलवर्ण, पिङ्गलवर्ण, शुक्लवर्ण, आयु, प्राचीन, अर्वाचीन, गन्धर्व, अदिति, गरुड़, सुविज्ञेय, प्रियवादी, परशुधारी, देव, अणुकारी, सुबान्धव, तुम्बीफलद्वय, युक्तवीणाधारी, महाक्रोध, ऊर्ध्वरेता, जलशायी, उग्र, वंशकर, वंश, वंशनाद और अनिन्दित नाम से प्रसिद्ध हैं; वे सर्वाङ्गसुन्दर, मायावी, सुहृद्, अनिल, अनल, संसार- १००
पाश, बन्धन, बन्धनकर्ता, बन्धनमोचक, यज्ञहन्ता, कामनाशन, महादंष्ट्र, महायुध, ऋषिनिन्दित, शर्व, शङ्कर, सर्वशंशयछेत्ता, निर्धन, अमरेश, महादेव, विश्वदेव, असुरहन्ता, अनन्तसर्परूपी, वायुसदृश, ज्ञानवान्, हवि, अजैकपात्, कपाली, त्रिशंकु, अजित, शिव, धन्वन्तरि, धूमकेतु, कार्त्तिकेय, कुबेर, धाता, इन्द्र, विष्णु, मित्र, विश्वकर्मा, ध्रुव, धारणकर्ता, प्रभाव, सर्वगत, वायु, अर्यमा, सविता, रवि, उष्णकिरण, विधाता, मान्धाता, भूतभावन और विभु नाम से प्रसिद्ध हैं; वे चातुर्वर्ण्यसंस्थापक, सर्वकामगुणप्रापक, पद्मनाभ, महागर्भ, चन्द्रानन, अनिल, अनल, बलवान्, उपशान्त, पुराण, पुण्यज्ञेय, कुरुक्षेत्रकर्ता, कुरुक्षेत्रवासी, कुरुक्षेत्र, त्रिगुणोद्दीपक, सर्वान्तःकरण, दर्भचारी, सब प्राणियों के ईश्वर, देवदेव, सुखासक्त, कार्यकारणवेत्ता, सर्वरत्नवेत्ता, कैलासपर्वतवासी, हिमालयनिवासी, कूलहारी, कूलकर्ता, बहुविद्य, बहुप्रद, वणिक्, काष्ठछेदनकर्ता, वृक्ष, बकुल वृक्ष, चन्दन वृक्ष, सप्तपर्ण, सारग्रीव, महाजत्रु, अलोल, महौषध और सिद्धार्थकारी नाम से प्रसिद्ध हैं; वे १०
सिद्धार्थ, वेदव्याख्या-विख्यात, सिंहनाद, सिंहदंष्ट्र, सिंहगति, सिंहवाहन, प्रभावात्मा, जगत्ग्रासकर्ता, भोजनपात्र, लोकहितकर, परित्राणकर्ता, सारङ्ग (पक्षी), नवहंस, केतुमाली, धर्मस्थानपालक, सर्वभूताश्रय, भूतपति, अहोरात्र, अनिन्दित, सर्वभूतवहनकर्ता, सर्वभूत, गृहस्वरूप, सर्वसंयोगी, भव, अमोघ, संयत, अश्व, अन्नदाता, प्राणधारण, धृतिमान्, मतिमान्, दक्ष, सत्कृत, युगाधिप, इन्द्रियपालक, गोपति, ग्राम, गोचर्मवसन, भक्तक्लेशहारी, हिरण्यबाहु और योगियों के रक्षक नाम से विख्यात हैं; वे शत्रुघातक, महाहर्ष, जितकाम, जितेन्द्रिय, गान्धार स्वर, सुवास, तपस्वी, प्रीति, मनुष्यरूपी, महागीत, महानृत्य, अप्सरागणसेवित, महाकेतु, महाधातु, बहुशिखरवासी, चञ्चल, ज्ञानगोचर, उपदेश, सर्वगन्धसुखावह, तोरण, तारण, वात, परिधी, खेचरेश्वर, संयोग, वर्धन, वृद्ध, अतिवृद्ध, गुणाधिक, नित्य, आत्मसहाय और देवदानवपति नाम से विख्यात हैं; वे युक्त, युक्तबाहु, देवदेव, आषाढ़, सर्वसहिष्णु, ध्रुव, हरिण, हर, शरीरदाता, स्वर्गच्युत, मनुष्यों के १२०
धनदाता, वसुश्रेष्ठ, महापथ, ब्रह्मशिरोहर्ता, विमर्ष, सर्वलक्षणसम्पन्न, रथाक्ष, रथयुक्त, सर्वसंस्पर्शी, महाबल, वेद, वेदभिन्न, तीर्थदेव, महारथ, निर्जीव, जीवन, मन्त्र, शान्तदृष्टि, बहुकर्कश, रत्नों के उत्पत्तिस्थान, रक्ताङ्ग, महार्णवपानकर्ता, सर्वकारण, विशाल, अमृत, व्यक्त, अव्यक्त, तपोनिधि, आरोहण, अधिरोह, सदाचारनिरत और महायशा नाम से प्रसिद्ध हैं; वे सैनिकों का पराक्रम, महाकल्प, योग, युगकर्ता, हरि, युगरूप, महारूप, गजासुरहन्ता, मृत्यु, यथायोग्य दानशील, शरण्य,

पण्डित, अचलतुल्य, बहुमालायुक्त, महामालायुक्त, चन्द्र, हर, सुलोचन, विस्तार, लवणरस, कूप, त्रियुग, फलदाता त्रिनेत्र, विषण्णाङ्ग, मणिमय कुण्डल-धारी, जटाधर, अनुस्वार, विसर्ग, सुमुख, शर, सर्वायुध, सर्वसह, निश्चयज्ञानवान्, सुखाविर्भूत, गान्धारदेशोद्भव, महाधनुर्धारी, सर्ववासनामय, भगवान्, सब कामों के आधार, विश्वमथन-समर्थ, बहुल, वायु और पूर्ण नाम से प्रसिद्ध हैं;
३० वे सर्वलोचन, तल, ताल, करस्थाली, दृढ़शरीर, श्रेष्ठ, छत्र, सुछत्र, विख्यात, लोक, सर्वाश्रय, त्रिविक्रमरूपी, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, कुण्डधारी, विकारयुक्त, हर्यक्ष, ककुभ, वज्रधारी, शतजिह्व, सहस्रपात्, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वदेवमय, गुरु, सहस्रबाहु, सर्वाङ्ग, शरण्य, सर्वलोककर्ता, पवित्र, बीजशक्ति-कीलक, कनिष्ठ, कृष्णपिङ्गलवर्ण, ब्रह्मदण्ड-निर्माणकर्ता, शतघ्नी-पाश-शक्ति-युक्त, ब्रह्मा, महागर्भ, वेदगर्भ, जलोद्भव, रश्मि, वेदकर्ता, वेदाध्यायी, वेदार्थवेत्ता, ब्राह्मण, सबके आश्रय, अनन्तरूप और अनेकमूर्ति नाम से प्रसिद्ध हैं; वे तीक्ष्णतेज, स्वयम्भू, उपाधिशून्य, पशुपति, वायुवेग, मनोजव, चन्दनलिप्त, पद्मनालाग्र, कामधेनु को शाप देनेवाले, नरावतार, कर्णिकार-मालाधारी, किरीटधारी, पिनाकधारी, उमापति, उमाकान्त, जाह्नवीधृत, उमाधर, वर, वराह, वरद, वरेण्य, सुमहास्वन, महाप्रसाद, दमन, शत्रुहन्ता, श्वेतपिङ्गलवर्ण, सुवर्णवर्ण, परमात्मा, प्रयतात्मा, प्रकृति के आश्रय, पञ्चवक्त्र, त्रिनयन, साधारण, धर्मस्वरूप, श्रेष्ठ, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, निष्काम,
१४० धर्माधिपति और साध्यर्षि नाम से प्रसिद्ध हैं; वे वसु, आदित्य, विवस्वान्, सविता, सोमरस, वेदव्यास, सृष्टि, संक्षेप, विस्तार, सर्वव्यापी, जीवरूप, ऋतु, संवत्सर, मास, पक्ष, संख्यातीत, कला, काष्ठा, लव, मात्रा, मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, क्षण, विश्वक्षेत्र, प्रजाकर्ता, महत्तत्त्व, अहङ्कार, जगत् के अंकुर, कार्य, कारण, ग्राह्य, अग्राह्य, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप, निर्वाण, आनन्दकर, ब्रह्मलोक, परमगति, देव-दानव के सृष्टिकर्ता, देव-दानव की गति, देव-दानव के गुरु, देवासुर-नमस्कृत, देवासुर-नियन्ता, देवासुराश्रय, देवासुराध्यक्ष, देवासुराग्रगण्य, देवातिदेव, देवर्षि, देवासुरवरप्रद और देवासुरेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं; वे ब्रह्माण्ड, देवासुरपूज्य, सर्वदेवमय, अचिन्त्य, देवतात्मा, स्वतःसिद्ध, उद्भिद्, त्रिविक्रम, विद्वान्, निर्मल, रजोगुणहीन, अमरस्तवनीय, हस्तीश्वर, व्याघ्रेश्वर, देवश्रेष्ठ, नरश्रेष्ठ, विबुध, अग्रवरणीय, दुर्लक्ष्य, सर्वदेवमय, अपोमय, सुयुक्त, शोभन, वज्रधारी, प्रास अस्त्र के उत्पादक, अव्यय, गुह, कान्त, स्वभाव, पवित्र,
५० सर्वपावन, वृषरूप, पर्वतशिखरप्रिय और शनैश्चर नाम से प्रसिद्ध हैं; वे राजराज, निर्दोष, अभिराम, देवगण-स्वरूप, विराम, सर्वसाधन, ललाटाक्ष, विश्वदेव, हरिण, ब्रह्मतेज, हिमालय, समाधिस्थ, नित्यसिद्ध, नित्ययुक्त, अचिन्त्य, सत्यव्रत, शुचि, व्रतफलदाता, परब्रह्म, भक्तों की परमगति, विमुक्त, मुक्ततेज, श्रीमान्, श्रीवर्धन और जगत्स्वरूप नाम से प्रसिद्ध हैं।

हे वासुदेव, मैंने महादेवजी के इन प्रधान नामों द्वारा भक्तिभाव से उनकी स्तुति की थी। ब्रह्मा आदि देवता और महर्षिगण जिनको विशेष रूप से नहीं जान सकते उनकी स्तुति करके

कोई प्रसन्न नहीं कर सकता। जो व्यक्ति भक्ति के साथ इन पुष्टिवर्धन हज़ार नामों का उच्चारण करके शङ्कर की स्तुति करता है वह निस्सन्देह परब्रह्म में लीन हो जाता है। देवताओं और महर्षियों ने इसी प्रकार उन सनातन देवदेव की स्तुति की है। जितेन्द्रिय महात्माओं द्वारा स्तुति की जाने पर मोक्ष देनेवाले भगवान् शूलपाणि प्रसन्न होते हैं। आस्तिक, श्रद्धावान्, १५९
तेजस्वी श्रेष्ठ मनुष्य, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रत्येक समय भक्तिपूर्वक मन-वचन-कर्म से उन सनातन महादेव की स्तुति करके, उनका माहात्म्य सुनकर और दूसरों से कहकर, प्रसन्न होते हैं। मनुष्य अनेक योनियों में जन्म लेकर पुण्य किया करता है। अन्त में शङ्कर की कृपा होने पर वह पापहीन होकर शिव की परम भक्ति पा सकता है। निर्दोष पवित्र शिव-भक्ति देवताओं को भी अत्यन्त दुर्लभ है; मनुष्यों की तो बात ही क्या। भगवान् पिनाकपाणि के प्रसन्न होने पर मनुष्य उनका परमभक्त होकर सिद्धि पा सकता है। जो पूर्ण भक्त होकर महादेवजी की शरण में जाता है उसे दीनवत्सल भगवान् भवानीपति संसाररूपी बन्धन से मुक्त कर देते हैं। महादेवजी के सिवा दूसरा देवता मनुष्यों को संसार से मुक्त नहीं कर सकता। इन्द्र आदि देवता तो [स्वर्ग की वेश्याएँ भेजकर] मनुष्यों का तपोबल नष्ट कर देते हैं। इसी कारण महात्मा तण्डि ने, अन्य देवताओं की उपासना न करके, उन सनातन पशुपति की स्तुति की थी। पहले ब्रह्माजी ७०
ने महादेवजी की यह स्तुति की है। जो मनुष्य भगवान् शङ्कर के अनन्य भक्त होकर सब पापों को नष्ट कर देनेवाली, योग और मोक्ष-प्रद, उनकी इस परम पवित्र स्तुति का पाठ करते हैं वे निस्सन्देह सांख्य और योगशास्त्र में बतलाई हुई परम गति पाते हैं। शिव के भक्त महात्मा पुरुष एक वर्ष तक शङ्कर के इस स्तोत्र का पाठ करें तो अभीष्ट फल पा सकते हैं। ब्रह्माजी ने पहले अपना यह परम रहस्य पवित्र स्तोत्र इन्द्र को दिया था। इन्द्र ने मृत्यु को, मृत्यु ने रुद्रगण को, रुद्रगण ने महातपस्वी तण्डि को, तण्डि ने शुक्राचार्य को, शुक्राचार्य ने गौतम को, गौतम ने वैवस्वत मनु को, वैवस्वत मनु ने नारायण को, नारायण ने यम को, यम ने नाचिकेत को और नाचिकेत ने मार्कण्डेय को दिया था। फिर महात्मा मार्कण्डेय ने यह स्तोत्र मुझे बतलाया। अब मैंने आयु बढ़ानेवाले, वेदसम्मत, इस पवित्र स्तोत्र का वर्णन तुमसे किया है। दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच, गुह्यक और सर्प आदि कभी इसमें विघ्न नहीं डाल सकते। जो मनुष्य ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय और पवित्र होकर एक वर्ष तक नित्य इस शुद्ध स्तोत्र का पाठ करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। १८२

अठारहवाँ अध्याय

वेदव्यास आदि अन्य महर्षियों का युधिष्ठिर से महादेवजी का माहात्म्य कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि [महाराज, वासुदेव जब इस प्रकार उपमन्यु के कहे हुए महादेवजी के हज़ार नाम कह चुके तब भीष्म के पास बैठे हुए अन्यान्य महात्माओं ने युधिष्ठिर से

महादेवजी का माहात्म्य कहना आरम्भ किया।] महर्षि वेदव्यास ने कहा—धर्मराज! तुम इन हज़ार नामों का पाठ करो, इसी से तुम्हारा भला होगा। मैंने पुत्र की इच्छा से सुमेरु पर्वत पर घोर तपस्या करके इस स्तोत्र का पाठ किया था। इससे मेरा मनोरथ सफल हुआ था।

देवताओं के पूज्य, सांख्यशास्त्र के मर्मज्ञ, महात्मा कपिल ने कहा—धर्मराज! मैंने अनेक जन्मों में भक्तिपूर्वक महादेवजी की आराधना की है, तब मुझ पर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे संसार-बन्धन को नष्ट करनेवाला ज्ञान दिया है।

इन्द्र के प्रिय सखा, आलम्बायन नाम से विख्यात, चारुशीर्ष ने कहा—धर्मराज! मैंने गोकर्ण तीर्थ में सौ वर्ष तपस्या करके महादेवजी के प्रभाव से लाख वर्ष की आयुवाले, अजर, धर्मात्मा, ज्ञानवान् दमगुण से युक्त अयोनिज सौ पुत्र प्राप्त किये हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने कहा—धर्मराज, प्राचीन समय में अग्निहोत्री मुनियों के साथ मेरा विवाद हुआ था। उन लोगों ने मुझे ब्रह्महत्यारा कहा था। उस पाप से छुटकारा पाने के लिए मैंने भूतनाथ की तपस्या की थी। मुझ पर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे उस पाप से मुक्त कर
१० दिया और मुझे महायशस्वी होने का वरदान दिया।

सूर्य के समान तेजस्वी महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने कहा—धर्मराज, मैं अपने बड़े भाइयों का वध करके बड़ा दुखी हुआ और महादेवजी की शरण में जाकर उनके हज़ार नामों का पाठ करके उनकी स्तुति करने लगा। तब प्रसन्न होकर उन्होंने परशु और अनेक दिव्य अस्त्र देकर मुझसे कहा—बेटा, तुम सब पापों से छुटकारा पा जाओगे। तुम अजेय और अजर-अमर होगे। उन्हीं की कृपा से मुझे दिव्य अस्त्र प्राप्त हुए हैं और मैं अजेय तथा अजर-अमर हुआ हूँ।

महर्षि विश्वामित्र ने कहा—धर्मराज, मैं पहले क्षत्रिय था। भगवान् भूतनाथ की कृपा से मुझे यह दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ है।

असितदेवल ने कहा—धर्मराज, इन्द्र के शाप से मेरी सब तपस्या नष्ट हो गई थी; परन्तु शङ्कर ने प्रसन्न होकर मुझे दीर्घायु, धर्म और यश दिया है।

इन्द्र के प्रिय मित्र, बृहस्पति के समकक्ष, महर्षि गृत्समद ने कहा कि प्राचीन समय में इन्द्र ने, हज़ार वर्ष में सम्पूर्ण होनेवाला, यज्ञ आरम्भ किया था। मैं उस यज्ञ में सामवेद का पाठ करता
२० था। उसी समय चाक्षुष मनु के पुत्र वरिष्ठ ने "तुम ठीक-ठीक पाठ नहीं करते हो; समझ-बूझकर पाठ करो। यज्ञ को दूषित करना उचित नहीं।" कहकर मुझे शाप दिया—रे मूढ़! तू अयज्ञीय वृक्षों से युक्त ऐसे वन में हिंसक पशु होकर ग्यारह हज़ार आठ सौ वर्ष तक दुःख भोगता रहेगा जिसमें न तो जल-वायु है और न मृग आदि पशु हैं; किन्तु सिंह और रुरु आदि हिंसक जीव भरे पड़े हैं। महर्षि वरिष्ठ के यों कहते ही मैं पशु हो गया। तब मैं उस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिए शङ्कर की शरण में गया। उन्होंने मुझसे कहा—बेटा! तुम अजर,

अमर और बड़े सुखी होगे; [इन्द्र के साथ तुम्हारी मित्रता होगी] और तुम दोनों के यज्ञ बढ़ेंगे। हे धर्मराज, महादेवजी इसी प्रकार सब पर कृपा करते हैं। वे सुख-दुःख के विधाता, धारणकर्ता और मन-वचन-कर्म से अगोचर हैं। उनकी कृपा से मेरी जोड़ का पण्डित दूसरा नहीं है।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से फिर कहा कि धर्मराज, मैंने घोर तपस्या करके महादेवजी को प्रसन्न किया है। उन्होंने मुझसे कहा है—बेटा! तुम धन से भी बढ़कर मनुष्यों को प्रिय होगे, युद्ध में ३०
तुमको कोई न जीत सकेगा और तुम अग्नि के समान तेजस्वी होगे। महादेवजी ने ऐसे ही बहुतेरे वरदान दिये। मैंने पहले अवतार में मणिमन्थ पर्वत पर हज़ारों वर्ष तक महादेवजी की आराधना की थी। मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर एक बार मुझे दर्शन देकर उन्होंने कहा कि बेटा, तुम अभीष्ट वर माँग लो। मैंने कहा—भगवन्, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि सदा आपमें मेरी भक्ति बनी रहे। मेरे यह कहने पर वे 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

जैगीषव्य ने कहा—धर्मराज, उमापति शङ्कर ने प्रसन्न होकर काशी में मुझे अणिमा आदि सिद्धियाँ दी थीं।

गर्ग ने कहा—धर्मराज, सरस्वती नदी के किनारे मेरे मानस यज्ञ से प्रसन्न होकर महादेवजी ने मुझे चौंसठ कलाओं का ज्ञान देकर एक हज़ार ब्रह्मज्ञ पुत्र दिये थे। उनकी कृपा से मेरी और मेरे पुत्रों की आयु दस लाख वर्ष की हो गई है।

पराशर ने कहा—धर्मराज! मैंने महादेवजी को प्रसन्न करके यह सोचा था कि उनकी कृपा से मेरे महातपस्वी, महातेजस्वी, महायोगी, महायशस्वी, वेद के विभाग करनेवाला, ब्रह्मनिष्ठ, दयालु, विद्वान् पुत्र पैदा हो। मैं इस प्रकार सोच ही रहा था कि त्रिलोकीनाथ शङ्कर ने ४१
मेरा अभिप्राय समझकर, सामने आकर, कहा—बेटा, मेरी कृपा से तुम्हारे वैसा पुत्र होगा जैसा तुम चाहते हो। तुम्हारा पुत्र वेदवेत्ता, इतिहास का रचयिता, संसार का हितैषी, कुरुवंशधर होगा। सावर्णि मन्वन्तर में वह सप्त-ऋषियों में गिना जायगा। इन्द्र के साथ उसकी मित्रता होगी और वह बुढ़ापे तथा बीमारियों से बचा रहकर बहुत दिनों तक जीवित रहेगा। महादेवजी मुझसे यों कहकर अन्तर्धान हो गये।

माण्डव्य ने कहा—धर्मराज, मैं एक बार चोरी के झूठे अपराध में शूली पर चढ़ाया गया था। तब मैं बड़ी भक्ति से भूतनाथ की स्तुति करने लगा। स्तुति सुनकर उन्होंने प्रसन्न होकर मुझसे कहा कि तुम मेरी कृपा से शूली से छुटकारा पाकर एक अरब वर्ष तक जीते रहोगे। तुम्हें शूली की पीड़ा नहीं रहेगी। तुमको शारीरिक और मानसिक किसी प्रकार का दुःख न होगा। तुम्हारा यह शरीर सत्य से उत्पन्न हुआ है, इस कारण संसार में तुम्हारे समान श्रेष्ठ कोई न होगा। तुम्हारा जन्म सफल होगा। तुम सब तीर्थों में बेखटके विचरोगे और शरीर त्यागने पर अक्षय लोक को जाओगे। मुझसे यह कहकर महादेवजी प्रमथ गण समेत अन्तर्धान हो गये। ५१

गालव ने कहा—धर्मराज, मैं विश्वामित्र [के पास पढ़ने गया था। पढ़ाई समाप्त होने पर] महर्षि से अनुमति लेकर अपने घर गया। [उस समय पिताजी का शरीरान्त हो चुका था।] माता ने मुझे देखकर रो-रोकर कहा कि बेटा ! तुम पढ़-लिखकर तो आ गये, पर तुम्हारे बाप हैं कहाँ जो उनसे भेंट करोगे। माता के यों कहने पर मैं पिताजी के दर्शन से हताश हो महादेवजी की आराधना करने लगा। वे मेरी भक्ति से प्रसन्न हो गये। मुझे दर्शन देकर उन्होंने कहा—बेटा, तुम्हारे माता-पिता और तुम सभी अमर रहोगे। अब घर जाकर पिता के दर्शन करना। महादेवजी से आज्ञा पाकर मैंने घर पहुँचकर देखा कि पिताजी यज्ञ के अन्त में आचमन करके समिधा, कुश और फल लिये घर से बाहर आ रहे हैं। मैंने उनके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। उन्होंने यज्ञ की सब सामग्री अलग रखकर झट मेरा माथा सूँघा और आँखों में आँसू भरकर कहा—बेटा, आज बड़ा भाग्य है जो तुमको विद्या पढ़कर घर आया हुआ मैंने देखा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महर्षियों के मुँह से महादेवजी का इस प्रकार अद्भुत
६० माहात्म्य सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर को बड़ा विस्मय हुआ। तब श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज, प्रचण्ड सूर्य के समान तेजस्वी महात्मा उपमन्यु ने मुझसे कहा था कि जो मनुष्य रजोगुण और तमोगुण से युक्त होकर अशुभ कर्मों द्वारा अपने को कलुषित करता है वह कभी शङ्करजी को प्राप्त नहीं कर सकता। परमभक्त विशुद्धात्मा ब्राह्मण ही उनका साक्षात्कार कर सकते हैं। जो मनुष्य लगातार भवानीपति का परमभक्त होकर जीवन बिताता है उसे पवित्रचित्त वनवासी मुनि समझना चाहिए। महादेवजी प्रसन्न होकर ब्रह्मत्व, केशवत्व, इन्द्रत्व और तीनों लोकों का आधिपत्य दे सकते हैं। जो मनुष्य इस लोक में मन से भी शङ्करजी की शरण लेता है वह सब पापों से छूटकर अन्त को देवताओं के साथ निवास करता है। घर और तालाब का नष्ट करनेवाला तथा प्राणियों की हत्या करनेवाला मनुष्य भी महादेवजी की भक्ति करके सब पापों से छुटकारा पा सकता है। चाहे उसमें एक भी शुभ लक्षण न हो और चाहे वह बड़ा भारी पापी हो, किन्तु शङ्करजी की उपासना करे तो सब पापों से छूट जाता है। कीट, पतङ्ग, पक्षी आदि भी महादेवजी की शरण में जाने से बेखटके हो जाते हैं। जो महादेवजी की भक्ति करता है वह निस्सन्देह संसार से मुक्त हो जाता है।

७० श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर से इस प्रकार उपमन्यु की बताई हुई बातें कहकर कहा—महाराज ! सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथिवी, जल, वसुगण, विश्वेदेवा, धाता, अर्यमा, शुक्र, बृहस्पति, रुद्रगण, साध्यगण, वरुण, गोप, ब्रह्मा, इन्द्र, मरुद्गण, उपनिषद्, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेदपाठी, सोमरस, यज्ञकर्ता, हव्य, रक्षा, दीक्षा, सम्पूर्ण संयम, स्वाहा, वौषट्, ब्राह्मण, सौरभेयी, श्रेष्ठ धर्म, कालचक्र, बल, यश, दम, बुद्धिमानों की स्थिति, शुभाशुभ, सप्तर्षि, सूक्ष्म बुद्धि, श्रेष्ठ स्पर्श, कार्यसिद्धि, देवगण, ऊष्मपगण, सोमप, सुयाम, तुषित, ब्रह्मकाय, आभास्वर, गन्धप धूमप नामक

देवगण, मौनी, संयमी महर्षिगण, विशुद्ध, निर्माणनिरत देवगण, स्पर्शाशन, दर्शप, आज्यप, चिन्त्य-द्योत आदि देवगण, सुपर्ण, गन्धर्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण, सर्प, स्थूल, सूक्ष्म, असूक्ष्म, मृदु, सुख, दुःख. सुख के अन्त में दुःख, दुःख के अन्त में सुख, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र और अन्यान्य सब पदार्थ उन्हीं भूतभावन सनातन महादेव से उत्पन्न हुए हैं। जो देवता आकाश आदि के सृष्टि-कर्ता हैं वे भी महादेवजी से ही उत्पन्न होकर संसार की रक्षा करते हैं। तत्त्वदर्शी महात्मा हमेशा उनके सूक्ष्म तत्त्वों पर विचार किया करते हैं। मोक्ष-पद पाने के लिए मैं सनातन परमेश्वर के उन पवित्र तत्त्वों को नमस्कार करता हूँ। महादेवजी मेरी स्तुति से प्रसन्न होकर मुझे अभीष्ट फल दें। जो मनुष्य जितेन्द्रिय और पवित्र होकर प्रतिदिन एक मास तक इस पवित्र स्तोत्र का पाठ करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इस स्तोत्र का पाठ करने से ब्राह्मणों को ८०
सब वेदों का ज्ञान होता, क्षत्रियों को राज्य-प्राप्ति होती, वैश्यों को धन और निपुणता तथा शूद्रों को सुख और सद्गति मिलती है। जो व्यक्ति सब दोषों को नष्ट करनेवाले इस स्तोत्र का पाठ करके महादेवजी की भक्ति करता है उसके शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने हज़ार वर्षों तक वह स्वर्ग का सुख भोगता है। ८३

उन्नीसवाँ अध्याय

भीष्म का स्त्रियों का स्वभाव बतलाते हुए अष्टावक्र की कथा कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, विवाह के समय वेद के अनुसार वर और कन्या से यह प्रतिज्ञा कराई जाती है कि 'तुम आपस में मिलकर धर्म का आचरण करो' तो वर और कन्या से जिस धर्म के आचरण करने की प्रतिज्ञा कराई जाती है वह कौन सा धर्म है। वह यज्ञ का अनुष्ठान है या सन्तान उत्पन्न करना है अथवा इन्द्रिय-सुख का साधन है? जब प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार गति पाता है और स्त्री-पुरुष में कोई पहले और कोई पीछे मरता है तब वह धर्म यज्ञ का अनुष्ठान नहीं हो सकता। और, जब स्त्रियाँ पर-पुरुष द्वारा पुत्र उत्पन्न कराती और इन्द्रिय-सुख भोगती हैं तब उस धर्म को यदि सन्तान का उत्पन्न करना या इन्द्रिय-सुख-साधन माना जाय तो यह भी सम्भव नहीं। अतएव मुझे जान पड़ता है कि यह धर्म सत्य-धर्म नहीं है। इस धर्म के विषय में मुझे बड़ा सन्देह है, आप इसका मर्म बतलाइए।

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में महर्षि अष्टावक्र और दिशा का संवाद सुनाता हूँ। महातपस्वी अष्टावक्र ने महर्षि वदान्य की कन्या सुप्रभा का सौन्दर्य देखकर उस पर मोहित १०
हो, उसके साथ विवाह करने की इच्छा से, उसके पिता के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। अष्टावक्र का प्रस्ताव सुनकर महर्षि वदान्य ने कहा—बेटा! तुम एक बार उत्तर दिशा को जाकर एक व्यक्ति से मिल आओ, तब मैं तुम्हें अपनी कन्या दूँगा।

अष्टावक्र ने कहा—महात्मन्, बतलाइए कि मैं उत्तर दिशा में किससे मिलने जाऊँ। इस समय आप मुझे जो कुछ करने को कहेंगे वह सब मैं करूँगा।

महर्षि वदान्य ने कहा—बेटा, अलकापुरी और हिमालय पर्वत के आगे जाने पर तुम्हें कैलास पर्वत पर महादेवजी का निवास-स्थान मिलेगा। वहाँ सिद्ध, चारण, अनेक मुँहवाले प्रमथ और दिव्य अङ्गराग लगाये पिशाचगण महादेवजी के चारों ओर बैठे नाचते, गाते और उनकी सेवा करते मिलेंगे। महादेवजी अपने अनुचरों के साथ सदा वहाँ निवास करते हैं। देवी पार्वती ने महादेवजी को पतिरूप से प्राप्त करने के लिए इसी स्थान पर घोर तपस्या की थी, इसी
२० से यह स्थान महादेव-पार्वती को बहुत प्रिय है। उसके पूर्व और उत्तर ओर छहों ऋतुएँ, काल, रात्रि, देवता और मनुष्य आदि महादेवजी की उपासना किया करते हैं। इस स्थान को भी लाँघने पर तुम्हें मेघ के समान अति रमणीय एक नीला वन मिलेगा। उस स्थान पर एक वृद्धा तपस्विनी मिलेगी। उसका दर्शन और सम्मान करके तुम लौट आना। तुम जब उस वृद्धा के दर्शन करके लौट आओगे तब मैं तुम्हारे साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा। बस, मेरी यही शर्त है।

अष्टावक्र ने कहा—भगवन्, आपने जहाँ जाने के लिए कहा है वहाँ मैं अवश्य जाऊँगा और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। आशा है, आप अपनी बात पर दृढ़ रहेंगे।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, अब अष्टावक्र उत्तर दिशा को चल दिये। वे सिद्ध-चारण-सेवित हिमालय पर्वत पर पहुँचकर धर्मदायिनी बाहुदा नदी के पवित्र जल में स्नान और देवताओं का तर्पण करके उस शोकहीन पवित्र तीर्थ पर कुशों के बिछौने पर बड़े सुख से रात भर सोये।
३० उन्होंने प्रातःकाल उठकर स्नान आदि सब क्रिया करके अग्नि प्रज्वलित करके हवन किया। उस स्थान पर एक तालाब था। तालाब से थोड़ी दूर पर शिव-पार्वती की मूर्ति थी। अष्टावक्र ने उस तालाब के किनारे कुछ देर विश्राम करके शिव-पार्वती की मूर्ति के दर्शन किये। फिर कैलास पर पहुँचकर वे कुबेर के सुवर्णमय पुर-द्वार, मन्दाकिनी नदी और कमलों से शोभित सरोवर की शोभा देखने लगे। उसी समय उस तालाब के रक्षक राक्षसगण, मणिभद्र के पुत्र के साथ, आये। अष्टावक्र ने भीम पराक्रमी राक्षसों का यथोचित सत्कार करके कहा कि हे राक्षसो, तुम कुबेर के पास जाकर उनसे मेरे आने का समाचार कहो। राक्षसों ने कहा—भगवन्, आपके आने का कारण कुबेरजी को मालूम हो चुका है। वह देखिए, भगवान् कुबेर स्वयं आपके पास आ रहे हैं।

राक्षसों के यह कहते ही धनपति कुबेर अष्टावक्र के पास आ गये। उन्होंने अष्टावक्र से कुशल-प्रश्न करके कहा—"महात्मन्, आप मुझे जो आज्ञा दें उसे करने को मैं तैयार हूँ। मेरे घर चलकर विश्राम कीजिए, फिर काम हो जाने पर चले जाइएगा।" अब वे अष्टा-

वक्रजी को अपने घर ले गये। उन्हें पाद्य, अर्घ्य और आसन देकर सत्कार करके बैठाया और स्वयं भी बैठ गये। मणिभद्र आदि यक्ष, गन्धर्व और किन्नरगण भी बैठे। तब कुबेर ने महर्षि ४०
अष्टावक्र से कहा—भगवन्, नाचने के लिए अप्सराएँ आपकी आज्ञा चाहती हैं। अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि यक्षराज, अतिथि-सत्कार करना आपका कर्तव्य ही है; अतएव अप्सराएँ नाचें।

आज्ञा पाकर उर्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशा, अलम्बुषा, घृताची, चित्रा, चित्राङ्गदा, रुचि, मनोहरा, सुकेशी, सुमुखी, हासिनी, प्रभा, विद्युता, प्रशमी, दान्ता, विद्योता और रति आदि अप्सराएँ नाचने लगीं। गन्धर्व लोग अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे। महातपस्वी अष्टावक्र कुबेर के घर में, देवताओं के एक वर्ष तक, बड़े सुख से रहे। तब कुबेर ने महर्षि से कहा—भगवन्, नाच-गान आदि बड़ा मनोहर विषय है। आपको यहाँ आये एक वर्ष हो गया। आपकी इच्छा हो तो यहाँ कुछ दिन और ठहरिए। आप अतिथि हैं और हम लोगों के पूज्य हैं। यह घर और ये सेवक, आपके ही हैं। ५०

अष्टावक्र ने कहा—यक्षराज, मैं आपके सत्कार से बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं महर्षि वदान्य के बतलाये हुए स्थान को जाऊँगा। आप ख़ूब फूलें-फलें।

अब अष्टावक्र वहाँ से चल दिये। वे कैलास, मन्दर और सुमेरु आदि अनेक पर्वतों को लाँघकर किरातरूपी महादेवजी के स्थान की प्रदक्षिणा और उनको प्रणाम करके, पवित्र होकर, फिर उत्तर दिशा की ओर बढ़े।

कुछ आगे जाने पर पशु-पक्षियों से शोभित, अनेक प्रकार के फल-फूलों से सम्पन्न, एक सुन्दर वन उनको देख पड़ा। उस वन में एक दिव्य आश्रम था। उस आश्रम के समीप अनेक रत्नों से विभूषित पर्वत, सुन्दर तालाब और अन्यान्य प्रकार के अद्भुत पदार्थ थे। वहाँ की अलौकिक शोभा देखकर महर्षि अष्टावक्र चकित होकर चारों ओर देखने लगे। इधर-उधर देखते-देखते उस ६०
आश्रम में कुबेर की पुरी से भी श्रेष्ठ रत्नमय एक अद्भुत पुरी उनको देख पड़ी। उस पुरी के पास अनेक प्रकार के सोने और मणियों के पर्वत और सोने के विमान थे। मन्दार के फूलों से अलङ्कृत मन्दाकिनी कलकल शब्द करती हुई बह रही थीं। हीरे और मणियाँ चारों ओर चमक रही थीं। उस पुरी में विचित्र मणियों के तोरण से सजे और मोतियों से जड़े हुए अनेक सुन्दर भवन थे।

यह सब देखकर अष्टावक्र सोचने लगे कि मैं कहाँ ठहरूँ। फिर नगर के द्वार पर जाकर उन्होंने ज़ोर से कहा—मैं अतिथि हूँ, इस नगर में कोई हो तो मेरी ख़बर ले।

अष्टावक्र के यह कहते ही नगर से सर्वाङ्ग-सुन्दरी सात कन्याएँ अतिथि का सत्कार करने के लिए निकल आईं। उस समय महर्षि अष्टावक्र उन सात कन्याओं में से जिसे देखते थे वही उनका मन हर लेती थी। उन कन्याओं का सौन्दर्य देखकर महर्षि थोड़ी देर तक बहुत व्याकुल रहे। अन्त में उन्होंने अपने मन को वश में कर लिया।

कन्याओं ने कहा कि भगवन् ! आइए, पधारिए। यह सुनकर अष्टावक्र उन कन्याओं की
६० सुन्दरता और घर का सौन्दर्य देखने की लालसा से घर के भीतर गये। वहाँ साफ़ धोती पहने, अनेक आभूषणों से भूषित, एक बुढ़िया को पलँग पर बैठी देखकर उसे ऋषि ने आशीर्वाद दिया। महर्षि को देखकर बुढ़िया उठकर खड़ी हो गई। उसने उनसे बैठने के लिए कहा।

महर्षि अष्टावक्र वहाँ बैठ गये। उन्होंने कहा कि हे कन्याओ, तुम लोगों में जो बुद्धिमती और धैर्यवती हो वही यहाँ रहे, बाक़ी सब चली जायँ। महर्षि के यह कहते ही सब कन्याएँ, उनकी प्रदक्षिणा करके, चली गईं। अब वही बुढ़िया घर में रह गई। इसके बाद रात हो गई। तब महर्षि स्वच्छ शय्या पर लेट गये और बुढ़िया से बोले कि रात बीती जा रही है, तुम भी सो रहो। तपोधन के कहने पर बुढ़िया दूसरी शय्या पर लेट रही। कुछ देर बाद वह बुढ़िया, जाड़े का बहाना करके, काँपती हुई महर्षि की शय्या पर आ गई। महर्षि ने उसे अपनी शय्या पर आते देखकर, आदर के साथ, लेट जाने दिया। बुढ़िया अष्टावक्र की शय्या पर जाकर उनका आलिङ्गन करने लगी; किन्तु महर्षि लकड़ी के समान निर्विकार पड़े रहे। यह देखकर बुढ़िया ने कहा—भगवन्, पुरुष का स्पर्श करने से स्त्री में धैर्य
८० नहीं रह जाता। स्त्रियों का यही स्वभाव है। आपका स्पर्श करने से मुझे कामदेव सता रहा है, आप मेरी इच्छा पूरी करें। मैंने जब से आपको देखा है तभी से मैं व्याकुल हो रही हूँ। आप प्रसन्नता से आलिङ्गन करके मुझे कृतार्थ कीजिए। आपने अभी तक जितनी तपस्या की है उसका यही अभीष्ट फल है। मेरा यह सब धन-रत्न और अन्यान्य सारी वस्तुएँ अब आपकी ही हैं। आप मेरी इच्छा पूरी करेंगे तो मैं भी आपके मनोरथ सफल करूँगी। इस रमणीय वन में आपके साथ सुख से विहार करने की मुझे बड़ी इच्छा है। इस स्थान पर रहने से हम दोनों को लौकिक और अलौकिक अनेक प्रकार के सुख मिलेंगे। पुरुष-संसर्ग से बढ़कर स्त्रियों के लिए श्रेष्ठ सुख नहीं है। काम से पीड़ित होकर स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी हो जाती हैं। उस समय तपी हुई बालू पर चलने में भी उनको क्लेश नहीं होता।

बुढ़िया की यह अनुचित प्रार्थना सुनकर अष्टावक्र ने कहा—कल्याणी, मैंने अभी तक स्त्री का स्पर्श नहीं किया है। धर्मशास्त्र के ज्ञाताओं ने व्यभिचार की बड़ी निन्दा की है। मैं तो विषय-भोग करना जानता भी नहीं। मेरा उद्देश्य तो धर्म के अनुसार विवाह करके पुत्र उत्पन्न करना है। धर्म के अनुसार पुत्र उत्पन्न करने से मुझे निस्सन्देह शुभ लोक प्राप्त होंगे। ९० तुम धर्म का मर्म समझकर अपने मन को रोको।

बुढ़िया ने कहा—भगवन्, स्त्रियाँ स्वभाव से ही कामातुर होती हैं। उनको पुरुष का संसर्ग जितना प्रिय है उतने प्रिय उन्हें अग्नि और वरुण आदि देवता भी नहीं हैं। देखिए, हज़ारों स्त्रियों में कहीं एक पतिव्रता देख पड़ती है और सच तो यह है कि लाखों में ही कोई सती निकलती है। जब उनमें काम का वेग उत्पन्न होता है तब वे पिता, माता, भाई, पति, पुत्र और देवर किसी की परवा नहीं करतीं। वे अपनी इच्छा पूरी करके ही मानती हैं। काम के वश होकर वे कुलटा हो जाती हैं। हे तपोधन, प्रजापति ने स्त्री-जाति में जो दोष बतलाये हैं वे सब मैंने आपको बतला दिये।

बुढ़िया की बातें सुनकर महर्षि अष्टावक्र ने कहा—मनुष्य जिस विषय का स्वाद जानता है उसी के लिए उसकी इच्छा होती है। मैं विषय-भोग जानता ही नहीं, इसी से तुम्हारी बात मानने को मैं तैयार नहीं हूँ। इसके सिवा और जो कुछ काम करने को कहो वह मैं कर सकता हूँ।

बुढ़िया ने कहा—भगवन्, आप कुछ दिन यहाँ ठहरें तो आपको सम्भोग-सुख का स्वाद अवश्य मिल जाय।

"भद्रे, तुम जितने दिन यहाँ ठहरने को कहोगी उतने दिन मैं ठहरा रहूँगा।" यह कहकर महर्षि अष्टावक्र ने बुढ़िया के सब अङ्ग देखे; किन्तु उसके किसी अङ्ग के देखने से उनका चित्त आकर्षित न हुआ। बुढ़िया की अत्यन्त वृद्धावस्था देखकर महर्षि सोचने लगे कि यह स्त्री क्या इस घर की अधिष्ठात्री देवी है। क्या यह किसी के शाप से इस तरह कुरूपा हो गई है? कुछ भी हो, इसकी कुरूपता का कारण पूछना उचित नहीं। इसी सोच-विचार में एक १०० दिन बीत गया। सन्ध्या होने पर बुढ़िया ने महर्षि से कहा—भगवन्, वह देखिए, सूर्य अस्त हो गये हैं। आज्ञा दीजिए, मैं आपका कौन सा काम करूँ। अष्टावक्र ने कहा कि भद्रे, स्नान करने के लिए जल लाओ। मैं स्नान करके सन्ध्या करूँगा। १०३

बीसवाँ अध्याय

अष्टावक्र और बुढ़िया की बातचीत

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, महर्षि अष्टावक्र की आज्ञा पाकर बुढ़िया ने स्नान के लिए वस्त्र और सुगन्धित तेल लाकर रख दिया। आज्ञा पाकर उसने उनको तेल की मालिश कर दी।

तेल लगवाकर महर्षि स्नानागार में गये। वहाँ उनको आसन पर बैठाकर बुढ़िया गुनगुने पानी से स्नान कराने लगी। महर्षि गुनगुने पानी से बड़े सुख से स्नान करने लगे। स्नान करते-करते सारी रात बीत गई, किन्तु महर्षि को इसका पता ही न लगा। आसन से उठकर उन्होंने पूर्व की ओर देखा तो सूर्यदेव का उदय हो रहा था। तब महर्षि विस्मित होकर सोचने लगे कि क्या मुझे कुछ भ्रम हो रहा है अथवा सचमुच प्रातःकाल हो गया। इसके बाद उजाला हो गया। उन्होंने सूर्यदेव की उपासना करके बुढ़िया से पूछा कि अब मैं क्या करूँ। तब बुढ़िया स्वादिष्ठ भोजन ले आई। भोजन करते-करते महर्षि को पूरा दिन बीत गया। सन्ध्या होने पर बुढ़िया ने अपने और महर्षि के लिए अलग-अलग पलँग बिछाकर कहा—भगवन्, अब आप आराम कीजिए। महर्षि के सो जाने पर वह भी अपने बिछौने पर लेट रही। आधी रात के समय बुढ़िया फिर महर्षि के पास पहुँच गई।

अष्टावक्र ने कहा—भद्रे, पर-स्त्री-गमन करने को मेरा मन गवाही नहीं देता अतएव तुम अपने बिछौने पर चली जाओ।

इस प्रकार महर्षि द्वारा तिरस्कृत होने पर बुढ़िया ने दुखी होकर कहा—भगवन्, मैं स्वाधीन हूँ। मेरे साथ समागम करने से आपको पर-स्त्री-गमन का दोष नहीं लगेगा। मैं आपको धोखा नहीं देती हूँ।

अष्टावक्र ने कहा—कल्याणी, प्रजापति ने कहा है कि स्त्री-जाति कभी स्वाधीन नहीं है।

बुढ़िया ने कहा—हे विप्र, मैं काम-पीड़ित हो रही हूँ और आप पर आसक्त हूँ। आप मेरी इच्छा पूरी न करेंगे तो आपको पाप लगेगा।

अष्टावक्र ने कहा—स्वाधीन व्यक्ति काम-क्रोध आदि दोषों के वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु मैंने धैर्य के द्वारा काम आदि शत्रुओं को अपने अधीन कर लिया है। अतएव तुम अपने पलँग पर चली जाओ।

बुढ़िया ने कहा—महर्षि! मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आप मुझ पर दया कीजिए। यदि आप पर-स्त्री से समागम करना पाप समझते हैं तो मैं आपकी पत्नी बनने को तैयार हूँ। आप मेरा पाणिग्रहण कर लीजिए। फिर आपको तनिक भी दोष नहीं लग सकता। मैं स्वाधीन हूँ, स्वयं अपना दान कर सकती हूँ। अतएव आप मेरे साथ विवाह कर लीजिए। मैं आप पर अत्यन्त आसक्त हूँ।

अष्टावक्र ने कहा—तीनों लोकों में कोई भी स्त्री स्वाधीन नहीं है। तुम्हीं कैसे स्वाधीन हो गईं? बाल्यावस्था में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करते हैं। भला स्त्रियों को स्वतन्त्रता कहाँ?

बुढ़िया ने कहा—ब्रह्मन्, मैं अब तक कुँवारी हूँ अतएव मुझ पर अविश्वास न करके आप मेरे साथ विवाह कर लीजिए।

अब बुढ़िया सोलह वर्ष की सुन्दरी हो गई। उसे देखकर महर्षि ने कहा—भद्रे, जिस तरह तुम मुझ पर आसक्त हो उसी तरह मैं भी तुम पर लट्टू हो रहा हूँ। [किन्तु महर्षि वदान्य ने मेरी परीक्षा लेने के लिए मुझे यहाँ भेजा है, इसलिए मैं किस तरह तुम्हारा संसर्ग कर सकता हूँ ?]

अब अष्टावक्र सोचने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है, यह स्त्री पहले बिलकुल बुढ़िया थी, अब इसने दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनकर युवती का वेश धारण कर लिया है। आगे न मालूम कौन सा रूप धारण कर ले। कुछ भी हो, काम को दबाकर धैर्य के बल से मैं अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करूँगा। धर्म का उल्लङ्घन करना मुझे पसन्द नहीं। मैं धर्म के अनुसार महर्षि वदान्य की कन्या के साथ विवाह करूँगा।

२६

इक्कीसवाँ अध्याय

वृद्धारूपी उत्तर दिशा का स्त्रियों की चपलता दिखाकर अष्टावक्र को उपदेश देना। फिर अष्टावक्र का वहाँ से वापस आकर वदान्य की कन्या के साथ विवाह करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, महातेजस्वी अष्टावक्र के शाप से वह स्त्री डरती क्यों न थी और भगवान् अष्टावक्र ने ही किस प्रकार उससे पीछा छुड़ाया ?

भीष्म ने कहा कि बेटा, महर्षि अष्टावक्र ने उस स्त्री से पूछा कि सच बतलाओ, तुमने अपना रूप क्यों बदल लिया है। स्त्री ने कहा—महर्षि ! स्वर्ग, मृत्यु आदि सभी लोकों के स्त्री-पुरुषों में विषय-वासना पाई जाती है। मुझे सन्देह था कि आप पर-स्त्री-गमन करते हैं या नहीं। इसी से मैंने आपकी परीक्षा ली है। आपने अपने नियम का पालन करके सब लोकों को जीत लिया है। मैं उत्तर दिशा हूँ। आपको स्त्रियों की चपलता दिखाने के लिए मैंने बुढ़िया का रूप धारण कर लिया था। संसार में बुढ़ियों को भी कामदेव सताता है। आज ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता आप पर बहुत प्रसन्न हुए हैं। महात्मा वदान्य के भेजे हुए आप जिस काम के लिए यहाँ आये हैं वह काम मैंने, आपको उपदेश देकर, सिद्ध कर दिया। अब आप बे-धड़क जाकर महर्षि वदान्य की कन्या के साथ विवाह कीजिए। वह कन्या पुत्रवती होगी।

आपके पूछने से मैंने आपको उत्तर दिया। तीनों लोकों में किसी को भी ब्राह्मण की बात न
१० टालनी चाहिए। अब आप लौट जाइए। और कुछ पूछना हो तो पूछिए, मैं उत्तर दूँगी। महात्मा वदान्य ने आपके लिए मुझसे प्रार्थना की है। उन्हीं की बात रखने के लिए मैंने आपको यह उपदेश दिया है।

स्त्री-वेशधारिणी उत्तर दिशा की ये बातें सुनकर महात्मा अष्टावक्र, उससे अनुमति लेकर, घर लौट आये। आत्मीय जनों से मिल-भेटकर और थोड़ी देर विश्राम करके वे महर्षि वदान्य के आश्रम पर गये। उनको देखकर महर्षि वदान्य ने कहा—बेटा, तुम जिन स्थानों में गये हो और वहाँ जो कुछ देख आये हो वह सब मुझे बतलाओ। अष्टावक्र ने कहा—भगवन्, मैं आपकी आज्ञा से गन्धमादन पर्वत पर गया था। उस पर्वत के उत्तरीय भाग में मुझे एक देवी मिली थी। उसने आपका अभिप्राय मुझे बतला दिया। फिर मैं उससे अनुमति माँगकर लौट आया हूँ।

अष्टावक्र की बातें सुनकर महर्षि वदान्य ने कहा कि बेटा, तुम कन्यादान के पात्र हो। तुमको अपनी कन्या देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इस समय शुभ नक्षत्र है, तुम अभी मेरी कन्या का पाणिग्रहण करो। महर्षि वदान्य की आज्ञा पाकर धर्मात्मा अष्टावक्र ने विधिपूर्वक
१९ उनकी कन्या का पाणिग्रहण किया। फिर वे अपने आश्रम में जाकर सुख से रहने लगे।

बाईसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को दान के पात्र ब्राह्मणों के लक्षण बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किस प्रकार के ब्राह्मणों को दान देना चाहिए? ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि ही दान के उपयुक्त पात्र हैं या गृहस्थ आदि?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! ब्राह्मण में ब्रह्मचर्य आदि के चिह्न हों या न हों, जो अपने धर्म का पालन करता हो उसी को दान देना चाहिए। क्या गृहस्थ और क्या विरक्त, दोनों ही प्रकार के ब्राह्मण दान के पात्र हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मनुष्य यदि बिना ही श्रद्धा के ब्राह्मण को हव्य-कव्य दे और दान करे तो उसे क्या पाप लगता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, दुर्दान्त मनुष्य भी श्रद्धायुक्त होने से पवित्र हो जाता है इसलिए उसे पाप नहीं लगता।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, देव-कार्य करने के समय ब्राह्मणों की परीक्षा लेने का कोई नियम नहीं है; किन्तु पितृकार्य के समय उनकी परीक्षा क्यों ली जाती है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, देव-कार्य देवता की कृपा से सिद्ध होता है। उसमें ब्राह्मण के द्वारा सिद्धि नहीं होती। यजमान केवल देवताओं की कृपा के भरोसे देव-कार्य कराते हैं। किन्तु

पितृकार्य ब्राह्मण की कृपा के बिना सिद्ध नहीं होता, इसलिए पितृकार्य करने के पहले ब्राह्मणत्व की परीक्षा विशेष रूप से कर लेनी चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! जो अपरिचित, सम्बन्धी, विद्वान्, तपस्वी और यज्ञशील हैं, उन्हीं को क्यों पात्र मानना चाहिए ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! अपरिचित, सम्बन्धी, तपस्वी, अच्छे कुल में उत्पन्न यज्ञशील और विद्वान् मनुष्य दयालु, लज्जावान्, सरल और सत्यवादी होने से देव-कार्य और पितृकार्य के पात्र हो सकते हैं। इस विषय में पृथिवी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेय की सम्मति सुनो। एक बार पृथिवी आदि चारों ने इसी प्रसङ्ग में ब्राह्मणों के गुणों का वर्णन किया था। पृथिवी ने कहा १०
कि जैसे मिट्टी का ढेला समुद्र में फेंक देने से उसी दम डूब जाता है वैसे ही याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह करनेवाले ब्राह्मणों में सब दुष्कर्म लीन हो जाते हैं।

काश्यप ने कहा—जो ब्राह्मण सदाचारी (कर्मठ) नहीं होता वह साङ्ग वेद, सांख्य, पुराण और कुलीनता के द्वारा अपना उद्धार नहीं कर सकता।

अग्नि ने कहा—जो ब्राह्मण विद्वान् होकर अपनी विद्वत्ता का अभिमान करता है और जो अपनी विद्या के बल से दूसरों का यश नष्ट करता है वह धर्म से भ्रष्ट और मिथ्यावादी होता है। उसे कभी अक्षय लोक नहीं प्राप्त हो सकते।

मार्कण्डेय ने कहा—एक पलड़े में हज़ार अश्वमेध यज्ञ और दूसरे में सत्य तोला जाय तो कौन जाने हज़ार अश्वमेध सत्य के आधे हिस्से भर होंगे या नहीं। अतएव सत्यवादी होना ही ब्राह्मण के लिए श्रेयस्कर है। हे धर्मराज ! पृथिवी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेय इस प्रकार ब्राह्मणों के विषय में अपना-अपना मत प्रकट करके चले गये।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, यदि श्राद्ध में ब्रह्मचारी ब्राह्मण भोजन कर ले तो वह श्राद्ध दूषित तो नहीं हो जाता ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! जो ब्राह्मण बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर वेद-वेदाङ्ग का पारदर्शी हो चुका है वह यदि श्राद्ध के समय पितरों के उद्देश्य से दिया हुआ भोजन कर ले तो उसी का व्रत खण्डित हो जाता है, श्राद्ध में कोई दोष नहीं लगता।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, विद्वानों का कहना है कि धर्म के फल और साधन अनेक हैं अतएव आप यथार्थ धर्म का निर्णय करके विस्तार से उसका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! सत्य, क्रोध का त्याग, अहिंसा, दया, इन्द्रियनिग्रह और सरलता, ये धर्म के निश्चित लक्षण हैं। जो मनुष्य धर्म का ढिंढोरा तो पीटते हैं परन्तु उसका आचरण नहीं करते वे निरे पाखण्डी हैं। उन नीच मनुष्यों को सोना, गाय और घोड़ा दान करनेवाले मनुष्य नरकगामी होकर दस हज़ार वर्ष तक मरे हुए बैल-भैंसों का मांस खाते,

चण्डाल होते और राग-मोह आदि के वशीभूत दूसरों की भली-बुरी बातें प्रकट करनेवालों की
२२ विष्ठा खाते हैं। जो गृहस्थ पञ्चयज्ञ के समय अभ्यागत ब्रह्मचारी को भोजन नहीं देता वह अशुभ लोकों को जाता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! उत्तम ब्रह्मचर्य क्या है, धर्म का वास्तविक लक्षण क्या है और उत्तम पवित्रता किसे कहते हैं ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मदिरा-मांस का परित्याग करना ही श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है। वेद-प्रतिपादित धर्म ही श्रेष्ठ धर्म और विषयों का त्याग करना ही श्रेष्ठ पवित्रता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! मनुष्य को किस समय धर्म-कर्म, किस समय धन का उपार्जन और किस समय विषय-भोग करना चाहिए ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! पूर्वाह्न में धन का उपार्जन, मध्याह्न में धर्म-कर्म और उसके बाद विषय-भोग करना चाहिए। धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों में से किसी एक में फँस जाना गृहस्थ को उचित नहीं। ब्राह्मणों का सम्मान, बड़े-बूढ़ों का आदर और सब प्राणियों के साथ सरल व्यवहार करना चाहिए। गृहस्थ को सरलस्वभाव और मधुरभाषी होना चाहिए। धर्माधिकारी के सामने झूठ बोलना, राजा से चुग़ली करना, गुरु-जनों के साथ मिथ्या व्यवहार करना, अग्नि और वेद को त्यागना तथा ब्राह्मणों की निन्दा करना ब्रह्महत्या के समान पातक हैं। गाय
३१ और राजा को मारने से भ्रूणहत्या का पाप लगता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! ब्राह्मण किन गुणों से सम्पन्न होने पर सदाचारी कहलाता है, किस ब्राह्मण को धन देने से श्रेष्ठ फल मिलता है और किस प्रकार के ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! ब्राह्मण क्रोधहीन, धर्मपरायण, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होने से सदाचारी कहलाते हैं। उन ब्राह्मणों को तथा जो निरहङ्कार, सहनशील, लोक-हितैषी, मित्रता-परायण, लोभहीन, पवित्र, विद्वान्, लज्जावान्, सत्यवादी और कर्मनिष्ठ हों उनको दान देने से बड़ा फल होता है। जो ब्राह्मण चारों वेद और सम्पूर्ण वेदाङ्ग पढ़ते हैं और जो अध्ययन-यजन आदि षट्कर्म करते हैं वही भोजन कराने के पात्र हैं। गुणवान् ब्राह्मण को दान करने से दाता को हज़ार गुना पुण्य होता है। विद्वान्, सदाचारी और सुशील ब्राह्मण को दान देने से दाता के कुल का उद्धार हो जाता है। अतएव उपर्युक्त ब्राह्मणों को गाय, घोड़ा, धन और अनेक प्रकार की वस्तुओं का दान करना चाहिए। इस प्रकार के ब्राह्मणों को दान करने से अन्तकाल में पछताना नहीं पड़ता। गुणवान् सदाचारी ब्राह्मण यदि दूर देश में रहता हो तो वहाँ से
४१ बुलाकर उसका सम्मान करना चाहिए।

तेईसवाँ अध्याय

श्राद्ध में निमन्त्रण देने योग्य ब्राह्मणों के लक्षण

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! देवर्षियों ने श्राद्ध में देवताओं और पितरों के जो कर्म बतलाये हैं, मैं उनको सुनना चाहता हूँ।

भीष्म ने कहा—बेटा ! मङ्गलाचार-सम्पन्न और पवित्र होकर बड़े यत्न से पूर्वाह्न में देवताओं के कर्म, अपराह्न में पितरों के कर्म और मध्याह्न में मनुष्यों के कार्य करना चाहिए। कुसमय में दिया हुआ दान राक्षसीय भाग है। जिन भोज्य पदार्थों को कोई लाँघ गया हो या जिन्हें किसी ने चाट लिया हो या जिनके विषय में लड़ाई-झगड़ा हुआ हो अथवा जिन्हें रजस्वला स्त्री ने छू लिया हो वे राक्षसीय भाग हैं। जिन भोज्य पदार्थों को कुत्ते ने जुठार दिया हो या देख लिया हो; जो भोज्य पदार्थ बाल, कोड़ा, आँसू या छींक से दूषित हो गये हों और जो मन्त्र-क्रिया तथा आहुति दिये बिना श्राद्ध में लाये गये हों वे राक्षसीय भाग हैं। शस्त्रधारियों, दुराचारियों और शूद्रों को खाने के लिए दिये गये भोज्य पदार्थ राक्षसीय भाग हैं। देवता, अतिथि और बालक आदि को दिये बिना जो भोजन कर लिया जाता है वह भी राक्षसीय भोजन है। १०

महाराज, अब मैं बतलाता हूँ कि किन ब्राह्मणों को दान न देना चाहिए। जो ब्राह्मण विद्वान् होने पर भी अपनी करनी से पतित हो गया हो और जड़ या उन्मत्त हो उसे श्राद्ध का न्यौता न दे; सब प्रकार के कोढ़ी, नपुंसक, यक्ष्मा या मिरगी के रोगी, अन्धे, वैद्य, पुजारी और पाखण्डी को श्राद्ध का न्यौता न दे। सोमरस बेचनेवाले, गाने बजाने नाचनेवाले और खेल-तमाशा करनेवाले तथा बकवादी को भी श्राद्ध में भोजन न करावे। पहलवान, शूद्रों के पुरोहित, अध्यापक, दास या शूद्रा स्त्री के पति को भी श्राद्ध का न्यौता न दे। वेतनभोगी अध्यापक और शिष्य, वेद और स्मृति में बतलाये हुए कर्मों से हीन, मुर्दा ढोनेवाले, कर्मभ्रष्ट, अपरिचित, मुखिया और पुत्रिका-पूर्वपुत्र को (उस मनुष्य को जो अपने नाना के घर रहता हो और उसके नाना ने इस शर्त पर अपनी बेटी का ब्याह करके उसे प्राप्त किया हो कि इसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र को मैं ले लूँगा) श्राद्ध में २० भोजन न करावे। ऋणकर्ता, ब्याज लेनेवाले, गाय-बैल आदि के व्यवसायी, स्त्री की कमाई खाने-वाले, वेश्या के पति और सन्ध्या-वन्दन आदि से हीन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमन्त्रण न दे।

अब दान देनेवाले और लेनेवाले का वर्णन सुनो। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र करते हों, गाँव में रहते हों, चोरी न करते हों, अतिथि का सत्कार करते हों और त्रिकाल में गायत्री का जप करते हों उन्हीं को श्राद्ध का न्यौता दे। जो भिक्षाजीवी और क्रियावान् हों, जो हिंसा और पाखण्ड न करते हों तथा जो व्यर्थ तर्क-वितर्क न करते हों, वही श्राद्ध में निमन्त्रण पाने योग्य हैं। जो पहले धूर्तता, चोरी, जीवों का व्यवसाय और वाणिज्य करके फिर यज्ञ में सोमरस पीने लगे हों और जो दुष्कर्मों द्वारा धन उपार्जन करके फिर अतिथि-सत्कार कर रहे हों वे भी श्राद्ध में निमन्त्रण

पाने योग्य हैं। व्रतधारी, गुणवान्, गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण तथा कृषिजीवी और अच्छे कुल में उत्पन्न ब्राह्मण यदि क्षत्रियधर्म-परायण हो तो भी वह श्राद्ध में निमन्त्रित करने योग्य है। वेद बेचकर प्राप्त किया हुआ, दुष्कर्मों द्वारा उपार्जित और स्त्री का कमाया धन ब्राह्मणों को दान करना या उस धन से पितृकार्य करना उचित नहीं। श्राद्ध समाप्त होने पर जो ब्राह्मण स्वधा आदि का उच्चारण नहीं करते उन्हें भी अधर्म लगता है। योग्य ब्राह्मण, दही, घी, सोमरस और जङ्गली पशु का मांस प्राप्त होने पर ही श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध समाप्त होने पर ब्राह्मण के यहाँ 'स्वधा', क्षत्रिय के यहाँ 'प्रीयन्ताम्', वैश्य के यहाँ 'अक्षय्य' और शूद्र के यहाँ 'स्वस्ति' का उच्चारण करना चाहिए। देव-कार्य करते समय ब्राह्मण के यहाँ ओंकार समेत पुण्याहवाचन, क्षत्रिय के यहाँ ओंकारहीन पुण्याहवाचन और वैश्य के यहाँ 'प्रीयन्ताम्' शब्द का प्रयोग किया जाय। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन्हीं तीन वर्णों के जातकर्म आदि सब काम मन्त्र पढ़कर होते हैं। यज्ञोपवीत के समय ब्राह्मण को मूँज की मेखला, क्षत्रिय को ज्या की और वैश्य को बल्वज (एक प्रकार की घास) की मेखला पहननी चाहिए। ब्राह्मण को झूठ बोलने से जितना पाप लगता है, उसका चौगुना क्षत्रिय को और अठगुना वैश्य को लगता है। पहले किसी ब्राह्मण के यहाँ का निमन्त्रण पाकर ब्राह्मण यदि दूसरे के यहाँ चला जावे तो उसे वृथा जीवहिंसा का पूरा पाप लगता है और क्षत्रिय या वैश्य के यहाँ का निमन्त्रण पाकर अन्यत्र चला जावे तो वृथा जीवहिंसा का आधा पाप लगता है। जो ब्राह्मण स्नान किये बिना ही अथवा अशौच की दशा में लोभवश देव-कार्य या पितृकार्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के यहाँ भोजन करते हैं; जो तीर्थ-यात्रा या दूसरे किसी काम के बहाने किसी से धन माँगते हैं; जो वेद-व्रत-परायण नहीं हैं, और जो शास्त्र के अनुसार श्राद्ध में नहीं परोसते, उन सबको गोदान लेने पर झूठ बोलनेवाले के समान पाप लगता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए किसे दान देने से श्रेष्ठ फल मिलता है ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! जिनकी स्त्रियाँ, वर्षा की राह देखनेवाले किसानों की तरह, स्वामी के भोजन से बचे हुए अन्न की प्रतीक्षा करती हैं उनको अवश्य भोजन कराना चाहिए। जो सच्चरित्र दुर्बल और दरिद्र ब्राह्मण माँगने के लिए आवें, जो बड़ी भक्ति से शरण में आवें और आवश्यकता पड़ने पर ही धन की प्रार्थना करें उन्हें दान करने से बड़ा पुण्य होता है; जो चोरों और शत्रुओं के डर से भागकर भोजन करने की इच्छा से आवें, जो अत्यन्त दरिद्रता के कारण दरिद्र ब्राह्मण से भी भोजन माँगें तथा जो विप्लव के कारण स्त्री और सर्वस्व छिन जाने पर धन के लिए शरण में आवें उनको दान देने से बड़ा पुण्य होता है; जो व्रतधारी ज्ञानवान् ब्राह्मण व्रत आदि का पालन करने के लिए धन माँगने आवें, जो पाखण्डी न हों, जो दुर्बल और

बिलकुल निर्धन हों तथा जो पराक्रमी अत्याचारियों द्वारा सर्वस्व छिन जाने के कारण अन्न माँगें और जो तपस्वियों के पास भीख माँगने जावें, उन्हें—देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए—दान करने से बड़ा फल होता है।

बेटा, यह मैंने दान का श्रेष्ठ फल बतला दिया। अब उन कर्मों का वर्णन सुनो जिनसे मनुष्यों को नरक में गिरना पड़ता है। जो गुरु का हित करने अथवा किसी भय से बचने के अतिरिक्त अन्य कामों के लिए झूठ बोले, जो पर-स्त्री-हरण और पर-स्त्री-गमन करे या कुटना ६०
हो, जो दूसरों का धन नष्ट करे और दूसरों के दोष प्रकट करे उसे नरक में गिरना पड़ता है; जो प्याऊ पुल सभा और घर आदि का नाश करे, जो बूढ़ी-अनाथ स्त्रियों और लड़कियों को ठगे, जो दूसरों की जीविका स्त्री मित्रता आशा और किसी का घर नष्ट करे तथा जो दूसरों में भेद डालता है उसे नरक में गिरना पड़ता है; जो दूसरों के भरोसे निर्वाह करता हो और जो कृतघ्न, वेद का विरोधी, सज्जनों से द्वेष रखनेवाला, नियमहीन, पाप-कर्मों द्वारा पतित, दुराचारी, अनुचित जीविका करनेवाला, जुआरी और प्राणियों की हिंसा करनेवाला हो उसे नरक में गिरना पड़ता है; जो आशाग्रस्त निर्दिष्ट लाभाकांक्षी परिश्रमी नौकर को धूर्तता से उसके मालिक द्वारा निकलवा देते हैं उन्हें नरक में गिरना पड़ता है; जो बिना आहुति दिये और स्त्री, पोष्यवर्ग तथा ७०
अतिथि को बिना भोजन दिये स्वयं भोजन कर लेता हो उसको नरक में जाना पड़ता है; जो देवकार्य और पितृकार्य नहीं करता, जो वेद बेचता है, जो वेदों की निन्दा करता और वेदों को लिखता है, जो चारों आश्रमों से हीन और वेदाचारहीन होकर निषिद्ध कर्म द्वारा जीविका करता है वह नरकगामी होता है; जो बाल विष और दूध बेचता है, जो गाय ब्राह्मण और कन्या के कामों में विघ्न डालता है तथा जो शल्य, शस्त्र और धनुष बनाता और बेचता है वह नरकगामी है; जो पत्थर या काँटे डालकर और खोद-खादकर रास्ता ख़राब करे, जो बिना किसी अपराध के अध्यापक सेवक और भक्त मनुष्यों को त्याग दे, जो बैलों को बधिया करे या उनकी नाक छेदे और जो पशुओं को बाँध रक्खे वह नरकगामी है; जो राजा प्रजा का पालन न करके उससे ज़बरदस्ती छठा हिस्सा ले और धनवान् होने पर भी दान न करे, जो अपना काम सिद्ध हो ८०
जाने पर क्षमावान् जितेन्द्रिय समझदार पुराने नौकरों को अलग कर दे और जो बालक-बूढ़े तथा सेवकों को भोजन न देकर पहले स्वयं भोजन कर ले वह नरकगामी है।

हे धर्मराज! जिन कामों के करने से मनुष्यों को नरक में जाना पड़ता है उनका वर्णन कर दिया; अब उन कर्मों को सुनो जिनके करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। देव-कार्य में ब्राह्मणों का अपमान करने से पुत्र और पशुओं का नाश हो जाता है, अतएव ब्राह्मणों का कभी अपमान न करे। जो जन्म भर ब्राह्मणों का अपमान नहीं करते, जो दान तप और सत्य द्वारा अपने धर्म का पालन करते हैं, जो गुरु की सेवा और तपस्या करके विद्या प्राप्त करते हैं तथा दान नहीं लेते

उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है; जो सब मनुष्यों को भय पाप विघ्न दरिद्रता और व्याधि से बचाते हैं; जो क्षमावान्, धैर्यवान्, धर्म-कर्म में उत्साही और सदाचारी हैं; जो मदिरा मांस और पर-स्त्री-
९० गमन में आसक्त नहीं होते; जो कुल, आश्रम और गाँव-नगर आदि की स्थापना करते हैं तथा जो अन्न वस्त्र आभूषण और धन आदि देकर दूसरों के विवाह आदि कामों में सहायता करते हैं उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है; जो हिंसा नहीं करते, सहनशील होते और सबको आश्रय देते हैं, जो माता-पिता की सेवा करते और भाइयों से स्नेह करते हैं, जो धनवान् बलवान् और जवान होने पर भी धैर्यवान् और जितेन्द्रिय होते हैं, जो अपराधी को भी स्नेह की दृष्टि से देखते हैं तथा जिनका स्वभाव मृदु होता है और ऐसे ही मनुष्यों से जो प्रेम करते हैं उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है; जो सेवा करके दूसरों को सुख देने का यत्न करते हैं, जो अनेक मनुष्यों को भोजन और धन देते तथा उनकी रक्षा करते हैं, जो माँगनेवालों को गाय घोड़ा सोना सवारी और विवाह के योग्य अलङ्कार वस्त्र और दास-दासी देते हैं तथा जो गोशाला, धर्मशाला, बगीचा, कुआँ, सभा, उद-
१०० पान और प्राचीर बनवाते हैं उन्हें स्वर्गलोक मिलता है; जो खेत और घर देते हैं, जो रस बीज और अन्न आदि उत्पन्न करके रखते हैं और जो श्रेष्ठ या निकृष्ट किसी कुल में उत्पन्न होकर अनेक पुत्र पैदा करके दयावान्, शान्तस्वभाव और दीर्घायु होते हैं वे शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को जाते हैं। हे धर्मराज, यह मैंने परलोक में कल्याण करनेवाले देव-कार्य और पितृकार्य का वर्णन किया
१०३ तथा प्राचीन ऋषियों के बतलाये हुए दान-धर्म का विशेष रूप से निरूपण किया है।

चौबीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को, हिंसा न करने पर भी, ब्रह्महत्या के कारण-स्वरूप कर्मों का वर्णन सुनाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, ब्राह्मण के प्राण लिये बिना भी किन कामों के करने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है?

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, मैंने एक बार महर्षि व्यास को बुलाकर उनसे जो प्रश्न किया था और उन्होंने मुझे जो उत्तर दिया था वह मैं तुमको सुनाये देता हूँ। मैंने पूछा—भगवन्, आप महर्षि वसिष्ठ के प्रपौत्र हैं; आप यह बतलाइए कि ब्राह्मण का वध न करने पर भी किस कर्म के करने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है। उन्होंने कहा—भीष्म, जो मनुष्य गुणवान् ब्राह्मण को भिक्षा देने के लिए बुलाकर फिर उसे ख़ाली लौटा देता है और जो दुष्ट मनुष्य विद्वान् ब्राह्मण की जीविका नष्ट करता है उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। जो मनुष्य प्यासे गाय-बैलों को पानी नहीं पीने देता और जो नराधम वेसमझे-बूझे वेदों और महर्षि-प्रणीत शास्त्रों को दूषित करता है उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। जो मनुष्य अपनी कन्या का विवाह अनुरूप वर के साथ नहीं करता,

और जो अधर्मी मनुष्य ब्राह्मण को अकारण मर्मभेदी दुःख पहुँचाता है उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। जो मनुष्य अन्धे, गूँगे और लूले-लँगड़े आदि का सर्वस्व छीन लेता है और जो नराधम वन, आश्रम, नगर और गाँव में आग लगा देता है उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है। १० १२

पच्चीसवाँ अध्याय

तीर्थों के नाम और उनका माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! तीर्थों का दर्शन करना, उनमें स्नान करना और तीर्थों का माहात्म्य सुनना श्रेष्ठ बतलाया गया है, अतएव आप तीर्थों का वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, महर्षि अङ्गिरा ने तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन किया है। उसे तुम एकाग्र होकर सुनो। उसके सुनने से तुम्हें बड़ा पुण्य होगा। एक बार महर्षि गौतम ने अङ्गिरा के आश्रम में जाकर उनसे पूछा—भगवन्, तीर्थों की पवित्रता के विषय में मुझे सन्देह है। तीर्थ पवित्र हैं या नहीं, और पवित्र हैं तो किन-किन तीर्थों में स्नान करने से परलोक में क्या-क्या फल मिलता है, इसका वर्णन कीजिए।

अङ्गिरा ने कहा—महर्षि, तीर्थ तो सभी परम पवित्र हैं। मनुष्य उपवास करके चन्द्रभागा और वितस्ता नदी में एक सप्ताह स्नान करने से सब पापों से छूटकर मुनि के समान पवित्र हो जाता है। काश्मीर देश की छोटी और बड़ी जितनी नदियाँ सिन्धु में गिरती हैं उनमें स्नान करने से मनुष्य सच्चरित्र होता और अन्त में स्वर्गलोक को जाता है। पुष्कर, प्रभास, नैमिष, सागरोदक, देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिन्दु में स्नान करने से मनुष्य स्वर्गलोक में निवास करता है और अप्सराएँ स्तुति करके उसे जगाती हैं। हिरण्यबिन्दु में स्नान करके पवित्र होकर उसको प्रणाम करने तथा कुशेशय और देवन्त तीर्थ में जाने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य तीन रात्रि उपवास करके गन्धमादन पर्वत के समीप इन्द्रतोया, करतोया और कुरङ्ग १० तीर्थ में स्नान करके अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। हरद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत और कनखल तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोक को जाता है। ब्रह्मचारी, क्रोधहीन, सत्यप्रतिज्ञ और हिंसाहीन होकर सलिलह्रद तीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। जिस स्थान पर भागीरथी गङ्गा उत्तर दिशा को बहती हैं उस स्थान का नाम महादेव का त्रिस्थान है; जो व्यक्ति उस त्रिस्थान पर एक महीना उपवास करके स्नान करता है उसे देवताओं का साक्षात्कार होता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्ग में स्नान करके पितरों का तर्पण करने से मनुष्य फिर संसार में जन्म लेकर अमृत का आस्वादन करता है। जो मनुष्य अग्निहोत्र करके, पवित्र होकर, एक महीना उपवासपूर्वक महाश्रम तीर्थ में स्नान करता है वह सिद्ध हो जाता है। भृगुतुङ्ग प्रदेश में लोभहीन होकर महाह्रद तीर्थ में स्नान करके तीन

रात्रि उपवास करने से ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिलता है। कन्या-कूप में स्नान और बलाका
२० तीर्थ में तर्पण करने से देवलोक में कीर्ति होती है। देविका कुण्ड, सुन्दरिका कुण्ड और अश्विनी तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य परलोक में रूपवान् और तेजस्वी होता है। महागङ्गा और कृत्तिकाङ्गारक तीर्थ में स्नान करके एक पक्ष उपवास करने पर मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोक को जाता है। [illegible] और वैमानिक तीर्थ में स्नान करनेवाला, कामचारी होकर, अप्सराओं के घरों में पूजित होता है। मनुष्य ब्रह्मचारी और क्रोधहीन होकर कालिकाश्रम में जाकर तीन रात तक विपाशा तीर्थ में तर्पण करने से सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाता है। कृत्तिकाश्रम तीर्थ में स्नान करके पितरों का तर्पण करे और महादेवजी को प्रसन्न करे तो महादेवजी की प्रसन्नता से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोक को जाता है। महापुर तीर्थ में स्नान और तीन रात्रि उपवास करने से स्थावर-जङ्गम किसी प्राणी का भय नहीं रह जाता। देवदारुवन तीर्थ में स्नान और पितरों का तर्पण करके सात रात्रि निवास करने से स्वर्गलोक मिलता है। शरस्तम्ब, कुशस्तम्ब और द्रोणशर्मपद तीर्थ के झरने में स्नान करने से सेवा के लिए अप्सराएँ मिलती हैं। चित्रकूट, जनस्थान और मन्दाकिनी तीर्थ में स्नानपूर्वक उपवास करने से राजलक्ष्मी प्राप्त होती है। श्यामाश्रम तीर्थ में जाकर स्नान, निवास और एक पक्ष उपवास करने से गन्धर्वलोक का सुख प्राप्त होता है। कौशिकी तीर्थ में लोभ-
३१ हीन होकर इक्कीस दिन केवल वायु का भक्षण करने से स्वर्गलोक मिलता है। मतङ्गवापी, अनालम्ब, अन्धक और सनातन तीर्थ में स्नान करने से एक रात में सिद्धि प्राप्त होती है। नैमिष और स्वर्ग तीर्थ में जितेन्द्रिय होकर स्नान और एक मास पितरों का तर्पण करने से नरमेध यज्ञ का फल मिलता है। गङ्गाह्रद और उत्पलावन तीर्थ में स्नान और एक मास पितरों का तर्पण करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। गङ्गा-यमुना के सङ्गम और कालञ्जरगिरि तीर्थ में स्नान तथा एक महीना पितरों का तर्पण करने से दस अश्वमेधों का फल मिलता है। षष्टिह्रद तीर्थ में स्नान करने से अन्नदान से भी अधिक फल मिलता है। माघी (अमावस ?) में प्रयाग में तीन करोड़ दस हज़ार तीर्थ एकत्र होते हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर माघ महीने भर प्रयाग में स्नान करता है वह निष्पाप होकर स्वर्गलोक को जाता है। मरुद्गण तीर्थ, पितृगण के आश्रम और वैवस्वत तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य, तीर्थ के समान, पवित्र हो जाता है। ब्रह्मसर और भागीरथी तीर्थ में स्नान करके पितरों का तर्पण और एक मास उपवास करने से चन्द्रलोक प्राप्त
४० होता है। उत्पातक तीर्थ में स्नान और अष्टावक्र तीर्थ में तर्पण करके बारह दिन निराहार व्रत करने से नरमेध यज्ञ का फल मिलता है। अश्मपृष्ठ (गयाजी में प्रेतशिला) में जाने से पहली, निरविन्द पर्वत पर जाने से दूसरी और कौञ्चपदी में जाने से तीसरी ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिलता है। कलविङ्क तीर्थ में स्नान करने से जल-सम्बन्धी बातों की अभिज्ञता हो जाती है। अग्निपुर में स्नान करने से अग्निकन्यापुर में निवास होता है। करवीरपुर में स्नान और

विशाला तीर्थ में तर्पण करने से तथा देवह्रद में स्नान करने से ब्रह्मपद मिलता है। आवर्त्तनन्दा और महानन्दा में जाने से नन्दनवन में अप्सराओं के साथ सुख-सम्भोग प्राप्त होता है। कार्त्तिक की पूर्णिमा को उर्वशी तीर्थ में जाने और नियमानुसार लौहित्य तीर्थ में स्नान करने से पुण्डरीक यज्ञ का फल होता है। रामकुण्ड में स्नान और विपाशा तीर्थ में तर्पण करके बारह दिन निराहार रहने से सब पाप छूट जाते हैं। शुद्ध हृदय से महाह्रद में स्नान करके एक महीना निराहार रहने से, जमदग्नि के समान, सद्गति मिलती है। दृढ़व्रत और हिंसाहीन होकर विन्ध्याचल में एक मास तपस्या करने से निस्सन्देह सिद्धि मिलती है। नर्मदा और शूर्पारक के जल में स्नान करके एक पक्ष उपवास करने से राजा के घर जन्म होता है। सावधानी से संयतचित्त होकर तीन महीने ५०
जम्बूमार्ग की यात्रा करने से एक ही दिन में सिद्धि मिलती है। कोकामुख में स्नान करने, अञ्जलि-काश्रम में जाने और कौपीन पहनकर शाक भक्षण करने से दस कुमारी तीर्थों का फल मिलता है। जो कन्याह्रद के किनारे निवास करता है वह निस्सन्देह स्वर्गलोक को जाता है। जो अमावास्या को प्रभास तीर्थ में स्नान करता है उसे सिद्धि और अमरत्व की प्राप्ति होती है। उज्जानक तीर्थ, आर्ष्टिषेण और पिङ्गा के आश्रम में स्नान करने से सब पाप छूट जाते हैं। जो तीन रात्रि उपवास करके कुल्या तीर्थ में स्नान और अघमर्षण मन्त्र का जप करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। पिण्डारक तीर्थ में स्नान करके एक रात्रि निवास करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। जो धर्मारण्य से शोभित ब्राह्म-सरोवर में स्नान करता है उसे पुण्डरीक यज्ञ का फल मिलता है। जितेन्द्रिय होकर एक महीने तक मैनाक पर्वत के तीर्थ में स्नान और सन्ध्योपासन करने से सौ यज्ञों का फल मिलता है। सौ योजन चलकर कालोदक, नन्दिकुण्ड और उत्तर मानस की यात्रा करने से भ्रूणहत्या के पाप से छुटकारा मिलता है। एक बार नन्दीश्वर की मूर्ति का दर्शन करने ६०
से पाप का लेश नहीं रहता। स्वर्गमार्ग तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। हिमालय पर्वत अति पवित्र, सब रत्नों की खानि, सिद्ध-चारण-सेवित और भगवान् महादेव का ससुर है। जो वेदज्ञ ब्राह्मण शरीर को असार समझकर इस पर्वत पर जाकर, मुनियों और देवताओं की पूजा करके, वहीं शरीर का त्याग कर देता है वह सिद्ध होकर ब्रह्मलोक को जाता है। जो काम, क्रोध और लोभ का त्याग करके तीर्थस्थान में निवास करता है उसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। जो तीर्थ बहुत दुर्गम हैं उनका ध्यान मन में करना चाहिए। तीर्थ-यात्रा से बढ़कर पवित्र और स्वर्ग देनेवाला दूसरा कोई काम नहीं है। तीर्थ-यात्रा की कथा ब्राह्मण, साधु, मित्र और शिष्य से कहनी चाहिए। यह तीर्थ-यात्रा की कथा महर्षि काश्यप ने अङ्गिरा से और अङ्गिरा ने गौतम से कही थी। यह कथा महर्षियों के पढ़ने योग्य, गोपनीय और परम पवित्र है। प्रतिदिन इसका पाठ करने से मनुष्य पवित्र होकर स्वर्गलोक को जाता है। जो मनुष्य अङ्गिरा की कही हुई इस तीर्थ-यात्रा का माहात्म्य सुनता है वह उत्तम कुल में जन्म पाता और जातिस्मर होता है। ७१

छब्बीसवाँ अध्याय

महर्षि सिद्ध और शिलवृत्ति का संवाद-स्वरूप गङ्गा माहात्म्य

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! जिस समय भाइयों समेत धर्मात्मा युधिष्ठिर ने बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, ब्रह्मा के समान क्षमावान्, इन्द्र के समान पराक्रमी, सूर्य के समान तेजस्वी, शरशय्या पर पड़े हुए महात्मा भीष्म से तीर्थों का माहात्म्य पूछा था उसी समय अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रमति, दम, बृहस्पति, शुक्राचार्य, व्यास, च्यवन, काश्यप, ध्रुव, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीत, त्रित, स्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, नारद, पर्वत, वसुधन्वा, एकत, नितम्भू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, परशुराम और कच आदि महर्षि भीष्म को देखने के लिए वहाँ आये थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने और उनके भाइयों ने सब महर्षियों का
१० यथोचित सम्मान किया। फिर महर्षिगण महात्मा भीष्म से बातें करने लगे। महर्षियों के मधुर वचन सुनकर महात्मा भीष्म ने अपने को मानों स्वर्ग में विद्यमान समझा। इस कारण प्रसन्नता से उनका शरीर पुलकित हो गया। भीष्म से थोड़ी देर बातें करके और उनसे तथा पाण्डवों से पूछकर महर्षिगण अन्तर्धान हो गये। महर्षियों के चले जाने पर पाण्डवों ने बार-बार उनकी स्तुति करके उनको प्रणाम किया। उनकी तपस्या के प्रभाव से सब दिशाओं को प्रकाशित देखकर पाण्डवों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

अब भाइयों समेत धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भीष्म को प्रणाम करके पूछा—पितामह ! कौन से देश, राष्ट्र, आश्रम, नदियाँ और पर्वत श्रेष्ठ हैं ?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में शिलवृत्ति और सिद्ध का इतिहास सुनाता हूँ। एक
२० बार एक सिद्ध महर्षि पर्यटन करते-करते एक शिलवृत्ति ब्राह्मण के घर पहुँचे। महात्मा शिलवृत्ति ने महर्षि को अपने घर आया देखकर उनका विधिपूर्वक सत्कार किया। सिद्ध महर्षि उनके यहाँ बड़े सुख से एक रात ठहरे। महात्मा शिलवृत्ति प्रातःकाल उठकर सन्ध्योपासन आदि नित्यक्रिया करके, पवित्र होकर, तत्त्वदर्शी सिद्ध महर्षि के पास गये और उनसे वेद तथा उपनिषद् के विषय की बातचीत करने लगे। शिलवृत्ति ने सिद्ध महर्षि से पूछा—भगवन् ! कौन से देश, राष्ट्र, आश्रम, पर्वत और नदियाँ परम पवित्र हैं ?

महर्षि ने शिलवृत्ति से कहा—ब्रह्मन् ! भागीरथी गङ्गा जिस देश, राज्य, आश्रम और पर्वत में होकर बही हैं वे सब परम पवित्र हैं। भगवती भागीरथी की आराधना करने से मनुष्यों को जो गति मिलती है वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और दान करने से भी नहीं मिल सकती। जो गङ्गाजी में स्नान करता है उसे कभी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होना पड़ता। जिसके सब काम गङ्गाजल से होते हैं वह अन्तकाल में स्वर्ग का सुख भोगता है। जो अपनी नई उम्र में अनेक पाप करके

फिर गङ्गाजी की शरण में आ जाता है वह सब पापों से छूटकर श्रेष्ठ गति पाता है। भागीरथी के जल में स्नान करने से जैसा पुण्य होता है वैसा पुण्य सैकड़ों यज्ञ करने से भी नहीं हो सकता। गङ्गाजल में जिसकी हड्डियाँ जितने वर्ष तक पड़ी रहती हैं वह उतने ही हज़ार वर्ष स्वर्ग में निवास करता है। सूर्य जिस प्रकार उदय के समय घोर अन्धकार को दूर करके शोभित होते हैं उसी प्रकार मनुष्य गङ्गाजल के प्रभाव से पापहीन होकर पवित्र हो जाता है। जिस प्रदेश में गङ्गाजी नहीं बहतीं वह प्रदेश चन्द्रमा के बिना रात, फूल के बिना वृक्ष, धर्मभ्रष्ट वर्ण और आश्रम, सोमरस से हीन यज्ञ, सूर्य के बिना आकाश, पर्वतहीन पृथिवी और वायुशून्य आकाश के समान शोभा-हीन रहता है। गङ्गाजल में तर्पण किये जाने से तीनों लोकों के प्राणी सन्तुष्ट होते हैं। सूर्य की किरणों से तपा हुआ गङ्गाजल गाय के गोबर से निकले हुए जौ से बढ़कर पवित्र है। हज़ार चान्द्रायण व्रत भी गङ्गाजल पीने के समान फल दे सकते हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। गङ्गाजी में एक महीना एक पैर पर खड़े रहने से जो फल मिलता है वह एक हज़ार युग तक एक पैर पर खड़े रहने से भी शायद ही मिले। जो मनुष्य दस हज़ार युग तक वृक्ष में उलटा लटका रहे और जो मनुष्य गङ्गा-किनारे इच्छानुसार निवास करे, उन दोनों में गङ्गा-किनारे रहनेवाला मनुष्य पूर्वोक्त कठिन तपस्वी की अपेक्षा अधिक फल पाता है। जैसे आग में रूई डाल देने से जल जाती है वैसे ही गङ्गाजी में स्नान करने से मनुष्यों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति दुःख और शोक से पीड़ित होकर किसी का आश्रय लेना चाहता है उसके लिए भगवती भागीरथी ही श्रेष्ठ आश्रय हैं। जिस तरह पक्षिराज गरुड़ को देखकर साँप विषहीन हो जाता है उसी तरह गङ्गाजी के दर्शन करने से मनुष्य के सब पाप छूट जाते हैं। जो मनुष्य महाअधर्मी और मर्यादाहीन है उसे गङ्गाजी ही मर्यादा, आश्रय और शुभ फल देनेवाली हैं। जो नराधम अनेक पाप करके नरक में गिर रहा हो वह भागीरथी का आश्रय लेने से सब पापों से छूट जाता है। जो महात्मा सदा भागीरथी की सेवा करते हैं वे परलोक में इन्द्र आदि देवताओं और महर्षियों के समान होते हैं। जो मनुष्य नम्रता और सदाचार से हीन होकर दुष्कर्म करते रहते हैं वे भी भागीरथी का आश्रय लेने से सदाचारी हो जाते हैं। जिस प्रकार देवताओं को अमृत, पितरों को स्वधा और नागों को सुधा सन्तुष्ट करती है उसी प्रकार मनुष्यों को गङ्गाजल प्रसन्न करता है। बालक जैसे भूखा होने पर मा के पास जाता है वैसे ही मनुष्य, कल्याण की इच्छा से, भागीरथी की सेवा करता है। जैसे ब्रह्मलोक सब लोकों से श्रेष्ठ है वैसे ही स्नान करनेवाले मनुष्यों के लिए भागी-रथी सब नदियों से श्रेष्ठ हैं। पृथिवी और गाय जिस प्रकार देवताओं और गन्धर्वों की जीविका हैं उसी प्रकार गङ्गाजी संसार के सब प्राणियों का जीवनाधार समझी जाती हैं। जिस तरह सूर्य और चन्द्रमा में स्थित अमृत को देवता पीते हैं उसी तरह मनुष्य गङ्गाजल पीते हैं। गङ्गाजी की बालू लेकर शरीर में लगाने से मनुष्य देवता के समान पवित्र हो जाता है। गङ्गाजी की

मिट्टी मस्तक में लगाने से शरीर सूर्य के समान निर्मल हो जाता है। गङ्गाजी के ऊपर से आती हुई हवा जिसके शरीर को स्पर्श करती है उसके सब पाप दूर हो जाते हैं। मनुष्य दुःख से व्याकुल होकर यदि गङ्गाजी के दर्शन करे तो उसी दम उसके सब दुःख छूट जावें। भागीरथी हंस और चकवा आदि पक्षियों के मनोहर शब्दों से गन्धर्वों के गान को और अपने ऊँचे किनारों से पर्वतों को परास्त करती हैं। हंस आदि अनेक पक्षियों और गायों के झुण्ड से परिपूर्ण गङ्गा-तट देखने से स्वर्ग भी विस्मृत हो जाता है। गङ्गा-किनारे निवास करने से जैसी प्रसन्नता होती है वैसी प्रसन्नता स्वर्गलोक में रहकर अनेक सुख भोगने पर भी नहीं
६० होती। मनुष्य मन-वचन-कर्म से कितने ही पाप करने पर भी गङ्गाजी के दर्शन करते ही पवित्र हो जाता है। जो मनुष्य गङ्गाजी में स्नान और उनके दर्शन करता है उसकी पहले की और बाद की सात पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। जो मनुष्य गङ्गाजी का माहात्म्य सुनता, उनके दर्शन करता, गङ्गा-स्नान करता तथा गङ्गाजल पीता है, उसके दोनों कुलों को भगवती भागीरथी पवित्र करती हैं। गङ्गाजी का दर्शन, गङ्गाजल का स्पर्श और पान तथा गङ्गाजी का नाम स्मरण करके सैकड़ों पापी मुक्त हो जाते हैं। जो अपना जीवन, जन्म और अपनी विद्या सफल करना चाहे उसे गङ्गातट पर जाकर देवताओं और पितरों का तर्पण करना चाहिए। गङ्गाजी की शरण में जाने से जैसा फल मिलता है वैसा फल पुत्र, धन और यज्ञ के द्वारा मिलना सम्भव नहीं। जो समर्थ होकर भी मङ्गलदायिनी पवित्र जलवाली गङ्गाजी के दर्शन नहीं करता उसमें और अपाहिज, मुर्दे, अन्धे मनुष्यों में कोई भेद नहीं। त्रिकालज्ञ महर्षि और इन्द्र आदि देवता जिनकी उपासना करते हैं; गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी जिनका आश्रय लेते हैं; उन भागीरथी का आश्रय कौन न लेगा? जो मनुष्य मरते समय गङ्गाजी का
७० स्मरण करता है उसे निस्सन्देह श्रेष्ठ गति मिलती है। जन्म भर गङ्गाजी का सेवन करने से राजा का, ब्रह्महत्या आदि पापों का और बाघ आदि हिंसक जीवों का भय नहीं रहता। पुण्यदायिनी गङ्गाजी के आकाश से गिरने पर महादेवजी ने उन्हें अपने सिर पर धारण किया था। देवता सदा गङ्गाजी की उपासना करते हैं। त्रिपथगामिनी गङ्गाजी के द्वारा तीनों लोकों की शोभा है। जो गङ्गाजल का सेवन करता है वह निस्सन्देह कृतार्थ हो जाता है। जैसे देवताओं में सूर्य, पितरों में चन्द्रमा और मनुष्यों में राजा श्रेष्ठ है वैसे ही नदियों में गङ्गाजी श्रेष्ठ हैं। गङ्गाजी के न मिलने से मनुष्यों को जैसा दुःख होता है वैसा दुःख पिता, माता, स्त्री, पुत्र और धन का नाश होने पर भी नहीं मिलता। वन के देखने और पुत्र, धन आदि अभीष्ट विषयों के मिलने से भी गङ्गाजी के दर्शन करने के समान प्रसन्नता नहीं होती। गङ्गाजी पूर्ण चन्द्रमा के समान आँखों को तृप्त करती हैं। जो मनुष्य श्रद्धा के साथ सदा गङ्गाजी में स्नान आदि करता है उस पर वे निस्सन्देह प्रसन्न होती हैं। आकाशचारी और पृथिवी पर स्थित जीव तथा देवता

आदि सबके लिए गङ्गास्नान करना अच्छा है। कपिल के क्रोधाग्नि में भस्म हुए सगर के पुत्रों को स्वर्गलोक पहुँचानेवाली गङ्गाजी की कीर्ति संसार में विख्यात है। वायु के वेग से ८०
लहराती हुई भागीरथी की पवित्र तरंगों में जो स्नान करते हैं वे सूर्य के समान तेजस्वी हो जाते हैं। जो महात्मा वेगवती गङ्गाजी में शरीर का त्याग करते हैं वे निस्सन्देह स्वर्गलोक को जाते हैं। इन्द्र आदि देवताओं, महर्षियों और अन्यान्य मनुष्यों से सेवित विश्वरूपा गङ्गा अन्धे, गूँगे और दरिद्र मनुष्यों की सब कामनाएँ पूरी करती हैं। जिन पुण्यात्माओं ने त्रिलोक-पावनी, त्रिपथगामिनी, कर्म-फलदायिनी अन्नप्रदा गङ्गाजी का आश्रय लिया वे सब स्वर्गलोक को गये हैं। जो मनुष्य गङ्गा-किनारे निवास करते, गङ्गाजल पीते और गङ्गाजी के दर्शन करते हैं उनको देवता इस लोक में सुख और परलोक में श्रेष्ठ गति देते हैं। जो मनुष्य पापियों का उद्धार करनेवाली, सब प्राणियों का आश्रय, विष्णु से उत्पन्न भागीरथी के किनारे रहते हैं उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है। जो गङ्गाजी पृथिवी, आकाश, पाताल और सब दिशाओं में प्रसिद्ध हैं उनके जल का सेवन करने से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो मनुष्य गङ्गाजी के दर्शन करते हैं और दूसरों को भी कराते हैं उनको कार्त्तिकेय की माता, सुवर्णगर्भा, धर्म अर्थ-काम देनेवाली भागीरथी मोक्षपद देती हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल गङ्गा-स्नान करता है उसे धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। पृथिवी और आकाश की अलङ्कार-स्वरूपा, हिमालय की कन्या, शिव की पत्नी गङ्गाजी तीनों लोकों को पवित्र करती हैं। अनेक तरङ्गों से अलङ्कृत विश्वदर्शिनी भागीरथी पहले स्वर्गलोक से महादेवजी के सिर पर गिरीं, उसके बाद हिमालय पहाड़ पर गईं और फिर पृथिवी पर उतरीं। जो मनुष्य गङ्गाजी में स्नान करते हैं उनके लिए संसार की रक्षा ९०
करनेवाली भागीरथी मार्ग-स्वरूप होती हैं। जो क्षमा, धारणा और रक्षण के विषय में पृथिवी के समान हैं, जिनका तेज सूर्य और अग्नि के समान है उन जाह्नवी की उपासना ब्राह्मण लोग सदा करते हैं। जो मनुष्य विष्णु के पैरों से उत्पन्न, महर्षियों की पूज्य, पतितपावनी गङ्गाजी की मन से भी शरण लेते हैं वे ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। माता के समान भागीरथी सब मनुष्यों को अभीष्ट गति देती हैं। अतएव मोक्ष चाहनेवाले महात्माओं के लिए गङ्गाजी की उपासना करना सबसे बढ़कर है। जितेन्द्रिय मनुष्य, सिद्धि पाने के लिए, संसार के सब भोग देनेवाली जगन्माता भागीरथी का आश्रय करते हैं। महात्मा भगीरथ घोर तपस्या द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके जाह्नवी को पृथिवी पर लाये हैं; उन भागीरथी की शरण लेने पर मनुष्य दोनों लोकों से निर्भय हो जाता है।

यह मैंने, अपनी बुद्धि के अनुसार, भागीरथी के माहात्म्य का थोड़ा सा वर्णन किया है। मेरे सदृश मनुष्य भागीरथी के सम्पूर्ण गुणों का बखान नहीं कर सकता। यदि सुमेरु पर्वत के सब रत्न और समुद्र का जल तोला जाय तो वह भी गङ्गा-जल के गुणों के बराबर नहीं हो

सकता। अतएव मन-वचन-कर्म से भक्तिपूर्वक भागीरथी के गुणों का आदर करना मनुष्यों का कर्तव्य है। तुम भागीरथी की आराधना करके तीनों लोकों में यशस्वी होगे और शीघ्र सिद्ध
१०० होकर अभीष्ट गति पा सकोगे। भागीरथी भक्त महात्माओं को सुख देती हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारी और मेरी बुद्धि गङ्गाजी के दर्शन से प्रसन्न और धर्म में लगी रहे।

हे धर्मराज! महात्मा शिलवृत्ति को इस प्रकार गङ्गाजी का माहात्म्य सुनाकर महामति सिद्ध स्वर्ग-मार्ग से चले गये। महात्मा शिलवृत्ति ने उन महापुरुष के उपदेशानुसार विधिपूर्वक गङ्गाजी की सेवा करके शीघ्र दुर्लभ गति प्राप्त की थी। अतएव तुम भी भक्ति के साथ गङ्गाजी को उपासना करने से उत्तम गति पाओगे।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, भाइयों समेत धर्मात्मा युधिष्ठिर भीष्म के मुँह से इस प्रकार गङ्गाजी का माहात्म्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। जो मनुष्य इस पवित्र इतिहास को पढ़ता
१०६ या सुनता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

सत्ताईसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मणत्व की दुर्लभता बतलाते हुए मतङ्ग का उपाख्यान कहना

धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म से फिर कहा—पितामह! आप वयोवृद्ध, प्रज्ञावान्, शास्त्रज्ञानी, सच्चरित्र और अनेक गुणों से सम्पन्न हैं। इसी से मैं आपसे धर्म का विषय पूछता हूँ। आपके सिवा त्रैलोक्य में और कोई धार्मिक विषयों का उत्तर नहीं दे सकता। मैं जानना चाहता हूँ कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किन कर्मों के करने से ब्राह्मण हो सकते हैं। तपस्या, शुभ कर्म और शास्त्रज्ञान, इनमें कौन कर्म क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों को ब्राह्मण बनाने के उपयुक्त है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों का ब्राह्मण होना बहुत कठिन है। ब्राह्मणत्व से बढ़कर संसार में और कुछ नहीं है। जीव अनेक योनियों में बारम्बार भटकता रहता है, अन्त को कहीं उसे ब्राह्मण का जन्म मिलता है। मैं इस विषय में मतङ्ग और गर्दभी का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में एक ब्राह्मणी के गर्भ और शूद्र के वीर्य से एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम मतङ्ग था। जातकर्म आदि संस्कार होने से वह द्विजाति समझा गया। एक बार ब्राह्मण ने मतङ्ग से कहा—बेटा! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, तुम यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करो। आज्ञा पाकर मतङ्ग रथ में गदहा जोतकर यज्ञ की सामग्री लेने के लिए चला। किन्तु वह जिधर जाना चाहता था उधर न चलकर गदहा अपनी मा की ओर भागने लगा। यह
१० देखकर मतङ्ग उसे चाबुक से पीटने लगा। गदही ने अपने बच्चे की नाक पर चाबुक लगते देखकर दीन भाव से उससे कहा—बेटा, तुम खेद न करो। इस समय तुमको एक चण्डाल पीट रहा है। ब्राह्मण कभी इस तरह की निठुरता नहीं करता। वह तो स्वभाव से ही दयालु

होता है। वह सब प्राणियों का पथ-प्रदर्शक और शासक है। यह मनुष्य यदि ब्राह्मण होता, तो क्या तुमको ऐसी निठुरता से पीटता? यह दुष्ट महापातकी है, बच्चे पर इसे रत्ती भर भी दया नहीं आती। यह निठुर जिसके वीर्य से पैदा हुआ है उसी के अनुरूप काम कर रहा है। निठुरता करना तो इसका जातीय स्वभाव है।

ये कठोर वचन सुनकर मतङ्ग ने, रथ से उतरकर, उससे पूछा—हे कल्याणी! मेरी माता ने जो पाप किया है, मैं जिस तरह चण्डाल हुआ हूँ और जिस कारण मेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हुआ है, वह सब तुम बतलाओ।

गदही ने कहा—तुम कामातुर ब्राह्मणी में नाई के वीर्य से पैदा हुए हो। इसी से तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया और तुम चण्डाल हो गये।

यह सुनकर मतङ्ग, यज्ञ की सामग्री लाने का विचार छोड़कर, घर लौट आया। उसको देखकर ब्राह्मण ने पूछा—बेटा, मैंने तो तुम्हें यज्ञ की सामग्री लाने के महान् कार्य में नियुक्त किया था। उस काम को किये बिना तुम कैसे लौट आये? कुशल तो है?

"पिताजी, जो मनुष्य चण्डाल जाति का है या उससे भी नीच जाति के वीर्य से पैदा हुआ है उसकी क्या कुशल हो सकती है? जिसकी माता दुश्चरित्रा है उसका कल्याण कहाँ? यह २०
गदही कहती है कि तुम शूद्र के वीर्य से ब्राह्मणी में पैदा हुए हो। इसकी बात झूठ नहीं हो सकती। अतएव मैं अब ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए तपस्या करूँगा।" यह कहकर मतङ्ग वन को चला गया और वहाँ ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की इच्छा से घोर तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या से देवताओं का आसन भी डोल गया। उन्होंने डर के मारे इन्द्र को उसके पास भेजा। इन्द्र ने आकर कहा—मतङ्ग, तुम संसार के सब भोगों को छोड़कर तपस्या क्यों कर रहे हो? मैं तुमको वर देने के लिए आया हूँ। जो चाहो, मुझसे माँग लो। मतङ्ग ने कहा—भगवन्, मैं ब्राह्मणत्व पाने के लिए तपस्या कर रहा हूँ। ब्राह्मणत्व मिलने पर ही मैं घर लौटूँगा। उसकी यह असङ्गत बात सुनकर देवराज ने कहा—मतङ्ग, तुम जो चाहते हो वह बहुत दुर्लभ है। तुम इस अप्राप्य वस्तु के पाने की इच्छा करके निस्सन्देह मर मिटोगे। ब्राह्मणत्व सबसे श्रेष्ठ है, वह तपस्या करने से नहीं मिल सकता। अतएव तुम शीघ्र इस दुराशा को छोड़ दो। तीनों लोकों में परम पवित्र समझकर जिसका सम्मान होता है उसे तुम, चण्डाल-योनि में उत्पन्न होकर, किस तरह प्राप्त कर सकोगे? ३०

अट्ठाईसवाँ अध्याय

मतङ्ग का ब्राह्मण होने के लिए तप करना। इन्द्र का फिर आकर ब्राह्मणत्व की दुर्लभता बतलाना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इन्द्र के यों कहने से भी व्रतधारी मतङ्ग ने तपस्या करना नहीं छोड़ा। वह सौ वर्ष तक एक पैर पर खड़ा रहा। तब इन्द्र ने फिर आकर कहा—बेटा,

ब्राह्मणत्व बहुत दुर्लभ है। तुम उसके प्राप्त करने की चेष्टा करके अपने प्राण खो बैठोगे। मैं तुमको बार-बार मना करता हूँ, तुम ब्राह्मणत्व पाने की इच्छा छोड़ दो। लगातार उद्योग करने पर भी तुम ब्राह्मण नहीं हो सकते। जीव तिर्यग्योनि से मनुष्ययोनि प्राप्त करके पहले पुल्कस या चण्डालयोनि में उत्पन्न होता है। हज़ार वर्ष तक उस योनि में रहने के बाद शूद्र होता है; फिर तीस हज़ार वर्ष तक शूद्र रहकर वैश्य-जाति में जन्म पाता है। वैश्य होने पर उल्लिखित अवधि के साठ गुने वर्ष बाद क्षत्रिय और उसके साठ गुने वर्ष क्षत्रिय रहने पर फिर
१० पतित ब्राह्मण होता है। फिर वह पतित ब्राह्मण के कुल में इसके दो सौ गुने वर्ष तक भ्रमण करके अस्त्रजीवी ब्राह्मण, फिर इसके तीन सौ गुने वर्ष बीतने पर गायत्री का जप करनेवाले ब्राह्मण के कुल में और फिर इस वंश में इसके चार सौ गुने वर्ष भ्रमण करके श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर में जन्म पाता है। श्रोत्रिय-वंश में भ्रमण करते समय हर्ष, शोक, काम, द्वेष, अभिमान और व्यर्थ के विवाद उस पर आक्रमण करते हैं। उस समय यदि जीव हर्ष-शोक आदि शत्रुओं को परास्त कर सकता है तो उसे सद्गति मिलती है और यदि वह इन शत्रुओं के वशीभूत हो जाता है तो उसकी अधोगति होती है। हे मतङ्ग, मैंने ये जो बातें तुमसे कही हैं इन पर विचार करके
१६ कोई दूसरा वर माँगो। ब्राह्मणत्व बहुत दुर्लभ है।

उनतीसवाँ अध्याय

इन्द्र के निराश करने पर भी मतङ्ग का तप करते रहना। इन्द्र का फिर आकर उसे वर देना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, इतने पर भी मतङ्ग अपने निश्चय पर दृढ़ बना रहा। वह स्थिर-चित्त होकर फिर हज़ार वर्ष तक एक पैर पर खड़ा रहा। हज़ार वर्ष पूरे होने पर इन्द्र फिर उसके पास आये और वही बातें कहकर उन्होंने मतङ्ग को तपस्या करने से रोका।

मतङ्ग ने कहा—हे देवराज! मैं ब्रह्मचारी होकर एकाग्र चित्त से हज़ार वर्ष तक एक पैर पर खड़ा रहा, तो भी मुझे ब्राह्मणत्व क्यों नहीं मिलता?

इन्द्र ने कहा—बेटा! तुम चण्डालयोनि में उत्पन्न हुए हो अतएव तुम्हें किसी प्रकार ब्राह्मणत्व नहीं मिल सकता। अब वृथा परिश्रम करने से कोई लाभ नहीं। तुम और वर माँग लो।

यह सुनकर मतङ्ग को बड़ा दुःख हुआ। फिर वह गया तीर्थ में जाकर सौ वर्ष तक पैर के अँगूठे पर खड़ा रहा। ऐसी कठिन तपस्या करने से उसके शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गईं। इसके बाद एक दिन तपस्या करते-करते वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर सब प्राणियों के हितैषी वरदानी इन्द्र ने मतङ्ग को उठाकर कहा—बेटा, तुम ब्राह्मणत्व के अधिकारी नहीं हो। ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के मार्ग में सङ्कट ही सङ्कट हैं। इस भूमण्डल पर ब्राह्मण से

बढ़कर कोई नहीं है। ब्राह्मण का सम्मान करने से अनेक सुख, और सम्मान न करने से अनेक दुःख, मिलते हैं। ब्राह्मण सब प्राणियों के मङ्गलदाता हैं। ब्राह्मणों से ही देवता और पितर सन्तुष्ट होते हैं। ब्राह्मण जिस समय जो चाहते हैं वह उसी समय हो जाता है। जीव क्रमशः १०
अनेक योनियों में भ्रमण करके अन्त को ब्राह्मण-कुल में जन्म पाता है। अतएव तुम दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने की आशा छोड़कर दूसरा कोई वर माँग लो।

मतङ्ग ने कहा—देवराज, आप मरे हुए को क्यों मारते हैं? मैं तपस्या के बल से ब्राह्मणत्व का अधिकारी हो चुका हूँ, फिर आप मुझे ब्राह्मणत्व क्यों नहीं देते? बहुतेरे लोग दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके भी नियमित रूप से उसका पालन नहीं करते। ऐसा मनुष्य पापियों से भी अधम है; किन्तु समाज में उस तरह का मनुष्य भी ब्राह्मण कहलाता है। अतएव जब अनेक मनुष्य अहिंसा और शम-दम आदि धर्म का पालन न करने पर भी ब्राह्मण कहलाते हैं तब मैं अपने आत्मा में ही सन्तुष्ट रहनेवाला, निर्द्वन्द्व, सब विषयों से मुक्त और अहिंसा आदि धर्मावलम्बी होने पर भी ब्राह्मणत्व क्यों न पा सकूँ? हाय, मैं बड़ा अभागा हूँ। यद्यपि मैं धर्मज्ञ हूँ तो भी केवल माता के दोष से मेरी यह दुर्दशा हुई है। जब मैं इतना परिश्रम करके ब्राह्मणत्व नहीं पा रहा हूँ तब निःसन्देह दैव के आगे उद्योग कोई चीज़ नहीं। जो हो, अब यदि मुझ पर आपकी कुछ कृपा हो अथवा मैंने कुछ पुण्य किये हों तो आप मुझे, मेरी इच्छा के अनुसार, दूसरा ही वर दीजिए। २०

वैशम्पायन कहते हैं कि यह सुनकर इन्द्र ने वर माँगने को कहा। तब मतङ्ग ने कहा—देवराज! मैं आपके वरदान से ऐसा आकाशचारी हो जाऊँ कि चाहे जैसा रूप धारण कर चाहे जहाँ जा सकूँ, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सब वर्ण मेरी पूजा करें और मेरी अक्षय कीर्ति हो।

इन्द्र ने मतङ्ग से कहा—बेटा, तुम छन्दादेव नाम से प्रसिद्ध होकर स्त्रियों के पूज्य होगे और तीनों लोकों में तुम्हारी ख्याति होगी।

हे धर्मराज, मतङ्ग को यह वरदान देकर इन्द्र अन्तर्धान हो गये। महात्मा मतङ्ग ने भी शरीर त्यागकर श्रेष्ठ गति प्राप्त की। अतएव सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणत्व प्राप्त करना बहुत कठिन है। २६

तीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से वीतहव्य के ब्राह्मण होने का वृत्तान्त कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने मुझसे यह उपाख्यान कहकर ब्राह्मणत्व की दुर्लभता सिद्ध की है। किन्तु मैंने सुना है कि महर्षि विश्वामित्र और महाराज वीतहव्य क्षत्रियकुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण हो गये हैं। महर्षि विश्वामित्र जिस तरह ब्राह्मण हुए हैं, सो तो आप बतला ही चुके हैं। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि महाराज वीतहव्य किस प्रकार ब्राह्मण हुए हैं।

भीष्म ने कहा—बेटा, महाराज वीतहव्य के लोक-सम्मानित दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का वर्णन सुनो। प्राचीन समय में महाराज मनु के वीर्य से शर्याति नाम के एक महात्मा उत्पन्न हुए थे। उन्हीं शर्याति के वंश में महाराज वत्स का जन्म हुआ। उनके हैहय और तालजङ्घ नाम के दो पुत्र हुए। उन्हीं हैहय को लोग वीतहव्य कहते हैं। महाराज वीतहव्य के दस स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियों के गर्भ से उनके सौ पुत्र पैदा हुए थे। उनकी सूरत-शकल एक सी थी। वे सब राजकुमार धनुर्विद्या में निपुण और वेद के विद्वान् थे।

उसी समय काशी में हर्यश्व नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। महाराज वीतहव्य के महा-पराक्रमी पुत्रगण, गङ्गा-यमुना के बीच, उनके साथ घोर सङ्ग्राम करके अन्त को उन्हें मारकर अपनी राजधानी को लौट गये। हर्यश्व के मारे जाने पर उनके पुत्र मूर्तिमान् धर्मस्वरूप महात्मा सुदेव काशी के राजा हुए। वीतहव्य के पुत्रों ने महाराज सुदेव को भी मार डाला। अब सुदेव के पुत्र महात्मा दिवोदास ने गङ्गा के उत्तर और गोमती के दक्षिण तट पर स्थित, ब्राह्मण आदि चारों वर्णों से समाकीर्ण, अमरावती के समान समृद्धिशालिनी वाराणसी के राजसिंहासन पर बैठकर पराक्रमी शत्रुओं के आक्रमण से बचने के लिए, इन्द्र की आज्ञा से, अपनी राजधानी को सुदृढ़ और अधिक सुशोभित किया। इतने में वीतहव्य के पुत्रों ने फिर वहाँ आकर हमला कर दिया। पराक्रमी महाराज दिवोदास ने सङ्ग्रामभूमि में उतरकर दस हज़ार वर्ष तक उनके साथ, देवासुर-संग्राम के समान, घोर युद्ध किया। अन्त को जब महाराज दिवोदास के वाहन, सैनिक और उनका कोष नष्ट हो गया तब वे दीन दशा को प्राप्त होकर, राज्य छोड़कर, महर्षि भरद्वाज के पवित्र आश्रम में भाग गये और हाथ जोड़कर उनकी शरण में पहुँचे। बृहस्पति के पुत्र महात्मा भरद्वाज ने काशिराज दिवोदास को देखकर उनसे पूछा—बेटा, तुम यहाँ किसलिए आये हो? मैं अवश्य ही तुम्हारा हित करूँगा।

दिवोदास ने कहा—भगवन्, वीतहव्य के पुत्रों ने युद्ध में मेरे वंश का नाश कर दिया है। मैं अकेला इस समय, वंश का विनाश हो जाने के दुःख से व्याकुल होकर, आपकी शरण में आया हूँ। अपना शिष्य समझकर आप मेरी रक्षा कीजिए। उन दुष्टों ने मेरे वंश में मेरे सिवा और किसी को जीता नहीं रक्खा। महाप्रतापी भरद्वाज ने दिवोदास के ये दीन वचन सुनकर कहा—महाराज, अब तुम डरो मत। मैं यज्ञ करूँगा जिससे तुम फिर पुत्रवान् हो जाओ। तुम्हारा वह पुत्र वीतहव्य के वंश का नाश कर डालेगा। यह कहकर महर्षि भरद्वाज ने दिवोदास को विदा किया। अब दिवोदास के पुत्र उत्पन्न होने के लिए भरद्वाज यज्ञ करने लगे। उस यज्ञ के प्रभाव से महाराज दिवोदास के प्रतर्दन नाम का पुत्र हुआ। प्रतर्दन पैदा होते ही तेरह वर्ष के लड़के के समान बड़े हो गये। शीघ्र ही उन्होंने सम्पूर्ण वेद और धनुर्वेद का अभ्यास कर लिया। फिर महर्षि ने उन्हें योग का उपदेश दिया। योग के प्रभाव

से प्रतर्दन के शरीर में तीनों लोकों का सम्पूर्ण तेज प्रविष्ट हो गया। तब देवर्षि और वन्दीगण उनकी स्तुति करने लगे। वे प्रचण्ड सूर्य के समान तेजस्वी हो गये। इसके बाद महापराक्रमी प्रतर्दन धनुष, खड्ग, चर्म और कवच धारण करके रथ पर सवार होकर प्रज्वलित अग्नि के समान अपने पिता के पास गये। अपने पुत्र प्रतर्दन को देखकर दिवोदास बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि मेरा यह पुत्र वीतहव्य के बेटों से बदला लेगा। प्रतर्दन को युवराज बनाकर दिवोदास निश्चिन्त हो गये।

कुछ दिनों बाद महाराज दिवोदास ने युवराज प्रतर्दन को वीतहव्य के पुत्रों का नाश कर डालने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही प्रतर्दन अस्त्र-शस्त्र लेकर, रथ पर सवार हो, गङ्गा-पार उतरकर वीतहव्य के नगर की ओर चले। वीतहव्य के पुत्रों ने प्रतर्दन के रथ की घरघराहट सुनकर बड़े-बड़े रथों पर सवार होकर युद्ध के लिए तैयारी कर दी। वे शीघ्र ही प्रतर्दन के ४०
सामने पहुँचकर, हिमालय पर पानी की वर्षा के समान, बाण बरसाने लगे। महापराक्रमी प्रतर्दन ने वीतहव्य के पुत्रों द्वारा चलाये हुए बाणों के, अपने बाणों से, टुकड़े-टुकड़े कर डाले और वज्र के समान तीक्ष्ण बाण मारकर उन सबके सिर काट लिये। वीतहव्य के पुत्र प्रतर्दन के बाणों से कटकर, रुधिर से लथपथ होकर, काटे हुए पलाश-वृक्ष के समान गिर पड़े।

पुत्रों के मारे जाने पर महाराज वीतहव्य नगर छोड़कर भागे और महर्षि भृगु के आश्रम में जाकर उनसे आश्रय माँगने लगे। महर्षि ने उनको आश्वासन दिया। इतने में प्रतर्दन भी उनका पीछा करते हुए उस आश्रम में पहुँच गये। उन्होंने पुकार-कर कहा कि आश्रम में महर्षि भृगु का कोई शिष्य हो तो वह शीघ्र महर्षि के पास जाकर उनको मेरे आने की ख़बर दे। मैं महर्षि के दर्शन करना चाहता हूँ।

महाबली प्रतर्दन की आवाज़ सुनकर महर्षि भृगु आश्रम के बाहर निकल आये। उन्होंने प्रतर्दन का यथोचित सत्कार करके पूछा कि महाराज! कहिए, क्या काम है। प्रतर्दन ने कहा—भगवन्, आपके आश्रम में वीतहव्य छिपे बैठे हैं। आप उनको आश्रम से निकाल दीजिए। उनके पुत्रों ने मेरे वंश का नाश कर दिया है और मेरे राज्य को तहस-नहस कर डाला ५०

है। मैंने वीतहव्य के सौ पुत्रों को मार डाला है; अब उनको भी मारकर मैं अपने पूर्वजों के ऋण से उरिन हूँगा। महर्षि भृगु ने वीतहव्य पर दया करके प्रतर्दन से कहा—महाराज! मेरे आश्रम में कोई क्षत्रिय नहीं है, सब ब्राह्मण ही हैं। महर्षि भृगु के ये वचन सुनकर प्रतर्दन ने उनको प्रणाम करके प्रसन्नता से कहा—"भगवन्, दुरात्मा वीतहव्य क्षत्रिय है; वह डर के मारे भागकर आपकी शरण में आया है। आपने उसे क्षत्रिय से ब्राह्मण बना दिया, इसलिए वह मेरे ही बल-वीर्य से जातिच्युत हुआ है। इससे मैं अपने को कृतकार्य समझता हूँ। अब आप मुझे जाने की आज्ञा देकर आशीर्वाद दीजिए।" महाराज प्रतर्दन वीतहव्य को साँप के विष के समान कठोर वचन कहकर, महर्षि भृगु से अनुमति लेकर, अपने घर चले गये। इस प्रकार भृगु के वचन के प्रभाव से महाराज वीतहव्य को ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ।

महर्षि भृगु के वचन से महाराज वीतहव्य ब्रह्मर्षि और ब्रह्मवादी हो गये। फिर उनके गृत्समद नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महात्मा गृत्समद का रूप इन्द्र के समान था। एक बार दैत्यों ने उनको इन्द्र समझकर बहुत सताया था। ऋग्वेद में उनके गुणों का वर्णन है।
६० ब्राह्मण उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। गृत्समद के सुचेता नाम का पुत्र हुआ। सुचेता के पुत्र वर्चा हुए। वर्चा के पुत्र विहव्य, विहव्य के पुत्र वितत्य, वितत्य के पुत्र सत्य, सत्य के पुत्र सन्त, सन्त के पुत्र श्रवा, श्रवा के पुत्र तम, तम के पुत्र प्रकाश, प्रकाश के पुत्र वागिन्द्र और वागिन्द्र के पुत्र प्रमति हुए। प्रमति के पुत्र रुरु, घृताची के गर्भ से, उत्पन्न हुए। रुरु ने प्रमद्वरा के गर्भ से शुनक नाम का पुत्र पैदा किया। महात्मा शौनक उन्हीं शुनक के पुत्र हैं। ये सब ब्राह्मण हुए। इस प्रकार महात्मा वीतहव्य ने, क्षत्रिय होने पर भी, महर्षि भृगु की कृपा से वंश समेत ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। यह मैंने वीतहव्य के ब्राह्मणत्व और उनके वंश का वृत्तान्त
६७ कहा। अब क्या सुनना चाहते हो?

इकतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और नारदजी का संवाद, गुणवान् ब्राह्मणों को पूज्य बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, विस्तार के साथ बतलाइए कि त्रैलोक्य में कौन मनुष्य पूज्य हैं।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं इस विषय में श्रीकृष्ण और नारदजी का संवाद सुनाता हूँ। एक बार श्रीकृष्ण ने नारदजी को हाथ जोड़कर प्रणाम करते देख पूछा—भगवन्, आप भक्ति के साथ किसे प्रणाम कर रहे हैं? यदि यह बात मुझसे कहने योग्य हो तो बतलाइए।

नारदजी ने कहा—कृष्णचन्द्र, मैं जिसकी पूजा करता हूँ उसे सुनो। मैं उन ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ जो वरुण, वायु, सूर्य, मेघ, अग्नि, महादेव, कार्त्तिकेय, लक्ष्मी, ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथिवी और सरस्वती को प्रणाम करते हैं; जो वेदपारदर्शी, आत्म-

श्लाघाहीन, सदा सन्तुष्ट और क्षमावान् हैं तथा जो देवकार्य किये बिना भोजन नहीं करते। मैं उन ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ जो जितेन्द्रिय होकर यज्ञ करते और धन, धान्य, गाय, पृथिवी आदि ब्राह्मणों को देते हैं; जो वन में फल-मूल खाकर सञ्चय न करके तपस्या करते हैं; १०
जो सेवकों का भरण-पोषण और अतिथियों की सेवा करके देवताओं से बचा हुआ भोजन करते हैं और जो नियमित रूप से वेद का अध्ययन तथा ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करके याजन और अध्यापन आदि कार्य करते हैं। मैं उन ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ जो सब प्राणियों पर दया और दोपहर तक वेद का अध्ययन करते हैं; जो ईर्ष्याहीन होकर एकाग्र चित्त से वेद पढ़कर आचार्य को प्रसन्न करते हैं; जो व्रतधारी, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ और हव्य-कव्य के अनुष्ठानकर्ता हैं; जो ममता, स्वार्थ और प्रतिद्वन्द्विता को त्यागकर दिगम्बर वेश में रहते हैं और जो सत्य, अहिंसा तथा शम-दम आदि गुणों से युक्त हैं। मैं उन ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ जो गृहस्थ आश्रम में रहकर, कबूतर के समान, कुछ सञ्चय किये बिना ही निर्वाह करते हैं और देवताओं तथा अतिथियों की सेवा में लगे रहते हैं। उन सदाचारी पुरुषों के कामों से धर्म, अर्थ २०
और काम की सदा वृद्धि होती रहती है। मैं उन ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ जो शास्त्र के विद्वान् और लोभहीन होकर धर्म आदि त्रिवर्ग का अनुष्ठान करते हैं; जो वायु का भक्षण या यज्ञ का बचा हुआ भोजन करके अथवा जल पीकर अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करते हैं; जो विवाह नहीं करते; जो अग्निहोत्र-व्रत करते हैं; जो वेद के एकमात्र आधार हैं और सब प्राणी जिनका आश्रय लेते हैं। ऐसे ब्राह्मण सब प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। वे सबके अज्ञानान्धकार का नाश करते हैं। अतएव तुम भी ब्राह्मणों की पूजा करो। सत्पात्र ब्राह्मणों का सम्मान करने से दोनों लोकों में सुख मिलता है। तुम उनका आदर करोगे तो वे तुमको अवश्य सुख देंगे। जो मनुष्य हमेशा गाय, ब्राह्मण, सत्य और अतिथि की सेवा में लगे रहते हैं; जो शान्ति-गुणावलम्बी, ईर्ष्याहीन, श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय होकर वेद का अवलम्बन करके देवताओं को प्रणाम करते हैं और जो व्रत का पालन करके ब्राह्मणों को प्रणाम करते और दान देते हैं वे सहज ही ३०
विपत्तियों से छुटकारा पा जाते हैं। जो ब्रह्मचारी होकर तपस्या करके आत्मा को शुद्ध करते हैं; जो देवता, अतिथि, पोष्यवर्ग और बड़े-बूढ़ों को भोजन-वस्त्र देकर ही भोजन करते हैं; जो नियमपूर्वक सोमयज्ञ में आहुति देते हैं और जो तुम्हारी तरह पिता, माता तथा गुरुजनों पर श्रद्धा रखते हैं वे अनायास सब विपत्तियों से छुटकारा पाते हैं।

हे धर्मराज, देवर्षि नारद ने श्रीकृष्ण से यही कहा था। तुम इसी उपदेश के अनुसार देवताओं, ब्राह्मणों, बड़े-बूढ़ों और अतिथियों का सत्कार किया करो। ऐसा करने से आसानी से सद्गति पा सकोगे। ३६

बत्तीसवाँ अध्याय

भीष्म का शरणागत की रक्षा का माहात्म्य कहते हुए बाज़, कबूतर और शिवि की कथा कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप सब शास्त्रों के जानकार हैं अतएव विस्तार के साथ मुझे बताइए कि जो मनुष्य शरण में आये हुए प्राणियों की रक्षा करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है।

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में एक आख्यान सुनाता हूँ। प्राचीन समय में एक सुन्दर कबूतर बाज़ की झपट से डर के मारे भागकर महाराज शिवि की शरण में गया। महाराज शिवि ने नीले रङ्ग के कबूतर को, डर के मारे भागकर अपनी शरण में, आया हुआ देख दिलासा देकर उससे पूछा—कबूतर, तुम डरो मत। बतलाओ तुम कहाँ से और किसके डर से भागकर घबराये हुए आये हो। तुम मेरे पास आ गये, अब डरो मत। ये सब रक्षक तुम्हारे सामने खड़े हैं, अब तुमको पकड़ने की इच्छा भी कोई नहीं कर सकता। मैं तुम्हारी रक्षा के लिए अपना सारा राज्य और जीवन तक दे सकता हूँ।

महाराज शिवि कबूतर को इस प्रकार दिलासा दे ही रहे थे कि इतने में बाज़ वहाँ आकर राजा से बोला—महाराज, यह कबूतर मेरा भोजन है। मैंने इसे बड़े यत्न से प्राप्त किया है। आप इस झमेले में न पड़ें। इस कबूतर के मांस, रक्त, मज्जा और मेद को खाकर मैं तृप्त हूँगा। आप मेरे भोजन में विघ्न न डालें। मैं भूख और प्यास के मारे बेचैन हो रहा हूँ; कृपा करके इस कबूतर को छोड़ दीजिए। मैंने झपट्टा मारकर अपने परों और पञ्जों से इसे घायल कर दिया है। देखिए, यह किस तरह धीरे-धीरे साँस ले रहा है। इसकी रक्षा करना आपको उचित नहीं। आप मनुष्यों के ही राजा हैं। आकाशचारी भूखे-प्यासे पक्षियों पर आपका प्रभुत्व नहीं है। शत्रु, सेवक, कुटुम्बी और इन्द्रियों पर ही आपकी प्रभुता मानी जा सकती है; किन्तु पक्षियों पर पराक्रम प्रकट करना आपको उचित नहीं। मुझसे आपकी कोई शत्रुता भी नहीं है, अतएव यदि आप मुझे मेरा भोजन न देंगे तो निस्सन्देह आपको पाप लगेगा।

भीष्म कहते हैं कि ये बातें सुनकर महाराज शिवि ने, बड़े आश्चर्य के साथ, सोचकर उससे कहा—पक्षी! मैं तुमको बैल या सुअर या मृग या भैंसे का मांस देता हूँ, उसे खाकर तुम अपनी भूख शान्त करो। शरणागत की रक्षा करना मेरा व्रत है। मैं उसे छोड़ नहीं सकता। देखो, यह कबूतर किसी तरह मेरी गोद से नहीं हटता।

बाज़ ने कहा—महाराज! मैं बैल, सुअर आदि किसी अन्य जीव का मांस नहीं खाता। इसलिए इन जीवों का मांस मेरे किस काम का! ईश्वर ने कबूतर आदि पक्षियों को ही मेरा भक्ष्य निर्दिष्ट कर दिया है। सभी जानते हैं कि बाज़ पक्षी कबूतर आदि चिड़ियों का मांस खाता है। यदि आपको इस कबूतर पर स्नेह है तो इसके बराबर अपना मांस मुझे दे दीजिए।

"पत्नी, आज तुमने अपना भाव बतलाकर बड़ी कृपा की। मैं अभी इस कबूतर के बराबर अपना मांस तुमको देता हूँ।" यह कहकर महात्मा शिवि ने तराज़ू मँगाया। उसमें एक ओर कबूतर को रखकर दूसरी ओर वे अपना मांस रखने लगे। यह ख़बर सुनकर रनिवास की स्त्रियाँ हाहाकार करती हुई बाहर निकल आईं। उनके और मन्त्रियों तथा सेवकों के रोने का शब्द राजभवन में भर गया। उस समय राजा के प्रतिज्ञा-पालन के प्रभाव से आकाश में बादल घिर आये और पृथिवी काँपने लगी। महाराज शिवि ने क्रमशः दोनों हाथ, दोनों पैर और शरीर का सारा मांस काटकर तराज़ू पर रख दिया, तो भी वह सब उस कबूतर के बराबर न हुआ। अन्त को जब उनके शरीर में केवल हड्डियाँ रह गईं तब वे स्वयं तराज़ू पर बैठ गये।

तराज़ू पर उनके बैठते ही इन्द्र, तीनों लोकों समेत, उनके पास आये। देवताओं ने तुरही और नगाड़े बजाकर उनके सिर पर अमृत की और फूलों की वर्षा की। महाराज शिवि को ३१
प्रसन्न करने के लिए अप्सराओं सहित गन्धर्व नाचने-गाने लगे। इसके बाद महाराज शिवि उस शुभ कर्म के प्रभाव से, मणि और सुवर्ण के तोरण तथा वैदूर्य मणि के खम्भों से शोभित, सुवर्णमय विमान पर सवार होकर स्वर्ग को गये।

हे धर्मराज, तुम भी महाराज शिवि की तरह शरणागत की रक्षा करो। जो मनुष्य भक्त, अनुरक्त और आश्रित व्यक्ति की रक्षा करता है वह परलोक में सुख भोगता है। जो राजा सदाचारी और सुशील होकर कपट का त्याग कर देता है उसके लिए कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है। शुद्धात्मा सत्यपराक्रमी काशिराज शिवि इस शुभ कर्म के प्रभाव से तीनों लोकों में विख्यात हो गये। जो मनुष्य शरणागत की रक्षा करता है वह निस्सन्देह परलोक में महात्मा शिवि के समान सद्गति पाता है। जो मनुष्य महात्मा शिवि की यह कथा प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है वह पवित्र हो जाता है। ३९

तीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मणों की महिमा बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! राजाओं के लिए संसार में कौन सा काम सबसे श्रेष्ठ है और किन कर्मों के करने से राजाओं का, इस लोक और परलोक में, कल्याण हो सकता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, सुख की इच्छा करनेवाला राजा ब्राह्मणों की सेवा करे। यही काम राजाओं के लिए श्रेष्ठ है। वृद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण का प्रतिदिन सम्मान करना राजा का आवश्यक कर्त्तव्य है। राजा के नगर या देश में जो स्वाध्यायशील ब्राह्मण रहते हों उनको राजा अनेक प्रकार की भोग्य वस्तुएँ दे और उनको प्रतिदिन प्रणाम करे। इस काम को सबसे श्रेष्ठ समझकर करना राजाओं के लिए श्रेयस्कर है। अपने शरीर और पुत्र के समान ब्राह्मणों की रक्षा

करना राजाओं का परम धर्म है। जो ब्राह्मणों में पूजनीय हों उन पर राजा अधिक श्रद्धा और भक्ति रक्खे। ब्राह्मणों के शान्त भाव से निवास करने पर राज्य में कोई विघ्न नहीं होता। वे कुपित होकर मारण-उच्चाटन आदि अनेक उपायों से और तपस्या के तेज से सब कुछ भस्म कर सकते हैं। अतएव पिता के समान उनकी पूजा और उनका सम्मान करना चाहिए। जिस तरह बादल पानी बरसाकर अन्न पैदा करके मनुष्यों के जीवन की रक्षा करते हैं उसी तरह ब्राह्मणों की कृपा से सबका निर्वाह होता है। ब्राह्मणों की गति कहीं भी नहीं रुकती। जैसे वन में आग लग जाने से सारा वन जल जाता है वैसे ही ब्राह्मणों के कोप से सब कुछ भस्म हो सकता है। साहसी मनुष्य भी उनको देखकर डर जाते हैं। उनके गुणों की सीमा नहीं है। उनमें कोई-कोई घास से ढके हुए कुएँ के समान छिपे रहते हैं और कोई-कोई बिना बादल के
१० आकाश के समान खुले रहते हैं। कोई ब्राह्मण तो अत्यन्त तीव्र स्वभाव का, कोई रुई के समान नरम, कोई दुष्ट और कोई निष्कपट होता है। कोई ब्राह्मण खेती करते, कोई गायें पालते, कोई भीख माँगते, कोई चोरी करते, कोई नाचते-गाते, कोई लड़ाई-झगड़ा कराते और कोई लौकिक तथा अलौकिक दोनों तरह के कर्म करते हैं।

यों अनेक प्रकार के स्वभाव के ब्राह्मण देखे जाते हैं। अनेक प्रकार के कामों से जीविका करनेवाले, अनेक कर्मों में तत्पर, धर्मज्ञ ब्राह्मणों के गुणों का हमेशा वर्णन किया जाय। ब्राह्मण पितरों, देवताओं, मनुष्यों और सर्पों के पूज्य हैं। देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, राक्षसों, असुरों और पिशाचों में कोई उनको परास्त नहीं कर सकता। वे देव को अदेव और अदेव को देव बना सकते हैं। जो ब्राह्मणों का प्रिय है वही राजा हो सकता है और जो ब्राह्मणों का प्रिय नहीं है वह परास्त होता है। जो मूर्ख मनुष्य ब्राह्मणों की बुराई करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। दूसरों की निन्दा और प्रशंसा करने में समर्थ, कीर्त्ति और अकीर्त्ति के कारण, ब्राह्मण लोग द्वेष करनेवालों पर हमेशा कुपित रहते हैं। ब्राह्मण जिनकी प्रशंसा करते हैं उनकी उन्नति होती है और
२० जिनकी निन्दा करते हैं वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। शक, यवन, काम्बोज, द्राविड़, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कोलिसर्प और माहिषक आदि कितने ही क्षत्रिय—ब्राह्मणों की कृपा न होने के कारण—शूद्र हो गये हैं। ब्राह्मणों से दबा रहना ही अच्छा है, उनको परास्त करना ठीक नहीं। ब्राह्मण की हत्या करना सब प्राणियों के विनाश से बढ़कर पाप है। महर्षियों ने ब्रह्महत्या को महा-पातक कहा है। ब्राह्मणों की निन्दा कदापि न सुने। जहाँ ब्राह्मणों की निन्दा होती हो वहाँ सिर झुकाये बैठे रहना या वहाँ से चल देना चाहिए। ऐसा मनुष्य आज तक संसार में न तो पैदा हुआ है और न आगे होगा जो ब्राह्मणों से विरोध करके सुख से जीता रहे। मुट्ठी में हवा को पकड़ना, हाथ से चन्द्रमा को छूना और पृथिवी को उठा लेना जिस प्रकार दुष्कर कार्य
२७ हैं उसी तरह ब्राह्मण को परास्त करना कठिन है।

पृथिवी ने कहा—केशव, मैंने नारदजी के मुँह से सुना है कि इस लोक में ब्राह्मण की सेवा करना परम पवित्र और श्रेष्ठ धर्म है—पृ० ४०२३

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणों का माहात्म्य बतलाते हुए पृथिवी और श्रीकृष्ण का संवाद कहना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, ब्राह्मणों की पूजा सदा करनी चाहिए। सुख-दुःख देना ब्राह्मणों के हाथ में है। उनकी इच्छा के अनुसार विविध भोग्य वस्तुएँ और अलङ्कार देना, नमस्कार करना तथा पिता के समान उनका पालन करना राजा का कर्तव्य है। जिस तरह इन्द्र सब जीवों का कल्याण करते हैं उसी तरह ब्राह्मणों द्वारा राजा का मङ्गल होता है। राजा अपने राज्य में तेजस्वी और सदाचारी ब्राह्मणों को, तथा शत्रु को दबाने में समर्थ महारथी क्षत्रियों को, अवश्य रक्खे। अपने घर में कुलीन धर्मज्ञ व्रतधारी ब्राह्मण को स्थान देने से बढ़कर कोई काम नहीं है। ब्राह्मणों को दी गई, हवन करने योग्य, वस्तुएँ देवताओं को मिलती हैं अतएव ब्राह्मण ही सबसे श्रेष्ठ हैं। चन्द्रमा, सूर्य, जल, वायु, पृथिवी, आकाश और दिशाएँ ये सब ब्राह्मण के शरीर में प्रविष्ट होकर अन्न ग्रहण करते हैं। जिस पापी के घर में ब्राह्मण भोजन नहीं करते उसका अन्न देवता और पितर नहीं ग्रहण करते। ब्राह्मणों के तृप्त होने से देवता और पितर सन्तुष्ट होते हैं। जिस यजमान की वस्तुएँ ब्राह्मण को प्राप्त होती हैं वह परम सन्तुष्ट रहता और अन्त को परम गति पाता है। ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाता है वह देवताओं और पितरों को पहुँच जाता है। जिस यज्ञ के द्वारा प्रजा की उत्पत्ति होती है उसके मूल कारण १०
ब्राह्मण ही हैं। यह संसार जिससे उत्पन्न हुआ है और जिसमें लीन होगा वह ब्राह्मणों से छिपा नहीं है। स्वर्ग और नरक की गति ब्राह्मणों की जानी हुई है। ब्राह्मण अपना धर्म और भूत-भविष्य सब कुछ जानते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणों के आचरण को देखकर वैसा ही बर्ताव करता है उसे कहीं कष्ट नहीं मिलता। अन्त को उसे परमपद मिलता है। ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करने से परमपद मिलता है। ब्राह्मणों के तेज के सामने क्षत्रियों का तेज और बल दब जाता है। देखो, भृगु के वंशजों ने तालजङ्घ आदि को, अङ्गिरा के पुत्रों ने नीप लोगों को, महर्षि भरद्वाज ने वीतहव्य के पुत्रों को और ऐल आदि को परास्त कर दिया था। जिस तरह काठ में आग छिपी रहती है उसी तरह संसार में जो कुछ पढ़ा या सुना जाता है और जिस किसी विषय में बातचीत की जाती है वह सब गूढ़ भाव से ब्राह्मणों में मौजूद रहता है।

हे धर्मराज, इस विषय में पृथिवी और श्रीकृष्ण का संवाद सुनो। एक बार श्रीकृष्ण ने २०
पृथिवी से पूछा—वसुन्धरे, गृहस्थ मनुष्य किस कर्म के करने से सब पापों से छूट सकता है?

पृथिवी ने कहा—केशव, मैंने नारदजी के मुँह से सुना है कि इस लोक में ब्राह्मण की सेवा करना परम पवित्र और श्रेष्ठ धर्म है। ब्राह्मण की सेवा करने से रत्ती भर भी पाप नहीं रह जाता। ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय महारथी होते और कीर्ति, बुद्धि तथा सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए कुलीन धर्मज्ञानी परम पवित्र ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए।

ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं उसका अभ्युदय होता है। जो मनुष्य मोह के वश होकर ब्राह्मणों की निन्दा करता है वह, समुद्र में फेंके हुए ढेले की तरह, दम भर में नष्ट हो जाता है। ब्राह्मण का अनिष्ट करना अपनी जड़ खोदना है। देखो, ब्राह्मण के शाप से चन्द्रमा कलङ्क-युक्त हुए और समुद्र का पानी खारा हो गया। ब्राह्मण के शाप से इन्द्र के हज़ार भग-चिह्न हो गये थे और फिर ब्राह्मण की कृपा से ही वे सब चिह्न नेत्र हो गये। अतएव जितेन्द्रिय और पवित्र होकर ब्राह्मण की आज्ञा मानना सबका कर्तव्य है।

हे धर्मराज, पृथिवी के ये वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।
३१ अतएव तुम भी, इस दृष्टान्त के अनुसार, ब्राह्मणों की पूजा करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणों का माहात्म्य बतलाना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, ब्राह्मण जन्म से ही सबके पूज्य हैं। वे अतिथि-रूप से सबसे पहले भोजन करते हैं। वे देवताओं के मुख स्वरूप हैं। उन्हीं से (धर्म आदि) त्रिवर्ग उत्पन्न होता है। वे सब प्राणियों के हितैषी हैं। ब्राह्मण लोग सम्मानित होकर हम लोगों का कल्याण और हमारे शत्रुओं द्वारा अपमानित होकर उनका अनिष्ट करें। विधाता ने ब्राह्मणों को उत्पन्न करके जो नियम स्थापित कर दिये हैं उनका वर्णन प्राचीन पण्डितों ने किया है; सुनो। ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों को उत्पन्न करके उनसे कहा था—हे ब्राह्मणो, तुम लोग सुरक्षित रहकर सबकी रक्षा करो। यही तुम्हारा प्रधान काम है। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। तुम लोग अपने कर्तव्य का पालन करके ब्राह्मी श्री प्राप्त करोगे। तुम लोग सबके आदर्श और नियम के बनानेवाले होगे। तुम लोगों को शूद्रों के कर्म करना उचित नहीं। तुम लोग यदि सेवावृत्ति करने लगोगे तो निस्सन्देह अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाओगे। अपने धर्म पर दृढ़ रहने से श्री, बुद्धि, तेज और माहात्म्य बढ़ेगा। होम-हवन करने से तुम लोगों का सौभाग्य बढ़ेगा। अतिथि-रूप से तुम लोग जिस गृहस्थ के घर पहुँचोगे वह अपने बाल-बच्चों को खिलाने के पहले तुम लोगों को भोजन करावेगा। तुम लोग अहिंसक, श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय और स्वाध्यायनिरत
१० होकर अपनी सब इच्छाएँ पूरी कर सकोगे। ज्ञान, नियम और तपस्या के द्वारा इस लोक और स्वर्गलोक के सब पदार्थ प्राप्त होते हैं। अतएव ज्ञान का उपार्जन, नियम का पालन और तपस्या करना तुम लोगों का कर्तव्य है।

हे धर्मराज, ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों पर कृपा करके उनको यही उपदेश दिया था। ब्रह्मबल क्षात्र-बल से श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों में कोई तपस्वी, कोई जल्दबाज़, कोई सिंह के समान, कोई बाघ के समान, कोई वराह के समान, कोई मृग के समान, कोई मकर आदि जलजीवों के समान और कोई साँप

के समान प्रभावशाली होता तथा किसी का स्वभाव उग्र होता है। कोई तो साँप की तरह क्रोधी और कोई बड़े सरल होते हैं; कोई तो शाप देकर और कोई आँखों से देखते ही भस्म कर सकते हैं। ब्राह्मणों में अनेक प्रकार की प्रकृति के व्यक्ति होते हैं; किन्तु उन सबका सम्मान करना चाहिए। मेकल, द्राविड़, लाट, पौण्ड्र, काम्बशिर, शौण्डिक, दरद, दार्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात और यवन आदि क्षत्रिय-जातियाँ ब्राह्मणों के कोप से शूद्र हो गई हैं। ब्राह्मणों का अपमान करने के कारण दैत्यगण जल में और ब्राह्मणों की कृपा से देवता स्वर्ग में निवास करते हैं। जिस तरह आकाश को छूना, हिमालय पर्वत को हिला देना और पुल बाँधकर गङ्गा की धारा रोक देना असम्भव है उसी तरह ब्राह्मणों को परास्त करना बहुत कठिन है। ब्राह्मणों से विरोध २० करके कोई राजा टिक नहीं सकता। ब्राह्मण लोग देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। हे धर्मराज, तुम यदि सम्पूर्ण भूमण्डल का शासन करना चाहते हो तो हमेशा सम्मान और दान द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रखना। दान लेने से ब्राह्मणों का तेज नष्ट हो जाता है। जो ब्राह्मण दान न लेते हों उनसे, हमेशा सावधान रहकर, अपने कुल की रक्षा करते रहना। २३

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणों की महिमा बतलाते हुए इन्द्र और शम्बर का संवाद कहना

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, अब मैं इन्द्र और शम्बर का संवाद सुनाता हूँ। एक बार इन्द्र ने शरीर में भस्म लगाकर जटाएँ धारण कर लीं और कपट-वेश से विरूप रथ पर सवार होकर शम्बर दैत्य के पास जाकर पूछा—दैत्यराज, तुम किस प्रकार के व्यवहार से अपने सजातीयों के मुखिया हो गये हो और तुम्हारे किस व्यवहार से वे लोग तुमको श्रेष्ठ मानते हैं?

शम्बर ने कहा—महात्मन्, मैं कभी ब्राह्मणों से द्वेष नहीं करता। ब्राह्मण लोग मुझे जो उपदेश देते हैं उसी पर मैं चलता हूँ। वे लोग जब मुझे कोई शास्त्र सुनाते हैं तब मैं मन लगाकर सुनता हूँ। मैं हमेशा ब्राह्मणों का आदर करता और उनको प्रणाम करता हूँ। वे भी मेरा विश्वास करते, मुझसे कुशल पूछते और मेरी बातों का उत्तर देते हैं। उनके असावधान होने पर भी मैं सावधान और उनके सो जाने पर भी मैं जागता रहता हूँ। मैं ब्राह्मणों के पास बैठकर उनसे शास्त्र का मर्म समझता हूँ, इसी से वे मुझे अमृत के समान विद्यारस से उसी तरह तर कर देते हैं जिस तरह शहद की मक्खी अपने छत्ते को शहद से भर देती है। वे प्रसन्न होकर मुझे जो उपदेश देते हैं उसे मैं अपनी बुद्धि से ग्रहण करता हूँ और एकाग्रचित्त होकर उनकी श्रेष्ठता के विषय में विचार करता हूँ। मैं ब्राह्मणों का उपदेशामृत पीता हूँ, इसी से तारागण में स्थित चन्द्रमा के समान मैं अपने सजातीयों का मुखिया हूँ। मेरे पिता भली भाँति जानते थे कि जो मनुष्य ब्राह्मण के मुँह से निकले हुए अमृतमय ज्ञान-स्वरूप शास्त्र सुनकर युद्ध आदि करते हैं

११ वे आसानी से विजय पाते हैं। उन्होंने देवासुर-संग्राम में ब्राह्मणों की महिमा देखकर, बड़े प्रसन्न और विस्मित होकर, चन्द्रमा से पूछा था—भगवन्, ब्राह्मणों ने किस प्रकार सिद्धि प्राप्त की है ?

चन्द्रमा ने उत्तर दिया—दैत्यराज, ब्राह्मण तपोबल से सिद्धि पाते हैं। क्षत्रियों का बाहुबल और ब्राह्मणों का वाक्यबल प्रधान है। ब्राह्मण नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर, गुरुकुल में रहकर थोड़ा सा वेद पढ़ने और क्रोधहीन होने से मोक्षपद पा सकता है। अपने घर में रहकर पिता से सम्पूर्ण वेद पढ़ लेने पर भी लोग उसे गँवार कहते हैं। जिस तरह साँप चूहों को निगल जाता है उसी तरह युद्ध से भागे हुए क्षत्रिय और विदेश न जानेवाले ब्राह्मण को पृथिवी खा लेती है। मूर्ख का अभिमान उसे ले डूबता है। विदेश न जाने से ब्राह्मण का सम्मान नहीं होता और गर्भवती हो जाने से कन्या दूषित हो जाती है। महात्मन्, पिताजी चन्द्रमा से यह उपदेश सुनकर ब्राह्मणों की पूजा की थी। मैं भी, अपने पिता की तरह ब्राह्मणों का सम्मान करता रहता हूँ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! इन्द्र ने इस प्रकार शम्बर के मुँह से ब्राह्मणों का माहात्म्य
१९ सुनकर, उनकी पूजा करके, स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था।

सैंतीसवाँ अध्याय

सुपात्र ब्राह्मणों के लक्षण बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! अपरिचित, सुपरिचित और दूर से आये हुए, इन तीन प्रकार के ब्राह्मणों में कौन ब्राह्मण दान का अधिकारी है ?

भीष्म ने कहा—बेटा, ये तीनों सत्पात्र हैं। उनमें कोई तो गृहस्थ और कोई संन्यास धर्म का आश्रय लेते हैं। उनके माँगने के अनुसार दान करना आवश्यक है। किन्तु कुटुम्ब के लोगों को कष्ट देकर दान करना उचित नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! बिना किसी को दुःख दिये और बिना धर्म पर आघात किये किसको दान देने से श्रेष्ठ फल होता है ?

भीष्म कहते हैं कि बेटा ! ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, शिष्य, सम्बन्धी और भाई-बन्धु—ईर्ष्याहीन और ज्ञानवान् होने से—सम्मान तथा दान के योग्य पात्र होते हैं। किन्तु जो अज्ञानी और ईर्ष्यालु हैं उनका सम्मान करना या उन्हें दान देना उचित नहीं। अतएव दान देने के पहले सावधानी से उनकी परीक्षा कर ले। जो जितेन्द्रिय मनुष्य क्रोध, हिंसा और द्रोह नहीं करता; जो सत्यवादी, तपस्वी, सरल, लज्जावान्, शान्त और सहनशील होता है वह सम्मान करने योग्य है। परिचित, अपरिचित अथवा अभ्यागत चाहे जो हो, जिस मनुष्य में
१० ये सब गुण हों वही सम्मान का पात्र है। वेद को अप्रामाणिक कहनेवाला, शास्त्र का उल्लंघन

करनेवाला और सामाजिक नियमों को तोड़नेवाला मनुष्य सत्पात्र नहीं गिना जाता। जो ब्राह्मण पाण्डित्याभिमानी, वेदनिन्दक, वेद के विरोधी, कुतर्की, निन्दक, बकवादी, सब पर सन्देह करनेवाले, मूढ़, अव्यवस्थितचित्त और कटुभाषी हों उनका स्पर्श भी न करे। पण्डितों ने इस प्रकार के ब्राह्मणों को कुत्तों के समान बतलाया है। जिस तरह कुत्ते चिल्लाया करते और काट खाने को दौड़ते रहते हैं उसी तरह इस प्रकार के ब्राह्मण भी व्यर्थ की बातें करते और शास्त्रों को नष्ट कर देने पर उतारू रहते हैं। जो ब्राह्मण सद्व्यवहार करते और शम-दम आदि गुणों से युक्त होते हैं वे बहुत दिनों तक उन्नत दशा में रहते हैं। जो यज्ञ द्वारा देव-ऋण, वेदाध्ययन द्वारा ऋषि-ऋण, पुत्रोत्पादन द्वारा पितृऋण, ब्राह्मण-भोजन द्वारा विप्र-ऋण और अतिथि-सत्कार द्वारा अतिथि-ऋण से उऋण होकर शुभ कर्म करते रहते हैं वे कभी धर्म से भ्रष्ट नहीं होते। १८

अड़तीसवाँ अध्याय

भीष्म का स्त्रियों का स्वभाव बतलाते हुए नारद और पञ्चचूड़ा का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, स्त्रियों का स्वभाव चञ्चल होता है; वे सब दोषों की खानि हैं। अतएव आप स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, मैं इस विषय में नारद और पञ्चचूड़ा का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में देवर्षि नारद सब लोकों में विचरते रहते थे। उन्होंने एक बार घूमते-घूमते ब्रह्मलोक की अप्सरा पञ्चचूड़ा को देखकर उससे कहा—सुन्दरी, मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ। तुम उसका उत्तर देना।

पञ्चचूड़ा ने कहा—महर्षि, यदि आपके प्रश्न का उत्तर देने की योग्यता मुझमें होगी तो मैं अवश्य उत्तर दूँगी।

नारदजी ने कहा—सुन्दरी, जो बात तुम नहीं जानती हो वह मैं नहीं पूछूँगा। मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि स्त्रियों का स्वभाव कैसा होता है।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, पूछे जाने पर, पञ्चचूड़ा ने कहा—महर्षि, मैं स्त्री होकर भला स्त्री-जाति की निन्दा क्यों करूँगी? स्त्रियों का स्वभाव आपसे छिपा नहीं है अतएव आप मुझे क्षमा कीजिए।

नारदजी ने कहा—सुन्दरी, तुम ठीक कहती हो। स्त्री होकर स्त्रियों की निन्दा करना उचित नहीं है; किन्तु मेरी राय में झूठ बोलना ही बुरा है। सत्य कहने में डर ही काहे का? अतएव तुम निःशङ्क होकर स्त्री-जाति का स्वभाव बतलाओ।

पञ्चचूड़ा ने मुसकुराकर कहा—महर्षि, यदि आप मेरे ही मुँह से स्त्री-जाति की निन्दा सुनना चाहते हैं तो सुनिए। स्त्रियाँ अच्छे कुल में उत्पन्न, सुन्दरी और सधवा होने पर भी १०

पातिव्रत से डिग जाती हैं। वे सब दोषों की खानि हैं। मौक़ा मिल जाय तो वे धनवान्, रूपवान्, आज्ञाकारी पति की भी परवा नहीं करतीं। उनको अधर्म का तनिक भी डर नहीं होता। वे सहज ही लज्जा छोड़कर पर-पुरुष का संसर्ग कर सकती हैं। जो पर-स्त्री की ख़ुशामद करता और उसके पास आता-जाता है, उस पर वह आसक्त हो जाती है। स्त्रियों को किसी भी पुरुष के साथ भोग करने में पसोपेश नहीं है। वे पुरुष के रूप और आयु का भी विचार नहीं करतीं। कुरूप हो चाहे रूपवान्, उन्हें तो पुरुष चाहिए। वे धर्म के डर से, कुल के डर से, दयावश या धन के लोभ से पति के अधीन नहीं रह सकतीं। अच्छे घराने की युवतियाँ भी उन वेश्याओं का सा व्यवहार करना पसन्द करती हैं जो कि वस्त्राभूषण से सजी रहती हैं। पति द्वारा अनेक उपायों से सुरक्षित रक्खी जाने पर भी स्त्रियाँ कुबड़े, अन्धे, बौने और पँगुले आदि निन्दित पुरुषों पर आसक्त हो जाती हैं। उनके समान कामान्ध कोई नहीं
२१ है। पुरुष नहीं मिलता तो स्त्रियाँ कृत्रिम उपायों द्वारा परस्पर भोग कर लेती हैं। वे केवल पर-पुरुष के न मिलने, कुटुम्बियों के भय और मारपीट के डर से अपने धर्म की रक्षा करती हैं। वे बड़ी चञ्चल होती हैं। स्त्रियों को उनके धर्म में स्थिर रखना और उनके मन का भाव जानना बहुत कठिन है। जिस तरह लकड़ियों के ढेर से आग की, असंख्य नदियों से समुद्र की और सब प्राणियों का संहार करने से मृत्यु की तृप्ति नहीं होती उसी तरह अनेक पुरुषों का संसर्ग करने पर भी स्त्रियाँ सन्तुष्ट नहीं होतीं। सुन्दर पुरुष को देखते ही वे कामोन्मत्त हो जाती हैं। पति द्वारा सब इच्छाएँ पूरी होने, प्रिय काम किये जाने और बड़े यत्न से सुरक्षित रक्खी जाने पर भी स्त्रियाँ उनको छोड़ देती हैं। उन्हें पुरुष का संसर्ग जितना प्रिय है उतना अनेक प्रकार की भोग्य वस्तुएँ, दिव्य आभूषण और सुन्दर घर आदि प्रिय नहीं है। यदि तराजू में एक ओर यम, वायु, मृत्यु, पाताल, बड़वानल, छुरे की धार, विष, साँप और आग को तथा दूसरी ओर स्त्रियों को रखकर तोला जाय तो स्त्रियाँ उनसे कम भयङ्कर न ठहरेंगी। विधाता ने जिस समय सृष्टि का काम आरम्भ करके सब महाभूतों और स्त्री-पुरुषों की सृष्टि की है उसी समय
३० स्त्रियों के दोष भी उत्पन्न कर दिये हैं।

उनतालीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से स्त्रियों के दुश्चरित्र का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, संसार में पुरुष स्त्रियों पर और स्त्रियाँ पुरुषों पर आसक्त रहती हैं। यह देखकर मुझे सन्देह होता है कि जब स्त्रियाँ अनेक दोषों की खानि हैं तब पुरुष उन पर क्यों मरते हैं। समझ में नहीं आता कि स्त्रियाँ किस पुरुष से प्रेम करती हैं और किससे नहीं करतीं। वे अपने हाव-भाव से पुरुषों को मोहित कर लेती हैं। उनके हाथ में

पड़ जाने पर कोई पुरुष अपनी रक्षा नहीं कर सकता। जैसे गायें नई-नई घास चरना पसन्द करती हैं वैसे ही स्त्रियाँ सदा नये-नये पुरुषों का संसर्ग चाहती हैं। शम्बर, नमुचि, बलि और कुम्भीनसि आदि दैत्य जिस माया का विस्तार कर गये हैं वह सारी माया स्त्रियाँ जानती हैं। पुरुष के रोने पर वे बनावटी रोना रोने लगती हैं और हँसने पर उसी तरह हँसती हैं। आवश्यकता पड़ने पर मीठी-मीठी बातों से वे जिसे चाहती हैं उसे वश में कर लेती हैं। नीति-शास्त्र के रचयिता शुक्राचार्य और बृहस्पति की बुद्धि भी स्त्रियों की बुद्धि के आगे कुछ नहीं है। मनुष्य है ही किस लेखे ? स्त्रियाँ सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध कर देती हैं। मैं समझता हूँ कि बृहस्पति आदि ने स्त्रियों की चातुरी और उनके कामों को देखकर अर्थ-शास्त्र की रचना की होगी। १०
एक पुरुष उनका सम्मान करता है और दूसरा निरादर, किन्तु वे उन दोनों पर हाथ साफ़ करती हैं। इस समय की स्त्रियों के आचार-व्यवहार देखकर प्राचीन समय की धर्मपरायणा स्त्रियों के पातिव्रत धर्म के विषय में भी मुझे सन्देह होता है। जो हो, मुझे जान पड़ता है कि स्त्रियों को पर-पुरुष के संसर्ग से बचाना बड़ा कठिन है। अतएव बतलाइए कि स्त्रियों को पर-पुरुष के संसर्ग से किस तरह बचाया जाय अथवा यदि किसी ने पहले किसी स्त्री को पर-पुरुष के संसर्ग से निवृत्त किया हो तो उदाहरण दीजिए। १४

चालीसवाँ अध्याय

दुश्चरित्राओं की रक्षा करने की कठिनता के विषय में महात्मा विपुल का उपाख्यान

भीष्म कहते हैं—बेटा, तुमने स्त्रियों के विषय में जो बातें कही हैं वे सच हैं। प्राचीन समय में महात्मा विपुल ने जिस तरह गुरुपत्नी को पर-पुरुष के संसर्ग से बचाया था और ब्रह्माजी ने जिस निमित्त सम्पूर्ण ज्ञान को आच्छन्न कर देनेवाली स्त्री-जाति को उत्पन्न किया है वह सुनो। संसार में स्त्रियों से बढ़कर कोई पापी नहीं है। प्रज्वलित अग्नि, मय दानव की माया, छुरे की धार, विष, साँप और मौत, इन सबके साथ स्त्रियों की तुलना की जा सकती है। सुना है कि पहले प्रजा अत्यन्त धार्मिक थी। वह अपने पुण्य से स्वयं देवत्व प्राप्त कर लेती थी। यह देखकर देवता डर के मारे ब्रह्माजी की शरण में जाकर चुपचाप, सिर झुकाकर, बैठ गये। ब्रह्माजी ने देवताओं का भाव समझकर, मनुष्यों को मोहित करने के लिए, स्त्री-जाति की सृष्टि कर दी। प्राचीन समय में स्त्रियाँ पतिव्रता थीं; जब से प्रजापति ने इस प्रकार की स्त्री-जाति उत्पन्न कर दी तब से स्त्रियाँ व्यभिचार करने लगीं।

ब्रह्माजी ने इस प्रकार की स्त्रियों को पैदा करके उनमें विषय-भोग की इच्छा उत्पन्न कर दी। वे विषय-वासना के लिए पुरुषों को मोहित करने लगीं। इसके बाद ब्रह्माजी ने काम के

सहायक क्रोध को उत्पन्न कर दिया। फिर तो पुरुष काम-क्रोध के वश होकर स्त्रियों पर आसक्त होने लगे। स्त्रियों का न तो कोई धर्म ही निश्चित है और न कोई कर्म ही। वे वीर्य-हीन, शास्त्रज्ञानशून्य और मिथ्या की मूर्ति होती हैं। उनको शय्या, अलङ्कार, अन्न, पान, अनार्यता और गाली-गलौज से प्रीति होती है; कामुकता तो उन्हें विधाता ने दी है। इस दशा में उन्हें पर-पुरुष के संसर्ग से कौन बचा सकता है? ब्रह्माजी भी स्त्रियों को उनके धर्म में दृढ़ नहीं रख सकते। हे धर्मराज, मैंने स्त्री-जाति की उत्पत्ति का विषय तुमको बतला दिया। अब महात्मा विपुल का, गुरुपत्नी को पर-पुरुष के संसर्ग से बचाने का, उपाख्यान सुनो।

पूर्व समय में देवशर्मा नाम के एक ऋषि थे। उनकी स्त्री का नाम रुचि था। वह परम सुन्दरी थी। देव, दानव और गन्धर्व उसका अलौकिक सौन्दर्य देखकर मोहित हो जाते थे। इन्द्र उस कामिनी के सौन्दर्य पर मोहित होकर उससे मिलने के लिए उपाय सोचा करता था। महर्षि देवशर्मा स्त्री-जाति के स्वभाव और इन्द्र की लम्पटता को जानते थे, इसलिए वे अपनी स्त्री पर कड़ी नज़र रखते थे।

एक बार महर्षि देवशर्मा को कहीं यज्ञ कराने जाना था। वे यह सोच रहे थे कि स्त्री की रक्षा का क्या प्रबन्ध करें। अन्त को उन्होंने अपने प्रिय शिष्य विपुल से कहा—बेटा, मैं यज्ञ कराने जाऊँगा। इन्द्र हमेशा मेरी स्त्री की घात में रहता है। वह पापी, माया के बल से, अनेक रूप धारण कर सकता है। अतएव तुम सावधानी से इसकी देख-भाल करना।

यह सुनकर, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी, जितेन्द्रिय महातपस्वी विपुल ने पूछा—भगवन्! इन्द्र कौन-कौन से रूप धारण कर सकता है? उसका शरीर और तेज किस प्रकार का है?

देवशर्मा ने कहा—बेटा, मैं तुमको इन्द्र की माया का हाल विस्तार के साथ बतलाता हूँ। वह दुष्ट क्षण-क्षण में अनेक वेश बदल सकता है। वह कभी किरीट, कभी वज्र, कभी धनुष, कभी मुकुट और कभी कुण्डल धारण कर लेता है। वह दम भर में चण्डाल के समान हो जाता है। वह पापी कभी शिखा, कभी जटा और कौपीन धारण करता तथा कभी स्थूल और कभी सूक्ष्म शरीर धारण कर लेता है। वह कभी लम्बा तड़ङ्ग हो जाता है। कभी गोरा, कभी काला, कभी साँवला, कभी रूपवान्, कभी कुरूप, कभी वायुरूपी, कभी जवान, कभी बूढ़ा, कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य, कभी शूद्र, कभी प्रतिलोम जाति और कभी अनुलोम जाति बन जाता है। वह कभी तोता, कभी कौआ, कभी हंस, कभी कोयल, कभी बाघ, कभी सिंह, कभी हाथी, कभी देवता, कभी दैत्य, कभी राजा, कभी पक्षी, कभी चौपाया, कभी मक्खी और कभी मच्छर आदि का रूप धारण कर लेता है। दूसरों की कौन कहे, जिन्होंने इस संसार की सृष्टि की है वे भी उस पापी के रूपों का निश्चय नहीं कर सकते। वह दुष्ट जब दूसरा रूप धारण कर लेता है तब केवल ज्ञानचक्षु द्वारा पहचाना जा सकता है। अतएव तुम मेरी स्त्री की रक्षा

बड़ी बुद्धिमानी से करना। जिस तरह कुत्ता यज्ञ की वस्तुएँ जूठी कर डालता है उसी तरह इन्द्र मेरी स्त्री को दूषित न करने पावे।

यों कहकर महर्षि देवशर्मा ने वहाँ से प्रस्थान किया। इसके बाद महात्मा विपुल ४०
सोचने लगे कि अब मैं किस तरह इन्द्र से गुरु की स्त्री की रक्षा करूँ। इन्द्र बड़ा मायावी और महापराक्रमी है। मैं आश्रम या कुटी का द्वार बन्द करके अथवा पौरुष दिखाकर उसका आना नहीं रोक सकता। वह वायु का रूप धारण करके भी आसानी से गुरु-पत्नी के पास पहुँच सकता है। अतएव मैं योग के बल से गुरु-पत्नी के शरीर में प्रविष्ट हो जाऊँ तभी उनकी रक्षा कर सकता हूँ। यदि आज इन्द्र गुरु-पत्नी के साथ भोग कर जायगा तो गुरुजी को यह बात अवश्य मालूम हो जायगा और वे कुपित होकर मुझे शाप दे देंगे। इसलिए इन्द्र से उनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए। गुरु की आज्ञा का पालन करना भी मेरा कर्तव्य है। यदि आज मैं योग के बल से गुरु-पत्नी के शरीर में प्रविष्ट होकर उनकी रक्षा कर सकूँ तो बड़ा अद्भुत काम सिद्ध होगा। कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद जिस तरह पत्ते के साथ निर्लिप्त रहती ५०
है उसी तरह मैं बेलाग रहकर गुरु-पत्नी के शरीर में प्रवेश करूँगा तो मुझे दोष न लगेगा। अतएव आज मैं इस तरह से उनके शरीर में निवास करूँगा।

हे धर्मराज! महात्मा विपुल ने गुरु-पत्नी की रक्षा के विषय में इस प्रकार विचार करके धर्म, वेद-शास्त्र और अपने तथा गुरु के तपोबल का ध्यान करके गुरु-पत्नी की रक्षा के लिए तैयारी की। उनके पास बैठकर उनको अनेक प्रकार की कथाओं में विपुल ने मोहित कर लिया। फिर वे योग के बल से उनकी आँखें ढककर—जिस तरह वायु आकाश में प्रविष्ट होता है उसी तरह—उनके शरीर में प्रविष्ट हो गये और अपने अवयवों द्वारा उनके शरीर को शिथिल करके, छाया के समान, उनके शरीर में ठहर गये। ६०

इकतालीसवाँ अध्याय

गुरुपत्नी के शरीर में योग-बल से महात्मा विपुल के प्रविष्ट हो जाने पर इन्द्र का आना। विपुल के डाँटने पर इन्द्र का भाग जाना और गुरु के आने पर सब हाल कहकर विपुल का तप के लिए चला जाना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इन्द्र मौका पाकर स्त्रियों को मोहित करनेवाला मनोहर वेश धारण करके महर्षि देवशर्मा के आश्रम में आया। उसने देखा कि महातपस्वी विपुल, पुतली के समान, निश्चेष्ट भाव से बैठे हैं और चन्द्रमुखी कमलनयनी रुचि उनके पास बैठी हुई है। इन्द्र का सौन्दर्य देखकर परम सुन्दरी रुचि विस्मित हो गई। उसने उठकर इन्द्र का परिचय पूछना

चाहा; किन्तु महात्मा विपुल के प्रभाव से वह ऐसा न कर सकी। तब इन्द्र ने रुचि से मधुर वचनों में कहा—सुन्दरी, मैं इन्द्र हूँ। काम के बाण से पीड़ित होकर तुम्हारे पास आया हूँ। तुम शीघ्र मेरी इच्छा पूरी करो। ये बातें सुनकर रुचि, अपने शरीर में स्थित विपुल के प्रभाव से, न तो उठ सकी और न इन्द्र की बातों का कुछ उत्तर ही दे सकी। महात्मा विपुल गुरुपत्नी के अभिप्राय को समझकर योग के 'बन्धों' से उनकी इन्द्रियों को पहले की अपेक्षा दृढ़ रूप से रोककर इन्द्र की बातें सुनने लगे। देवराज ने रुचि को निश्चेष्ट देखकर लज्जित भाव से फिर कहा—सुन्दरी, तुम शीघ्र मेरा मनोरथ सफल करो। इन्द्र के यों कहने पर रुचि ने मधुर वचन से उसका स्वागत करना चाहा; किन्तु उनके शरीर में स्थित विपुल के प्रभाव से उनके मुँह से यह वाक्य निकला—देवराज, तुम यहाँ क्यों आये? अकस्मात् अपने मुँह से यह कड़वी बात निकल पड़ने पर रुचि बहुत लज्जित हुई।

रूखा उत्तर पाकर इन्द्र उदास हो गया। अन्त को उसने दिव्य चक्षु द्वारा, दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान, रुचि के शरीर में अतुल तेजस्वी महातपस्वी विपुल को देखा। उनको देखते ही शाप के डर से इन्द्र काँपने लगा।

अब महातपस्वी विपुल गुरुपत्नी के शरीर से निकलकर अपने शरीर में आ गये और इन्द्र से कहने लगे—अरे पापी, मूर्ख! तेरी लम्पटता की बदौलत शीघ्र ही देवता और मनुष्य तेरी पूजा करना छोड़ देंगे। एक बार इसी दोष के कारण महर्षि गौतम के शाप से तेरे शरीर भर में योनि-चिह्न हो गये थे; क्या तू उस बात को भूल गया? तेरे समान मूर्ख, दुराचारी और नीच कोई नहीं है। मैं गुरुपत्नी की रक्षा कर रहा हूँ। अतएव तू शीघ्र यहाँ से चला जा। यदि मैं दया न करूँ तो तू इसी दम मेरे तेज से जलकर भस्म हो जाय। अरे नीच, यदि तू जीवित रहना चाहता है तो भाग जा, नहीं तो महातपस्वी मेरे गुरु देवशर्मा के आ जाने पर तू उनकी क्रोधपूर्ण दृष्टि से भस्म हो जायगा। तुझे सदा ब्राह्मणों का सम्मान करना चाहिए। तू अब कभी ऐसा निन्दित काम करने का इरादा न करना, नहीं तो ब्राह्मणों के साथ अत्याचार

अङ्गराज की स्त्री ने उन फुलों को देखकर रुचिसे कहा—बहन ! तुमे अपने आश्रम मे जाकर मेरे लिये इसी तरह के फुल भेज देना, भूल न जाना ।—पृ० ४०३३

करके उनके तेज से, पुत्र और मन्त्रियों समेत, नष्ट हो जावेगा। तू यह न समझना कि अमर होने से तेरा अनिष्ट कोई नहीं कर सकता। याद रख, तपोबल के आगे कोई काम असाध्य नहीं है।

यों फटकारे जाने पर इन्द्र लज्जा के मारे उन्हें कुछ उत्तर न दे सका और वहीं अन्तर्धान हो गया। इसके दो घड़ी बाद महातपस्वी देवशर्मा यज्ञ समाप्त करके अपने आश्रम में आये। प्रिय शिष्य महातपस्वी विपुल गुरु को प्रणाम करके और उन्हें उनकी स्त्री सौंपकर पहले की तरह उनके सामने बेखटके खड़े हो गये। अपनी स्त्री के साथ एक आसन पर बैठकर जब गुरुजी विश्राम कर चुके तब विपुल ने उन्हें इन्द्र की करतूत कह सुनाई। महातपस्वी देवशर्मा ने सब हाल सुनकर विपुल की सुशीलता, सत्स्वभाव, तपस्या, नियम, दृढ़ गुरुभक्ति और धर्म-निष्ठा के कारण उनके काम की प्रशंसा करके उनको छाती से लगाकर कहा कि बेटा, वरदान माँग लो। तब विपुल ने धर्म में बुद्धि दृढ़ रहने का वरदान माँगा। देवशर्मा से वरदान पाकर और उनकी आज्ञा लेकर महात्मा विपुल अनेक स्थानों में विचरने लगे। महातपस्वी देवशर्मा भी, इन्द्र से निर्भय होकर, स्त्री समेत उस निर्जन वन में सुख से रहने लगे। ३६

बयालीसवाँ अध्याय

विपुल का गुरु की आज्ञा से दिव्य पुष्पों के लिए वन को जाने पर, दो व्यक्तियों द्वारा अपनी दुर्गति का हाल सुनकर, अपने दुष्कर्म का स्मरण करना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इसके बाद महात्मा विपुल घोर तपस्या करके 'मैं सिद्ध हो गया हूँ और मैंने दोनों लोकों को जीत लिया है' यह समझकर बड़ी हेकड़ी के साथ विचरने लगे। कुछ दिनों बाद रुचि की बड़ी बहन, अङ्गराज चित्ररथ की पत्नी, प्रभावती के घर एक उत्सव हुआ। प्रभावती ने उसमें अपनी बहन रुचि को निमन्त्रण दिया। इसके पहले स्वर्ग की एक अप्सरा सोलहों शृङ्गार किये आकाश-मार्ग से जा रही थी। उसके अङ्ग से सहसा कुछ दिव्य सुगन्धित पुष्प, देवशर्मा के आश्रम के पास, वन में गिर पड़े। अपने स्वामी के साथ घूमते समय रुचि ने उन फूलों को देखकर उठा लिया। वह बहन का नेवता पाकर उन फूलों को चोटी में गूँथकर अङ्गराज के यहाँ गई। अङ्गराज की स्त्री ने उन फूलों को देखकर रुचि से कहा—बहन! तुम अपने आश्रम में जाकर मेरे लिए इसी तरह के फूल भेज देना, भूल न जाना। आश्रम में आकर रुचि ने महर्षि देवशर्मा को अपनी बहन की माँग कह सुनाई। उन्होंने शिष्य विपुल को बुलवाकर कहा—बेटा, तुम झटपट इस तरह के फूल तो ले आओ।

आज्ञा पाकर महातपस्वी विपुल उस स्थान पर गये जहाँ वे फूल मिले थे। उन्होंने देखा कि वहाँ उसी तरह के बहुत से फूल पड़े हुए हैं। उनमें एक भी फूल मुरझाया हुआ नहीं है। उन दिव्य पुष्पों को लेकर महात्मा विपुल बड़ी प्रसन्नता से, चम्पक वन से युक्त, चम्पा नगरी

की ओर चले। थोड़ी दूर चलकर उन्होंने देखा कि निर्जन वन में एक स्त्री और पुरुष, एक दूसरे का हाथ पकड़े, चक्र के समान घूम रहे हैं। उनमें से एक कुछ तेज़ी से घूमने लगा। यह देखकर

२१

द्वितीय ने कहा—तुम जल्दी क्यों करते हो? उसने उत्तर दिया—मैं अपने नियम के अनुसार चल रहा हूँ, जल्दी नहीं चलता। इस तरह वे दोनों उत्तर-प्रत्युत्तर देते-देते आपस में झगड़ पड़े। तब उन दोनों ने आपस में यह क़सम खाई कि हम दोनों में जो झूठ बोलता हो उसकी, परलोक में, महात्मा विपुल की सी दुर्गति हो।

उनकी यह शपथ सुनकर महात्मा विपुल दुखी होकर सोचने लगे कि मैंने इतनी कठोर तपस्या की है, किन्तु इन दोनों की बातों से मालूम होता है कि परलोक में मेरी बड़ी दुर्गति होगी। इन मनुष्यों ने मुझे पापी क्यों ठहराया है? मैंने कौन सा दुष्कर्म किया है? महात्मा विपुल इस प्रकार चिन्तित होकर बड़े दुःख के साथ अपने दुष्कर्म के विषय में सोचने लगे। थोड़ी देर बाद और छः मनुष्य उनको देख पड़े। वे प्रसन्नता से, लोभ के मारे, सोने-चाँदी के पाँसों से जुआ खेल रहे थे। खेलते-खेलते उन लोगों ने क़सम खाकर कहा कि हम लोगों में जो मनुष्य लोभ के वश होकर अन्याय करेगा उसकी, परलोक में, महात्मा विपुल की सी दुर्गति होगी।

इन छहों की बातें सुनकर महात्मा विपुल को निश्चय हो गया कि मैं सचमुच पापी हूँ; किन्तु बहुत सोचने पर भी उन्हें अपना कोई पाप स्मरण न आया। अन्त को बहुत दिनों बाद उनको स्मरण हो आया कि मैंने इन्द्र से गुरुपत्नी रुचि को बचाने के लिए उनके शरीर में प्रवेश किया था, परन्तु गुरुजी को यह हाल नहीं बतलाया। यही घोर पाप मुझसे हुआ है।

महात्मा विपुल ने यह निश्चय करके चम्पा नगरी में गुरु के पास पहुँचकर, फूल देकर,

३३ उनकी यथोचित पूजा की।

तेंतालीसवाँ अध्याय

गुरु का विपुल के दुष्कर्म का स्मरण दिलाना और अपने प्रिय शिष्य विपुल तथा अपनी स्त्री समेत स्वर्ग को जाना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इसके बाद महात्मा देवशर्मा ने प्रिय शिष्य विपुल से कहा—बेटा, तुमने वन में जो कुछ देखा है वह सब मैं जानता हूँ। तुमने जिस तरह रुचि की रक्षा की थी वह सब मुझे, रुचि को और तुमने वन में जिन मनुष्यों को देखा है उनको मालूम है।

विपुल ने पूछा—भगवन्, मैंने वन में जिन दो व्यक्तियों को और दूसरे जिन छः पुरुषों को देखा है वे कौन हैं और उनको किस तरह मेरे काम मालूम हो गये?

देवशर्मा ने कहा—बेटा, तुमने वन में जिस स्त्री-पुरुष के जोड़े को देखा है वे दिन-रात हैं और चक्र के समान सदा सर्वत्र घूमा करते हैं तथा जिन छः पुरुषों को पाँसे खेलते देखा है वे छः ऋतुएँ हैं। तुम्हारा पाप उनसे छिपा नहीं है। निर्जन स्थान में पाप करके किसी को यह न समझना चाहिए कि 'मेरा यह दुष्कर्म किसी को न मालूम हो सकेगा।' निर्जन स्थान में पापी जो दुष्कर्म करता है उसे दिन, रात और छहों ऋतुएँ देखती रहती हैं। डर के मारे तुमने मुझे नहीं बतलाया कि रुचि की रक्षा किस प्रकार की थी, इसी से परलोक में तुम्हारी दुर्गति होगी। 'इसे कोई नहीं जान सकता' यह समझकर तुम निश्चिन्त थे, इसी से नर-रूपधारी दिन-रात और ऋतुओं ने वन में तुमको तुम्हारे दुष्कर्म का स्मरण दिला दिया। मनुष्य शुभ या अशुभ जो कर्म करता है वह दिन, रात और ऋतुओं से छिपा नहीं रहता। १०
रुचि की रक्षा करने में असमर्थ होकर तुमने निर्विकार चित्त से उसके शरीर में प्रवेश किया था, इसी से मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। यदि तुम्हारा कोई दोष होता तो मैं क्रोध करके तुम्हें शाप दे देता। स्त्रियाँ पुरुष पर और पुरुष स्त्रियों पर आसक्त हो जाते हैं, अतएव रुचि की रक्षा करते समय यदि तुम्हारे मन में कोई विकार उत्पन्न होता तो मैं निस्सन्देह तुमको शाप दे देता। जो हो, तुमने जिस तरह मेरी स्त्री की रक्षा की थी वह तुम मुझे साफ़-साफ़ पहले ही बतला देते। अब तुम मेरे वरदान से स्वर्ग को जाओगे। बस, महर्षि देवशर्मा विपुल को और अपनी स्त्री रुचि को साथ लेकर स्वर्ग को चले गये।

हे धर्मराज, महर्षि मार्कण्डेय ने भागीरथी-तट पर बैठकर, कथा के प्रसङ्ग में, मुझे यह उपाख्यान सुनाया था। स्त्रियों की रक्षा हमेशा सावधानी से करनी चाहिए। संसार में भली और बुरी दोनों तरह की स्त्रियाँ होती हैं। भली स्त्रियाँ संसार की माता हैं। वे इस भूमण्डल में सुख-शान्ति रखती हैं। कुलघातिनी दुश्चरित्रा स्त्रियाँ लक्षणों से पहचान ली जाती हैं। २०
महात्मा विपुल की भाँति उपाय किये बिना दुश्चरित्राओं की रक्षा नहीं की जा सकती। उनका स्वभाव तीव्र होता है। वे जो चाहे कर गुज़रती हैं। जो पुरुष उनके साथ काम-क्रीड़ा करता

है उसी को वे अपना प्रिय समझती हैं; और कोई उनको प्रिय नहीं होता। एक पुरुष से उनको तृप्ति नहीं होती। वे दूसरे को सङ्कट में तक डाल देती हैं। उनके साथ न किसी को ईर्ष्या करनी चाहिए न प्रीति। केवल धर्म की रक्षा के लिए, अनासक्त चित्त से, उनके साथ संसर्ग रक्खे। जो पुरुष उनके साथ ऐसा व्यवहार नहीं करता वह कहीं का नहीं रह जाता। महात्मा विपुल ने ही योग के बल से गुरुपत्नी की रक्षा की थी। उनके सिवा त्रैलोक्य में दूसरा
२७ कोई किसी स्त्री की रक्षा नहीं कर सका।

चवालीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से कन्यादान का विषय पूछना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! योग्य वर के साथ कन्या का विवाह करने से ही देवताओं की पूजा, पितरों का तर्पण, अतिथि का सत्कार और अपने कुटुम्ब का पालन आदि काम होते हैं। अतएव आप मुझे बतलाइए कि किस प्रकार के पात्र को कन्या देनी चाहिए।

भीष्म कहते हैं—बेटा! वर का स्वभाव, उसकी विद्या, कुल-मर्यादा और उसके कार्य की परीक्षा करके तब उसे कन्यादान करे। ऐसे विवाह को ब्राह्मविवाह कहते हैं। ब्राह्मविवाह ब्राह्मणों के लिए श्रेष्ठ है। वर को धन आदि द्वारा अपने अनुकूल करके जो कन्या दान किया जाता है वह विवाह प्राजापत्य कहलाता है। प्राजापत्य विवाह ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों के लिए श्रेष्ठ है। वर और कन्या की पसन्द से जो विवाह होता है उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं। वर बहुत सा धन देकर कन्या को मोल लेकर या कन्यापक्ष के पालन करने का लोभ देकर जो विवाह करता है वह विवाह आसुर है और कन्यापक्ष के लोगों को मार-पीटकर रोती हुई कन्या को बलपूर्वक छीनकर जो विवाह किया जाता है वह राक्षस विवाह है। कन्यापक्ष की असावधानी में कन्या को हरण करने से जो विवाह होता है वह पैशाच है। इन पांच प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, प्राजापत्य और गान्धर्व, ये तीन धर्म-सङ्गत हैं तथा राक्षस
१० और पैशाच दोनों ही निन्दनीय हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की कन्या के साथ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की कन्या के साथ क्षत्रिय तथा केवल वैश्य की कन्या के साथ वैश्य विवाह कर सकता है। द्विजों में अपनी जाति की स्त्री ही प्रधान है। किसी-किसी की सम्मति है कि ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण, केवल भोग करने के लिए, शूद्र की कन्या भी ले सकते हैं; किन्तु इसका निषेध भी किया गया है। सारांश यह कि ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों का शूद्रा के गर्भ से सन्तान उत्पन्न करना, सबके मत से, निन्दनीय है। ब्राह्मण यदि शूद्रा के गर्भ से सन्तान उत्पन्न करे तो उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए। तीस वर्ष की आयु के पुरुष के साथ दस वर्ष की और इक्कीस

वर्ष के युवक से सात वर्ष की कन्या का विवाह करना चाहिए। जिस कन्या का पिता और भाई दोनों न हों, उसके साथ विवाह न करे; क्योंकि उस पर यह सन्देह रहता है कि इसके पिता ने इसे पुत्र के स्थान में तो नहीं मान लिया है। रजस्वला हो जाने पर कन्या तीन वर्ष तक अपने कुटुम्बियों द्वारा विवाह होने की प्रतीक्षा करे, उसके बाद वह स्वयं अपनी पसन्द का पति चुन ले। जो कन्या ऐसा करती है उसका पति पर अटल प्रेम होता है और सन्तान की वृद्धि होती है। जो कन्या इसके विरुद्ध आचरण करती है वह निन्दनीय है। मनु के मत से नाना के सपिण्ड में और पिता के गोत्र में कन्या का विवाह न होना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! यदि किसी कन्या का विवाह करने के लिए एक पुरुष ने पहले उसका शुल्क दिया हो, फिर दूसरे ने उसी कन्या के भाई-बन्धुओं को राज़ी करके उसके साथ अपना विवाह पक्का करा लिया हो, इसके बाद तीसरा कोई पुरुष उसी कन्या को ज़बरदस्ती छीन लेना चाहता हो और चौथे पुरुष ने अधिक धन देने का लोभ दिखाकर कन्यापक्ष के लोगों को राज़ी कर लिया हो तथा उसके बाद किसी और पुरुष के साथ विधिपूर्वक उस कन्या का विवाह कर दिया जाय तो धर्म के अनुसार वह किसकी भार्या है? २०

भीष्म कहते हैं—बेटा, मनुष्य सलाह करके जिसके साथ कन्या का विवाह पक्का कर लें उसके विरुद्ध करने से उनको पाप लगता है। अतएव जिसे कन्या देने का निश्चय कर लिया हो उसी के साथ विवाह करे। ऐसा न करने से पाप लगता है। किन्तु जिसके साथ विवाह करना निश्चित किया गया है वह कन्या का पति नहीं हो जाता। यदि पहले किसी पुरुष के साथ विवाह करने की बातचीत हुई है और फिर पसन्द न आने के कारण उसके साथ विवाह न किया जाय तो उस कन्या का प्रायश्चित्त करना चाहिए। किसी-किसी का मत है कि ऐसे अवसर पर कन्या का प्रायश्चित्त करने की कोई आवश्यकता नहीं। मनु ने कहा है कि जो पुरुष कन्या को पसन्द नहीं होता उससे सहवास करने से यश और धर्म की हानि होती है। अतएव इस तरह का विवाह करना उचित नहीं। कन्या के भाई-बन्धुओं के सिवा यदि और कोई मनुष्य वर ठहरा दे तो भाई-बन्धुओं को अधिकार है कि यदि वह नापसन्द हो तो उसके साथ विवाह न करके दूसरे पुरुष के साथ कर दें। कन्यापक्षवालों ने यदि कन्यादान करने के लिए किसी पुरुष से कन्या का शुल्क भी ले लिया हो तो भी उसके साथ विवाह न करके दूसरे के साथ कर देने पर भी कोई दोष नहीं है। सारांश यह कि जब मन्त्र पढ़कर कन्या-दान किया जाता है और वर मन्त्रपाठ-पूर्वक पाणिग्रहण करता है तभी विवाह सिद्ध होता है। विवाह के समय वर, कन्या और कुटुम्बी लोग मन्त्र पढ़कर जो प्रतिज्ञा करते हैं वही प्रतिज्ञा सबसे श्रेष्ठ है। पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार स्त्री मिलती है, अतएव जिस कन्या के बन्धु-बान्धव पहले दूसरे किसी के साथ विवाह करने का निश्चय करके या कन्या का शुल्क

लेकर फिर जिस अन्य पुरुष के साथ विवाह कर देते हैं, उसकी न तो निन्दा होती और न उसे कोई पाप लगता है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यदि कन्या के पिता आदि ने कन्यादान करने का वादा करके किसी पुरुष से शुल्क ले लिया है और उसके बाद उसी कन्या के लिए उन्हें पहले की अपेक्षा कोई अच्छा वर मिल रहा है तो पहले जिससे शुल्क लिया है उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर सकते हैं या नहीं? ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए, जिससे कन्या के
३० पिता आदि का कल्याण हो।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, शुल्क देने से कुछ कन्या का ब्याह पक्का नहीं हो जाता और न शुल्क देने से विवाह हो जाने का कोई दृढ़ विश्वास ही करता है। अतएव किसी मनुष्य से शुल्क लेने पर उसके साथ विवाह कर देने की कोई पाबन्दी नहीं है। यदि वर को बुलाकर उससे यह कहा जाय कि तुम मेरी कन्या को गहने पहनाकर अपने साथ विवाह कर लो और ऐसा कहने पर वह वर अलङ्कार आदि देकर विवाह कर ले तो वह कन्यादान शास्त्र-सङ्गत है। इसके साथ कन्या का विवाह करूँगा, इसके साथ न करूँगा, इसके साथ अवश्य करूँगा, ऐसे इरादे करने से विवाह सिद्ध नहीं हो जाता। जब तक कन्या का पाणिग्रहण नहीं हो जाता तब तक एक मनुष्य से कन्या का शुल्क लेकर दूसरे के साथ विवाह कर देने से कन्यापहरण दोष नहीं लगता। देवता भी कन्यादान के सम्बन्ध में ऐसा ही व्यवहार करते हैं। महर्षियों का मत है कि नापसन्द मनुष्य को कन्यादान न दे; क्योंकि ऐसे पुरुष के वीर्य से अच्छी सन्तान नहीं उत्पन्न होती। कन्या के ख़रीदने और बेचने में अनेक विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं, अतएव शुल्क देने पर विवाह हो जाने का पूरा विश्वास न कर ले।

मैं मगध, काशी और कोसल देशवालों को परास्त करके विचित्रवीर्य के लिए दो कन्याएँ ले आया था। विचित्रवीर्य ने उनमें से एक के साथ तो विवाह कर लिया और दूसरी को छीन-कर लाई हुई कहकर, बिना विवाह के ही, पत्नी बनाना चाहा। तब चाचा वाह्लीक ने कहा कि विवाह किये बिना पत्नी बना लेना उचित नहीं होता, अतएव इस कन्या का विवाह न करना
४० हो तो इसे त्याग दो। यह सुनकर मैंने बड़े सन्देह के साथ उनसे पूछा कि महाराज, मैं इस विषय को विशेष रूप से सुनना चाहता हूँ। धर्मात्मा वाह्लीक ने मेरे अभिप्राय को समझकर कहा—बेटा, यदि तुम लोग पाणिग्रहण को पत्नीत्व-सिद्धि का कारण न मानकर शुल्क को पत्नीत्व-सिद्धि का कारण मानते हो तो यह व्यवस्था शास्त्र के विरुद्ध हो रही है। शास्त्र की आज्ञा है कि पाणिग्रहण किये बिना पत्नीत्व सिद्ध नहीं होता। धर्मज्ञ विद्वानों का कहना है कि जो पाणिग्रहण के बिना शुल्क देने को ही विवाह हो जाने की सिद्धि मानते हैं उनकी बात विश्वास के योग्य नहीं है। इसके सिवा कन्यादान होने पर भी [illegible]

ख़रीदने और बेचने से ही विवाह का हो जाना सुना भी नहीं गया। अतएव जो मनुष्य ख़रीदने और बेचने को ही विवाह होना मानते हैं उनको धार्मिक नहीं कहा जा सकता। जिनका इस प्रकार का सिद्धान्त है उन्हें कन्यादान न दे और जो कन्या धन आदि देकर मोल ली गई है उसका पाणिग्रहण करना भी उचित नहीं। कन्या का बेचना और मोल लेना निषिद्ध है। जो लोभी नीच मनुष्य दासी ख़रीदता और बेचता है वही कन्या को मोल लेता और बेचता है।

एक बार कुछ मनुष्यों ने महाराज सत्यवान् के पास जाकर पूछा—महाराज, यदि कोई मनुष्य कन्या के दाम देकर मर जाय तो उस कन्या का विवाह दूसरे के साथ करना चाहिए या नहीं?

धर्मात्मा सत्यवान् ने उत्तर दिया—सज्जनो, कन्या का दाम देनेवाले मनुष्य के जीवित ५०
रहने पर भी यदि कोई उससे योग्य पुरुष मिल जाय तो उसके साथ कन्या का विवाह कर देना चाहिए। जब शुल्क देनेवाले की जीवित अवस्था में ही ऐसा कर देना उचित है तब उसके मर जाने पर दूसरे पुरुष के साथ उस कन्या का विवाह कर देने में क्या सन्देह है? किसी के साथ कन्या का विवाह निश्चित करके और पाणिग्रहण के लिए कन्यादान के पहले के सब काम हो चुकने पर भी यदि दूसरे वर के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया जाय तो कन्यादान देनेवाले को कोई पाप नहीं लगता, केवल झूठ बोलने का दोष होता है। सारांश यह कि सात भाँवरें हो जाने पर ही विवाह का होना माना जाता है। जल लेकर जिसे कन्यादान दिया जाता है और जो विधिपूर्वक कन्या का पाणिग्रहण करता है, कन्या उसी की भार्या होती है। ब्राह्मण अपनी बराबरी के वंश में उत्पन्न, अनुकूल, कन्या के साथ सात परिक्रमाएँ, अग्नि के समीप, करते हैं। ५६

ऐंतालीसवाँ अध्याय

विवाह के नियम और दायभाग का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, कोई मनुष्य विवाह के लिए किसी कन्या का शुल्क देकर विदेश को चला जाय और बहुत दिनों तक विदेश में रहे तो कन्या के पिता को क्या करना चाहिए?

भीष्म कहते हैं—बेटा, जिसने शुल्क दिया है वही उस कन्या का अधिकारी है। ऐसे मौक़े पर वह कन्या शुल्क देनेवाले के भले के लिए, न्याय के अनुसार, अन्य पुरुष द्वारा सन्तान उत्पन्न करा सकती है; किन्तु दूसरा कोई पुरुष विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण नहीं कर सकता। जिन कन्याओं के लिए किसी ने शुल्क न दिया हो उनका विवाह यदि किसी कारण बहुत दिनों तक न हो तो वे, पिता की आज्ञा से, अपनी पसन्द का पति चुन सकती हैं। किन्तु बहुत से लोग इस काम को ठीक नहीं समझते। महात्मा जनक के नाती सुक्रतु ने कहा है कि कन्या को वर ढूँढ़ने की आज्ञा देना पिता का अति निन्दित और शास्त्र-विरुद्ध काम है। सज्जन ऐसा

काम कभी नहीं करते। दूसरों के संरक्षण में रहने के स्त्रियों के धर्म को नष्ट करना आसुर-धर्म है। यह बहुत निन्दित है। पहले विवाह-कार्य में इस तरह का काम कोई नहीं करता था। पति और पत्नी का सम्बन्ध धर्मानुकूल होना चाहिए, केवल भोग-विलास के लिए विवाह कर देना तो साधारण काम है। अतएव केवल भोग-विलास के लिए स्वच्छन्द स्त्री के साथ विवाह करना उचित नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जिसके पुत्र नहीं है उसके कन्या ही पुत्र-स्वरूप है। अत-
१० एव कन्या के होने पर उसके धन का अधिकारी दूसरा कोई हो सकता है या नहीं?

भीष्म कहते हैं—बेटा, पुत्र आत्मा-स्वरूप है और कन्या भी पुत्र से भिन्न नहीं है। अतएव कन्या के होने पर पुत्रहीन के धन का अधिकारी दूसरा कोई नहीं हो सकता। माता के यौतक-(दहेज)धन पर कन्या का पूरा अधिकार है। नाती नाना और अपने पिता दोनों को पिण्डदान दे सकता है, इसी से पुत्रहीन मनुष्य के धन पर नाती का अधिकार माना जाता है। धर्म-शास्त्र के अनुसार पुत्र और नाती दोनों बराबर हैं। कन्या को पुत्र-रूप मान लेने पर यदि उस मनुष्य के पुत्र उत्पन्न हो तो उसके धन के पाँच भागों में से दो भाग कन्या को और तीन भाग पुत्र को मिलने चाहिएँ। यदि कोई मनुष्य कन्या को पुत्र-रूप से स्वीकार कर लेने के बाद दत्तक पुत्र आदि ले तो उसके धन के पाँच भागों में से तीन भाग कन्या को और दो भाग पुत्र को मिलते हैं; क्योंकि दत्तक पुत्र आदि की अपेक्षा उसकी सगी बेटी श्रेष्ठ समझी जाती है। जो कन्या बेच दी जाती है उसके गर्भ से ईर्ष्यावान्, अधर्मी, दूसरों का धन हरने-वाला कुपुत्र पैदा होता है; अतएव वह नाती अपने नाना के धन का अधिकारी नहीं होता—केवल पिता के धन पर ही उसका अधिकार है। धर्म-शास्त्रकार महर्षि यम कह गये हैं कि जो मनुष्य धन के लोभ से अपना पुत्र बेचता है अथवा धन लेकर कन्यादान करता है वह कालसूत्र नामक नरक में गिरकर मल, मूत्र और पसीना खाता-पीता है। वर से शुल्क-रूप एक गाय और एक बैल लेकर उसे कन्यादान करना और फिर वह गाय-बैल भी उसे दे देना आर्ष विवाह का नियम है। कोई-कोई तो इस तरह गाय-बैल लेने को शुल्क कहते ही नहीं और कोई-कोई कहते हैं कि कन्या का पिता वर से थोड़ा या बहुत जो कुछ धन लेता है वह कन्या को बेचना
२० ही है। कुछ लोग ऐसा कर गये हैं सही, किन्तु इसे सनातन धर्म नहीं कहा जा सकता। सन्तान बेचने की बात तो दूर रही, पशु तक का बेचना उचित नहीं। अधर्म से प्राप्त धन निन्दनीय है। ज़बरदस्ती कन्या छीनकर जो विवाह किया जाता है वह राक्षस विवाह है। ऐसा
२३ विवाह करने से अन्धतमस नरक में गिरना पड़ता है।

———

छियालीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से स्त्रियों की प्रशंसा करना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, पण्डितों का कहना है कि यदि वर कन्या को आभूषण आदि देकर विवाह कर ले तो कन्या के पिता को कन्या बेचने का पाप नहीं लगता। यह दक्ष की राय है। गहने आदि पहनाकर कन्या को अलङ्कृत करना पिता, भाई, ससुर और देवर आदि का कर्तव्य है। यदि पति-पत्नी में प्रेम नहीं रहता तो सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती। अतएव हमेशा स्त्रियों को प्रसन्न रखना और उनका पालन करना चाहिए। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवताओं का वास रहता है और जहाँ स्त्रियों का अनादर होता है वहाँ कोई काम सफल नहीं होता। स्त्रियों को दुःख देने से कुल का नाश हो जाता है। स्त्रियाँ दुःख पाकर जिन घरों में कोसती रहती हैं वे उजड़ जाते हैं। महात्मा मनु ने देवलोक को जाते समय पुरुषों के हाथ में स्त्रियों को सौंपकर कहा—मनुष्यो! स्त्रियाँ सत्यपरायणा और प्रियकारिणी होती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ ईर्ष्यालु, मान चाहनेवाली, प्रचण्ड स्वभाव की, विचार-हीन और अप्रिय करनेवाली होती हैं। थोड़ा सा उद्योग करने पर उनका धर्म भ्रष्ट किया जा सकता है। अतएव तुम लोग यत्न से उनकी रक्षा करना। स्त्रियाँ हमेशा सम्मान चाहती हैं, इसलिए उनका सम्मान करना चाहिए। स्त्री-जाति ही धर्म की प्राप्ति का कारण है। सांसारिक सुख भी उन्हीं से मिलता है। अतएव स्त्रियों का सम्मान और उनकी रक्षा करे। सन्तान १०
उत्पन्न करना, सन्तान उत्पन्न होने पर उसका पालन करना और गृहस्थी का काम स्त्रियों पर ही निर्भर है। स्त्रियों का सम्मान करने से सब काम सिद्ध होते हैं। एक बार विदेहराज की कन्या ने कहा था कि स्त्रियों को यज्ञ, श्राद्ध और उपवास कुछ भी न करना चाहिए; पति की सेवा करना ही उनका परम धर्म है। वे इसी धर्म के प्रभाव से स्वर्ग को जा सकती हैं। इन वचनों से स्त्रियों के लिए पति की सेवा करना विशेष रूप से प्रमाणित होता है। स्त्रियों की कुमारिका अवस्था में पिता, युवती होने पर पति और बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करते हैं। वे सदा संरक्षण में रहें। जो अपना भला चाहता हो वह स्त्रियों का सम्मान करे। वे लक्ष्मी-स्वरूप हैं अतएव उनका पालन करना लक्ष्मी का पालन और उनको सताना लक्ष्मी को सताना है। १५

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण आदि वर्णों के दायभाग की विधि

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ हैं; राजनीति के तो आप आचार्य ही हैं। सन्देह को मिटाने में आप सिद्धहस्त हैं। मुझे एक शङ्का है; उसका समाधान कर दीजिए। उसे मैं आप पर ही प्रकट कर रहा हूँ। ब्राह्मण के लिए चार स्त्रियों का विधान

है—ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा। उन सब स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न हुए ब्राह्मण के पुत्रों में से किसे पैतृक धन का अधिकार प्राप्त है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! ब्राह्मणों को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन्हीं तीन वर्णों की कन्या के साथ विवाह करना चाहिए। वे चित्त के भ्रान्त होने अथवा लोभ या सम्भोग की इच्छा से शूद्रा का पाणिग्रहण करते हैं; किन्तु यह शास्त्र-सङ्गत नहीं है। शास्त्र की आज्ञा है कि शूद्रा के साथ समागम करने से ब्राह्मण की अधोगति होती है। अतएव ऐसे अवसर पर, पाप शान्त करने के लिए, विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिए। यदि शूद्रा के गर्भ से पुत्र पैदा हो जाय तो वह ब्राह्मण उससे दूना प्रायश्चित्त करे। ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा के गर्भ से पैदा हुए पुत्रों को ब्राह्मण के धन में किसे कितना हिस्सा मिलना चाहिए, सो सुनो।

ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र पिता के धन में से सुलक्षण बैल और वाहन आदि अच्छी वस्तुएँ, सबसे पहले श्रेष्ठांश स्वरूप, ले ले। उसके बाद जो धन बचे उसके दस हिस्से किये जावें। उन दस हिस्सों में से चार हिस्से ब्राह्मणी के पुत्र को, तीन क्षत्रिया के पुत्र को, दो वैश्या के पुत्र को और एक हिस्सा शूद्रा के पुत्र को मिलना चाहिए। यद्यपि ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र पैतृक धन पाने योग्य नहीं होता तो भी, दया करके, उसे थोड़ा सा धन दे देना चाहिए। हे धर्मराज, ब्राह्मण का धन दस हिस्सों में बाँटकर—सवर्णा और असवर्णा—सब स्त्रियों से उत्पन्न पुत्रों को इस प्रकार लेने का अधिकार है। जहाँ सब पुत्र सवर्णा स्त्री से पैदा हुए हों वहाँ पैतृक धन में सबका बराबर हिस्सा है। शूद्रा का पुत्र शम-दम आदि सद्गुणों से हीन होने के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। ब्राह्मण के वीर्य से तीनों वर्णों की स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण गिने जाते हैं। शास्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, यही चार वर्ण बतलाये गये हैं; पाँचवाँ वर्ण नहीं है। इन चारों में शूद्र नीच वर्ण है। इसी से शूद्रा का पुत्र ब्राह्मण के धन का केवल दसवाँ हिस्सा पा सकता है। वह भी उसे तभी मिल सकता है जब कि पिता अपनी इच्छा से दे। शूद्रा के पुत्र को कुछ दे देना पिता का कर्त्तव्य है। दया परम धर्म है; जहाँ दया होती है वहाँ वह अनेक गुण उत्पन्न कर देती है। दया पात्र-अपात्र का विचार नहीं करती। ब्राह्मण के वीर्य से अन्य वर्ण की स्त्री में पुत्र उत्पन्न हो या न हो, किन्तु शूद्रा के पुत्र को दसवें हिस्से से अधिक धन न दे। ब्राह्मण के पास तीन वर्ष के भोजन से अधिक कुछ भी धन हो तो वह उस अधिक धन से यज्ञ कर दे। जोड़-जोड़-कर न रक्खे। पत्नी को तीन हज़ार रुपये से अधिक न दे। उस धन को स्त्री अपने इच्छानुसार ख़र्च कर सकती है। पति के मरने पर स्त्री उसके धन की उत्तराधिकारिणी होकर केवल उसका उपभोग कर सकती है, बेचने का उसे अधिकार नहीं। पति से प्राप्त स्त्री की सम्पत्ति को बेटे न चुरावें। पिता से मिला हुआ ब्राह्मणी का धन, उसके मरने पर, कन्या का मिलना

चाहिए। हे धर्मराज, यह मैंने धन का विभाग करने का धर्म बतलाया। इस धर्म को ध्यान में रखकर धन का व्यर्थ व्यय करना उचित नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा--पितामह, जब ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का पैतृक धन में अधिकार नहीं है तब उसे दसवाँ हिस्सा देने का क्या प्रयोजन है और जब ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या के गर्भ से पैदा हुए सब पुत्र ब्राह्मण कहलाते हैं तब उन सबको पैतृक धन में समान अधिकार क्यों नहीं है ?

भीष्म कहते हैं—बेटा, यद्यपि सब स्त्रियों का आदर करना पति का कर्तव्य है तो भी ब्राह्मणी को ही सबसे श्रेष्ठ मानना चाहिए। ब्राह्मण यदि पहले क्षत्रिया आदि स्त्रियों के साथ ३० विवाह करके उसके बाद ब्राह्मणी के साथ विवाह करे तो भी ब्राह्मणी ही सबसे श्रेष्ठ है। ब्राह्मणी भार्या के रहते हुए अन्य किसी वर्ण की भार्या को घर में पति के स्नान करने का सामान, केश सँवारने की वस्तुएँ, दतोन, अञ्जन और हव्य-कव्य आदि रखने का अधिकार नहीं है। ब्राह्मणी भार्या ही पति को वस्त्र, आभूषण, माला, अन्न और जल दे। मनु ने भी अपने शास्त्र में इसी का अनुमोदन किया है। यदि कोई ब्राह्मण जान-बूझकर इसके विरुद्ध आचरण करता है तो वह, मतङ्ग के समान, चण्डाल समझा जाता है। यद्यपि क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न पुत्र भी ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र के समान बतलाया गया है तो भी ब्राह्मणी का श्रेष्ठ वर्ण होने के कारण उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र को श्रेष्ठ मानना चाहिए। इसी से वह पैतृक धन की सब अच्छी वस्तुएँ पहले लेकर फिर बाक़ी के दस हिस्सों में से चार हिस्से ले सकता है। जैसे क्षत्रिया ब्राह्मणी के समान नहीं है वैसे ही वैश्या भी क्षत्रिया के समान आदरणीय नहीं हो सकती। राज्य, कोष और सम्पूर्ण पृथिवी पर क्षत्रियों का अधिकार है। क्षत्रिय राजा होकर ४० धर्म के अनुसार महान् ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है। क्षत्रिय के सिवा दूसरा कोई प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। क्षत्रिय, ऋषियों के बतलाये हुए सनातन धर्म का ज्ञान प्राप्त करके, ब्राह्मणों का सम्मान करें। जो अपने धर्म से भ्रष्ट होने लगता है उसको क्षत्रिय ही सँभालता है। प्रजा के धन, पुत्र और स्त्री आदि की रक्षा क्षत्रियों के सिवा कोई नहीं कर सकता। अतएव वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न पुत्र के श्रेष्ठ होने में क्या सन्देह है ? इसलिए क्षत्रिया का पुत्र वैश्या के पुत्र की अपेक्षा पैतृक धन में अधिक भाग पाने का अधिकारी है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आपने ब्राह्मण के नियम तो विधिपूर्वक बतला दिये, अब क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों के नियम भी बतला दीजिए।

भीष्म ने कहा—बेटा ! क्षत्रियों को क्षत्रिय और वैश्य, इन दो वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करना चाहिए। वे शूद्रा स्त्री को भी पत्नी बना लेते हैं; किन्तु यह काम शास्त्र-सम्मत नहीं है। जो क्षत्रिय सवर्णा, वैश्या और शूद्रा, इन तीनों पत्नियों के गर्भ से पुत्र पैदा करे

उसका धन आठ हिस्सों में बँटना चाहिए। उन आठ हिस्सों में से क्षत्रिया का पुत्र चार हिस्से, वैश्या का पुत्र तीन हिस्से और शूद्रा का पुत्र एक हिस्सा ले। किन्तु पिता के देने से ही शूद्रा का पुत्र पैतृक धन पा सकता है अन्यथा उसका कुछ अधिकार नहीं है। पिता ने जीतकर जो
५० धन प्राप्त किया हो उस धन पर क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का ही अधिकार है।

वैश्यों को केवल वैश्य की कन्या के साथ विवाह करने का अधिकार है। उनके लिए भी शूद्रा के साथ विवाह करना शास्त्र-सम्मत नहीं। जो वैश्य वैश्या और शूद्रा, दोनों स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करे उसके धन के पाँच भाग किये जायँ। उनमें चार भाग वैश्या के पुत्र को और एक भाग शूद्रा के पुत्र को मिलना चाहिए। पिता की आज्ञा के बिना शूद्रा का पुत्र एक भाग भी नहीं ले सकता। जो हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण यदि शूद्रा के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करें तो उनको पैतृक धन में कुछ हिस्सा अवश्य दे दें। शूद्र-जाति अपने वर्ण की ही स्त्री के साथ विवाह कर सकती है। शूद्रा के सौ पुत्र होने पर भी वे अपने पिता का धन बराबर-बराबर बाँट लें। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों में भी सवर्णा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्रों का पैतृक धन में समान अधिकार है। हाँ, ज्येष्ठ पुत्र ज्येष्ठांश-स्वरूप एक भाग अधिक ले सकता है। ब्रह्माजी ने दायभाग की विधि का ऐसा ही निर्णय किया है। मरीचि के पुत्र महात्मा कश्यप ने कहा है कि यदि ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रमशः अनेक सवर्णा स्त्रियों के साथ विवाह करें, तो पहले प्रथम स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को ज्येष्ठांश, मध्यम स्त्री के पुत्र को मध्यमांश और कनिष्ठ स्त्री के पुत्र को कनिष्ठांश लेकर अन्त को बाकी धन बराबर हिस्सों में बाँट लेना चाहिए। सारांश
६१ यह कि सवर्णा स्त्री के पुत्र असवर्णा के पुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

अड़तालीसवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को सङ्कर जातियों की उत्पत्ति बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! धन के लोभ, काम और वर्ण की अनभिज्ञता के कारण भिन्न वर्ण के स्त्री-पुरुष संसर्ग करने लगते हैं। उनसे वर्ण-सङ्कर सन्तान उत्पन्न होती है। उन वर्ण-सङ्कर मनुष्यों का धर्म-कर्म बतलाइए।

भीष्म कहते हैं—बेटा, प्रजापति ने यज्ञ करने के लिए ब्राह्मण आदि चार वर्णों को उत्पन्न करके उनके कर्म निर्दिष्ट कर दिये हैं। ब्राह्मण चारों वर्णों की कन्याओं का पाणिग्रहण कर सकते हैं। ब्राह्मण की इन चारों स्त्रियों में से ब्राह्मणी और क्षत्रिया के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह ब्राह्मण, वैश्या के गर्भ से जिसका जन्म होता है वह अम्बष्ठ और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न सन्तान पारशव (निषाद) कहलाती है। शूद्रा के पुत्र को अपने वंशवालों की सेवा करनी

चाहिए। शूद्रा का पुत्र ज्येष्ठ होने पर भी हमेशा ब्राह्मणी आदि के पुत्रों की सेवा, खोई हुई वस्तुओं की अनेक उपायों से खोज और उन्हें धन आदि दान करता रहे।

क्षत्रिय आदि तीन वर्ण की कन्याओं का पाणिग्रहण क्षत्रिय कर सकता है। क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न सन्तान क्षत्रिय, [वैश्या के गर्भ से उत्पन्न माहिष्य] और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न सन्तति उग्र कहलाती है।

वैश्य वैश्या और शूद्रा से विवाह कर सकता है। वैश्या के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह वैश्य [और शूद्रा के गर्भ से जो उत्पन्न होती है वह करण] कहलाती है। शूद्र सवर्णा स्त्री के सिवा और किसी स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता। उसका पुत्र शूद्र ही होता है। श्रेष्ठ वर्ण की स्त्री के गर्भ और नीच वर्ण के पुरुष के वीर्य से उत्पन्न सन्तान चारों वर्णों में निन्दनीय होती है। ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न क्षत्रिय का पुत्र सूत कहलाता है। राजा आदि की स्तुति करना उसका प्रधान काम है। वैश्य के वीर्य से उत्पन्न ब्राह्मणी का पुत्र वैदेहक और मौद्गल्य कहलाता है। उसके उपनयन आदि संस्कार नहीं होते। अन्तःपुर की रक्षा १०
करना उसका प्रधान काम है। शूद्र के वीर्य और ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र चण्डाल कहलाता है। वह कुल का कलङ्क है। उसे नगर से बाहर बसाना चाहिए। वध करने योग्य व्यक्तियों के प्राण लेना उसका पेशा है। जो वैश्य के वीर्य और क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न होता है उसे वाक्यजीवी वन्दी और जो शूद्र के वीर्य से पैदा होता है उसे मछली पकड़नेवाला निषाद कहते हैं। शूद्र के वीर्य और वैश्या के गर्भ से जो उत्पन्न होता है वह (आयोगव = तक्षा) बढ़ई कहलाता है। ब्राह्मण को उसका दान न लेना चाहिए।

अम्बष्ठ आदि वर्ण-सङ्कर अपनी जाति की भार्या से जो पुत्र उत्पन्न करते हैं वे उनकी जाति में गिने जाते हैं और अपने से नीच जाति की स्त्री से जो सन्तान पैदा करते हैं वह अपनी माता की जाति की होती है। इस प्रकार के पुरुष अपनी जाति की स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न करते हैं वे सजातीय होते हैं और दूसरी जाति की स्त्री से जो सन्तान पैदा करते हैं वह विजातीय कहलाती है। जैसे शूद्र पुरुष ब्राह्मणी के गर्भ से चण्डाल नामक अति नीच बाह्य जाति उत्पन्न करता है वैसे ही उस बाह्य जाति के पुरुष ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की स्त्रियों का संसर्ग करके उनके गर्भ से चण्डाल की अपेक्षा निकृष्ट जाति पैदा करते हैं।

इसी तरह क्रमशः हीन जातियों से अति निकृष्ट पन्द्रह जातियाँ उत्पन्न होती हैं। मगध देश की सैरन्ध्री के गर्भ और बाह्य (उक्त निकृष्ट पन्द्रह जातियों) के वीर्य से जो सन्तान पैदा होती है उसे आयोगव कहते हैं। इस जाति के स्त्री-पुरुष राजाओं के यहाँ वस्त्र-आभूषण आदि पहनाने और स्तुति करने का काम करते हैं। सैरन्ध्री के गर्भ और वैदेह के वीर्य से जो पुत्र पैदा होते हैं वे मदिरा बनानेवाले मैरेयक कहलाते हैं। निषाद के वीर्य से (नौकाजीवी) मल्लाह २०

और चण्डाल के वीर्य से मरघट की रक्षा करनेवाला चण्डाल पैदा होता है। आयोगव के वीर्य और मागधी के गर्भ से मांस-विक्रेता, मांस पकानेवाले रसोइया और सौगन्द उत्पन्न होते हैं। आयोगवी के गर्भ और वैदेह के वीर्य से मायाजीवी, निषाद के वीर्य से मद्रनाभ और चण्डाल के वीर्य से पुल्कस जाति पैदा होती है। मायाजीवी बड़े क्रूर होते हैं, मद्रनाभ गधे की सवारी करते हैं और पुल्कस मुर्दों के कपड़े (कफ़न) पहनते, टूटे-फूटे बर्तनों को काम में लाते तथा घोड़े, गधे और हाथी का मांस खाते हैं। निषादी वैदेह के वीर्य से जङ्गली पशुओं को मारनेवाली क्षुद्र और अन्ध्र, चर्मकार के वीर्य से कारावर और चण्डाल के वीर्य से पाण्डुसौपाक जाति पैदा करती है। पाण्डुसौपाक जाति का पेशा बाँस की डलिया आदि बनाना है। वैदेही के गर्भ से निषाद जाति का पुरुष आहिण्डक और चण्डाल पुरुष सौपाक जाति पैदा करता है। सौपाक जाति का काम चण्डालों का सा है। निषादी सौपाक के वीर्य से जो पुत्र पैदा करती है उसे अन्तेवसायी कहते हैं। अन्तेवसायी हमेशा श्मशान में रहते हैं। चण्डाल आदि नीच जातियाँ भी उनको अछूत मानती हैं।

हे धर्मराज, पिता और माता के वर्ण-व्यतिक्रम द्वारा इस प्रकार की वर्णसङ्कर जातियाँ उत्पन्न होती हैं। ये जातियाँ प्रकट और गुप्त रूप से रहती हैं। इनके कामों से ही इनकी पहचान होती है। चार वर्णों के सिवा और किसी जाति का धर्म शास्त्र में नहीं बतलाया गया। वर्ण-सङ्कर
३० जातियों की संख्या बताना बहुत कठिन है। सज्जनों से बहिष्कृत, यज्ञहीन, चण्डाल आदि बाह्य जातियाँ अपनी जाति के नियमों को त्यागकर विजातीय स्त्रियों का संसर्ग करती हैं, इसी से अनेक बाह्य जातियों की उत्पत्ति हो जाती है। वे सब जातियाँ अपने-अपने कामों के अनुसार बन जाती हैं। ये लोग चौराहों पर, श्मशान में, पहाड़ों पर और पेड़ों के नीचे रहते हैं; लोहे के गहने पहनते और भिन्न-भिन्न कामों द्वारा जीविका करते हैं। इन लोगों को कभी-कभी दूसरे प्रकार के आभूषण पहने भी देखा जाता है। गो-ब्राह्मणों की सहायता, दया, सत्य, क्षमा और—अपने शरीर की ममता छोड़कर—दूसरों की रक्षा करने से ही इनका जीवन सफल हो सकता है।

बुद्धिमान् मनुष्य सवर्णा स्त्री से ही पुत्र उत्पन्न करे। असवर्णा स्त्री से पुत्र पैदा करना अच्छा नहीं। असवर्णा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र पिता को बहुत सताता है। स्त्रियाँ विद्वान् और मूर्ख सभी को काम-क्रोध के वशीभूत करके कुमार्ग में ले जाती हैं। पुरुषों को बिगाड़ देना स्त्रियों का स्वभाव है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य इन बातों को समझकर स्त्रियों पर आसक्त नहीं होते।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जो मनुष्य श्रेष्ठ वर्ण की स्त्री के गर्भ से नीच वर्ण के पुरुष द्वारा उत्पन्न होकर आर्य व्यक्ति के समान अपना वेश और रूप बनाये हो उसे हम लोग किस प्रकार वर्ण-सङ्कर पहचान सकते हैं?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, वर्ण-सङ्कर के कामों से उसकी असलियत मालूम हो सकती
४० है। अनार्यता, अनाचार, क्रूरता और यज्ञहीनता से पुरुषों की नीच जाति का परिचय मिलता है।

वर्ण-सङ्कर व्यक्ति में पिता या माता अथवा दोनों का स्वभाव पाया जाता है। वह किसी तरह अपनी असलियत को नहीं छिपा सकता। उसका रूप-रङ्ग पिता या माता का सा होता है। जिस तरह बाघ आदि पशु अपनी जाति का गुण नहीं छोड़ते उसी तरह वर्ण-सङ्कर व्यक्ति अपने पिता या माता का स्वभाव नहीं छोड़ता। किसी की वर्णसङ्करता कितनी ही गुप्त क्यों न हो, किन्तु उसमें पिता का स्वभाव कुछ न कुछ अवश्य पाया जायगा। नीच जाति से उत्पन्न व्यक्ति आर्य के समान आचरण करने पर भी अपनी जाति के स्वभाव को नहीं छिपा सकता। अनेक प्रकार के काम करनेवाले अनेक जाति के मनुष्यों का स्वभाव और व्यवहार परस्पर विरुद्ध होता है। कभी नीच जाति के मनुष्य अच्छा व्यवहार और कभी ऊँची जाति के लोग नीच व्यवहार करते देखे जाते हैं। शास्त्र का ज्ञान नीच मनुष्य की नीचता को नहीं हटा सकता और नीच मनुष्य अपने अनुरूप काम करके लज्जित नहीं होता। अच्छी जाति में उत्पन्न मनुष्य यदि दुराचारी हो तो उसका सम्मान न करना चाहिए और शूद्र भी यदि धर्मात्मा सदाचारी हो तो उसका आदर करना उचित है। मनुष्य कुल-शील द्वारा अपना परिचय दे देता है और यदि किसी कारण उसके कुल की हीन दशा हो गई है तो वह अपनी करनी से उसे उज्ज्वल कर देता है। अतएव जहाँ तक हो सके, बुद्धिमान् मनुष्य नीच जाति की स्त्री से सन्तान न उत्पन्न करे। ५०

उनचासवाँ अध्याय

औरस आदि पुत्रों का निरूपण

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! किस प्रकार की स्त्रियों से कैसे-कैसे पुत्र पैदा होते हैं? पुत्र कितने प्रकार के होते हैं और दूसरे की स्त्री से उत्पन्न किये हुए पुत्र पर किसका अधिकार होता है? पुत्र के लिए मनुष्यों में हमेशा झगड़ा होता रहता है। आप इस विषय का वर्णन करके मेरा सन्देह दूर कीजिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, अपने वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र आत्मा-स्वरूप (औरस) है। जो स्त्री अपने पति की आज्ञा से अन्य पुरुष द्वारा पुत्र उत्पन्न करती है वह पुत्र निरुक्तज और जो स्त्री स्वामी की अनुमति बिना जार द्वारा पुत्र पैदा कर लेती है वह पुत्र प्रसृतज कहलाता है। पतित पुरुष अपनी स्त्री के गर्भ से जो पुत्र पैदा करता है वह पतितज कहलाता है। जो पुत्र बिना मूल्य के दूसरे से लिया जाता है उसे दत्तक पुत्र कहते हैं और मूल्य देकर ख़रीदा हुआ पुत्र क्रीत कहलाता है। यदि कोई पुरुष गर्भवती स्त्री के साथ विवाह कर लेता है तो उस स्त्री का पुत्र अध्यूढ़ कहलाता है। अविवाहिता स्त्री के गर्भ से पैदा हुए पुत्र को कानीन कहते हैं। इनके सिवा छः प्रकार के अपध्वंसज पुत्र और छः प्रकार के अपसद पुत्र होते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, अपध्वंसज और अपसद किस प्रकार के पुत्र हैं?

भीष्म ने कहा—बेटा! क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा इन तीन स्त्रियों के गर्भ से ब्राह्मण तीन प्रकार के पुत्र पैदा करते हैं; वैश्या और शूद्रा इन दो स्त्रियों से क्षत्रिय दो प्रकार के पुत्र पैदा करते हैं; और शूद्रा के गर्भ से वैश्य एक प्रकार का पुत्र उत्पन्न करता है। इन छः प्रकार के पुत्रों को पण्डितों ने अपध्वंसज कहा है। शूद्र ब्राह्मणी के गर्भ से जो पुत्र पैदा करता है उसे चण्डाल, क्षत्रिया के गर्भ से जो पुत्र पैदा करता है उसे व्रात्य और वैश्या के गर्भ से जो पुत्र पैदा करता है उसे वैद्य कहते हैं। वैश्य के वीर्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ पुत्र मागध और क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न पुत्र वामक कहलाता है। क्षत्रिय के वीर्य से ब्राह्मणी जो पुत्र पैदा करती है उसको सूत कहते हैं। पण्डितों ने इन छः प्रकार के पुत्रों को अपसद कहा है। यह
११ मैंने छः प्रकार के अपध्वंसज और छः प्रकार के ही अपसद पुत्रों का वर्णन कर दिया।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यदि कोई पुरुष पर-स्त्री से पुत्र पैदा करता है तो उस पुत्र का अधिकारी कौन होता है; माता या पिता?

भीष्म ने कहा—बेटा, यदि कोई पर-स्त्री से पुत्र पैदा करे तो वह पुत्र उत्पन्न करनेवाले का ही होता है। किन्तु यदि उत्पन्न करनेवाला पुरुष उस पुत्र को त्याग दे तो वह पुत्र उस पुरुष का हो जायगा जिसकी कि वह ब्याहता है और यदि किसी ने किसी गर्भवती स्त्री के साथ विवाह किया है तो उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र, उत्पन्न करनेवाले के त्यागे बिना भी, जिसने उस स्त्री के साथ विवाह किया है उसी का होगा।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मैं यही जानता हूँ कि अपनी स्त्री से हो अथवा पर-स्त्री से, जिस पुरुष के वीर्य से पुत्र पैदा होता है उस पुत्र पर उसी पुरुष का अधिकार है। किन्तु आप कह रहे हैं कि पर-स्त्री के गर्भ से पुत्र पैदा करके उसे त्याग देने पर वह पुत्र अपनी माता के विवाहित पति का होता है और यदि कोई गर्भवती स्त्री के साथ विवाह कर लेता है तो वह पुत्र उसी का हो जाता है जिसकी कि वह ब्याहता है; इसका क्या कारण है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, यदि कोई मनुष्य पर-स्त्री में पुत्र उत्पन्न करके किसी कारण उस पुत्र को त्याग दे तो उस त्यागे हुए पुत्र पर उस पुरुष का क्या अधिकार है? और यदि कोई पुत्र की इच्छा से गर्भवती स्त्री का पाणिग्रहण करे तो उस स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र उसका क्यों न हो? इस गर्भ से उत्पन्न पुत्र यद्यपि अपने उत्पन्न करनेवाले के लक्षणों से युक्त होता है तो भी वह पुत्र अपनी माता के विवाहित पति का ही है। इस प्रकार के पुत्र को अध्यूढ़ कहते हैं। कृतक पुत्र पर, उत्पन्न करनेवाले या माता का कुछ भी अधिकार नहीं है; जो मनुष्य उसे लेकर उसका पालन-पोषण करता है उसी का वह होता है।

युधिष्ठिर ने कहा कि पितामह, कृतक पुत्र किस प्रकार का होता है। भीष्म ने कहा—धर्मराज, जिस पुत्र को उत्पन्न करनेवाला या उसकी माता गुप्त रूप से त्याग दे उस पुत्र को लेकर

दयाभाव से जो उसका पालन करे और उस समय ढूँढ़ने पर भी उस लड़के के पिता-माता का पता न लग सके तो वह लड़का पालन करनेवाले का कृतक पुत्र होता है। २१

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! कृतक पुत्र का नामकरण, विवाह और अन्य संस्कार किस प्रकार किया जाता है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, [यदि नामकरण आदि संस्कार के पहले उस पुत्र की माता का पता लग जाय तो उसके नामकरण आदि संस्कार उसकी माता के गोत्र के अनुसार होने चाहिएँ और उसका विवाह भी माता के वर्ण की कन्या के साथ हो और यदि उसकी माता का पता न लगा हो तो] उसका पालन करनेवाला मनुष्य अपने गोत्र के अनुसार उसके संस्कार करे और अपने ही वर्ण की कन्या से उसका विवाह कर दे। अध्यूढ़ और कानीन, ये दोनों प्रकार के पुत्र अति निकृष्ट हैं। ब्राह्मण आदि चारों वर्ण इन दोनों प्रकार के पुत्रों का और क्षेत्रज तथा अपसद पुत्र का नामकरण आदि संस्कार अपने गोत्र के अनुसार करें। हे धर्मराज, यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। अब और कुछ पूछना हो तो पूछो। २८

पचासवाँ अध्याय

महर्षि च्यवन का जल में निवास करना और धीवरों द्वारा मछलियों के साथ जाल में फँसाकर जल के बाहर लाया जाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! दूसरों का दुःख देखकर दया किस प्रकार उत्पन्न होती है, जिसके साथ निवास किया जाता है उस पर किस तरह स्नेह पैदा हो जाता है और गो-माहात्म्य कैसा है ?

भीष्म कहते हैं— धर्मराज, मैं इस विषय में नहुष और च्यवन का संवाद सुनाता हूँ। उसके सुनने से तुम इन सब बातों को समझ जाओगे। प्राचीन समय में महर्षि च्यवन ने मान, क्रोध, हर्ष और शोक का त्याग करके बारह वर्ष तक प्रयाग तीर्थ में, गङ्गा-यमुना के जल (सङ्गम) में, निवास किया था। ये महात्मा गङ्गा-यमुना की धारा के प्रबल वेग को सहते थे। गङ्गा, यमुना और अन्य नदियाँ महर्षि च्यवन को पीड़ित नहीं करती थीं, बल्कि उनकी प्रदक्षिणा करके उनका सम्मान करती थीं। महर्षि च्यवन, काठ की तरह, कभी जल में बैठे रहते और कभी लेटे रहते थे। जलचर जीव उनको हमेशा जल में निवास करते देखकर उनका सत्कार करने लगे। मछलियाँ उनके पास आकर, विश्वास करके, प्रसन्नता से उनका शरीर सूँघने लगीं। इस प्रकार महात्मा च्यवन को जल में निवास करते-करते बहुत दिन हो गये। १०

एक बार मछुवों ने मछली पकड़ने के लिए उसी स्थान पर नये सूत से बना हुआ मज़बूत जाल डाल दिया जहाँ महर्षि च्यवन रहते थे और थोड़ी देर के बाद उस जाल में भारी बोझ देख-

कर, प्रसन्नता से जल में पैठकर, मछली आदि जल-जीवों के साथ महर्षि च्यवन को भी पकड़कर पानी के किनारे ला रक्खा। पानी के बाहर आकर मछुवों ने दाढ़ीवाले और जटा-जूट से शोभित महर्षि च्यवन को देखा। इन महात्मा का शरीर सेवार से ढका हुआ और शङ्ख-सीपी
२० आदि जल-जीवों से युक्त था। मछुवों ने उनको जलजन्तुओं के साथ जाल में फँसा हुआ देखकर, डर के मारे हाथ जोड़कर, बार-बार उनको प्रणाम किया। उस समय मछलियाँ जाल द्वारा पानी से खींची जाने, पीड़ित होने और पानी के बाहर होने के कारण डरकर मरने लगीं। उनकी यह दुर्दशा देखकर दयालु महर्षि च्यवन बार-बार साँस लेने लगे।

मछुवों ने मछलियों के मरने के कारण महर्षि को दुखी देखकर विनीत भाव से कहा—भगवन्, हम लोगों ने मूर्खता से जो अपराध किया है उसे आप क्षमा कीजिए और बतलाइए कि अब हम लोग आपकी क्या सेवा करें। मछुवों की नम्रता देखकर महर्षि ने कहा—धीवरो, इस समय मेरी यही इच्छा है कि इन मछलियों के साथ मैं भी अपने प्राण त्याग दूँ या इन्हीं के साथ बच जाऊँ। मैं बहुत दिनों से इनके साथ रहता हूँ इसलिए मैं अब इनका साथ नहीं छोड़ सकता। महर्षि के यों कहने पर डर के मारे मछुवों का मुँह सूख गया।
२७ उन लोगों ने महाराज नहुष के पास जाकर यह सब हाल कहा।

इक्यावनवाँ अध्याय

महर्षि की आज्ञा से नहुष का मछुवों को मछलियों समेत महर्षि का मूल्य देना और महर्षि की कृपा से मछलियों के साथ मछुवों का स्वर्ग को जाना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज! महाराज नहुष ने मछुवों के मुँह से महर्षि च्यवन का वृत्तान्त सुनकर, मन्त्रियों और पुरोहित के साथ, शीघ्र उनके पास जाकर हाथ जोड़े और उनको अपना परिचय दिया। पुरोहित ने भी सत्यव्रती देवतुल्य महात्मा च्यवन का सम्मान किया।

महाराज नहुष ने महर्षि से कहा—भगवन्, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप मुझे जो आज्ञा देंगे मैं उसका पालन करूँगा।

च्यवन ने कहा—महाराज, मछुवों ने बड़ा परिश्रम किया है। आप इन लोगों को मछलियों के दाम के साथ मेरा मूल्य भी दे दीजिए।

नहुष ने कहा—महात्मन्, आज्ञा हो तो आपका मूल्य एक हज़ार मुद्रा मछुवों को दे दिया जाय।

च्यवन ने कहा—महाराज, हज़ार मुद्रा मेरे उपयुक्त मूल्य नहीं है। आप सोच-समझकर इनको मेरा उचित मूल्य दे दीजिए।

नहुष ने कहा—भगवन्, आप कहें तो आपका मूल्य इनको एक लाख मुद्रा दे दिया जाय।

च्यवन ने कहा—राजन्, एक लाख मुद्रा भी मेरे योग्य मूल्य नहीं है। आप मन्त्रियों के साथ सलाह करके मेरे योग्य जो मूल्य हो वह दे दीजिए।

नहुष ने कहा—भगवन्, तो फिर इनको एक करोड़ मुद्राएँ दी जायँ; और यदि यह भी आपके योग्य मूल्य न हो तो इससे भी अधिक दे दूँ।

च्यवन ने कहा—राजन्, एक करोड़ या इससे भी अधिक मुद्रा मेरे योग्य मूल्य नहीं है। अतएव ब्राह्मणों के साथ सलाह करके मेरा उचित मूल्य इनको दीजिए।

नहुष ने कहा—भगवन्, मछुओं को आपके मूल्य-स्वरूप आधा राज्य या पूरा राज्य दे दूँ? मेरी राय में यही आपके योग्य मूल्य है। आप अपना अभिप्राय बतलाइए।

च्यवन ने कहा— महाराज, आपका आधा राज्य और पूरा राज्य भी मेरे योग्य मूल्य नहीं है। आप ऋषियों के साथ सलाह करके मेरे योग्य जो मूल्य हो वही इनको दीजिए।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, महर्षि च्यवन के यों कहने पर महाराज नहुष उनका यथार्थ मूल्य निरूपण करने में असमर्थ हो गये। वे मन्त्रियों तथा पुरोहितों समेत बड़े दुखी होकर सोचने लगे कि मछुवों को क्या देने से महर्षि का यथार्थ मूल्य होगा। उसी समय गाय के गर्भ से उत्पन्न, फल-मूलाहारी, एक तपस्वी सहसा उनके पास आकर कहने लगे— महाराज, आप उदास क्यों हैं? आप अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। मैं आपकी चिन्ता दूर करके आपको प्रसन्न करूँगा। मैं हँसी में भी झूठ नहीं बोलता। अतएव आपसे जो कहता हूँ वही करूँगा।

महाराज नहुष ने उनसे कहा—भगवन्, आप मुझे महर्षि च्यवन का मूल्य बतलाकर मेरे वंश की रक्षा कीजिए। मैं केवल बाहुबल रखता हूँ, तपस्या का बल मुझमें नहीं है। इसलिए महर्षि च्यवन कुपित होकर, मेरी तो बात ही क्या है, सारे संसार को नष्ट कर सकते हैं। आज मैं महर्षि च्यवन का मूल्य निश्चित न कर सकने के कारण, मन्त्रियों और पुरोहित समेत, चिन्ता-रूपी अथाह समुद्र में डूबा हुआ हूँ; आप इनका मूल्य बतलाकर मेरा उद्धार कीजिए।

गाय के गर्भ से उत्पन्न महर्षि ने, मन्त्रियों समेत, राजा को प्रसन्न करते हुए कहा—महाराज, ब्राह्मण सब वर्णों से श्रेष्ठ हैं। उनका यथार्थ मूल्य केवल गायें हो सकती हैं। अतएव आप महर्षि के बदले में गाय दीजिए। तब राजा नहुष ने प्रसन्न होकर, मन्त्रियों और पुरोहित समेत, भृगुनन्दन च्यवन से कहा—महर्षि, आप उठिए। मैं समझता हूँ कि आपका यथार्थ मूल्य गाय है। अतएव अब मैंने गाय देकर आपको मोल ले लिया।

महर्षि च्यवन ने कहा—राजन्, लीजिए, मैं उठता हूँ। आपने यथार्थ मूल्य देकर मुझे ख़रीदा है। संसार में गो-धन के समान दूसरा धन नहीं है। गो-माहात्म्य पढ़ने, गो-माहात्म्य सुनने, गोदान देने और गाय का दर्शन करने से सब पापों का नाश होकर कल्याण होता है। गायें परम पवित्र हैं। श्री, अन्न, देवताओं का हव्य, स्वाहाकार, वषट्कार और सब यज्ञ गायों से ही उत्पन्न होते हैं। गायें बढ़िया दूध देती हैं। गायें मनुष्यों की पूज्य और अमृत का
३० आधार-स्वरूप हैं। उनके शरीर की कान्ति और उनका तेज अग्नि के समान है। गायों से मनुष्यों को अत्यन्त सुख मिलता है। गायें जिस स्थान पर रहकर निडर होकर श्वास छोड़ती हैं वह स्थान परम पवित्र और शोभायुक्त हो जाता है। गायें स्वर्ग की सीढ़ी हैं। स्वर्ग में देवता भी इनकी पूजा करते हैं। गायों से जो प्रार्थना की जाती है वह उसी दम सफल होती है। गायों से श्रेष्ठ कोई नहीं है। हे महाराज, गायों की पूरी महिमा कहने को मैं समर्थ नहीं हूँ। मैंने इस समय जो कहा है वह उनके गुणों का थोड़ा सा अंश है।

[महर्षि च्यवन के चुप हो जाने पर महाराज नहुष ने मछुवों को महर्षि के मूल्य-स्वरूप एक गाय दी। तब] मछुवों ने च्यवन से कहा—महर्षि, जितनी देर में सात क़दम चला जाता है उतनी ही देर सज्जनों की सङ्गति करने से उनके साथ मित्रता हो जाती है। आपके तो हम लोगों ने बड़ी देर तक दर्शन किये और आपसे बातें कीं। अतएव आप हम लोगों पर प्रसन्न हों। आप परम पवित्र और तेजस्वी हैं। अब हम लोग प्रार्थना करते हैं कि आप कृपा करके यह गाय ले लीजिए।

च्यवन ने कहा—हे धीवरो! साँप, मुनि और दरिद्र के क्रोध से मनुष्य वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे आग में घास-फूस जल जाता है। तुम लोग दरिद्र हो, इससे मैं तुम्हारी प्रार्थना निष्फल न करूँगा। मैं तुम्हारी गाय लिये लेता हूँ। तुम लोग सब पापों से छूटकर, इन
३९ मछलियों समेत, स्वर्ग को जाओ।

अब महर्षि च्यवन ने मछुवों से गाय ले ली। मछलियों समेत वे मछुवे स्वर्ग को चले गये। उन सबको स्वर्ग जाते देखकर महाराज नहुष को बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद गाय के गर्भ से उत्पन्न महर्षि और भृगुनन्दन च्यवन ने नहुष से वर माँगने को कहा। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि भगवन्, धर्म में मेरी अटल भक्ति हो। नहुष को वरदान देकर और

उनके द्वारा पूजित होकर दोनों महर्षि अपने-अपने आश्रम को चले गये। महाराज नहुष भी वर पाकर बड़ी प्रसन्नता से अपने घर गये।

हे धर्मराज, यह मैंने दूसरों का दुःख देखकर क्लेश होने, साथ रहने से स्नेह उत्पन्न होने और गो-माहात्म्य का वर्णन कर दिया। अब और जो कुछ पूछना हो वह पूछो। ४८

बावनवाँ अध्याय

कुशिक और च्यवन का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जमदग्नि के पुत्र परशुराम का वृत्तान्त सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। उनका जन्म किस प्रकार हुआ और वे ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न होकर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार क्यों चलने लगे? महाराज कौशिक क्षत्रिय थे। उनके वंश में जन्म लेकर विश्वामित्र किस प्रकार ब्राह्मण हो गये? इसके सिवा दो बातों में और भी मुझे सन्देह है। महर्षि ऋचीक और महाराज कुशिक अपने-अपने वंश के अधिष्ठाता थे, किन्तु महर्षि ऋचीक के पुत्र जमदग्नि तो क्षत्रिय न हुए फिर उनके पुत्र परशुराम क्यों क्षत्रिय-धर्मावलम्बी हो गये और कुशिक के पुत्र गाधि तो ब्राह्मण न हुए पर कुशिक के पौत्र विश्वामित्र क्योंकर ब्राह्मण हो गये? आप यह सब बतलाकर मेरा सन्देह दूर कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं तुम्हारा सन्देह दूर करने के लिए कुशिक और च्यवन का संवाद सुनाता हूँ। एक बार महर्षि च्यवन ने कुशिक-वंश से अपने वंश में क्षत्रिय-धर्म का सञ्चार होने की बात समझकर और क्षत्रियत्व आ जाने पर अपने वंश में जो गुण-दोष और बलाबल आ जायँगे उनका अनुमान करके कुशिक-वंश को नष्ट कर देने की इच्छा से महाराज कुशिक के पास जाकर कहा—महाराज, मैं आपके साथ रहना चाहता हूँ। १०

"भगवन्, कन्यादान कर देने के बाद यही नियम है कि कन्या हमेशा अपने पति के साथ रहे। सारांश यह कि पति और पत्नी के सिवा दूसरा कोई हमेशा एक साथ नहीं रह सकता। अतएव आप जो बात इस समय कह रहे हैं वह धर्म के अनुसार नहीं है; किन्तु जब आप मेरे साथ रहना चाहते हैं तब मुझे अवश्य ही स्वीकार है।" यह कहकर महाराज कुशिक ने महर्षि को आसन दिया और गड़ुए के जल से पैर धोकर विधिपूर्वक उन्हें मधुपर्क दिया। फिर पटरानी समेत, सावधानी से, विधिवत् उनकी पूजा करके कहा—भगवन्! रानी और मैं, दोनों ही, आपके अधीन हैं। अब हमें क्या आज्ञा है? मेरा राज्य, धन और गायें आदि जो कुछ आप लेना चाहें, वह मैं आपको दे सकता हूँ। यह राज-भवन, राज्य और धर्मासन आपका ही है। अब आप ही राजा होकर शासन कीजिए। मैं आपके आश्रित रहूँगा।

महाराज कुशिक के ये विनीत वचन सुनकर महर्षि च्यवन ने प्रसन्नता के साथ कहा—महाराज! मैं राज्य, धन, गायें, देश और यज्ञ की सामग्री अथवा स्त्रियाँ आदि कुछ भी नहीं चाहता। ध्यान देकर मेरी बात सुनिए। यदि आप और आपकी महारानी दोनों राज़ी हों तो मैं एक व्रत करूँ। जब तक मैं इस व्रत को करता रहूँ तब तक आप अपनी महारानी समेत निश्छल भाव से मेरी सेवा कीजिएगा। महर्षि के यों कहने पर महाराज कुशिक और उनकी रानी ने प्रसन्न होकर कहा—भगवन्, हम आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। अब कुशिक ने महर्षि को एक अच्छे घर में ले जाकर, वहाँ व्यवहार के योग्य सब वस्तुएँ दिखलाकर, कहा—आपके लिए यह शय्या प्रस्तुत है; इस पर बैठिए। हम दोनों यथासाध्य आपकी सेवा करेंगे।

इस तरह बातें होते-होते शाम हो गई। तब महर्षि च्यवन ने भोजन की इच्छा प्रकट की। आज्ञा पाकर महाराज कुशिक ने विनीत भाव से कहा—तपोधन, आप क्या भोजन करेंगे? आप जो कुछ खाना चाहते हों वही ला दूँ। महर्षि च्यवन ने कहा—महाराज, इस समय आपके यहाँ जो कुछ तैयार हो वही लाइए। घर में जो भोजन तैयार था वह लाकर महाराज कुशिक ने महर्षि को दिया। महर्षि ने इच्छानुसार भोजन करके [जल पीकर] राजा से कहा—अब मेरे सोने का समय हो गया। तब महारानी समेत महाराज कुशिक उनको शयनागार में ले गये। वहाँ सुन्दर शय्या पर लेटकर महर्षि ने राजा से कहा—देखो, मैं सोता हूँ। मुझे जगाना मत और रात भर जागते रहकर मेरे पैर दबाते रहना। कुशिक ने बिना सोचे-विचारे उनकी बात स्वीकार कर ली। अब महर्षि सो गये। रात बीत गई, सबेरा होने पर भी महर्षि की नींद न खुली। राजा और रानी ने उन्हें नहीं जगाया। वे खाना-पीना-सोना छोड़कर उनकी सेवा करने लगे।

महर्षि एक करवट पर इक्कीस दिन तक सोते रहे। बाईसवें दिन वे शय्या से उठे और, राजा से बिना कुछ कहे-सुने, शयनगृह से चल दिये। भूखे-प्यासे राजा-रानी महर्षि की सेवा से थके होने पर भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे; किन्तु महर्षि ने एक बार उनकी ओर देखा तक नहीं। चलते-चलते कुछ देर बाद महर्षि अन्तर्धान हो गये। यह देखकर महाराज कुशिक दुःख के मारे पृथ्वी पर गिर पड़े। महारानी उनको ढाढ़स बँधाती हुई समझाने लगीं।

तिरपनवाँ अध्याय

कुशिक का वंश नष्ट कर देने की इच्छा से च्यवन का अनेक उपायों से उन्हें कुपित करने का उद्योग करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, महात्मा च्यवन के अन्तर्धान हो जाने पर राजा कुशिक और उनकी रानी ने क्या किया था?

वहाँ सुन्दर शय्या पर लेटकर महर्षि ने राजा से कहा—देखो, मैं सोता हूँ। मुझे जगाना मत और रात भर जागते रहकर मेरे पैर दबाते रहना—पृ० ४०५४

भीष्म ने कहा—बेटा, महर्षि च्यवन के अन्तर्धान हो जाने पर राजा-रानी ने उनको बहुत ढूँढ़ा किन्तु कहीं पता न लगा। तब लज्जा और थकावट के मारे बेहोश से होकर वे नगर को लौट आये और महर्षि के कामों पर सोचते-विचारते हुए शयनगृह को गये। वहाँ जाकर देखा कि महर्षि च्यवन उसी शय्या पर पहले की तरह सो रहे हैं। उनकी यह अद्‌भुत लीला देखकर राजा और रानी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके इस अलौकिक कार्य पर विचार करते-करते, तनिक विश्राम करने के बाद, वे दोनों फिर उनके पैर दाबने लगे।

दूसरी करवट से इक्कीस दिन तक सोकर महर्षि अपने आप जागे; किन्तु बहुत दिनों बाद महर्षि के जागने पर भी राजा और रानी के मन में किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ। [वे इतने दिनों तक उपवास करके महर्षि की सेवा करते रहे।] महर्षि ने शय्या से उठकर कहा—मैं स्नान करना चाहता हूँ, अतएव मालिश कर दो। राजा-रानी दोनों भूख से व्याकुल थे; फिर भी वे आज्ञा मानकर, सौ बार पकाकर शुद्ध किया हुआ, बहुमूल्य तेल लाकर उनके शरीर में मलने लगे। इसी तरह देर तक राजा और रानी तेल मलते रहे; वे अपने काम से ऊबे नहीं। राजा-रानी को इतने पर भी जब खीझते न देखा तब चुपचाप उठकर महर्षि स्नानगृह में चले गये। वहाँ राजाओं के स्नान करने योग्य सब वस्तुएँ रक्खी थीं। महर्षि ने उनमें से ११
किसी वस्तु को छुआ तक नहीं। वे राजा के देखते ही देखते अन्तर्धान हो गये। यह देखकर भी राजा और रानी उनसे अप्रसन्न नहीं हुए। थोड़ी देर में देखा कि महर्षि च्यवन स्नान किये हुए सिंहासन पर बैठे हैं। राजा ने प्रसन्न होकर शुद्ध हृदय से उनसे पूछा—भगवन्, आज्ञा हो तो आपके लिए भोजन ले आऊँ। महर्षि ने कहा कि ले आओ। आज्ञा पाते ही राजा और रानी ने अनेक प्रकार के मांस, शाक, जूसदार चीज़ें, पुआ, लड्डू, तरह-तरह के रस और मुनियों, राजाओं तथा गृहस्थों के खाने योग्य फल-फूल लाकर उनके सामने रक्खे। महर्षि २०
च्यवन ने शय्या, आसन और बहुत से क़ीमती कपड़े इकट्ठा करके और उन भोज्य वस्तुओं को भी उन्हीं के साथ रखकर उनमें आग लगा दी। राजा-रानी यह सब देखते रहे; किन्तु उनको रत्ती भर भी क्रोध न आया। अब महर्षि च्यवन,

उन्हीं के सामने, फिर अन्तर्धान हो गये। इससे भी राजा-रानी को कुछ क्रोध न आया। उन्होंने प्रसन्नता से वह रात बिता दी। दूसरे दिन सबेरे महर्षि फिर राजा के पास आ गये। [महर्षि की आज्ञा से] उसी स्थान पर स्नान का सामान, खाने की वस्तुएँ, शय्या और वस्त्र आदि एकत्र किये गये। [इस तरह उनचास दिन बीते,] किन्तु महर्षि च्यवन किसी तरह राजा का कोई दोष न पा सके।

[पचासवें दिन] महर्षि च्यवन ने कुशिक से कहा—राजन्, मुझे रथ में बैठाइए और आप, रानी समेत, उसे खींचिए। मैं जहाँ जाना चाहूँ वहीं रथ को ले चलिए।

महाराज कुशिक ने उनकी बात मानकर पूछा—भगवन्, कौन सा रथ ले आऊँ; क्रीड़ा-रथ या संग्राम करने का रथ ?

च्यवन ने कहा—"महाराज ! अनेक अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, तोरण और सोने की ध्वजा से
३१ शोभित, किंकिणी-जाल-जटित सांग्रामिक रथ ले आइए।" अब महाराज कुशिक अपना सांग्रामिक रथ ले आये और रथ के बाईं ओर अपनी रानी को लगाकर स्वयं दाहिनी ओर लग गये।

रानी समेत महाराज कुशिक के जुत जाने पर महात्मा च्यवन रथ पर सवार हुए। वे त्रिदण्डयुक्त नुकीला चाबुक लेकर बैठ गये। राजा ने पूछा—भगवन्, रथ को कहाँ ले चलूँ ? आप जहाँ चलना चाहते हों वहीं रथ को पहुँचाऊँ। च्यवन ने कहा—महाराज ! आप धीरे-धीरे मनुष्यों के सामने से मेरा रथ ले चलिए, जिसमें मुझे किसी तरह का कष्ट न हो। मार्ग में जाते समय मुझे जो मनुष्य मिलेंगे और जो ब्राह्मण मुझसे धन माँगेंगे, उनको मैं अपरिमित धन-रत्न दूँगा। ऐसा प्रबन्ध कीजिए जिसमें मेरी यह इच्छा पूरी हो। महाराज कुशिक ने नौकरों को बुलाकर कहा—ये महर्षि जिस समय जो कुछ माँगें, वह उसी समय इन्हें देना। आज्ञा पाकर नौकर लोग असंख्य रत्न, स्त्रियाँ, वाहन, बकरे-भेड़े आदि पशु, सोने के
४० गहने, सोने की मुद्रा और ऊँचे-ऊँचे हाथी लेकर महर्षि के पीछे चले। मन्त्री भी पीछे-पीछे चलने लगे। अब महर्षि च्यवन ने नुकीले चाबुक से राजा और रानी पर प्रहार करके उनकी पीठ और गले में घाव कर दिये। यह देखकर नगर के लोग दीन स्वर से चिल्लाने लगे। इतने पर भी राजा और रानी के मन में ज़रा भी क्रोध नहीं आया। वे पचास दिन के भूखे होने पर भी महर्षि की मार सहकर, काँपते हुए, बड़ी कठिनाई से रथ खींचने लगे। इसके बाद महर्षि च्यवन ने फिर उसी कोड़े से उनके शरीर भर में घाव कर दिये। राजा और रानी के शरीर रक्त से सराबोर होकर फूले हुए ढाक के पेड़ की तरह दीखने लगे; किन्तु इतने पर भी उनके मन में विकार न आया। उनकी यह दशा देखकर नगर-निवासी दुःख के मारे घबरा गये, परन्तु महर्षि के डर से कुछ बोल न सकते थे। वे आपस में कहने लगे कि महात्मा च्यवन का तपोबल अलौकिक है। हम लोग कुपित होकर भी उनकी ओर नज़र नहीं उठा सकते। राजा

और रानी का धैर्य भी साधारण नहीं है। वे इतने पीड़ित होने पर भी महर्षि का रथ खींच रहे हैं; उनके मन में रत्ती भर भी मैल नहीं आया।

महर्षि च्यवन ने राजा और रानी को विकार-शून्य देखकर दरिद्रों को, कुबेर के समान, धन देना आरम्भ किया। इससे भी महाराज का मन न डिगा। वे महर्षि के आज्ञानुसार रथ खींचते रहे। तब महर्षि च्यवन प्रसन्न होकर रथ से उतर पड़े और रानी समेत राजा को रथ से अलग करके मधुर वचन बोले—महाराज, मैं आपका और आपकी पत्नी का काम देखकर बहुत प्रसन्न हूँ। आप जो वर माँगेंगे, वह मैं अवश्य दूँगा। अब महर्षि ने राजा-रानी के पीड़ित कोमल शरीर पर स्नेह से, अमृत के समान, हाथ फेरा। ५०

राजा ने कहा—महर्षि! आपकी कृपा से हमारी थकावट दूर हो गई, अब हमको कोई क्लेश नहीं है। यह सुनकर महर्षि ने प्रसन्नता से कहा—महाराज, गङ्गा-किनारे यह परम पवित्र और रमणीय स्थान है। मैं व्रत करके यहाँ कुछ दिनों तक रहूँगा। अब आप, रानी समेत, विश्राम करने के लिए घर जाइए। कल यहाँ आइएगा, मैं यहीं मिलूँगा। आप दुःखित न हों। अब आपके सौभाग्य का समय आ गया है। आप जो-जो इच्छाएँ करेंगे वे सब पूरी होंगी।

महर्षि च्यवन के यों कहने पर महाराज कुशिक ने प्रसन्न होकर कहा—भगवन्, मुझे कोई दुःख नहीं हुआ। आपकी कृपा से मैंने दिव्य देह, असाधारण शक्ति और पवित्रता प्राप्त की है। कोड़े लगने से शरीर में जो घाव हो गये थे, उनका इस समय चिह्न भी नहीं देख पड़ता। मैं बिलकुल चङ्गा हो गया हूँ। मैं महारानी को पहले जिस तरह अप्सरा के समान सुन्दरी देखता था उसी तरह की इस समय भी देखता हूँ। यह सब आपकी कृपा से हुआ है। आपकी अनुकूलता होने पर सब कुछ हो सकता है। ६०

महर्षि ने कहा—राजन्! इस समय आप घर जाइए। कल यहीं आइएगा।

महाराज कुशिक ने महर्षि को प्रणाम करके मन्त्री, पुरोहित, सैनिक, वन्दी, वेश्या और प्रजा के साथ अपने नगर में इन्द्र के समान प्रवेश किया। कुछ देर विश्राम करने के बाद पूर्वाह्न

की क्रिया और भोजन करके वे रात में, महारानी समेत, शय्या पर लेटे। उस समय अपने को अजर-अमर के समान, श्रीमान् और नवयुवक देखकर उनके आनन्द की सीमा न रही। इधर भृगुकुल की कीर्ति बढ़ानेवाले महर्षि च्यवन ने तपोवन को, अनेक रत्नों से शोभित करके,
६८ इन्द्र-भवन से भी बढ़कर समृद्धिशाली कर दिया।

चौवनवाँ अध्याय

कुशिक का कोई दोष न पाने पर महर्षि का प्रसन्न होना; योग के प्रभाव से कुशिक को स्वर्ग के दर्शन कराना और वर माँगने को कहना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, सवेरा होने पर महाराज कुशिक शय्या से उठकर नित्य-क्रिया करके महारानी समेत च्यवन के पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि कहीं पर मणियों से जड़े हुए सोने के खम्भों से शोभित गन्धर्व-नगर के से सुन्दर भवन, कहीं चाँदी के शिखर से शोभित पर्वत, कहीं कमलों से शोभित तालाब, कहीं बन्दनवार से सुसज्जित अनेक प्रकार के घर, कहीं हरी घास और कहीं सुन्दर फूल शोभा दे रहे हैं; कहीं पर बैारे हुए आम, केतक, उद्दालक, धव, अशोक, कुन्द, फूले हुए अतिमुक्त, चम्पक, तिलक, कटहल, वञ्जुल, आँवला, कनेर, श्याम, ढाक और अष्टप आदि वृक्ष शोभित हैं; कहीं कमल खिले हैं; कहीं शीतल जल, कहीं गरम जल और कहीं सुनहले जड़ाऊ पलँग हैं जिन पर बिछौने बिछे हुए हैं, कहीं विचित्र आसन और शय्याएँ हैं और कहीं अनेक प्रकार के भोजन रक्खे हुए हैं। कहीं तोता मैना भौंरा कोयल शतपत्र कोयष्टिक कुक्कुभ मोर मुर्ग़ दात्यूह जीव-जीवक चकोर हंस सारस और चकवा आदि पक्षी उस वन की शोभा बढ़ा रहे हैं। किसी स्थान पर बन्दर कूद रहे हैं। कहीं अप्स-
१२ राएँ और गन्धर्व क्रीड़ा कर रहे हैं। महाराज कुशिक को कभी ये वस्तुएँ देख पड़ती हैं और कभी सब की सब ग़ायब हो जाती हैं। उनको कभी हंस सारस आदि जलचर पक्षियों का कोलाहल, गाने की ध्वनि और कभी पढ़ने की ध्वनि सुनाई देती है।

महाराज कुशिक को यह अद्भुत दृश्य देखने से बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ या मुझे चित्त-भ्रम हो गया है अथवा यह सब सच है। इसी शरीर से मुझे परमगति मिल गई है या मैं उत्तर कुरु अथवा अमरावती में आ गया हूँ! जो हो, मैं इस समय जो अद्भुत और रमणीय वस्तुएँ देख रहा हूँ ये सब क्या हैं? महाराज कुशिक इसी तरह सोचते हुए इधर-उधर देखने लगे कि इतने में मणियों के खम्भों से शोभित सुवर्णमय घर में महामूल्य शय्या पर सोये हुए महर्षि च्यवन देख पड़े। उनको देखकर महाराज कुशिक बड़ी प्रसन्नता से, रानी समेत, उनके पास गये। राजा और रानी के पहुँचते ही उस रमणीय शय्या समेत महर्षि च्यवन अन्तर्धान हो गये। इसके बाद महाराज

कुशिक ने एक दूसरे वन में महर्षि च्यवन को कुशासन पर बैठे ध्यान करते देखा। क्षण भर २०
बाद अप्सरा, गन्धर्व, वृक्ष, लता आदि सब अद्भुत वस्तुओं का लोप हो गया। गङ्गा-किनारे फिर सन्नाटा छा गया और पहले की तरह कुश, वल्मीक आदि देख पड़ने लगा।

महाराज कुशिक, महर्षि के योगबल से, पूर्वोक्त अद्भुत लीला देखकर बड़े विस्मय के साथ रानी से बोले—प्रिये! महर्षि की कृपा से ये सब वस्तुएँ, जिन्हें पहले कभी नहीं देखा था, तुमने देख लीं! मालूम होता है कि तपोबल से बढ़कर और कुछ नहीं है। जिन बातों की कल्पना भी नहीं की जाती वे तपोबल द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। तपोबल की प्राप्ति संसार भर के राज्य से भी बढ़कर है। तपस्या सिद्ध होने पर आसानी से मोक्ष प्राप्त होता है। महर्षि च्यवन का प्रभाव अद्भुत है। ये चाहें तो तपोबल से अन्य लोक उत्पन्न कर सकते हैं। इनके सिवा कोई ये अद्भुत काम नहीं दिखा सकता। इस पृथिवी पर ब्राह्मण ही पवित्रवाक्, पवित्र-बुद्धि और पवित्रकर्मा होते हैं। संसार में राज्य तो सुलभ है, किन्तु ब्राह्मणत्व की प्राप्ति बहुत कठिन है। देखो, हम-तुमको ब्राह्मण के प्रभाव से घोड़े की तरह रथ में जुतना पड़ा। ३०

महाराज कुशिक ने इस प्रकार रानी से जो बातें कहीं उनको महर्षि च्यवन, योग के बल से, जान गये। [इसके बाद महाराज कुशिक के समीप ही महर्षि च्यवन देख पड़े।] उन्होंने राजा और रानी की ओर देखकर कहा कि आप शीघ्र मेरे पास आइए। कुशिक ने, रानी समेत उनके पास जाकर, उनको प्रणाम किया। महर्षि ने उनको आशीर्वाद देकर, पास बैठाकर, कहा—महाराज! आपने पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन को वश में कर लिया है। इसी से आपकी कोई दुरवस्था नहीं हुई। आपने मन लगाकर मेरी सेवा की है। उसमें आपने किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होने दी। अब मैं अपने स्थान को जाऊँगा। मैं आपकी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ इसलिए आपको वरदान दूँगा। आप जो चाहें, माँग लें।

महाराज कुशिक ने कहा—तपोधन! मैं आग में पड़कर जल नहीं गया, यही मुझे बड़ा लाभ है। आप मेरी सेवा से जो प्रसन्न हुए और आपके क्रोधानल में जो मेरा वंश भस्म नहीं हो गया, यही मेरे लिए श्रेष्ठ वर है और यही मेरे जीवन, राज्य-शासन तथा तप का फल है। यदि इस समय आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा एक सन्देह दूर कर दीजिए। ४०

पचपनवाँ अध्याय

कुशिक के पूछने पर महर्षि का उनके घर आने का प्रयोजन बतलाना। कुशिक की ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की इच्छा जानकर उनके पौत्र आदि को ब्राह्मणत्व प्राप्त होने का वर देना

महर्षि च्यवन ने कहा—राजन्, आप अभीष्ट वर माँगिए। आपको जो सन्देह उत्पन्न हुआ है उसे भी प्रकट कीजिए। मैं उसको दूर कर दूँगा।

राजा ने कहा—भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो बतलाइए कि आप जो मेरे घर आये, इक्कीस दिन एक करवट सोये, बिना कुछ कहे बाहर चले गये, अकस्मात् अन्तर्धान हो गये, थोड़ी देर बाद आकर फिर इक्कीस दिन सोये, मालिश कराकर—स्नान किये बिना ही—फिर ग़ायब हो गये, फिर आकर भोजन की सामग्री और शय्या आसन कपड़े आदि आग में जला दिये, हम लोगों को रथ में जोतकर उस पर सवार होकर चले, बहुत सा धन दान किया, तपोवन में हम लोगों को अनेक प्रकार के महल और अन्यान्य अद्भुत पदार्थ दिखलाये और फिर उन सबका लोप कर दिया, इन सब बातों का क्या कारण है? इन बातों को सोचकर मैं चकित हो जाता हूँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

च्यवन ने कहा—महाराज! मैंने जिस कारण ये सब काम किये हैं उसे आद्योपान्त कहता हूँ, सुनिए। एक बार देवसभा में ब्रह्माजी से मैंने सुना था कि आपके वंश से मेरे वंश में क्षत्रिय-धर्म का सञ्चार होगा और आपका पौत्र ब्राह्मणत्व प्राप्त करेगा। ब्रह्माजी से यह बात सुनकर आपके वंश का नाश कर देने की इच्छा से मैं आपके घर आया था। मैंने आपके पास आकर यही कहा था कि 'मैं एक व्रत करूँगा, आप मेरी सेवा करें।' उसका मतलब यही था कि बहुत दिनों तक आपके साथ रहने से आपका कोई न कोई दोष अवश्य मिलेगा। किन्तु आपके भाग्य से, आपके घर आने से लेकर अभी तक, आपका कोई दोष मुझे नहीं मिला। इसी से आप आज जीवित हैं। मैं इक्कीस दिन तक इसी लिए सोता रहा कि आप लोगों में से कोई मुझे जगा दे और मैं आपको शाप दे दूँ। किन्तु भाग्य से न तो आपने और न आपकी स्त्री ने ही मुझे जगाया। उसके बाद मैं यह सोचकर घर से निकल गया कि आप लोगों में से ज्योंही कोई मुझसे पूछेगा कि 'आप कहाँ गये थे' त्योंही मैं शाप दे दूँगा। किन्तु आप लोगों ने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा। तब मैं फिर अन्तर्धान होकर और उसी दम फिर आपके घर आ गया और यही सोचकर योग का अवलम्बन करके इक्कीस दिन तक सोता रहा कि आप लोग मेरी सेवा से थककर और भूख से व्याकुल होकर मुझसे ऊब जायँगे। तब मुझे शाप देने का मौक़ा मिलेगा। किन्तु मैंने देखा कि आपको इससे भी कुछ क्लेश नहीं हुआ। फिर मैंने यह सोचकर भोजन की सामग्री आग में जला दी कि मेरा अहङ्कार देखकर आपको क्रोध आवेगा; किन्तु आपने उसे भी सह लिया। फिर आपको और आपकी रानी को रथ में जोतकर मैं उस पर सवार हुआ। रथ पर सवार होकर आपको कुपित करने के लिए मैंने आपका बहुत सा धन दान देकर नष्ट कर दिया; किन्तु इससे भी आपमें क्रोध का सञ्चार नहीं हुआ।

महाराज, इस तरह जब मैंने देखा कि आप और आपकी रानी किसी उपाय से कुपित नहीं होते और न आप लोगों का मन ऊबता है तब मैं आप लोगों पर बहुत प्रसन्न हुआ और आप लोगों को, प्रसन्न करने के लिए, तपोवन में स्वर्ग का दर्शन कराया। आप लोगों ने तपोवन

में जो अनेक प्रकार के श्रेष्ठ पदार्थ देखे हैं और क्षण भर में जो इसी शरीर से स्वर्ग देखने का सुख उठाया है वह सब मेरी तपस्या के प्रभाव से ही हुआ है। मैंने आप लोगों को तपस्या और धर्म का बल जताने में लिए ही ये पदार्थ दिखलाये हैं। इनको देखते समय आपने जो इन्द्र का पद भी तृण के समान समझकर ब्राह्मणत्व पाने की इच्छा की है वह भी मुझे मालूम है। आपका ब्राह्मणत्व को बहुत दुर्लभ समझना ठीक ही है। पहले ब्राह्मण होना, ब्राह्मण होने पर ऋषि होना और ऋषि होकर तपस्या करना बहुत कठिन काम है। जो हो, आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। आप स्वयं तो ब्राह्मण न हो सकेंगे किन्तु मेरे वंशजों के प्रभाव से आपका पौत्र ब्राह्मणत्व प्राप्त करेगा। आपका पौत्र तपस्वी और अग्नि के समान तेजस्वी होकर अपने तेज से तीनों लोकों को चकित कर देगा। अब आप जो चाहें वह अभीष्ट वर झटपट माँग लें। आपको वर देकर मैं तीर्थ-यात्रा को जाऊँगा। ३०

महाराज कुशिक ने कहा—भगवन्, मैं यही माँगता हूँ कि आपका वचन सत्य हो जिसमें मेरे वंशज ब्राह्मणत्व प्राप्त करें। विस्तार से बतलाइए कि मेरे वंश में ब्राह्मणत्व किस प्रकार आवेगा। ३७

छप्पनवाँ अध्याय

महर्षि ऋचीक की कृपा से विश्वामित्र और परशुराम के जन्म होने का वृत्तान्त कुशिक को बतलाया जाना

च्यवन ने कहा—महाराज, आपके वंश में ब्राह्मणत्व आने की बात सुनकर ही मैंने आपके वंश का नाश कर देने का उद्योग किया था। अब जिस प्रकार आपके वंश में ब्राह्मणत्व आवेगा, सो सुनिए। क्षत्रिय भृगुवंशीय ब्राह्मणों के यजमान हैं, यह बात प्रसिद्ध है। किन्तु किसी कारण क्षत्रिय लोग भृगुवंशीय ब्राह्मणों के साथ झगड़ा करके उनका नाश कर देने पर उतारू होंगे। वे भृगुवंश की स्त्रियों के गर्भ तक को न छोड़ेंगे। [उस समय भृगुवंश की एक गर्भवती स्त्री, क्षत्रियों से अपने गर्भ की रक्षा करने के लिए, पर्वत में छिप रहेगी।] उसके गर्भ से हम लोगों का वंशधर, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, ऊर्व नाम का पुत्र पैदा होगा। ऊर्व कुपित होकर तीनों लोकों का नाश कर डालने के लिए, पर्वत और वन समेत, पृथिवी को भस्म कर देने पर उतारू होंगे। यह देखकर संसार घबरा जायगा और क्रोध शान्त करने के लिए उनसे प्रार्थना करेगा। तब वे उस क्रोधानल को समुद्र में, बड़वामुख में, फेंक देंगे। ऊर्व के पुत्र ऋचीक होंगे। क्षत्रियों का नाश करने के लिए ऋचीक, अलौकिक उपाय से, सम्पूर्ण धनुर्वेद सीखेंगे। वे आपके वंश की रक्षा के लिए आपके पुत्र गाधि की कन्या से विवाह करेंगे। उस समय आपके पुत्र गाधि, अपना वंशधर पुत्र न उत्पन्न होने के कारण, बड़े दुखी होंगे। कुछ दिनों बाद ऋचीक अपनी स्त्री और अपनी सास के पुत्रवती होने के लिए, ब्राह्म और क्षात्र, दो १०

प्रकार के चरु तैयार करेंगे। किन्तु गाधि की स्त्री, श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करने की लालसा से, अपनी कन्या से चरु बदलकर ब्राह्म चरु खा लेगी। यह हाल जानकर ऋचीक बता देंगे कि इन दोनों चरुओं के प्रभाव से किस प्रकार के पुत्र उत्पन्न होंगे। यह सुनकर ऋचीक की स्त्री अपने पति से यह वर माँगेगी कि मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो, मेरा पौत्र क्षत्रिय हो। यह बात ऋचीक मान लेंगे। फिर उस चरु के प्रभाव से ऋचीक की स्त्री के जमदग्नि नाम का पुत्र उत्पन्न होगा। जमदग्नि अपने पिता से सम्पूर्ण धनुर्वेद सीखेंगे। जमदग्नि के वीर्य से राम का जन्म होगा। अपनी पितामही के वर माँगने के अनुसार परशुराम क्षत्रिय-धर्मावलम्बी होकर सम्पूर्ण धनुर्वेद के जानकार हो जायँगे। इधर गाधि की स्त्री के, ब्राह्म चरु के प्रभाव से, विश्वामित्र नाम का धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न होगा। विश्वामित्र घोर तपस्या करके ब्राह्मण हो जायँगे। महाराज, विधाता के अभिप्राय के अनुसार स्त्रियों के कारण आपके वंश में ब्राह्मणत्व और मेरे वंश में क्षत्रियत्व आ जायगा। विधाता की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता। इस प्रकार आपका पोता ब्राह्मण हो जायगा और इसी घटना के कारण भृगुवंशवालों के साथ आपका सम्बन्ध जुड़ जायगा।

यह भविष्य वृत्तान्त सुनकर महाराज कुशिक ने प्रसन्न होकर महर्षि से कहा कि भगवन्, आपकी कृपा से मेरे वंश में ब्राह्मणत्व आ जावे। महर्षि च्यवन ने उनसे कहा—आप मुझसे वर माँगिए। मैं अभीष्ट वर दूँगा। कुशिक ने कहा—ब्रह्मन्, आपकी कृपा से मेरे वंश में सदा धर्म की दृढ़ता बनी रहे। महर्षि च्यवन ने 'तथास्तु' कहकर कुशिक को वरदान दिया।

राजा से बिदा होकर महर्षि तीर्थ-यात्रा को चले गये। हे धर्मराज, भृगुवंशी ब्राह्मणों के साथ कुशिक-वंश का जिस प्रकार सम्बन्ध हुआ और जिस तरह कुशिक के पौत्र ब्राह्मण तथा
२१ ऋचीक के पौत्र क्षत्रिय हुए वह वृत्तान्त मैंने तुमको सुना दिया।

सत्तावनवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के शुभ कर्मों के फल बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! महापराक्रमी राजाओं के मर जाने से यह पृथिवी दीन भाव धारण कर रही है, इस बात का स्मरण करके मैं घबरा जाता हूँ। असंख्य प्राणियों का संहार करके राज्य पाने पर सन्ताप ही मेरे हाथ लगा। जिन स्त्रियों के पति, पुत्र, मामा और भाई संग्राम में मारे गये हैं उनकी आज क्या गति होगी? जब हम लोगों ने राज्य के लोभ से भाई-बन्धुओं को युद्ध में मार डाला है तब निस्सन्देह हमें नरक में गिरना पड़ेगा। यह सोचकर मैं तपस्या करना चाहता हूँ। आप कृपा करके मुझे इस समय के अनुकूल उपदेश दीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, धर्मराज के यों कहने पर मनस्वी भीष्म ने कहा—बेटा, जिन कर्मों से परलोक में जो गति मिलती है उनको सुनो। मनुष्य तपस्या द्वारा यश,

दीर्घायु, अनेक प्रकार के भोग, ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, धन-सम्पत्ति, सौभाग्य और परलोक में स्वर्ग प्राप्त करता है। जो मनुष्य मौनव्रत धारण करता है वह सब लोकों को अपने अधीन कर सकता है। दान करने से भोग, ब्रह्मचर्य धारण करने से दीर्घायु, अहिंसा से सौन्दर्य और दीक्षा से अच्छे वंश में जन्म मिलता है। जो मनुष्य केवल फल-मूल खाता है उसे राज्य-प्राप्ति १०
होती और जो पत्ते खाकर रहता या केवल जल पीता है उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। दान करने से बहुत सा धन मिलता है, गुरु की सेवा करने से विद्या और नित्य श्राद्ध करने से सन्तान मिलती है। जो मनुष्य केवल शाक खाता है उसे दूसरे जन्म में गायें मिलती हैं और जो केवल तृण खाता है उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। त्रिकाल-स्नान करने से स्त्रियाँ मिलतीं और वायु भक्षण करते रहने से प्रजापति-लोक की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य नित्य स्नान और प्रातःकाल तथा सन्ध्या-काल में जप करता है उसे परलोक में दक्ष प्रजापति की समानता, जो मरुभूमि में अनशन व्रत करता हुआ साधना करता है उसे स्वर्ग, जो चबूतरे पर सोता है उसे घर और शय्या, जो चीर और वल्कल पहनता है उसे वस्त्र-आभूषण, जो तपस्वी योग करता है उसे अनेक प्रकार की शय्या आसन और सवारी तथा जो अग्नि में प्रवेश करके प्राण त्यागता है उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। सब रसों के त्याग देने से सौभाग्य, मांस न खाने से सन्तान की दीर्घायु, जल में निवास करके तप करने से राज्य की प्राप्ति होती और सदा सत्य बोलने से (शरीर त्यागने के बाद) देवताओं के साथ निवास करने को मिलता है। दान द्वारा यश, अहिंसा द्वारा आरोग्य, ब्राह्मणों की सेवा करने से राज्य और ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है। पानी पिलाने से कीर्ति होती और अन्न-जल देने से अनेक प्रकार के भोग मिलते हैं। सब प्राणियों को शान्ति देनेवाले महात्माओं को २०
कभी शोक-सन्ताप नहीं करना पड़ता। देवताओं की आराधना करने से परलोक में राज्य और दिव्य रूप प्राप्त होता, दीपक का दान करने से आँखें मिलतीं, सुन्दर वस्तुएँ देने से स्मृति और मेधा बढ़ती तथा सुगन्ध और माला देने से कीर्ति होती है। इस जन्म में जो दाढ़ी और सिर के बाल रखाये रहता है उसके [दूसरे जन्म में] श्रेष्ठ पुत्र होता है। जो बारह वर्ष तक सब भोगों का त्याग कर देता है तथा जप आदि का पालन और त्रिकाल-स्नान करता है वह परलोक में वीर पुरुषों से भी बढ़कर स्थान पाता है। ब्राह्म विवाह के अनुसार कन्यादान करने से दूसरे जन्म में दास, दासी, गहने, खेत और घर आदि मिलते हैं। यज्ञ और उपवास करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो फल-फूल द्वारा ईश्वर की आराधना करते हैं उनको मङ्गलमय पवित्र ज्ञान हो जाता है। देवताओं का वचन है कि सोने से सींग मढ़ाकर हज़ार गोदान करने से मनुष्यों को देवलोक की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य सोने से मढ़े हुए सींगोंवाली गाय का, दुहने के बर्तन और बछड़े समेत, दान करता है वह परलोक में, उस गाय के जितने रोएँ होते हैं उतने वर्ष तक, अभीष्ट सुख का भोग और अपने पुत्र-पौत्र आदि सात पीढ़ियों तक का उद्धार कर सकता है। दक्षिणा, दुहने

के लिए काँसे का बर्तन, सोने का दुपट्टा ओढ़ाकर, सोने से सींग मढ़ाकर तिलमयी गाय का दान
३० करने से वसुलोक प्राप्त होता है। जिस तरह वायु की सहायता से जहाज़ समुद्र से पार लगता है उसी तरह गोदान करने से अन्धकारमय नरक से छुटकारा मिलता है। जो इस जन्म में ब्राह्म-विवाह के अनुसार कन्यादान और ब्राह्मणों को भूमि का तथा अन्न का दान करते हैं उन्हें स्वर्ग-लोक की प्राप्ति होती है। जो विद्वान् गुणवान् ब्राह्मणों को घर की पूरी सामग्री दान करता है वह दूसरे जन्म में उत्तर कुरु में निवास करके सुख भोगता है। गाय-बैल का दान करने से वसुलोक, सोना दान करने से स्वर्गलोक, शुद्ध सोने का दान करने से स्वर्ग से भी बढ़कर लोक, छाता देने से सुन्दर घर, जूता दान करने से सवारी, वस्त्र दान करने से दिव्य रूप और गन्ध का दान करने से सुगन्धयुक्त शरीर मिलता है। जो मनुष्य ब्राह्मणों को फलते या फूलते पेड़ का दान करता है उसे दूसरे जन्म में अनेक प्रकार के रत्नों से शोभित घर मिलता है। जो अनेक प्रकार के भोजन, पानी, वस्त्र और आश्रय देता है उसे दूसरे जन्म में ये सब वस्तुएँ, अधिक परिमाण में, मिलती हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणों को स्नान करने की सामग्री, धूप, गन्ध और माला देता है वह दूसरे जन्म में रोगहीन और सुन्दर होता है। ब्राह्मण को धन-धान्य से पूर्ण, शय्या समेत, घर का दान करने से ध्रुवलोक की प्राप्ति होती है। जो सुगन्धयुक्त विचित्र बिछौने समेत शय्या का दान करता है
४० उसे दूसरे जन्म में अच्छे घराने की रूपवती स्त्री मिलती है। ऋषियों का वचन है कि वीर-शय्या पर शयन करने से पितामह ब्रह्मा का लोक प्राप्त होता है। अतएव युद्ध में प्राण त्यागनेवाले वीरों के समान श्रेष्ठ गति और कोई नहीं पा सकता।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, धर्मराज युधिष्ठिर ने महात्मा भीष्म के इन वचनों को सुनकर, स्वर्ग पाने की इच्छा से, वनवास करने का इरादा करके अपने भाइयों से कहा कि तुम लोग पितामह की बातें पसन्द करो। भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी
४४ ने युधिष्ठिर की आज्ञा मान ली।

अट्ठावनवाँ अध्याय

जलाशय बनवाने और वृक्ष लगाने की फल-श्रुति

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जलाशय खुदवाने और बाग़-बग़ीचे लगवाने से क्या फल होता है?

भीष्म ने कहा—बेटा, जिस स्थान पर अनेक जीव रहते हों और सब तरह के अन्न पैदा होते हों वह भूमि श्रेष्ठ है। उसी स्थान पर जलाशय खुदवाना चाहिए। जलाशय खुदवाने के गुणों का वर्णन सुनो। जलाशय बनवानेवाला तीनों लोकों में पूज्य होता है। जलाशय—मित्र के समान—सब प्राणियों का उपकारी, सूर्य को प्रसन्न करनेवाला, देवताओं का पुष्टिवर्धक और

कर्ता की कीर्ति बढ़ानेवाला होता है। पण्डितों का कहना है कि जलाशय बनवाने से त्रिवर्ग का फल मिलता है। अतएव जलाशय पवित्र क्षेत्र-स्वरूप है। जलाशय का पानी पीकर चारों प्रकार के जीव जीवित रहते हैं इसलिए जलाशय की प्रतिष्ठा करने से प्रतिष्ठाता की निस्सन्देह श्रीवृद्धि होती है। देवता, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, साँप, राक्षस और पृथिवी के अन्य प्राणी जलाशय का आश्रय लेते हैं। ऋषियों ने जलाशय बनवाने का जो फल बतलाया है वह सुनो। वर्षा- ९
काल में जिसके तालाब में जल रहता है उसे अग्निहोत्र यज्ञ का, शरद् ऋतु में जिसके तालाब में जल रहता है उसे हज़ार गोदान का, हेमन्त ऋतु में जिसके तालाब में जल रहता है उसे बहु-सुवर्ण यज्ञ का, शिशिर ऋतु में जिसके तालाब में जल रहता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ का, वसन्त ऋतु में जिसके तालाब में जल रहता है उसे अतिरात्र यज्ञ का और ग्रीष्म ऋतु में जिसके तालाब में जल रहता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। मनुष्य, गायें और पशु-पक्षी आदि प्राणी जिसके तालाब में पानी पीते हैं उसका कुल पवित्र हो जाता है और उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। जिसके तालाब में जीव-जन्तु पानी पीते, नहाते और विश्राम करते हैं उसे परलोक में कभी स्नान, जलपान और विश्राम का क्लेश नहीं होता। परलोक में जल का मिलना बहुत कठिन है। जलदान करने से परलोक में तृप्ति होती है। इसी लोक में तिल, जल और दीपक का दान तथा सजातीय लोगों के साथ आमोद-प्रमोद करो; क्योंकि इस लोक से प्रस्थान २०
कर जाने पर परलोक में ये काम नहीं हो सकते। जलदान से श्रेष्ठ कोई दान नहीं है, अतएव जलदान करना सर्वथा उचित है।

हे धर्मराज! यह तो जलाशय बनाने का फल हुआ, अब वृक्ष लगाने का फल सुनो। वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, बाँस और तृण, इन छः जातियों में उद्भिज पदार्थ विभक्त हैं। इनके लगाने से इस लोक में कीर्ति होती, शुभ फल मिलता और पितृलोक में सम्मान होता है। वृक्ष लगानेवाला मर जाता है तो भी उसका नाम बना रहता है और वह अपने आगे-पीछे की कई पीढ़ियों का उद्धार कर सकता है। अतएव बाग़-बग़ीचे अवश्य लगाये जायँ। वृक्ष का लगाने-वाला मरने पर निस्सन्देह स्वर्ग-लोक को जाता है। वृक्ष पुत्र-स्वरूप होकर उसका उद्धार करते हैं। वृक्ष फूलों से देवताओं का, फलों से पितरों का और छाया से अतिथियों का सत्कार करते हैं। किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, ऋषि और मनुष्य वृक्षों का आश्रय लेते हैं; वृक्षों के फल-फूलों द्वारा उनकी तृप्ति होती है। अतएव जलाशय के किनारे वृक्ष लगाकर पुत्र के समान ३०
उनका पालन करना कल्याण चाहनेवाले का कर्त्तव्य है। जलाशय बनाने, वृक्ष लगाने, यज्ञ करने और सत्य बोलने से निस्सन्देह स्वर्ग की प्राप्ति होता है। अतएव जलाशय खुदवावे, बाग़ लगवावे, यज्ञ करावे और सच बोले। ३३

उनसठवाँ अध्याय

भीष्म का ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए उनकी आराधना करने की विधि बतलाना।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने जितने दान बतलाये हैं उनमें सबसे श्रेष्ठ दान कौन सा है? जो वस्तु दान करने से दाता को इस लोक और परलोक में फिर प्राप्त होती हो उसे सुनने के लिए मैं बड़ा उत्सुक हो रहा हूँ।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! प्राणियों को अभय दान करने, विपद्ग्रस्त की सहायता करने और माँगने के अनुसार धन देने से दोनों लोकों में वह सब प्राप्त होता है। इस प्रकार का दान श्रेष्ठ है। गाय, भूमि और सोने का दान श्रेष्ठ है; वह पापियों को पाप से छुड़ा सकता है। तुम सत्पात्रों को सदा इन वस्तुओं का दान करना। दान के प्रभाव से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। जो मनुष्य दान की वस्तु को अक्षय करना चाहे वह सत्पात्रों को प्रिय वस्तुएँ दान करे। जो प्रिय वस्तु का दान करता और दूसरों के प्रिय कार्य करता रहता है उसे हमेशा प्रिय वस्तुएँ प्राप्त रहती हैं; वह दोनों लोकों में सबका प्रिय रहता है। यदि दरिद्र मनुष्य किसी को समर्थ समझकर उससे भोजन माँगे और वह समर्थ होने पर भी देने से इनकार कर दे तो बड़ा निठुर कहलाता है। जो विपद्ग्रस्त शत्रुओं पर भी, शरणापन्न होने पर, कृपा करते हैं वही श्रेष्ठ पुरुष
१० हैं। विद्वान् जीविका-हीन दुखी मनुष्य की जीविका का प्रबन्ध जो मनुष्य कर देता है उसके समान श्रेष्ठ कोई नहीं है। जो धर्मात्मा सच्चरित्र बाल-बच्चेवाले मनुष्य, भोजन का कष्ट होने पर भी, किसी से कुछ नहीं माँगते उनकी रक्षा—धन आदि देकर—अवश्य करे। जो मनुष्य पूजनीय और नित्य सन्तुष्ट हैं, जो देवता और मनुष्य किसी से कुछ नहीं माँगते और बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उसी से अपना निर्वाह करते हैं वे साँप के समान भयङ्कर होते हैं। तुम वह उपाय करते रहना जिसमें ऐसे मनुष्य कभी कुपित न हों। हमेशा जासूसों द्वारा पता लगाते रहना कि उनके पास भोजन के उपयोगी धन है या नहीं और घर बनवाकर, नौकर देकर तथा वस्त्र आदि सुख की सामग्री द्वारा उनको प्रसन्न करने का यत्न करना। वे जो धन आदि दान में ले लेंगे उससे श्रेष्ठ धर्म का साधन होगा। जो विधि के अनुसार विद्या पढ़कर और नियम का पालन करके किसी का आश्रय लिये बिना ही अपना निर्वाह करते हैं तथा जो दूसरों को प्रसन्न करने के लिए तपस्या या वेदाध्ययन नहीं करते, उन जितेन्द्रिय शुद्धहृदय स्वदार-निरत ब्राह्मणों को जो कुछ दान किया जाता है वह निस्सन्देह परलोक में साथ जाता है। अग्निहोत्री ब्राह्मणों को, पूर्वाह्ण और अपराह्ण के समय, अग्नि में आहुति देने से जो फल मिलता है वही फल संयमी ब्राह्मण को धन आदि देने से मिल सकता है।

२० हे धर्मराज, अब तुम श्रद्धावान् और दानशील होकर विशाल दान-रूप यज्ञ करो। गुणवान् ब्राह्मणों को श्राद्धीय द्रव्य देने तथा भक्तिपूर्वक उनका सम्मान करने से देवता आदि के

ऋण से छुटकारा मिलता है। जो ब्राह्मण कभी क्राध नहीं करते, जिन्हें एक तिनका लेने का भी लोभ नहीं है और जो हमेशा प्रिय वचन बोलते हैं वही हम लोगों के पूजनीय हैं। जो निःस्पृहता के कारण दाता की परवा नहीं करते उनका पालन, पुत्र के समान, करना चाहिए। मैं उन महात्माओं को प्रणाम करता और उनसे अभय माँगता हूँ। ब्राह्मण पर क्षत्रिय के तेज का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव तुम अपने को धनवान्, राजा और महापराक्रमी समझकर ब्राह्मणों का अनादर न करने लगना। तुम्हारा बल और गौरव बढ़ाने के लिए जितना धन है उस धन से, अपने धर्म का पालन करते हुए, ब्राह्मणों का सत्कार करना। वे पुत्र के समान, अपनी इच्छा के अनुसार, तुम्हारे आश्रय में सुख से रहें। नित्य प्रसन्न, लोक-हितैषी, थोड़े लाभ में सन्तुष्ट ब्राह्मणों की जीविका का प्रबन्ध करने में तुम्हारे सिवा और कोई समर्थ नहीं है। जैसे पति की सेवा करना स्त्रियों का परम धर्म है और पति की सेवा ही उनकी परम गति है वैसे ही ब्राह्मणों की सेवा हम लोगों का परम धर्म है और ब्राह्मण ही हम लोगों की परम गति हैं। यदि ब्राह्मण क्षत्रियों के निठुर व्यवहार से असन्तुष्ट और उनसे अपमानित होकर उनका त्याग कर दें तो वेद और यज्ञ से हीन तथा श्रेष्ठ लोक पाने से वञ्चित रहकर क्षत्रियों को जीवित रहने का क्या प्रयोजन है? हे धर्मराज, क्षत्रियों ने धर्म के अनुसार ब्राह्मणों के साथ पहले जैसा व्यवहार ३१
किया है उसको सुनो। प्राचीन समय में वैश्य क्षत्रियों की और शूद्र वैश्यों की सेवा करते थे। शूद्र लोग तेजस्वी ब्राह्मणों को छूकर उनकी सेवा नहीं कर सकते थे। तुम सत्यशील, मृदु-स्वभाव, सत्यधर्म-परायण, कुपित साँप के समान भयङ्कर ब्राह्मणों की सेवा करना। क्षत्रियों का तेज और उनकी तपस्या ब्राह्मणों के सामने दब जाती है। मुझे पिता, पितामह और अपने जीवन की भी अपेक्षा ब्राह्मण ही प्रिय हैं। मैं संसार में सबसे अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ, किन्तु ब्राह्मण मुझे तुमसे भी प्रिय हैं। मेरी बात में रत्ती भर भी सन्देह न करना। महाराज शान्तनु जिन लोकों को गये हैं उन्हीं लोकों को मैं भी, सत्य के प्रभाव से, जाऊँगा। मैं इस विप्र-भक्ति के प्रभाव से सज्जनों के पाने योग्य लोकों को सदा के लिए प्राप्त करूँगा। इन लोकों को मैं ज्ञान-चक्षु के प्रभाव से इस समय प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। इनके प्रत्यक्ष हो जाने से, मैंने ब्राह्मणों के उद्देश्य से पहले जो काम किये हैं उनसे मैं अति सन्तुष्ट हो रहा हूँ। ४१

साठवाँ अध्याय

भीष्म का ब्राह्मणों की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आचरण, कुल और विद्या में एक समान दो ब्राह्मणों में से यदि एक याचक और दूसरा अयाचक हो तो उन दोनों में से किसे दान करने से श्रेष्ठ फल मिलता है?

भीष्म कहते हैं—बेटा, याचक ब्राह्मण की अपेक्षा अयाचक ब्राह्मण को दान करने से श्रेष्ठ फल होता है। रक्षा करना क्षत्रियों का और अयाचक वृत्ति ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है। धैर्यवान् विद्वान् ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर देवताओं को प्रसन्न कर सकता है। याचक ब्राह्मण, डाकुओं की तरह, लोगों को सङ्कट में डालते हैं। इसी से पण्डितों ने माँगने को चोरी के समान बतलाया है। माँगनेवाले मनुष्य मुर्दे के समान समझे जाते हैं। दानशील मनुष्य तो अमर है; क्योंकि वह पहले पराई जीविका का प्रबन्ध करके तब अपनी फ़िक्र करता है। मनुष्य दया के वश होकर माँगनेवाले ब्राह्मणों को धन देते हैं; किन्तु जो ब्राह्मण सङ्कट में पड़कर भी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते उन्हीं को दान देना चाहिए। यदि तुम्हारे राज्य में अयाचक दरिद्र ब्राह्मण रहते हों तो तुम उनको, राख में छिपी हुई आग के समान, ढूँढ़ना। वे तपस्वी महात्मा पृथिवी को भी भस्म कर सकते हैं, अतएव उनका सत्कार करना। तुम हमेशा ज्ञान, विज्ञान, तपस्या और योगबल से सम्पन्न ब्राह्मणों की पूजा और अयाचक महात्माओं को दान करना। प्रातः और सन्ध्याकाल में हवन करने से जो फल होता है वही फल विद्वान् ब्राह्मण को दान देने से मिलता है। अतएव जो ब्राह्मण, विधि के अनुसार, विद्या का उपार्जन करके नियम का पालन और किसी के आश्रित न रहकर अपना निर्वाह करते हैं तथा जो ब्राह्मण प्रशंसा के लिए तपस्या नहीं करते उनको तुम घर देकर, नौकर देकर, वस्त्र और भोग की वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट करना। वे धन आदि जो कुछ ले लेंगे उससे बड़ा पुण्य होगा। जिन ब्राह्मणों के पुत्र और स्त्री आदि, बरसात की प्रतीक्षा करनेवाले किसानों की तरह, भोज्य वस्तुओं की प्रतीक्षा करें उन्हें भोजन देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय ब्राह्मण प्रातःकाल जिनके घर में भोजन करते हैं उन पर अग्नि देवता बहुत प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य दोपहर के समय इस प्रकार के ब्राह्मणों को गाय, वस्त्र और सोने का दान करता है उस पर इन्द्र बहुत प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य तीसरे पहर अन्न आदि देकर देवताओं, पितरों और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है उससे विश्वेदेवा प्रसन्न होते हैं। अतएव तुम सब प्राणियों के साथ अहिंसा, न्यायानुसार पोष्यवर्ग का पालन, जितेन्द्रियता, धैर्य और सत्य गुण का अवलम्बन करके अवभृथ-स्नान का फल प्राप्त करो। यही सबसे श्रेष्ठ यज्ञ है। तुम श्रद्धा के साथ सदा इसे किया करो।

इकसठवाँ अध्याय

ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए प्रजा और ब्राह्मणों की रक्षा करने को राजा का कर्तव्य बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, दान और यज्ञ के द्वारा इस लोक में महाफल मिलता है या परलोक में इनका फल प्राप्त होता है? इन दोनों कामों में किसका फल श्रेष्ठ है? दान का पात्र

कौन है, यज्ञ किस प्रकार करना चाहिए, यज्ञ और दान करने के लिए कौन सा समय श्रेष्ठ है तथा जो मनुष्य यज्ञ करके दान करे और जो यज्ञ किये बिना दान करे उन दोनों में कौन मनुष्य श्रेष्ठ फल पा सकता है ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, क्षत्रिय जाति सदा हिंसाजनक कामों में लगी रहती है। इससे, हिंसा आदि पापाचार करनेवाले क्षत्रियों का दान लेना सत्पात्र ब्राह्मण स्वीकार नहीं करते। अतएव यज्ञ करके सज्जन ब्राह्मणों को दान देना उनका कर्तव्य है। यदि सज्जन मनुष्य यज्ञ के बिना भी क्षत्रियों का दान लेना स्वीकार करें तो बड़ी श्रद्धा के साथ उनको दान देता रहे। इससे बढ़कर क्षत्रियों को पवित्र करनेवाला दूसरा काम नहीं है। जो वेदज्ञ, सच्चरित्र, तपस्वी और सब प्राणियों के हितकारी होते हैं वही ब्राह्मण दान के पात्र हैं। यदि इस प्रकार के ब्राह्मण तुम्हारा दान न लें तो तुम्हें पुण्य नहीं मिल सकता, अतएव तुम पुण्य सञ्चय करने के लिए यज्ञ करके अनेक प्रकार के भोजन और धन आदि ब्राह्मणों को दान करो। यज्ञशील ब्राह्मण दाता से धन लेकर यज्ञ करते हैं, अतएव यदि तुम ऐसे ब्राह्मणों को धन दोगे तो निस्सन्देह यज्ञ का फल पाओगे। जो पुत्र-पौत्र आदि से युक्त ब्राह्मणों का भरण-पोषण करता है उसके बहुत से पुत्र-पौत्र उत्पन्न होते हैं। जो सज्जन श्रेष्ठ धर्मों की वृद्धि करते हैं और जो सदा परोपकार करते रहते हैं उनका भरण-पोषण, सर्वस्व दान करके भी, करना चाहिए। हे धर्मराज ! तुम अतुल धन के स्वामी हो, अतएव ब्राह्मणों को गाय, बैल, अन्न, छाता, कपड़ा, जूता, घोड़ों समेत रथ, घर और शय्या का दान करो। यज्ञ करनेवालों को घी आदि यज्ञ की सामग्री देते रहना। जो ब्राह्मण सदाचारी हैं और परिवार का भरण-पोषण करने में बिलकुल असमर्थ हैं उनका भरण-पोषण, गुप्त भाव से हो या प्रकट रूप से, अवश्य करो। यह काम राजसूय और अश्वमेध से भी बढ़कर है। इस प्रकार के कामों द्वारा तुम पाप से छूटकर स्वर्गलोक प्राप्त करोगे। यदि दान आदि करने से तुम्हारा ख़ज़ाना ख़ाली हो जाय तो तुम फिर धन का सञ्चय करके प्रजा का पालन करो। इससे दूसरे जन्म में तुम ब्राह्मण होगे और अतुल धन प्राप्त करोगे। तुम सदा सावधान रहकर अपनी और दूसरों की जीविका की रक्षा करो और पुत्र के समान प्रजा तथा सेवकों का पालन करो। ब्राह्मणों की जीविका के लिए प्रजा से धन लो और ब्राह्मणों की रक्षा करो। तुम्हारा जीवन ब्राह्मणों की सेवा में ही बीते। ब्राह्मणों का मालदार होना आपत्ति का घर है। धन की बदौलत उनके अहङ्कारी और अविवेकी होने की आशङ्का रहती है। ब्राह्मणों के अविवेकी होने पर धर्म का लोप हो जाता है। धर्म का लोप हो जाने पर प्राणी क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते। १० २०

जो राजा एक बार राज्य से धन लेकर ख़ज़ाने में रख लेता है और यज्ञ के लिए फिर प्रजा को सताकर धन का सञ्चय करता है तो उस धन से किया हुआ यज्ञ प्रशंसनीय नहीं

होता। प्रजा पीड़ित न होकर प्रेम के साथ जो धन देती है उसी धन से राजा को यज्ञ करना चाहिए। प्रजा को सताकर यज्ञ करना उचित नहीं। जब राजा प्रजा को प्रसन्न कर ले तब बहुत सा दान दे और यज्ञ करे। राजा वृद्ध बालक, अन्धे और दीन मनुष्य के धन की रक्षा करे। पानी न बरसने पर प्रजा यदि किसी तरह सिंचाई करके फ़सल पैदा करे तो राजा उससे कर न ले। जो स्त्रियाँ राजा को कर देने में असमर्थ हों उनसे राजा कर न ले। दीन मनुष्य के थोड़े से धन में से कर लेने पर राजा का राज्य नष्ट हो जाता है। सज्जनों को भोजन देकर राजा उनको तृप्त करे। जिस राजा के राज्य में बालक स्वादिष्ठ भोजन के लिए तरसते रहते हों उससे बढ़कर पापी कौन होगा? यदि तुम्हारे राज्य में ब्राह्मण भूखे रहेंगे तो निस्सन्देह तुमको भ्रूणहत्या लगेगी। महाराज शिबि ने कहा था कि जिस राजा के राज्य में प्रजा भूखों मरती है उस राजा को धिक्कार है। जिस राजा के राज्य में स्नातक ब्राह्मण भूखों
३० मर रहे हों उस राजा का राज्य शत्रुओं के हाथ में चला जायगा। जिस राजा के राज्य में दुष्ट लोग रोती हुई स्त्री को, उसके पति और पुत्र के चिल्लाते रहने पर भी, हर ले जाते हैं वह राजा मुर्दे के समान है। जो राजा प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ है, जो केवल प्रजा को सताकर धन बटोरना जानता है और जिसके मन्त्री बुद्धिमान् नहीं हैं उस अधर्मी, निर्दय राजकुलाङ्गार को प्रजा मिलकर मार डाले। जो राजा रक्षा करने का भार ग्रहण करके उस विषय में उदासीनता दिखलाता है उसे, एकत्र होकर, पागल कुत्ते की तरह मार डालना चाहिए। नियमानुसार प्रजा का पालन न करने से प्रजा जो पाप करती है उसका चौथाई पाप राजा को लगता है। कोई-कोई कहते हैं कि प्रजा की रक्षा न करनेवाला राजा प्रजा के सम्पूर्ण पाप का उत्तरदाता है और कोई-कोई कहते हैं कि पालन न करनेवाले राजा को प्रजा के पाप का आधा भाग मिलता है। किन्तु धर्मशास्त्र के प्रणेता महात्मा मनु के मत से प्रजा के पाप का चौथाई भाग, पालन न करनेवाले, राजा को मिलता है। हमारा भी यही मत है। नियमानुसार पालित होकर प्रजा जो पुण्य करती है उसका चौथाई भाग राजा को मिलता है। हे धर्मराज! जिस तरह प्रजा क्षत्रिय का, पक्षी वृक्ष का, यक्ष कुबेर का और देवता इन्द्र का आश्रय करते हैं उसी
३८ तरह तुम्हारी प्रजा, जाति और तुम्हारे सुहृद्गण तुम्हारा आश्रय करें।

बासठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से भूमिदान का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, धर्म-शास्त्र में राजाओं के लिए जो अनेक प्रकार के दान करने का नियम है उनमें कौन सा दान श्रेष्ठ है?

भीष्म कहते हैं—बेटा, भूमिदान सबसे श्रेष्ठ है। भूमि अक्षय और अचल है; वह मनुष्यों की सब कामनाएँ पूरी करती है। भूमि से वस्त्र, रत्न, पशु और अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं। भूमिदान करनेवाला मनुष्य बहुत दिनों तक समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता है। जब तक भूमि रहेगी तब तक दाता फलता-फूलता रहेगा। अपने कर्मों का फल मनुष्य दोनों लोकों में पाता है। महादेवी पृथिवी भूमिदान करनेवाले को पति-रूप से स्वीकार करती है। अतएव जो मनुष्य इस जन्म में भूमिदान करता है वह दूसरे जन्म में पृथिवी का अधीश्वर होता है। सारांश यह कि मनुष्य इस जन्म में जो कुछ दान करता है, उसी के अनुरूप फल पर-जन्म में भोगता है। पण्डितों का कहना है कि सम्मुख युद्ध करके शरीर त्यागना और भूमिदान करना क्षत्रियों का परम धर्म है। ब्रह्महत्यारा मिथ्यावादी पापी मनुष्य भी यदि भूमिदान करे तो वह भूमि उसे सब पापों से मुक्त करके पवित्र कर देती है। पापी राजाओं से सोना आदि लेने से धर्मात्मा ब्राह्मण पाप के भागी होते हैं; किन्तु भूमिदान लेने से उन्हें कोई पाप नहीं लगता। पृथिवी भूमिदाता और भूमिग्रहीता दोनों का प्रिय करती है इसी से उसका नाम प्रियदत्ता है। जो राजा विद्वान् ब्राह्मण को भूमिदान करता है वह इस जन्म में मनमाना राज्य भोगता और पर-जन्म में सार्वभौमत्व प्राप्त करता है। अतएव राजा भूमि का दान अवश्य करे। राजा के सिवा और किसी को भूमिदान करने का अधिकार नहीं। अयोग्य पात्र को भूमिदान लेने का अधिकार नहीं है। दूसरे दान की तरह भूमिदान करके गुप्त रखने का कोई प्रयोजन नहीं। पृथिवी पाने की इच्छा करनेवाले राजा को भूमिदान अवश्य करना चाहिए। जो राजा बलपूर्वक सज्जनों की भूमि छीन लेता है वह दूसरे जन्म में राजा नहीं हो सकता। जो धर्मात्मा राजा सज्जनों को भूमिदान करता है वह इस जन्म में और दूसरे जन्म में श्रेष्ठ भूमि तथा यश पाता है। ब्राह्मण जिस राजा के राज्य की प्रशंसा करते हैं उसके राज्य पर शत्रु आक्रमण नहीं कर सकते। धन न होने के कारण मनुष्य जो कुछ पाप करता है वह इक्कीस सौ हाथ भूमि का दान करने से नष्ट हो जाता है। भूमिदान करने से अति घृणित अधर्मी राजा भी पवित्र हो सकता है। प्राचीन पण्डितों का वचन है कि अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल मिलता है वही फल धर्मात्माओं को भूमि का दान करने से होता है। पण्डित लोग अन्य शुभ कर्म के फल के विषय में चाहे सन्देह भी करें, किन्तु श्रेष्ठ भूमिदान के फल के विषय में उन्हें कोई सन्देह नहीं है। भूमि का दान करने से तपस्या, यज्ञ, विद्या, सुशीलता, निर्लोभ, सत्यवादिता, देवार्चना और गुरु-शुश्रूषा का तथा सोना, चाँदी, वस्त्र, मणि, मोती आदि अनेक प्रकार के धन दान करने का फल मिलता है। जो अपने स्वामी का हित करने के लिए सम्मुख युद्ध में प्राण त्यागकर ब्रह्मलोक को जाता है वह भी भूमि-दाता की बराबरी नहीं कर सकता। जिस तरह माता दूध पिलाकर बालक को पालती है उसी तरह पृथिवी सब प्रकार के रस देकर भूमिदाता राजा का पालन करती है। मृत्यु, काल, दण्ड,

तमोगुण, दारुण अग्नि और भयङ्कर पाश भूमिदाता को स्पर्श भी नहीं कर सकते। शान्तस्वभाव होकर भूमिदान करने से देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट किया जा सकता है। दुर्बल, दरिद्र और भूखों मर रहे ब्राह्मण को भूमिदान करने से यज्ञ का फल मिलता है। जैसे गाय, भरे हुए थनों से, पास जाकर बछड़े को दूध पिलाती है वैसे ही पृथिवी भूमिदाता राजा को दोनों लोकों में
३० विविध भोग देती है। जो मनुष्य इस जन्म में ब्राह्मण को जोती-बोई हुई पृथिवी अथवा श्रेष्ठ घर देता है उसकी सब कामनाएँ, दूसरे जन्म में, पूरी होती हैं। जो राजा आहिताग्नि, व्रत-परायण, सच्चरित्र ब्राह्मण को भूमिदान करता है उसे कभी विपद्ग्रस्त नहीं होना पड़ता। जिस तरह शुक्लपक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ता है उसी तरह भूमिदान का फल, दान की हुई पृथिवी में जितने बार फ़सल होती है उतने ही गुना, बढ़ता रहता है।

पुराण के मर्मज्ञ पण्डित इस विषय में कह गये हैं कि पृथिवी ने स्वयं कहा है—'मेरा दान करो और मेरा दान लो। मेरा दान करने से दूसरे जन्म में मुझे फिर पाओगे; क्योंकि मनुष्य इस जन्म में जो कुछ दान करता है वही उसे दूसरे जन्म में मिलता है।' महात्मा परशुराम ने यही पृथिवी की उक्ति सुनकर महर्षि कश्यप को सारी पृथिवी दान कर दी थी। जो ब्राह्मण पृथिवी के इस कथन को वेदतुल्य जानते हैं अथवा जो श्राद्ध के समय इसका पाठ करते हैं उन्हें ब्रह्म-लोक प्राप्त होता है। बलवती (मारण आदि) तान्त्रिक क्रिया द्वारा जो अनिष्ट होता है उसकी शान्ति भूमिदान से हो सकती है। जो मनुष्य पृथिवी का दान करता है उसकी आगे-पीछे की दस पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। पृथिवी से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है। अग्नि उसका अधिष्ठाता देवता है। राजाओं का राज्य में अभिषेक करके उन्हें भूमिगीता (पृथिवी की उक्ति) अवश्य सुनानी चाहिए; क्योंकि इसके सुनने से वे सदाचारी ब्राह्मणों को भूमिदान करेंगे और उनकी माफ़ी
४० छीन लेने की इच्छा न करेंगे। राजा का सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों के ही निमित्त सञ्चित रहता है। राजा के धार्मिक होने से प्रजा का ऐश्वर्य बढ़ता है और अधर्मी या नास्तिक होने से प्रजा को सोते-जागते, हर हालत में, कष्ट बना रहता है। राजा के अत्याचार से प्रजा को कष्ट मिलता रहता है। ऐसा राजा कभी फूलता-फलता नहीं है। धार्मिक और बुद्धिमान् राजा की प्रजा सुख से सोती है। राजा के शुभ कर्मों से प्रजा सुखी रहती और फलती-फूलती है। जो राजा पृथिवी का दान करता है वही कुलीन, बन्धु, पुरुष, पुण्यात्मा, दानी और पराक्रमी है। वेदज्ञ ब्राह्मण को भूमिदान करने-वाला राजा सूर्य के समान महातेजस्वी होता है। जैसे बीज बोने से अन्न उत्पन्न होता है वैसे ही भूमिदान करने से सब कामनाएँ सफल होती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि और वरुण, सब देवता भूमिदाता की प्रशंसा करते हैं। मनुष्य पृथिवी से ही उत्पन्न होता और उसी में लीन हो जाता है। जरायुज आदि चारों प्रकार के जीव पृथिवी से ही उत्पन्न होते हैं। पृथिवी
५० सम्पूर्ण जगत् की पिता-माता है। पृथिवी के समान श्रेष्ठ पदार्थ दूसरा नहीं है।

हे धर्मराज, मैं इस विषय में इन्द्र और बृहस्पति का संवाद सुनाता हूँ। इन्द्र ने सौ यज्ञ करने के बाद बृहस्पति से पूछा—भगवन्, किस वस्तु का दान करना सबसे श्रेष्ठ है और किस दान के प्रभाव से स्वर्ग में निवास करके सुख भोगा जा सकता है ?

देवगुरु बृहस्पति ने कहा—देवराज! सोना, गाय और भूमि का दान करने से सब पापों से छुटकारा मिलता है; किन्तु विद्वानों के कहने के अनुसार मुझे जान पड़ता है कि भूमिदान से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। जो वीर पुरुष युद्ध-भूमि में प्राण त्यागकर स्वर्गलोक को जाते हैं वे भी भूमिदाता की बराबरी नहीं कर सकते। भूमिदाता पाँच पीढ़ियों तक के पितरों को और छः पीढ़ियों की सन्तानों को पवित्र करता है। जो रत्नों से अलंकृत भूमि का दान करता है वह सब पापों से छूटकर सुख से स्वर्ग में निवास करता है। इस जन्म में अच्छी उपजाऊ बहुत सी भूमि का दान करने-
वाला मनुष्य दूसरे जन्म में राजाधिराज होता है। जो राजा अन्न से परिपूर्ण पृथ्वी का दान ६१
करता है उसे सब वस्तुओं के दान का फल मिलता है। शहद, घी, दूध और दही की नदियाँ परलोक में भूमिदाता को तृप्त करती हैं। भूमिदान करने से राजा सब पापों से मुक्त हो जाता है। सारांश यह कि भूमिदान से बढ़कर कोई दान नहीं है। जो राजा अपने बाहुबल से जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर देता है उसकी प्रशंसा मनुष्य तब तक करते हैं जब तक पृथ्वी रहती है। वसुन्धरा का दान करनेवाले राजा को अक्षय स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। जो राजा राज्य-सुख पाने की इच्छा करे उसे भूमिदान अवश्य करना चाहिए। पापी मनुष्य भूमि का दान करके सब पापों को, केंचुलि को साँप की तरह, त्याग देता है। केवल भूमिदान करने से हज़ारों नदियों, पर्वतों, वनों, तालाब आदि जलाशयों, अनेक प्रकार के रसों, ओषधियों और फले-
फूले वृक्षों के दान करने का फल मिलता है। बहुत सी दक्षिणा देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ ७२
करने से भी भूमिदान के तुल्य फल नहीं मिल सकता। भूमि का दान करके उसे छीन लेने से वह स्वयं नरक में जाता और अपनी दस पीढ़ियों को भी नरक में ढकेलता है। जो मनुष्य प्रतिज्ञा करके दान नहीं करता और जो दान करके उसे छीन लेता है वे दोनों, मृत्यु के समय, वरुण-पाश में बाँधे जाते हैं। जो मनुष्य अतिथि-प्रिय, अग्निहोत्री, यज्ञशील ब्राह्मण की सेवा करते हैं उन्हें यमराज के घर नहीं जाना पड़ता। ब्राह्मणों का ऋण चुका देना और दुर्बल मनुष्यों की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। माफ़ी की ज़मीन ज़ब्त न की जाय। उस भूमि के हर लेने से दुखी होकर ब्राह्मण आँसू बहावेगा तो हरनेवाले की तीन पीढ़ियों का नाश हो जायगा। जो मनुष्य राज्यच्युत राजा को फिर राज्य दिलाता है उसे अनन्त काल तक
स्वर्ग-सुख मिलता है। ईख, जौ, गेहूँ, अनेक रत्न और बैल-घोड़े आदि अनेक वाहनों से ८०
परिपूर्ण, बाहुबल से जीती हुई, पृथ्वी का दान करने से अक्षय लोक की प्राप्ति होती है। पण्डितों ने इस दान को भूमियज्ञ कहा है। भूमिदान के द्वारा सज्जनों में सम्मान होता है। सम्मुख

युद्ध में प्राण त्यागकर ब्रह्मलोक को गये हुए महापराक्रमी राजा की तरह भूमि का दाता दिव्य मालाएँ पहन रही, नाचने-गाने में चतुर, अप्सराओं से सेवित और देवताओं तथा गन्धर्वों से पूजित होता है। भूमि का दान करने से दूसरे जन्म में सिंहासन, श्वेत छत्र, शङ्ख, घोड़े आदि अच्छे वाहन, फूल, अन्न, कुश, वन और सोना प्राप्त होता है। भूमिदाता की आज्ञा टाली
८० नहीं जाती और सर्वत्र उसकी प्रशंसा होती है। सारांश यह कि भूमिदान के समान दान, माता के समान गुरु, सत्य के समान धर्म और दान के समान ख़ज़ाना नहीं है।

हे धर्मराज, इन्द्र ने बृहस्पति के मुँह से इस प्रकार भूमिदान का फल सुनकर उसी समय उनको धन-रत्न से परिपूर्ण पृथिवी का दान किया था। श्राद्ध के समय भूमिदान का माहात्म्य सुनाने से राक्षस या असुरगण श्राद्ध में विघ्न नहीं डाल सकते और पितरों के उद्देश से उस श्राद्ध में जो कुछ दिया जाता है वह सब अक्षय होता है। अतएव श्राद्ध में ब्राह्मणों को, भोजन कराते समय, भूमिदान का माहात्म्य सुनाना चाहिए। यह मैंने सब दानों से श्रेष्ठ भूमिदान का वर्णन
९६ कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

तिरसठवाँ अध्याय

अन्नदान की प्रशंसा और उसका फल

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, दानशील राजा गुणवान् ब्राह्मणों को कौन-कौन वस्तुएँ दान करे ? किस प्रकार का दान करने से ब्राह्मण सन्तुष्ट होते है और किस प्रकार का दान दोनों लोकों में फलप्रद होता है ?

भीष्म कहते हैं—बेटा, देवर्षि नारद ने इस विषय में मुझसे जो बातें कही थीं उनको सुनो। देवता और ऋषिगण अन्नदान की ही विशेष प्रशंसा करते हैं। अन्न ही मनुष्यों का जीवन है और उसी से बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है। अन्नदान के समान दूसरा दान नहीं है। इसी से मनुष्य अन्नदान करने की इच्छा करते हैं। अन्न से तेज बढ़ता है। अन्न के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। अन्न ही सम्पूर्ण संसार को धारण करता है। गृहस्थ, संन्यासी और तपस्वी, सब अन्न से जीवित रहते हैं। अतएव अन्न को ही प्राणों का आधार समझना चाहिए। जो मनुष्य अपना भला चाहता हो वह अपने परिवार को कष्ट देकर भी भिक्षुक ब्राह्मण को अन्न दे। जो मनुष्य सत्पात्र दानार्थी ब्राह्मण को अन्न देता है वह परलोक में अपने लिए ख़ज़ाना
१० इकट्ठा करता है। मार्ग का थका हुआ बूढ़ा मनुष्य अपने घर आ जाय तो कल्याण चाहनेवाले गृहस्थ को उसका यथोचित सत्कार करना चाहिए। जो सुशील मनुष्य ईर्ष्याहीन होकर, क्रोध का त्याग करके, अन्नदान करता है वह दोनों लोकों में सुख भोगता है। अपने घर आये हुए मनुष्य का अपमान कदापि न करे। चण्डाल या कुत्ते को भी दिया हुआ अन्न निष्फल नहीं

जाता। जो मनुष्य अपरिचित थके हुए पथिक को भोजन देता है उसे बड़ा पुण्य होता है। देवता, पितर, ऋषि, ब्राह्मण और अतिथि को जो अन्न द्वारा तृप्त करता है उसे बड़ा पुण्य मिलता है। यदि कोई भारी पाप करके भी याचक को—ख़ासकर ब्राह्मण को—अन्न देता है तो उसका पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है। ब्राह्मण को अन्नदान देने से अक्षय फल और शूद्र को अन्न देने से महाफल होता है। यदि कोई ब्राह्मण अपने घर आकर भोजन माँगे तो देश, गोत्र, वेद, शाखा और अध्ययन के विषय में कुछ पूछे बिना ही उसे भोजन देना चाहिए। यदि राजा इस जन्म में अन्नदान करता है तो परलोक में वह अन्न कल्पतरु के समान फल देता है। पितृगण, अच्छी वर्षा की प्रतीक्षा करनेवाले किसानों की तरह, अपने पुत्र-पौत्र से हमेशा अन्न पाने की आशा करते हैं। ब्राह्मण के माँगने पर जो मनुष्य उसे भोजन देता है, वह फल पाने की इच्छा करे या न २०
करे, उसे फल अवश्य मिलेगा। अतिथि ब्राह्मण को सबसे पहले भोजन कराना चाहिए। जिसके घर में हमेशा अतिथि ब्राह्मणों का सम्मान होता है वह इस जन्म में ऐश्वर्यवान् होकर सुख से रहता और दूसरे जन्म में अच्छे कुल में जन्म पाकर सुख भोगता है। अन्नदाता परलोक में उत्तम गति पाता है। मिष्टान्नदाता बहुत दिनों तक स्वर्ग में निवास करता है। अन्न सब प्राणियों का प्राण-स्वरूप है। अन्न में ही सब कुछ स्थित है। जो श्रद्धा के साथ अन्नदान करता है वह पशु, पुत्र, बल और रूप से सम्पन्न होकर सुख से जीवन बिताता है। अन्नदाता को प्राणदाता और सर्वदाता कहते हैं। जो मनुष्य अतिथि ब्राह्मण को अन्नदान करता है वह इस लोक में परम सुख पाता और परलोक में देवताओं से सम्मानित होता है। ब्राह्मण उपजाऊ खेत के समान हैं; जो मनुष्य इस प्रकार के खेत में धर्मरूप बीज बोता है वह पुण्यरूप फल पाता है। अन्न का दान दाता और भोक्ता दोनों को प्रसन्न करता है। अन्य दानों का फल तो परोक्ष है; किन्तु अन्नदान का फल प्रत्यक्ष है। अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है। अन्न ही धर्म, अर्थ और काम का उत्पन्न करनेवाला तथा रोग का नाशक है। ब्रह्माजी ने अन्न को अमृत-स्वरूप ३०
बतलाया है। पृथिवी, स्वर्ग और आकाश सब अन्न में स्थित हैं। अन्न न मिलने से शरीर में स्थित पञ्चभूत नष्ट हो जाते हैं। अन्न के बिना बलवान् मनुष्य का बल क्षीण हो जाता है। अन्न के बिना आहार, विहार और यज्ञ आदि कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। अन्न न मिलने पर वेदों तक का लोप हो जाता है। तीनों लोकों में धर्म, अर्थ और स्थावर-जङ्गम आदि सब पदार्थ अन्नमय हैं। अतएव मनुष्य अन्न का दान अवश्य करे। जो मनुष्य अन्नदान करता है उसके बल, तेज, यश और कीर्ति की वृद्धि होती है।

सूर्यदेव किरणों से पृथिवी का रस खींच लेते हैं। वह रस बादल बन जाता है। इन्द्र वायु द्वारा उस बादल को उड़ाकर पृथिवी पर पानी बरसाते हैं। पानी बरसने से पृथिवी गीली हो जाती है तब पृथिवी से संसार के जीवन-स्वरूप अन्न आदि उत्पन्न होते हैं।

अन्न से ही मांस, मेद, अस्थि और शुक्र पैदा होता है। शुक्र से प्राणियों की उत्पत्ति होती
४० है। शरीर में स्थित अग्नि और चन्द्रमा शुक्र को उत्पन्न करके उसका पालन करते हैं। इस प्रकार अन्न द्वारा शुक्र उत्पन्न होकर, शरीर में स्थित अग्नि और वायु से मिलकर, प्राणियों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य घर आये हुए अतिथि को अन्नदान करता है वह तेज और प्राणदान का फल पाता है।

हे धर्मराज, देवर्षि नारद से इस प्रकार अन्नदान का फल सुनकर उस समय से लेकर मैं सदा अन्नदान करता रहा। तुम भी ईर्ष्याहीन होकर विधिपूर्वक अन्नदान करो। ब्राह्मणों को विधिपूर्वक अन्नदान करने से तुमको निस्सन्देह स्वर्ग की प्राप्ति होगी। जो महात्मा इस जन्म में अन्नदान करता है वह परलोक में तारागण के समान चमकीले, अनेक खम्भों से युक्त, चन्द्रमण्डल के समान श्वेतवर्ण, किंकिणी-जाल-जटित, प्रातःकाल के सूर्य के समान, अचल और सचल घर; वैदूर्य और सूर्यकान्त मणि के समान चमकीले सोने और चाँदी के असंख्य जलगृह; कल्पवृक्ष, हज़ारों बावलियाँ, सभाएँ, कुएँ, वाहनयुक्त यान, भक्ष्य-भोज्य पदार्थों के पर्वत के समान ऊँचे ढेर, वस्त्र, आभरण, दूध की नदियाँ, अन्न के पहाड़, पीले और नीले रङ्ग के महल और सफ़ेद शय्याएँ प्राप्त करता है। अतएव तुम अन्नदान करो। मनुष्यों को इस
५२ लोक में अन्नदान अवश्य करना चाहिए।

चौंसठवाँ अध्याय

देवकी और नारदजी के संवाद-स्वरूप अश्विनी आदि नक्षत्रों में अन्नदान का माहात्म्य

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मैंने आपके मुँह से अन्नदान का फल सुना। अब बतलाइए कि किस नक्षत्र में कौन वस्तु दान करने से किस प्रकार का फल मिलता है।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इस सम्बन्ध में नारदजी और देवकी का संवाद सुनो। एक बार देवकी ने द्वारका में आये हुए देवर्षि नारद से यही प्रश्न किया था। तब नारदजी ने कहा—देवी, कृत्तिका नक्षत्र में ब्राह्मणों को घी-खीर खिलाने से श्रेष्ठ लोक मिलता है। रोहिणी नक्षत्र में ब्राह्मणों को मृग का मांस, अन्न, घी, दूध और अनेक प्रकार की पीने की वस्तुएँ देने से मनुष्य पर ऋण नहीं रहता। मृगशिरा नक्षत्र में बछड़े समेत दुधार गाय का दान करने से स्वर्ग-लोक प्राप्त होता है। आर्द्रा नक्षत्र में उपवास करके तिल मिली खिचड़ी देने से शरीर त्यागने पर अति दुर्गम, छुरे की धार के समान, पर्वत आसानी से पार किया जाता है। पुनर्वसु नक्षत्र में मालपुवा आदि अच्छे भोजन देने से मनुष्य दूसरे जन्म में रूपवान् और यशस्वी होकर समृद्धिशाली कुल में उत्पन्न होता है। पुष्य नक्षत्र में सुवर्ण-दान करने से दाता स्वयंप्रकाश लोकों में चन्द्रमा

के समान विराजता है। आश्लेषा नक्षत्र में चाँदी या बैल का दान करने से सब डर छूट जाता है और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मघा नक्षत्र में तिल से भरा हुआ सकोरा देने से इस लोक में पुत्र और पशु तथा परलोक में परम सुख मिलता है। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में उपवास करके ब्राह्मणों को गोरस-विकार (रबड़ी ?) के साथ भोजन कराने से मनुष्य भाग्यवान् होता है। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में घी और दूध के साथ साँठी के चावल देने से स्वर्ग-लोक में सम्मान होता है। शास्त्र का वचन है कि इस नक्षत्र में जो कोई वस्तु दी जाती है उसका अक्षय फल होता है। हस्त नक्षत्र में हाथी और रथ देने से पवित्र और अभीष्ट फल देनेवाले लोक मिलते हैं। चित्रा नक्षत्र में बैल और गन्ध-द्रव्य देने से मनुष्य अप्सराओं के लोक में रहता और नन्दन वन की सैर करता है। स्वाती नक्षत्र में अपनी प्रिय वस्तु का दान करने से इस लोक में प्रसिद्धि और परलोक में शुभ लोकों की प्राप्ति होती है। विशाखा नक्षत्र में बैल और दूध देती हुई गाय का दान करने से तथा अन्न, वस्त्र और बैलों समेत छकड़ा देने से देवता और पितर सन्तुष्ट होते हैं तथा मरने के बाद सब नरकों को लाँघकर अक्षय फल और देवलोक प्राप्त होता है। अनुराधा नक्षत्र में उपवास करके धोती, दुपट्टा और अन्न देने से सौ युग तक देवलोक में निवास होता है। ज्येष्ठा नक्षत्र में ब्राह्मणों को जड़ समेत कालशाक देने से इस लोक में अभीष्ट फल मिलता है। मूल नक्षत्र में ब्राह्मणों को फल-मूल (मूली ?) देने से पितर सन्तुष्ट होते हैं और अभीष्ट गति मिलती है। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में उपवास करके कुलीन, सच्चरित्र, वेद-वेदाङ्ग के पारङ्गत ब्राह्मण को दही से भरा हुआ पात्र देने से दूसरे जन्म में गो-धन प्राप्त होता है। उत्तराषाढ़ नक्षत्र में घी, कच्ची खाँड़, जलकुम्भ और सत्तू का दान करने से अभीष्ट फल मिलता है। अभिजित् नक्षत्र में विद्वान् ब्राह्मणों को घी और शहद मिला हुआ दूध देने से देवलोक में सम्मान होता है। श्रवण नक्षत्र में कम्बल और वस्त्र देने से मनुष्य सफ़ेद विमान पर चढ़कर स्वर्ग-लोक को जाता है। धनिष्ठा नक्षत्र में बैलों से युक्त रथ, वस्त्र और धन का दान करने से दूसरे जन्म में राज्य मिलता है। शतभिषा नक्षत्र में अगुरु चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुएँ देने से शरीर

१०

२१

त्यागने पर अप्सराओं के साथ रहकर दिव्य सुगन्धों की प्राप्ति होती है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में राजमाष देने से मनुष्य दूसरे जन्म में सब प्रकार के भोजन पाता और सुखी रहता है। उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में ब्राह्मण को भेड़ का मांस देने से पितर सन्तुष्ट होते हैं और दूसरे जन्म में दाता को परम सुख मिलता है। रेवती नक्षत्र में, दुहने के लिए, काँसे के बर्तन समेत गाय का दान करने से दूसरे जन्म में वह गाय उसे प्राप्त होकर उसके सब मनोरथ पूर्ण करती है। अश्विनी नक्षत्र में घोड़ों समेत रथ देने से मनुष्य दूसरे जन्म में तेजस्वी होकर हाथी, घोड़े और रथ से सम्पन्न घर में उत्पन्न होता है। भरणी नक्षत्र में तिलधेनु देने से मनुष्य दूसरे जन्म में यशस्वी होता और अनेक गायें पाता है। हे धर्मराज, जिस नक्षत्र में जो वस्तु देने से जैसा फल मिलता है वह सब नारदजी के मुँह से सुनकर देवकी ने अपनी पतोहुओं को सुनाया था।

पैंसठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जल आदि दान करने का फल बतलाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् अत्रि ने कहा था कि जिसने सुवर्ण दान किया वह मानों सब कुछ दान कर चुका। महाराज हरिश्चन्द्र ने कहा है कि सोने का दान करने से आयु की वृद्धि, पवित्रता और पितरों को अक्षयलोक की प्राप्ति होती है। महर्षि मनु ने कहा है कि जल दान सब दानों से बढ़कर है, अतएव मनुष्य कुआँ, बावली और तालाब आदि जलाशय खुदवावे। कुआँ खुदवानेवाले का आधा पाप नष्ट हो जाता है। जिसके जलाशय में ब्राह्मण और गाय आदि प्राणी जल पीते हैं उसका वंश पाप से मुक्त हो जाता है। गरमी के दिनों में जिसके जलाशय में बिना रोक-टोक सब लोग पानी पीते हैं उस पर कभी विपत्ति नहीं आती।

घी के द्वारा भगवान् बृहस्पति, पूषा, भग, अश्विनीकुमार और अग्नि प्रसन्न होते हैं। घी श्रेष्ठ औषध है, यज्ञ की श्रेष्ठ वस्तु है, रसों में श्रेष्ठ रस है और श्रेष्ठ फल देनेवाली वस्तुओं में श्रेष्ठ है। जो मनुष्य कल्याण, यश और शरीर की पुष्टि चाहता हो वह ब्राह्मणों को घी का दान करे। कुवार के महीने में जो मनुष्य ब्राह्मणों को घी का दान करता है उसे अश्विनीकुमार, प्रसन्न होकर, सुन्दर रूप देते हैं। जो ब्राह्मणों को घी मिली हुई खीर देता है उसके घर में राक्षस उपद्रव नहीं कर सकते।

जो मनुष्य पवित्र होकर श्रद्धा के साथ ब्राह्मणों को करक (करवा ?) दान करता है उसे न तो कभी प्यास से पीड़ित होना पड़ता है, न कभी भोजन का कष्ट होता है और न उस पर विपत्ति ही आती है। रसोई बनाने या तापने के लिए ब्राह्मणों को जो लकड़ियाँ देता है वह संग्राम में विजयी होता, सब कामों में सिद्धि पाता, उसके शरीर का तेज बढ़ता और अग्नि देवता उस पर प्रसन्न होते हैं। जो ब्राह्मणों को छाता देता है उसे पुत्र, सम्पत्ति और यज्ञ का भाग मिलता है; उसे कभी नेत्ररोग नहीं होता। जो मनुष्य गरमी या वर्षा के दिनों में ब्राह्मणों के

छाता देता है उसे कभी मानसिक पीड़ा नहीं होती और वह शीघ्र ही बड़े से बड़े सङ्कट से छुटकारा पा जाता है। भगवान् शाण्डिल्य ने कहा है कि छकड़े का दान सब दानों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, अतएव राजा ब्राह्मणों को छकड़े का दान अवश्य करे। १९

छाछठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से जल, तिल, भूमि, अन्न और गाय के दान आदि का फल कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जो मनुष्य गरमियों में ब्राह्मणों को जूते (या खड़ाऊँ) पहनाता है उसे क्या फल मिलता है ?

भीष्म ने कहा—बेटा, जो मनुष्य ब्राह्मणों को जूते (या खड़ाऊँ) पहनाता है उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। उसे दो बैलों समेत बैलगाड़ी के दान करने का फल मिलता है। उस मनुष्य पर कभी विपत्ति नहीं आती, शत्रु उसे परास्त नहीं कर सकते और उसे शीघ्र खच्चरियों से युक्त, चाँदी और सोने से अलङ्कृत, रथ प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने भूमिदान आदि का जो माहात्म्य बतलाया है अब उस भूमिदान, गोदान, अन्नदान और तिलदान का फल विशेष रूप से सुनने की मेरी इच्छा है।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! मैं पहले तिलदान का फल बतलाता हूँ, इसे सुनकर तुम शास्त्र के अनुसार तिलों का दान करना। ब्रह्माजी ने तिलों को पितरों के मुख्य आहार के रूप में उत्पन्न किया है। तिल-दान करने से पितर सन्तुष्ट होते हैं। जो मनुष्य माघ के महीने में ब्राह्मणों को तिल-दान करता है उसे कभी हिंसक जीवों से भरा हुआ घोर नरक नहीं देखना पड़ता। तिल द्वारा पितरों को तृप्त करने से सम्पूर्ण यज्ञों के करने का फल मिलता है। श्रद्धा के साथ तिल का दान करे। महर्षि कश्यप के शरीर से तिल उत्पन्न हुए हैं, इसी से तिलों के दान का इतना महत्त्व है। तिल पुष्टिकर, रूपवर्धक और पापनाशक हैं। बुद्धिमान् महर्षि आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित और १०
गौतम तिल द्वारा होम और तिल का दान करके स्वर्गलोक को गये हैं। जितने दान हैं उनमें तिल-दान श्रेष्ठ और अक्षय है। प्राचीन समय में होम करने की सब वस्तुएँ नष्ट होने पर महर्षि कुशिक ने गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों में तिलों की आहुति देकर श्रेष्ठ गति प्राप्त की थी। हे धर्मराज, यह मैंने तिलदान का माहात्म्य तुमको बतलाया। अब अन्य दानों का वर्णन सुनो।

एक बार देवताओं ने यज्ञ करने की इच्छा से ब्रह्माजी के पास जाकर कहा—भगवन्, हम यज्ञ करना चाहते हैं। आप चराचर विश्व के अधीश्वर हैं, आपसे भूमि माँगे बिना यज्ञ करने का कोई फल नहीं हो सकता। अतएव आप हमको यज्ञ करने के उपयुक्त भूमि दीजिए। २०

ब्रह्माजी ने कहा कि देवताओं, तुम जिस स्थान पर यज्ञ करना चाहो वहीं मैं तुमको देता हूँ। यह सुनकर देवताओं ने कहा—भगवन्, हमारा कार्य सफल हो गया। अब हम

दान-दक्षिणा समेत यज्ञ करेंगे। आपकी कृपा से मुनि लोग हमेशा हमारी यज्ञभूमि में निवास करें। अब देवताओं ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ का अनुष्ठान किया। अगस्त्य, कण्व, भृगु, अत्रि, वृषाकपि और असितदेवल आदि महर्षि उस यज्ञ में आये। यज्ञ समाप्त होने पर देवताओं ने उस यज्ञ-भूमि का छठा भाग ब्राह्मणों को दान कर दिया। हे धर्मराज, 'प्रादेशमात्र' भी भूमि का दान करने से कभी विपत्ति में नहीं डूबना पड़ता। जो मनुष्य गरमी, सरदी और हवा के क्लेशों से सुरक्षित घर का दान करता है वह पुण्य का क्षय होने पर भी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होता। रहने के लिए भूमि देने से मनुष्य सम्मान के साथ स्वर्गलोक में निवास करता है। अध्यापक-वंश में उत्पन्न श्रोत्रिय जितेन्द्रिय ब्राह्मण जिसके दिये हुए घर में प्रसन्नता से रहता है उसे श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य गायों के रहने के लिए—शीत और वर्षा से बचानेवाला—मज़बूत घर बनवा देता है
३० उसकी सात पीढ़ियाँ श्रेष्ठ गति पाती हैं। खेत का दान करने से सम्पत्ति मिलती है और रत्नगर्भा पृथिवी का दान करने से वंश की वृद्धि होती है। ऊसर, जली हुई, श्मशानभूमि के पास की और जहाँ पापी मनुष्य रहते हों वह भूमि ब्राह्मणों को न दे। दूसरे की भूमि पर श्राद्ध करना या दूसरे की भूमि का दान करना निष्फल है। अतएव थोड़ी सी पृथिवी मोल लेकर उसी स्थान पर पितरों का श्राद्ध करे और वह भूमि दान में दे दे। मोल ली हुई पृथिवी पर पिण्डदान करने से वह पिण्ड अक्षय हो जाता है। वन, पर्वत, नद, नदी और तीर्थ-स्थान का स्वामी कोई नहीं है; अतएव इन स्थानों पर पिण्डदान करने के लिए मूल्य देकर स्थान ख़रीदने की आवश्यकता नहीं।

हे धर्मराज! यह मैंने भूमिदान का विशेष फल कहा; अब गोदान का फल सुनो। गायें तपस्वियों से भी श्रेष्ठ हैं, इसी लिए महादेवजी ने गायों के साथ तपस्या की थी। जिस ब्रह्मलोक को जाने की इच्छा सिद्ध ब्रह्मर्षिगण करते हैं उस ब्रह्मलोक में गायें चन्द्रमा के साथ निवास करती हैं। गायें दही, दूध, घी, गोबर, चमड़ा, हड्डी, सींगों और बालों द्वारा मनुष्यों
४० का उपकार करती हैं। जाड़ा, गरमी और बरसात से गाय-बैलों को क्लेश नहीं होता। गायें ब्राह्मणों के साथ ब्रह्मलोक को जाती हैं, इसलिए पण्डितों ने इन दोनों में कुछ भेद नहीं माना। प्राचीन समय में राजा रन्तिदेव ने गोमेध यज्ञ किये थे। वहाँ पर एकत्र गो-चर्म के ढेर से चर्मण्वती नदी निकली है। अब गायें यज्ञ-पशु नहीं मानी जातीं। अब तो उनका दान ही होता है। जो मनुष्य ब्राह्मणों को गोदान करता है वह विपद्ग्रस्त होने पर भी साफ़ बच जाता है। हज़ार गोदान करने से शरीर त्यागने के बाद नरक में नहीं जाना पड़ता और सर्वत्र विजय होती है। इन्द्र ने गाय के दूध को अमृत-तुल्य कहा है अतएव गोदान करने से अमृत दान करने का फल होता है। पण्डितों ने गव्य को श्रेष्ठ हवनीय पदार्थ बतलाया है अतएव गोदान करने से हवनीय द्रव्यदान का फल मिलता है। साँड़ मूर्तिमान् स्वर्ग है। जो मनुष्य गुणवान् ब्राह्मण को साँड़ (बैल?) का दान करता है उसे स्वर्गलोक प्राप्त होता है। गायें प्राणियों के लिए प्राण-स्वरूप

हैं, अतएव गोदान प्राणदान करने के समान है। गायें सब जीवों के लिए आश्रय-स्वरूप हैं, अतएव गोदान करने से आश्रय देने का फल होता है। नास्तिक, पशुघाती और गोजीवी को गाय कभी न दे। पापियों को गोदान देने से अनन्त काल तक नरक में रहना पड़ता है। ब्राह्मण को दुबली, बाँझ, ठाँठ, रोगी या लूली-लँगड़ी गाय न देनी चाहिए। दस हज़ार गोदान करने से इन्द्रलोक और एक लाख गोदान करने से अक्षय लोक प्राप्त होता है। ५०

हे धर्मराज! यह मैंने गोदान, तिलदान और भूमिदान का वर्णन किया। अब अन्नदान का माहात्म्य सुनो। अन्नदान अति श्रेष्ठ दान है। अन्नदान करके महात्मा रन्तिदेव स्वर्ग को गये हैं। जो राजा भूखे और थके मनुष्य को अन्न देता है उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। अन्नदान करने से जो फल मिलता है वह फल सोना, वस्त्र या और कोई वस्तु देने से नहीं मिलता। अन्न अति श्रेष्ठ पदार्थ और लक्ष्मी-स्वरूप है। अन्न द्वारा आयु, तेज और वीर्य की वृद्धि होती है। महात्मा पराशर ने कहा है कि जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर सत्पात्र ब्राह्मण को अन्नदान करता है उस पर कोई विपत्ति नहीं पड़ती। मनुष्य जिस तरह का भोजन करे उसे, विधि के अनुसार, देवताओं को निवेदन कर दे। जो मनुष्य कार्तिक के शुक्लपक्ष में अन्नदान करता है उसे कोई क्लेश नहीं उठाना पड़ता और वह परलोक में अनन्त काल तक सुख भोगता है। जो मनुष्य स्वयं भूखा रहकर अपना भोजन अतिथि को दे देता है वह ब्रह्मलोक को जाता है। घोर विपत्ति पड़ने पर भी वह उससे मुक्त हो जाता है और सब पापों से छूटकर पुण्य का सञ्चय करता है। हे धर्मराज! अन्नदान, तिलदान, भूमिदान और गोदान का यही फल है। ६० ६५

सड़सठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से जलदान का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपके मुँह से भूमि आदि के दान का फल और सर्वश्रेष्ठ अन्नदान का फल मैंने सुना। अब मैं विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ कि जलदान करने से इस लोक में किस प्रकार का महाफल मिलता है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, अन्नदान और जलदान करने से जिस प्रकार का फल मिलता है वह मैं शास्त्र के अनुसार बतलाता हूँ। मेरे मत में अन्नदान से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। अन्न से ही सब मनुष्य प्राण धारण करते हैं। अन्न से ही सबका बल और तेज बढ़ता है। इसी कारण ब्रह्माजी ने अन्नदान को सबसे श्रेष्ठ बतलाया है। देवी सावित्री ने अन्नदान के विषय में जो कुछ कहा है उसे तो तुमने सुना ही है। अन्नदान करने से प्राणदान दिया जाता है। प्राणदान से बढ़कर कोई दान नहीं हो सकता। महर्षि लोमश ने कहा है कि प्राचीन समय में महाराज शिबि ने कबूतर को प्राणदान करके जो गति पाई है वही गति ब्राह्मण को अन्नदान करने से मनुष्य पा सकता है। १०

अन्न जल से पैदा होता है। जल के बिना कोई वस्तु नहीं पैदा हो सकती। नक्षत्र-पति चन्द्रमा, अमृत, सुधा, स्वधा, ओषधि और वृक्ष-लता आदि जल से ही उत्पन्न हुए हैं। अमृत आदि सभी पदार्थ प्राणियों का भोजन है। देवताओं का अमृत, नागों का सुधा, पितरों का स्वधा, पशुओं का वृक्ष-लता आदि और मनुष्यों का अन्न आदि भोजन है। ये सभी पदार्थ जल से उत्पन्न हुए हैं अतएव जलदान से बढ़कर कौन दान हो सकता है? कल्याण चाहनेवाले को जलदान अवश्य करना चाहिए। जलदान करने से मनुष्य यशस्वी, दीर्घजीवी और कृतार्थ होता है। जलदाता मनुष्य शत्रुओं को परास्त करता, पापों से मुक्त होता और अपनी सब इच्छाएँ पूरी कर सकता है। परलोक में उसे परम सुख मिलता है। भगवान् मनु का वचन
१९ है कि जलदान करने से अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है।

अड़सठवाँ अध्याय

भीष्म का तिल जल दीप आदि के दान की प्रशंसा करते हुए यम और ब्राह्मण का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आप तिल, दीपक, अन्न और वस्त्र के दान का वर्णन विस्तार के साथ कीजिए।

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में यम और ब्राह्मण का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में गङ्गा और यमुना के बीच, यामुनगिरि के समीप, पर्णशाला नाम का एक अति रमणीय प्रसिद्ध गाँव था। उस गाँव में बहुत से विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। एक बार यमराज ने एक पुरुष को आज्ञा दी कि तुम पर्णशाला गाँव में जाकर अगस्त्यगोत्री शान्त स्वभाववाले अध्यापक शर्मी को ले आओ। मैं उनका यथोचित सत्कार करूँगा। उनके घर के पास उन्हीं के समान बुद्धि, विद्या, रूप, गुण, गोत्र, चरित्र, सन्तान और आयुवाले एक और ब्राह्मण रहते हैं; देखो, भूल से शर्मी के बदले उन्हें न ले आना।

यमराज ने जिस पुरुष को आज्ञा दी थी उसकी आँखें लाल, नाक कौए की चोंच के समान लम्बी और उसके रोएँ खड़े थे। वह काले कपड़े पहने था। वह यमदूत, यम की आज्ञा पाकर, उस गाँव को गया और यमराज ने जिस ब्राह्मण को लाने को मना किया था उसी
१० को वह भूल से ले आया। उस ब्राह्मण को देखकर यमराज खड़े हो गये। उसका यथोचित सत्कार करके उन्होंने दूत से कहा—तुमने वही काम किया जिसके लिए मैंने मना किया था। अब शीघ्र इन्हें इनके घर पहुँचाकर उन्हें ले आओ जिन्हें लाने को मैंने कहा है।

यह सुनकर, ज़िन्दगी से ऊबे हुए, उस ब्राह्मण ने कहा—धर्मराज, यहाँ से जाने की मेरी इच्छा नहीं है। जब तक मेरा समय पूरा न हो तब तक मुझे यहीं रहने दीजिए।

यमराज ने कहा—हे ब्राह्मण, जिस प्राणी की आयु पूरी नहीं हुई है उसको मैं अपने यहाँ स्थान नहीं दे सकता। मैं तो काल के प्रभाव से क्षीण आयुवाले प्राणी के धर्म-अधर्म का विचार और उसकी गति का विधान कर सकता हूँ। इसलिए मैं यमलोक में रहने के लिए आपको आज्ञा नहीं दे सकता। आज ही आपको अपने घर चला जाना होगा। यहाँ रहने की बात छोड़कर यदि आप और कुछ प्रार्थना करें तो मैं पूरी कर सकता हूँ।

यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा—धर्मराज, आप तीनों लोकों के साक्षी-स्वरूप हैं अतएव मुझे बतलाइए कि मर्त्यलोक में किन कामों के करने से पुण्य होता है।

यमराज ने कहा—भगवन्, मैं आपको दान की विधि बतलाता हूँ। तिल का दान परम दान है। तिलदान करने से अक्षय पुण्य होता है अतएव यथाशक्ति तिलदान अवश्य करे। जो मनुष्य प्रतिदिन तिलदान करता है उसकी सब कामनाएँ पूरी होती हैं। श्राद्ध में तिलदान से बढ़कर कोई दान नहीं है अतएव आप ब्राह्मणों को विधिपूर्वक तिलदान कीजिए। वैशाख की पूर्णिमा को तिल-दान करे, तिल खावे और तिल का ही उबटन करे। उन्नति चाहनेवाला हमेशा जल पिलाया करे। तालाब, बावली और कुआँ आदि बनवाना मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म है। सदा जलदान करने से पुण्य होता है अतएव आप पौशाला बैठाइए और भोजन कराने के बाद मनुष्यों को जल पिलाइए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, इसके बाद प्रभु की आज्ञा पाकर यमदूत उस ब्राह्मण को उसके घर पहुँचाकर महात्मा शर्मी को यमराज के पास ले आया। महाप्रतापी यमराज ने धर्मात्मा शर्मी का सम्मान करके सलाह की, उपदेश दिया और फिर दूत के द्वारा उनको उनके घर पहुँ-चवा दिया। महात्मा शर्मी अपने घर आकर यम के उपदेशानुसार काम करने लगे।

दीपदान करने से पितर सन्तुष्ट होते हैं, इसी से यमराज ने दीपदान की प्रशंसा की है। जो मनुष्य प्रतिदिन दीपदान करता है उसके पितर निस्सन्देह सद्गति पाते हैं। हमेशा दीपदान करने से देवता-पितर सन्तुष्ट होते हैं और अपनी आँखों का तेज बढ़ता है अतएव दीपदान नित्य करना चाहिए। रत्नदान करने से बड़ा पुण्य होता है। जो ब्राह्मण दान में रत्न लेकर फिर उसे बेचकर यज्ञ करता है उस दान के लेनेवाले और देनेवाले दोनों को अक्षय पुण्य होता है। धर्मज्ञ मनु ने कहा है कि कोई ब्राह्मण यदि दाता से धन लेकर वह सब धन किसी सुपात्र ब्राह्मण को दान कर दे तो वह ब्राह्मण और दाता दोनों अक्षय पुण्य के भागी होते हैं। जितेन्द्रिय होकर वस्त्र का दान करनेवाला मनुष्य सुन्दर रूप और वेश पाता है।

हे धर्मराज, तुम्हारे पूछने से मैंने वेद के प्रमाणानुसार गाय, सुवर्ण और तिल आदि के दान का वर्णन अनेक बार किया। संसार में पुत्र से बढ़कर श्रेष्ठ लाभ नहीं है, अतएव विवाह करके पुत्र उत्पन्न करना मनुष्य का कर्तव्य है।

उनहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गोदान, भूमिदान और विद्यादान की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! भूमि का दान करने के अधिकारी क्षत्रिय ही हैं, और उसे लेने का अधिकार यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों को ही है; अब उस दान का वर्णन कीजिए जो सब वर्णों के करने योग्य हो और जिसकी विधि वेद में बतलाई गई हो।

भीष्म कहते हैं—बेटा ! गोदान, भूमिदान और विद्यादान, ये तीनों तुल्य फल देनेवाले हैं। इन तीनों का दान अवश्य करे। जो मनुष्य शिष्य को धर्मार्थयुक्त वेद-वाक्य का उपदेश देता है उसे भूमिदान और गोदान के समान फल होता है। गोदान प्रशंसनीय है, उससे श्रेष्ठ दान कोई नहीं है। गोदान का फल शीघ्र मिल जाता है। गायें सब प्राणियों की माता हैं, गायों से सबको अनेक प्रकार के सुख मिलते हैं। कल्याण चाहनेवाले को प्रतिदिन गाय की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। गाय को कभी लात न मारे; उनके बीच से निकलना भी उचित नहीं। गायें सब प्रकार के कल्याण का स्थान हैं। अतएव भक्ति के साथ गाय की पूजा करे। देवताओं ने यज्ञभूमि जोतते समय बैलों को कोड़े लगाये थे, इसलिए यज्ञभूमि जोतने के समय बैलों को पीटने से पाप नहीं लगता; किन्तु खेती के काम के लिए उनको पीटना पाप है। गायों के चलने और सोने में विघ्न न करे। प्यासी गायें यदि गृहस्वामी की ओर देखती हैं तो उसके वंश का
१० नाश हो जाता है। जिनके गोबर से श्राद्धभूमि और देवता का स्थान पवित्र होता है उनसे बढ़कर पवित्र और क्या हो सकता है ? जो मनुष्य एक वर्ष तक प्रतिदिन भोजन के पहले दूसरे की गाय को एक मुट्ठी घास देता है उसे पुत्र, यश, धन-सम्पत्ति आदि सब अभीष्ट वस्तुएँ मिलती हैं और उसके सब अमङ्गल, तथा दुःस्वप्न देखने से उत्पन्न दोष, नष्ट हो जाते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, कैसी गाय का दान करना चाहिए और किस प्रकार की गाय का नहीं ? कौन मनुष्य गोदान का पात्र है और कौन मनुष्य अपात्र ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! देवताओं और पितरों की पूजा न करनेवाले, दुराचारी, मिथ्यावादी, लोभी और पापी मनुष्य को गोदान करना उचित नहीं। अनेक पुत्रोंवाले अग्निहोत्री श्रोत्रिय ब्राह्मण को दस गायें देने से दाता को श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। दान लेकर उस धन से जो धर्म किया जाता है उस धर्म के फल का कुछ अंश धन के दाता को मिलता है। जो मनुष्य जन्म देता है, जो भय से रक्षा करता है और जो जीविका देता है, वे तीनों पिता-स्वरूप हैं। गुरु की सेवा करने से पाप, अहङ्कार उत्पन्न होने से यश, तीन पुत्र पैदा होने से अपुत्रता और दस गायें होने से दरिद्रता का नाश हो जाता है। जो ब्राह्मण वेदान्तनिष्ठ, शास्त्र का पारङ्गत, ज्ञानवान्, जितेन्द्रिय, शिष्ट, अतिथि-प्रिय, प्रियवादी और स्त्री-पुत्र आदि परिवार से सम्पन्न है और जो भूख से पीड़ित होने पर भी अनुचित काम नहीं करता, उसकी जीविका का प्रबन्ध अवश्य करना

चाहिए। जिस तरह सुपात्र को गोदान करने से श्रेष्ठ फल मिलता है उसी तरह ब्राह्मण का धन हर लेने से भारी पाप लगता है। ब्राह्मण के धन और उसकी स्त्री का हरण कदापि न करे। २२

सत्तरवाँ अध्याय

ब्राह्मण का धन हर लेने से होनेवाले अनिष्ट के सम्बन्ध में नृग का उपाख्यान

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, महाराज नृग को ब्राह्मण का धन हर लेने से जिस प्रकार के कष्ट उठाने पड़े हैं वह प्राचीन इतिहास सुनो। एक बार द्वारकानिवासी यदुकुल के लड़के, पानी ढूँढ़ने के लिए, इधर-उधर घूमते-घूमते एक कुएँ के पास पहुँचे। वह कुआँ घास-फूस और लताओं से ढका हुआ था। लड़कों ने घास-फूस हटाकर देखा तो उनको, कुएँ के भीतर, बड़ा भारी गिरगिट देख पड़ा। चट्टान के समान भारी गिरगिट को देखकर लड़कों ने रस्सी और चमड़े की पट्टियों में बाँधकर उसको बाहर निकालने की कोशिश की किन्तु वह किसी तरह उनके हिलाये न हिला। तब सब लड़के महात्मा कृष्णचन्द्र के पास जाकर कहने लगे—वासुदेवजी, एक महाकूप को ढके हुए बड़ा भारी गिरगिट बैठा है। उसे निकालने का हम लोगों ने बहुत यत्न किया, किन्तु वह न निकल सका। इसी से हम लोग आपके पास आये हैं।

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने उस कुएँ पर जाकर गिरगिट को बाहर निकाला और उससे उसके पूर्वजन्म का हाल पूछा। गिरगिट ने कहा—भगवन्, मैं पूर्वजन्म में नृग नाम का राजा था। उस समय मैंने एक हज़ार यज्ञ किये थे। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने पूछा—महाराज! आपने कोई पाप नहीं किया है, शुभ कर्म ही किये हैं। आपने ब्राह्मणों को हज़ारों गोदान किये हैं, फिर आपकी यह दुर्गति कैसे हुई?

गिरगिट-रूपी राजा नृग ने कहा—भगवन्, एक अग्निहोत्री ब्राह्मण विदेश को चला गया था। उसकी गाय मेरी गायों के झुण्ड में चली आई। मेरे पशुरक्षक ने हज़ार गायों में उसे भी गिन १०
दिया और मैंने, पारलौकिक फल पाने के लिए, वह गाय भी एक ब्राह्मण को दान कर दी। कुछ दिनों बाद वह अग्निहोत्री विदेश से घर लौट आया और अपनी गाय को खोजने लगा। उसने अपनी गाय उस ब्राह्मण के घर देखी जिसे मैंने दान कर दी थी। उस ब्राह्मण से अग्निहोत्री ने कहा—यह गाय तो मेरी है, मैं इसे ले जाऊँगा। ब्राह्मण ने उत्तर दिया—मुझे यह गाय महाराज नृग ने दी है। तुम इसे नहीं ले जा सकते। तब दोनों ब्राह्मण झगड़ते हुए मेरे पास आये। जिस ब्राह्मण को मैंने वह गाय दी थी उसने कहा—महाराज, क्या आप दान दी हुई गाय छीन लेंगे? मैंने कहा—भगवन्, मैं आपको इस गाय के बदले दस हज़ार गायें दूँगा। आप यह गाय इस ब्राह्मण को दे दीजिए। यह सुनकर वह ब्राह्मण उदास हो गया। उसने कहा—महाराज, यह सुलक्षणा गौ प्रतिदिन स्वादिष्ट दूध देकर मेरे दुधमुँहे कमज़ोर बच्चे का पालन

करती है। मैं यह गाय नहीं दे सकता। बस, वह ब्राह्मण मेरे पास से उठकर अपने घर चला गया। तब मैंने विदेश से लौटे हुए ब्राह्मण से कहा—भगवन्, मैं आपको इस गाय के बदले एक लाख गायें दूँगा, आप कृपा करके ले लीजिए। उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया—महाराज, मैं राजाओं का दान नहीं लेना चाहता, मैं अपनी जीविका स्वयं कर लेता हूँ। आप शीघ्र मेरी गाय दे दीजिए। मैंने उसे बहुत सा सोना, चाँदी, अनेक घोड़े और रथ देने का यत्न किया; किन्तु वह ब्राह्मण कुछ भी लेने को राज़ी न हुआ। वह उदास होकर अपने घर चला गया। इसी बीच मैं
२० शरीर त्यागकर पितृलोक को गया। वहाँ मैं धर्मराज के सामने उपस्थित हुआ। यमराज ने सत्कार करके मुझसे कहा—महाराज, आपके पुण्य की तो थाह नहीं है; किन्तु आपने भूल से एक ब्राह्मण की गाय छीनकर पाप किया है। उस ब्राह्मण को उसकी गाय वापस न करने से आपकी वह प्रतिज्ञा नष्ट हो गई जो आपने प्रजा का पालन करने के लिए की थी। आपको ब्राह्मण के धन हरने का पाप लगा। अब आप पहले चाहे पाप भोग लीजिए चाहे पुण्य। यह सुनकर मैंने पहले पाप का और पीछे पुण्य का फल भोगने की प्रार्थना की। पहले पाप का फल भोगने की प्रार्थना करते ही मैं पृथिवी पर गिर पड़ा। तब यमराज ने मुझसे कहा—महाराज, हज़ार वर्ष बीतने पर आपके इस पाप का नाश होगा और श्रीकृष्ण आपका उद्धार करेंगे। तब आप अपने शुभ कर्म के प्रभाव से सनातन लोक प्राप्त करेंगे। तभी से मैं, गिरगिट होकर, इस कुएँ में पड़ा हुआ हूँ; किन्तु मुझे अपने पूर्व-वृत्तान्त का स्मरण है। आज आपने कृपा करके मेरा उद्धार कर दिया। अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपकी कृपा से स्वर्ग को जाता हूँ। महाराज नृग श्रीकृष्ण
२९ को प्रणाम करके, दिव्य विमान पर बैठकर, स्वर्गलोक को चले गये।

हे युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण ने संसार के हित के लिए यह कहा है कि ब्राह्मण की गाय छीन लेने से महाराज नृग की बड़ी दुर्दशा हुई थी। अतएव ब्राह्मण का धन हर लेना किसी को उचित नहीं। देखो, सज्जन का समागम होने से महाराज नृग का नरक से उद्धार हुआ था, सज्जन का संसर्ग कभी निष्फल नहीं होता। दान करने से जिस तरह फल होता है उसी तरह हर
३३ लेने से पाप भी होता है। किसी की गाय छीन लेना उचित नहीं।

इकहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गोदान का फल कहते हुए नाचिकेत का उपाख्यान कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, गोदान का फल सुनकर मुझे अभी सन्तोष नहीं हुआ आप गोदान का फल विस्तार के साथ कहिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, अब मैं उद्दालकि और नाचिकेत का संवाद सुनाता हूँ महर्षि उद्दालकि ने एक बार नदी-किनारे एक व्रत ले रक्खा था। उस व्रत के समाप्त होने पर

उन्होंने अपने पुत्र नाचिकेत के पास जाकर कहा—बेटा! स्नान और वेद-पाठ में मेरा ध्यान लगा हुआ था इस कारण मैं लकड़ी, कुश, फूल, कलश और भोजन की सामग्री नदी के किनारे भूल आया हूँ। तुम शीघ्र जाकर उठा लाओ। आज्ञा पाकर नाचिकेत ने नदी-किनारे जाकर देखा कि उनके पिता जो वस्तुएँ वहाँ भूल गये थे वे सब नदी की धारा में बह गई हैं। नाचिकेत ने आकर कहा—पिताजी, आपने मुझे जिन वस्तुओं के लाने के लिए भेजा था वे वहाँ नहीं मिलीं।

महर्षि उद्दालकि उस समय बहुत थके हुए और भूख-प्यास से व्याकुल थे। पुत्र की बात सुनकर वे झुँझला पड़े। उन्होंने पुत्र को शाप दे दिया—"तू अभी यमलोक को चला जा।" उद्दालकि का यह कठोर वचन सुनते ही लड़का हाथ जोड़कर 'मुझ पर कृपा कीजिए' कहता हुआ मरकर गिर पड़ा। पुत्र को मरा देखकर महर्षि उद्दालकि 'हाय, मैंने यह क्या किया' कहकर दुःख के मारे गिर पड़े और व्याकुल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। वह दिन और रात इसी तरह बीत गई। नाचिकेत इतने समय तक कुशासन पर मरा पड़ा रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल, जिस तरह पानी पड़ने से धान के पौदे हरे हो जाते हैं उसी तरह, पिता के आँसुओं की धारा से अभिषिक्त होकर नाचिकेत हाथ-पैर हिलाने लगा और शीघ्र जीवित होकर, सोये हुए मनुष्य की तरह, उठ बैठा। उस समय वह बहुत दुर्बल हो गया था। उसके शरीर से दिव्य गन्ध निकल रही थी। महर्षि उद्दालकि ने पुत्र को जीवित देख प्रसन्न होकर कहा—बेटा, तुमने अपनी करनी से शुभ लोकों को जीत लिया है। तुम्हारा यह शरीर मनुष्य का नहीं है।

१०

यह सुनकर नाचिकेत, अन्य महर्षियों के सामने, उनसे कहने लगा—पिताजी, आपकी आज्ञा का पालन करके मैं यमलोक को गया। वहाँ मैंने हज़ार योजन विस्तीर्ण, सोने की प्रभा के समान, एक सभा देखी। मैं उस सभा के भीतर चला गया। मुझे देखकर यमराज ने मेरे बैठने के लिए आसन मँगा दिया और आपके प्रति भक्ति दिखाते हुए उन्होंने मेरा सत्कार किया। मैंने आसन पर बैठकर यमराज से कहा—धर्मराज, मैं आपके राज्य में आया हूँ। अब मुझे उस लोक में भेज दीजिए जहाँ जाने योग्य मैं हूँ।

यमराज ने कहा—भगवन्, आपकी मृत्यु नहीं हुई है। आपके तेजस्वी पिता ने क्रोध में आकर आपसे कहा है कि 'तू शीघ्र यम का दर्शन कर'। मैं उनकी बात नहीं टाल सकता, इसी से आपका यहाँ ले आया हूँ। आपने मुझे देख लिया, अब आप लौट जाइए। आपके पिता, आपके वियोग से, बड़े दुखी हैं और विलाप कर रहे हैं। आप मेरे माननीय अतिथि हैं अतएव आपकी जो इच्छा हो वह मुझसे कहिए, मैं उसे पूर्ण करूँगा। मैंने कहा—धर्मराज, मैं इस समय आपके अधिकार में हूँ। यहाँ आकर कोई वापस नहीं जा सकता। यदि आप मेरी इच्छा पूरी करना चाहते हैं तो मुझे, पुण्य से प्राप्त होने योग्य, श्रेष्ठ लोकों के दर्शन करा दीजिए। यह सुनकर यमराज, घोड़ों से युक्त चमकीले रथ पर बैठाकर, मुझे शुभ लोकों को ले चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुझे दिखलाया कि पुण्यवान् पुरुषों के लिए चन्द्रमा के समान सफ़ेद, सब रत्नों से परिपूर्ण, वैदूर्य मणि और सूर्य के समान तेजवाले, कई मञ्ज़िल ऊँचे, सोने और चाँदी के अनेक प्रकार के भवन तैयार हैं। उनमें कुछ भवन तो एक ही स्थान पर खड़े हैं और कुछ जल तथा स्थल में समान रूप से चल रहे हैं। उन भवनों में अनेक प्रकार के वस्त्र, शय्या, भोज्य सामग्री के ढेर और सब इच्छाएँ पूरी करनेवाले वृक्ष मौजूद हैं। वहाँ ये वस्तुएँ और नदी, सभा, बावली, सवारियाँ, दूध की नदी, घी के कुण्ड आदि अनेक अद्भुत और रमणीय पदार्थ देखकर मैंने यमराज से पूछा—धर्मराज, मैं जिन वस्तुओं को देख रहा हूँ ये हैं किसके लिए? यमराज ने कहा—तपोधन, जो मनुष्य दूध आदि का दान करता है उसके लिए ये दूध आदि के कुण्ड हैं; जो गोदान करता है उसे ये शोकहीन सनातन लोक प्राप्त होते हैं। हे तपोधन, साधारणतया गोदान कर देने से इन शुभ लोकों की प्राप्ति नहीं होती। गोदान करने की विशेष विधि है। पात्र, काल, गाय और गोदान की विधि विशेष रूप से जानकर गोदान करना चाहिए। ऐसे विद्वान् ब्राह्मण ही गोदान के श्रेष्ठ पात्र हैं जो तपस्वी और यज्ञशील हों तथा जिनके घर में गायों को धूप और गरमी का क्लेश न भोगना पड़े। नीरोग और हृष्टपुष्ट गायों का ही दान करे। तीन रात पृथिवी पर सोकर और केवल जल पीकर, ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए, बछड़े समेत गोदान करना चाहिए। गोदान करने के बाद तीन दिन तक केवल दूध पीकर रहे। दुहने के लिए काँसे का बर्तन और बछड़े समेत सुलक्षणा गाय का दान विधि के अनुसार करने से, उस गाय के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग का भोग मिलता है। ब्राह्मणों को काम में मँजा हुआ, बोझा ढोने में समर्थ, हृष्ट-पुष्ट सीधा बैल देने से गाय का दान करने के समान फल होता है। उसी ब्राह्मण को गोदान करना चाहिए जो गायों के कुछ अपकार करने पर उसे सह सके, जो हमेशा उनका पालन करता रहे और जो कृतज्ञ, जीविकाहीन, वृद्ध और रोगी हो। यज्ञ, खेती आदि काम, होम और बालक का पालन करने के लिए ब्राह्मण को गायें दे। दुर्भिक्ष पड़ने पर गोदान अवश्य करे। शुभ कार्यों की सिद्धि के निमित्त और

पुत्र उत्पन्न होने पर उसके कल्याण के लिए गोदान करना चाहिए। दूध देनेवाली, मोल ली हुई, विद्या से प्राप्त, भेड़ आदि पशुओं से बदली हुई और दहेज में प्राप्त गायों का दान करना श्रेष्ठ है।

इस प्रकार गोदान का माहात्म्य सुनकर मैंने उनसे पूछा—धर्मराज, गायों के न होने पर मनुष्य किस वस्तु का दान करने से गोदान का फल पा सकता है ? यमराज ने कहा—भगवन्, गाय न हो तो मनुष्य गाय की मूर्ति का दान करके गोदान का फल पा सकता है। गाय न रहने पर जो मनुष्य घी की गाय का दान करता है, परलोक में वह घी की गाय उसी तरह दाता को अमृत देती है जिस तरह ब्याई हुई गाय दूध देती है। घी के अभाव में जो मनुष्य तिलधेनु का दान करता है, वह उस पुण्य के प्रभाव से इस लोक में घोर विपत्ति से मुक्त होता और परलोक में दूध की नदी में आनन्द करता है। तिल के अभाव में जो जलधेनु का दान करता है उसको ४०
परलोक में अभीष्ट फल देनेवाली शीतल नदी मिलती है।

पिताजी, धर्मराज ने प्रसन्न होकर मुझे पवित्र लोकों का दर्शन कराया था। उनको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। यमराज की कृपा से मुझे गोदान-रूप महायज्ञ का फल मालूम हो गया है। अब मैं इस यज्ञ को करके इसका फल भोगूँगा। शाप देकर आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है। यदि आप मुझे शाप न देते तो मैं यम के दर्शन न पा सकता। मैंने दान का फल अपनी आँखों देख लिया है इसलिए अब बिना किसी सन्देह के दान करूँगा। धर्मराज ने मुझसे बार-बार यही कहा है कि मनुष्य को हमेशा अभीष्ट वस्तु का दान, विशेषकर गोदान, करना चाहिए। दान-धर्म अति पवित्र है। उसे करते रहिएगा। गोदान का फल मिलने में सन्देह न करके सत्पात्र को गोदान करते रहना। शान्तस्वभाव के दानशील महात्मा पुरुष, फल मिलने के विषय में सन्देह न करके, यथाशक्ति गोदान करते हैं। पुण्यात्मा श्रद्धावान् मनुष्य ईर्ष्या-हीन होकर यथाशक्ति गोदान करने से इन सब लोकों को प्राप्त करके सुरलोक में पहुँचता है। पात्र की विशेष रूप से परीक्षा करके गोपाष्टमी को, न्याय से उपार्जित, गाय का दान करे। गोदान करने के बाद दस दिन तक गाय का दूध या गोमूत्र पिये या गोबर खावे। बैल का दान करने से देव-ताओं के व्रत का फल मिलता है। दो बैलों का दान करने से वेद का और दो बैलों समेत गाड़ी का दान करने से तीर्थयात्रा का फल प्राप्त होता है। कपिला गाय का दान करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। पीने की कोई वस्तु दूध से श्रेष्ठ नहीं है, इस कारण दूध देती हुई गाय का ५०
दान सर्वश्रेष्ठ है। गायें दूध देकर मनुष्यों का पालन और सब जीवों के लिए भोजन उत्पन्न करती हैं। जो मनुष्य गायों के ये सब गुण जानकर भी उन पर दया नहीं करता उस पापी को नरक में जाना पड़ता है। ब्राह्मण को हज़ार, सौ या दस-पाँच गायें देने की बात तो दूर रही, एक गाय देने से भी वह गाय परलोक में दाता को पवित्र नदी के समान फल देती है। गायें मनुष्यों को पुष्ट करने और उनका पालन के कारण सूर्य की किरणों के समान हैं। इसके सिवा सूर्य की किरणों

का नाम 'गो' है और गाय को भी 'गो' कहते हैं। गाय का दान करनेवाले मनुष्य का वंश सूर्य के समान विस्तीर्ण और अविनाशी हो जाता है। अतएव गोदाता की उपमा सूर्य के साथ दी जा सकती है। गोदान करते समय शिष्य गुरु का पूजन करे। ऐसा करने से वह निस्सन्देह स्वर्गलोक को जाता है। गुरु का वरण करना प्रधान धर्म है। यही श्रेष्ठ विधि है। दूसरे विधान इसी के अन्तर्गत हैं। हे नाचिकेत, देवता और मनुष्य सभी अपने दान का फल चाहते हैं। अतएव आप गोदान करें। पिताजी! इस प्रकार धर्मराज का उपदेश सुनकर, उनको
५७ प्रणाम करके, उनकी आज्ञा से मैं आपके पास आया हूँ।

बहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गोलोक का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने नाचिकेत का उपाख्यान कहकर गो-माहात्म्य का वर्णन किया और बतलाया कि भूल से एक अपराध हो जाने के कारण महाराज नृग को घोर दुःख मिला था, वे गिरगिट होकर द्वारका नगरी के कुएँ में पड़े थे और कृष्ण भगवान् ने उनका उद्धार किया था। अब यह बतलाइए कि गोदाता किन गोलोकों को जाते हैं।

भीष्म ने कहा कि बेटा, मैं इस विषय में तुमको ब्रह्मा और इन्द्र का संवाद सुनाता हूँ। एक बार इन्द्र ने ब्रह्माजी से पूछा—भगवन्! गोलोक-निवासी पुरुष अपने तेज से स्वर्गवासियों के ऐश्वर्य का निरादर करते हैं, इसका क्या कारण है? गोदाता जिन लोकों को जाते हैं वे लोक किस प्रकार के हैं, उन लोकों में क्या फल मिलता है, उन लोकों का श्रेष्ठ गुण क्या है, गोदाता इन लोकों को किस प्रकार जाते हैं और कितने दिनों तक गोदान का फल भोगते हैं? बहुत से गोदान करने का फल क्या है और थोड़ी गायें देने का फल क्या है? बिना ही गोदान किये किस प्रकार गोदान के समान फल मिलता है? थोड़ा दान करनेवाला बहुत दान करनेवाले के समान और बहुत दान करनेवाला थोड़ा दान करनेवाले के समान क्योंकर हो जाता है? गोदान
१२ करके दक्षिणा में क्या देनी चाहिए?

तिहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का इन्द्र को गोदान का फल बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—देवराज, तुमने गोदान के विषय में बड़े महत्त्व के प्रश्न किये हैं; मैं सब प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। गोलोक अनेक प्रकार के हैं। तुम उन लोकों को नहीं देख सकते। उन लोकों के दर्शन या तो मैं कर सकता हूँ या पतिव्रता स्त्रियाँ कर सकती हैं। व्रतपरायण महर्षि और शुद्ध-चित्तवाले ब्राह्मण अपने पुण्य के बल से सदेह उन लोकों को जाते हैं। जो महर्षि व्रतपरायण होकर

समाधि द्वारा चित्त को निर्मल कर सकते हैं वे उन लोकों में जाकर, स्वप्न की तरह, उनको देखते हैं। उन लोकों में मौत, बुढ़ापा, पाप, रोग और शोक नहीं होता। मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि वहाँ-वालों की इच्छाओं की पूर्ति कामधेनुएँ कर देती हैं। उन लोकों में मनोहर बावली, तालाब, नदी, वन, पर्वत, घर और सारी आवश्यक वस्तुएँ मौजूद हैं। गोलोक सब लोकों से श्रेष्ठ है। सहनशील, क्षमावान्, स्नेहवान्, गुरुभक्त, अहङ्कारहीन, मांस न खानेवाले, योगी, धर्मात्मा, माता-पिता की सेवा करनेवाले, ब्राह्मणों के सेवक, अनिन्दित, गो-ब्राह्मणों पर क्रोध न करनेवाले, जन्म भर सत्य बोलनेवाले, दानी, अपराधी को क्षमा करनेवाले, मृदुस्वभाव, जितेन्द्रिय, देवभक्त, अतिथिभक्त और दयावान् ही इन सनातन लोकों को जा सकते हैं। परस्त्रीगामी, गुरुघातक, मिथ्यावादी, बातून, ब्राह्मणद्रोही, मित्रद्रोही, ठग, कृतघ्न, शठ, क्रूर, धर्मद्रोही और ब्रह्महत्यारा दुरात्मा मन में भी उन पवित्र लोकों के दर्शन नहीं कर सकता। ९

यह मैंने गोलोकों का वर्णन विशेष रूप से किया। अब गोदान का फल विस्तार के साथ सुनो। जो मनुष्य धर्म से उपार्जित या पैतृक धन द्वारा गायें मोल लेकर ब्राह्मणों को दान करता है उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य जुए में जीते हुए धन से गायें ख़रीदकर दान करता है वह देवताओं के दस हज़ार वर्ष तक स्वर्ग का सुख भोगता है। जो मनुष्य न्यायानुसार उपार्जित पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार करके ब्राह्मणों को गोदान करता है उसे सनातन अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य गोदान लेकर शुद्ध चित्त से वह गाय ब्राह्मण को देता है उसे भी अक्षय लोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य जन्म भर जितेन्द्रिय, क्षमावान् और सत्यवादी रहकर ब्राह्मण और गुरु का अपराध क्षमा करता है वह पवित्र गोलोक को जाता है। ब्राह्मणों को कटु वचन कहना और मन से गायों का अनिष्ट चेतना कदापि उचित नहीं। हमेशा गायों की सेवा और रक्षा करे। ब्राह्मण यदि सत्य और धर्म का पालन करता हो तो केवल एक गोदान करने से हज़ार गोदानों का फल और क्षत्रिय में इसी प्रकार के गुण हों तो वह एक गोदान करने से ब्राह्मण के समान ही फल पाता है। वैश्य में ये ही गुण हों तो एक गोदान करने से वह पाँच सौ गोदानों का फल और शूद्र विनीत होकर एक गोदान करने से एक सौ पचीस गोदानों का फल पाता है। जो सत्यवादी, गुरुभक्त, दक्ष, क्षमावान्, देवभक्त, शान्तस्वभाव, अहङ्कारहीन और धर्मवान् होकर, विधिपूर्वक, ब्राह्मण को दूध देती हुई गाय देता है उसे महाफल मिलता है। गोदान करना गुरुभक्त सत्यवादी महात्माओं का कर्तव्य है। महर्षि और सिद्धगण कहते हैं कि जो मनुष्य वेदाध्ययन-निरत और गोभक्तिपरायण होकर हमेशा गायों का दर्शन करके प्रसन्न होता और जन्म भर गायों को प्रणाम करता है वह राजसूय यज्ञ और सुवर्णदान के समान फल पाता है। जो पुण्यवान् महात्मा गोव्रतपरायण, सत्यवादी, शान्तस्वभाव और निर्लोभ होकर एक वर्ष तक प्रतिदिन भोजन से पहले गोग्रास देता रहता है उसे हज़ार गोदानों का फल मिलता है। जो मनुष्य गोभक्त होकर, २०

गायों पर दया करके, दस वर्ष तक प्रतिदिन स्वयं एक बार भोजन करके गायों को चारा देता है उसे स्वर्ग में परम सुख मिलता है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन एक बार भोजन करके और एक बार के भोजन की बचत से गौ मोल लेकर ब्राह्मण को दान करता है वह ब्राह्मण उतने वर्ष तक स्वर्ग का सुख भोगता है जितने रोएँ उस गाय के होते हैं। जो क्षत्रिय इस प्रकार के सञ्चित धन द्वारा गाय मोल लेकर ब्राह्मण को दान करता है वह पाँच वर्ष, जो वैश्य इस प्रकार गोदान करता है वह ढाई वर्ष और जो शूद्र इस नियम से गोदान करता है वह सवा वर्ष तक स्वर्ग का सुख पाता है। जो मनुष्य अपने को बेचकर मिले हुए धन से गायें खरीद कर ब्राह्मण को दान करता है वह तब तक स्वर्ग का सुख भोगेगा जब तक कि पृथिवी पर गोजाति रहेगी। जो मनुष्य युद्ध में विजयी होकर प्राप्त की हुई गायें ब्राह्मण को दान करता है वह आत्मविक्रयी गोदाता के समान फल पाता है और गोदान में असमर्थ जो मनुष्य तिल की गाय बनाकर ब्राह्मण को देता है वह सब दुःखों से मुक्त होकर परलोक में दूध की नदी पाता है। मनुष्य साधारण रीति से गोदान करने पर श्रेष्ठ फल नहीं पा सकता; अतएव पात्र, काल, गो-विशेष और गोदान की विधि के अनुसार गोदान करना चाहिए। गोदान के उपयुक्त पात्र वही लोग हैं जिनके घर में गायों को किसी प्रकार का क्लेश न मिले और जो विद्वान्, कुलीन, शान्तस्वभाव, यज्ञशील, निष्पाप, बहुज्ञ, शरणागत-रक्षक और जीविकाहीन हैं। अतएव अच्छे देश और अच्छे समय में इस प्रकार के ब्राह्मण को गोदान करना चाहिए। ब्राह्मण को यज्ञ, खेती आदि काम, होम, गुरुसेवा और बालक का पालन करने
४० के लिए गोदान दिया जाय। दूध देती हुई, विद्या से प्राप्त, युद्ध से प्राप्त, भेड़ आदि से बदली हुई, दहेज में मिली हुई, नीरोग, हृष्ट-पुष्ट गायों का दान करना श्रेष्ठ है। पुष्ट, सीधी, जवान और सुगन्धवती गायें प्रशंसनीय हैं। जैसे भागीरथी सब नदियों में श्रेष्ठ हैं वैसे ही कपिला गाय सब गायों में श्रेष्ठ है। तीन रात पृथिवी पर सोकर, केवल जल पीकर, ब्राह्मणों को बछड़े समेत गोदान करके फिर तीन दिन केवल दूध पीकर रहने से उस गाय के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग का सुख मिलता है। जो मनुष्य ब्राह्मण को बलवान्, सीधा, हल खींचने लायक बैल देता है वह दस गोदान करनेवाले के समान लोक को जाता है। जो मनुष्य दुर्गम मार्ग में ब्राह्मणों और गायों की रक्षा करता है उसे अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और मरते समय वह जो ऐश्वर्य चाहता है तथा जिन लोकों को जाने की इच्छा करता है वे सब उसे प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य निःस्पृह, संयमी, पवित्र और इच्छाहीन होकर घास, पत्ते और गोबर खाकर प्रसन्नता से वनों में गायों के पीछे घूमता है वह देवताओं के साथ स्वर्गलोक में, अथवा अपनी
५१ इच्छा के अनुसार अन्य लोक में, निवास कर सकता है।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकख़र्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री ख़र्च सहित १३॥) या ६॥॥) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

शुभ संवाद ! लाभ का सूचना !!

महाभारत-मीमांसा

कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमे १८ प्रकरण हैं और उनमे महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुक्त बाबू भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक मे बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नक़शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल मे भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमे स्थल-विशेष की शंकाएँ पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा ले। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २॥) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। **समय बीत जाने पर महाभारत-मीमांसा रिआयती मूल्य मे न मिल सकेगी।** प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।